श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

उत्तरार्द्ध

[लङ्काकाण्ड और उत्तरकाण्ड]

का

हिन्दी-भाषानुवाद

[सचित्र]

अनुवादक

पण्डित गोपाल शर्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४५

सूची।

—:※:—

चित्र-सूची।

नोट— * चिह्नयुक्त चित्र रङ्गीन हैं।

भगवान् रामचन्द्र और भगवती सीता।

श्रीरामचन्द्राय नमः ।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण ।

(हिन्दीभाषानुवाद)

लंका-काण्ड ।

भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण ।

श्लोकौ

स जयति सुरसार्थभीतिभेत्ता भवविपदां हरणो हरेष्टमूर्त्तिः ।
दशमुखवदनैर्दिशांवलिं योऽकृत निगमैः स्तुत एष राम ईशः ॥ १ ॥
श्रीमद्वानरयूथयूथसहितो वारांनिधिं वैभवा-
त्तीर्त्वा सेतुपथेन राक्षसपुरीं गत्वा च हत्वा च तान् ।
तद्राज्यं च विभीषणाय नृपराड् दत्वा पुरीं स्वां ययौ
सीतालक्ष्मणसंयुतस्तमनिशं श्रीराममीशम्भजे ॥ २ ॥

छन्दः

जय जय सुरनायक कुशलविधायक जन्मवतामयि पाहि हरे ।
मायापतिरीशस्त्वं जगदीशो भीमभवाम्बुधितारतरे ॥
लीलातनुधारिन् कामविहारिन् सर्वमिदं तव नाथ करे ।
गोपालः प्रणमति नतशिरसा ह्यतिपादयुगेऽखिलतापहरे ॥

पहला सर्ग

रामचन्द्र का हनुमान् की प्रशंसा करना और समुद्र पार जाने की चिन्ता करना।

हनुमान् से सब हाल सुन श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर कहने लगे—देखो, हनुमान् ने बड़ा काम किया, पृथ्वी पर ऐसे काम को और मनुष्य मन से भी नहीं कर सकते। गरुड़, वायु और हनुमान् इन तीनों के सिवा हम ऐसा किसी को नहीं देखते जो समुद्र के पार जा सके। देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षसों की भी जिस नगरी में पहुँच नहीं हो सकती रावण की उसी रक्षित नगरी में पहुँचकर जीते जी कौन लौटकर आ सकता है? हनुमान् के समान वीर्यवान् और बलवान् मनुष्य को छोड़कर ऐसा कौन है जो अकेला उस नगरी में घुस भी सके? जो हो, हनुमान् ने सुग्रीव का भृत्य-कार्य ख़ूब किया। स्वामी ने जिस सेवक को किसी कठिन काम में लगा दिया हो उस काम को, अगर वह सेवक अपने पुरुषार्थ के अनुसार प्रेमपूर्वक, अपनी शक्ति से, पूरा कर दे तो उसको सबसे अच्छा सेवक कहना चाहिए। जो नौकर समर्थ होकर भी राजा का प्रिय काम न करे (अर्थात् केवल राजा के आज्ञानुसार काम करके दूर हो जाय और उसमें अपना बुद्धि-बल न लगावे) तो उसे मध्यम मनुष्य कहना चाहिए। जो समर्थ होकर भी राजा के आज्ञानुसार काम न करे वह अधम नौकर है। हनुमान् ने इस काम में लगकर सिद्धि प्राप्त की और कहीं भी नीचा नहीं देखा। सुग्रीव को भी प्रसन्न और सन्तुष्ट किया। मैं और महाबली लक्ष्मण ही नहीं, किन्तु रघु का समूचा वंश (इनके वहाँ जाकर सीता के दर्शन कर आने से) धर्मपूर्वक बच गया। क्योंकि यदि सीता का समाचार न मिलता तो मेरा तथा मेरे बिना इन लोगों का जीना असम्भव था। पर एक बात मुझ दीन के मन को बहुत दुःखित कर रही है। वह यह कि इस प्यारे संदेश के पहुँचानेवाले को मैं कुछ भी उचित पारितोषिक नहीं दे सकता, किन्तु इस समय मेरा यह सर्व-स्वरूप आलिङ्गन ही हनुमान् के लिए पारितोषिक हो। इस तरह कहकर, श्रीरामचन्द्रजी ने उठकर हनुमान् को अपने गले से लगा लिया। इसके बाद मन में कुछ सोच-विचारकर रामचन्द्र सुग्रीव से बोले—हे भाई! सीता का पता तो लग गया, पर समुद्र की ओर देखकर मेरा मन निराश हो गया है। दुःख से पार होने योग्य समुद्र के दक्षिण किनारे पर ये वानर किस तरह पहुँचेंगे? यद्यपि मैंने सीता का समाचार पा लिया तथापि वानरों को समुद्र पार पहुँचाने के लिए क्या किया जाय? यह कहकर, और हनुमान् की ओर देखकर, शोक से पीड़ित श्रीरामचन्द्र फिर कुछ सोचने लगे।

दूसरा सर्ग

सुग्रीव का श्रीरामचन्द्र को समझाना और उनका उत्साह बढ़ाना।

रामचन्द्र को इस तरह शोक-पीड़ित देख वानरेन्द्र सुग्रीव शोक को दूर करनेवाले ये वचन बोले:—हे वीर! किसी असमर्थ साधारण मनुष्य की तरह आप क्या शोक कर रहे हैं? ऐसा शोक न कीजिए। सन्ताप को ऐसे छोड़ दीजिए जैसे कि कृतघ्न मनुष्य मित्रता को त्याग देता है। हे राघव! आपके सन्ताप का

में कोई कारण नहीं देखता। आपने सीता का पता पा लिया और शत्रु के निवास-स्थान का भी ठिकाना जान लिया। आप तो बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ और पण्डित हैं, इसलिए अमङ्गल-रूप बुद्धि का इस तरह त्याग कर दीजिए जिस तरह आत्मज्ञ मनुष्य मोक्ष में बाधा करनेवाली बुद्धि को छोड़ देता है। हे राघव! हम लोग बड़े-बड़े ग्राहों से भरे इस समुद्र को लाँघ और लङ्का पर चढ़ाई कर आपके शत्रु को अवश्य मारेंगे। देखिए, उत्साहरहित दीन और शोक से घबराये हुए मनुष्य के सब काम बिगड़ जाते हैं। इससे वह दुखी होता है। ये सब शूरवीर वानर-सेनापति आपके अभीष्ट के लिए इतने उत्साहित हो रहे हैं कि यदि काम पड़े तो जलती हुई आग में भी कूद पड़ें। इनके हर्ष से मेरा ज्ञान और तर्क दृढ़ होता है कि मैं पराक्रम से शत्रु को मारकर सीता को अवश्य पाऊँगा। आप भी ऐसा कीजिए कि जिससे यहाँ पर पुल बाँधा जाय। उसके द्वारा हम लोग लङ्का को देख पावें। जहाँ हमने (त्रिकूट के शिखर पर बनी हुई) लङ्का देखी वहाँ रावण को मारा गया ही समझना चाहिए। यह आप निश्चय जानिए। परन्तु इस भयङ्कर समुद्र में, बिना पुल बाँधे, लङ्का को पा लेना देव, दानव के लिए भी कठिन है; दूसरे की तो बात ही क्या! यहाँ पुल बँधने भर की देर है, सेना तो चटपट पार उतर जायगी; जब सेना पार हो गई तब जीत ही समझिए। क्योंकि ये सब वानर कामरूप (जैसा चाहें वैसा रूप धरनेवाले) और शूरवीर हैं। हे राजन्! यह सर्व-नाशिनी कादर बुद्धि व्यर्थ है। क्योंकि शोक मनुष्य की शूरता को खींच लेता है, इसलिए हे महाप्राज्ञ! इस समय शूर मनुष्य को जो करना उचित है उसी को कीजिए। आप अपने तेज का सहारा लीजिए। देखिए, आप सरीखे महात्मा और शूर मनुष्यों के लिए तो, चाहे अभीष्ट वस्तु का नाश हो गया हो अथवा विध्वंस, शोक सर्वनाशक ही है। आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वों के जाननेवाले हैं; अतएव मेरे समान मन्त्रियों की सहायता से शत्रु का नाश करना ही चाहिए। हे राघव! मैं तो तीनों लोकों में कहीं भी ऐसे किसी वीर मनुष्य को नहीं देखता जो आपका, जब आप संग्राम में धनुष लेकर खड़े होंगे तब, सामना कर सके। यह जो काम वानरों के अधीन है इसमें कभी बाधा न होगी। मैं इस अक्षय सागर के पार जाकर आपकी सीता को अवश्य ले आऊँगा। हे भूपते! अब समय शोक का नहीं किन्तु क्रोध का है। क्योंकि चेष्टारहित क्षत्रिय मन्दभाग्य होते हैं, और क्रोधी से सभी डरते हैं। इस समय अब आपको इस घोर समुद्र के लाँघने के विषय में हमारे साथ सूक्ष्म बुद्धि से विचार करना चाहिए। सेना पार गई कि शत्रु जीता गया; यह आप निश्चय जानिए। ये सब वानर बड़े शूर-वीर हैं। पत्थरों और वृक्षों के प्रहारों से ये शत्रुओं को मार गिरावेंगे। किसी न किसी उपाय से हम लोग समुद्र के पार जावेंगे ही और जब पार पहुँच गये तब शत्रु को मारते क्या देर लगती है? हे रामचन्द्र! बहुत क्या कहूँ, आप सर्वथा विजयी हैं। क्योंकि शकुन अच्छे-अच्छे हो रहे हैं और मेरा मन अत्यन्त हर्षित हो रहा है।

तीसरा सर्ग

हनुमान् का लङ्का की रचना का वर्णन करना ।

सुग्रीव की मतलब की सलाह सुनकर रामचन्द्र ने उसे मान लिया। वे हनुमान् से बोले—देखो, मैं तो तपोबल से अथवा पुल बाँधकर या समुद्र को सुखाकर, किसी न किसी तरह, सागर के पार जाने में सर्वथा समर्थ हूँ; परन्तु मुझे यह तो बतलाओ कि लङ्का में दुर्ग कितने हैं ? मैं उनका पूरा-पूरा हाल जानना चाहता हूँ । सेना का परिमाण द्वार-क्रिया,*दुर्गक्रिया, गुप्तिकर्म† और राक्षसों के घर, इन सब वस्तुओं को तुमने भली भाँति देखा ही है इसलिए इनका हाल मुझसे कहो, क्योंकि तुम बड़े चतुर हो । रामचन्द्र की यह बात सुनकर हनुमान् बोले—सुनिए महाराज, उस लङ्का की जैसी गुप्ति और सेनाओं के द्वारा जैसी उसकी रक्षा होती है, और वहाँ जैसे-जैसे राक्षस हैं और रावण के तेज से वहाँ की जैसी समृद्धि और समुद्र की भयङ्करता है तथा सेना-समूह का जैसा विभाग और वाहनों की जैसी कुछ स्थापना है, सो सब मैं वर्णन करता हूँ । सुनिए—

वह लङ्का अति हर्ष और आनन्द से भरी हुई है; वह मतवाले हाथियों से पूर्ण, बड़े-बड़े रथों से सुशोभित, राक्षसगणों से सेवित, घोड़ों से भरी हुई है और शत्रुओं के लिए दुर्गम है । वह किवाड़ों से दृढ़ और बड़े-बड़े परिघों से खचित है । उस पुरी के बहुत बड़े और विशाल चार द्वार हैं । उन पर इषूपल नामक बड़ी दृढ़ और विशाल कलें लगी हुई हैं, जिनके द्वारा शत्रु की सेना रोकी जा सकती है । द्वारों पर, अच्छी तरह से बनाई हुई, लोहे की बड़ी मज़बूत सैकड़ों तोपें वीर राक्षसों ने लगा रक्खी हैं । लङ्का का घेरा (प्राकार) सुवर्णमय और बड़ा दुर्द्धर्ष है । वह भीतर से मणि, मूँगे, पन्ने और मोतियों से सुशोभित है । उसके चारों ओर खाइयाँ बनी हुई हैं, जो अथाह शीतल जल से भरी हुई हैं और जो ग्राहों तथा मछलियों से पूर्ण हैं । उसके चारों द्वारों पर बड़े-बड़े विस्तीर्ण चार बुर्ज़ बने हुए हैं । उन पर बहुत से बड़े-बड़े यन्त्र लगाये गये हैं । प्राकारों पर बने हुए बुर्ज़ों से उनकी रक्षा की जाती है । जब शत्रु की सेना आ पड़ती है तब वह यन्त्रों के द्वारा खाइयों में पटक दी जाती है । और भी एक अचल और बड़ा संक्रम है, जोकि बहुत से सोने के खम्भों और वेदिकाओं से सुशोभित है । हे रामचन्द्र! वह रावण बड़ा युद्ध करने के लिए उत्साह से कमर कसे तैयार है। वह सेना की देखरेख करने में बड़ा सावधान है । हे भगवन्! वह लङ्का पुरी बड़ी निरालम्ब है इसी लिए देवताओं के दुर्गों से भी भयङ्कर है। हे राघव! वहाँ चार प्रकार के तो दुर्ग हैं—अर्थात् नदी-सम्बन्धी, पर्वत-सम्बन्धी, वन-सम्बन्धी और चौथे बनाये हुए । देखिए, समुद्र के उस पार, बहुत दूर, वह नगरी बसी हुई है । न वहाँ नाव का रास्ता है और न कहीं से वहाँ का हाल मिल सकता है । वह पर्वत के आगे के भाग में बनी हुई है और इन्द्रपुरी की भाँति शोभा देती है । महाराज! उस में घोड़े हाथी भरे पड़े हैं । खाइयाँ तथा तोपें और

* क़िले का बन्दोबस्त ।

† चहारदीवारी आदि पर रक्षा के लिए रक्खे गये यन्त्रादि के विषय में ।

राम-प्रत्यागमन !

अन ्रह के यन्त्र उस नगरी को सुशोभित करते हैं। हे रामचन्द्र, पूर्व द्वार में दस हज़ार राक्षस शूल और तलवारों से युद्ध करनेवाले हैं जो सदा तैयार रहते हैं। दक्षिण द्वार पर एक लाख राक्षस चतुरंगिणी सेना-सहित कमर कसे खड़े रहते हैं। दस लाख राक्षस पश्चिम द्वार पर तैनात रहते हैं। ये तलवार, ढाल और अनेक शस्त्रों के युद्ध में कुशल हैं। दस करोड़ उत्तर द्वार पर तैयार रहते हैं। उनमें अनेक ते। रथी, बहुत से घुड़सवार और कितने ही कुलीनों के पुत्र हैं। सैकड़ों और सहस्रों छावनी में रहते हैं। ये बड़े विकट हैं। करोड़ से अधिक राक्षसों की सेना उनके साथ रहती है। हे प्रभो! उसमें मैंने उन संक्रमों को तोड़ डाला और खाइयों को भर दिया। नगरी को भस्म कर डाला तथा मोर्चों को ध्वस्त कर दिया। अब किसी प्रकार से इस समुद्र को पार करना चाहिए; और जहाँ यह पार हुआ तहाँ वानरों ने लङ्का को अवश्य ही जीता। अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील, बस इतने ही वहाँ के लिए बहुत हैं। अधिक सेना लेकर आप क्या करेंगे? ये सब कूदकर उस पार जा पहुँचेंगे और पर्वतों, वनों, खाइयों, तोरणों, प्राकारों और भवनों वाली उस लङ्का को तोड़-फोड़कर सीता को ला देंगे। इस प्रकार की आज्ञा दीजिए जिसमें सब सेना इकट्ठी हो जाय और उत्तम मुहूर्त्त में प्रस्थान किया जाय।

———

चौथा सर्ग

रामचन्द्र का सेनासहित यात्रा करके समुद्र के किनारे पहुँचना।

महातेजस्वी तथा पराक्रमी रामचन्द्र हनुमान् की बातों को क्रमपूर्वक सुनकर बोले—हे कपे! तुमने उस भयङ्कर राक्षस की जिस लङ्का का वर्णन किया उसका मैं जल्दी नाश करूँगा। यह मैं सत्य ही कहता हूँ। हे सुग्रीव! इसी मुहूर्त्त में यात्रा करो, क्योंकि सूर्य मध्य आकाश में आ गया इसलिए यह विजय का मुहूर्त्त है। इस विजय-मुहूर्त्त में सीता को उससे छीनकर लाऊँगा। वह राक्षस जा कहाँ सकता है? सीता जब मेरा आना सुनेगी तब उसको अपने जीवन की वैसी ही आशा होगी जैसी कि जीवन से निराश हुए किसी मरणासन्न पुरुष को अमृत पा जाने से होती है। आज उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र है, कल हस्त से इसका संयोग होगा। इसलिए हे सुग्रीव! चलो, हम सब सेना को लेकर यात्रा करें। इस समय अच्छे-अच्छे शकुन भी हो रहे हैं, जिससे प्रकट है कि हम सब रावण को मारकर जानकी को ले आवेंगे। देखो, मेरी दहनी आँख फड़क रही है। यह शकुन विजयसूचक है।

रामचन्द्रजी ने फिर कहा—देखो, मार्ग को देखने के लिए सबसे आगे नील चलें और इनके साथ एक लाख वानर जायँ। फिर नील से कहा कि हे सेनापति नील! वन के जिन रास्तों में फल-मूल हैं, शीतल जल भरे हुए हैं और जहाँ मधु है उन रास्तों में होकर तुम सेना को ले चलो। देखो, वे दुष्टात्मा राक्षसगण मार्ग के मूल, फल और जल को दूषित अर्थात् विषयुक्त न कर दें। उनसे

तुम इन्हें बचाओ। शायद नीचे वन-दुर्गों में और वनों में शत्रुओं की सेना छिपी हो, इसलिए ये सब वानर ऐसे स्थानों की खोज करते हुए चलें। और देखो, जो सेना थोड़े बलवाली हो अर्थात् जिसमें बाल-वृद्ध और आतुर हों उसको यहीं रहने देना क्योंकि मेरा यह काम बड़ा कठिन है। इसमें पराक्रम का ही काम है। ये सैकड़ों और सहस्रों कपिसिंह समुद्र के तुल्य विशाल और भयङ्कर सेना को साथ में लिये हुए चलें। पर्वत के से आकार का गज, महाबली गवय और गवाक्ष सब आगे-आगे चलें। इस वानरी सेना के दक्षिण भाग की रक्षा करता हुआ ऋषभ नामक सेनापति चला, और जो गन्धमादन, मतवाले हाथी की नाईं दुर्द्धर्ष और वेगवान् है, वह सेना के बायें भाग की रक्षा करे। सेना के बीच में हनुमान् की पीठ पर चढ़कर मैं, ऐरावत पर चढ़े हुए इन्द्र की तरह, सेना को हर्षित करता हुआ चलूँगा। अङ्गद पर चढ़कर, काल के तुल्य, लक्ष्मण ऐसे चलेंगे जैसे अपने सार्वभौम दिग्गज (हाथी) पर सवार हो कुवेर चलते हैं। ऋक्षराज जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी ये सब सेना के भीतरी भाग की रक्षा करें। रामचन्द्र की इन बातों को सुनकर सुग्रीव ने वानरों को आज्ञा दी। वे सब गुफाओं में से निकलकर और शिखरों पर से कूद-कूदकर आने लगे। इसके बाद श्रीरामचन्द्र ने वानरराज और लक्ष्मण से अनुमोदन पाकर दक्षिण दिशा में प्रस्थान किया। हज़ारों, लाखों और करोड़ों वानरों के झुण्ड के झुण्ड राघव को घेरकर चल पड़े। महाराज के पीछे वह बड़ी सेना चली जो हृष्टपुष्ट थी, प्रसन्न हो रही थी, और जो सुग्रीव से रक्षित थी।

अब सब वानर कूदते-फाँदते, गरजते, सिंहनाद और बड़ा गर्जन-तर्जन करते हुए चले। ये मार्ग में सुगन्धित मधु और फलों को खाते जाते थे और मञ्जरियों के ढेर के ढेर लिये हुए वृक्षों को उखाड़कर लेते चले जाते थे। गर्व से एक दूसरे को फेंकते, उड़ते और एक दूसरे को गिराते हुए रामचन्द्र के सामने गरजते हुए मार्ग में चले जाते थे। वे कहते जाते थे कि "हम लोग रावण को और सब राक्षसों को मारेंगे। आगे-आगे ऋषभ, नील और कुमुद ये तीन वानर बहुत से वानरों के साथ मार्ग की खोज कर साफ़ करते चले। बीच में राजा सुग्रीव, राम और लक्ष्मण, बहुतेरे वीर वानरों को साथ लिये हुए चले जाते थे। शतवलि नामक वीर दस करोड़ वानरों को साथ लिये हुए चलता था। केसरी, पनस और गज, ये तीन वीर सौ करोड़ वानरों को लिये हुए चलते थे। अर्क नामक वीर वानर उसके एक भाग की रक्षा करता था! फिर सुषेण और जाम्बवान्, बहुत से भालुओं को साथ में लिये हुए सुग्रीव को आगे करके सेना के जङ्घा भाग की रक्षा करते जाते थे। इन सबका सेनापति नील यह देखता रहता था कि इनके द्वारा किसी को व्यर्थ पीड़ा न पहुँचे, या किसी स्थान की नाहक़ ख़राबी न कर दी जाय। दरीमुख, प्रजङ्घ, जम्भ और शरभ, ये सब वीर सेना से चलने में शीघ्रता करवाते जाते थे। इस तरह, ये सब वीर जाते-जाते सह्य नामक पर्वत के पास पहुँच गये। यह सैकड़ों वृक्षों से लदा हुआ था। मार्ग में ये अनेक प्रकार के फूलों से भरे हुए सरोवरों और तालावों को पाते गये। यह वानरी सेना भयङ्कर कोपवाले श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से नगरों और देशों की सीमाओं

को छोड़ती हुई, समुद्र की तरह, महाभयङ्कर शब्द से गरजती हुई चली जाती थी। जहाँ रामचन्द्र आगे बढ़ जाते थे वहाँ ये वीर वानर कूद-फाँद कर ऐसे पहुँच जाते थे जैसे घुड़सवारों से चलाये हुए घोड़े शीघ्रगामी होते हैं। उस समय दो वानरों की पीठ पर चढ़े हुए दोनों भाई राम और लक्ष्मण ऐसी शोभा पाते थे जिस तरह राहु और केतु नामक दो बड़े ग्रहों से छुए गये चन्द्र और सूर्य की शोभा होती है। इस तरह सुग्रीव और लक्ष्मण से पूजित श्रीरामचन्द्र दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। इसके बाद अङ्गद की पीठ पर सवार लक्ष्मण बोले— हे राघव! आप रावण को मार और सीता को पाकर धनधान्य-समृद्ध हो अयोध्या को शीघ्र लौटेंगे। क्योंकि आकाश और भूमि पर अनेक प्रकार के शकुन हो रहे हैं, जो आपकी अर्थसिद्धि को सूचित करते हैं। देखिए, यह मङ्गल-कारक वायु कैसा कोमल, हितकारी और सेना को सुख देनेवाला बह रहा है। ये मृग और पक्षी कैसे पूर्ण और कोमल स्वर में बोल रहे हैं। सारी दिशाएँ कैसी प्रसन्न और सूर्य कैसा विमल हो रहा है। यह निर्मल कान्तिवान् शुक्र आपके पीछे देख पड़ता है। ये प्रभा से युक्त सप्तर्षि उज्ज्वल ध्रुव की प्रदक्षिणा सी कर रहे हैं। पुरोहित के साथ ये त्रिशङ्कु राजर्षि आकाश में कैसा निर्मल प्रकाश फैला रहे हैं। हम इक्ष्वाकु वंशवालों के ये पितामह हैं। ये विशाखा नक्षत्र के, जो हमारे इक्ष्वाकुवंश का नक्षत्र कहलाता है, दोनों तारे उपद्रव-रहित होकर प्रकाशमान् हो रहे हैं। राक्षसों का यह मूल नामक नक्षत्र धूमकेतु ग्रह के द्वारा, जो दण्ड की तरह खड़ा हुआ है, अत्यन्त सन्ताप पा रहा है! हे राजन्! यह सब कुछ इन मृत्यु-ग्रस्त राक्षसों के नाश के लिए हो रहा है। क्योंकि ऐसों ही का नक्षत्र ग्रहपीड़ित होता है। देखिए, हमारे मार्ग में निर्मल और सुस्वादु जल-वाले झरने हैं, फलयुक्त वन हैं; शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चल रही है, और ऋतु के अनुसार फल-फूलों से वृक्ष लदे हुए हैं। व्यूहों में सजी हुई कपिसेनाएँ ऐसी शोभित हो रही हैं जैसे तारका सुरवाले संग्राम में देवसैन्य की शोभा हुई थी। हे आर्य! इन सबको देखकर आप प्रसन्न हूजिए।

अब सम्पूर्ण पृथ्वी को ढककर वानरी सेना चली। इनमें भालू, वानर और गोपुच्छ नामक वानर विशेष थे। ये सबके सब नख और दन्तरूपी शस्त्रों से लड़नेवाले थे। उस समय उन वानरों के हाथों और पैरों से ऐसी धूल उड़ी कि उसने सम्पूर्ण दिशाओं और सूर्य को ढक लिया। इस तरह पर्वत, वन और आकाश को आच्छादन करती हुई वह भयङ्कर वानरी सेना ऐसी शोभा पाती थी जैसे आकाश में चलती हुई मेघ-घटा शोभा पाती है। मार्ग में नदियों के सोतों को पार करके जब यह सेना जाने लगती थी तब इनके वेग से वे सोते उलटे बहते हुए से देख पड़ते थे। निर्मल जलवाली झीलों, वृक्षों से सुशोभित पर्वतों, समतल भूमि-स्थलों और फलयुक्त वनों के मध्य में, और चारों ओर तथा ऊपर और नीचे यों सारी पृथ्वी को घेरती हुई वह सेना चली जाती थी। वे सब वानर प्रसन्न-मुख हो वायुवेग से चले जाते थे और श्रीरामचन्द्र के लिए कमर कसे तैयार थे। वे हर्ष, वीर्य और अपने बल की उत्कृष्टता दिखलाते और अपने यौवन के गर्व को प्रकाशित करते चले जाते थे। उनमें कोई तो शीघ्र चलते, कोई कूदते और कोई किलकिला

शब्द करते हुए जा रहे थे। कोई पूँछों को झटकारते और पैरों को पटकते, कोई भुजाओं को फटकारते और वृक्षों को तोड़ते हुए दौड़े जाते थे। कोई पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ जाते और महानाद करते; कोई सिंह के तुल्य गरजते और अपनी जङ्घाओं के ज़ोर से कोमल लताओं को खूँदते, जँभाते और शिलाओं तथा वृक्षों से खेलते थे। उस समय लाखों और करोड़ों वानरों के झुण्डों से यह पृथ्वी भर गई।

इस तरह वह वानरी सेना हर्षित और मुदित होकर सुग्रीव के साथ रात-दिन चली जाती थी। सब वानर युद्ध करने की इच्छा से और सीता को छुड़ाने की अभिलाषा से मार्ग में कहीं भी नहीं ठहरते थे। इसके बाद वृक्षों से भरे हुए और अनेक वनों से सुशोभित सह्य पर्वत को पाकर वे सब उस पर कूदकर चढ़ गये। रामचन्द्र भी सह्य और मलय पर्वत के विचित्र जङ्गलों, नदियों और झरनों को देखते चले जाते थे। वहाँ ये वानर लोग चम्पा, तिलक, आम, अशोक, तिमिश और कनइल के वृक्षों को तोड़ते-फोड़ते चले जाते थे। इसी तरह अंकोल, करंज, पाकर, बट, तेंदू, जामुन, नागकेसर आदि का भी इन्होंने ध्वंस कर डाला। वहाँ रमणीय पत्थरों पर जमे हुए अनेक प्रकार के वन-वृक्ष वायु के वेग से अपने फूलों के द्वारा भूमि को ढक रहे थे। वहाँ पर चन्दन से शीतल और सुखस्पर्श वायु भी चल रही थी, मधु की गन्ध भी आ रही थी और भौंरे गूँज रहे थे। वह पर्वतराज धातुओं से बड़ी शोभा दे रहा था। वायु के वेग के कारण उन धातुओं से उड़ी हुई धूल वानरी सेना को ढकती जाती थी। चोटियों पर केवड़े, मेउड़ी और वासन्ती लताएँ फूली-फूली बड़ी मनोहर देख पड़ती थीं। इनकी सुगन्धि मन को ख़ुश कर रही थी। कुन्द के गुच्छे, चिरिबिल्व, महुआ, बेत, मौलसिरी, बकम, तिलक, नाग-वृक्ष, आम, गुलाब, कचनार, मुचुलिन्द, अर्जुन, शिंशपा, कोरैया, हिन्ताल, तिमिश, चूर्णक, लघु कदम्ब, नील, अशोक, देवदार, अंकोल और पद्मक इत्यादि वृक्षों को मारे आनन्द के वानरों ने उखाड़ा और नोच-नोचकर फेंक दिया। वहाँ पर रमणीय बावलियाँ और छोटी-छोटी तलैयाँ भी देख पड़ीं, जिनमें चक्रवाक, जलमुर्ग़, क्रौंच और पनडुब्बियाँ तैर रही थीं। सुअर, हिरन, भालू, चीते और बड़े-बड़े भयङ्कर सिंह शार्दूल तथा भयानक-भयानक साँप—ये सब जन्तु उन जलाशयों पर देख पड़े। लाल कमल, सुगन्धरा, कोईं, सफ़ेद कमल तथा और भी कितनी ही तरह के फूले-फूले फूल उन जलाशयों को सुशोभित कर रहे थे। उस पर्वत के शिखरों पर तरह-तरह के पक्षी शब्द कर रहे थे। वहाँ ये सब वानर स्नान और जलपान कर जलक्रीड़ा करने लगे। पर्वत पर चढ़कर ढकेला-ढकेली भी करते और अमृत के तुल्य सुगन्धित फलों, मूलों और फूलों को खाते तथा नाना प्रकार के वृक्षों को अपने बल के मद के कारण उखाड़ते जाते थे। ये द्रोण*की बराबरी के लटकते हुए शहद के छत्तों को ले-ले और निचोड़-निचोड़ पीते, हर्ष से वहाँ के वृक्षों को तोड़ते और लताओं को खींचते तथा पर्वतों को ढहाते चले जाते थे। बहुतेरे मधु से तृप्त होकर वृक्षों पर से गरजते और अनेक कूद-कूदकर वृक्षों पर चढ़ते और फिर धमाधम भूमि पर गिरते। इस प्रकार खेलते-कूदते वे मार्ग की शोभा बढ़ाते जाते थे। इन वानरों

* एक तोल का नाम।

से बिछी हुई भूमि ऐसी शोभा दे रही थी जैसी पके हुए जड़हन धान की क्यारियाँ सुहावनी लगती हैं। इस तरह रामचन्द्रजी सह्याचल और मलयाचल के पार हो महेन्द्राचल पर चढ़े। वहाँ कछुओं और मछलियों से भरा हुआ एक तालाब देखा। वहाँ से भयङ्कर गर्जना करता हुआ समुद्र देख पड़ता था। अब ये सब वहाँ से उतरकर समुद्र के किनारे-किनारे चले। उस समुद्र के किनारे पहुँच रामचन्द्रजी बोले—हे सुग्रीव! हम सब वरुणालय समुद्र पर पहुँच गये। अब यहाँ हम लोगों को वही चिन्ता फिर हुई जो पहले हुई थी। यह बढ़िया किनारेवाला, नदियों का स्वामी, बिना उपाय के किसी तरह पार जाने के योग्य नहीं है। सो यहीं ठहरकर विचार करना चाहिए जिससे यह वानरों की सेना उस पार जा सके।

महाभुज श्रीराघव ने उस महासागर का किनारा पाकर सेना के टिकाने की आज्ञा दी और सुग्रीव से कहा—"इसी किनारे पर सब सेना को ठहराओ; क्योंकि यहाँ हमको समुद्र के लाँघने का विचार करना है। कोई भी सेनापति अपनी सेना को छोड़कर कहीं न जाय; किन्तु और-और शूर-वीर वानर इधर-उधर घूमकर हम लोगों के गुप्त भय (राक्षसों की माया) की देखभाल रक्खें।" ये बातें सुनकर लक्ष्मण और सुग्रीव ने वृक्षों से शोभित उस तीर पर सेना को टिका दिया। वह सेना दूसरे समुद्र की नाईं शोभित हुई। इस तरह वे सब वानरश्रेष्ठ समुद्र के किनारे पहुँचकर पार जाने की इच्छा से वहाँ ठहर गये। उस समय वहाँ इनका इतना शोर हो रहा था कि उसके आगे समुद्र का शब्द दब गया। वह सेना तीन भागों में बँटकर वहाँ टिक गई। भालु, गोलांगूल और वानर तीन भागों में हो गये। वह सेना वायु के वेग से लहराते हुए समुद्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। ये सब वानर वहाँ ठहरे और उस समुद्र की शोभा देखने लगे जो दूरपार, निरालम्ब, राक्षसों से सेवित, बड़े-बड़े नाकें और ग्राहों के कारण भयङ्कर देख पड़ता था; और जो सायङ्काल को फेन के समूह से हँसता, तरङ्गों से नाचता, चन्द्रोदयकाल में बढ़ता और चन्द्र के अनेक प्रतिबिम्बों से भरा देख पड़ता था; और जो प्रचण्ड वायु, महाग्राह तिमि* और तिमिङ्गिलों† से पूर्ण देख पड़ता था। उस समय समुद्र के फेन, चन्द्र और दिशाओं की ऐसी शोभा हो रही थी मानो समुद्र अपने तरङ्गरूपी हाथों से फेनरूपी चन्दन रगड़ रहा हो। उस चन्दन को किरणरूपी हाथों से उठा-उठाकर चन्द्रमा दिशा-रूपी स्त्रियों के अङ्गों में लगा रहा था। बड़े-बड़े जन्तुओं और नाना पर्वतों से भरा हुआ वह समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो बड़े-बड़े साँपों से भरा हुआ पाताल हो। वह बड़ा दुर्गम, और दैत्यों के रहने का अगाध स्थान था। उसकी तरङ्गें मगरों और नागों से युक्त होकर वायु के वेग से ऊपर उछलती और बड़े शब्द से नीचे गिरती थीं। उसका जल बड़े-बड़े साँपों से भरा और चमकीला था। वह अग्निचूर्ण से मिला हुआ सा शोभा दे रहा था। उस समय समुद्र तो आकाश के तुल्य और आकाश समुद्र के तुल्य दिखाई देता था। उन दोनों में अन्तर नहीं जान पड़ता था। आकाश से तो

* एक बहुत बड़ी मछली।

† यह बड़ी मछली तिमि को भी निगल जाती है।

जल मिला हुआ था और जल से आकाश। दोनों अपूर्व शोभा दे रहे थे। उनमें तारागण रत्नों के समान चमचमा रहे थे। मेघयुक्त आकाश और तरङ्गों से भूषित सागर दोनों में कुछ अन्तर नहीं था। दोनों परस्पर मिले हुए और टकर खा-खाकर महाघोर शब्द कर रहे थे। समुद्र की लहरें ऐसा कलकल शब्द कर रही थीं मानो संग्राम के नगाड़े बज रहे हों। रत्नों से पूर्ण और तरह-तरह के जल-जन्तुओं से भरे समुद्र का जल, वायु के वेग से, ऐसा उछल रहा था मानो क्रोध से भरकर उछल रहा हो। उस समय उन महात्माओं ने इस तरह के समुद्र को ऐसा देखा मानो वह तरङ्गरूप मुखों से झूठी बकवाद कर रहा हो।

दोहा

निरखि जलधि विस्मित भये, तहँ वानर के यूथ।
बहु तरङ्ग कल्लोलमय, यादोनिकर वरूथ॥

पाँचवाँ सर्ग

सीता के लिए रामचन्द्र का विलाप करना।

वहाँ पर नील के अधिकार में वह सेना अच्छी तरह टिका दी गई। मैन्द और द्विविद दोनों, सेना के चारों ओर घूम-घूमकर, पहरा देने लगे। इस तरह जब सेना का प्रबन्ध हो चुका तब श्रीराघव लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—हे लक्ष्मण! देखो समय जैसे-जैसे बीतता है वैसे-वैसे मनुष्य का शोक घटता जाता है। परन्तु सीता के न देखने से मेरा शोक तो दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। हे लक्ष्मण! मुझे यह दुःख नहीं है कि मेरी प्रिया दूर है और न यही दुःख है कि वह हर ली गई है; मैं तो यही सोचता हूँ कि उसकी उम्र बीती जाती है। हे पवन! तुम उधर को ही बहो जिधर मेरी प्रिया है, और उसके शरीर को छूकर मेरे शरीर का स्पर्श करो। मेरे शरीर में तुम्हारा स्पर्श ऐसा होगा जैसा गरमी से व्याकुल मनुष्य की दृष्टि से चन्द्रमा का समागम होता है। हे लक्ष्मण! हरण-काल में मेरी प्रिया ने 'हा नाथ' कहा था; वह वचन मेरे शरीर को पिये हुए विष की तरह भस्म कर रहा है। उसके वियोगरूपी ईंधन से युक्त और उसकी चिन्तारूपी ज्वाला से प्रज्वलित यह कामरूपी अग्नि रात-दिन मुझे जला रहा है। लक्ष्मण! तुम यहीं रहो, मैं इस समुद्र में गोता मारकर सोऊँगा; क्योंकि यह प्रज्वलित काम मुझे जल में तो न जलावेगा! भला मुझ कामी के लिए इतना ही बहुत है कि मैं और वह (सीता), दोनों एक ही पृथ्वी पर सोते हैं। जिस तरह पानीवाली क्यारी के पास की बिना पानी की क्यारी उसकी ठण्ढक से अपने अन्न का पोषण करती है उसी प्रकार उसे जीती-जागती सुनकर मैं भी जीता हूँ। लक्ष्मण! मैं शत्रु को मारकर उस सुश्रोणी, कमलनयनी सीता को—समृद्ध राज्य-लक्ष्मी के तुल्य—कब देखूँगा; और मैं उसके बिम्बोष्ठ तथा कमल के तुल्य मुँह को हाथ से ऊँचा करके ऐसे कब पीऊँगा जैसे रोगी रसायन को पीता है? उस हँसती हुई के हिले-मिले और ताल-फल के तुल्य बड़े बड़े स्तन काँपते हुए मेरे शरीर का स्पर्श कब करेंगे? हा! वह सुन्दर नेत्रोंवाली राक्षसों के बीच में किस प्रकार रहती होगी तथा मेरे ऐसे नाथ के रहने पर भी, अनाथ की तरह, अपना कोई रक्षक नहीं पाती होगी। हा! जनकराज की पुत्री, मेरी प्यारी और

दशरथ की वह पुत्र-वधू राक्षसियों के बीच में किस तरह सोती होगी? इन अजेय राक्षसों का विध्वंस होने पर उसका उद्धार ऐसे कब होगा जैसे शरत्काल की चन्द्ररेखा नीले मेघों के फट जाने पर प्रकाशित होती है? हा! वह तो पहले से ही दुबली थी पर अब शोक तथा उपवास के कारण बिलकुल दुबली हो गई होगी। क्या कहें, यह काल की गति है। हे लक्ष्मण! रावण के हृदय को बाणों से विदीर्ण करके मैं अपने मन का शोक दूर कर सीता को कब ग्रहण करूँगा? वह देवकन्या के तुल्य पतिव्रता सीता उत्कण्ठापूर्वक मेरे गले में लिपटकर आँखों से आनन्दाश्रु कब बहावेगी? हे लक्ष्मण! मैं सीता के वियोग से उत्पन्न इस घोर शोक को, मैले कपड़े की तरह, जल्दी से कब छोड़ूँगा?

इस तरह श्रीराम विलाप कर ही रहे थे कि दिन डूब गया। लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी को समझाया। उन्होंने सन्ध्योपासन किया, पर मन में सीता का ही ध्यान करते हुए शोक से व्याकुल रहे।

छठा सर्ग

रावण का मन्त्रियों से सलाह करना।

हनुमान् ने लङ्का में ऐसा घोर और भयङ्कर कर्म किया जैसे साक्षात् इन्द्र ने ही किया हो। उसे देखकर, लज्जा से कुछ मलिनमुख हो, रावण राक्षसों से बोला—देखो, एक वानर ने लङ्का में आकर कैसी दुर्दशा की। उसने सीता को भी देख लिया। महलों को नष्ट-भ्रष्ट कर उसने अच्छे-अच्छे राक्षसों का विनाश कर डाला। लङ्का पुरी भर में हलचल मचा दी। बोलो, अब मुझे क्या करना चाहिए? तुम लोग खुद क्या करने में भलाई देखते हो? अब कोई ऐसा काम किया जाना चाहिए जिससे अपनी भलाई हो तथा जिसे हम लोग कर सकें। हे महाबली राक्षसो! देखो पण्डित लोग विजय का मूल विचार को ही मानते हैं; अच्छी तरह विचार करके तैयारी की जाय तो विजय होती है। इसलिए राम के विषय में सलाह करना मुझे ठीक जँचता है। हे राक्षसो! पुरुष तीन तरह के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। उन तीनों प्रकार के पुरुषों के गुण-दोष मैं कहता हूँ; सुनो—

जो पुरुष अच्छी सलाह देनेवाले और समर्थ मन्त्रियों के साथ अथवा बराबरी के मित्रों या वैसे ही बन्धुगणों अथवा अपने से अधिक योग्य जनों के साथ सलाह करके कार्यों का आरम्भ करता है, और भाग्य के हानि-लाभ के लिए यत्न करता है वह उत्तम पुरुष है। जो अकेला आप ही विचार करता है, धर्म में बुद्धि लगाता है और अकेला ही कार्यों को करता है, वह मध्यम है। और जो गुण-दोषों का अच्छी तरह विचार किये बिना ही दैव अथवा भाग्य की उपेक्षा करता है तथा जो 'करूँगा' ऐसा सोचकर फिर भी ढीला पड़ जाता है वह अधम पुरुष है। जिस तरह पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम होते हैं इसी तरह मन्त्र (सलाह) भी उत्तम, मध्यम और अधम हैं; उनको सुनो। जहाँ शास्त्रों के सहारे एकमत होकर मन्त्री सलाह करते हैं उसे उत्तम मन्त्र कहते हैं। जिस विचार का निर्णय करने के लिए मन्त्री अनेकमत होकर फिर एकमत हो जायँ उसे मध्यम कहते हैं; और जिस मन्त्र में सब विचार करनेवाले अपनी

अलग-अलग खिचड़ी पकावें, एकमत न हों, और एकमत होने पर भी जिसमें कल्याण होना सम्भव न देख पड़े, उस मन्त्र को अधम कहते हैं। इसलिए हे मन्त्रिश्रेष्ठो! आप अच्छी तरह सुन्दर विचार करो और विचार करके उसी काम की सिद्धि में लग जाओ। यही मुझे इष्ट है। देखो, हज़ारों वीर वानरों को साथ लेकर रामचन्द्र लङ्कापुरी में आना ही चाहते हैं। मैं यह भी कहता हूँ कि वे सुखपूर्वक सैन्य और बन्धुओं के साथ समुद्र के इस पार आ भी जायँगे। इसमें सन्देह नहीं। चाहे वे समुद्र को सुखाकर आवें अथवा पराक्रम से और ही कुछ करें। भाइयो! अब हमें बहुतों से मुक़ाबिला करना है। इसलिए सब लोग मिलजुलकर ऐसी सलाह करो जिसके अनुसार काम करने से अपनी सेना और पुरी की रक्षा हो।

सातवाँ सर्ग

मन्त्रियों का रावण को समझाना।

राक्षसेश्वर के मुँह से इतनी बात निकलते ही वे महाबली राक्षस हाथ जोड़कर रावण से बोले। ये राक्षस शत्रु-पक्ष को अच्छी तरह नहीं जानते। इन्होंने बिना ही जाने-बूझे सलाह देना शुरू कर दिया, इसलिए इनको बुद्धिहीन तथा दुर्मन्त्री कहना चाहिए। वे रावण को यों समझाने लगे—राजन्! हमारी बड़ी भारी सेना में परिघ, शक्ति, ऋष्टि, शूल और पट्ट नामक हथियार हैं। आप दुःख क्यों मान रहे हैं? आपने भोगवती नगरी में जाकर नागों को जीता है; फिर कैलास पर जाकर यक्षों को मार कुवेर को अपने वश में किया। वह तो शिव का मित्र होने के कारण बड़ी प्रशंसा के योग्य लोकपाल था, सो आपने क्रोध में भरकर उसको भी जीत ही लिया। यक्षों को गिराकर, कँपाकर और अपने दण्डों से उन्हें हीन करके आप कैलास से इस विमान को हर लाये। दैत्यराज मय ने, डर के मारे, मैत्री करने के लिए अपनी बेटी आपको ब्याह दी; और कुम्भीनसी के पति मधु नामक दैत्य—जो बहादुरी के कारण मस्त और दुर्द्धर्ष था—को भी आपने विग्रह करके वश में कर लिया। राजन्! आपने रसातल में जाकर नागों को जीता और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वासुकि, तक्षक, शङ्ख और जटी नागों को अपने वश में किया। अक्षय, बलवन्त, शूर और वर पाये हुए अन्य दानवों को वर्ष भर लड़ाई करके आपने अपने बल से क़ाबू में कर लिया। हे राक्षसाधिप! बहुत माया जाननेवाले राक्षसों को और वरुण के उन पुत्रों को, जो बड़े बहादुर और चतुरङ्गिणी सेना के स्वामी थे, आपने जीता। मृत्युदण्डरूपी बड़े भारी मगर से युक्त, शाल्मली वृक्ष से शोभित, कालपाशरूपी महातरङ्ग से उछलते हुए, यम के किङ्कररूपी सर्पों के कारण भयङ्कर और महाज्वर से दुर्द्धर्ष यमलोकरूपी महासमुद्र में गोता लगाकर आपने बड़ी भारी विजय पाई और मृत्यु की गति फेर दी। वहाँ पर बड़ी लड़ाई करके आपने सबके छक्के छुड़ा दिये। स्वामिन्! बहुत से वीर क्षत्रिय ऐसे थे जो इन्द्र के तुल्य पराक्रमी थे और जिनसे यह पृथ्वी, बड़े-बड़े वृक्षों की भाँति, पूर्ण थी। उनके पराक्रम, गुण और उत्साह ऐसे थे कि रामचन्द्र उनको कभी न पा सकें। परन्तु आपने उनको भी बल-

पूर्वक मार लिया। महाराज! आप चुपचाप बैठे रहिए; आपको परिश्रम करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। ये इन्द्रजित् अकेले ही वानरों को मार लेंगे; क्योंकि इन्होंने अत्युत्तम माहेश्वर यज्ञ करके परम दुर्लभ वर पाया है। इन्होंने देवताओं के सैन्यरूपी महासमुद्र में घुसकर देवराज को पकड़ लिया और लङ्का के क़ैदख़ाने में डाल दिया। उस लड़ाईरूपी महासमुद्र में शक्ति-तोमररूपी मत्स्य, बिखरी हुई आँतेंरूपी सेवार, हाथीरूपी कच्छप, घोड़ेरूपी मेंढक, रुद्र-आदित्यरूपी महाग्राह, मरुत्-वसुरूपी महासर्प, रथ-अश्व-गजरूपी तूफ़ानी जल और पैदलरूपी महाटापू थे। ब्रह्मा के कहने से वह शम्बर और वृत्र को मारनेवाला इन्द्र छोड़ दिया गया और वह स्वर्ग की राजधानी में चला गया। इसलिए महाराज! उन्हीं इन्द्रजित्—अपने पुत्र—को आज्ञा दीजिए। वे वानरी सेना सहित राम का नाश कर देंगे। राजन्! इस विषय में आपका चिन्ता करना व्यर्थ है; क्योंकि यह विपत्ति क्षुद्र मनुष्यों के कारण हमारे ऊपर आई है, इसलिए इसे आप मन में भी न लाइए। आप रामचन्द्र को अवश्य मारेंगे।

आठवाँ सर्ग

रावण के वीरों का डींग मारना।

इसके बाद काले बादलों की सी रङ्गत का प्रहस्त नामक सेनापति राक्षस हाथ जोड़कर बोला—राजन्! जब हम लोग देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी, और नागों को नीचा दिखला सकते हैं तब वानरों की क्या बात है! हनुमान् ने तो हम लोगों को हमारी असावधानी में नीचा दिखलाया था। हम लोग समझते थे कि यह छोटा सा वानर हमारा क्या कर सकेगा। यदि हम लोग सावधान होते तो क्या वह वनपशु यहाँ से जीता-जागता चला जाता! आप आज्ञा दीजिए तो मैं सागर, पर्वत, वन और जङ्गल सहित इस भूमि पर एक भी वानर न रहने दूँ। राजन्, मैं वानरों से राक्षसों की रक्षा करूँगा और सीता-हरणरूप अपराध से आपको दुःख न मिलेगा।

अब दुर्मुख नामक राक्षस क्रोध करके बोला—भाइयो! हनुमान् का काम क्षमा करने योग्य नहीं। देखो, उसने नगर के अन्तःपुर की और राक्षसेन्द्र रावण तक की बात नीची कर दी। इसलिए मैं इसी समय जाकर वानरों को रोकूँगा और उस काम का बदला दूँगा। वे वानर समुद्र में, आकाश में, रसातल में या चाहे जहाँ जा छिपें पर मैं उनको अवश्य मारूँगा।

फिर मांस और रक्त से सना हुआ भयानक परिघ हाथ में लेकर वज्रदंष्ट्र, क्रोधित होकर, कहने लगा—सुनो जी, जब तक वह दुर्द्धर्ष राम, सुग्रीव और लक्ष्मण वर्तमान हैं तब तक हमको उस दीन तपस्वी हनुमान् वानर से क्या काम है? मैं आज ही अपने परिघ से उन्हें मारकर वानरी सेना को भगा आऊँगा। राजन्! मैं एक बात और कहता हूँ, उसे आप सुनिए। जो उपाय करने में चतुर और आलस्यरहित होता है वही शत्रु को जीत लेता है। इसलिए इस विषय में यह उपाय कर्तव्य है कि कामरूपी, शूर, भयङ्कर आकारवाले और राक्षसराज के आज़माये हुए एक हज़ार राक्षस, मनुष्य का रूप बनाकर, रामचन्द्र के पास जावें;

और निडर होकर यह कहें कि हमें तुम्हारे छोटे भाई भरत ने यहाँ भेजा है। उन्होंने हमारे द्वारा आपको यह सन्देश भेजा है कि हम सेना लेकर अभी आते हैं। जब तक यह बातचीत हो तब तक हम लोग शूल, शक्ति, गदा, धनुष-बाण और तलवार लेकर जल्दी आ पहुँचेंगे और आकाश से ही पत्थरों और शस्त्रों की महावृष्टि कर वानरी सेना को कुचलकर मार डालेंगे। ऐसा करने पर जहाँ वे दोनों भाई हमारी अनीति के जाल में फँसे तहाँ हमारे छल-पूर्वक घात करने से मारे ही जायँगे।

इसके बाद कुम्भकर्ण का बेटा निकुम्भ राक्षस बोला—आप लोग बैठे-बैठे तमाशा देखें। मैं अकेला ही राम और लक्ष्मण को मार दूँगा और सुग्रीव, हनुमान् तथा सब वानरों को भी ले डालूँगा।

अब पर्वताकार वज्रहनु राक्षस क्रोध में भरकर होठों से अपनी जीभ को चाटता हुआ बोला—आप लोग चिन्ता छोड़कर अपने-अपने काम कीजिए। मैं अकेला उस वानरी सेना को खा डालूँगा। आप लोग शोक-रहित हो, सावधानी से वारुणी (शराब) मधु पियें और विहार करें। मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद और हनुमान् आदि वानरों को मार गिराऊँगा।

नवाँ सर्ग

विभीषण का रावण को समझाना।

अब निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्द्धर्ष, रश्मिकेतु, रावण का महाबली पुत्र इन्द्रशत्रु, प्रहस्त, विरूपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुम्भ और दुर्मुख ये सब राक्षस परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, शक्ति, परश्वध, धनुष-बाण और तलवार आदि शस्त्र ले-लेकर और कूद-कूदकर तेज से जलते हुए की नाईं हो यही कह रहे थे कि आज राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और उस दुर्बल हनुमान् को मारेंगे जिसने कि लङ्का की दुर्दशा कर डाली है। इतने में इन शस्त्रधारियों और झूठी बकवाद करनेवालों को रोककर और बैठाकर विभीषण रावण के पास आ हाथ जोड़कर कहने लगा—हे तात! पण्डित लोग कहते हैं कि जहाँ तीन उपायों से काम न किया जा सके वहीं पराक्रम करना ठीक है। हे तात! जिनका चित्त ठिकाने नहीं, जो दूसरे-दूसरे कामों में लगे हुए हैं और जो रोगादि दैवी विपत्तियों से घिरे हुए हैं उन पर पराक्रम से काम की सिद्धि होती है। सो भी यदि परीक्षा-पूर्वक किया जाय। पराक्रम यदि विधि से न किया जाय तो काम ठीक नहीं बनता। आप लोग जिसके विषय में विचार कर रहे हैं वह सावधानी से विजय के लिए कमर कसे हुए सेना लेकर तैयार है। वह क्रोध-रहित तो है किन्तु दुराधर्ष भी है। उसको जीत लेना कठिन है। ऐसे की प्रधर्षणा—अनादर—आप किस तरह करना चाहते हैं? भला, पहले आप यही सोचिए कि ऐसे घोर समुद्र को लाँघकर हनुमान् इस पार आ सकेगा—यह कौन जानता या जान सकता था? उन लोगों के पराक्रम परिमित नहीं हैं; उनकी सेना भी बहुत है। हे निशाचर! इस तरह एकाएकी शत्रुओं का अनादर न करना चाहिए। और भी सुनो। हम पूछते हैं कि राम ने राक्षसराज का क्या अप-

राध किया था, जो ये उस बेचारे यशस्वी की स्त्री को जनस्थान से उठा लाये और अपने घर में ला रक्खा? खर को जो राम ने मारा तो क्या बेजा किया? क्योंकि वह इनका तिरस्कार करना चाहता था। ऐसा करने से ही उन्होंने वैसा किया; क्योंकि जीवधारी को अपने बल के अनुसार अपनी प्राण-रक्षा करनी ही चाहिए। भाइयो! इसलिए यह वैदेही (सीता) हमारे लिए भयरूपा है। हमको तो इसी का परित्याग करना चाहिए। व्यर्थ कलह करने से क्या लाभ होगा? पराक्रमी धर्मात्मा राम से निरर्थक वैर करना भी हमको उचित नहीं; इस-लिए सीता को दे डालो। जब तक उन्होंने, घोड़े-हाथियों से और बहुरत्नों से भरी हुई इस लङ्का को बाणों से विदीर्ण नहीं किया है, उससे पहले ही उनको सीता दे देनी चाहिए। जब तक वह भयङ्कर वानरी सेना हमारी लङ्का पर आक्रमण नहीं करती उसके पहले ही सीता उनके सिपुर्द कर देनी चाहिए। यदि सीता न दी जायगी तो लङ्का और सब राक्षस नष्ट हो जायँगे; क्योंकि वह राम को अत्यन्त प्यारी है। राजन्! आप मेरे भाई हैं, इसलिए मैं आपको प्रसन्न कर रहा हूँ और आपके लिए हितकारी सत्य वचन कह रहा हूँ। आप सीता को ज़रूर लौटा दीजिए। राजन्! जब तक रामचन्द्र आपके मारने के लिए सूर्य की किरणों के समान चमकीले, नई पुङ्खवाले, बड़े मज़बूत अचूक बाणों को नहीं छोड़ते उसके पहले ही सीता उनको दे डालिए। सुख और धर्म का नाश करने-वाले अपने क्रोध को आप छोड़ दीजिए और धर्म का आचरण कीजिए जो प्रीति और कीर्ति को बढ़ाता है। आप प्रसन्न होकर सीता को यहाँ से बिदा कीजिए जिससे परिवार-सहित हम लोग जीते बच जायँ।

विभीषण की ऐसी बातें सुनकर रावण ने बिना कुछ उत्तर दिये ही लोगों को बिदा कर दिया और आप अपने भवन को चला गया।

दसवाँ सर्ग

फिर विभीषण का रावण को समझाना और रावण का न मानना।

दूसरे दिन सबेरे, धर्म और अर्थ का निश्चय करनेवाले विभीषण राक्षसराज के भवन में गये। वह भवन पर्वत की चोटियों के समान बड़ा और ऊँचा था। उसमें अच्छी-अच्छी डेवढ़ियाँ थीं। वह महाजनों से भूषित और बुद्धिमान् तथा प्रेमी मन्त्रियों से पूर्ण था। हितकारी और पूर्ण-मनोरथ-वाले राक्षस उसके रक्षक थे। वह मस्त गजेन्द्रों के श्वास लिये हुए वायु से भरा रहता था तथा शङ्ख और नगाड़ों के शब्दों से गूँजता रहता था। उसमें बहुत सी स्त्रियाँ थीं। राजमार्ग में बातचीत से चहल-पहल मची हुई थी। वह सोने से बना हुआ और मस्त हाथियों से शोभित था। वह अच्छे-अच्छे आभूषणों से खचित और गन्धर्वों तथा देवताओं के घरों की तरह उत्तम रत्नों के सञ्चय से पूर्ण था। ऐसा जान पड़ता था मानो नागों का घर हो। इस तरह के राजभवन में तेजस्वी विभीषण, मेघजाल में सूर्य की तरह, जा पहुँचा। वहाँ वैदिक लोग पुण्याह-वाचन के मन्त्रों को इसलिए पढ़ रहे थे जिससे भाई की विजय हो। उन्हें विभीषण ने सुना। वहाँ

दधिपात्र, घृतपात्र, फूल और अक्षतों से पूजित बहुत से वेदज्ञ ब्राह्मणों को भी उसने देखा। इसके बाद विभीषण ने राक्षसों से आदर पाकर जाते ही सिंहासन पर बैठे हुए तेज से प्रज्वलित अपने बड़े भाई रावण को प्रणाम किया। फिर राजा की आँख के इशारे से बताये हुए सुवर्णभूषित आसन पर आचार के नियमानुसार वह बैठ गया। एकान्त पाकर, मन्त्रियों के पास, राजा को प्रसन्न देखकर सान्त्वना-पूर्वक समयानुसार और देश-काल के अनुकूल विभीषण ने कहा—हे परन्तप! जब से यहाँ सीता आई है तब से हम सबको रोज़ बुरे लक्षण देख पड़ते हैं। चिनगारियों और धुएँ के साथ आग की उत्पत्ति मैली दिखाई पड़ती है। मन्त्रों से हवन की हुई आग अच्छी तरह फूटकर ज्वाला नहीं देती। पाकगृहों, अग्निशालाओं और वेदाध्ययनशालाओं में रोज़ साँप दिखलाई देते हैं। होमद्रव्यों में चिउँटियाँ पाई जाती हैं। गौओं के दूध सूख गये। हाथी मदरहित हो गये। घोड़े दीनता धारण किये हुए हिनहिनाते और अपने खाद्यद्रव्यों से तृप्त न होकर नई-नई घास चाहते हैं। गदहे, ऊँट और खच्चर आदि पशु रोमाञ्चित और रोते हुए दिखाई देते हैं। दवा करने पर भी वे अपनी पूर्व की रीति और स्वभाव पर नहीं आते। चारों ओर से इकट्ठे होकर कौए काँव-काँव करते हैं और अटारियों पर इकट्ठे बैठे देख पड़ते हैं। बहुत से गीध दुखी होकर नगर में गिर पड़ते हैं, बैठ जाते हैं। नगर के चारों ओर गिदड़ियाँ अमङ्गल शब्द से चिल्लाती हैं और नगर के दरवाज़ों के ऊपर मांसभोजी जीवों के एक साथ चिल्लाने की आवाज़ सुनाई पड़ती है। हे वीर! इन अशुभों के लिए यही प्रायश्चित्त है कि आप रामचन्द्र को सीता सौंप दीजिए। मुझे तो यही पसन्द है। यदि मैं इस बात को लोभ के कारण या मोह से कहता होऊँ तो भी आप इसमें दोष न मानिए; क्योंकि यह दोष इन नगरनिवासियों, राक्षस-राक्षसियों, नगरी और अन्तःपुर का है। आपके मन्त्रियों ने यह समाचार आप तक नहीं पहुँचाया। परन्तु मुझे तो यह आप तक ज़रूर पहुँचाना चाहिए था; क्योंकि मैंने इसे देखा और सुना है। इसलिए आप न्यायानुसार इसका सोच-विचार कर जैसा उचित जान पड़े, वैसा कीजिए।

विभीषण की हितकारी, बड़े-बड़े मतलबों से भरी हुई, कोमल, हेतुयुक्त और तीनों कालों में लाभदायक बातों को सुनकर राक्षसराज रावण बहुत दुखी हो कहने लगा—देखो, मैं तो इस बात में कहीं से भी डर नहीं देखता और रामचन्द्र कभी सीता को नहीं पा सकते। इन्द्र सहित सब देवताओं को साथ लेकर भी यदि वे मेरा सामना करना चाहें तो भी नहीं कर सकते।

महाबली, देवसेना के नाशक और संग्राम में घोर पराक्रम करनेवाले रावण ने इस तरह कहकर विभीषण को वहाँ से बिदा किया।

ग्यारहवाँ सर्ग

बड़ी धूमधाम से रावण का सभा में जाना और वहाँ सब शूरों का इकट्ठा होना।

सीता के काम से मोहित होने, और सुहृदों के अनादर से रावण का शरीर दुबला होने लगा। अपने पापों से पापी की ऐसी ही दशा होती

है। वह काम से अत्यन्त पीड़ित हो सीता का ध्यान किया करता है और बेमौक़े मन्त्रियों तथा मित्रों के साथ विचार करके युद्ध करना ही उसने उचित समझा। सोने की जालियों से शोभित, मणि और भूषणों से भूषित, शिक्षित घोड़ों से जुते हुए और बड़े-बड़े बादलों के तुल्य शब्द करते हुए अच्छे रथ पर चढ़कर वह सभा की ओर चला। उसके साथ ढाल, तलवार और सब तरह के शस्त्र धारण करनेवाले आगे-आगे चले और अनेक विकराल रूपवाले तथा अनेक भूषण पहने बहुत से राक्षस उसके अगल-बगल में और पीछे घेरकर चले। इसके बाद महारथी लोग शीघ्रता-पूर्वक रथों और मतवाले हाथियों पर तथा खेल-कूद करनेवाले घोड़ों पर सवार हो-होकर उसके साथ हो लिये। इन लोगों के हाथों में गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, परश्वध और शूल आदि शस्त्र थे। हज़ारों नगाड़ों और महाघोर शङ्खों की आवाज़ें होने लगीं। इसके बाद रथ के शब्द से गुञ्जायमान रमणीय राजमार्ग में रावण जल्दी जा पहुँचा। उसके माथे पर निर्मल सफ़ेद छत्र चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान हो रहा था। उसके दायें-बायें सोने की मञ्जरी से भूषित और स्वच्छ दण्ड से बने हुए दो चमर और व्यजन मौजूद थे। उस समय राक्षस लोग पृथ्वी पर ख़ड़े हो, हाथ जोड़कर, उसको प्रणाम करने लगे। राक्षसों के द्वारा स्तुतिपाठ सुनता और स्थान-स्थान पर जय के आशीर्वाद पाता हुआ वह राक्षसेन्द्र सभा में पहुँच गया। वह सभास्थान सोने-चाँदी से बिछा हुआ था। उसमें बीच-बीच में स्फटिक जड़े हुए थे। उसमें सोने के तारों का काम था। उसमें पट्टवस्त्र बिछे हुए थे, छः सौ पिशाच उसकी रक्षा कर रहे थे। उसमें विश्वकर्मा के हाथ की कारीगरी थी। वहाँ जाकर वह पन्नों से बने हुए आसन पर बैठ गया। उस पर प्रियक मृग का नर्म चमड़ा बिछा हुआ था। उसने दूतों को बुलाकर आज्ञा दी—"जाओ, राक्षसों को बुला लाओ। मुझे शत्रुओं के साथ बड़ा काम करना है।" राजा की आज्ञा पाकर वे दूत लङ्का के प्रत्येक घर में जा-जाकर राक्षसों को रावण की आज्ञा सुनाने लगे। वे लोग राजा की आज्ञा पाते ही कोई तो रथों पर, कोई घोड़ों पर, कोई हाथियों पर और कोई पैदल ही फुर्ती से राजसभा में जाने की तैयारी करने लगे। उस समय वह नगरी रथों, हाथियों और घोड़ों से ऐसी शोभा पा रही थी जैसे गरुड़ों से आकाश शोभा पाता है।

वे राक्षस सवारियों पर सवार हो-होकर सभा के द्वार पर पहुँचे और अपनी-अपनी सवारियाँ बाहर छोड़कर सभागृह में ऐसे चले गये जैसे पर्वत की गुफाओं में सिंह घुस जाते हैं। उन्होंने राजा को प्रणाम किया। उससे आदर पाकर कोई चौकी पर, कोई आसन पर और कोई ज़मीन पर ही बैठ गये। इस तरह, राजा के हुक्म से, वे सब इकट्ठे हो गये। उनमें अच्छे-अच्छे मन्त्री, सब विषयों के पण्डित और गुणज्ञ, सर्वज्ञ तथा बड़े बुद्धिमान् इकट्ठे हुए। उनमें बहुत से शूरवीर थे। उस सुवर्ण-भूषित रमणीय सभा में अच्छे रथ पर चढ़कर विभीषण भी जा पहुँचे। इसमें सब कामों का निश्चय करने के लिए और लोगों को सुख पहुँचाने के लिए झुण्ड के झुण्ड राक्षस पहले से ही इकट्ठे हुए थे। उन्होंने अपना नाम लेकर राजा को प्रणाम किया। शुक और प्रहस्त भी वहाँ

पहुँचे। उन्होंने भी उसी तरह राजा को प्रणाम किया। राजा ने सबको बैठने के लिए अलग-अलग आसन दिया। वहाँ सोने के और अनेक तरह के मणिभूषण पहने हुए जो राक्षस बैठे थे उनके शरीरों में अगर और चन्दन लगे हुए थे; उनकी सुगन्ध और मालाओं की ख़ुशबू सभा-मण्डप भर में महकने लगी। वहाँ न तो कोई किसी को बुलाता, न कोई व्यर्थ बकवाद करता और न कोई ज़ोर से बातचीत ही करता था। सब पूर्णमनोरथ और बड़े पराक्रमी थे। वे केवल अपने स्वामी के मुँह की ओर देख रहे थे। उस समय शस्त्रधारियों और बड़े पराक्रमियों के बीच में रावण की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे आठ वसुओं के बीच में इन्द्र की होती है।

बारहवाँ सर्ग

मन्त्रियों का विचार।

रावण ने उस सभा को अच्छी तरह देखकर प्रहस्त नामक सेनापति से कहा—हे सेनापते! सेना में चार तरह के योधा हैं—रथ पर चढ़नेवाले, हाथी पर बैठनेवाले, घुड़सवार और पैदल। इन चारों तरह के लोगों को, नगर की रक्षा करने के लिए, तुम ठीक-ठीक तैनात कर दो।

आज्ञा पाते ही, सब ठीक-ठाक करके, राजा के पास प्रहस्त आ बैठा और कहने लगा—आपके आज्ञानुसार मैंने बाहर और भीतर सेना नियत कर दी है। अब जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए।

प्रहस्त की बात सुनकर राज्य के हितैषी लोगों से रावण अपने सुख की चाहना से बोला—भाइयो! सङ्कट के समय प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, हानि-लाभ, हित-अहित, धर्म-अर्थ और काम की सब बातें तुम लोग जानते हो। तुमने सदा बड़े-बड़े कामों का आरम्भ किया जो कि मन्त्रों के द्वारा निश्चित किये गये थे। वे कभी निष्फल नहीं हुए। सोम, ग्रह और नक्षत्रों सहित देवताओं से घिरे हुए इन्द्र की तरह तुम्हारे द्वारा मैं बहुत लक्ष्मी पा सकता हूँ। मैं सब तरह के कामों में तुम लोगों की राय लेना चाहता था पर कुम्भकर्ण की नींद के मारे मैं इस बात को प्रकट न कर सका। यह महाबली कुम्भकर्ण छः महीने बाद अब सोकर उठा है। वह यहाँ पर मौजूद है। अब मैं उस बात को प्रकट करना चाहता हूँ। बात यह है कि जनकराज की पुत्री, राम की प्यारी पटरानी सीता को मैं दण्डकारण्य में स्थित राक्षसों की बस्ती से उठा लाया था। वह मेरी सेज पर नहीं सोना चाहती। तीनों लोकों में उसके बराबर मुझे कोई स्त्री दिखलाई नहीं पड़ती; क्योंकि उसकी पतली कमर है, मोटी-मोटी जङ्घाएँ हैं, शरदृतु के चन्द्रमा का सा उसका मुखड़ा है, सोने का सा रङ्ग है। वह मय के द्वारा बनाई हुई माया के समान मोहिनी है। उसके पैरों के तलुए लाल, चिकने और बड़े प्रशंसनीय हैं। वे लाल नाख़ूनों से सजे हुए हैं। उन्हें देख-देखकर मेरा काम अत्यन्त जाग्रत् हो रहा है। सीता हवन की हुई जलती आग और सूर्य की प्रभा की तरह है। इसके सुन्दर विमल मुँह को देखकर मैं विवश हो काम के वश हो गया हूँ। वह मुख ऊँची नासिका और मनोहर नेत्रों से शोभित है। काम के वशीभूत होने से इस समय मेरी ऐसी दशा हो गई है कि क्रोध और हर्ष मेरे लिए समान हो रहे हैं।

मेरे शरीर का रङ्ग बदलकर कुछ और ही हो गया है। शोक और सन्ताप से मैं दुखी हो रहा हूँ। उस भामिनी ने रामचन्द्र की प्रतीक्षा करने के लिए मुझसे एक वर्ष की मुहलत माँगी है। मैं स्वीकार कर चुका हूँ, पर निरन्तर काम की पीड़ा से मैं ऐसा थक गया हूँ जैसा रास्ते का चला हुआ घोड़ा थक जाता है। अब मैं सोच रहा हूँ कि वे वानर, और दशरथ के दोनों बेटे जलजीवों से पूर्ण इस अथाह समुद्र को किस तरह पार कर सकेंगे। मैं यह भी सोचता हूँ कि उस एक ही वानर ने हमारी बड़ी हानि कर डाली थी। भाइयो! कामों की गति का समझना बड़ा कठिन है। तुम अपनी-अपनी बुद्धि और बल के अनुसार कहते जाओ, हम सुनते हैं। यद्यपि हमको मनुष्य से डर नहीं है तो भी विचार करना ही चाहिए। देखो, देवासुर-संग्राम में मैंने तुम्हारे साथ विजय ही पाई थी। तुम लोग वही अब भी हो; दूसरे नहीं। मैंने सुना है कि सुग्रीव आदि वानर और वे दोनों वीर समुद्र के उस पार आ गये हैं। सीता को तो किसी प्रकार देना है नहीं; हाँ, उन्हें मारना ज़रूर है। इस विषय में तुम लोग विचार करो और निश्चित बात कहो। मैं तो किसी दूसरे की, यहाँ तक कि इन्द्र आदि बड़े-बड़े राजाओं की भी, शक्ति ऐसी नहीं देखता कि वे वानरों के साथ समुद्र के इस पार आ सकें और मुझे जीत लें।

काम-पीड़ित रावण का इस तरह झींखना सुन कुम्भकर्ण क्रोधित होकर बोला—राजन्! जब आप उनकी स्त्री सीता को ज़बरन् उठाकर यहाँ ले आये थे उससे पहले एक बार भी आपने इस विषय में कुछ विचार करके निश्चय किया था? उस समय आपको हम लोगों की राय ज़रूर ले लेनी थी, जैसे यमुना जब पृथ्वी पर आती है तब पहले अपने यामुन नामक हृद को भरती है, पीछे समुद्र से मिलती है। सो उस समय तो आप अपने मन की कर बैठे; और जब अनर्थ का समय आया तब हमसे राय लेते हैं; हे महाराज! यह काम आपने अनुचित किया है। भला किया सो तो किया, पर पहले हम लोगों से आपने पूछा क्यों नहीं? हे दशानन! जो राजा न्यायपूर्वक काम करता है उसे न तो पीछे पछताना ही पड़ता है और न दुःख ही सहना पड़ता है; क्योंकि शास्त्रानुसार वह अपनी बुद्धि से उस बात का निश्चय कर लेता है। परन्तु उपायरहित अथवा विपरीत सब काम बुरे हैं। ऐसे काम उसी तरह दूषित माने गये हैं जैसे कि अभिचार-कर्मों में असावधानी से दी हुई अग्नि की आहुति। जो राजा पहले करने योग्य कामों को पीछे और पीछे करने योग्य कामों को पहले कर डालता है वह नीति और अनीति नहीं समझता। जो मनुष्य स्वभाव से चपल होता है, उसके कामों में शत्रु लोग इस तरह दोष ढूँढ़ा करते हैं जिस तरह क्रौञ्च पर्वत के छिद्र को हंस देखते हैं। राजन्! आपने बिना समझे-बूझे यह बड़ा भारी काम आरम्भ कर दिया। यह बड़ी अच्छी बात हुई कि राम ने अभी तक आपको उस तरह मार नहीं डाला जिस तरह विष-मिश्रित मांस प्राणी को मार डालता है। शत्रुओं के साथ आपने यह विलक्षण काम कर रक्खा है। अच्छा, मैं आपके शत्रुओं को मारकर इसे ठीक करूँगा। हे निशाचर! मैं आपके शत्रुओं को उच्छिन्न कर दूँगा। यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि और वायु भी आवें तो भी मैं

उनसे लड़ूँगा; कुवेर और वरुण को भी कुछ न समझूँगा। देखो, पर्वताकार मेरा शरीर है, परिघ मेरा शस्त्र है और तीखे-तीखे मेरे दाँत हैं। जब मैं गरजता हुआ युद्ध में खड़ा हूँगा तब इन्द्र भी डर जायँगे। जो मुझे एक बाण मारकर दूसरा मारने लगेगा तब तक मैं उसका ख़ून पी लूँगा। हे रावण! आप अपने मन को ठीक-ठीक समझाओ। दशरथ के पुत्र को मारकर सुख देनेवाली जय मैं आपको दूँगा। उसके लिए यत्न करूँगा, और दोनों भाइयों को मारकर सब वानर यूथपतियों को खा जाऊँगा। आप विहार करें; वारुणी (शराब) पियें; दुःख छोड़ दें और अपने हित-कार्यों को करें। राम के मारे जाने पर, अन्त समय में, सीता आपके वश में हो जायगी।

तेरहवाँ सर्ग

राक्षसों का, पहले की तरह, प्रलाप करना और रावण का ज़बरन् पर-स्त्री-गमन में शाप पाने का समाचार कहना।

रावण को क्रोधित देख महापार्श्व राक्षस मुहूर्त्त भर सोचकर हाथ जोड़े हुए बोला—हे महाराज, जिस वन में मृग और साँप रहते हैं उसमें जो मनुष्य मधुपान नहीं करता वह मूर्ख है। हे शत्रुनाशिन्! आप ईश्वर हैं। अब आपका ईश्वर और कौन हो सकता है? आप शत्रुओं के मस्तकों को विदीर्ण करके वैदेही के साथ विहार कीजिए। हे महाबल! आप सीता के साथ मुर्ग़ की तरह बर्ताव कीजिए और भोग-विलास कीजिए। जब आपका मनोरथ सिद्ध हो जायगा तब आपको डर ही क्या है? पीछे जब कोई कार्य-अकार्य आ पड़ेगा तब देखा जायगा। मौके पर जैसा होगा वैसा देखा जायगा। कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् दोनों हमारे साथ वज्रधारी इन्द्र को भी रोक सकते हैं; दूसरे की बात ही क्या है। चतुर लोगों ने शत्रु को वश में करने के लिए साम, दान और भेद—ये तीन उपाय नियत किये हैं। मैं, इन तीनों को छोड़कर, केवल दण्ड के ही द्वारा अपना काम पूरा करना चाहता हूँ। हे महाबल! जब आपके शत्रु यहाँ आ जायँगे तब हम लोग उनको अपने शस्त्र के ही प्रताप से वश में कर लेंगे; इसमें सन्देह नहीं।

महापार्श्व की बातें सुनकर रावण उसकी बातों का समर्थन करता हुआ बोला—हे महापार्श्व! मैं अपना पुराना समाचार सुनाता हूँ। वह अभी तक किसी को मालूम नहीं। बहुत दिनों की बात है कि पुञ्जिकस्थली नामक अप्सरा ब्रह्मलोक में जाती थी। वह आग की लौ की तरह चमक रही थी। मैंने उसे देखा, पर वह मुझे देखते ही डर गई; किन्तु काम के वशीभूत होकर मैंने उसके साथ ज़बरन् भोग किया। उसे मैंने वस्त्ररहित कर डाला। पीछे वह, मलो हुई कमलिनी की तरह, वेश बनाकर पितामह के घर गई। यद्यपि उसने ब्रह्मा को मेरा अपराध नहीं बतलाया तथापि मैं समझता हूँ कि उन्होंने उसके चेहरे से वह बात जान ली। उस समय ब्रह्मदेव क्रोधित होकर मेरे विषय में बोले कि 'हे रावण! आज से यदि तू दूसरे की स्त्री के साथ ज़बरन् भोग करेगा तो तेरे सिर के सौ टुकड़े हो जायँगे।' इसी से मैं ऐसे शाप से डर रहा हूँ और सीता को ज़बरन् अपनी सेज पर नहीं

ले जाता। देखो, समुद्र की तरह मेरा वेग और वायु की तरह मेरी गति है। वह दशरथ का पुत्र क्या इस बात को नहीं जानता, जो मुझ पर चढ़ाई करना चाहता है? पर्वत की कन्दरा में सोये हुए, मृत्यु के तुल्य, क्रोधित सिंह को कौन मनुष्य जगाना चाहता है? मेरे हाथ से छूटे हुए, दो जीभवाले साँपों की तरह, बाणों को राम नहीं देखते जो मुझ से भिड़ना चाहते हैं! देखो, वज्र के तुल्य और धनुष से सौ तरह से छूटनेवाले अपने बाणों से मैं राम को ऐसे भस्म कर दूँगा जैसे आग की चिनगारियों से कोई हाथी को भस्म कर दे। मैं अपनी सेना लेकर उनकी सेना को इस तरह दबा लूँगा जिस तरह सूर्य अपनी प्रभा से नक्षत्रों की प्रभा को दबा लेता है। देखो, न तो मुझे इन्द्र जीत सकते हैं और न वरुण। मैंने अपने बाहु-बल से इस पुरी को कुबेर से छीन लिया है।

चौदहवाँ सर्ग

न्यायमार्गानुसार विभीषण का उपदेश करना।

इस तरह रावण की बातें और कुम्भकर्ण की गर्जना सुनकर विभीषण ने राक्षसराज से कहा—राजन्! यह सीतारूपी महासर्प आपके गले में किसने लपेट दिया है? इस महासर्प की भुजाओं का अन्तर अर्थात् हृदय भाग ही इसके शरीर की विशालता है। इसमें चिन्तारूप महाविष है, थोड़ा हँसनारूप तीखी डाढ़ें हैं और पाँच अङ्गुलिरूप पाँच मस्तक हैं। इससे जब तक पर्वत-सदृश बड़े-बड़े, दन्त और नखरूप आयुधवाले वानर इस लङ्कापुरी पर चढ़ नहीं दौड़े हैं तब तक राम को सीता दे डालो। भाई! जब तक वज्र के तुल्य और वायु के समान वेगवाले राम के बाण राक्षसों के सिरों के टुकड़े-टुकड़े नहीं कर देते तब तक सीता को लौटा दो। राजन्! कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय, इनमें से कोई भी ऐसा समर्थ नहीं जो संग्राम में राम को रोक सके। तू जीते जी राम से न छूटेगा। तेरे रक्षक चाहे सूर्य हों और चाहे देवता, तू चाहे इन्द्र की गोद में जाकर बैठ या मृत्यु की, चाहे आकाश में जाकर छिप चाहे पाताल में, पर राम से तेरा बचना कठिन है।

विभीषण की ऐसी बातें सुनकर प्रहस्त बोला—न हमको देवताओं से डर है और न दैत्यों से। संग्राम में यक्ष, गन्धर्व, महानाग और पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ से भी हम नहीं डरते, फिर एक राजपुत्र राम से हमको किस तरह भय होगा?

प्रहस्त की ये अहितकर बातें सुनकर धर्म, अर्थ और काम के विषयों को ख़ूब समझनेवाले राजहितैषी विभीषण ने कहा—हे प्रहस्त! देखो राजा, महोदर, कुम्भकर्ण और तुम कोई भी राम के विषय में ठीक बात नहीं कह रहे हो। तुम लोगों का कहना ऐसा ही असम्भव है जैसा कि अधर्मबुद्धिवाले मनुष्य को स्वर्गप्राप्ति असम्भव है। हे भाई! भला रामचन्द्र को मैं या तुम, या सब राक्षस किस तरह मार सकते हैं! वे सब बातों को अच्छी तरह जानते हैं। तुम तो ऐसी बात कहते हो, जैसे बिना नाव के कोई मनुष्य समुद्र-पार जाने के लिए तैयारी कर रहा हो। हे प्रहस्त, धर्मप्रधान महारथ इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न और सब कामों में समर्थ

श्रीरामचन्द्र के संग्राम में देवता लोग भी दाव-पेंच भूल जाते हैं। श्रीरामचन्द्र के पैने, कङ्कपत्त्र से भूषित और असह्य बाण तुम्हारे शरीर को जब तक नहीं छेदते तभी तक तुम्हारा यह बकवाद है। प्राणों को हरनेवाले, वज्र के तुल्य वेगवान् और तेज़ राम के बाण तुम्हारे शरीर को विदीर्ण करके नहीं घुसते, इसी से तुम बकबक कर रहे हो। देखो रावण, त्रिशिरा, कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ, इन्द्रजित् और तुम, इनमें से कोई भी युद्ध में उनके पास खड़ा नहीं रह सकता। देवान्तक, नरान्तक, महाबली महा-रथ अतिकाय तथा अकम्पन, ये सब संग्राम में राम के सामने खड़े न हो सकेंगे।

ये राजा तो काम के वश में हो रहे हैं। इनको तुम लोग, राक्षसों का नाश करने के लिए, मान दे रहे हो। तुम मित्ररूप शत्रु हो। इस राजा का स्वभाव तीखा और बिना समझे-बूझे काम करने का है। हे राक्षसो! अब मैं जो कहता हूँ उसे तुम लोग करो। महाबली और हज़ारों मस्तकवाले राम के वैररूप भयानक सांप से लिपटे हुए इस राजा को तुम लोग किसी तरह बचाओ। भाइयो! डरो मत; बाल पकड़कर या ज़बरन् राजा को बाँधकर इस विपत्ति से ऐसे बचाओ जिस तरह भयानक भूत लगने पर मनुष्य को किसी न किसी तरह बचाते हैं, पर अनादर से डरते नहीं। ऐसा मत कहो कि राजा बड़ा बली है। यह बात हो नहीं सकती। मैं कहता हूँ कि तुम लोग इकट्ठे होकर यह काम करो। भाइयो, अगर तुम ऐसा न करोगे तो इसके मित्र और सब मनोरथ मिट्टी में मिल जायँगे। यही नहीं, किन्तु लङ्का को भी मिट्टी में मिली हुई सी समझो। हे राक्षसो! इस समय इस राजा पर जल से भरा हुआ रामरूप समुद्र आक्रमण करना चाहता है और पाताल के तुल्य गहरे रामरूप सागर के मुँह में यह गिरना चाहता है। इसलिए तुमको यही उचित है कि सब इकट्ठे होकर इस राक्षसपति को बचाओ। यही न्याय्य है। देखो, मैं यह बात राक्षसों के, इस नगरी के और मित्र-बान्धवों तथा राजा के हित के लिए कह रहा हूँ। मेरा यही सिद्धान्त है कि यह रावण राम की सीता उन्हें समर्पण कर दे। देखो, मन्त्री उसी को कहना चाहिए जो अपने और शत्रु के बल, स्थिति, हानि और वृद्धि—इन सबको अच्छी तरह बुद्धि से पहले विचार करके स्वामी के हित के योग्य बात कहे।

पन्द्रहवाँ सर्ग

विभीषण का इन्द्रजित् को फटकारना।

बृहस्पति के समान बुद्धिमान् विभीषण की बातें सुनकर इन्द्रजित् ने कहा—हे चचा! तुम यह डरपोक मनुष्य की तरह क्या अनर्थक कह रहे हो? जो इस कुल में उत्पन्न नहीं भी हुआ होगा वह भी ऐसी बात न कहेगा और न करेगा ही। देखो भाइयो! मेरे पिता के छोटे भाई ये एक विभीषण ही इस कुल में ऐसे पैदा हुए जिनमें सत्य, वीर्य, पराक्रम, धैर्य और शौर्य नहीं है। हे डरपोक विभीषण! मनुष्यराज के उन दोनों पुत्रों की शक्ति है ही कितनी सी? उनको तो हमारा एक छोटा सा राक्षस मार सकता है। तुम इतना डर क्यों दिखा रहे हो? देखो, तीनों लोकों के नाथ को मैं पृथ्वी पर पकड़ लाया था। उस समय सब देवता मुझसे पीड़ित होकर भाग गये। ऐरावत

बड़े ज़ोर से चिल्ला रहा था। उसे भी मैंने खींचकर पृथ्वी पर गिरा दिया और उसके दाँतों को खींचकर देवताओं को भी भयभीत कर दिया था। मैं देवताओं का भी गर्वनाशक और दैत्यों को शोक देनेवाला हूँ। मैं उन क्षुद्र राजपुत्रों के पास क्यों न ठहर सकूँगा ?

बड़े तेजस्वी मेघनाद की ये बातें सुनकर विभीषण ने फिर कहा—हे तात ! विचार करने में तुम्हें निश्चय नहीं है। अब तक तुम कच्ची बुद्धि के बालक ही हो। इसी कारण तुम अपने नाश के लिए बहुत से अनर्थकारी वचन बक गये। तुम रावण के पुत्र इन्द्रजित् कहलाते हो सही, पर तुम राक्षसराज के मित्रमुख शत्रु हो, क्योंकि राम के द्वारा जिसका इस तरह नाश होनेवाला है उसे सुनकर तुम मोह से उसी बात का समर्थन करते हो। इससे मालूम हुआ कि तुम मारने के योग्य और कुबुद्धि हो और वह भी मारने के योग्य है जो तुम जैसे बालक और अत्यन्त साहसी को इस विचार-सभा में ले आया; क्योंकि तुम मूर्ख, ढीठ, नम्रता-रहित, तीक्ष्ण-स्वभाव, अल्पबुद्धि, दुष्टात्मा और अत्यन्त कुबुद्धि हो। तुम्हारी बातें तो लड़कों की सी जान पड़ती हैं। भला कहो तो सही कि संग्राम में राम के हाथ से छूटे हुए बाणों को कौन सहेगा ? वे बाण ब्रह्मदण्ड के तुल्य प्रकाशमान हैं, मृत्यु के समान ज्वालाधारी हैं और यमदण्ड के तुल्य हैं। राजन् ! धन, रत्न, अच्छे-अच्छे भूषण, अच्छे-अच्छे कपड़े और चित्रविचित्र मणि आदि चीज़ों के साथ सीता देवी को राम के अधीन कर दो जिससे हम लोग शोकरहित हो सुखपूर्वक लङ्का में रह सकें।

सोलहवाँ सर्ग

रावण का विभीषण से कठोर वचन कहना और विभीषण का रावण को छोड़ भागना।

अब रावण हितभाषी विभीषण से कठोर बातें कहने लगा; क्योंकि उसके सिर पर तो मौत नाच रही थी। उसने कहा—शत्रु के, अथवा क्रोधी विषधर साँप के साथ चाहे रहे, पर मित्ररूप शत्रु-सेवक के साथ कभी न रहे। हे राक्षस ! मैंने सब लोगों में कुटुम्बियों के शील-स्वभाव देखे हैं। वे कुटुम्बियों की विपत्ति में सदा प्रसन्न ही हुआ करते हैं। देखो, प्रधान, साधक, वैद्य और धर्मशील का कुटुम्बी लोग सदा अनादर ही किया करते हैं और शूरवीर का तिरस्कार करना चाहते हैं। फिर वे चाहे सदा परस्पर आनन्दित भले रहे हों पर विपत्ति में आततायी* हो जाते हैं। वे अपना मतलब छिपाये रहते हैं। ऐसे कुटुम्बी घोररूप बड़े भयङ्कर होते हैं। एक पुरानी बात सुनो। पद्मवन के हाथियों ने जो श्लोक कहे थे, उनको मैं सुनाता हूँ। इन श्लोकों को उन्होंने उस समय कहा था जब उनके बाँधने के लिए बहुत से आदमी अपने हाथों में रस्से लिये हुए चले आते थे। 'आग, शस्त्र और फन्दों का हमको कुछ भी डर नहीं है; पर कुटुम्बी हमारे लिए बड़ा भय पैदा करनेवाले हैं। ये बड़े ही स्वार्थी होते हैं, क्योंकि ये ही पकड़ने का उपाय बतलाते हैं।' हे विभी-

* आग लगानेवाले, विष देनेवाले, शस्त्र लेकर उन्मत्त हुए, धन हरण करनेवाले, क्षेत्रहारी और स्त्री-हरण करनेवाले को आततायी कहते हैं।

षण ! हमको मालूम है कि सब भयों से कुटुम्बी का भय अधिक और कष्टदायक है। देखो न, इस तरह की कितनी ही बातें प्रसिद्ध हैं। जैसे गौओं में हव्य-कव्य का साधन रहता है, स्त्रियों में चपलता और ब्राह्मणों में तपस्या होती है, वैसे ही कुटुम्बियों से भय ज़रूर होता है। इसलिए भाई, यद्यपि ये बातें अच्छी हैं तथापि मुझे इष्ट नहीं; क्योंकि मैं लोकपूजित और ऐश्वर्यवान् कुल में पैदा हुआ हूँ तथा शत्रुओं के मस्तकों पर चढ़ा रहा हूँ। हे राक्षस ! जिस तरह कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूँदें नहीं ठहरतीं इसी तरह अनार्यों की मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती। शरद् ऋतु में बादलों के गरजने और बरसने से जैसे कीचड़ नहीं होती वैसे ही अनार्यों की मैत्री है। जिस तरह भौंरे भली भाँति फूलों का रस पीकर भी वहाँ नहीं रहते—अर्थात् उस जगह को छोड़ देते हैं—वैसी ही अनार्यों की मैत्री होती है। तू भी वैसा ही है। जिस तरह भौंरा बड़ी चाह से कास के फूल को पीता है पर उसमें रस नहीं पाता, ऐसा ही अनार्यों का सौहृद है। जिस तरह हाथी पहले नहाकर फिर धूल उठाकर अपने शरीर को मैला कर लेता है वैसी ही अनार्यों की मैत्री है। हे निशाचर ! तुमने जैसी बातें कही हैं वैसी अगर दूसरा कोई कहता तो तत्काल मारा जाता। हे कुलनाशक ! तुझे धिक्कार है।

विभीषण जब यों बुरी तरह धिक्कारा गया तब चार राक्षसों के साथ हाथ में गदा लिये हुए आकाश की ओर उड़ गया। आकाश में जाकर वह क्रोधपूर्वक कहने लगा—राजन् ! आप मेरे भाई हैं, चाहे जो कह लें। बड़े होने से आप पिता के तुल्य माननीय हैं पर आप धर्म-मार्ग पर चलनेवाले नहीं हैं। आप बड़े हैं तो क्या हुआ, मैं आपकी बुरी बात न सहूँगा; क्योंकि मैंने जो कुछ कहा था वह आपके ही हित के लिए था। अन्त में मेरी ही कही हुई बातें होंगी। राजन् ! अनात्मज्ञ मनुष्य काल के वश में होकर हित की बात नहीं करते। राजन् ! सदा मीठी-मीठी बातें करनेवाले लोग बहुत मिलते हैं, पर अप्रिय किन्तु न्यायानुसारी वचन बोलनेवाला और सुननेवाला व्यक्ति मिलना कठिन है। मैं ऐसी बात कभी न कहता लेकिन क्या करूँ; सब प्राणियों के नाशक काल के जाल में आपको फसे हुए और नष्ट होते देखकर मैं चुपचाप कैसे बैठा रहता ? भला घर को जलते देखकर कोई चुपचाप भी बैठा रहता है ? हे रावण ! मैं यह नहीं देखना चाहता कि जलती हुई आग की तरह, पैने और काञ्चनभूषित राम के बाणों से आप मारे जायँ। शूरवीर, बलवान् और अस्त्रों के चलाने में चतुर मनुष्य भी काल के वश में होकर, बालू के पुल की तरह, युद्ध में बहुत जल्दी ढह पड़ते हैं। हे भाई ! गुरु समझकर और हित की चाहना से मैंने जो कुछ आप से कहा हो उसे क्षमा करना। अपने को और इस नगरी को बचाइए। आपका मङ्गल हो, अब मैं जाता हूँ। अब मेरे न रहने से आप सुखी रहें।

छन्द

बरज्यों बहुत हित चाहि। तुम बचन मानत नाहिं।
तव मीच आइ तुलान। अब करहु जो मन मान ॥
जेहि काल सिर पर नाच। ते गहहिं नहिं हित साँच ॥

———

सत्रहवाँ सर्ग

विभीषण का रामचन्द्र के पास जाना और वहाँ इसे रखने का विचार होना।

इस तरह कहकर विभीषण थोड़ी देर में श्री-रामचन्द्रजी के पास आ गया। वहाँ विभीषण को वानर सेनापतियों ने और सुग्रीव ने भी देखा। वह पर्वत की चोटी की तरह बड़ा, तेज से जलता हुआ सा, और अच्छे-अच्छे आभूषण पहने हुए था। वह आकाश-मार्ग से जा रहा था। उसके चारों सेवक भी कवच पहने, हथियार लिये और अच्छे-अच्छे भूषण पहने थे।

सुग्रीव ने थोड़ी देर तक कुछ सोच-विचारकर हनुमान् आदि वानरों से कहा—देखो, चार राक्षसों को साथ लिये यह कोई राक्षस हम लोगों के मारने को चला आता है। यह सुनते ही वानर लोग वृक्षों और शिलाओं को ले-लेकर कहने लगे—राजन्, इन दुष्टों को मारने की हमें आज्ञा दीजिए। हम इनको मारकर ज़मीन पर गिरा दें। इस तरह वे बातचीत कर ही रहे थे कि विभीषण, सागर के उत्तर किनारे पर पहुँच, आकाश में ही ठहर गया और बड़े ज़ोर से बोला जिससे सुग्रीव और अन्य वानर सुन लें।—

"राक्षसों के राजा, अत्यन्त दुराचारी रावण का मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। रावण ने जनस्थान से सीता का हरण किया और जटायु को मारा था। बेचारी सीता इस समय राक्षसियों के बीच में विवश और दीन होकर सुरक्षित पड़ी हुई है। मैंने रावण को कितनी ही हेतुयुक्त बातों से समझाया कि तू रामचन्द्र को सीता दे दे; परन्तु वह मेरा कहना क्यों मानता, वह तो काल के वश में है। मृत्यु चाहनेवाला मनुष्य दवाई का सेवन नहीं करता, उसकी समझ उलटी हो जाती है। यही दशा मेरे भाई की है। उसने मुझसे बड़ी कठोर बातें कहीं और दास की तरह मेरा अनादर किया। इसलिए मैं पुत्रों और स्त्री को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी की शरण में आया हूँ। सब को शरण देनेवाले महात्मा श्रीरामचन्द्र से आप निवेदन कर दीजिए कि विभीषण मौजूद है।"

विभीषण की ऐसी बातें सुनकर सुग्रीव बहुत जल्दी वहाँ से गये और लक्ष्मण के सामने श्रीरामचन्द्रजी से कुछ क्रोध कर कहने लगे—हे राघव! सेना में अकस्मात् शत्रु आया है। मौक़ा पाते ही यह कुछ हानि कर डालेगा। इसलिए आप वानरों और शत्रुओं के विषय में, सेना को ठीक-ठीक नियत करने और चलाने में तथा भेदिये के द्वारा शत्रु का हाल जानने में सावधान हो जाइए। देखिए, ये राक्षस छिप सकते हैं, अन्तर्द्धान हो सकते हैं और इच्छानुसार अपना रूप भी बदल सकते हैं। ये शूर भी होते हैं। ये कपट-प्रहारी होते हैं। इनका विश्वास कभी न करना चाहिए। मेरी समझ में यह रावण का गुप्तचर है। ऐसा न हो कि हम लोगों में घुसकर यह कुछ फूट पैदा कर दे। निःसन्देह यह इसी लिए आया है। यह ख़ुद भी बुद्धिमान् है। ऐसा न हो कि सेना में घुसकर हमला करे। हे प्रभो! केवल मित्र का सैन्य, अपना सैन्य और नौकर का सैन्य ग्रहण करना उचित है। शत्रु के सैन्य को तो सर्वथा छोड़ देना चाहिए। एक तो यह स्वभाव से राक्षस है, दूसरे शत्रु का भाई है और तीसरे अभी-अभी

शत्रु के पास से चला आता है। मैं इसका किस तरह विश्वास करूँ? रावण का छोटा भाई विभीषण चार राक्षसों को साथ ले आपके शरण में आया है। हे सर्वसमर्थ राघव! आप निश्चय जानिए, इसे रावण ने भेजा होगा। इसलिए मैं तो इसे दण्ड देना ही ठीक समझता हूँ। शत्रु का भेजा हुआ यह राक्षस कुटिलता से इसलिए आया है कि जब आपका इस पर पूरा विश्वास हो जाय तब यह माया से छिपकर आप पर चोट करे। मय मन्त्रियों के इसको कड़ी सज़ा देनी चाहिए क्योंकि यह उस घातक रावण का भाई है। इस तरह रामचन्द्रजी से कहकर वानर-राज सुग्रीव चुप हो गये।

सुग्रीव की बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजी पास बैठे हुए हनुमान् आदि वानरों से बोले—देखो, कपिराज ने रावण के छोटे भाई के विषय में जो हेतुयुक्त बातें कहीं उन्हें आप लोगों ने भी सुना। बुद्धिमान्, समर्थ और हितैषी को यही उचित है कि मित्रों के कार्य-सङ्कटों में सम्मति दे। जब राम-चन्द्र ने पूछा तब उनकी भलाई चाहनेवाले वानर प्रशंसापूर्वक अपनी-अपनी राय देने लगे। उन्होंने कहा—हे राघव! तीनों लोकों में ऐसी कोई भी बात नहीं जिसे आप न जानते हों। हम लोगों को आप अपना मित्र समझकर केवल अपनी प्रशंसा के लिए पूछते हैं। आप सत्यव्रत, शूर, धार्मिक, दृढ़ पराक्रमी, परीक्षक और स्मृतिमान् हैं। परन्तु आपने अपने मन का बोझ सुहृदों पर रख दिया है इसलिए आपके सब सचिव यथाबुद्धि इस विषय में कहें; क्योंकि ये सब हेतु के जानकार, बुद्धिमान् और समर्थ हैं।

अब अङ्गद बोले—यह विभीषण शत्रु के पास से आया है इसलिए इसके विषय में विचार करना ही चाहिए। एकाएक इसका विश्वास न कर लेना चाहिए; क्योंकि धूर्त लोग अपने मन की बात को छिपाकर मौक़ा पाते ही घात करते हैं। यदि ऐसा हो तो बड़ा अनर्थ हो जाय। इसलिए अर्थ-अनर्थ का निश्चय करके इस विषय में कोई बात करनी चाहिए। यदि गुण पाया जाय तो इसे रखना चाहिए और दोष देख पड़े तो इसका त्याग करना ही भला है। आप देखिए कि यह कैसा है। यदि इसमें बड़ा दोष हो तो निःसन्देह इसका त्याग ही कीजिए और यदि इसमें बहुत गुण देख पड़ें तो इसे रख लीजिए।

शरभ नामक सेनापति ने कहा—हे नरव्याघ्र, दूत के द्वारा इसका भेद लेना चाहिए। कोई चालाक बुद्धिमान् भेदिया इसकी परीक्षा करे। अगर यह निर्दोष हो तो इसे रख लेना चाहिए। इसके बाद शास्त्रबुद्धि से विचारकर जाम्बवान् बोले—राजन्! वैरी, पापबुद्धि राक्षसराज के पास से यह आया है, सो भी अ-देश और अ-काल में; इसलिए इसके विषय में शङ्का करना ही ठीक है। इसके बाद नीतिनिपुण मैन्द नामक वानर बोला—हे नरपतीश्वर! यह विभीषण रावण का छोटा भाई है। इससे सभ्यता-पूर्वक मीठी-मीठी बातें की जायँ। इसके मन के भाव को समझकर, दुष्टता और साधुता का विचार कर, जैसा आप समझें वैसा करें।

अब संस्कारयुक्त श्रीहनुमान् मधुर वचन बोले—राजन्! आप बुद्धिश्रेष्ठ, समर्थ और बोलनेवालों में चतुर हैं। आपके वचन से बढ़क

किसका वचन हो सकता है? चाहे बृहस्पति ही क्यों न हों, परन्तु बोलने में आपको कभी लाँघ नहीं सकते। हे रामचन्द्र! वाद से, ईर्ष्या से, अधिकता से या किसी कामना से मैं नहीं कहता। मैं तो वही कहूँगा जो ठीक है; वह भी केवल आपके गौरव से। देखिए, अर्थ और अनर्थ के विषय में आपके सचिवों ने जो कहा है उसमें मुझे बुराई देख पड़ती है; क्योंकि कार्य-सिद्धि होती नहीं देख पड़ती। महाराज! बिना पूछे मन का भाव समझना कठिन है और यकायक उससे प्रश्न कर बैठना भी भद्दा जान पड़ता है। सचिवों ने कहा कि दूत भेजो, सो बिना मतलब के दूत भेजना भी ठीक नहीं। जाम्बवान् ने कहा था कि यह अ-देशकाल में आया है; मैं इस विषय में कुछ कहना चाहता हूँ, आप सुनिए। इसके आने का यही देश और यही काल है। एक व्यक्ति के पास से दूसरे व्यक्ति के पास आने में जो दोष और गुण हैं उनको मैं समझाकर कहता हूँ-- रावण की दुष्टता और आपका पराक्रम देख इसका यहाँ आना ठीक और बुद्धि के अनुसार है। आपके सचिवों ने कहा है कि अज्ञात मनुष्यों के द्वारा इससे पूछना चाहिए। मैं इस विषय में भी तर्क करता हूँ। कोई मनुष्य चाहे जैसा बुद्धिमान् हो पर जब एकान्त में उससे पूछा जाता है तब वह अवश्य हिचकिचाता है। दूसरी बात यह है कि शायद यह मित्रभाव से, निष्कपटतापूर्वक सुख से, यहाँ आया हो और पूछने से शङ्का करे तो फिर मित्रभाव न रहेगा। हे राजन्! दूसरे के मन का भाव जल्दी नहीं जाना जा सकता; परन्तु चतुर मनुष्य स्वर के भेद से और कण्ठ की ध्वनि से बोलनेवाले के मतलब को भाँप लेते हैं। हे राघव, इसकी बोली से कुछ भी बुरा भाव नहीं मालूम पड़ता। इसका मुँह भी प्रसन्न देख पड़ता है। इसलिए मुझे तो कुछ भी सन्देह नहीं जान पड़ता; क्योंकि धूर्त मनुष्य बेखटके और स्वस्थबुद्धि होकर नहीं आता। इसकी वाणी दुष्ट नहीं है। इससे मुझे सन्देह नहीं। क्योंकि आकार को कोई कितना ही क्यों न छिपावे पर छिप नहीं सकता—मनुष्य के भीतर के मतलब को वह ज़बर्दस्ती प्रकट कर देता है। हे कार्यज्ञों में श्रेष्ठ! देखिए, देश और काल का अच्छी तरह विचार करके जो काम किया जाता है वह जल्दी फल देता है। विभीषण आपको उद्योगी और रावण को मिथ्या व्यवहार करनेवाला देखकर और यह सुनकर, कि आपने बाली का बध कर सुग्रीव को राजगद्दी पर बिठा दिया, राज्य के लालच से बुद्धिपूर्वक यहाँ आया है। हे राघव, इस बात की ओर दृष्टि करके इसे मिला लेना चाहिए।

दोहा

राक्षस की मृदुता विभो, यथाबुद्धि कहि दीन।
संग्रह-निग्रह याहि कर, अब सब तव आधीन॥

अठारहवाँ सर्ग

विचारपूर्वक विभीषण का मिलाना।

वायुपुत्र हनुमान् की बातें सुन, प्रसन्न होकर, श्रीरामचन्द्र बोले—मुझे भी विभीषण के विषय में कुछ कहना है। इस विषय में तुम सब हितैषियों की बात मैं सुनना चाहता हूँ। अगर यह मित्र-भाव से यहाँ आया हो तो मैं इसे कभी अलग नहीं करना चाहता, चाहे उसमें कोई दोष

भी हों क्योंकि सज्जनों के लिए यही बात प्रशंसा के योग्य है। इसके बाद सुग्रीव ने अपनी उसी बात का अनुमोदन किया। वे कुछ सोच-समझकर बोले—यह बुरा हो या भला, पर है तो राक्षस ही। इसने ऐसी विपत्ति में पड़े हुए अपने भाई को क्यों छोड़ दिया? जब इसने ऐसे समय में सगे भाई को ही छोड़ दिया तब फिर यह किसका साथ देगा।

इस तरह वानरराज की बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर देखकर और कुछ मुसकुराकर लक्ष्मण से बोले—देखो, बिना शास्त्रों को पढ़े और बिना वृद्धों की सेवा किये ऐसा कहना बड़ा कठिन है जैसा कि वानरेन्द्र ने कहा है। परन्तु इसमें बहुत सूक्ष्म विचार मुझे जान पड़ता है। वह प्रत्यक्ष है और सब राजाओं में पाया भी जाता है। वह यह कि शत्रु दो तरह के होते हैं। एक तो अपने ही कुलवाले और दूसरे पास के देश में रहनेवाले। ये दोनों तरह के शत्रु, विपत्ति देखकर, हमला करते हैं। इसलिए शायद यह विभीषण, रावण को विपत्ति में फँसा हुआ देखकर, उस पर हमला करना चाहता हो। अपने कुटुम्बी कितने ही पापरहित और धर्मात्मा क्यों न हों, पर अपने हित के काम को ख़ूब ताकते रहते हैं। इस तरह की बातें लोक में देख पड़ती हैं। इसलिए राजा को अपने हितैषी कुटुम्बी के विषय में भी शङ्का करनी ही चाहिए। मतलब यह कि शायद रावण ने शङ्का करके ही इसको अलग कर दिया हो। उस अनादर को न सहकर यह, उससे बदला लेने के लिए, शत्रु-पक्ष में मिलना चाहता हो। शत्रु-पक्ष को मिला लेने में तुम लोगों ने जो दोष दिखलाये हैं उनका उत्तर मैं शास्त्र-रीति से देता हूँ। उसे तुम लोग सुनो—

हम न तो उसके कुल के हैं और न उसके पासवाले देश के रहनेवाले, जो उसको हमसे किसी तरह का डर हो। वह तो राज्य की इच्छा से आया हुआ जान पड़ता है। यद्यपि राक्षस तमोगुण-प्रधान होते हैं इसलिए मूर्ख होते हैं, तथापि उनमें पण्डित भी पाये जाते हैं। अतएव मेरी समझ में तो विभीषण को ग्रहण ही करना चाहिए। फिर एक कुल में पैदा हुए, परस्पर विश्वास रक्खा और आपस में हर्षपूर्वक मिले भी रहे; यह बात तो ठीक है परन्तु इस समय युद्ध का डङ्का बज रहा है इसलिए आपस में डर पैदा हुआ होगा। इसी कारण इनमें भेद हो जाना भी सम्भव है। अतएव विभीषण यहाँ आ मिला है। हे प्यारे! सभी भाई भरत के ही तुल्य और सभी पुत्र मेरे ही सदृश और सब मित्र तुम्हारी ही नाईं नहीं होते।

इस तरह रामचन्द्रजी की बातें सुनकर लक्ष्मण के साथ सुग्रीव उठकर और कुछ झुककर बोले—हे रामचन्द्र! यह राक्षस रावण का भेजा हुआ यहाँ आया है। इसलिए हे सर्व-समर्थ! इसे दण्ड देना ही मैं उचित समझता हूँ। राजन्! यह राक्षस सिखलाया हुआ कुटिल बुद्धि से यहाँ आया है। जब इस पर विश्वास जम जायगा तब यह छिपकर आपके, लक्ष्मण के या हमारे ऊपर हमला करेगा। यह उस घातक रावण का भाई है। इसलिए सचिवों सहित इसको मारना ही ठीक है। इस तरह कहकर कपिराज चुप हो गये।

सुग्रीव की राय सुनकर और कुछ सोच-

कर रामचन्द्र बोले—सुनो सुग्रीव ! यह राक्षस चाहे दुष्ट हो चाहे सज्जन, परन्तु इसकी क्या मजाल जो हमारा ज़रा सा भी अहित, किसी तरह, कर सके। हे वानरराज ! पिशाच, दानव, यक्ष और पृथ्वी के सब राक्षसों को मैं चाहूँ तो उँगली के अग्रभाग से मार डालूँ। मैंने सुना है कि कबूतर ने शरण में आये हुए शत्रु को, यथाविधि सत्कार कर, अपने मांस का भोजन करने के लिए न्योता दिया था। देखो, पक्षी होने पर भी उस कबूतर ने अपने उस शत्रु को आदर दिया जिसने उसकी कबूतरी छीन ली थी। फिर मेरे जैसा मनुष्य सत्कार क्यों न करेगा? प्राचीन समय में सत्यवादी कण्व ऋषि के पुत्र कण्डु ने जो बात कही थी वह भी सुन लो। वह यह कि हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए, दीन की तरह शरण में आये हुए, शत्रु को भी—दया का पालन करने के लिए—न मारना चाहिए। शत्रु चाहे आर्त्त हो चाहे अहङ्कारी, यदि शरण में आ जावे तो आत्मज्ञ मनुष्य को चाहिए कि अपने प्राणों का परित्याग करके भी उसकी रक्षा अवश्य करे। यदि वह शरणदाता भय से या मोह से या काम से, शक्ति रहने पर भी, उसकी ठीक-ठीक रक्षा नहीं करता तो वह पापी और लोक-निन्दित है। यदि रक्षक के देखते हुए वह शरणागत मनुष्य मर जाय और उसकी रक्षा न की जाय तो वह रक्षक के सब सुकृतों को छीन लेता है। हे वानरराज ! शरणागत की रक्षा न करने से बड़े-बड़े दोष होते हैं। यह अरक्षा स्वर्ग के यश की, बल की और वीर्य की नाश करनेवाली है। भाई ! मैं तो कण्डु मुनि के कथनानुसार काम करूँगा; क्योंकि वह कथन उत्तम धर्मयुक्त, यश का और स्वर्ग का देनेवाला तथा फल के उदय से युक्त है। मेरा तो यही व्रत है कि जो एक बार शरण में आ जाय और गिड़गिड़ाकर यह कह दे कि 'मैं आप का हूँ,' तो फिर मैं ऐसे प्राणिमात्र को अभय कर देता हूँ। हे कपिश्रेष्ठ ! तुम उसको ले आओ। मैंने उसे अभय कर दिया, चाहे वह विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो।

रामचन्द्रजी की इन बातों को सुनकर सुग्रीव प्रेम में भरकर बोले—हे लोकनाथ ! आप जो ऐसा कहते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है। आपके सिवा ऐसा सत्ववाला और धर्म-मार्ग पर चलनेवाला दूसरा कौन होगा जो इस तरह कहेगा? मेरा भी अन्तरात्मा अनुमान से और अभिप्राय से, सब ओर से, परीक्षा लेकर विभीषण को शुद्ध ही समझता है। इससे हे राघव ! यह विभीषण जल्दी हमारे समान हो और हम लोगों के साथ मित्रता कर ले।

दोहा

कियो विभीषण कहँ सखा, कपिपति सम्मति मानि।
जैसे सुरपति गरुड़ कहँ, विविध भाँति सनमानि॥

उन्नीसवाँ सर्ग

विभीषण से लङ्का के समाचार पूछना और समुद्र पार जाने का विचार करना।

इस प्रकार रामचन्द्र से अभय पाकर विभीषण, आकाश से झुककर, पृथ्वी की ओर देखने लगे; और देख चुकने पर अपने चारों सङ्गियों के साथ ख़ुशी से नीचे उतर पड़े। फिर उन चारों के साथ वे रामचन्द्रजी के चरणों पर गिर पड़े। वे रामचन्द्रजी से धर्मयुक्त और हर्षदायक बातें यों करने लगे—

महाराज! मैं रावण का छोटा भाई हूँ। उसने मेरा अनादर किया है इसलिए मैं सबके शरणदाता आपकी शरण में आया हूँ। महाराज! मैंने लङ्का को, मित्रों को और सारे धन को छोड़ दिया है। अब तो मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके अधीन है।

इस पर रामचन्द्रजी ने उसको दिलासा दिया। उन्होंने कहा—हे विभीषण! यह सब तो हुआ। अब तुम मुझे लङ्का के बलाबल का ठीक-ठीक ब्यौरा सुनाओ। राम की आज्ञा पाकर विभीषण सब बतलाने लगा। उसने कहा—हे रामचन्द्र! ब्रह्मा के वरदान से रावण को गन्धर्व, नाग और पक्षी आदि कोई भी नहीं मार सकता। मुझसे बड़ा, रावण का एक और छोटा भाई है। वह बड़ा वीर्यवान्, महातेजस्वी और लड़ने में इन्द्र के तुल्य पराक्रमी है। उसका नाम कुम्भकर्ण है। हे राम! राक्षसराज का सेनापति प्रहस्त है। शायद आपने इसका नाम सुना हो। इसने कैलास में मणिभद्र को जीत लिया था। गोधांगुलित्राण (गोह के चमड़े के दस्ताने) पहन, कवच को धारण करके और धनुष लेकर सङ्ग्राम में अदृश्य हो जानेवाला इन्द्रजित् है। यह बड़े संग्राम में, जहाँ बड़े व्यूह की रचना होती है वहाँ, आग को तृप्त कर अन्तर्द्धान हो शत्रुओं को मारता है। इसके सिवा महोदर, महापार्श्व और अकम्पन भी उसके सेनापति हैं। ये लोग युद्ध में लोकपालों की तरह पराक्रम रखते हैं। करोड़ों कामरूपी राक्षस लङ्का में रहते हैं जो मांस खाते और ख़ून पीते हैं। उनको साथ लेकर रावण ने लोकपालों से युद्ध किया था और देवताओं सहित उनको हरा दिया था।

रामचन्द्रजी ने विभीषण की बातें ध्यान लगाकर सुन लीं। फिर वे मन में सोचकर बोले—हे विभीषण! रावण के जिन-जिन पराक्रमों का तुमने वर्णन किया उन सबको मैं जानता हूँ। प्रहस्त को और बेटे सहित रावण को मारकर मैं तुमको लङ्का का राजा बनाऊँगा। यह मैं सच कहता हूँ। रावण चाहे पाताल में जाय या रसातल में या ब्रह्मा के पास चला जाय तो भी मुझसे जीता हुआ न बचेगा। मैं अपने तीनों भाइयों की क़सम खाकर कहता हूँ कि पुत्रों और बन्धुओं सहित रावण को मारे बिना अयोध्या में पैर न रक्खूँगा।

रामचन्द्रजी की ऐसी प्रतिज्ञा सुन विभीषण ने प्रणाम करके कहा—हे राघव! मैं राक्षसों के मारने में और लङ्का के तोड़ने में आपकी सहायता करूँगा। यथाशक्ति मैं उनकी सेना में घुस जाऊँगा। इस तरह बातचीत करते हुए विभीषण को महाराज ने गले लगा लिया और लक्ष्मण से कहा—"जाओ, समुद्र से पानी ले आओ। मैं प्रसन्न हूँ। इस विभीषण को लङ्का का राजतिलक कर दूँ।" इस तरह सुनकर लक्ष्मण ने वानरों के बीच में विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया। रामचन्द्रजी की प्रसन्नता देख वानर हर्ष-नाद करने लगे और वाह-वाह की आवाज़ चारों ओर से सुन पड़ी।

अब हनुमान् और सुग्रीव ने विभीषण से कहा—भाई! यह बतलाओ कि हम लोग इस अक्षोभ समुद्र के पार किस तरह जायँ? इस समय इसी उपाय का विचार करना चाहिए जिससे हम लोग सेना सहित इस वरुणालय के पार हों। इस पर विभीषण ने कहा—रामचन्द्र महाराज समुद्र की शरण में जावें; यही उपाय है। सगर से खुदवाये

जाने के कारण इसका नाम सागर हुआ है। राजा सगर राम के पूर्व-पुरुष हैं। इसलिए अपने कुटुम्बी का काम समुद्र अवश्य करेगा। विभीषण की बातें सुनकर सुग्रीव रामचन्द्रजी के पास गये और उनसे समुद्र की उपासना करने के लिए कहा। धर्म-शील रामचन्द्रजी को भी यह बात अच्छी लगी। विभीषण की इज़्ज़त करने के लिए उन्होंने लक्ष्मण और सुग्रीव से कहा—भाई! विभीषण की यह राय मुझे अच्छी मालूम हुई। सुग्रीव पण्डित ही हैं और तुम भी राय देने में चतुर हो। इसलिए तुम लोग विचार करके जो अच्छा लगे सो कहो। इस पर लक्ष्मण और सुग्रीव बोले—हे राघव! विभीषण ने जो सुखकारी विचार किया है वह हम लोगों को क्यों न अच्छा लगेगा; क्योंकि इस घोर समुद्र में बिना पुल बाँधे इन्द्र सहित देवता और दैत्य भी लङ्का को नहीं पा सकते। इसलिए शूर विभीषण की बात मानकर समुद्र की प्रार्थना करने में तत्पर हो जाइए जिससे हम लोग सेना सहित रावण की लङ्का में पहुँच सकें।

दोहा

दोउन के दृढ़ मन्त्र सुनि, तहँ सागर के तीर।
वेदि-वह्नि सम डासि कुश, बैठे श्री रघुवीर॥

———

बीसवाँ सर्ग

रावण का दूत भेजना।

इसके बाद रावण का दूत, शार्दूल नामक राक्षस, समुद्र के उस पार गया। सुग्रीव से रक्षित उस वानरी सेना को देखकर वह घबरा गया। उसने रावण को सब समाचार जा सुनाया। दूत ने कहा—हे राजन्! यह वानरों और भालुओं का समूह लङ्का के लगभग आ पहुँचा है। यह समूह अगाध, असंख्य और दूसरे समुद्र की तरह देख पड़ता है। दशरथ के दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण सीता के उद्धार के लिए आ गये हैं। ये उत्तम और अत्यन्त रूपवान् हैं। ये सब सागर के किनारे आकर ठहरे हुए हैं। इनकी सेना दस योजन के घेरे में आकाशमण्डल को घेरे हुए पड़ी है। महाराज! इस बात का ठीक-ठीक पता मँगवा लीजिए। आपके दूत इस बात को ठीक-ठीक जान लेंगे। फिर चाहे तो साम, दान और भेद से काम लीजिएगा। शार्दूल की बातें सुन और अपने काम का निश्चय करके रावण ने शुक नामक राक्षस से कहा—जाओ, तुम राजा सुग्रीव से मेरी ओर से वह सन्देशा कहना जो मैं तुमसे कहता हूँ। तुम उनसे, मधुर वाणी से, बातचीत कर कहना कि महाराज! आप कुलीन और महाबली ऋक्षरजा के पुत्र हैं। यहाँ सेना इकट्ठी करने से आपका कोई मतलब सिद्ध होता नहीं देख पड़ता और न आपके किसी अनर्थ का निवारण ही देख पड़ता है। फिर आप तो मेरे भाई के समान हो। मैंने जो राजपुत्र राम की स्त्री का हरण किया, इस बात में आपका कौन सा नफ़ा-नुक्सान है? आप अपनी राजधानी किष्किन्धा में चले जाइए; क्योंकि यह लङ्का वानरों के द्वारा किसी तरह जीती नहीं जा सकती। देव और गन्धर्व तो इसे पा ही नहीं सकते, फिर नर और वानरों की बात ही क्या!

इस तरह राजा का सन्देशा लेकर वह राक्षस, पक्षी का रूप बनाकर, समुद्र के ऊपर-ऊपर इस पार आ आकाश में ठहर गया। उसने सुग्रीव

को रावण का सन्देश सुना दिया। वह सन्देश सुना ही रहा था कि इतने में वानर कूद-कूदकर उसे घूसों से मारने लगे और उसे पकड़कर ज़बर-दस्ती ज़मीन पर उतार लाये। जब उसको वानरों ने बहुत मारा-पीटा तब वह कहने लगा—हे काकुत्स्थ! दूत कहीं नहीं मारे जाते इसलिए इन वानरों को मना कर दीजिए। जो दूत अपने स्वामी का सन्देश छोड़कर अपनी राय कहता है वह अनुक्तवादी कहलाता है और वही मारने के योग्य होता है। उसकी ये बातें और गिड़गिड़ाना सुन-कर रामचन्द्रजी ने वानरों को रोक दिया। तब वानरों से उसे छुट्टी मिली। वानरों के डर से वहाँ से बहुत जल्दी भागकर वह आकाश में पहुँचा और कहने लगा—हे सत्वसम्पन्न! हे महाबलवान् परा-क्रमी सुग्रीव! बताओ कि मैं जाकर रावण से क्या कहूँ? यह सुनकर सुग्रीव ने कहा—तुम रावण से यह उत्तर-वचन कह देना कि न तुम मेरे मित्र हो, न दयापात्र हो, न उपकारी हो और न मेरे प्यारे हो; तुम तो राम के शत्रु हो। इसलिए तुम सपरिवार, बाली की तरह, मारने के योग्य हो। मैं तुमको पुत्र, बन्धु और कुटुम्बियों सहित मारूँगा। इस बड़ी सेना के साथ आकर मैं तुम्हारी सब लङ्का को भस्म कर डालूँगा। तुम उससे कह देना कि मूर्ख! तुम राम से बच न सकोगे। चाहे इन्द्र सहित सब देवता तुम्हारी रक्षा करने में तत्पर हों, चाहे तुम अन्तर्द्धान हो जाओ, चाहे सूर्य के मार्ग में या पाताल में या शिव के चरणकमलों के नीचे जा छिपो; पर राम के हाथ से सकुटुम्ब तुम अपने को मरा हुआ ही समझो। तीनों लोकों के पिशाच, राक्षस, गन्धर्व और दैत्यों में ऐसा कोई नहीं जो तुमको बचा सके। तुमने उस बेचारे जरा-जीर्ण गृध्रराज जटायु को मार डाला। तुमने इन दोनों भाइयों के सामने सीता को क्यों नहीं हरा? अब तुम उन्हीं सीता को लेकर यह नहीं समझते कि महाबली, महात्मा और देवताओं से भी दुराधर्ष रामचन्द्रजी तुम्हारे प्राण हर लेंगे।

इसके बाद अङ्गद ने कहा—हे महाप्राज्ञ! यह दूत नहीं, भेदिया है। यह सेना की संख्या जानने के लिए आया था। इसने सेना को अच्छी तरह देख लिया। अब इसे पकड़ लेना चाहिए। यह लङ्का को न जाने पावे। हमको यही रुचता है। इस पर सुग्रीव की आज्ञा से वानरों ने कूदकर उसे पकड़ा और बाँध लिया। तब वह अनाथ की तरह रोने लगा। जब वह शुक राक्षस प्रचण्ड वानरों से अत्यन्त पीड़ित हुआ तब बहुत ज़ोर से रोने और रामचन्द्र को पुकारने लगा कि देखिए, ये लोग ज़बरन् मेरे पङ्ख तोड़े डालते हैं और आँखें फोड़े डालते हैं। महाराज! यदि मैं मर गया तो मैंने जन्म से लेकर अब तक जितने पाप कर्म किये हैं उन सबका भागी आपको होना पड़ेगा। इस प्रकार उसका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी बोले—वानरो! वह दूत है उसे न मारो। उसको छोड़ देना ही ठीक है।

इक्कीसवाँ सर्ग

समुद्र पर रामचन्द्र का क्रुद्ध होना।

इसके बाद समुद्र के किनारे कुश बिछाकर, पूर्व की ओर मुँह करके, हाथ जोड़ और अपनी बाँह का तकिया बनाकर रामचन्द्र लेट गये। महाराज

की भुजाएँ पहले मणि और काञ्चन के बिजायठों और मोतियों के भूषणों से भूषित होती थीं। उन्होंने अनेक बार भूषण पहनाने के समय उत्तम स्त्रियों का स्पर्श किया था। कभी-कभी वे अगुरु, चन्दन और कभी बालसूर्य के तुल्य चन्दनों से लेपित होतीं. किसी समय यह बाईं भुजा सीता के मस्तक से शोभा पाती थी। वह भुजा तक्षक नाग के तुल्य बड़ी, गङ्गाजल से सेवित और संग्राम में खम्भे की नाईं दीखनेवाली थी; वह शत्रुओं का शोक बढ़ाती, मित्रों को आनन्द देती और हज़ारों गौवों का दान कर चुकी थी। ऐसी बड़ी भुजा को सिर के नीचे रखकर और यह दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि 'आज या तो मेरा मरण हो या समुद्र के पार जाना हो' रामचन्द्रजी विधि और नियमपूर्वक मौन हो लेट गये। इस नियम का पालन करते-करते तीन रातें बीत गईं परन्तु मूर्ख समुद्र ने रामचन्द्रजी को अपना रूप न दिखलाया। इससे रामचन्द्र समुद्र पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनकी आँखें लाल हो गईं। वे लक्ष्मण से बोले—देखो, समुद्र को इतना गर्व है कि वह प्रकट नहीं होता। कारण यह है कि शान्ति, क्षमा, मृदुता और कोमल वचन ये सब सज्जनों के गुण हैं। ये गुणहीन मनुष्यों में असामर्थ्यसूचक हो जाते हैं। अर्थात् बुरे मनुष्य इन गुणों से गुणी को असमर्थ समझते हैं। जो अपनी प्रशंसा आप करता है, जो दुष्ट और ढीठ है, जो इधर-उधर दौड़ता रहता है और सब जगह दण्ड से काम लेता है उसका सभी सत्कार करते हैं। हे भाई सौमित्रे! साम से—शान्त रहने से—न नाम होता है, न यश मिलता है और न संग्राम में जय ही मिलता है। हे लक्ष्मण! आज देखना कि मेरे बाणों ने इस समुद्र के मगर-मच्छों को काट-काटकर पानी को रोक दिया है, और यह भी देखना कि विदीर्ण हुए साँपों की लोथें उतरा रही हैं। मछलियों के बड़े-बड़े शरीर, जलहाथियों के शुण्डादण्ड, शङ्ख और शुक्तियों के जाल ऊपर उतराते देख पड़ेंगे। आज मैं बाणों की मार से समुद्र को सुखा डालूँगा। यह समुद्र मुझ क्षमाशील को असमर्थ समझता है। धिक्कार है इस तरह के मनुष्य को क्षमा करने में। हे लक्ष्मण! शान्ति करने से यह सागर मुझे अपना रूप नहीं दिखलाता, इसलिए मेरे धनुष और साँप के तुल्य मेरे उन बाणों को लाओ। मैं इसी समय समुद्र को सुखा दूँगा। ये वानर पैदल ही समुद्र के पार चले जायँगे। आज इस अक्षोभ्य सागर को भी मैं क्षोभित कर डालूँगा। इसमें हजारों तरङ्गें उठ रही हैं, यह किनारों की मर्यादा बाँधकर स्थिर है पर मैं इसकी मर्यादा तोड़ दूँगा। इसमें बड़े-बड़े दानव रहते हैं, इसे मैं गड़बड़ा डालूँगा। इस तरह कहकर, क्रोधपूर्ण नेत्र किये और हाथ में धनुष लिये हुए रामचन्द्र उस समय ऐसे देख पड़ते थे जैसे अत्यन्त जलती हुई प्रलयकाल की आग हो।

अब रामचन्द्रजी धनुष चढ़ाकर और जगत् को कम्पायमान करते हुए इन्द्र के वज्र की नाईं बाण छोड़ने लगे। वे तेज से प्रज्वलित बाण बड़ी जल्दी उस समुद्र के जल में घुसने लगे जिसमें कि साँप डर रहे थे। उस समय मीन-मकरों सहित समुद्र के जल का महाघोर वेग वायु के शब्द के साथ उत्पन्न हुआ। बड़ी-बड़ी तरङ्गों से कम्पायमान, शङ्खों के जाल से लिपटा हुआ और जल के भँवरों से पूर्ण, वह समुद्र धुएँ से लिपटा हुआ देख पड़ने लगा। उसके प्रदीप्त मुँह और प्रदीप्त नेत्रोंवाले साँप तथा

पातालवासी महावीर्यवान् दानव बड़े दुखी हुए। हज़ारों मेरु और मन्दर के समान बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठने लगीं। उस समय समुद्र की तरङ्गें तो घूमने लगीं और नाग तथा राक्षस घबरा उठे। बड़े बड़े ग्राह उलट-पलट गये। उसमें बड़े-बड़े शब्द सुन पड़ने लगे इस तरह धनुष को खींचते, बड़ी जल्दी-जल्दी बाणों को छोड़ते और ज़ोर से श्वास लेते हुए श्रीरामचन्द्र को देख लक्ष्मण ने दौड़कर "हाँ, हाँ" कहकर धनुष को थाम लिया। उन्होंने कहा—महाराज, इसके बिना भी आपका काम, दूसरे उपाय से, हो सकता है। देखिए, आप जैसे महापुरुष क्रोध के वश में नहीं होते। आप अच्छे व्यवहार की ओर दृष्टि दीजिए। अब आकाश-चारी और अदृश्य ब्रह्मर्षि तथा देवर्षियों ने भी ऊँचे स्वर से चिल्लाकर कहा—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए; यह बड़े कष्ट की बात है। इस काम को आप रोक दीजिए; ऐसा न कीजिए।

बाईसवाँ सर्ग

समुद्र का प्रकट होकर पुल बाँधने की सम्मति देना।

अब रामचन्द्रजी ने समुद्र से ये कठोर वचन कहे—आज मैं पाताल-सहित इस समुद्र को सुखा डालूँगा। हे सागर! मेरे बाणों से तेरा जल सूख जायगा। तेरे भीतर के सब जीव-जन्तु मर जायँगे। फिर धूल उड़ने लगेगी। मेरे धनुष से छूटे हुए बाणों के बल से वानर उस ओर पैदल ही चले जायँगे। हे दानवों के घर! तू जल के द्वारा बहुत बढ़ गया है, इसलिए मेरे पौरुष और पराक्रम को नहीं जानता। देख, आज तेरा काम तमाम करता हूँ। इस तरह कहकर श्रीरामचन्द्र ने बाण को ब्रह्मास्त्र के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर धनुष पर चढ़ाया और खींचा। उसे खींचते ही आकाश और भूमि फटने लगी तथा पर्वत काँपने लगे। चारों ओर अँधेरा छा गया। दिशाएँ छिप गईं। बड़े-बड़े सरोवर और नदियाँ खलबला उठीं। नक्षत्रों सहित चन्द्र और सूर्य बेंड़े-बेंड़े आकर मिल गये। उस समय सूर्य की किरणों से प्रदीप्त होने पर भी आकाश में अँधेरा था। सैकड़ों उल्काओं से प्रज्वलित आकाश, बिजली की गहरी कड़क के तुल्य शब्दों से, नादित हो गया। आकाश में बड़े ज़ोर की आँधी चलने लगी जिसने वृक्षों को उखाड़ फेंका, धीरे-धीरे मेघों को प्रकट कर दिया और पर्वतों के अग्रभागों और शिखरों को तोड़-फोड़ डाला। यह हवा आकाश में इकट्ठी होकर बड़े ज़ोर से चलने लगी। आकाश से अग्निमय वज्रपात होने लगे। दृश्य और अदृश्य सभी प्राणी वज्र के तुल्य महा-भयङ्कर शब्द करने लगे। उनमें से बहुतेरे तो मारे डर के लेट गये; अनेक व्याकुल और बहुत से दुखी हुए। अनेक डर के मारे हिल भी न सके, जहाँ के तहाँ काष्ठ की तरह पड़े रह गये। जलचर जन्तुओं, तरङ्गों, नागों और राक्षसों से युक्त समुद्र में बड़ा वेग पैदा हुआ, जिससे उसका जल किनारे से एक योजन आगे बढ़ने लगा। ऐसा प्रलयकाल में ही होता है।

समुद्र की यह दशा देखकर भी जब श्रीराम-चन्द्र ने अपना शस्त्र न हटाया तब समुद्र के बीच से मूर्त्तिमान् सागर स्वयं ऐसे निकल आया जैसे कि उदयाचल पर सूर्य का उदय होता है। उसके साथ

बड़े-बड़े प्रदीप्त मुँहवाले साँप देख पड़े। समुद्र के शरीर का रङ्ग पन्ने के समान चमकीला था। वह सोने के गहने, रत्नों की माला और बढ़िया कपड़े पहने हुए था। नेत्र उसके कमल के समान थे। वह सब तरह के फूलों से बनी हुई माला सिर में लपेटे हुए था और रत्नों से जड़े हुए सोने के गहने पहने ऐसा मालूम होता था मानों अनेक धातुओं से भूषित हिमवान् हो। उठती हुई तरङ्गों, मेघों और भयङ्कर वायु से पूर्ण, गङ्गा-सिन्धु आदि प्रधान-प्रधान नदियों से लिपटा हुआ वह सागर हाथ जोड़कर बोला—हे राघव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, ये पाँचों अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बर्त्तते हैं; क्योंकि यही उनकी सनातन गति है। मेरा यही स्वभाव है कि मैं अगाध और पार जाने के अयोग्य हूँ। यदि मैं उथला हो जाऊँ तो विकार उत्पन्न हो जाय। मैं यह जो आपसे कह रहा हूँ वह काम, लोभ या भय से नहीं कहता; किन्तु जो ठीक-ठीक बात है वही निवेदन कर रहा हूँ। हे रामचन्द्र ! मैं अनुराग-पूर्वक मगर-मच्छों से भरे हुए अपने जल को किसी तरह थामूँगा; आप जिस मार्ग से जायँगे उसे बतलाऊँगा और उसका भार अपने ऊपर सहूँगा। जब तक आपकी सेना पार उतरेगी तब तक ऐसा मार्ग दूँगा जिससे ग्राहगण मार्ग में कुछ भी उप-द्रव न करेंगे। यह प्रार्थना सुनकर रामचन्द्रजी बोले—"यह तो तुम सब करोगे, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु अब यह अमोघ बाण कहाँ फेका जाय ?" रामचन्द्र की बात सुनकर और उस महाबाण को देखकर सागर ने कहा—हे रघुनन्दन ! यहाँ से उत्तर की ओर एक अत्यन्त पवित्र मेरा स्थान है। वह द्रुमकुल्य नाम से प्रसिद्ध है। देशों में वह आपके ही समान प्रख्यात है। वहाँ पर भयङ्कर रूपवाले और भयङ्कर काम करनेवाले पापशील आभीर आदि चोर लोग रहते हैं। वे मेरा जल पीते हैं। हे राम ! मैं उन पापियों को छू भी नहीं सकता, इसलिए इस उत्तम बाण को वहीं सफल कीजिए।

सागर की बात मानकर रामचन्द्र ने उस प्रदीप्त बाण को उसी देश की ओर फेंक दिया। वह स्थान समुद्र-किनारे से दिखलाई भी न देता था। उस बाण ने वहाँ की ज़मीन का पानी सोख लिया। उस समय से वह 'मरुकान्तार' अर्थात् माड़वार नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस भूमि पर वह वज्र के तुल्य बाण गिरा उस भूमि से बड़ा घोर शब्द हुआ और बाण के मुँह द्वारा रसातल से जल उछल पड़ा। वह एक कुआ बन गया जो व्रण नाम से प्रसिद्ध है। वह उछला हुआ पानी सदा समुद्र की नाईं देख पड़ता है। उस समय पृथिवी फटने का शब्द बड़ा कठोर हुआ। उस बाण के गिरने से पृथ्वी के गर्भ का जल सूख गया। इसी कारण, तीनों लोकों में वह देश माड़वार नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस तरह रामचन्द्र ने अपने बाण से वहाँ का पानी तो सुखा दिया; पर पीछे उसको वर भी दिया कि यह देश पशुओं के लिए हितकारक, रोग रहित, फल-मूल और रसों से युक्त, बहुत से तेल, घी आदि चिकनी चीज़ों से पूर्ण, सुगन्धित और नाना प्रकार की ओषधियों से भरपूर होगा। रामचन्द्रजी के वरदान से वह देश वैसा ही हो गया और सुन्दर मार्ग से शोभित हुआ।

अब समुद्र ने फिर कहा—महाराज ! यह श्रीमान् नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र है।

इसने अपने पिता से वर पाया है। मेरे जल के ऊपर यही पुल बनावे। जैसा इसका पिता है वैसा ही यह भी है। मैं उस पुल को धारण करूँगा। बस, समुद्र अन्तर्द्धान हो गया।

अब नल नामक वानर उठकर रामचन्द्र से कहने लगा—प्रभो! मैं अपने पिता के सामर्थ्य से इस बड़े समुद्र पर पुल बनाऊँगा। समुद्र ने जो कहा वह बिलकुल ठीक है। परन्तु मैं समझता हूँ कि दण्ड ही सब से बढ़कर कार्य सिद्ध करनेवाला है। उपकार न माननेवालों को क्षमा करना, समझाना या दान आदि देना सब व्यर्थ है। क्षमा करना बिल्कुल निष्फल है। देखिए, इस सागर ने पुल बाँधना रूप कर्म देखने की चाह से और दण्ड के भय से आपको अपनी थाह दे दी। प्रभो! इस समुद्र की बात से मुझे स्मरण हो आया कि विश्वकर्मा ने मेरी माता को मन्दराचल पर यह वर दिया था—"देवि! मेरे तुल्य तेरे पुत्र होगा।" सो मैं उसका औरस पुत्र हूँ और उसी के तुल्य हूँ। प्रभो! मैं यद्यपि इस समुद्र पर पुल बाँधने में समर्थ था परन्तु बिना आपके पूछे मैं अपने गुणों का वर्णन किस तरह करता? अब इसी समय से वानर लोग पुल बाँधें।

यह सुनते ही रामचन्द्रजी ने वानरों को आज्ञा दी। सैकड़ों हज़ारों वानर वहां के महावन में हर्षपूर्वक घुस गये। वे यूथपति पर्वताकार तो थे ही, इसलिए वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर समुद्र के किनारे पर ला-लाकर डालने लगे। उन्होंने साखू, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कोरैया, अर्जुन, ताड़, तिलक, तिमिश, बेल, छितिउन, फूले-फूले कर्णिकार, आम और अशोक के वृक्षों से समुद्र को भर दिया। ये वानरश्रेष्ठ जड़ों सहित और बिना जड़ों के वृक्षों को, इन्द्र की ध्वजा की नाईं, उठा-उठाकर लाने लगे। ये ताड़ों को, अनार के कुन्दों को और नारियल, बहेड़े, करील, मौलसिरी और नीम के वृक्षों को इधर-उधर से ला-लाकर डालने लगे। हाथी के तुल्य बड़ी-बड़ी चट्टानों और पर्वतों को भी उखाड़-उखाड़कर ये यन्त्रों के द्वारा ढो-ढोकर लाने लगे। पर्वताकार शिखरों के गिरने से समुद्र का पानी इतना उछलता था मानों आकाश को छू रहा हो। चारों ओर से वृक्षों और पत्थरों के गिरने से समुद्र खलबला उठा। कितने ही वानर सौ योजन के लम्बे सूत को थामते थे और नल पुल बनाते जाते थे। बहुत से वानर नापने के लिए गज लिये हुए थे और बहुत से वृक्षों को बिछाते जाते थे। मेघ के समान आकारवाले और पर्वतों की सी देहवाले सैकड़ों वानर रामचन्द्र की आज्ञा से घास-फूस, लकड़ियों और सुगन्धित वृक्षों से पुल बाँध रहे थे। वहाँ पर्वताकार चट्टानों और पर्वतों के शिखरों को हाथ में लिये दौड़ते हुए वानर बड़-बड़े गजेन्द्रों के तुल्य देख पड़ते थे। चट्टानों के फेंकने और पर्वतों के पटकने से घोर शब्द सुन पड़ता था। हनुमान् सहज में जिन पर्वतों को फेंकते थे उनको नील, बिना परिश्रम के, खेल के तुल्य बायें हाथ से झेल लेते थे। नील अपने पिता विश्वकर्मा की तरह बड़ा मनोहर मज़बूत पुल बना रहे थे।

पहले दिन में वानरों ने चौदह योजन पुल बना लिया। दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेईस योजन बनाकर काम पूरा कर दिया। समुद्र में वह पुल ऐसी शोभा दे रहा था जैसी आकाश में छाया-

पथ की शोभा होती है। अब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोग आकाश में खड़े हो-होकर अद्भुत पुल को देखने लगे। यह पुल दस योजन चौड़ा, सौ योजन लम्बा और अत्यन्त दुष्कर था। उस पर वानर कूदते-फाँदते और गरजते हुए देख पड़ते थे। अनेक प्राणी आ-आकर उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और जिसको देखने से रोमाञ्च हो जाय ऐसे सेतु-बन्धन को देख रहे थे। वे बड़े पराक्रमी करोड़ों अरबों वानर पुल बाँधते-बाँधते समुद्र के पार चले गये। वह सुन्दर पुल बड़ा मज़बूत बना हुआ था। उसकी सड़क मज़बूत थी। वह अच्छे बन्धनों से कसा गया था। वह उस समय समुद्र के पानी के बीच ऐसी शोभा दे रहा था मानों स्त्री के माथे पर रचकर बनाई हुई बालों की पटिया हो। इसके बाद सचिवों को साथ लिये हुए गदाधारी विभीषण समुद्र के पार जाकर, शत्रुओं को बतलाने के लिए, खड़े हो गये। अब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से कहा—आप हनुमान् की पीठ पर और लक्ष्मण अङ्गद की पीठ पर सवार हो लें; क्योंकि यह सागर बड़े-बड़े मगर-मच्छों का घर है। ये दोनों वानर आकाशचारी हैं। ये आप दोनों को अच्छी तरह अपने ऊपर चढ़ा लेंगे।

वानरी सेना के आगे-आगे ये दोनों भाई और सुग्रीव चले। अनेक वानर बीच में और बहुत से अगल-बगल होकर चले। बड़ी भीड़ होने के कारण बहुत से वानर पानी में गिर पड़ते थे और बहुतों को चलने के लिए मार्ग ही न मिलता था। बहुत से, पक्षियों की तरह, आकाश में उड़कर चलने लगे। समुद्र पार होते समय भयङ्करी सेना के शब्द से समुद्र का शब्द दब गया। इस तरह नल के बनाये हुए पुल से वह सेना समुद्र पार हो गई। वहाँ फल, मूल और जल की अधिकता देखकर राजा ने उसे वहीं टिका दिया। रामचन्द्र का यह अद्भुत काम देखकर सिद्ध-चारणों के साथ देवता और महर्षिगण वहाँ आकर अच्छे मङ्गल जल से अलग-अलग अभिषेक करने और कहने लगे—

छन्द तोटक

जय शत्रुगणं नरदेव प्रभो। सततं पृथ्वीं परिपाहि प्रभो॥
एहि भाँति नरेश्वर राजहिंते। सुप्रशंसत भे वचनामृत ते॥

तेईसवाँ सर्ग

रामचन्द्र का लक्ष्मण से युद्ध के निमित्तों का वर्णन करना।

अब रामचन्द्रजी घोर शकुनों को देखकर लक्ष्मण को गले से लगा यह बोले—हे सौमित्रे! इस शीतल जल और फलयुक्त वन का सहारा लेकर हम सब इस सेना की व्यूह-रचना करके ठहरें; क्योंकि लोक का नाश करनेवाला घोर रूप भय उपस्थित है। मैं उसे देखता हूँ। उससे जान पड़ता है कि भालू, वानर और राक्षसों का बड़ा नाश होगा। देखो, यह हवा धूल लिये हुए कैसे चल रही है। पृथ्वी काँप रही है। पर्वतों के आगे के हिस्से हिल रहे हैं। वृक्ष टूट-टूटकर गिरते हैं। देखो, कच्चा मांस खानेवालों की नाईं रूखे और क्रूर ये मेघ कठोर शब्द करते हुए क्रूर रूप से रक्त की बूँदों से मिली हुई कैसी वर्षा कर रहे हैं। देखो, लाल चन्दन के तुल्य इस सन्ध्या का रूप कैसा दारुण देख पड़ता है। सूर्यमण्डल से जलता हुआ उल्का-पात हो रहा है। चारों ओर के ये दीन मृग और पक्षी

सूर्य की ओर देख-देखकर कैसा दीन शब्द कर रहे हैं जिससे बड़े भय का अनुमान होता है। रात में प्रकाशरहित चन्द्रमा किस तरह काले और लाल मण्डल के साथ उदय होकर सन्ताप दे रहा है, मानों लोक का नाश करने के लिए उदय हुआ हो। देखो, सूर्यमण्डल में कैसा छोटा और प्रकाशरहित सा लाल मण्डल में देख पड़ता है। उसके बिम्ब में काला चिह्न देख पड़ता है। बड़ी धूल से नक्षत्र फीके हो गये हैं। वे लोकों को प्रलय की सी सूचना दे रहे हैं। कौए, बाज़, और गीध पक्षी नीचे की ओर झुकते हुए देख पड़ते हैं। गिदड़ियाँ अशुभ और भयङ्कर शब्द कर रही हैं। इन अशुभ लक्षणों से मालूम होता है कि पर्वतों, शूलों और तलवारों के प्रहार से, वानरों और राक्षसों के मांस और रक्त से चहला मच जायगा। इसी समय हम सब वानरों को साथ लेकर रावण की पुरी पर जल्दी चढ़ चलें। इस तरह कहकर श्रीरामचन्द्रजी धनुष ले लङ्का की ओर बढ़े। उनके बाद विभीषण, सुग्रीव और सब वानर सेनापति भी गरजते और ठनकते हुए शत्रुओं को मारने के लिए चल पड़े।

दोहा

लखि लखि सेनापतिन के, वीर कर्म रण-भाव।
मानस महँ सन्तोष अति, होत युद्ध के चाव॥

चौबीसवाँ सर्ग

शुक का रावण से समाचार कहना।

वीर वानरों के झुण्ड की जो व्यूहरचना रामचन्द्रजी ने की थी वह इस समय ऐसी शोभित हुई जैसी चन्द्रमा के द्वारा अच्छे नक्षत्रों से युक्त शरद् ऋतु की पौर्णिमा शोभा देती है। समुद्र के समान आकारवाली सेना से पीड़ित होकर वहाँ की भूमि बहुत डरकर काँपने लगी। अब लङ्का में भेरी और मृदङ्ग के शब्दों से मिला हुआ भयङ्कर रोमाञ्चकारी शब्द सुनकर वानर बहुत ख़ुश हुए। उस शब्द को न सहकर ये भी बहुत ज़ोर से गरजने लगे। लङ्का के राक्षसों ने उन गर्वीले और गरजते हुए वानरों का ऐसा शब्द सुना जैसा आकाश में बादलों के गरजने का होता है।

अब श्रीरामचन्द्रजी विचित्र ध्वजा-पताकाओं से शोभित लङ्का को देखकर बहुत दुखी मन से सीता को याद करने लगे कि यहाँ पर दुष्ट रावण ने मृगनयनी सीता को बन्धन में डाल रक्खा है। मङ्गल ग्रह से पीड़ा पाती हुई रोहिणी की भाँति उसकी दशा हो रही होगी। यों सोचकर और लम्बी गरम साँस ले वे लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—लक्ष्मण! इस लङ्का की शोभा देखो। यह मानों आकाश को छूना चाहती है। इसको विश्वकर्मा ने पर्वत के आगे के भाग में मानों अपने मन से रचा है। देखो, अनेक विमानों से पूर्ण यह लङ्का ऐसी शोभा दे रही है जैसे सफ़ेद बादलों से ढका हुआ आकाश हो। इसमें फूलों के अनेक वन चित्ररथ के तुल्य हैं। इनमें तरह-तरह के पक्षी बोल रहे हैं। देखो, ये अनेक फलों और फूलों से लदे हुए कैसी शोभा दे रहे हैं। लक्ष्मण! इन वनों में वृक्षों के फूलों के गुच्छों में लीन हुए कैसे-कैसे भौंरे और कैसे-कैसे कोयलों के झुण्ड देख पड़ते हैं। उनमें से कैसी सुख देनेवाली हवा चल रही है।

इस तरह रामचन्द्रजी लक्ष्मण से कहकर शास्त्रानुसार सेना का विभाग करने लगे। उन्होंने

सेनापतियों को आज्ञा दी—नील के साथ अङ्गद सेना के वक्षःस्थल पर रहें। ऋषभ नामक वानर अपने यूथ को साथ ले सेना की दहिनी ओर की रक्षा करे। मतवाले हाथी की तरह दुर्धर्ष, वेगवान् गन्धमादन नामक सेनापति सेना की बाईं ओर रहे। सेना के शिरोभाग में लक्ष्मण के साथ मैं रहूँगा। भालुओं की सेना के अध्यक्ष जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी नामक वानर सेना के उदर भाग की रक्षा करें। सेना के जङ्घा भाग पर कपिराज इस तरह रहें जिस तरह पश्चिम दिशा के रक्षक वरुण हैं। इस तरह व्यूह से रची गई वह सेना ऐसी शोभित हुई जैसे मेघों से आकाश शोभित होता है। वहां पर वानर लोग पर्वत की चोटियों और वृक्षों को लेकर लङ्का को मर्दन करने की घात में लग गये। वे मन में सोचने लगे कि पर्वतों के पत्थरों या मुक्कों से इस नगरी को तोड़-फोड़ डालेंगे। अब रामचन्द्रजी ने सुग्रीव से कहा कि सेना का विभाग तो हो चुका अब शुक को छोड़ दो। आज्ञा पाकर वानरराज ने शुक को छोड़ दिया।

वानरों से सताया हुआ वह शुक नामक भेदिया डरता-डरता रावण के पास पहुँचा। रावण ने उसे देख मुसकराकर पूछा—हे शुक! ये तुम्हारे सफ़ेद पङ्ख कहाँ गये! ये तो नीचे चींथे से देख पड़ते हैं। तुम उन वानरों के फन्दे में तो नहीं जा पड़े? राजा का प्रश्न सुनकर डरता और काँपता हुआ शुक बोला—राजन्! सागर के पार जाकर मैंने आपका सन्देश-वचन मधुर वाणी से कहना आरम्भ किया ही था कि वानरों ने मुझे देखते ही कूदकर पकड़ लिया। फिर वे मुझे मुक्के मारने लगे। हे राक्षसाधिप! वे न तो बात कहने के योग्य हैं और न कुछ पूछने के योग्य; क्योंकि वे सब बड़े ही तीखे स्वभाव के हैं। विराध, कबन्ध और खर का मारनेवाला सुग्रीव के साथ सीता के लगभग आ पहुँचा है। सागर में पुल बाँध, पार उतरकर, राक्षसों को कम्पायमान करनेवाले रामचन्द्र हाथ में धनुष लिये हुए आ पहुँचे। भालू और वानरों के हज़ारों झुण्ड पृथ्वी को ढाँपे हुए हैं। जैसे देवता और दानवों का मेल नहीं होता वैसे ही राक्षसी और वानरी सेना का मेल किसी तरह हो ही नहीं सकता। वे आपके महल पर आकर हल्ला करना चाहते हैं, इसलिए आप या तो सीता को दे दीजिए, या युद्ध कीजिए। यही दो बातें आपके हाथ में हैं।

शुक की बातें सुनकर क्रोध से रावण की आँखें लाल हो गईं। वह अपने नेत्राग्नि से जलता हुआ कहने लगा— यदि देवता, गन्धर्व और दैत्य भी मुझसे लड़ने के लिए आवें तो भी मैं सीता को न दूँगा! मुझे सब लोकों के डर से भी कुछ उद्वेग नहीं है। मेरे बाण राम पर ऐसे कब दौड़ेंगे जैसे वसन्त में फूले हुए वृक्षों पर मस्त भौंरे दौड़ते हैं! मैं अपने बाणों के द्वारा रक्त से सने हुए राम के शरीर को इस तरह कब जलाऊँगा जिस तरह कोई उल्का से हाथी को जलाता है। जिस तरह उदित होकर सूर्य नक्षत्रों की प्रभा पर आक्रमण करता है उसी तरह अपनी सेना-सहित मैं उनकी सेना को कब दबा लूँगा। अरे! सागर के समान मेरा वेग है और वायु के तुल्य मेरा बल है। राम को यह बात मालूम नहीं। इसी से मुझसे लड़ना चाहते हैं। तरकस में रक्खे हुए, विषधर साँपों की तरह, मेरे बाणों को राम नहीं देखते, इसी से

वे मेरे साथ लड़ने की इच्छा करते हैं। क्या वे युद्ध में मेरे पराक्रम को नहीं जानते। जब मैं शत्रु की सेनारूप महानदी में नहाकर सङ्ग्राम में अपनी धनुषरूप उस वीणा को बजाऊँगा—जो कि बाणरूप कोणों (मिजराफ) से बजाई जाती है, जिसमें प्रत्यञ्चा का घोर शब्द होता है और जिसमें पीड़ितों के हाय-हाय शब्द सुन पड़ते हैं, तथा जो नाराचों के नाद से युक्त है—तब न तो इन्द्र में, न वरुण में, न यम में और न कुबेर में ही इतनी शक्ति है कि बाणाग्नि से मेरा सामना कर सकें।

पचीसवाँ सर्ग

शुक और सारण का वानरी सेना में जा, सब देखकर, रावण को सन्देश देना।

जब रामचन्द्रजी सेना-सहित समुद्र के इस पार आ गये तब रावण ने शुक और सारण दोनों मन्त्रियों से कहा—देखो, वानरों की सब सेना दुस्तर सागर के इस पार उतर आई; और राम का पुल बाँधना एक ऐसा काम हुआ जो कभी न हुआ था। इन बातों से मुझे कुछ आश्चर्य या उद्वेग नहीं है। अब इस सैन्य की गिनती अवश्य करनी चाहिए। तुम दोनों छिपकर पता लगाओ और मुझे समाचार दो कि इस सेना का परिमाण कितना है। इसकी शक्ति कैसी है? कौन-कौन मुख्य वानर हैं, राम के कौन-कौन मन्त्री हैं और सुग्रीव के कौन-कौन सखा हैं? इनमें कौन-कौन अग्रगन्ता और कौन-कौन शूर हैं? समुद्र में वह पुल किस तरह बाँधा गया? सेना की स्थिति कैसी है? दोनों भाइयों के व्यवसाय और वीर्य कैसे हैं? उनके पास शस्त्र क्या-क्या हैं?—इन बातों को ठीक-ठीक जानकर और सेनापति का भी पता लगाकर जल्दी मेरे पास लौट आओ।

रावण की आज्ञा पाकर वे दोनों शुक और सारण नामक राक्षस वानर का रूप बनाकर वानरी सेना में घुस गये। परन्तु उस अचिन्त्य और रोमाञ्चकारी सेना की गिनती करने में वे दोनों समर्थ न हुए; क्योंकि वह सेना पर्वत के अग्रभागों में, झरनों पर, गुफाओं में, समुद्र के किनारों पर, वनों और उपवनों में टिकी हुई थी। उसमें से बहुत सी सेना तो पार उतर चुकी थी, बहुत सी उतर रही थी और बहुत सी उतरना चाहती थी। सेना के बहुतेरे सैनिक उस समय टिक गये थे और बहुत से टिक रहे थे। वे सब भयङ्कर नाद करते और बड़े बली थे। वे दोनों राक्षस उस अथाह सेना-समुद्र को देख ही रहे थे कि विभीषण ने उन्हें पहचान लिया और दोनों को पकड़ राम के पास ले जाकर खड़ा कर दिया। विभीषण ने कहा—"हे शत्रुनाशन! ये दोनों राक्षसराज रावण के मन्त्री हैं। भेदिया बनकर, अपने रूप को छिपाये हुए, सेना का भेद लेने के लिए आये हैं।" वे दोनों रामचन्द्रजी को देखकर बड़े दुखी हुए और अपने जीवन से भी हाथ धो बैठे। मारे डर के हाथ जोड़कर वे कहने लगे—हे सौम्य! हमें रावण ने भेजा है, हम दोनों आपकी सेना का सब भेद जानने को यहाँ आये हैं। उनकी बात सुनकर सब प्राणियों के हितकारी रामचन्द्र हँसकर बोले—अच्छा, यदि तुम सब सेना को और हम लोगों को भी देख चुके हो और राक्षसराज के आज्ञानुसार

सब काम पूरा कर चुके हो तो अब जहाँ चाहो चले जाओ। यदि कुछ और देखना हो तो फिर देख लो, या ये विभीषण ही तुमको अच्छी तरह दिखा देंगे। तुम इस समय पकड़े गये हो, इससे अपने जीवन के विषय में डरो मत; क्योंकि एक तो तुम बिना शस्त्र के हो और दूसरे दूत का मारना सर्वथा अनुचित है। हे विभीषण! यद्यपि ये दोनों रूप बदलकर आये हुए शत्रुपक्ष के भेदिये हैं तथापि दूत हैं—सन्देश पहुँचानेवाले हैं। इसलिए इनको छोड़ दो। हे दूतो! तुम लङ्का में जाकर मेरी ओर से कुवेर के छोटे भाई रावण से कह देना कि जिस बल से तूने सीता का हरण किया है उसको अपनी सेना और बन्धुओं के साथ मुझे दिखला। कल मैं प्राकार और तोरण-सहित इस लङ्का को और राक्षसी सेना को अपने बाणों से विध्वस्त कर डालूँगा। यह भी कह देना कि हे रावण! कल मैं अपना भयङ्कर क्रोध तुम पर इस तरह करूँगा, जिस तरह दानवों पर इन्द्र वज्र छोड़ते हैं।

इस प्रकार रामचन्द्रजी की बातें सुनकर उन दोनों ने 'रामचन्द्र की जय' कहकर लङ्का को प्रस्थान किया। उन्होंने लङ्का में आकर रावण से कहा—राक्षसेश्वर! हम दोनों को मारने के लिए विभीषण ने पकड़ लिया था परन्तु धर्मात्मा रामचन्द्रजी ने छुड़वा दिया। रामचन्द्र, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव, ये चारों पुरुषश्रेष्ठ एक ही स्थान पर टिके हुए हैं। ये लोकपालों के समान शूर, शस्त्रपण्डित और बड़े पराक्रमी हैं। ये ही चारों इस लङ्का को उखाड़कर फेंक सकते हैं, चाहे वानर अलग ही रहें। जिस तरह का राम का रूप है और जिस ढङ्ग के उनके शस्त्र हैं वैसा ही उनका पराक्रम है। उन तीनों को छोड़ वे अकेले ही सारी लङ्का का नाश कर सकते हैं। उन दोनों भाइयों से और सुग्रीव से रक्षित वह वानरी सेना ऐसी दुर्धर्ष हो रही है कि देवता और राक्षस भी उसको नहीं पा सकते।

दोहा

हर्षित योधा सेन वह, तजहु वैर मम नाथ।
सीतहिं अर्पेहु राम कहँ, हम सब होहिं सनाथ॥

———

छब्बीसवाँ सर्ग

अटारी पर चढ़कर रावण का वानरी सेना को देखना।

सारण का यथार्थ और पुरुषार्थ-युक्त वचन सुनकर रावण ने कहा—देखो जी! यदि देवता, गन्धर्व और दैत्य भी मेरे ऊपर चढ़ाई करके आवें तो भी मैं सीता को न दूँगा। यही नहीं, किन्तु सब लोकों के डर से भी न दूँगा। हे सौम्य! तुम तो वानरों से कष्ट पाकर डर गये हो। तुम आज ही सीता को फेर देना चाहते हो। ऐसा कौन शत्रु है जो मुझे युद्ध में जीत सकता है? इस प्रकार कड़ी-कड़ी बातें कहकर, राक्षसराज क्रोधित हो उन दोनों को साथ ले एक बड़ी ऊँची अटारी पर चढ़ गया। वहाँ से वह समुद्र, पर्वतों और वनों को देखने लगा। वहाँ की भूमि की ओर जब उसने नज़र डाली तब क्या देखता है कि वह समस्त वानरों से भरी हुई है। वानरों का वह सैन्य उसे अपार और असह्य जान पड़ा। उसको देखकर वह सारण से पूछने लगा—इनमें कौन-कौन मुख्य, कौन-कौन शूर और कौन-कौन महा-

बली हैं? कौन अग्रगन्ता और सब विषयों में महोत्साह रखते हैं? राजा सुग्रीव किसकी बहुत सुनता है? यूथपतियों के भी यूथपति कौन हैं? इन वानरों का कैसा-क्या प्रभाव है? यह सब समझाकर कहो।

राक्षसराज के प्रश्न सुनकर सारण वानरों का वर्णन करने लगा। उसने कहा—हे महाराज! देखिए, हज़ारों यूथपतियों से घिरा हुआ यह जो लङ्का के सामने गरज रहा है और जिसके शब्द से सारी लङ्का थरथरा रही है, यह सुग्रीव की सब सेना के आगे चलनेवाला नील नामक यूथपति है। जो भुजाओं को उठाये हुए पृथ्वी पर टहल रहा है और लङ्का के सामने की ओर जँभा रहा है, जो पर्वताकार है और जिसका रङ्ग कमल-केसर के तुल्य है, इसे सुग्रीव ने युवराज का तिलक किया है। यह अङ्गद नामक युवराज है। यह आपको संग्राम के लिए ललकार रहा है। यह पिता के तुल्य पराक्रमी, बाली का पुत्र और सुग्रीव का सदा प्यारा है। यह रामचन्द्र के लिए पराक्रम करने में सदा चित्त लगाये रहता है। इसी की राय से सीता को हनुमान् ने देख पाया था। यह वानरों के बहुत से झुण्ड लेकर मर्दन करने के लिए आपके ऊपर चढ़ाई कर रहा है। अङ्गद के पीछे, पुल बनानेवाला, यह नल अपनी सेना लेकर तैयार हो रहा है। ये जो अपने अङ्गों को मोड़कर सिंहनाद कर रहे हैं और क्रोध से जँभाई ले रहे हैं ये सब शत्रुओं के लिए असह्य और प्रचण्ड पराक्रमी हैं। गिनती में ये एक खर्ब और आठ लाख हैं। ये सब चन्दन वन के वासी वानर हैं। इनका स्वामी श्वेत नामक वानर है। वह रजतवर्ण का, चञ्चल, भयङ्कर, पराक्रमी, बुद्धिमान, शूर और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वह अपनी सेना लेकर लङ्का का मर्दन करने की इच्छा रखता है। यह देखिए, सुग्रीव के पास जो जल्दी-जल्दी आता-जाता है, जो वानरी सेना का विभाग करता है, जो अपनी सेना को हर्षित कर रहा है और जो पहले गोमती नदी के किनारे रमणीय पर्वत पर अधिकार रखता था, तथा अब संरोचन नामक पर्वत पर राज्य कर रहा है, इस सेनापति का नाम कुमुद है। यह एक लाख वानरों का अधिकारी है। जिसकी पूँछ के बाल बड़े-बड़े, लाल, पीले, सफ़ेद, काले रङ्ग के और घोर रूप हैं, तथा जो दीनता-रहित है, वह चण्ड नामक वानर है। यह अपनी सेना के साथ लङ्का का उपमर्दन करना चाहता है।

यह सिंह के तुल्य पीले रङ्ग का वानर, जिसकी गर्दन पर लम्बे-लम्बे बाल हैं और जो छिपकर लङ्का को अपनी दृष्टि से जलाता सा है, वह विन्ध्यगिरि, कृष्णगिरि, सह्य और सुदर्शन पर्वतों का अधिकारी है। यह शरभ नामक यूथपति है। इसको बड़े घोर पराक्रमवाले दस लाख तीस या एक करोड़ तीस वानर घेरकर चलते हैं। ये अपने पराक्रम से लङ्का का मर्दन करना चाहते हैं। देखो, जो कानों को फैलाता और बार-बार जँभाई लेता है, यह न तो मरने से डरता और न अपने साथ सेना रखना चाहता है; यह क्रोध से काँपता हुआ टेढ़ा देख रहा है, और पूँछ डुलाता हुआ सिंहनाद करता है तथा अपने पराक्रम के भरोसे सदा निर्भय होकर साल्वेय नामक रमणीय पर्वत का अधिकारी है। यह रम्भ नामक

यूथप है। राजन्! इसके वश में जो यूथप हैं वे विहार नाम से पुकारे जाते हैं। गिनती में वे चालीस सौ सहस्र हैं। यह जो वीर वानरों के बीच, देवों में इन्द्र की नाईं और आकाश को घेर-कर मेघ की तरह, खड़ा है और जिसकी सेना के वानरों का यह महाशब्द नगाड़ों की तरह सुन पड़ता है, यह पारियात्र पर्वत पर रहता है। यह युद्ध करने में बड़ा दुःसह है। यह पनस नामक यूथपति है। पचास सौ सहस्र यूथपति इसके अधिकार में हैं जिनके कि अलग-अलग झुण्ड हैं। जो भयङ्कर खड़बड़ाती हुई और समुद्र के किनारे ठहरी हुई तथा दूसरे समुद्र की नाईं शोभा देने-वाली सेना को शोभित कर रहा है और जो दर्दुरा-चल की तरह बड़ा दिखाई दे रहा है, वह विनत नामक यूथप है। यह जो वेणा नदी का जल पीता है, इसके अधिकार में साठ सौ सहस्र वानर हैं; इसका नाम क्रथन है। यह युद्ध के लिए आपको पुकार रहा है। इसके यूथ बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं। जिसके शरीर का रङ्ग गेरुआ है और जो अपने बल से वानरों को कुछ भी नहीं समझता, वह गवय नामक सेनापति है। यह क्रोधपूर्वक आपका सामना करना चाहता है। इसके अधिकार में सत्तर सौ सहस्र वानर हैं। यह अकेला ही अपनी सेना से आपकी लङ्का का मर्दन करना चाहता है।

दोहा

यूथपतिन के यूथपति, महावीर बलवान।
रक्षाधिप तेहि यूथ कर, नहिं संख्या परिमान॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

फिर सेनाओं का ही वर्णन।

राजन्! मैं यूथपतियों का वर्णन करता हूँ। ये राघव के लिए पराक्रम करने में दत्तचित्त हैं और अपने प्राणों की भी परवा नहीं करते। देखिए, यह हर नामक वानर है जिसकी पूँछ बड़े-बड़े चिकने, लम्बे, लाल, पीले, सफ़ेद और काले रङ्ग के बालों से शोभित है। वे बाल सूर्य की किरणों की नाईं चमक रहे हैं; और पूँछ को झटका देने से ऊपर जाते और पृथ्वी को छू रहे हैं। इसके पीछे-पीछे सैकड़ों और हज़ारों वानर चलते हैं। जो वृक्षों को उठाकर, लङ्का की चोटी पर चढ़ने के लिए, तैयार हो रहे हैं वे इस वानर-राज के किङ्कर यूथपति हैं। हे राक्षसेश्वर! नीले बादलों की नाईं जिनको आप खड़ा देख रहे हैं और अञ्जन की तरह जिनका रङ्ग है ये युद्ध में सत्यपराक्रमी हैं; ये असङ्ख्य और समुद्र की नाईं अपार बलवाले बड़े कठोर भालू हैं। इनमें से बहुतेरे तो पर्वतों और अनेक देशों में तथा बहुतेरे नदियों के किनारे रहते हैं। ये सब आपका सामना करने के लिए तैयार हैं। इनके बीच में आप जिसको खड़ा देखते हैं, जिसके भयङ्कर नेत्र हैं और विकट रूप है और जो मेघों से घिरे हुए बड़े मेघ की तरह भालुओं से घिरा हुआ है, वह सब भालुओं का राजा धूम्राक्ष नामक सेनापति है। यह ऋक्षवान् नामक पर्वत पर रहता और नर्मदा का जल पीता है। इसका छोटा भाई जाम्बवान् यूथपतियों का सर्दार है। देखिए, इसका रूप कैसा पर्वत के आकार का है। यह भाई के रूप से बिलकुल मिलता-जुलता है; परन्तु पराक्रम में कहीं उससे

अधिक है। यह स्वभाव का शान्त और गुरु-सेवी है। यह बड़े क्रोध से हमला करता है। देवासुर-सङ्ग्राम में इसने इन्द्र की बड़ी सहायता की थी और उसके द्वारा इसने बहुत से वर पाये थे। इसकी सेना के भालू पर्वतों के अग्र भागों पर चढ़कर वहा से बड़े-बड़े पत्थर फेंकते और ज़ोर से शोर मचाते हैं। ये मृत्यु से बिलकुल नहीं डरते। देखिए, इनका रूप कैसा राक्षसों और पिशाचों के समान देख पड़ता है। इनकी देहों में कैसे घने-घने बाल हैं। इस जाम्बवान् की बहुत सी सेना अपने अमित पराक्रम से इधर-उधर विचरती है। वानर लोग जिसके कूदने का तमाशा देख रहे हैं, यह भी अनेक यूथपतियों के यूथों का स्वामी है। इसका नाम रम्भ है। यह इन्द्र के पास रहता है और उन्हीं की सेवा करता है। यह एक योजन दूरस्थित पर्वत पर कूद जाता और बगल से उसके अग्रभाग को थामकर ठहर जाता तथा उछलकर आकाश में योजन भर तक चला जाता है।

देखिए, जिसके तुल्य चौपायों में भयङ्कर रूप नहीं देख पड़ता वह वानरों का पितामह सन्नादन है। इसने पूर्व-काल में इन्द्र से युद्ध किया था। यह उससे भी नहीं हारा। यह भी यूथपतियों का यूथपति है। जो इन्द्र के तुल्य पराक्रम रखता और देवासुर-संग्राम में देवताओं की सहायता करने के लिए अग्नि से गन्धर्व-कन्या में उत्पन्न हुआ है, उसका नाम क्रथन है। इसका स्वभाव गम्भीर है। सहस्र कोटि वानर इसके अधिकार में हैं। यह वानरश्रेष्ठ उस पर्वत पर रहता है जो पर्वतों का राजा है, जिस पर बहुत से किन्नर रहते हैं, जिस पर्वत पर तुम्हारे भाई कुबेर को विहार करने में सदा सुख मिलता है, और जहाँ पर कुबेर जामुन के वृक्ष का सहारा लेकर रहते हैं। प्राचीन काल में गङ्गा-किनारे हाथियों और वानरों में वैर हो गया था। उस वैर को याद करके जो बड़े-बड़े गजेन्द्र यूथपतियों को डरवाता है* और पर्वत की गुफा में रहता है; जो बड़े-बड़ वृक्षों को उखाड़ता और अपनी गरजना से जङ्गली हाथियों को क्रोधित किया करता है, वह वानरों की सेना में मुख्य है। यह मन्दराचल के एक भाग उशीरबीज नामक पर्वत पर, स्वर्ग में इन्द्र की नाईं रहता है। इसके अधिकार में सौ सहस्र सहस्र वानर हैं, जो अपने वीर्य और पराक्रम का अभिमान रखते हुए गरजा करते हैं। राजन्! इधर दृष्टि करके देखिए, वायु से उड़ाये मेघ की नाईं जिसको आप देख रहे हैं, यह बड़ा दुर्धर प्रमाथी नामक यूथपति है। वहाँ के वानर भी लड़ने के लिए उकता रहे हैं। वहीं हवा से उड़ी हुई लाल रङ्ग की धूल उड़ रही है। ये सब सौ-सौ सहस्र काले मुँहवाले गोलांगूल जाति के वानर गरज रहे हैं। ये लङ्का का मर्दन करने की इच्छा रखते हैं। इनका यूथपति गवाक्ष है। राजन्! वानरों में मुख्य यह केसरी नामक यूथपति उस सुवर्ण पर्वत पर रहता है जहाँ भौंरों से शोभित और सब काल में फलों से लदे हुए वृक्ष देख पड़ते हैं। उस पर्वत की सूर्य प्रदक्षिणा करता है। उस पहाड़ की प्रभा से वहाँ के मृग और पक्षिगण उसी रङ्ग के देख पड़ते हैं, उसकी चोटियों को महात्मा और महर्षिगण नहीं छोड़ते।

* पहले शम्बसादन नामक असुर की कथा हो गई है। वह शम्बसादन हाथी का रूप धरकर मुनियों को दुःख देता था। तब मुनियों ने हनुमान् के पिता केशरी से उसे मरवाया। तभी से वानरों और हाथियों का वैर हुआ।

वहाँ के वृक्ष लोगों के इच्छानुसार फल और फूल उपजाते और उन्हें देते हैं तथा वहाँ बहुत क़ीमती अच्छा मधु है।

महाराज! इधर दृष्टि कीजिए, जहाँ साठ हज़ार अच्छे सुवर्ण पर्वत हैं, उनमें से एक बहुत ही अच्छा पर्वत है। उसका नाम सावर्णिमेरु है। उस आख़िरी पर्वत पर पीले, सफ़ेद और मधुपिङ्गल वर्ण के लाल मुँहवाले वानर रहते हैं। उनके तीखे दाँत और नख शस्त्र हैं। सिंह के तुल्य इनके चार-चार डाढ़ें हैं, व्याघ्रों की तरह ये दुर्द्धर्ष हैं और आग की तरह प्रज्वलित हैं। बड़े विषैले साँपों की नाईं ये असह्य हैं, इनके बड़ी-बड़ी पूँछें हैं। चाल इनकी मस्त गजेन्द्र की नाईं है और इनके शरीर पर्वत और बड़े-बड़े बादलों के तुल्य हैं। इनकी आँखें गोल और पीली हैं; ये बड़ा भयङ्कर शब्द करते हैं। ये लङ्का को मर्दन करने की इच्छा से देख रहे हैं। इनके बीच में वह शतबली नामक वीर्यवान् वानर खड़ा है। विजय की इच्छा से यह नित्य सूर्य की आराधना करता है। यह अपनी सेना से लङ्का का नाश किया चाहता है। यह बड़ा पराक्रमी, बलवान् और शूर है। यह अपने ही पौरुष पर स्थिर रहता है। यह रामचन्द्र का प्रिय करने के लिए अपने प्राण को कुछ भी नहीं समझता। राजन्! गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील ये सब हर एक दस-दस करोड़ वानरों के अधिकारी हैं। इस सेना के बहुत से वानर विन्ध्य पर्वत पर रहनेवाले हैं और बहुत से ऐसे हैं जिनकी गिनती करना बड़ा कठिन है।

अति प्रभाव सब शैल तनु, कपिवर राक्षसराइ।
सकल भूमि के गिरिवरन्ह, छन महँ सकत ढहाइ॥

अट्टाईसवाँ सर्ग

शुक का वर्णन करना।

जब सारण कह चुका तब शुक नामक राक्षस ने रावण से कहा—हे राजन्! ये वानर, जिनको तुम खड़ा देखते हो, मस्त गजेन्द्र के तुल्य हैं। ये गङ्गा के किनारे के वट वृक्ष के समान और हिमवान् पर्वत पर के साखू वृक्ष की नाईं दिखाई दे रहे हैं। ये सब बली, कामरूपी दैत्य-दानवों के सदृश, युद्ध करने में देवताओं के समान और पराक्रमी हैं। ये गिनती में नव पाँच सात कोटि सहस्र तथा शंकु सहस्र एवं वृन्द शत हैं। ये सब सुग्रीव के मन्त्री हैं और सदा किष्किन्धा में रहते हैं। इनकी उत्पत्ति देवताओं और गन्धर्वों से है। आप जिन दो को वानरों और देवताओं के तुल्य मूर्तिमान् देखते हैं, ये मैन्द और द्विविद नामक वीर वानर हैं। संग्राम में इनके बराबर कोई नहीं है। ब्रह्मा की सम्मति से इन दोनों ने अमृत पिया था। ये दोनों अपने पराक्रम से लङ्का का मर्दन करना चाहते हैं। आप जिसको मद बहानेवाले हाथी के समान खड़ा देखते हैं, और जो क्रोधित होकर समुद्र को भी खलबला सकता है, यही पहले सीता का समाचार लेने लङ्का में आया था। आपने इसको देखा ही है। वही फिर आया है। यह केशरी वानर का बड़ा लड़का है। यह 'वायुपुत्र' नाम से प्रसिद्ध है। इसी का दूसरा नाम हनुमान् है। यह कामरूपी और बलवान् है। इसकी गति कहीं रुकती नहीं। इसे बचपन में एक बार भूख लगी; उसी समय सूर्य निकल रहा था, उसको देखकर यह तीन हज़ार योजन ऊपर कूद गया था।

परन्तु वह देव तो देवर्षि और राक्षसों से भी अधृष्य है, उसका कोई कुछ नहीं कर सकता; इसलिए यह उसे न पाकर उदयाचल पर गिर पड़ा। पत्थर पर गिरने से इसकी ठोढ़ी कुछ-कुछ टूट गई पर अधिक चोट नहीं लगी। इसी दृढ़ता के कारण इसका नाम 'हनुमान्' हुआ। पहला हाल ठीक-ठीक जानने से मैं हनुमान् को अच्छी तरह जानता हूँ। इसका बल, रूप और प्रभाव वर्णन करने के योग्य नहीं। यह अकेला ही लङ्का का मर्दन करना चाहता है। जिसने आपकी लङ्का में आग लगा दी थी उसे आप क्यों भूलते हैं?

उसके पास ही शूर, श्याम, कमल-नयन, इक्ष्वाकु-कुल में अतिरथी और विख्यातपराक्रमी रामचन्द्र हैं। उनमें सदा धर्म स्थिर रहता है। वे धर्म का उल्लङ्घन कभी नहीं करते। वे ब्रह्मास्त्र और वेदों को भी जानते हैं। वे वेदों के जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं। वे बाणों से आकाश को छेद सकते और पृथ्वी को विदीर्ण कर सकते हैं। उनका क्रोध मृत्यु के तुल्य और पराक्रम इन्द्र के समान है। उनकी स्त्री को जनस्थान से आप हर लाये हैं। वे आपसे लड़ने के लिए तैयार हो रहे हैं। उनकी दहिनी ओर जिस मनुष्य को आप देख रहे हैं वे लक्ष्मण हैं। उनका सोने का सा रङ्ग है, बड़ा वक्षःस्थल है, लाल आँखें हैं, और नीले घुँघराले बाल हैं। वे भाई के हित में सदा तत्पर, नीति और युद्ध करने में सदा चतुर, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, अमर्षी, दुर्जय, जयी, पराक्रमी, बल के अभिमानी, रामचन्द्र की दक्षिण भुजा और बाहर के प्राण हैं। ये रामचन्द्र के लिए अपने प्राण परित्याग करने के लिए भी सदा तैयार रहते हैं। युद्ध में ये अकेले ही सब राक्षसों को मारने की इच्छा रखते हैं। हे राजन्! यह जो राम की बाईं ओर चार राक्षसों से घिरा हुआ बैठा है, यह राजा विभीषण है। श्रीमान् राजराज महाराज रामचन्द्र ने लङ्का के राज्य का इसको तिलक कर दिया है। यह आपसे युद्ध करने को तैयार हो रहा है। महाराज! आप जिसको बड़े-बड़े वानरेन्द्रों के बीच में बैठा हुआ देखते हैं, यह वानरों का राजा है। जिस तरह पर्वतों में हिमवान् पर्वत शोभित है उसी तरह तेज, यश, बुद्धि, बल और कुल के कारण सब वानरों से यह अधिक शोभा पा रहा है। यह यूथपति वानरों के साथ किष्किन्धा में राज्य करता है। इसकी गर्दन में सोने की, सौ कमलों से बनी हुई, माला कैसी शोभा दे रही है। इस माला में देवताओं और मनुष्यों की लक्ष्मी रहती है। रामचन्द्रजी ने बाली को मारकर यह माला, बाली की स्त्री तारा और वानरों का सनातन राज्य इस सुग्रीव को सौंप दिया है। हे राजन्! सौ से गुणा करने पर सौ हज़ार को पण्डित लोग कोटि कहते और सौ हज़ार कोटि को शंकु कहते हैं। सौ हज़ार शंकु से महाशंकु, सौ हज़ार महाशंकु से एक वृन्द होता है। हज़ार वृन्द को सौ से गुणा करने से एक महावृन्द होता है। हज़ार महावृन्द को सौ से गुणा करने पर एक पद्म, हज़ार पद्म को सौ से गुणा करने से महापद्म, हज़ार महापद्म को सौ से गुणा करने से एक खर्ब, हज़ार खर्ब को सौ से गुणा करने से एक महाखर्ब, हज़ार महाखर्ब को सौ से गुणा करने से एक समुद्र, और हज़ार समुद्र को सौ से गुणा करने से महौघ होता है। हे राजन्, इस हिसाब से हज़ार महापद्म का सौ खर्ब, उसका समुद्र, उसका महौघ, उसका कोटि सहस्र, उसका

सौ शंकु, उसका हज़ार महाशंकु, उसका सौ वृन्द, उसका हज़ार महावृन्द, उसका सौ पद्म, उसका हज़ार महापद्म, उसका सौ खर्व, उसका हज़ार महाशंकु, उसका सौ वृन्द, उसका हज़ार महावृन्द, उसका सौ पद्म, उसका हज़ार महापद्म, उसका सौ खर्व, उसका समुद्र, उसका महौघ, उसका कोटि महौघ; इस सेना में इतने वानर हैं। वे समुद्र के समान दिखलाई दे रहे हैं। इतनी बड़ी सेना को, सचिवों को और विभीषण को साथ लिये हुए वह वानरेन्द्र सुग्रीव आपके साथ लड़ने के लिए तैयार हो रहा है।

दोहा

अति प्रदीप्त ग्रह इव निरखि, नाथ वानरी सेन।
हनहु यत्न करि शत्रु कहँ, जय पावहु तुम ऐन॥

उनतीसवाँ सर्ग

रावण का उन दोनों प्रधानों को निकाल और दूतों को भेजना।

इस तरह शुक के दिखाने पर रावण ने वानर-यूथपतियों को, राम के दक्षिण बाहु के तुल्य महापराक्रमी लक्ष्मण को, तथा राम के पास ही अपने भाई विभीषण को देखा। अब उसने सुग्रीव को और इन्द्र के पुत्र बाली के कुमार अङ्गद को तथा वीर हनुमान् को देखा और सुषेण, कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द, और द्विविद, इन सबको देखा। इनको देखकर वह मन में कुछ व्याकुल हो क्रोधित हो गया। फिर शुक और सारण से कड़ी-कड़ी बातें कहकर उनको धिक्कारने लगा। वे दोनों बेचारे अत्यन्त नम्रता-पूर्वक सिर नवाये हुए खड़े थे। परन्तु रावण क्रोधपूर्वक कठोर वचन कहने लगा—भला सुनो तो सही कि जो निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ है ऐसे राजा के पास युद्ध के लिए तैयार विरोधी शत्रुओं की इस तरह बेठिकाने स्तुति करना क्या तुम लोगों को उचित है? मैं जानता हूँ कि तुमने आचार्य, गुरु और वृद्धों की आज तक जो उपासना की है, तुमने उनके पास रहकर आज तक जो कुछ सीखा है, वह व्यर्थ है। राजनीति का जो सार ग्राह्य है उसे तुमने ग्रहण नहीं किया और न अच्छी तरह तुम उसे जान ही पाये। तुम केवल अज्ञान का भार ढो रहे हो। भला बड़ी कुशल तो यही है कि तुम जैसे मूर्ख सचिवों का साथ करके भी मैं आज तक राज्य कर रहा हूँ। क्या तुमको मरने का भी डर नहीं है जो तुमने इस तरह की कड़ी-कड़ी बातें मेरे सामने कीं? क्या तुम नहीं जानते कि शासन के समय मेरी जीभ शुभ और अशुभ दोनों कर सकती है? मेरी आज्ञा से जिह्वा जो कुछ कह जाती है वही हो जाता है। इस बात को तुम निश्चय जानो कि वन में आग लग जाने पर वृक्ष चाहे जलने से बच जाय, पर राजद्रोही अपराधी कभी नहीं बच सकते। क्या कहूँ, शत्रुपक्ष की प्रशंसा करने के कारण तुम दोनों को मैं अवश्य ही मार डालता; पर क्या करूँ, तुमने मेरे साथ पहले जो उपकार किये हैं वे मेरे क्रोध को नरम कर देते हैं। अब तुम लोग मेरे सामने से चले जाओ। ख़बरदार! मेरी ओर मत देखना। मैं तुमको मारना नहीं चाहता; क्योंकि तुम्हारे उपकारों को मैं याद करता हूँ। मारना क्या है, तुम कृतघ्नता के दोष से और मेरे ऊपर स्नेह न रखने के कारण आप ही मारे हुए से हो।

राजा की ये कठोर बातें सुनकर वे दोनों शुक और सारण बहुत झेंपे और रावण की जय बोलकर वहां से चले गये। इसके बाद रावण ने समीपवर्ती महोदर से कहा कि मेरे पास दूतों को लिवा लाओ। आज्ञा पाते ही महोदर ने दूतों को ला खड़ा कर दिया। वे लोग हाथ जोड़, जय के आशीर्वाद से राजा की इज़्ज़त कर, खड़े हो गये।

अब रावण ने उन दूतों को विश्वासी, शूर और निडर समझकर आज्ञा दी—तुम लोग राम के सब कामों की परीक्षा लेने जाओ और पता लगाओ कि वे किस समय क्या-क्या किया चाहते हैं? उनसे प्रीति-पूर्वक कौन-कौन मिले हैं? राम किस तरह सोते-बैठते और किस तरह जागते हैं? आज वे क्या करेंगे? सब बातों का पता लगाकर चले आओ; क्योंकि चतुर राजा, दूतों के द्वारा, शत्रु का सब हाल जानकर युद्ध में, थोड़े ही प्रयास से, उसका उपाय कर, जय प्राप्त कर लेते हैं। वे दूत राजा की आज्ञा पा "जो आज्ञा" कहकर प्रसन्न हो, शार्दूल को आगे कर और रावण की प्रदक्षिणा करके, वहाँ से राम की ओर को चले। वे सुबेल पर्वत के पास पहुँचकर गुप्त रूप से राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण को देखने लगे। जब उन्होंने उस वानरी सेना को देखा तब तो उनके होश उड़ गये। इतने में राक्षसेन्द्र विभीषण ने उनको देखकर पहचान लिया और शार्दूल नामक दूत को पकड़वा लिया; क्योंकि वह बड़ा दुष्ट था। जब रामचन्द्र ने देखा कि वानरों से वह बहुत कष्ट पा रहा है तब उन्होंने उसे छुड़वा दिया। इसी तरह बाकी राक्षस भी पकड़े गये। वानरों ने उन्हें भी ख़ूब मारा-पीटा और कष्ट पहुँचाया, पर दयालु रामचन्द्रजी ने उनको भी छुड़वा दिया। वे राक्षस ऊपर-नीचे को साँस लेते हुए, अचेत होकर, किसी तरह लङ्का में पहुँचे। वहाँ का सब समाचार उन्होंने रावण से कह सुनाया।

दोहा

समाचार सब रावणहि, आय सुनायो चार।
गिरि सुबेल पर राम सँग, वानर सेन अपार॥

तीसवाँ सर्ग

शार्दूल का वानरी सेना के विषय में कुछ कहना।

दूतों ने कहा कि राम सुबेल पर्वत पर आ गये; उनकी सेना बड़ी दुर्धर्ष है। दूतों के द्वारा उनका हाल सुनकर रावण कुछ घबरा गया; फिर शार्दूल से कहने लगा—हे राक्षसो! तुम्हारे मुँह का रङ्ग कैसा हो गया? तुम दीन मनुष्य की तरह क्यों दिखाई देते हो? तुम क्रोधित शत्रुओं के फन्दे में तो नहीं पड़ गये? रावण की बातें सुनकर शार्दूल धीरे-धीरे कहने लगा—राजन्! उस वानरी सेना में जासूसी नहीं चल सकती; क्योंकि उसमें बड़े-बड़े पराक्रमी बलवान् वानर हैं। वे सदा राम की रक्षा में रहते हैं। न तो उनसे कुछ कहा ही जा सकता है और न कुछ पूछा ही जा सकता है। वे पर्वताकार वानर उस मार्ग की रक्षा करने के लिए नियुक्त हैं। ज्योंही मैं सेना में घुसा त्योंही पहचान लिया गया और विभीषण के साथी राक्षसों ने मुझे बलपूर्वक पकड़ लिया। मैं वहाँ बहुत तरह से दौड़ाया गया। बन्दरों ने मुझे घुटनों से, मुट्ठियों से, दाँतों से, लातों से और थप्पड़ों से, ख़ूब

मारा-पीटा और मुझे चारों ओर घुमाया। फिर मैं रामचन्द्र की सभा में भेजा गया। उस समय मेरा शरीर ख़ून से लथपथ था और मैं दीन-मुख हो रहा था। सब इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं। इतने पर भी वानर मुझे सता रहे थे। मैं हाथ जोड़े हुए उनसे प्रार्थना करता था। उसी समय रामचन्द्र ने 'हाँ हाँ, ऐसा मत करो' कहकर मुझे बचा लिया। हे राक्षसेन्द्र! ये रामचन्द्र पर्वतों और पत्थरों से समुद्र को पूरकर लङ्का के द्वार पर शस्त्र लिये हुए खड़े हैं। गरुड़-व्यूह से सेना की रचना की गई है। मुझे तो उन्होंने बिदा कर दिया, पर आप लङ्का की ओर दृष्टि किये हुए तैयार हो रहे हैं। वे आपकी नगरी के प्राकार के पास पहुँचना ही चाहते हैं। अब आप दो में से एक काम कीजिए। या तो उन्हें सीता दे डालिए या उनसे युद्ध कीजिए।

शार्दूल की ये बातें सुनकर और मन में कुछ सोचकर रावण ने कहा—"यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे लड़ने को तैयार हों और सब लोकों से भी मुझे डर मालूम होने लगे तो भी मैं सीता को न दूँगा।" उसने और भी कहा—तुम तो सेना में घूम आये हो, भला यह तो कहो कि उसमें कौन-कौन वानर शूर हैं? वे कैसे तेजस्वी, किस तरह के और कैसे दुर्धर्ष हैं? वे किसके पुत्र और किसके पौत्र हैं? यह सब हाल ठीक-ठीक कहो। उनका बलाबल समझ लूँ तो वैसा प्रबन्ध करूँ; क्योंकि जो युद्ध करना चाहता है उसे पहले शत्रु के बलाबल का विचार और उनकी गिनती करना आवश्यक है।

शार्दूल ने कहा—महाराज! ऋक्षरजा का पुत्र तो संग्राम में दुर्जय है। गद्गद का पुत्र जाम्बवान् है। उसी गद्गद का एक और भी पुत्र है, जिसका नाम धूम्र है। इन्द्र के गुरु का पुत्र केशरी है। इसी केशरी के पुत्र हनुमान् ने बहुत से राक्षसों को मारा है। इनमें सुषेण नामक वानर धर्मात्मा है। यह धर्म का पुत्र है। चन्द्र का पुत्र स्वभाव से सरल दधिमुख नामक वानर है। हे राजन्! इस सेना में सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी, ये तीन वानर तो मृत्यु के से अवतार हैं। अग्नि का पुत्र नील इस सेना का मालिक है। वायु का पुत्र हनुमान् भी सेना में है। इन्द्र का पौत्र अङ्गद युवा और बड़ा दुर्धर्ष है। मैन्द और द्विविद, दोनों अश्विनी-कुमार के पुत्र हैं। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन, ये पाँचों यमराज के पुत्र हैं। ये पराक्रम करने में कालान्तक के तुल्य हैं। महाराज! इस सेना में दस करोड़ वानर तो देवताओं की सन्तान हैं। ये सब शूर, श्रीमान् और युद्धाभिलाषी हैं। बाक़ी वानरों का वर्णन करने की मेरी हिम्मत नहीं होती। सिंह की सी चालवाले ये युवा, राजा दशरथ के पुत्र, श्रीरामचन्द्रजी हैं। इन्होंने दूषण, खर और त्रिशिरा को मारा, और विराध तथा कबन्ध का घात किया। पराक्रम करने में इनके समान आज पृथ्वी पर कोई नहीं है। ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं जो राम के सब गुणों का वर्णन कर सके। इन्होंने अकेले ही जनस्थान के सब राक्षसों को मार गिराया। लक्ष्मण भी मस्त गजेन्द्र के तुल्य हैं। इनके बाणों के सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते। श्वेत और ज्योतिर्मय दोनों सूर्य के पुत्र हैं। वरुण का पुत्र हेमकूट नामक वानर है। विश्वकर्मा का पुत्र नल नामक और वसु का पुत्र दर्दुर नामक वानर है।

दोहा

लङ्का नृप तव भ्रात लघु, नाथ विभीषण जान ।
हित में तत्पर राम के, पाइ राज सनमान ॥
एहि विधि शैल सुबेल पर, सेना पहुँची आय ।
राक्षसेन्द्र अब सोचि मन, जय कर करहु उपाय ॥

इकतीसवाँ सर्ग

विद्युज्जिह्व के द्वारा मायापूर्वक रावण का सीता को मोहित करना ।

जो और दूत राम की सेना का पता लेने गये थे वे सब आकर सेना-सहित राम का सुबेल पर्वत पर ठहरना रावण को सुनाने लगे । उनके द्वारा राम का सब हाल सुनकर राक्षसराज मन में कुछ घबराकर अपने सचिवों से कहने लगा—"मेरे सब मन्त्री सावधानी से आवें; क्योंकि मन्त्रणा करने का यही समय है ।" उसकी आज्ञा से सब मन्त्री इकट्ठे हो गये । अब विचार होने लगा । उस विचार में आगे के कर्त्तव्य का निर्णय करके रावण ने मन्त्रियों को बिदा कर दिया और आप अपने घर में गया ।

अब विद्युज्जिह्व नामक मायावी राक्षस को अपने साथ लेकर रावण वहाँ पहुँचा जहाँ मैथिली रहती थीं । उसने मायावी से कहा—"मैं माया के द्वारा सीता को मोहित करूँगा, इसलिए तुम माया से रामचन्द्र का सिर, बड़ा धनुष, और बाण लेकर मेरे पास जल्दी आकर हाज़िर हो ।" आज्ञा पाते ही विद्युज्जिह्व ने उसी तरह की माया करके रावण को दिखलाई । उसने सन्तुष्ट होकर पारितोषिक में विद्युज्जिह्व को भूषण दिये । फिर सीता को देखने के लिए वह अशोकवाटिका में गया । वहाँ सीता नीचे मुँह किये हुए, शोक में लवलीन, पति के ध्यान में मग्न और राक्षसियों से घिरी हुई ज़मीन पर बैठी थीं । वहाँ पहुँचकर उसने सीता को देखा । फिर वह उनके पास गया और अपना नाम सुनाकर धृष्टतापूर्वक कहने लगा—"भद्रे ! देख, तुझे मैंने कितना समझाया परन्तु तू, राम के भरोसे, मेरा अनादर ही करती रही । ले, खर का मारनेवाला तेरा यह पति संग्राम में मारा गया । अब तो मैंने सब तरह से तेरी जड़ काट डाली और तेरे गर्व को नष्ट कर दिया । अब तो तुम आप ही मेरी स्त्री बनोगी । इसलिए अब इस कुमति को छोड़ दो । हे मूढ़े ! अब तुम इस मुर्दा शरीर से क्या करोगी ? चलो, मेरी सब स्त्रियों की स्वामिनी बनो । हे थोड़े पुण्यवाली, हे नष्टार्थे, हे मूर्खे, हे अपने को समझदार माननेवाली ! अपने पति का मारा जाना सुन; वह बड़ी बुरी तरह, वृत्रासुर की भाँति, मारा गया ।

"देखो, सुग्रीव की वानरी सेना लेकर राघव मेरे मारने के लिए समुद्र के इस पार आये थे । वे समुद्र के किनारे सेना-सहित टिके हुए थे । उस समय सूर्य छिप रहा था । मार्ग चलने से थकी हुई सेना आराम से सो रही थी । जब यह हाल दूतों से सुना तब आधी रात के समय बड़ी सेना लेकर प्रहस्त चढ़ गया । उनकी सेना मारी गई । वहाँ पर परिघ, चक्र, ऋष्टि, दण्ड, बहुत से बाण, चमकीले शूल, काँटेदार मुद्गर, लाठी, तोमर, पाश और चक्राकार मुशल, ये सब शस्त्र उठा-उठाकर राक्षसों ने जल्दी से वानरों पर चलाये । वे इस बड़े हमले से मारे गये । पैंतरे के साथ, बड़ी तलवार से, प्रहस्त ने

सोते हुए राम का सिर सहज में काट लिया। उसने विभीषण को भी मारा और लक्ष्मण तो बहुत से वानरों के साथ भाग गये। वानरराज सुग्रीव का सिर काट लिया गया। राक्षसों ने हनुमान् की ठुड्डी काट ली और उसे मार गिराया। जाम्बवान् कूदकर भागना चाहते थे, पर घुटनों की मार से वे भी मरे पड़े हैं। राक्षसों ने पटों के प्रहार से उनको ऐसे काट डाला जैसे वृक्ष काटा जाता है। बड़े शरीरवाले मैन्द और द्विविद भी ऊपर और नीचे को साँस लेते हुए रोते और ख़ून से लथपथ पड़े हैं। वे तलवार से अधकट कर डाल दिये गये हैं। पनस की दशा कटहर के तुल्य कर दी गई। दरीमुख तो बहुत बाणों के प्रहार से मरा हुआ कन्दरा में सो रहा है। कुमुद नामक वानर दीन शब्द करता हुआ बाणों के प्रहार से मारा गया। इसी तरह अङ्गद भी मारे बाणों के ख़ून ओकता हुआ मारा गया। बहुत से वानरों को तो हाथियों ने कुचल डाला; बहुत से रथों की झपट से पिस गये; और बहुत से सोये हुए रौंद डाले गये। वे ऐसे लापता हो गये जैसे हवा के ज़ोर से मेघों का पता नहीं लगता। बहुत से मारे जाने के समय इधर-उधर तितर-बितर हो गये। बहुत से, राक्षसों से लताड़े हुए, ऐसे भाग गये जैसे सिंह की झपट से हाथी भागते हैं। कितने ही तो समुद्र में जा पड़े और अगणित आकाश में उड़ गये। सब वानरों के साथ भालू वृक्षों पर चढ़ गये। कितने ही तो सागर के करारों में और बहुत से पर्वतों तथा वनों में पाये गये। जहाँ तक मिले सब वानरों को राक्षसों ने मार डाला। इस तरह सेना-सहित तुम्हारे पति मेरी सेना के द्वारा मारे गये। उनका यह कटा हुआ सिर तुम्हें दिखलाने के लिए लाया गया है। देखो, यह ख़ून और धूल से लिपटा हुआ है।"

अब वह महाधृष्ट रावण सीता को सुनाकर एक राक्षसी से बोला—जा, विद्युज्जिह्व राक्षस को तो बुला ला, जिसने यह बड़ा कठिन काम किया है। रामचन्द्र के सिर को सङ्ग्राम में से वही लाया है। तब विद्युज्जिह्व उस सिर को और धनुष को लिये हुए आ गया। वह रावण को प्रणाम करके खड़ा हो गया। रावण ने उससे कहा कि तुम दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का सिर बहुत जल्दी सीता के सामने करो। यह दीन सीता अपने पति की पिछली दशा देख ले। आज्ञा पाते ही उसने उसी सिर को सीता के पास रख दिया और आप छिप गया। तब रावण ने उस चमकीले धनुष को भी सीता के पास रखकर कहा—देखो, यह राम का धनुप है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। इसमें प्रत्यञ्चा भी चढ़ी हुई है। रात को उसे मारकर प्रहस्त इसे ले आया है।

सोरठा

सिर और धनुष देखाइ, मायामय दससीस खल।
सियहि कहत समझाइ, अब तुम पत्नी होहु मम॥

बत्तीसवाँ सर्ग

सीता का विलाप और रावण का वहाँ से चला जाना।

अब सीताजी उस सिर और धनुष को देखकर सुग्रीव के साथ रामचन्द्रजी की मैत्री का स्मरण करने लगीं, जिसका हनुमान् ने उनसे ज़िक्र किया

था। वे रामचन्द्रजी के से नेत्रों को, मुख और मुख के रङ्ग को, बालों और बालों की जड़ों को तथा उस चूड़ामणि को अच्छी तरह पहचानकर और उस बात पर विश्वास करके बहुत दुःखित हुईं। वे कैकेयी की निन्दा कर कुररी की तरह विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं—हे कैकेयि! अब तेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। देख, ये कुलनन्दन मारे गये। तूने अपने झगड़ालू स्वभाव से इस कुल का नाश कर दिया। हा! आर्य रामचन्द्र ने कैकेयी का ऐसा क्या बिगाड़ा था जिससे उसने मेरे साथ उनको चीर वस्त्र पहनाकर वन में भेजा! इस तरह कहती और काँपती हुई तपस्विनी जानकी, कटी हुई कदली की तरह, ज़मीन पर गिर पड़ी।

थोड़ी देर में चेत होने पर उठी और उसी सिर को लेकर विलाप करने लगी—"हा! महाबाहो, हे वीरव्रतधारिन्! मैं इस समय तुम्हारी अन्तिम दशा देख रही हूँ। अब मैं विधवा हो गई! हा! स्त्री से पहले पति का मरना स्त्रीकृत अनर्थ कहलाता है। सो आप मुझ धर्मचारिणी से पहले ही परलोक को सिधार गये। देखो, मैं बड़े दुःख में पड़ी हुई शोकसागर में डूब रही थी। आप मेरा उद्धार करने के लिए तत्पर थे; सो भी आप मारे गये। हाय! मेरी वह सास कौशल्या आपके रहने से वत्सला कहलाती थी, वह भी बिना बछड़े की गौ की नाईं निर्वत्सला कर दी गई। हे रामचन्द्र! ज्योतिषियों ने आपको दीर्घायु बतलाया था, तो उनका कथन क्या मिथ्या हुआ? क्या आप जैसे पण्डित की भी बुद्धि नष्ट हो गई अथवा आप का दोष ही क्या है? काल की ऐसी ही गति है; क्योंकि वही जगत् का कारण है। हे राम! भला आप तो नीतिशास्त्र को जानते थे और उपाय करने में पण्डित तथा शत्रु के हराने में चतुर थे। फिर इस तरह अचानक आपकी मृत्यु कैसे हुई? हा! घोर और क्रूररूपा कालरात्रि ने कमल-लोचन आपको मुझसे छीन लिया। हे महाबाहो! मुझ तपस्विनी को छोड़कर, प्यारी स्त्री की नाईं पृथिवी से लिपटकर, आप कहाँ सो रहे हैं?

"हा! सोने से भूषित आपका यह धनुष मेरा प्यारा है; मैं इसे रोज़ बड़े यत्न से चन्दन और फूलों से पूजती थी। हे राघव! आप अपने पिता दशरथ और सब पितरों के साथ स्वर्ग में जाकर मिले होंगे। हे रामचन्द्र! स्वर्ग तक प्रसिद्ध और बड़े अनुष्ठान अर्थात् पिता की आज्ञा के पालन से प्राप्त हुए पुण्य को और पवित्र राजर्षि वंश को आप क्यों छोड़ते हैं? हे राघव! आप मुझे क्यों नहीं देखते या मुझसे क्यों नहीं बोलते? देखो, आपने बचपन में मुझ सहचारिणी स्त्री को प्राप्त किया। पाणिग्रहण के समय आपने प्रतिज्ञा की थी कि तेरे साथ मैं धर्माचरण करूँगा। उसे याद करो और मुझे भी वहीं ले चलो जहाँ आप गये हैं। हे गति जाननेवालों में श्रेष्ठ! आप मुझे यहीं छोड़कर ख़ुद परलोक में क्यों चले गये? मेरे दुःख का आपने ख़याल नहीं किया। हा! आपके जिस मङ्गल रूप मनोहर शरीर का मैंने आलिङ्गन किया था उसे अब मांसाहारी जन्तु खींचेंगे! पूर्ण दक्षिणायुक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ करके आपने जो संस्कार किये थे, उन संस्कारों को इस समय अग्निहोत्र द्वारा आप क्यों ग्रहण नहीं करते? हम तीन वनवासियों में से जब सिर्फ़ एक लक्ष्मण ही लौटकर अयोध्या जायँगे तब वह शोकातुरा कौशल्या सब

चिन्ता-मग्ना सीता ।

समाचार पूछने लगेगी। जब वह सुनेगी कि आपके मित्र की सेना मारी गई तथा रात में सोते हुए आपको राक्षसों ने नष्ट कर डाला, और जब उसके कानों में यह समाचार पहुँचेगा कि 'मैं राक्षस के क़ैदख़ाने में घिरी हुई हूँ' तब वह छाती पीट-पीटकर मर जायगी। हा! मुझ अनार्या के कारण राजपुत्र श्री-रामचन्द्र सागर के पार होकर गौ के खुर भर पानी में मारे हुए पड़े हैं। हा! मुझ कुलपांसिनी के साथ विवाह करके रामचन्द्र ने बड़ी भूल की क्योंकि मैं स्त्री उस राजपुत्र के लिए मृत्युरूप हुई। मैंने पूर्व जन्म में उत्तम दान देने में बाधा अवश्य दी होगी, इसी कारण इस जन्म में सब अतिथियों के प्यारे की स्त्री होने पर भी मैं सोच रही हूँ। हे रावण! मुझे भी मारकर राम के ऊपर डाल दे। पति को पत्नी से मिलाकर, उत्तम कल्याण कार्य करके, राम के सिर से मेरा सिर और देह से देह मिला दे। मैं महात्मा पति की गति का अनुसरण करूँगी।"

इस तरह विशालनयनी दुखिया सीता, पति के सिर और धनुष को देखकर, विलाप कर रही थी कि इतने में रावण की सेना का एक मनुष्य हाथ जोड़े हुए रावण के पास आकर खड़ा हो गया। उसने 'हे आर्यपुत्र! आपकी जीत हो' कहकर उसे प्रणाम किया। फिर रावण को प्रसन्न करके उसने यह समाचार सुनाया कि सेनापति प्रहस्त सब मन्त्रियों को साथ लिये हुए आपके दर्शन करना चाहते हैं। उन्होंने बहुत जल्दी मुझे आपके पास भेजा है। महाराज! कुछ ऐसा ही ज़रूरी राजकार्य आ पड़ा है, इसलिए आप कृपा कर उनको दर्शन दीजिए। इतना सुनते ही राक्षस-राज अशोक-वाटिका छोड़कर उन मन्त्रियों के पास गया। उनके साथ सब कामों की सलाह करके फिर वह सभा में गया। वहाँ रामचन्द्र के पराक्रम का विचार करके, उनके लिए वह जो प्रबन्ध करना चाहता था वह प्रबन्ध करा दिया। जिस समय रावण अशोक-वाटिका से चलने लगा उसी समय वह सिर और धनुष न मालूम क्या हो गया। वे फिर दिखलाई भी न पड़े। रावण ने मन्त्रियों के साथ राम के विषय में दृढ़ विचार करके पास में खड़े हुए सेनापतियों को आज्ञा दी—तुम लोग तुरही और पटह आदि लड़ाई के बाजों को बजाते हुए मेरी सेना को यहाँ ले आओ। इसका कारण किसी को कुछ मत बतलाओ।

दोहा

तेहि छिन राक्षसराज की, इहि विधि आज्ञा पाय।
सकल सेन सन्नद्ध करि, नृप ढिग लाये धाय॥

तेंतीसवाँ सर्ग

सरमा नाम राक्षसी का सीता को समझाना।

सीता को माया से मोहित देख विभीषण की स्त्री सरमा नाम की राक्षसी उसके पास आकर बैठ गई। यह सीता पर प्रेम करती और उसे सखी भाव से चाहती थी। इसका कारण यह भी था कि रावण ने सरमा को दयावती और दृढ़व्रत देखकर, सीता की रक्षा करने के लिए, उसके पास रख दिया था। सीता भी उसके साथ मित्रभाव रखती थी। अब उसने आकर देखा तो सीता अत्यन्त व्याकुल और शोकपीड़ित हो ज़मीन पर लोट रही है; उसके सब अङ्गों में धूल भरी हुई है और वह अचेत हो रही है। उसे ऐसी दशा में देखकर

सरमा समझाने लगी—हे सीते ! रावण ने तुमसे जो कुछ कहा और तुमने उसे जो उत्तर दिया वह सब मैंने सखी भाव से, एकान्त वन में छिपकर, सुन लिया। तुम्हारे लिए मैं रावण से बिलकुल नहीं डरती। वाटिका से घबराकर रावण क्यों निकला ? इसका भी कारण मैंने बाहर जाकर जान लिया। हे सीते ! नींद में आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र का प्राण-घात नहीं हो सकता। वह पुरुषसिंह किसी तरह मारा नहीं जा सकता और न वे वानर ही किसी तरह मारे जा सकते हैं जो वृक्ष ले-लेकर युद्ध करते हैं। इन्द्र आदि देवताओं का भी ऐसा सामर्थ्य नहीं कि उन्हें मार सकें; फिर राक्षसों की तो बात ही क्या है। वे सब रामचन्द्रजी की छाया में निर्भय रहते हैं। हे मैथिलि ! घुटनों तक लम्बी भुजाओंवाले, चौड़ी छातीवाले, श्रीमान्, प्रतापी, धनुर्द्धर, कवचधारी, धर्मात्मा, विख्यात पराक्रमी, अपनी और दूसरे की भी रक्षा करनेवाले तथा नीतिशास्त्र के पण्डित श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित कुशलपूर्वक हैं। हे सीते ! शत्रु की सेना को मारनेवाले श्रीरामचन्द्र मारे नहीं गये। उनके बल और पौरुष की थाह नहीं है। यह केवल मायावी रावण ने तुम पर माया की थी। वह बुद्धि और कार्य दोनों में अयोग्य है। वह सब प्राणियों से विरोध रखता है। इसका स्वभाव बड़ा क्रूर है। हे सीते ! आपका शोक नष्ट हुआ, आनन्द का समय आ गया। अब आपको ज़रूर लक्ष्मी प्राप्त होगी, क्योंकि आपका प्रिय कार्य हो रहा है; सुनो—

वानरी सेना के साथ समुद्र-पार होकर रामचन्द्रजी दक्षिण किनारे पर आ गये हैं। लक्ष्मण को साथ लिये हुए पूर्णमनोरथ श्रीरामचन्द्र को मैंने अपनी आँखों से देखा है। मैं सुनी हुई बात नहीं कहती। समुद्र के किनारे पर ही उनकी सब सेना उन्हें घेरे पड़ी है। रावण ने शीघ्रगामी दूतों को समाचार लेने भेजा था। उन्होंने रावण से यही समाचार कहा कि रामचन्द्र समुद्र के इस पार आ गये हैं। यह समाचार पाकर रावण अब अपने मन्त्रियों के साथ सलाह कर रहा है।

सरमा इतनी बात कह ही रही थी कि इतने में सेना में से बड़ा भयङ्कर शब्द सुनाई पड़ा। तुरही की बड़ी आवाज़ सुनकर मधुर बोलनेवाली सरमा सीता से कहने लगी—देवि ! सुनो, युद्ध के समय उत्साहित करने के लिए यह भेरी का महाभयङ्कर शब्द हो रहा है। यह ठीक मेघगर्जन के तुल्य है। सेना में मतवाले हाथी तैयार किये जा रहे हैं, रथों में घोड़े जोते जा रहे हैं और बड़े-बड़े हज़ारों वीर हाथों में भाला लिये घोड़ों पर चढ़े हुए दिखाई दे रहे हैं। असंख्य वीर जिरहबख्तर पहने हुए जहाँ-तहाँ इकट्ठे हो रहे हैं और अद्भुत रूप की सेना से सब राजमार्ग ऐसे भरे जा रहे हैं जैसे शब्द करते हुए वेगवान् जल के प्रवाहों से सागर भरा जाता हो। देखो, निर्मल शस्त्रों, ढालों, कवचों, रथों, घोड़ों, हाथियों और रावण के अनुगामी राक्षसों का यह कैसा शोर हो रहा है। इनके हथियारों में से अनेक रङ्ग की ऐसी चमक निकल रही है जैसे गरमी के समय में वन की आग का रूप होता है। हे सीते ! सुनो, घण्टों के बजने से कैसे शब्द हो रहे हैं। रथों के पहियों की घर्घराहट कैसी सुनाई दे रही है। घोड़े कैसे हिनहिना रहे हैं। युद्ध के लिए तुरही का कैसा शब्द हो रहा है। हे जानकि ! इन शस्त्रधारी राक्षसों

का कैसा भयङ्कर शब्द हो रहा है, जिसको सुनकर रोयें खड़े हो जाते हैं। हे देवि! तुमको वह जयश्री मिलना चाहती है जो तुम्हारे शोक को नष्ट करेगी। जिस तरह इन्द्र से दैत्यों को भय हुआ था उसी तरह रामचन्द्र से राक्षसों को भय आ पहुँचा है। क्रोध को वश में रखनेवाले अचिन्त्य-पराक्रम रामचन्द्र, रावण को मारकर, तुमको मिलेंगे। तुम्हारे पति, लक्ष्मण के साथ, राक्षसों पर ऐसा पराक्रम प्रकट करेंगे जैसे विष्णु के साथ इन्द्र दैत्यों पर पराक्रम करते हैं। हे मैथिलि! शत्रु के मारे जाने पर मैं तुमको राम की गोद में देखूँगी। ये सब बातें बहुत जल्दी होना चाहती हैं। तुम पति से मिलकर आनन्द के आँसू बहाओगी। यह तुम्हारे बालों का जूड़ा, जो जाँघों तक लटक रहा है और बहुत दिन से हाथ न लगने के कारण उलझ रहा है, इसे श्रीरामचन्द्रजी बहुत जल्दी अपने हाथों से सुधारेंगे। हे देवि! जब तू पूर्ण उदय हुए चन्द्रमा की नाईं रामचन्द्र के मुँह को देखेगी तब शोक से आँसू बहाना इस तरह छोड़ देगी जिस तरह कि नागिन पुरानी केंचली को छोड़ देती है। सुख के योग्य रामचन्द्र जल्दी तुमको पाकर सुखी होंगे। जिस तरह धान्य-पूर्ण पृथ्वी वर्षा का पानी पाकर मनोहर हो जाती है उसी तरह रामचन्द्र के प्रेम-व्यवहार से तुम सन्तुष्ट होगी।

दोहा

हय इव जो नित मेरु के, करत भ्रमण चहुँ पास।
ध्यावहु तेहि जगजनक को, रवि तव पुजइहि आस।

———

चौंतीसवाँ सर्ग

सरमा का रावण के कामों को गुप्त रूप से देखना और फिर सीता को सब समाचार कह सुनाना।

रावण की माया से अत्यन्त दुःखित सीता को सरमा ने इस तरह शान्त किया जिस तरह गरमी की ऋतु में तपी हुई पृथ्वी को वर्षा ठण्डा करती है। फिर भी वह सरमा सीता की भलाई करने की इच्छा से हँसकर कहने लगी—हे कमलनयने! मैं चाहती हूँ कि गुप्त रूप से जाकर तुम्हारा कुशल-क्षेम राम से कहूँ और उनका कुशल पूछकर लौट आऊँ। हे सीते! जब मैं आकाश में अधर चली जाती हूँ तब गरुड़ या वायु की भी ऐसी सामर्थ्य नहीं कि मुझे पकड़ ले या जान ले कि मैं जा रही हूँ। राक्षसों की तो कुछ बात ही नहीं।

सरमा की बातें सुनकर सीता कोमल वाणी से कहने लगी—हे प्रिये! मैं जानती हूँ कि तू आकाश और रसातल में भी जा सकती है और ऐसा कोई काम नहीं जो तू मेरे लिए न कर सके। परन्तु यदि तू मेरा प्रिय काम करना ही चाहती है और तेरी बुद्धि भी स्थिर है तो पता लगा करके मुझे बतला दे कि इस समय रावण क्या कर रहा है; मैं जानना चाहती हूँ; क्योंकि वह क्रूर है और माया का बहुत बल रखता है। जैसे मद्यपान करते ही नशा चढ़ जाता है वैसे ही वह थोड़ी-थोड़ी देर में मुझे चक्कर में डालता रहता है। देख तो, वह इन भयङ्कर राक्षसियों से मुझे बार-बार डाँट-डपट और घुड़की दिलवाया करता है। उसने इन्हीं को

मेरी रक्षा के लिए भी नियत कर रक्खा है। इस-लिए मैं सदा उद्विग्न और शङ्कित रहती हूँ। मेरा मन ठिकाने नहीं रहता। उसके भय से सदा डरती हुई इस अशोकवाटिका में पड़ी हूँ। यदि उसकी कोई बात या किसी बात के करने में उसका निश्चित विचार तू मुझे बता दे तो मेरे ऊपर तेरी बड़ी कृपा हो। जब इस तरह अश्रुपूर्ण मुख से सीता ने कहा तब सरमा उसका मुँह छूकर बोली—हे देवि! अच्छी बात है, जो तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अभी जाकर समाचार लाती हूँ।

अब सरमा रावण के यहाँ गई और वहाँ मन्त्रियों के साथ उसकी बातचीत और कामों का निश्चय सुनकर सीता के पास लौट आई। जब तक वह लौट नहीं आई तब तक सीता उसकी बाट जोहती रहीं। उसे आती हुई देख सीता ख़ुद उठकर उससे मिलीं और उसे बैठने के लिए आसन दिया। सीता ने कहा—"सखि! तू यहाँ सुख से बैठकर दुष्ट रावण का निश्चय मुझे सुना।" सरमा रावण का सब समाचार यों कहने लगी—हे वैदेहि! बड़े प्यारे बुड्ढे मन्त्री के द्वारा रावण की माता ने तुमको छोड़ने के लिए उसे बहुत समझाया कि मनुजेन्द्र श्रीरामचन्द्र को सीता सौंप दो; क्योंकि तुम देख रहे हो कि जनस्थान में रामचन्द्र ने कैसा भारी और अद्भुत काम किया है। फिर हनुमान् ने कूदकर समुद्र को लाँघ सीता को देख लिया तथा युद्ध में राक्षसों को मारा। भला कहो तो सही, क्या ये सब काम मनुष्य के हैं? हे देवि! इस तरह उसकी माता ने तथा वृद्ध मन्त्री ने भी उसे बहुत समझाया पर वह तुमको इस प्रकार छोड़ना नहीं चाहता जिस तरह से धन का लोभी धन नहीं छोड़ता। हे देवि! युद्ध में मरे बिना वह तुमको न छोड़ेगा। उसके मन्त्रियों का भी यही निश्चित विचार है। हे देवि! मृत्यु की प्रेरणा से उसका ऐसा ही पक्का विचार हो रहा है। वह डरकर तुमको छोड़ना नहीं चाहता। जब तक वह संग्राम में मारा न जायगा तब तक तुम्हारा छुटकारा न होगा। जब वह सब राक्षसों का और अपना नाश करवा लेगा तभी तुमको छोड़ेगा। मैं जानती हूँ कि रामचन्द्र सब तरह पैने-पैने बाणों से इसको मारकर तुम्हें अयोध्या में ले जावेंगे।

सरमा के इतना कहते ही तुरही और शङ्ख से मिला हुआ सब सेनाओं का घोर शब्द, पृथ्वी को कँपाता हुआ, सुनाई दिया।

छन्द

घननाद सुनि कपिसैन्यकर सब रजनिचर व्याकुल भये।
भे हीन-पौरुष दीन रूप सुबुद्धि बल तिनके छये॥
अति खिन्न मन नृपदोष ते मङ्गल न बपुरे देखहीं।
रघुवीर-सङ्गर-यज्ञ महँ पशुभूत आपुहि पेखहीं॥

पैंतीसवाँ सर्ग

माल्यवान् नामक राक्षस का रावण को समझाना।

शङ्ख से मिले हुए उस तुरही के शब्द के साथ रामचन्द्र लङ्का पर चढ़े आते थे। इतने में रावण ने वह शब्द सुना। थोड़ी देर तक कुछ विचार करके वह अपने मन्त्रियों की ओर देखने लगा। वह सबको बुलाकर, सभा को गुञ्जायमान

करता हुआ निन्दापूर्वक कहने लगा—देखो, राम का समुद्र पार उतरना, उनका पराक्रम, बल और पौरुष, जो तुम लोगों ने बतलाया वह सब मैंने सुना। मैं भी युद्ध में तुमको सच्चा पराक्रम करनेवाला जानता हूँ; पर इस समय तुम सब रामचन्द्र को महापराक्रमी समझकर चुपचाप एक दूसरे का मुँह देख रहे हो। रावण इस तरह बातचीत कर ही रहा था कि उसका नाना, महापण्डित माल्यवान नामक राक्षस, कहने लगा—

राजन् ! जो राजा विद्याएँ पढ़ा हुआ होता और न्याय-मार्ग पर चलता है वह बहुत समय तक प्रजा पर शासन करता है तथा ऐश्वर्य भोगता है और शत्रुओं को अपने वश में रखता है। ऐसा राजा अपने राज्यकार्यों की छानबीन करता और मौक़ा पाकर शत्रुओं से लड़ता है। अपना पक्ष बढ़ता हुआ देखकर वह बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करता है। राजा को चाहिए कि जब वह अपने को शत्रु से हीन या बराबर समझे तब उसके साथ मेल कर ले। शत्रु कैसा ही क्यों न हो, पर राजा को उसकी ओर से लापरवा न होना चाहिए। और यदि अपने को उससे बड़ा समझे तो उससे झगड़ा करे। हे रावण! मुझे तो यही अच्छा मालूम होता है कि राम के साथ तुम्हारी सन्धि हो जाय। जिस कारण से वे तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करके आ रहे हैं वह कारण ही मेट दिया जाय। देखो देवता, ऋषि और गन्धर्व सब उनकी विजय चाहते हैं; इसलिए तुम उनसे विरोध न करो, सन्धि कर लो। हे लङ्केश ! देखो, ब्रह्मा ने दो पक्ष बनाये हैं, एक तो देवता और दूसरा असुर। क्रम से धर्म और अधर्म उनके आधार हैं। धर्म तो देवताओं का पक्ष है और अधर्म राक्षसों तथा दैत्यों का। जब धर्म अधर्म का ग्रास करता है तब सत्ययुग होता है और जब इससे विपरीत होता है तब कलियुग की प्रवृत्ति होती है। हे रावण! लोकों में घूम-घूमकर तुमने तो धर्म का सत्यानाश किया और अधर्म इकट्ठा किया है। इसी कारण शत्रु लोग हमसे बली हो गये। तुम्हारी भूल से अधर्म बढ़कर हम लोगों को भक्षण कर रहा है और धर्म देवताओं के पक्ष को बढ़ा रहा है। देखो, विषयों में आसक्त होकर तुमने अग्नि-तुल्य ऋषियों को बड़ा दुःख दिया। उनका प्रभाव, जलती हुई आग की तरह, बड़ा असह्य है; क्योंकि वे लोग तपस्या से अपने आत्मा को निर्मल कर धर्म के अनुष्ठान में सदा तत्पर रहते हैं। देखो, वे सब यज्ञ करते, विधिपूर्वक अग्नि में आहुति डालते और ऊँचे स्वर से वेदों का पाठ करते हैं। उनके पाठ को सुनने से राक्षसों का पराजय होता और सब इधर-उधर भाग जाते हैं। ऋषियों के होम से निकला हुआ धुआँ राक्षसों के तेज को ढँकता हुआ दसों दिशाओं में फैल जाता है। ऋषि लोग व्रत धारण करके जो तप करते हैं वह राक्षसों को दुःख देता है। हे रावण ! तुमने तो ब्रह्मा से यही वर माँग रक्खा है कि 'देवता, दानव और यक्ष हमें न मार पावें।' पर यहाँ तो मनुष्य, वानर, भालू और महाबली गोलांगूल आकर गरज रहे हैं।

फिर मैं नाना प्रकार के बड़े-बड़े उत्पात भी देख रहा हूँ जिससे अनुमान होता है कि राक्षसों का नाश आ पहुँचा है। देखो, घोर और भयङ्कर मेघ खर शब्द से गरजते हैं, और लङ्का के चारों ओर गर्म ख़ून बरसाते हैं। सब वाहन आँखों से आँसू बहाते और धूल से मैले हो रहे

हैं। उनके शरीरों का रङ्ग बदल गया और वे पहले की सी शोभा नहीं देते। लङ्का के बागों में साँप, गीदड़ और गीध झुण्ड बाधकर भयङ्कर शब्द करते हैं। स्वप्न में काली-काली स्त्रियाँ सफ़ेद दाँत निकालकर हँसती और बुरी-बुरी बातें कहती हुई आगे आकर खड़ी हो जातीं और फिर घर लूटने लगती हैं। हे रावण! घरों में जो बलि-कर्म होता है उसको कुत्ते खा जाते हैं। गायों से गदहे और नेवलों से चूहे पैदा होते हैं। देखो, व्याघ्रों के साथ बिलाव, कुत्तों के साथ सुअर, राक्षसों और मनुष्यों के साथ किन्नर मैथुन करते दिखाई देते हैं। पीले रङ्ग के लाल पैरोंवाले बहुत से कबूतर राक्षसों के नाश के लिए, मानों काल के भेजे हुए, घरों में घूमते हैं। घरों में पली हुई मैना आपस में लड़-भिड़कर चींचीं करती हैं और फिर गुँथकर नीचे गिर पड़ती हैं। पशु और पक्षी सूर्य की ओर मुँह करके रोते हैं। विकराल रूप, सिर मुड़ाये हुए, काले-पीले रङ्ग का कालमनुष्य समय-समय पर, हम सबके घरों में घुसता हुआ, देख पड़ता है। राजन्! ये तथा इसी तरह के और भी बहुत से अशकुन दिखाई देते हैं। इससे हम जानते हैं कि ये रामचन्द्र मनुष्य-रूपधारी विष्णु हैं। ऐसे दृढ़पराक्रमी श्रीराघव को केवल मनुष्य न समझना चाहिए। देखो न, इन्होंने समुद्र में अद्भुत पुल बाँधा है। इसलिए हे रावण! तुम अपने कामों का निश्चय करके और आगे के लिए उचित विचार करके रामचन्द्र के साथ मेल कर लो।

दोहा

माल्यवान एहि विधि बचन, राक्षसपतिहिं सुनाय।
रुख न निरखि नृप चित्त कर, मौन गह्यो खिसिआय॥

छत्तीसवाँ सर्ग

माल्यवान् को रावण का दुर्वचन कहना और वीरों को यथास्थान स्थापित करना।

माल्यवान् की हितकर बातें रावण को अच्छी न लगीं; क्योंकि वह तो मृत्यु के वश में हो गया था। वह टेढ़ी भौंहें कर, क्रोध से आँखें तरेरकर, माल्यवान् से कहने लगा—देखो, शत्रु का पक्ष लेकर हित की बुद्धि से तुमने जो कठोर और अहित वचन कहे वे मेरे कानों तक नहीं पहुँचे। मनुष्य राम को तुम किस तरह समर्थ जानते हो? वह तो दीन है, अकेला है, वानरों का आश्रित है, उसे पिता ने घर से निकाल दिया है और वह वन में रहता है। मैं राक्षसों का मालिक, देवताओं को भय देनेवाला और सब तरह के पराक्रमवाला हूँ; तुम मुझको हीन किस तरह समझते हो? मुझे सन्देह होता है कि तुमने इतने कठोर वचन मुझसे क्यों कहे। क्या तुमको मेरी वीरता से द्वेष है जिससे तुमने ऐसा कहा? शत्रु के पक्षपात से या मेरे उभाड़ने के लिए तो तुमने इस तरह नहीं कहा? जो पण्डित है और जो शास्त्र के तत्त्व को जानता है वह, प्रभावशाली और राज्यपद पर बैठे हुए व्यक्ति को उत्साह दिलाने के सिवा कठोर वचन नहीं कहता। हे माल्यवान्! भला सुनो तो सही कि कमलहीन लक्ष्मी के तुल्य इस सीता को वन से लाकर राम के डर से मैं इसको कैसे दे डालूँ? तुम देखना कि इन करोड़ों वानरों और सुग्रीव तथा लक्ष्मण-सहित राम को मैं थोड़े ही दिनों में मारे लेता हूँ। अहो! जिसके द्वन्द्व-युद्ध में देवता भी पास खड़े

नहीं रह सकते वह रावण किससे डरेगा ? यह मुझमें स्वाभाविक दोष है कि चाहे मेरे दो टुकड़े भले हो जायँ पर मैं किसी के सामने झुकूँगा नहीं; क्योंकि स्वभाव नहीं छूट सकता। रामचन्द्र ने किसी तरह समुद्र में पुल बाँध लिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, जिससे तुम डर गये ! अच्छा, समुद्र में पुल बाँधकर वानरी सेना के साथ वे इस पार आ गये हैं तो आ जाने दो। मैं तुमसे सच प्रतिज्ञा करता हूँ कि यहाँ से वे जीते न जायँगे।

क्रोध-पूर्वक ऐसी बातें कहते हुए रावण को रुष्ट समझकर माल्यवान् बड़ा लज्जित हुआ। वह आगे कुछ न बोल सका। जय के आशीर्वाद से राजा की बातों का समर्थन कर वह बिदा लेकर अपने घर को चला गया। रावण सचिवों के साथ विचार करके और एक बात पक्की ठहराकर लङ्का की रक्षा करने के लिए तैयार हुआ। उसने पूर्व के द्वार पर रहने के लिए प्रहस्त राक्षस को और उत्तर के द्वार पर रहने के लिए शुक और सारण को आज्ञा दी। उसने कहा कि वहीं मैं भी आऊँगा। बहुत राक्षसों के साथ विरूपाक्ष राक्षस को लङ्का के बीचोंबीच छावनी में, नगर के दक्षिण दरवाज़े पर महापार्श्व और महोदर को और पश्चिम द्वार पर बड़े मायावी, अपने पुत्र, इन्द्रजित् को बहुत राक्षसों के साथ रहने की उसने आज्ञा दी। मृत्यु के वश में पड़े हुए राक्षसराज ने इस तरह प्रबन्ध करके अपने को कृतार्थ जाना।

दोहा

एहि बिधि नगर विधान करि, सबहिँ बिदा तब दीन्ह।
पाइ जयाशिष रजनिचर, गृह प्रवेश निज कीन्ह ॥

———

छत्तीसवाँ सर्ग

युद्ध के लिए सेना का व्यूह बनाकर, रामचन्द्र का वानरों को यथास्थान में नियत करना।

अब मनुष्यों और वानरों के दोनों राजा, वायुपुत्र हनुमान्, जाम्बवान्, विभीषण, अङ्गद, लक्ष्मण, शरभ, भाइयों-सहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस ये सब इकट्ठे होकर युद्ध विषयक विचार करने लगे; और कहने लगे कि देखो, यह रावण से पालित लङ्का नगरी है। यह दैत्य, नाग और गन्धर्वों के लिए भी अजेय है। भाइयो ! कार्य-सिद्धि के विषय में जो कुछ हो सके सो विचार करते जाओ। यहाँ पर रावण सदा तैयार रहता है।

यह सुनकर विभीषण ने कहा—अनल, पनस सम्पाति और प्रमति ये चारों मेरे साथी हैं। ये पक्षी का रूप बनाकर लङ्का गये थे। वहाँ शत्रु की सेना में घुसकर और उसका सब प्रबन्ध तथा विधान देखकर लौट आये हैं। हे रामचन्द्र ! दुष्ट रावण ने सेना का जैसा संविधान किया है वह सुनिए;—लङ्का के पूर्व द्वार पर प्रहस्त, दक्षिण द्वार पर महापार्श्व और महोदर और पश्चिम द्वार पर इन्द्रजित् तैनात है। इन्द्रजित् के साथ बहुत से राक्षस भी हैं। वे पटा, खड्ग, धनुष, शूल और मुद्गर आदि अनेक तरह के शस्त्र लिये हुए हैं। हे राघव ! अनेक राक्षसों को साथ में लिये, अत्यन्त घबराया हुआ, रावण ख़ुद उत्तर द्वार को रोके खड़ा है। बड़े-बड़े शूलधारियों, खड्गधारियों और धनुर्धारियों की सेना लेकर बीच में विरूपाक्ष सन्नद्ध

है। युद्ध-भूमियों को इस तरह की देखकर मेरे सचिव लौट आये हैं। दस हज़ार हाथी, दस हज़ार रथ, बीस हज़ार घोड़े और करोड़ से कुछ लाख अधिक बड़े पराक्रमी और बली राक्षस सङ्ग्राम करने में साहसी हैं। इसलिए ये सब राक्षस राक्षसराज के प्यारे हैं। राजन्! उक्त राक्षसों में युद्ध करने के लिए, प्रत्येक राक्षस की सहायता के वास्ते, अनेक लाख परिवार मौजूद हो जाते हैं। इस तरह विभीषण ने राम को सब हाल सुनाया।

उनकी प्रसन्नता के लिए उसने फिर कहा—हे रामचन्द्र! जब रावण कुबेर से लड़ने गया था तब उसके साथ साठ लाख राक्षस थे। वे पराक्रम, वीर्य, तेज, साहस और गर्व में दुष्ट रावण के ही समान देख पड़ते थे। हे राघव! आप मेरी बात से उदास न हूजिए। मैं आपको क्रुद्ध करने के लिए यह सब कह रहा हूँ, डराने के लिए नहीं; क्योंकि आप तो देवताओं को भी वश में कर सकते हैं। आप वानरी सेना की व्यूहरचना करके चतुरङ्ग सेनावाले रावण का विध्वंस करेंगे।

रामचन्द्र ने कहा—देखो, पूर्वद्वार पर नील नामक वानर प्रहस्त के साथ युद्ध करे और बहुत से वानर उसकी सहायता के लिए तैयार रहें। वालिपुत्र अङ्गद अपनी सेना लेकर दक्षिण द्वार पर महापार्श्व और महोदर से युद्ध करें; और सेना लेकर हनुमान् पश्चिम द्वार पर आक्रमण करके खड़े हों। दैत्यों, दानवों और महात्मा ऋषियों का अपकार करनेवाले राक्षसेन्द्र के मारने को मैं स्वयं तैयार हूँ। वह वरदान के बल से सब प्रजा को दुःख देता रहा और लोकों में घूमता फिरता था। उत्तर द्वार पर जहाँ रावण है वहाँ मैं लक्ष्मण को साथ लेकर घुसूँगा। वानरेन्द्र, ऋक्षराज और विभीषण ये बीचोंबीच सेना की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध हों। हे भाइयो, यद्यपि तुम सब कामरूपी हो तो भी युद्ध में मनुष्य का रूप धारण मत करना; क्योंकि इस वानरी सेना में हम लोगों का इस तरह नाम होगा कि तुम सब तो वानर, और हम केवल सात मनुष्य रूप से युद्ध करेंगे। हम दोनों भाई और चार सचिवों-सहित विभीषण यही सात इस सेना में मनुष्याकृति देख पड़ें, और नहीं; अन्यथा युद्ध में गड़बड़ हो जायगी। इस तरह कार्य-सिद्धि के लिए विभीषण से श्रीरामचन्द्र ने कहकर सुबेल पर्वत पर चढ़ने की इच्छा की; क्योंकि उस समय उस पर्वत की ज़मीन महाराज को बड़ी मनोरम दिखलाई दी।

दोहा

एहि बिधि प्रभु बहुसेन ले, सब पृथ्वी कहँ छाइ।
शत्रु नाश दृढ़ ठानि मन, लङ्कहि पहुँचे जाइ॥

अड़तीसवाँ सर्ग

सुबेल पर्वत पर चढ़कर रामचन्द्रजी का वहाँ ठहरना।

इस तरह श्रीरामचन्द्रजी सुबेल पर्वत पर चढ़ने की इच्छा करके सुग्रीव और विभीषण से बोले—मेरी इच्छा है कि सैकड़ों वृक्षों और धातुओं से भरे हुए इस सुबेल पर्वत पर हम लोग चढ़ें और आज रात को यहीं ठहरें; तथा यहीं से लङ्का को देखें। लङ्का उस राक्षस की निवास-भूमि है जिसने अपनी मृत्यु के लिए मेरी स्त्री का हरण किया है। उस राक्षस ने न तो धर्म का, न चरित्र का

और न अपने कुल का ही ख़याल किया। वह नीच राक्षसी बुद्धि से ही यह निन्दित कर्म कर बैठा। अब तो ऐसा हो गया है कि उसका नाम लेने से मेरा क्रोध बढ़ता है; क्योंकि इसी नीच के अपराध से निरपराधी बेचारे करोड़ों राक्षस मारे जायँगे। देखो, मौत के फन्दे में फँसकर एक जीव पाप करता है पर उस दुष्ट के अपराध से उसके कुल का भी नाश हो जाता है। इस तरह बातचीत करते और रावण पर खिझलाते हुए श्रीरामचन्द्र विचित्र चोटीवाले सुनहरे पर्वत पर चढ़ गये। पराक्रम करने के लिए तैयार लक्ष्मण भी बाणों-सहित धनुप लिये हुए पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे। इसके बाद सुग्रीव, सुग्रीव के सचिव, विभीषण, हनुमान, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, तार, रम्भ, जाम्बवान, सुषेण, शतवलि और दुर्मुख ये सब वानर तथा इनके सिवा और-और भी बहुत से शीघ्रगामी वानर उस पर्वत पर चढ़कर रामचन्द्र के पास पहुँच गये। रामचन्द्र वहाँ पहुँचकर और चोटी पर एकसी ज़मीन देखकर वानरों के साथ बैठ गये। वहाँ से वे लङ्का नगरी को देखने लगे जो आकाश को छू सी रही थी। अच्छे द्वारों और प्राकारों से शोभित और राक्षसों से पूर्ण लङ्का नगरी को यूथपतियों ने भी वहाँ से देखा। उन्होंने उसके प्राकारों पर चढ़े हुए काले-काले राक्षसों को भी देखा, जिनसे प्राकार के ऊपर एक दूसरा प्राकार सा बना हुआ दिखाई देता था। उन्होंने यह भी देखा कि वे सब युद्ध की इच्छा से तैयार हो रहे हैं। इस तरह देखभाल-कर वानरों ने रामचन्द्र के पास ही अनेक प्रकार के शब्द किये। इसके बाद, सन्ध्या के प्रेम से प्रेमी हो, श्रीसूर्यभगवान् अस्ताचल को गये और पूर्णचन्द्र से शोभित रात हो गई।

दोहा

निशिचर-पति सुग्रीव अरु, लक्ष्मण यूथप साथ।
तेहि सुबेल की पीठ पर, वास कीन्ह रघुनाथ॥

उनतालीसवाँ सर्ग

लङ्का की शोभा का वर्णन।

अब पर्वत पर जाकर वीरों ने लङ्का के वनों और उपवनों को देखा। वे वन-उपवन सम, सुन्दर, रमणीय, बड़े, लम्बे और दृष्टि को सुखदायी थे। उनको देखकर वानर-यूथपति बड़े चकित हुए। वहाँ पर चम्पा, अशोक, मौलसिरी, साखू, ताड़, तमाल, कटहर, नागकेसर, हिन्ताल, अर्जुन, कदम्ब, फूले-फूले छितिउन, तिलक और कर्णिकार आदि तरह-तरह के अच्छे-अच्छे वृक्ष थे। पत्तों, कलियों तथा लताओं से लिपटे हुए वे बड़े मनोरम दीखते थे। उनसे लङ्का की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे अमरावती की हो। विचित्र फूलों से, लाल पत्तों से, मनोहर वृक्षों से, हरी-हरी घास से और चित्र-विचित्र वन की पङ्क्तियों से उस भूमि की अपूर्व शोभा हो रही थी। जिस तरह मनुष्य भूषण पह-नते हैं उसी तरह वहाँ के वृक्ष गन्धयुक्त रमणीय फूल और फल धारण करते थे। लङ्का का वह वन चैत्ररथ के तुल्य मनोहर, नन्दन वन के सदृश सब ऋतुओं में रमणीय और भौंरों की मधुर गुञ्जारों से मन को हरे लेता था। उसमें झरनों के किनारे चकई-चकवा, जलमुर्ग़, बगला, मोर और कोयल

आदि पक्षी नाच-नाचकर मीठी तानें ले रहे थे। वह वन मस्त पक्षियों से युक्त, भौंरों से परिपूर्ण, कोयलों से सेवित, पक्षियों के शब्दों से शब्दायमान, भौंरों की गुञ्जार से गुञ्जायमान, क्रौंच पक्षी की वाणी से सुहावना, मनोहर जल-कुक्कुटों के शब्द से पूरित और राक्षसों के शब्दों से शब्दायमान था। इस तरह के उन वन-उपवनों में कामरूपी वानर ख़ुश होकर घुस गये। उनमें घुसते समय फूलों का संसर्ग होने से सुगन्धित और प्राण के तुल्य प्रियवायु चलने लगी।

वानरों की सेना के कुछ यूथपति झुण्ड से निकलकर, सुग्रीव की आज्ञा से, ध्वजा-पताकावाली लङ्का में ही घुस गये। वे जाते समय भयङ्कर शब्द करके पशु-पक्षियों को डराने और समस्त लङ्का नगरी को कम्पायमान करने लगे। वे पृथिवी पर पैर धमककर ऐसे ज़ोर से चले जाते थे जिससे धूल उड़कर आकाश-मण्डल तक पहुँच गई। भालू, सिंह, भैंसे, हाथी, मृग और पक्षी उनके भयङ्कर शब्द से डरकर चारों ओर भाग गये। त्रिकूटाचल का एक शिखर बहुत ऊँचा था। वह ऐसा ऊँचा था कि आकाश को छू रहा था। उसके चारों ओर फूल लगे हुए थे जिससे वह बहुत शोभित था। सोने के समान उसकी कान्ति थी। वह सौ योजन तक फैला हुआ था और देखने में बड़ा मनोहर था। वह बड़ा ऐसा था कि पक्षी भी न पहुँच सकते थे। उस पर मन के द्वारा भी चढ़ना कठिन था, फिर कर्म द्वारा तो चढ़ ही कौन सकता था। उसी शिखर पर लङ्का बसाई गई थी। वह दस योजन चौड़ी और बीस योजन लम्बी थी। उसके बड़े ऊँचे-ऊँचे फाटक सफ़ेद बादलों के तुल्य देख पड़ते थे। सुवर्ण पर्वत और रजत पर्वत से उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। जिस तरह वर्षा ऋतु में मेघों से आकाश की शोभा होती है उसी तरह प्रासादों और विमानों से लङ्का की शोभा हो रही थी। उस नगरी में एक ऐसा घर था जिसमें हज़ार खम्भे थे। वह कैलास के एक शिखर के समान था। वह आकाश को छूता हुआ दिखाई पड़ता था। वही राक्षसराज का राजभवन था। वह उस नगर का एक भूषण सा जान पड़ता था। उसकी रक्षा के लिए सैकड़ों राक्षस सदा तैनात रहते थे। अगणित राक्षसों से भरी हुई, अमरावती के तुल्य समृद्ध, उस मनोहर नगरी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े चकित हुए।

दोहा

रत्न पूर्ण बहुविधि सुदृढ़, बहु नृपभवन सुपूर।
निरखि राम विस्मित भये, सह कपि यूथप शूर॥

चालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का कूदकर जाना और रावण से युद्ध करना।

अब दो योजन के मण्डलवाले उस पर्वत के अगले हिस्से पर सुग्रीव को और यूथपों को साथ लेकर रामचन्द्रजी चढ़ गये। वहाँ थोड़ी देर ठहर, चारों ओर दृष्टि फैलाकर वे देखने लगे। रमणीय त्रिकूटाचल के शिखर पर विश्वकर्मा की बनाई वह पुरी दिखलाई दी। उसके फाटक के शिखर पर रावण भी दिखलाई दिया। वह सफ़ेद चमर और विजयच्छत्र से शोभित तथा लाल चन्दन और लाल भूषणों से भूषित था। नीले मेघ के तुल्य उसकी कान्ति थी, वह सुवर्णखचित कपड़े पहने

हुए था। उसकी छाती में ऐरावत हाथी के दाँत का दाग़ था। ख़रगोश के रक्त के समान उसका रङ्ग था, और वह लाल कपड़े पहने हुए था। इस सजधज से वह ऐसा शोभित था मानों सन्ध्या की धूप से ढका हुआ बादलों का समूह आकाश में शोभित हो।

इस तरह राक्षसराज को देख सुग्रीव से न रहा गया। वे बड़े-बड़े वानरों के सामने ग़ुस्से से पराक्रम और बल से पूर्ण हो पर्वत से कूदकर लङ्का के द्वार पर रावण के पास जा पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर निडर चित्त से ठहरकर, राक्षसराज को तिनके के समान समझकर, वे कड़ी-कड़ी बातें कहने लगे—"हे राक्षस! लोकनाथ श्रीरामचन्द्र का मैं मित्र और दास भी हूँ। आज तुम राजेन्द्र रामचन्द्र के तेजोबल के कारण मेरे हाथ से न बचोगे।" इतना कह, झटपट उछलकर वे रावण के ऊपर जा पड़े। उसका मुकुट उन्होंने ज़मीन पर गिरा दिया। मुकुट गिराकर, उनको फिर भी झपटते देख रावण ने कहा—"हे सुग्रीव! जब तक तू मेरी आँखों की ओट में था तब तक तो सुग्रीव था, पर अब तू हीनग्रीव (मुण्डरहित) हो जायगा।" यह कहकर रावण उठा। उसने दोनों भुजाओं से पकड़कर वानरराज को ज़मीन पर पटक दिया। सुग्रीव ने भी गेंद की नाईं उछलकर उसे पछाड़ दिया। अब दोनों में युद्ध होने लगा। दोनों पसीने और ख़ून से नहा उठे। वे परस्पर मिल जाते और चेष्टा-रहित हो जाते थे। ख़ून से सने हुए वे सेमर और ढाक के वृक्ष के तुल्य देख पड़ते थे। महाबली राक्षसराज और वानरराज दोनों, मुक्कों, लातों और कोहनियों की मार से बेदम युद्ध करने लगे। इस तरह वे दोनों उग्र पराक्रमी बहुत समय तक फाटक की भूमि के बीच में लड़ते रहे। फिर हाथापाई करना, उछलना, झुकना और झुकाना आदि तरीक़ों से पैर बढ़ाते-बढ़ाते टोके पर आ गये। वहाँ पर भी लड़ते-लड़ते दोनों लिपटे-लिपटाये झोंके से क़िले की खाई में जा गिरे। फिर उछलकर कुछ देर तक आकाश में और कुछ देर तक ज़मीन पर लड़कर थोड़ी देर ठहर करके साँस लेते, और दोनों भुजाओं से एक दूसरे को पकड़ पकड़कर लड़ते जाते थे। क्रोध, शिक्षा और बल से दोनों बराबर पैंतड़े भी करते जाते थे। सिंह शार्दूल और गजेन्द्र के बच्चों के समान मिलकर दोनों, दोनों हाथों से, एक दूसरे को पीड़ा पहुँचाते हुए एक साथ ज़मीन पर गिर पड़ते थे। वे एक दूसरे को उठा-उठाकर फेंकते और लड़ने के अनेक दाँव-पेच दिखलाते थे। कसरती होने और युद्ध की शिक्षा पाने के कारण वे जल्दी थकते न थे। हाथी की सूँड़ जैसी अपनी भुजाओं से एक दूसरे की चोट को बचा बचाकर वे बहुत देर तक युद्ध करके फिर पैंतड़ा करने लगते थे। एक दूसरे से मिलते तथा एक दूसरे को हराने का उपाय करते हुए वे दोनों, खाने की चीज़ के लिए लड़ते हुए दो बिलावों के समान, बार-बार चेष्टा करते थे। वे कभी विचित्र मण्डलाकार, कभी नाना प्रकार की स्थान-गति (दोनों पैरों का तिरछा चलाना), कभी गोमूत्राकार गति (टेढ़े-मेढ़े चलना) की रीति से जाना, लौट आना, बेंड़ा चलना, चक्राकार घूमना, बचाना, दौड़ना, दौड़ाना, कूदना, युद्ध करते हुए ठहर जाना, पीछे मुँह करके चलना, पास-पास घुटना थामकर खड़े रहना, लात मारने के लिए उछलना, शत्रु कहीं बाँह न पकड़ ले इसलिए

छाती आगे की ओर कर देना और शत्रु की बाँहें पकड़ने के लिए अपनी बाँहें फैलाना आदि उपाय परस्पर करते जाते थे ।

इतने में रावण ने अपना कुछ माया-जाल फैलाने का विचार किया । वानर-राज ने भी जान लिया कि अब यह माया रचेगा, इसलिए वे वहाँ से उड़ गये । दोनों वीरों में से एक भी थका नहीं । सुग्रीव का वहाँ से उड़ जाना रावण को बिलकुल मालूम न हुआ । वह भौंचक सा रह गया । कपिराज ने उसे ठग लिया । इस तरह वानरेन्द्र ने युद्ध में कीर्त्ति पाई और युद्ध कर रावण को छकाया तथा उससे श्रम कराया । फिर वे आकाश-मार्ग से बहुत जल्दी राम के पास आ पहुँचे ।

दोहा

एहि बिधि तहँ संग्राम में, कपि-नृप कीरति पाय ।
वेगि कूदि कपिसेन महँ, प्रभु ढिग पहुँचे आय ॥

सोरठा

पवन-वेग कपिराज, पूजित भे कपिनिकर महँ ।
हर्ष बढ़ावन काज, एहि प्रकार कौतुक कियो ॥

इकतालीसवाँ सर्ग

वानरों का लङ्का को घेरना और अङ्गद का दूत बनकर रावण के पास जाना ।

श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव के शरीर पर युद्ध के सब चिह्न देख उन्हें गले से लगाकर कहने लगे—हे वानरेन्द्र ! देखो, मुझसे सलाह लिये बिना ही तुमने यह जो साहस किया सो ठीक नहीं । राजा लोग ऐसा काम नहीं करते । हे साहसप्रिय ! मुझे, सेना को, तथा विभीषण को सन्देह में डालकर तुमने यह बड़ा कठिन काम किया । हे वीर ! अब फिर ऐसी भूल कभी न करना । भला कहो तो, यदि तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति आ जाती तो मैं सीता को लेकर क्या करता ? भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से तथा अपने शरीर से भी फिर मुझे क्या काम था ? मैं जानता हूँ कि यद्यपि तुममें महेन्द्र और वरुण के तुल्य पराक्रम है तथापि जब तक तुम नहीं आये थे तब तक मैं यही विचार कर रहा था कि रावण को पुत्र, सेना और सवारियों-सहित मारकर लङ्का के राज्य पर विभीषण का अभिषेक करा दूँगा और अयोध्या का राज्य भरत को सौंपकर मैं अपना शरीर छोड़ दूँगा ।

रामचन्द्र की बातें सुनकर सुग्रीव ने कहा—हे राघव ! आपकी स्त्री हरनेवाले रावण को देख और अपने पराक्रम का विचार करके मैं किस तरह चुप रहूँ ! यह तो मुझसे नहीं सहा जाता । सुग्रीव ऐसा कह ही रहे थे कि उनकी बड़ाई करके श्रीराघव लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण ! जहाँ सुन्दर शीतल जल और मीठे-मीठे सुन्दर फलोंवाले वन हों वहाँ इस सेना की रचना करके रहना चाहिए । मुझे मालूम पड़ता है कि लोक का सत्यानाश करनेवाला बड़ा घोर भय आ पहुँचा है । अब भालू, वानर और राक्षसों का बड़ा नाश होगा । देखो, हवा कैसे ज़ोरों से चल रही है और पृथ्वी काँपती है । पर्वत के शिखर थर्रा रहे हैं और पहाड़ शब्द कर रहा है । आकाश में देखो, ये मेघ, क्रव्याद की नाईं, कठोर गर्जना करते और ख़ून से मिली हुई बूँदें बरसा रहे हैं । देखो, यह लाल चन्दन की नाईं परम भयङ्कर सन्ध्या प्रकाशित हो रही है ।

यह जलती हुई उल्का सूर्यमण्डल से गिरती हुई दिखाई पड़ती है। ये क्रूर रूपवाले, अशकुनरूपी मृग तथा पत्ती बड़ा भय दिखलाते हुए दीन हो, दीन शब्द करके, सूर्य के पास चिल्ला रहे हैं। रात में मैला चन्द्रमा दुःख देता है। यह भी एक अशकुन ही है। देखो, सूर्य के चारों ओर का काला और लाल किनारेवाला मण्डल छोटा, सूखा और कैसा निन्दनीय देख पड़ता है। इसका उदय लोक के नाश के लिए है। हे लक्ष्मण! देखो, सूर्यमण्डल में यह नीला चिह्न कैसा दिखलाई देता है। नक्षत्रों में जो विकार हो रहे हैं, ये क्या ठीक-ठीक दिखाई नहीं पड़ते? ये लोक के युगान्त-समय को जतला रहे हैं। देखो, कौए, बाज और गीध ये सब नीचे गिर-गिर पड़ते हैं। ये गिदड़ियाँ बड़े ज़ोर से अशुभ शब्द बोल रही हैं। आज पर्वतों, शूलों और तलवारों के बड़े प्रहार होंगे। इसलिए चलो, हम सब वानरी सेना को साथ लेकर रावण की पालित भयङ्कर लङ्का पर जल्दी चढ़ चलें।

अब श्रीरामचन्द्र उस पर्वत के आगे के हिस्से से उतरे। उतरकर उन्होंने अपनी सेना देखी। इसके बाद सुग्रीव के साथ श्रीरामचन्द्रजी वानरी सेना को कवच आदि से तैयार करके, थोड़ी देर सोचकर, युद्ध के लिए आज्ञा दे दी। सेना को साथ लेकर और धनुष धारण करके श्रीरामचन्द्रजी सेना के आगे-आगे लङ्का की ओर चले। आगे-आगे रामचन्द्रजी और उनके पीछे-पीछे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, नल, ऋक्षराज, नील और लक्ष्मण, ये सब चले जाते थे। इनके पीछे भालुओं और वानरों की बड़ी सेना बड़ी दूर तक पृथिवी को ढाँपे हुए चली जा रही थी। उन वानरों ने सैकड़ों पर्वतों की चोटियों को और सैकड़ों वृक्षों को हाथों में ले लिया था। इस तरह थोड़ी देर में वे दोनों भाई लङ्का में जा पहुँचे। वहाँ यथोचित स्थान पर वानर खड़े हो गये। अब लङ्का के उत्तरी दरवाज़े को रोककर धनुर्धर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सेना की रक्षा करने लगे। उस दरवाज़े पर लक्ष्मण-सहित श्रीरामचन्द्र सन्नद्ध हो गये। युद्ध करने के लिए रावण यहीं तैयार था, क्योंकि और किसी का सामर्थ्य नहीं था जो उस द्वार को रोके। शस्त्रधारी, भयङ्कर राक्षसों को साथ ले रावण चारों ओर से उस द्वार की रक्षा इस तरह कर रहा था, जिस तरह सागर की रक्षा वरुण करते हैं। वहाँ रावण के रहने से वह द्वार ऐसा भयङ्कर हो रहा था जैसा दानवों के द्वारा पाताल भयङ्कर जान पड़ता है। उसके देखने से छोटे-मोटे को डर लगता था। तरह-तरह के बहुत से योद्धा उस द्वार पर युद्ध के लिए तैयार थे। वहाँ पर बहुत से हथियार और कवच भी दिखाई दिये।

पूर्व द्वार पर मैन्द और द्विविद को साथ ले नील नामक सेनापति खड़ा हुआ। महाबली अङ्गद ने दक्षिण द्वार को रोका। इनके सहायक ऋषभ, गवाक्ष, गज और गवय नामक वानर थे। प्रजङ्घ और तरस तथा और-और वीरों को साथ लेकर महाबलवान् हनुमान् ने पश्चिम द्वार घेर लिया। बीच में वानरराज सुग्रीव स्वयं खड़े हुए। वहाँ इनके साथ गरुड़ और वायु के तुल्य बड़े पराक्रमी बड़े-बड़े वानर तैयार थे। छत्तीस करोड़ नामी यूथपति श्रेष्ठ वानर भी उसी स्थान को घेरकर युद्ध के लिए तत्पर थे। इसके बाद राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण और विभीषण ने हर एक द्वार पर एक-एक करोड़

वानर और नियत कर दिये। जाम्बवान् और सुषेण रामचन्द्र के साथ पश्चिम के समीपवर्त्ती मोर्चे पर बहुत सी सेना लेकर खड़े हुए। सिंह के तुल्य दन्त-धारी वे सब वानर वृक्षों और पर्वतों के शिखरों को हाथों में ले-लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। उनकी पूँछें, दाँत और नाख़ून बड़े विकराल थे। उनके शरीर विकराल और अद्भुत थे तथा मुँह भी विकराल देख पड़ते थे। उनमें से किसी में दस हाथियों का बल था। बहुतेरों में सौ हाथियों का पराक्रम था और अनेक हज़ार हाथियों की इतनी बहादुरी रखते थे। बहुत से ऐसे थे जिनका बल कभी निष्फल नहीं होता था। कोई उनसे भी सौगुने बलवान् थे। कई सेनापति ऐसे थे जिनका बल बेशुमार था। वहाँ उन लोगों का समागम अद्भुत और विचित्र देख पड़ता था। उन वानरों की ओर देखने से जान पड़ता था कि कहीं से यह टीड़ोदल आ पड़ा है। उनसे आकाश भर गया और भूमि ढक गई। जो खड़े थे सो तो खड़े ही थे, परन्तु और-और भी चले ही आते थे। सैकड़ों-हज़ारों भालुओं और वानरों की सेना लङ्का के द्वारों पर, चारों ओर से, युद्ध करने के लिए घिर आई। त्रिकूटाचल को वानरों ने चारों ओर से घेर लिया। लाखों-करोड़ों वानर और रीछ लङ्का में मौजूद हो गये। बलवान् वानर हाथों में वृक्ष ले-लेकर लङ्का को घेरकर खड़े हो गये। वायु का भी सामर्थ्य न था कि लङ्का में घुस सके। सेनाओं के इकट्ठा होते समय ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ जैसा फटते हुए समुद्र के पानी का होता है। उस शब्द से प्राकार, तोरण, पर्वत, वन और उपवन के साथ-साथ समस्त लङ्का काँप उठी। उस समय राम, लक्ष्मण और सुग्रीव से रक्षित वह सेना सब सुरों और असुरों से भी अत्यन्त दुर्जेय देख पड़ती थी।

इस तरह राक्षसों के बध के लिए श्रीरामचन्द्र मोरचों पर अपनी सेना को तैनात कर मन्त्रियों के साथ विचार कर रहे थे कि अब क्या करना चाहिए। उस समय उनकी दृष्टि इसी ओर थी; क्योंकि वे क्रम और योगों के ठीक-ठीक मतलब से सब काम करते थे। उन्होंने विभीषण की राय पाकर और राजधर्म को भी याद करके अङ्गद को बुलाकर कहा—हे सौम्य कपे! तुम मेरी ओर से रावण के यहाँ जाकर कहो कि हे भ्रष्ट-लक्ष्मीवाले, नष्टैश्वर्य, मृत्यु चाहनेवाले और अचेत! देख, रामचन्द्र निर्भय होकर तेरी लङ्का को घेरे हुए खड़े हैं। हे निशाचर! तूने मोह से अहङ्कारपूर्वक ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, और राजाओं के विषय में जो पाप किये हैं उनका फल आज तुझे मिलेगा। ब्रह्मा के वरदान से उपजा हुआ तेरा वह गर्व आज मिट गया; क्योंकि स्त्री के हरण से दुःखित मैं तुझे दण्ड देने आ पहुँचा हूँ। मैं दण्ड धारण किये लङ्का के द्वार पर खड़ा हूँ। अब यदि तू, मेरे पास, युद्ध में स्थिर रहेगा तो तुझे देवताओं, महर्षियों और राजर्षियों की पदवी मिलेगी अर्थात् मर जायगा। हे अङ्गद! उस दुष्ट से कह देना—राक्षसाधम! जिस बल से तू माया-द्वारा वहाँ से मुझे हटाकर सीता को हर लाया था, उसको दिखला। जो तू सीता को लेकर मेरे शरण में न आवेगा तो मैं अपने पैने बाणों से इस लोक में एक भी राक्षस न बचने दूँगा। उससे कहना कि धर्मात्मा राक्षस विभीषण मेरे पास आया है। वही लङ्का का अकण्टक ऐश्वर्य पायगा और वही

श्रीमान् होगा; क्योंकि तू तो मूर्खों का साथी, पापी और अनात्मज्ञ (अपने को न समझनेवाला) है। अब तू क्षणभर भी अधर्म-पूर्वक राज्य न भोग सकेगा। मेरे साथ धैर्य और शूरता का सहारा लेकर युद्ध कर; क्योंकि जब तू मेरे बाणों से शान्त हो जायगा तब पवित्र बनेगा। हे निशाचर! अब तो तू पक्षी का रूप धरकर यदि तीनों लोकों में छिपता फिरेगा तो भी मेरी नज़र में आकर जीता न बचेगा। हे अङ्गद! अन्त में उससे यह भी कह देना—अब एक बात मैं तेरे हित की कहता हूँ कि अब तू अपनी औध्र्वदैहिक क्रिया (मरने के बाद जो दशगात्र आदि कर्म किये जाते हैं वह) कर डाल; और लङ्का को अच्छी तरह देख ले; क्योंकि अब तेरा जीवन मेरे हाथ में है।

रामचन्द्र की आज्ञा पाकर अङ्गद मूर्तिमान् अग्नि की नाईं, आकाशमार्ग से उड़कर, चले और थोड़ी देर में रावण के मन्दिर में जा पहुँचे। वहाँ रावण अपने मन्त्रियों के साथ बैठा हुआ था। उसके पास ही आकाश से उतरकर, जलती हुई आग की तरह, अपना रूप और सोने के बिजायठ से भूषित अपनी भुजाएँ दिखलाते हुए अङ्गद जा खड़े हुए। रामचन्द्र की सब बातें उन्होंने रावण को जैसी की तैसी सुना दीं। उन्होंने अपना नाम बतलाकर कहा—मैं उन कोशलेन्द्र श्रीमहाराज रामचन्द्र का दूत हूँ, जिनके लिए कोई भी बात कठिन नहीं है। मैं बाली का पुत्र हूँ। मेरा नाम अङ्गद है। शायद मेरा नाम तुम्हारे कानों तक पहुँच भी चुका हो। श्रीरामचन्द्र ने तुम्हारे लिए कहा है कि हे घातक! अब अपने घर से निकल-कर युद्ध कर और पुरुष बन जा। देख, मैं तुम्हें, मन्त्री, पुत्र, कुटुम्बी और बान्धवों के साथ मारने आया हूँ। तुम्हारे मारे जाने से तीनों लोक बेखटके हो जायँगे। हे रावण! यदि तू सत्कारपूर्वक प्रणाम करके वैदेही को मुझे न दे देगा तो मैं तुझे आज उखाड़ फेकूँगा। तू देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षसों का शत्रु है तथा ऋषियों को कण्टकरूप है। तेरे मारे जाने पर लङ्का का ऐश्वर्य विभीषण को दे दिया जायगा।

यह सुनकर वह राक्षसेन्द्र अत्यन्त रुष्ट हो अपने मन्त्रियों से बोला—इस दुर्बुद्धि वानर को पकड़कर मारो। इसने मेरे सामने बहुत बकबक की है। प्रज्वलित अग्नि के तुल्य रावण का वचन सुनकर चार राक्षसों ने उठकर अङ्गद को पकड़ लिया। उस समय अपना बल दिखलाने के लिए, अङ्गद ने, उन्हें पकड़ लेने दिया। चारों राक्षसों ने इनको थाँभा ही था कि अङ्गद ने चारों को पक्षियों की नाईं दोनों भुजाओं में टाँग लिया। फिर वे एक ऊँची अटारी के ऐसे शिखर पर कूद-कर चढ़ गये जो पर्वत की चोटी की तरह बहुत ऊँचा था। उनके कूदने के धक्के से झटका खा-कर वे चारों राक्षस, रावण के पास, ज़मीन पर गिर पड़े। वह अटारी भी इनके पैरों की धमक तथा पाद-प्रहार से रावण के देखते-देखते, वज्र से विदीर्ण किये हुए पर्वत के शिखर की नाईं, फटकर टूट गई। इस तरह अङ्गद उस मकान को तोड़-फोड़कर और अपना नाम सुनाकर बड़े ज़ोर से गर्जना करते हुए आकाश में उड़ गये।

वे राक्षसों को भय दिखलाते और वानरों को ख़ुश करते हुए रामचन्द्र के पास वानरों में आ पहुँचे। उस महल को टूटा हुआ देखकर रावण

बहुत नाराज़ हुआ। अपने विनाश का समय आया जानकर वह नीचे-ऊपर को साँसें लेने लगा। इधर रामचन्द्रजी बहुत ख़ुश और शोर करते हुए वानरों से घिरे रहकर शत्रु के मारने की इच्छा से युद्ध के लिए तैयार हुए। महापराक्रमी और पर्वताकार सुषेण नामक वानर बहुत से कामरूपी वानरों को साथ ले सुग्रीव की राय से लङ्का के द्वार को घेरकर इस तरह घूम रहा था जैसे नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा घूमता है। अब वानरों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाएँ आकर इकट्ठी हो गईं, जिनसे लङ्का और समुद्र के बीच का मैदान भर गया। इतने पर भी उनका आना बन्द न हुआ किन्तु डटी हुई चली ही आती थीं। इनको देखकर राक्षस बड़े चकित हुए और बहुत से डर भी गये। अनेक युद्ध के लिए ख़ुश भी हुए। वहाँ के सब प्राकार और खाइयाँ वानरों से भर गईं। दीन होकर राक्षस यह सब तमाशा देख रहे थे। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था मानों वानरों के द्वारा एक दूसरा प्राकार बनाया गया है। उस समय राक्षस डरकर हाहाकार करने लगे।

दोहा

महा कोलाहल लङ्क महँ, सुनि सब निशिचर जात।
आयुध गहि विचरन लगे, जिमि युगान्त के वात॥

बयालीसवाँ सर्ग

युद्ध प्रारम्भ।

अब राक्षस लोग राजभवन में जाकर कहने लगे कि वानरों के साथ राम ने नगरी को घेर लिया। यह सुन रावण क्रुद्ध हो दूनी सेना नियत करके आप अटारी पर चढ़ गया। वहाँ से वह क्या देखता है कि सब पर्वत, वन और उपवनों-सहित लङ्का को वानरों ने घेर लिया है। वहाँ की ज़मीन पीली ही पीली देख पड़ रही है। यह देखकर रावण घबराया और चिन्ता करने लगा कि इनको किस तरह हटाना चाहिए। सोच-विचारकर उसने ढाढ़स बाँधा; फिर दृष्टि फैलाकर देखा तो उसे राघव और वानरों के झुण्ड दिखाई पड़े।

इधर रामचन्द्र विचित्र ध्वजा-पताकाओं से युक्त और राक्षसों से रक्षित लङ्का को देख मन से सीता को याद करने लगे कि यहीं वह मृगनयनी जनकपुत्री मेरे लिए शोक से व्याकुल हो ज़मीन पर पड़ी हुई दुःख पा रही है। इस तरह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र ने जानकी के दुखों की याद करके शत्रुओं के मारने के लिए आज्ञा दी।

रामचन्द्र के मुँह से आज्ञा होते ही वानरों ने क्रोध से ऐसा सिंहनाद किया कि दसों दिशाएँ भर गईं। वानर यूथपतियों के मन में ऐसा उत्साह हुआ कि पर्वत के शिखरों से या मुक्कों से ही लङ्का को चूर-चूर कर डालें। उस समय वे सब बड़े-बड़े शिखरों और वृक्षों को उठाकर खड़े हो गये। रावण देख ही रहा था कि विभागपूर्वक वानरों की सेना रामचन्द्र के प्रिय कार्य के लिए लङ्का पर चढ़ गई। अब सोने के रङ्गवाले और लाल मुँहवाले वानर साखू और पर्वत ले-लेकर लङ्का पर डट गये। इन्होंने अपना जीवन रघुपति को अर्पण कर दिया था। वे वृक्षों, शिखरों और मुक्कों से अटारियों और तोरणों को तोड़ने लगे; धूलि, घास-फूस और लकड़ियों से निर्मल जलवाली खाइयों को भरने लगे। इसके बाद हज़ार यूथ के मालिक, करोड़ यूथ के स्वामी और सौ करोड़ यूथ के अधिपति वानर लोग लङ्का पर चढ़ गये। वे वहाँ सोने

के तोरणों का चूरा करने लगे। उन्होंने पर्वत के शिखर के समान ऊँचे-ऊँचे फाटक तोड़ फेंके। बड़े गजेन्द्र के आकारवाले वे वानर कूदते और उछलते हुए लङ्का को ध्वस्त करने लगे। उस समय वे मुँह से कह रहे थे कि श्रीरामचन्द्र बड़े बली हैं और राघव तथा लक्ष्मण से रक्षित सुग्रीव सर्वोत्तम हैं। वे कामरूपी वानर ऐसा कहते और गरजते हुए लङ्का के प्राकारों पर टूट पड़े।

वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस, ये महाबली यूथपति लङ्का की चहारदीवारी को तोड़कर नगर के भीतर चले गये। वहाँ पर वे व्यूह-रचना से सेना को नियत करने लगे। पूर्वोत्तर कोण पर दस करोड़ वीर वानरों को साथ लेकर कुमुद नामक यूथपति तैयार हो गया; तथा पूर्व-दक्षिण कोण के द्वार पर शतबलि नामक वानर बीस करोड़ सेना लेकर और दक्षिण पश्चिम कोण पर तारा के पिता सुषेण करोड़ों वानरों को लेकर खड़े हुए। वायव्य कोण पर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र का ही पहरा था। सुग्रीव भी वहीं थे। गोलांगूल और गवाक्ष नामक वानर करोड़ वानरों को लेकर और धूम्र नामक यूथपति भी करोड़ भालुओं को ले राम के ही पास मौजूद थे। गज, गवय, शरभ और गन्धमादन वीर चारों ओर दौड़-दौड़कर वानरी सेना की देख-भाल कर रहे थे।

अब रावण ने भी क्रुद्ध हो सब सेना को, बाहर निकलकर, युद्ध करने की आज्ञा दी। रावण के मुँह से युद्ध की आज्ञा निकलते ही राक्षसों ने बड़े ज़ोर से गरजकर भेरियों को सोने के डण्डों से बजाया। उनके साथ ही सैकड़ों-हज़ारों शङ्ख बजने लगे। सोने के भूषणों से सजे हुए राक्षस शङ्खों को लिये हुए ऐसी शोभा दे रहे थे जैसे बिजली और बगलों की पाँत से मेघों की शोभा होती है। रावण की आज्ञा होते ही सैनिक राक्षस हर्षपूर्वक, प्रलयकालीन समुद्र के वेग की नाईं, वानरों पर झपटे। उस समय वानरों ने भी ऐसा गर्जन किया कि जिसके शब्द से मलयाचल के शिखर और कन्दराएँ गूँज उठीं। शङ्खों और दुन्दुभियों का शब्द और वीरों का सिंहनाद पृथ्वी, आकाश और सागर में भर गया। इनके साथ हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की गड़गड़ाहट और राक्षसों के पैरों की धमधमाहट के मिलने से महाभयङ्कर शब्द हुआ।

अब देवासुर-संग्राम की तरह वानरों और राक्षसों का महाघोर संग्राम प्रारम्भ हुआ। इधर राक्षस जलती हुई गदा, शक्ति, शूल और फरसा आदि से वानरों को मारने और अपने-अपने पराक्रम का वर्णन करने लगे। उधर वानर भी वृक्षों और पर्वतों के शिखरों से तथा बहुत से नाखूनों और दाँतों से ही जल्दी-जल्दी राक्षसों को मारने लगे। वे शोर करने लगे 'राजा सुग्रीव सबसे सिरे हैं।' इधर राक्षस भी 'राजा की जय जय' कहकर अपने नाम की कथा कहने लगे। प्राकार पर चढ़े हुए बहुत से भयङ्कर राक्षस ज़मीन पर के वानरों को गोफियों और शूलों से विदीर्ण करने लगे। तब वानर भी क्रुद्ध हो, कूद-कूदकर, उन राक्षसों को पकड़-पकड़कर ज़मीन पर गिराने लगे। उस समय वह संग्राम बड़ा भयङ्कर हुआ। उसमें मांस और रक्त की कीच मच गई। वह बड़ा अद्भुत देख पड़ता था।

अति कोलाहल लङ्क महँ, होत घात रण बीच।
वानर राक्षस दलनि महँ, मांस रुधिर की कीच॥

तेंतालीसवाँ सर्ग

मल्लयुद्ध का थोड़ा सा वर्णन ।

लड़ते-लड़ते राक्षसों और वानरों की सेना में बड़ा क्रोध फैला। राक्षस अच्छे-अच्छे कवच पहनकर और सूर्य के तुल्य चमकते हुए रथों पर चढ़कर दसों दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए निकले। रथों के घोड़े सोने से भूषित और झण्डे अग्नि की ज्वाला की नाईं चमकते हुए देख पड़ते थे। बड़े भयङ्कर राक्षस-योद्धाओं को रावण की जीत की इच्छा थी। इनको निकलते देख राघव की जीत चाहनेवाली वानरों की बड़ी सेना भी उन पर दौड़ पड़ी। अब राक्षसों और वानरों का परस्पर मल्लयुद्ध होने लगा। उसमें इन्द्रजित् अङ्गद के साथ इस तरह लड़ने लगा जैसे शिव के साथ अन्धकासुर लड़ा था। सम्पाति नामक वानर प्रजङ्घ के साथ, हनुमान् जम्बुमाली के साथ, रावण का छोटा भाई विभीषण बड़े क्रोध से शत्रुघ्न नामक राक्षस के साथ, गज नामक वानर तपन राक्षस के साथ, नील नामक कपिवीर निकुम्भ के साथ और वानरराज सुग्रीव प्रघस के साथ लड़ने लगे। इसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजी विरूपाक्ष के साथ; अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न और यज्ञकोप ये चारों रामचन्द्र के साथ, वज्रमुष्टि मैन्द कपि के साथ, अशनिप्रभ द्विविद वानर के साथ, प्रतपन नामक वीर राक्षस नल के साथ, धर्म का पुत्र महाबली सुषेण नामक वानर विद्युन्माली के साथ और अन्य वानर दूसरे-दूसरे राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। उस समय वानरों और राक्षसों का बड़ा घोर युद्ध हुआ।

उस लड़ाई में वानरों और राक्षसों के शरीरों के रक्त से नदियाँ बहने लगीं। उनमें बाल तो सेवार की नाईं और शरीर लकड़ियों की नाईं देख पड़ते थे। इन्द्रजित् ने अङ्गद को गदा से ऐसा मारा मानो इन्द्र ने वज्र मारा हो। पर अङ्गद ने बीच में ही जल्दी से गदा पकड़ ली। फिर उन्होंने उसी गदा से उसके सोने से चित्र-विचित्र रथ को, घोड़ों को और सारथि को चूर्ण कर डाला। इसी प्रकार प्रजङ्घ ने तीन बाणों से सम्पाति वानर को मारा, तब उसने अश्वकर्ण वृक्ष की मार से प्रजङ्घ को मार गिराया। जम्बुमाली ने शक्ति से हनुमान् की छाती में चोट मारी। तब वायु-पुत्र उसके रथ पर चढ़ गये और थपेड़ों से उसे मारकर उन्होंने रथ को भी चूर-चूर कर डाला। जब तपन राक्षस गरजकर नल पर दौड़ा तब नल ने झपटकर उसकी आँखें निकाल लीं। प्रघस राक्षस शीघ्रतापूर्वक तीखे बाणों से सुग्रीव के शरीर को छेद रहा था और वानरी सेना का ग्रास कर रहा था। उसको वानर-राज ने बड़े वेग से छिति-वन वृक्ष के द्वारा मार डाला। लक्ष्मण ने, बाणों की वर्षा से, विरूपाक्ष को शिथिल कर एक बाण से उसके प्राण ले लिये।

इधर अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञ-कोप, ये चारों राम को बाणों से मार रहे थे। तब राम ने अग्नि के तुल्य जलते हुए चार बाणों से चारों के सिर काट डाले। मैन्द ने वज्रमुष्टि के एक ऐसा घूँसा जमाया जिससे वह रथ और घोड़ों-समेत चूर-होकर ज़मीन पर इस तरह गिर पड़ा जिस तरह पुण्य की समाप्ति होने पर विमान-सहित स्वर्ग के मनुष्य गिरते हैं। निकुम्भ ने नील को तीखे-तीखे बाणों से ऐसा विदीर्ण कर डाला जैसे सूर्य अपनी किरणों से

मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है। और फिर भी उसने जल्दी से नल के सौ बाण मारे और बड़ा हास्य किया। तब नील ने उसी के रथ के चक्र से, विष्णु की भाँति, उसका और उसके सारथि का भी सिर काट गिराया। उसी तरह वज्र के तुल्य घूँसा मारनेवाले द्विविद ने सब राक्षसों के सामने ही अशनिप्रभ राक्षस को पर्वत के शिखर से मारा। फिर वह राक्षस वृक्षों से प्रहार करनेवाले द्विविद को वज्र के तुल्य बाणों से मारने लगा। बाणों की चोट खाकर द्विविद ने अत्यन्त क्रुद्ध हो एक साखू का वृक्ष उखाड़कर घोड़ा और रथ-सहित उसका चूरा कर डाला। रथ में बैठा हुआ विद्युन्माली सुवर्ण-भूषित बाणों से सुषेण वानरपति को मार रहा था और बार-बार गरजता था। इतने में उसे रथ पर चढ़ा देखकर सुषेण ने एक बड़ा भारी पर्वत का शिखर उस पर चलाया। उस समय विद्युन्माली तो फुर्ती से कूदकर बच गया पर रथ टूट गया। वह गदा हाथ में लेकर फिर युद्ध के लिए तैयार हुआ। तब तो क्रोध से जल-भुनकर सुषेण बड़ी भारी शिला ले उस पर दौड़ा। उसे दौड़ता हुआ देख विद्युन्माली ने उसकी छाती में गदा मारी; पर गदा की चोट की कुछ भी परवा न करके सुषेण ने चुपचाप जाकर वह पत्थर उसकी छाती पर पटक दिया। पत्थर लगने से उसकी छाती पिस गई और वह मरकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

शूर वानरों ने शूर राक्षसों को मल्लयुद्ध में इस तरह हरा दिया जिस तरह देवताओं ने दैत्यों को हराया था। वहाँ भल्ल आदि बाण, गदा, शक्ति, तोमर, सायक, टूटे-फूटे रथ, युद्ध के घोड़े, मारे हुए मतवाले हाथी, वानर, राक्षस, पहिया, धुरी, जुआ और दण्ड आदि टूटी-फूटी चीज़ें तितर-बितर गिरी पड़ी थीं। इनसे वह रण-भूमि अतिभयङ्कर और गीदड़ों से भरी हुई देख पड़ती थी। वानरों और राक्षसों के धड़ ही धड़ ऐसे दिखाई देने लगे जैसे देवासुरों के भयङ्कर संग्राम में दिखाई दिये थे। इस तरह वानरों से मारे जाने पर राक्षस, रक्त की गन्ध से मूर्च्छित होकर, फिर भी युद्ध करने के लिए तैयार हुए और सूर्य का अस्त चाहने लगे।

चवालीसवाँ सर्ग

रात के युद्ध का, और मेघनाद के गुप्त होकर शस्त्र चलाने का वर्णन।

वानरों और राक्षसों को इस तरह युद्ध करते-करते दिन डूब गया और रात हो गई। परस्पर जय चाहनेवाले दोनों वैरियों का अब रात में युद्ध होने लगा। घने अँधेरे में 'तू राक्षस है' इस तरह वानर और 'तू वानर है' ऐसा राक्षस पूछ-पूछकर-परस्पर एक दूसरे को मार रहे थे। उस युद्ध में 'मार-मार' 'काट-काट' 'क्यों भागता है' आदि शब्द कहते हुए वे लोग बड़ा शोर कर रहे थे। सोने के कवच पहने हुए काले-काले राक्षस उस अँधेरे में ऐसे मालूम पड़ते थे मानो प्रकाशमान् ओषधियों के वन से पूर्ण बड़े-बड़े पर्वत हों। अपार अन्धकार में राक्षस बड़े क्रुद्ध होकर वानरों पर टूटे पड़ते और उनको मानो खाये डालते थे। वानर भी सुवर्ण-भूषित घोड़ों को और नागों के समान ध्वजाओं को कूद-कूदकर तीखे-तीखे दाँतों से क्रोधपूर्वक फाड़े डालते थे। युद्ध में बलवान् वानर राक्षसी सेना को दुःख देते तथा हाथियों, महावतों और

पताका तथा ध्वजाओं से युक्त रथों को पकड़कर खींच लेते और क्रुद्ध हो अपने तीखे दाँतों से चींथ डालते थे।

लक्ष्मण और रामचन्द्र सर्पाकार बाणों से गुप्त और प्रकट बड़े-बड़े राक्षसों को मार रहे थे। वहाँ घोड़ों के सुमों से खोदी हुई और रथ के पहियों से उड़ी हुई धूल योद्धाओं के कानों और आँखों में भर गई। उस युद्ध को देखने से रोमाञ्च हो जाता था। उस घोर संग्राम में लड़ते-लड़ते वीरों के रक्त से भयङ्कर नदियाँ बहने लगीं। अब भेरियों, मृदङ्गों और ढोलों के शब्द, शङ्खों और रथों के शब्द के साथ मिलकर अद्भुत सुनाई पड़ते थे। घोड़ों की हिनहिनाहट, राक्षसों की गर्जना, शस्त्रों की झनझनाहट और वानरों की किलकिलाहट के मिलने से बड़ा घोर शब्द वहाँ सुन पड़ता था। अब वहाँ की ज़मीन मुख्य-मुख्य वानरों की लोथों से, तथा शक्ति, शूल, परश्वध आदि शस्त्रों से और कामरूप पर्वताकार राक्षसों से पट गई। वहाँ की युद्ध-भूमि शस्त्ररूपी फूलों से ऐसी हो गई कि न तो वहाँ के स्थान पहचाने जाते थे और न वहाँ पैर रखने के लिए ख़ाली जगह थी। केवल रक्त और मांस की कीचड़ ही कीचड़ देख पड़ती थी। वानरों और राक्षसों की प्राणहारिणी वह रात भी जीवों की कालरात्रि की नाईं देख पड़ती थी।

अब वे सब राक्षस अँधेरे में ख़ुश होकर, राम के ही सामने आकर, बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय रामचन्द्र ने अग्निशिखा के तुल्य छः बाणों से यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण इन छः राक्षसों को एक निमेष में मार गिराया। ये छहों, मर्मस्थलों में राम के बाणों की चोट खाकर, युद्ध से भाग तो गये परन्तु जीवित थोड़ी ही देर तक रहे। फिर थोड़ी देर में श्रीरघुनन्दन ने अपने बाणों से दिशाओं और विदिशाओं को साफ़ कर डाला। राम के पास जो दूसरे वीर राक्षस लड़ने की इच्छा से आये थे वे भी ऐसे नष्ट हुए जैसे आग को पाकर पतङ्ग नष्ट होते हैं। वहाँ उस रात को चारों ओर से सुनहरे पुङ्ख के बाण गिर रहे थे; इन बाणों से वह रात ऐसी जँचती थी जैसी जुगुनुओं से शरद ऋतु की रात होती है। वह रात भयावनी तो वैसे ही थी; अब राक्षसों के शोर मचाने और तुरही के शब्दों से और भी अधिक भयावनी हो गई। इस शब्द की प्रतिध्वनि त्रिकूटाचल की गुफा में ऐसी हुई मानो वह बोल रहा हो। बड़ी लम्बी-चौड़ी देहवाले गोलांगूल जाति के वानर दोनों भुजाओं से राक्षसों को पकड़-पकड़कर खा डालते थे। अङ्गद संग्राम में शत्रुओं को मार रहा था। उसने मेघनाथ के सारथि को और उसके घोड़ों को भी मार गिराया। तब वह रथ को छोड़कर अपनी माया के बल से वहीं अदृश्य हो गया। बालिपुत्र अङ्गद की ऐसी करनी देखकर ऋषि, देवता, रामचन्द्र और लक्ष्मण भी उसकी प्रशंसा करने लगे; क्योंकि इन्द्रजित् के प्रभाव को सभी जानते थे। इसलिए उसकी हार देखकर सभी बड़े प्रसन्न हुए। फिर सब वानरों ने, सुग्रीव और विभीषण ने भी, अङ्गद की बड़ी प्रशंसा की और 'वाह-वाह,' कहकर ख़ुशी मनाई। ब्रह्मा के वरदान से बड़ा सामर्थ्यवान् इन्द्रजित् अङ्गद से अपनी हार देखकर क्रोध से छिप गया और वज्र के तुल्य तीखे-तीखे बाण फेंकने लगा। घोर सर्पमय बाणों से वह दोनों भाइयों को भी छेदने लगा। उस वक़्त वह

मायाबल से बलवान् हो रहा था। वह दोनों भाइयों को मोहित कर, सबसे छिप करके, छल-युद्ध से रामचन्द्र और लक्ष्मण को नागपाश में बाँधकर अपना पुरुषार्थ दिखलाने लगा। उस समय दोनों वीर विषधारी सर्प के तुल्य बाणों से बाँधे गये। यह सब हाल वानर देख रहे थे।

दोहा।

सम्मुख कछु न बसानि जब, तब उड़ि गयेउ अकास।
निज माया माया-पतिहिं, सो दिखराव हतास॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

लड़ाई के मैदान में दोनों भाइयों का वीर-शय्या पर सोना।

अब आकाश में इन्द्रजित् की खोज करने के लिए रामचन्द्रजी ने सुषेण के दोनों भाइयों के और नील, अङ्गद, शरभ, द्विविद, हनुमान्, सानुप्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध को भेजा। ये सब वानरों की सेना के सेनापति थे। ये लोग ख़ुश होकर बड़े-बड़े भयङ्कर वृक्षों को हाथों में ले-लेकर आकाश में घुस गये। ये चारों ओर उसे ढूँढ़ने लगे। वह रावण का पुत्र वेगवान् वानरों के वेग को अस्त्र-बल से रोकता था और वे भयङ्कर वेगवाले वानर बाणों की चोट खा-खाकर घायल तो होते जाते थे, पर अन्धकार में उसे इस तरह न पाते थे जिस तरह मेघों से घिरे हुए सूर्य को कोई नहीं पा सकता। इतने में मेघनाद ने दोनों भाइयों के शरीरों को भेदन करनेवाले ऐसे-ऐसे बाण मारे कि देह में तिल रखने को भी जगह न रही। वे बाण न थे किन्तु बड़े-बड़े नाग बाणरूप हो गये थे। दोनों वीरों के घावों से बहुत सा ख़ून बह रहा था और वे दोनों फूले हुए टेसू वृक्ष की नाईं देख पड़ते थे।

इसके बाद वह इन्द्रजित् आकाश से ही दोनों भाइयों से कहने लगा कि 'जब मैं छिपकर युद्ध करने लगता हूँ तब मुझे देवराज इन्द्र भी न देख सकते और न पा सकते हैं। तुम दोनों की तो बात ही क्या है! हे रघुकुल के पुत्रो! देखो, इन कङ्कपत्र बाणों से मैं तुम दोनों को अभी यमपुरी में भेजे देता हूँ।' इस तरह कहकर वह दोनों धर्मज्ञ भाइयों को तीखे-तीखे बाणों से छेदने लगा और गर्जना करने लगा। वह अपना बड़ा धनुष फैलाकर लगातार बाण-वर्षा करने लगा। उसने जितने बाण चलाये वे सब मर्म-स्थलों ही में आकर लगे। मेघनाद बार-बार गरजता ही जाता था। अब संग्राम में मायापति, भक्तवत्सल और लीला-तनुधारी दोनों भाई निमेष मात्र में ऐसे हो गये कि कुछ भी देख न सकते थे। फिर सब अङ्गों में छिदे और बाणों से भरे हुए दोनों भाई महेन्द्र की ध्वजा की नाईं काँपने लगे। मर्मस्थलों में लगे हुए बाणों के दर्द से दुखी हो वे ज़मीन पर गिर कर वीरशय्या पर सो गये। सामान्य नर की नाईं दोनों भाइयों के शरीरों से रुधिर की धारा बह रही थी और वे बाणों से बिलकुल छिदे हुए देख पड़ते थे। उस दुष्ट ने इतने बाण मारे कि एक अंगुल भी जगह न बची। हाथों की अँगुलियाँ तक छेद डालीं। उनका कोई भी अङ्ग बिना पीड़ा के दिखाई न पड़ता था। इस तरह दारुण कामरूपी राक्षस के बाण लगने से दोनों वीरों के शरीरों से रुधिर की ऐसी धारा बह रही थी मानो पर्वत से झरना बहता हो। दुष्ट राक्षस के सुवर्ण पुङ्खवाले और लगातार गिरते हुए नाराच,

अर्धनाराच, भल्ल, अञ्जलिक, वत्सदंत, सिंहदंष्ट्र और क्षुर नामक बाणों से मर्म-विद्ध होकर पहले रामचन्द्रजी प्रत्यंचारहित धनुष को छोड़ वीरशय्या पर सो गये। कमलनयन, शरणागतवत्सल और संग्राम में सन्तोष देनेवाले रामचन्द्र को बाण-शय्या पर सोते देखकर लक्ष्मण अपने जीवन से निराश हो शोक करने लगे। फिर वानर भी अत्यन्त दुखी हो आँखों में आँसू भरकर विलाप और आर्त्तनाद करने लगे*।

दोहा।

शर-पीड़ित दोउ बन्धु कहँ, घेरि रहे कपि वीर।
हनूमान इत्यादि तहँ, नेकु धरत नहिं धीर॥

छयालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित् का वानरों को भी मारना और लंका में जाकर पिता को शत्रुनाश का समाचार सुनाना।

अब बेचारे वानर आकाश और पृथ्वी की ओर देखते हुए दोनों भाइयों को बाणों से छिन्न-भिन्न देख रहे थे। फिर जिस तरह इन्द्र वर्षा कर चुकते हैं उसी तरह जब इन्द्रजित बाणवर्षा कर चुका तब वहाँ सुग्रीव के साथ विभीषण आये। नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अंगद ये सब हनुमान् के साथ दोनों भाइयों के विषय में बड़ा शोक करने लगे। उस समय वे दोनों वीर भाई चेष्टारहित हो, मंद श्वास लेते हुए, रुधिर से लथ-पथ बाणों की सेज पर लेट रहे थे। उनकी देह में बाण बिंधे हुए थे। यूथपतियों से घिरे हुए वे साँप की तरह फुफकार करते, और ख़ून से रँगे हुए सुवर्णध्वज के दण्ड के समान दिखाई दे रहे थे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उनको देख कर विभीषण सहित वानर बड़े दुखी हुए। वे आकाश की तरफ़ और चारों ओर देख रहे थे, पर उस मायावी दुष्ट राक्षस को न देख पाते थे। थोड़ी देर में माया के ही द्वारा विभीषण ने उस मायावी को देख लिया कि वह पास ही खड़ा है और बड़े तेज से पराक्रमी हो शस्त्र चला रहा है।

इन्द्रजित् अपने काम को और संग्राम में गिरे हुए उन दोनों भाइयों को देखकर बहुत ख़ुश हुआ। राक्षसों को ख़ुश करता हुआ वह कहने लगा कि देखो, खर, दूषण आदि राक्षसों के मारनेवाले ये दोनों भाई मेरे बाणों से मारे गये। अब ये बाणबन्धन से कभी छुड़ाये नहीं जा सकते। चाहे सब देवता, ऋषि और दैत्य मिलकर ही क्यों न आवें पर उनके किये कुछ भी नहीं हो सकता। देखो, जिसके लिए चिन्ता करते-करते मेरे पिता की चार पहर रात खाट पर बिना लेटे ही बीतती थी और जिसके कारण यह लङ्का वर्षा-काल की नदी की नाईं व्याकुल हो रही थी उसी सबके मूल के नाशक अनर्थ को मैंने दूर कर दिया। देखो, इस समय राम, लक्ष्मण और सब वानरों के पराक्रम शरद् ऋतु के मेघों की भाँति निष्फल हो गये। इस तरह कहकर वह दुष्ट, राक्षसों के देखते-देखते, यूथपतियों को भी बाणों से मारने लगा। उसने नौ बाण नील के और तीन-तीन बाण मैन्द और द्विविद के मारे। उसने जाम्बवान् की छाती में एक बाण, वायुपुत्र के दस बाण, गवाक्ष और शरभ नामक वानर के दो-दो बाण और वानर-

---

* इन्द्रजित भी प्रभु का भीतरी भक्त था। इसलिए महाराज ने भक्तवत्सलता दिखलाने के लिए उन बाणों को स्वीकार किया और उसके द्वारा पीड़ा की चेष्टा दिखलाई।

राज तथा अंगद के शीघ्रतापूर्वक बहुत से बाण मारे। इस तरह वह महाबली रावण का पुत्र वानरों को अग्निशिखा के तुल्य बाणों से मारकर गरजने लगा और वानरों को डरवा-डरवाकर कहने लगा कि 'हे राक्षसो! मैंने बाण-बन्धन से इन दोनों भाइयों को बाँध डाला है।' उसकी यह बात सुन कर छलपूर्वक लड़नेवाले राक्षस बड़े चकित हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि 'रामचन्द्र मारे गये'। इसलिए ख़ुश हो, बादलों की तरह गरजकर वे मेघनाद की प्रशंसा करने लगे। दोनों भाइयों को चेष्टारहित और श्वासहीन ज़मीन पर पड़े देख इन्द्रजित् ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि ये दोनों मारे गये। ऐसा निश्चय करके वह बहुत ख़ुश हुआ और राक्षसों को ख़ुश करता हुआ लङ्का में घुस गया।

इधर जब सुग्रीव ने देखा कि इन दोनों के अङ्ग प्रत्यङ्ग बाणों से छिदे हुए हैं तब वे बहुत डरे। सुग्रीव को डरा हुआ, आँसू बहाते और क्रोध से व्याकुल-नेत्र देखकर विभीषण ने कहा कि हे सुग्रीव! इस समय डरना व्यर्थ है। अपने आँसुओं को रोको; क्योंकि युद्ध में तो प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। विजय किसी एक के ही लिए नियमित नहीं है। हे वीर! अगर हम लोगों का कुछ भी सुभाग्य बाक़ी होगा तो ये दोनों महाबली महात्मा मूर्च्छा छोड़कर उठ बैठेंगे। इसलिए हे वानर! धीरज धरो और मुझे भी धीरज बँधाओ। सुनो, जो सत्य धर्म में लगे हुए हैं उनको मृत्यु का डर नहीं होता। इस तरह कहकर विभीषण ने अपने हाथों में जल लिया और विद्या से अभिमंत्रित कर सुग्रीव की आँखें धोईं। फिर समय के अनुसार धैर्य की बातें कहने लगे—हे कपिराज! कादरता दिखलाने का यह समय नहीं है। इस समय अति प्रेम भी मरणदायक है, अतएव इस सर्वकार्य-नाशिनी कादरता को छोड़ दो। राम के हितकारी सेनावालों के हित की चिन्ता करो; या जब तक इनकी मूर्च्छा नहीं जाती तब तक इन्हीं की रक्षा करो। जब ये चैतन्य हो जायँगे तब हमारे भय को दूर कर देंगे। राम के लिए यह कुछ भी नहीं है और न राम मरेंगे ही। श्री इनका त्याग कभी न करेगी। इसलिए तुम धीरज धरो; अपनी सेना को समझाओ। तब तक मैं सब सेना को फिर से ठिकाने पर लगाता हूँ। हे वानरराज! इन वानरों की आँखें ख़ुश देख पड़ती हैं। केवल डर से अधीर होकर ये काना-फूसी कर रहे हैं। जब मैं सेना में इधर से उधर ख़ुश होकर दौड़ूँगा और ये मुझे देखेंगे तब निडर हो जावेंगे। इस तरह सुग्रीव को समझाकर राक्षसेन्द्र विभीषण भागी हुई सेना को समझाने लगे।

उधर वह मायावी इन्द्रजित् सब सेना साथ लेकर लङ्का में अपने पिता के पास गया और प्रणाम करके हाथ जोड़ उसके लिए प्रिय बातें कहने लगा। उसने कहा कि राम और लक्ष्मण दोनों मारे गये। राक्षसों के बीच में रावण ने जब सुना कि हमारे शत्रु मारे गये तब उसने बहुत ख़ुश होकर अपने लड़के को गले से लगा उसका सिर सूँघा। फिर प्रसन्न होकर वह सब हाल पूछने लगा। इन्द्रजित् ने उसे सब हाल सुना दिया कि मैंने दोनों भाइयों को नाग-पाश से बाँधकर चेष्टारहित और तेजोहीन कर दिया।

दोहा।

अनुमोद्यो निज पुत्र कहँ, शत्रु-मृत्यु सुनि कान।
त्रास त्यागि रघुबीर ते, लङ्कापति हरषान॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ा कर संग्राम-भूमि में गिरे हुए दोनों भाइयों को रावण का दिखाना।

जब मेघनाद लङ्का में चला गया तब प्रधान वानर दोनों भाइयों को घेरकर उनकी रक्षा करने लगे। उनमें हनुमान्, अङ्गद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, सानुप्रस्थ, जाम्बवान, ऋषभ, सुन्द, रंभ, शतबलि और पृथु, ये सब अपनी-अपनी सेना का व्यूह बनाकर सावधान हो और हाथों में बड़े-बड़े वृक्ष लेकर ऊपर नीचे और चारों दिशाओं की ओर देखते हुए खड़े हो गये। उस समय वानरों की ऐसी दशा हो रही थी कि अगर एक तिनका भी खटकता था तो ये यही जानते थे कि बस राक्षस आ गये।

अब .खुश होकर रावण ने अपने पुत्र को भेज सीता की रक्षा करनेवाली राक्षसियों को बुलवा भेजा। वे सब त्रिजटा के साथ आ पहुँचीं। रावण ने .खुश होकर उनसे कहा कि तुम सब जाकर सीता से कहो कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। उसको पुष्पक विमान पर चढ़ाकर रणभूमि में ले जाओ और वहाँ उन दोनों वीरों को ज़मीन पर गिरा हुआ दिखला दो। जिसके भरोसे पर, जिसकी आशा में, वह मुझे नहीं चाहती उसका वही पति अपने छोटे भाई के साथ लड़ाई में मारा गया। अब तो वह शङ्का छोड़ उद्वेग-रहित हो और बे-खटके होकर सारे ज़ेवरों से सज-धजकर मेरे पास मौजूद होगी। अब उन दोनों को मरा हुआ देखकर निराश हो, दूसरा उपाय न पाकर और अपेक्षा-हीन होकर, वह बड़े-बड़े नेत्रोंवाली ज़रूर आप ही मुझसे सम्बन्ध करेगी। दुष्टात्मा रावण की आज्ञा पा वे राक्षसियाँ, पुष्पक विमान ले, अशोक-वाटिका में गईं। वहाँ से त्रिजटा के साथ सीता को विमान पर चढ़ाकर ले आईं। दूसरी ओर रावण ने पताका और ध्वजाओं से शोभित लङ्का में ढिंढोरा पिटवा दिया कि संग्राम में इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को मार गिराया है।

इतने में त्रिजटा के साथ विमान पर चढ़ी हुई सीता ने भी जाकर देखा कि सब सेना छिन्न-भिन्न और नष्टप्राय हो गई है। उन्होंने मांसभक्षी राक्षसों को बहुत .खुश और वानरों को राम के पास [illegible] हुआ देखा। वे बहुत दुखी थे। सीता ने दोनों वीरों को धूल से सना हुआ, बाणों की सेज पर सोया हुआ तथा बाणों के दर्द से मूर्छित पाया; और देखा कि उनके कवच टूट-फूटकर अलग पड़े हुए हैं तथा धनुष अलग पड़ा है। दो स्वामिकार्त्तिक के से उन दोनों के शरीर बाणों से छिदे हुए हैं। उनकी ऐसी बुरी हालत देखकर सीता विलाप करने लगीं।

दोहा।

देखि नाश दोउ बन्धु कर, सीता धरति न धीर,
पुनि पुनि सोचति मृत्यु कहँ, बोली मन अति पीर॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीता का विलाप सुनकर त्रिजटा का समझाना।

अब पति और देवर दोनों की मृत्यु देखकर सीता विलाप करके कहने लगीं कि देखो, सामुद्रिक शास्त्र के पण्डितों ने मुझे सधवा और पुत्र-

सीता और त्रिजटा

वती बतलाया था। आज राम के मारे जाने से वे सब झूठे ठहरे। जिन ज्ञानियों ने मुझे अश्वमेध आदि यज्ञ करनेवाले और बहु-दिनव्यापी यज्ञ करनेवाले की पत्नी कहा था वे सब आज राम के मारे जाने से झूठे हो गये। जिन्होंने मुझे वीर राजाओं की पत्नियों की पूज्य और सौभाग्यवती बतलाया था वे सब ज्ञानी आज राम के मारे जाने से मिथ्यावादी समझे गये। जिन ज्योतिषियों ने मेरे सामने मुझे शुभ लक्षणोंवाली सधवा कहा था वे सब आज झूठे हो गये। देखो, कुल-स्त्री के पैरों में जो ये कमल-चिह्न रहते हैं वे नरेन्द्र-पतियों के साथ राज्यासन पर पहुँचते हैं। जो स्त्रियाँ भाग्यहीन होती हैं और जो बुरे लक्षणों से विधवा हो जाती हैं उस बुरे लक्षणों को मैं अपने में नहीं पाती। पर इस समय तो मैं हतलक्षणा हो गई हूँ। सामुद्रिक शास्त्रों में लिखा है कि स्त्रियों के कमल-चिह्न अमोघ फल देनेवाले होते हैं पर आज मेरे वे सब चिह्न झूठे हुए जाते हैं।

देखो, मेरे बाल बारीक, बराबर और नीले हैं। मेरी भौंहें अलग अलग हैं। मेरी दोनों जंघाएँ गोल गोल और केशरहित (चिकनी) हैं। मेरे दाँत अलग अलग हैं। मेरी दोनों आँखों में शङ्ख के निशान हैं। मेरे हाथ-पैर सुडौल हैं। मेरी अँगुलियाँ बराबर हैं। मेरी छाती सटी हुई और मोटी है और उनके आगे का हिस्सा उठा हुआ नहीं, गहरा है। मेरी नाभि (ढुंडी) गहरी है। मेरे पीछे का हिस्सा और छाती ऊँची है। मेरा रङ्ग मणि के तुल्य चमकीला है। मेरे बाल कोमल हैं। मेरे पैरों की दसों अँगुलियाँ और दोनों पैर, ये बारहों चिकने हैं। हाथों और पैरों के पोरुवों में जौ के चिह्न हैं; वे छिद्ररहित और लाल लाल हैं। लक्षण पहचाननेवाले पण्डितों ने बतलाया था कि यह कन्या मधुर हँसनेवाली है। मुझे देखकर ज्योतिषी ब्राह्मणों ने कहा था कि पति के साथ इसका राज्याभिषेक होगा। पर यह सब मिथ्या हो गया। देखो, ये वीर जनस्थानों को खोज मेरा पता पा, समुद्र को लाँघकर आये थे। हा! अब यहाँ मरे हुए पड़े हैं। हा! ये तो वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और ब्रह्मशिर नामक अस्त्रों को जानते थे। मैं समझती हूँ कि माया से छिपकर मारनेवाले ने मुझ अनाथा के दोनों नाथों को मार डाला। क्योंकि राघव के सामने से शत्रु कभी जीता हुआ नहीं जा सकता; वह चाहे मन के तुल्य ही वेग क्यों न रखता हो। हा! काल के लिए कोई बड़ा भारी भार नहीं है। मृत्यु दुर्जय है; उसे कोई जीत नहीं सकता। क्योंकि उसके वश में आकर भाई के साथ रामचन्द्रजी संग्रामभूमि में सो रहे हैं। इस समय न मुझे राम का रंज है, न लक्ष्मण का, न अपना और न अपनी माता का ही; किन्तु मुझे उस तपस्विनी अपनी सास के लिए बड़ा दुःख है जो रोज़ यही सोचती होगी कि राम, लक्ष्मण और सीता व्रत को समाप्त करके कब घर लौटेंगे और मैं उनको कब देखूँगी।

सीता इस तरह विलाप कर रही थीं कि त्रिजटा नामक राक्षसी बोली - हे देवि! तुम दुःख न करो। ये तुम्हारे पति जीते हैं। मैं तुम्हें इसका भारी और योग्य कारण सुनाती हूँ। देखो, जब स्वामी मारा जाता है तब योद्धाओं के मुँह पर क्रोध नहीं झलकता और वे हर्ष में उत्कण्ठित भी नहीं रहते। यदि ये दोनों मरे होते तो यह दिव्य पुष्पक विमान, जिस पर तुम चढ़ी हो, तुमको

कभी न चढ़ाता। यदि स्वामी मर जाता है तो प्रधान वीरों के मारे जाने से सेना उत्साह और उद्यमहीन होकर संग्रामभूमि में भगदड़ मचा देती है। पतवार टूटने से जल में नाव की जैसी दशा होती है वैसी ही दशा उस समय सेना की हो जाती है। हे तपस्विनि! देखो, यह वानरी सेना सावधान और उद्वेगरहित होकर अपने दोनों स्वामियों की रक्षा कर रही है। मैंने तुमको यह बात प्रीतिपूर्वक बतला दी है कि ये दोनों जीते हैं। अब तुम सुखकारक अनुमानों से विश्वास करके आनन्दित हो और दोनों वीरों को ज़िन्दा देखो। हे मैथिलि! मैंने न कभी झूठ कहा और न कहूँगी। अपने चरित्र और सुखदायक शील के कारण तू मेरे मन में बसी हुई है। इन्द्र-सहित देवता और दैत्य भी इन दोनों वीरों को जीत नहीं सकते। तू एक यह चमत्कार भी देख ले कि ये दोनों मारे बाणों के अचेत (बेहोश) पड़े हैं फिर भी इनको लक्ष्मी (शोभा) नहीं छोड़ती। प्राय: सत्व और आयुष्य-हीन मनुष्यों के मुँह पर ज़रूर विकार दिखाई दिया करता है। हे जनकपुत्रि! तू शोक, दु:ख और मोह छोड़ दे। ये दोनों वीर जीते जागते हैं। ये किसी तरह मर नहीं सकते। त्रिजटा की बातें सुनकर सीता ने हाथ जोड़कर कहा कि हे त्रिजटे! 'एवमस्तु'—ऐसा ही हो। इसके बाद त्रिजटा विमान को लौटाकर सीता को लङ्का में ले आई। त्रिजटा के साथ विमान से उतरकर वह राक्षसियों के द्वारा फिर अशोक-वाटिका में पहुँचाई गई।

दोहा।

अति विषाद-युत जानकी, सोचति मन अति पीर।
निरखि दशा दोउ बंधु की, नेकु धरत नहिं धीर॥

उनचासवाँ सर्ग

सचेत होकर रामचन्द्र का लक्ष्मण आदि के लिए शोक करना।

उस घोर बाण-बन्धन में पड़े-पड़े वे दोनों वीर, रुधिर से भीगे हुए साँपों की तरह, साँस ले रहे थे और शोकपीड़ित सुग्रीव आदि महाबली वानर चारों ओर से घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे। दृढ़ता और सत्यशीलता के कारण श्रीरामचन्द्रजी को थोड़ी देर में चेत हुआ। यद्यपि वे नाग-पाश से जकड़े हुए थे तथापि उनकी मूर्च्छा जाती रही। रुधिर से भीगे, पीड़ा के कारण पड़े और मज़बूती से बँधे हुए लक्ष्मण के उदास मुँह को देखकर वे विलाप करने लगे—हा! जो मुझे सीता मिल भी गई तो उससे या मेरे जीवन से अब क्या काम है। क्योंकि मैं लड़ाई में हारे हुए अपने भाई लक्ष्मण को सोता हुआ देख रहा हूँ। संसार में खोज करने से सीता के तुल्य स्त्री चाहे मिल जाय परन्तु लक्ष्मण के तुल्य भाई नहीं मिल सकता। यह युद्ध में मेरा सचिव है। यदि लक्ष्मण मर गये होंगे तो मैं वानरों के देखते देखते अपने प्राण त्याग दूँगा। क्योंकि यदि मैं लक्ष्मण के बिना अयोध्या को जाऊँगा तो कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा को क्या समझाऊँगा। वे अपने लड़के को देखने की बड़ी लालसा रखती होंगी और बिना बछड़े की गाय की भाँति काँपती और कुररी की नाईं विलाप करती होंगी। भला शत्रुघ्न और भरत से मैं क्या कहूँगा कि लक्ष्मण वन को साथ तो गये थे, पर अब उनके बिना ही मैं अकेला आया हूँ। भाइयो! मैं सुमित्रा का उलाहना न सह सकूँगा, इसलिए यहीं शरीर-

त्याग करना ठीक है । अब मुझे जीने की इच्छा नहीं । धिक्कार है मुझ पापकर्मा अनार्य को । ये लक्ष्मण मेरे लिए ही ज़मीन पर गिराये गये हैं । ये शरशय्या पर, मुर्दे की तरह, सो रहे हैं ।

हे लक्ष्मण! जब मैं किसी बात से दुखी होता था तब तुम मुझे समझाते थे । इस समय तुम प्राणहीन हो गये, इसलिए मुझ आर्त्त से तुम बोल भी नहीं सकते । हे शूर! तुमने जिस संग्राम-भूमि पर बहुत से राक्षसों को मारा था उसी भूमि पर बाणों की चोट से तुम स्वयं मारे गये और सो रहे हो । इस बाणशय्या पर पड़े हुए, खून से भीगे हुए, तुम्हारे शरीर में बाण ही बाण छिदे देख पड़ते हैं । इस समय तुम्हारी ऐसी दशा हो रही है जैसे अस्ता-चल को पहुँचते हुए सूर्य की होती है । हे लक्ष्मण मर्मस्थलों में बाणों के लगने से तुम बोल भी नहीं सकते । परन्तु तुम्हारी आँखों को देखने से तुम्हारी पीड़ा प्रत्यक्ष जान पड़ती है । हे लक्ष्मण! वन में आते समय जिस तरह तुम मेरे पीछे पीछे आये थे उसी तरह तुम्हारे यमपुर जाते समय मैं तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगा । हा! लक्ष्मण को यद्यपि सभी भाई प्यारे हैं परन्तु यह सदा मेरे ही साथ रहते थे । मुझ दुष्ट की बुरी नीति से आज इनकी यह दशा हुई । मुझे याद आता है कि जब कभी इन्होंने क्रोध भी किया तो भी कठोर या अप्रिय बात कभी नहीं कही । देखो, ये लक्ष्मण एक साथ पाँच पाँच सौ बाण चलाते थे । इसलिए कार्त्तवीर्यार्जुन से भी बाणों और अस्त्रों के विषय में ये अधिक पण्डित थे । इन्द्र के चलाये हुए अस्त्रों को अस्त्रों ही से नष्ट करने की जिसमें सामर्थ्य थी और जो बड़े क़ीमती पलँग पर सोते थे, वही आज ज़मीन पर मरे पड़े हैं । देखो, राक्षसों का राज मैं विभीषण को न दे पाया, यह असत्य भाषण मुझे अवश्य भस्म करेगा ।

हे सुग्रीव! तुम इसी समय यहाँ से चले जाओ, नहीं तो मेरे बिना तुमको असहाय पाकर वह रावण जीत लेगा । अंगद को सेना और सब सामान सहित आगे कर दो, और नील तथा नल को साथ लेकर तुम समुद्र के पार चले जाओ । देखो, हनुमान् ने ऐसा काम किया है जो दूसरा नहीं कर सकता । जाम्बवान् और गोलांगूल वानरों के स्वामी से भी मैं सन्तुष्ट हूँ । इस युद्ध में अङ्गद, मैन्द और द्विविद ने भी बड़े बड़े काम किये हैं । केसरी, गवय, गवाक्ष, सरभ और गज ने तथा और और वानरों ने भी युद्ध में बड़े बड़े काम किये । उन्होंने मेरे लिए प्राणों की भी ममता छोड़ दी । हे सुग्रीव! मनुष्य दैव का उल्लङ्घन नहीं कर सकता । हे मित्र! सुहृद् और मित्र जो कुछ कर सकता है वह तुमने मेरे साथ किया । क्योंकि तुम अधर्म से डरते हो । हे वानरश्रेष्ठो! मित्र को जो करना चाहिए वह तुमने सब किया । अब मैं तुमको यहाँ से चले जाने की सम्मति देता हूँ ।

रामचन्द्र का इस तरह विलाप सुनकर वानर अपनी आँखों से आँसू बहाने लगे । इतने में सब सेना को ठीक ठिकाने करके, हाथ में गदा लिये हुए, विभीषण वहाँ शीघ्रतापूर्वक आये । विभीषण का अञ्जन के समान काला शरीर देखकर वानरों ने समझा कि इन्द्रजित् फिर आ गया, इसलिए वे सब इधर उधर भागने लगे ।

पचासवाँ सर्ग

गरुड़ का आना और दोनों भाइयों को नागपाश से छुड़ाना ।

अब सुग्रीव ने कहा कि जल में हवा के ज़ोर से जिस तरह नाव डगमगा जाती है उसी तरह यह सेना ऐसी दुखी क्यों हो रही है? तब अङ्गद ने कहा कि क्या आप नहीं देखते कि ये दोनों वीर बाणों से छिदे और रुधिर से सने हुए शरशय्या पर पड़े हैं।

सुग्रीव ने कहा कि यह बात नहीं है। मैं समझता हूँ कि कोई दूसरा डर पैदा हुआ है। देखो, इन वानरों का चेहरा उदास है; ये शस्त्र छोड़ छोड़कर डर से व्याकुल-नेत्र हो एकदम भागते चले जाते हैं। न तो इन्हें भागने में लज्जा होती है और न ये पीछे की ओर देखते हैं। ये एक दूसरे को घसीटकर भागते ही जाते हैं और जो बीच में गिर पड़ता है उसे लाँघकर चल देते हैं। सुग्रीव यह कह ही रहे थे कि गदा लिये हुए विभीषण आ गये। वे सुग्रीव और रामचन्द्र को जयजयकार से आशीर्वाद देने लगे। तब, वानरों के लिए भयङ्कर रूपवाले विभीषण को देखकर सुग्रीव ने जाम्ववान् से कहा— देखो, विभीषण को देखकर इन्द्रजित् के धोखे से डर कर ये सब वानर भागते चले जाते हैं। दौड़कर जाओ और इनको समझाकर ठहराओ। उनसे कह दो कि ये विभीषण हैं, इन्द्रजित् नहीं। तब जाम्बवान् ने भागते हुए वानरों को समझाकर रोका।

अब सब वानर ऋक्षराज की बात सुनकर और विभीषण को देखकर निडर हुए। फिर दोनों भाइयों की दशा देखकर विभीषण बड़ा दुखी हुआ। पहले उसने हाथ में जल लेकर दोनों वीरों की आँखें धोईं। फिर वह दुखी होकर रोने और विलाप करने लगा कि देखो, ये दोनों शक्तिसम्पन्न पराक्रमी और संग्रामप्रिय वीर हैं। छलपूर्वक लड़नेवाले राक्षसों ने इनकी ऐसी दशा की। मेरे भाई के दुष्टात्मा कुपुत्र ने, राक्षसी कुटिल बुद्धि से, इन सीधे-सादों को ठग लिया। देखो तो सही, दो सेही पक्षियों की नाईं ये दोनों बाणों से बिंधे हुए और ख़ून से सने हुए ज़मीन पर पड़े हैं। हा! जिनके पराक्रम के सहारे मैंने प्रतिष्ठा पाने की इच्छा की थी वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ शरीर नाश करने के लिए सो रहे हैं। देखो, आज मैं जीता हुआ भी मुर्दे के समान हो गया। राज पाने का मेरा मनोरथ नष्ट हो गया। शत्रु की प्रतिज्ञा पूरी हुई। रावण कृतार्थ किया गया। इस तरह विलाप करते हुए विभीषण से मिलकर धैर्यवान् कपिराज बोले—हे धर्मज्ञ! तुम्हें लङ्का का राज्य मिलेगा, इसमें सन्देह न करो। रावण का मनोरथ कभी पूरा न होगा। देखो, ये दोनों भाई मूर्च्छा से जागकर गरुड़ पर सवार हो सपरिवार रावण को मारेंगे। सुग्रीव इस तरह विभीषण को समझाकर, पास में खड़े हुए, अपने ससुर सुषेण नामक वानर से बोले—"जब ये दोनों भाई सावधान हो जायँ तब शूर वानरों के साथ इनको लेकर तुम किष्किन्धा को चले जाओ। रावण को पुत्र और बन्धुओं-सहित मारकर मैं सीता को लाऊँगा।

वानरराज की बात सुनकर सुषेण ने कहा— हे सुग्रीव! जब देवासुर-संग्राम होता था तब उस युद्ध में भी शस्त्रज्ञ और लक्ष्य-भेद में चतुर दैत्य लोग छिपकर इसी तरह देवताओं को बार

बार मारते थे। जब देवता पीड़ित, अचेत और प्राणहीन हो जाते थे तब बृहस्पति मन्त्रयुक्त विद्याओं और ओषधियों से उनको भला-चङ्गा कर देते थे। इससे वे सब पहले की तरह शक्तिसम्पन्न हो जाते थे। हे राजन्! उन ओषधियों के लिए सम्पाती और पनस आदि वानर क्षीरसागर के किनारे जल्दी जायँ। ओषधियाँ दो हैं। एक सञ्जीविनी, दूसरी विशल्या। इन दोनों को वे वानर जानते-पहचानते हैं। उस समुद्र में जहाँ पर अमृत मथा गया था वहीं चन्द्र और द्रोण दो पर्वत हैं। उन्हीं पर ये बूटियाँ मिलती हैं। देवताओं ने ही उन दोनों पर्वतों को समुद्र में बनाया था। हे वानरराज! यह काम किसी दूसरे से न होगा। ये वायुपुत्र हनुमान् वहाँ जल्दी चले जायँ तो ठीक हो।

सुषेण यह बात कह ही रहे थे कि इतने में महावायु चली; बिजली के साथ मेघ भी समुद्र के जल को हिलोड़ते और पर्वतों को कँपाते हुए प्रकट हुए। पङ्खों की ज़ोर की हवा से, सब द्वीपों के बड़े-बड़े वृक्ष पत्र-शाखा-हीन होकर खारी समुद्र में उखड़-कर जा पड़े। वहाँ रहनेवाले साँप डर गये। जो जल-जीव बाहर थे वे गरुड़ के डर से खारी समुद्र के पानी में जल्दी घुस गये। इस उत्पात के एक मुहूर्त्त बाद विनता के पुत्र महाबली गरुड़ को वानरों ने देखा। वे जलती हुई आग के तुल्य थे। उनको आते देखकर वे साँप भाग गये जिन्होंने बाणरूप से उन दोनों वीरों को बाँध लिया था। अब गरुड़ ने दोनों भाइयों को हाथ से छुआ और उनका अभिनन्दन किया। दोनों के चन्द्रतुल्य मुखों पर उन्होंने हाथ फेरा। गरुड़ के छूते ही दोनों के घाव भर गये। उनके शरीरों की रङ्गत पहले की तरह हो गई। तेज, वीर्य, बल-पराक्रम, ओजस्, उत्साह, दृष्टि, बुद्धि और स्मृति, ये सब पहले की अपेक्षा दूने हो गये। इन्द्र के तुल्य दोनों भाइयों को उठाकर गरुड़ दोनों के गले लगकर मिले।

इसके बाद रामचन्द्रजी गरुड़ से बोले—आप-की कृपा और उपाय से हम दोनों इन्द्रजित् के बाणों के दुःख से छूट गये और बहुत जल्दी बल-वान् भी हो गये। इस समय आपको पाकर मैं ऐसा प्रसन्न हो रहा हूँ जैसे पिता दशरथ और बाबा अज के मिलने से होता। आप रूपवान् हैं, अच्छी-अच्छी सुगन्धित मालाएँ और स्वच्छ कपड़े पहने हुए हैं। बतलाइए, अच्छे-अच्छे गहने पहने आप कौन हैं? यह सुनकर बलवान् पक्षि-राज गरुड़ प्रसन्न होकर बोले—हे काकुत्स्थ! मैं बाहर घूमनेवाला, आपके प्राणों के तुल्य प्यारा, मित्र गरुड़ हूँ। मैं आपकी ही सहायता के लिए यहाँ आया हूँ। हे रामचन्द्र! महापराक्रमी दैत्य या महाबली वानर अथवा इन्द्र सहित गन्धर्व और देवता भी चाहते कि आपको इस बाण-बन्धन से छुड़ा लें तो कभी न छुड़ा सकते थे; क्योंकि कठोरकर्मा इन्द्रजित् ने यह बन्धन माया के बल से बनाया है। हे रघुनन्दन! ये नाग कद्रू के लड़के, तीखे दाँतवाले और बड़े विषधर हैं। ये राक्षस की माया के प्रभाव से बाणरूप होकर उसके अधीन हो रहे हैं। हे रामचन्द्र! आप बड़े भाग्यवान् हैं जो अपने भाई लक्ष्मण को साथ ले संग्राम में शत्रुओं को मारना चाहते हैं। मैं यह हाल सुनते ही यहाँ दौड़ा आया हूँ; क्योंकि आपका और मेरा बड़ा स्नेह है। मैत्री का पालन करके मैंने आप दोनों को घोर बन्धन से छुड़ा दिया। अब

देखिए, युद्ध में बहुत सावधानी से काम कीजिए; क्योंकि राक्षस लोग स्वभाव से ही छली होते हैं। आप जैसे शूरों का तो धर्म-युद्ध है, पर संग्राम में राक्षसों के साथ शुद्धता का विश्वास कभी न करना चाहिए। इसी उदाहरण से समझ लीजिए कि ये राक्षस कैसे कुटिल हैं। इसके पश्चात् गरुड़ ने रामचन्द्र को गले से लगा करके विदा माँगते हुए कहा—हे मित्र राघव, हे शत्रुओं पर भी दया करनेवाले! अब मैं जाऊँगा। आप इस मैत्री के विषय में कुछ भी आश्चर्य न कीजिएगा। जब आप संग्राम में कृतकार्य हो जायँगे तब इस मैत्री के विषय में ठीक-ठीक हाल जानेंगे। आप अपने बाणों की धारा से इस लङ्का को ऐसी कर देंगे कि इसमें केवल बालक और बूढ़े ही रह जायँगे। शत्रु रावण को मारकर आप सीता को पावेंगे। इतना कहकर वानरों के बीच में गरुड़ ने रामचन्द्र की प्रदक्षिणा की। फिर उनको गले लगाकर वे हवा की तरह आकाश में उड़ गये।

अब दोनों वीरों को पीड़ारहित देखकर वानरों के यूथपति सिंहनाद करने, अपनी पूँछों को कँपाने, और तुरही, मृदङ्ग तथा शङ्ख बजाने लगे। वे सब पहले की तरह किलकिला शब्द करने लगे। सैकड़ों हज़ारों वीर वानर ठनक-ठनककर वृक्षों को उखाड़कर युद्ध करने की इच्छा से खड़े हो गये। वे बड़े ज़ोर से गरजते हुए और राक्षसों को डर दिखलाते हुए लङ्का के फाटकों पर जा पहुँचे।

दोहा

अर्धरात्रि के समय तहँ, भयो नाद अति घोर।
वर्षा के आरम्भ महँ, जिमि अम्बुद घन सोर॥

———

५१ वाँ सर्ग

रावण का दुखी होना और धूम्राक्ष को युद्ध के लिए भेजना।

अब रावण महापराक्रमी वानरों की घोर गर्जना सुनकर अपने सचिवों से कहने लगा—भाइयो! यह तो मेघों के गरजने के समान बहुत से वानरों का हर्षनाद सा जान पड़ता है। हो न हो वहाँ ज़रूर कोई ख़ुशी की बात हुई है, इसमें सन्देह नहीं। देखो, इनकी गर्जना से समुद्र क्षोभित हो गया है। वे दोनों भाई तो तीखे बाणों से बँधे हुए हैं; फिर यह वानरों का हर्षनाद कैसा सुनाई देता है? मुझे तो शङ्का हो रही है।

रावण ने पास बैठे हुए राक्षसों को आज्ञा दी कि तुम जाकर देखो; ऐसे शोक के समय में वानरों की ख़ुशी की क्या बात हुई। उसकी आज्ञा से वे राक्षस व्याकुल होकर अटारी पर चढ़ गये। वहाँ से वे क्या देखते हैं कि सुग्रीव तो सेना की रक्षा कर रहे हैं और वे दोनों रघुनन्दन वीर बाण-बन्धन से छूटकर ख़ुशी से बैठे हुए हैं। यह देखकर राक्षसों को बड़ा दुःख हुआ। वे डर गये। उनके मुँह पीले पड़ गये। फिर अटारी पर से उतरकर वे राजा के पास आये। दीनमुख होकर उन्होंने रावण को यह अप्रिय हाल सुनाया कि महाराज! जिन दोनों भाइयों को इन्द्रजित् ने बाण-बन्धन से बाँध दिया था वे तो संग्राम में ऐसे बन्धन-रहित देख पड़ते हैं जैसे गजेन्द्र जाल-बन्धन को तोड़कर मोटा-ताज़ा दिखाई देता है। उनकी बात सुनकर राक्षसेन्द्र चिन्तित और क्रुद्ध हो गया। उसके मुँह की आकृति बदल गई। उसने कहा—देखो,

जिन बाणों के द्वारा इन्द्रजित् ने बड़ी बहादुरी से उन्हें बाँधा था वे बाण साँपों के समान घोर थे, वरदान में मिले थे; वे अमोघ और सूर्य के समान थे। यदि वे दोनों शत्रु ऐसे दृढ़ बन्धन से छूट गये तो मैं समझता हूँ कि मेरी सारी सेना के जीने में अब संशय है।

अब वह क्रोध में भर गया। साँप की तरह साँस छोड़ते हुए उसने धूम्राक्ष राक्षस से कहा—हे भयङ्कर पराक्रमी! तुम बड़ी सेना साथ लेकर वानरों समेत राम को मारने जल्दी जाओ। आज्ञा पाते ही धूम्राक्ष, रावण की प्रदक्षिणा करके, राज-भवन से चला। उसने सेनापति से कहा कि बहुत जल्दी सेना तैयार करो; क्योंकि युद्ध की इच्छा रखनेवाले को देरी करने से क्या काम?

धूम्राक्ष के कथनानुसार, रावण की आज्ञा से, सेनापति ने बहुत जल्दी सेना सजा दी। अब सेना के विकराल राक्षस ख़ुशी से गरजने लगे। वे घण्टा बाँधे हुए थे। वे धूम्राक्ष को घेरे हुए शूल, मुद्गर, गदा, पटा, लोहदण्ड, मूसल, बेंवड़ा, भिन्दि-पाल, भाला, परसा और परश्वध आदि अनेक तरह के शस्त्र लेकर बादलों की तरह गरजते हुए वहाँ से चले। बहुत से राक्षस कवच पहन-पहनकर रथों पर चढ़कर तैयार हुए। इन रथों पर ध्वजाएँ फह-राती थीं; इनमें सोने की जालियाँ भी लगी हुई थीं। अनेक तरह के मुँहवाले ख़च्चर इनमें जुते हुए थे। बहुत से राक्षस जल्दी चलनेवाले घोड़ों पर और अनेक मस्त हाथियों पर सवार हो-होकर तैयार हुए। राक्षस धूम्राक्ष अच्छे रथ पर चढ़कर राक्षसी सेना को साथ लिये हुए पश्चिम के फाटक से हँसता हुआ निकला। उसके रथ में जो ख़च्चर जुते हुए थे उनका मुँह हुण्डार और सिंह के समान था; तथा उनका साज सोने का था। उसी तरफ़ हनुमान् खड़े थे। उस समय आकाश से बड़े अशकुन होने लगे, मानो वे इसको युद्ध-यात्रा से रोक रहे हों। पहले तो रथ के कलश पर एक महाभयङ्कर गीध आ गिरा। फिर मुर्दे खानेवाले अनेक पक्षी इस राक्षस की ध्वजा की चोटी पर लिपट-लिपटकर गिरते थे। इसके बाद धूम्राक्ष के पास ख़ून से सना हुआ और अमङ्गल शब्द करता हुआ आकाश से कबन्ध गिर पड़ा। बादलों से ख़ून बरसने लगा। भूकम्प होने लगा। सामने प्रतिकूल हवा, बिजली गिरने के समान, शब्द करती हुई ज़ोर से चलने लगी। उस समय चारों ओर ऐसा अँधेरा हो गया कि कुछ भी जान न पड़ता था। इस तरह राक्षसों के भय-सूचक उत्पातों को देखकर धूम्राक्ष बड़ा दुखी हुआ। उसके आगे चलनेवाले राक्षस भी दुखी हुए।

दोहा

रणकामी धूम्राक्ष तहँ, देखो वानर-सेन।
उदधि तुल्य रघुवीर भुज, पालित रिपु भयदेन॥

---

५२ वाँ सर्ग

युद्ध में धूम्राक्ष का मारा जाना।

अब धूम्राक्ष राक्षस को लङ्का से निकलते देखकर, लड़ने की इच्छा से, वानर हर्ष-पूर्वक गर-जने लगे। उस समय वानरों और राक्षसों का वृक्षों और शूल-मुद्गरों से बड़ा भारी युद्ध हुआ। राक्षसों ने वानरों को और वानरों ने राक्षसों को मारकर भूमि पर गिरा दिया। राक्षस क्रोध-पूर्वक

पैने-पैने कङ्कपत्रवाले और सीधे चलनेवाले भयङ्कर बाणों से वानरों को छेदने लगे। और वानर गदा, पटा, काँटेदार मुद्गर, बड़े-बड़े बेंवड़े और चित्र-विचित्र शूलों से राक्षसों को मारने लगे। इस तरह राक्षसों के द्वारा विदारे जाने पर वानर डाह से संग्राम में उत्साह-पूर्वक निडर होकर युद्ध करने लगे। जब बाणों से उनके शरीर छिद गये और शूलों से विदीर्ण हो गये तब वानरों के यूथपतियों ने बड़े-बड़े वृक्ष और बड़े-बड़े पत्थर हाथों में ले लिये। फिर ये चारों ओर गरजते हुए राक्षसों का मथन करने और अपना-अपना नाम भी सुनाने लगे। दोनों दलों में अनेक तरह के पत्थरों और अनेक शाखा-वाले वृक्षों से बड़ा अद्‌भुत घोर युद्ध हो रहा था।

इस तरह निर्भय होकर और दम साधकर वानरों ने राक्षसों का ख़ूब मथन किया जिससे बहुत से रुधिरभोजी राक्षसों के मुँह से ख़ून गिरने लगा। बहुतेरों को उन्होंने विदीर्ण कर डाला तथा बहुतों को मार वृक्षों के ढेर कर दिया। बहुतों को पत्थरों के मारे चूर कर दिया और कितनों को दाँतों से फाड़ डाला। कोई कोई ध्वजाओं से मले गये, कोई तलवारों से मारे गये। छूटे हुए रथों से कुचले जाकर बहुत से राक्षस बड़े दुखी हुए। उस संग्रामभूमि में पर्वत के आकारवाले हाथी बिछ गये। वानरों के द्वारा फेंके हुए पर्वत-शिखर तथा मथन किये गये सवार और घोड़े वहाँ भरे पड़े थे। बड़े विकट पराक्रमी वेगवान् वानरों ने कूद-कूदकर तेज़ नाखूनों से राक्षसों के मुँह नोच डाले। रुधिरगन्ध से मूर्छित होकर राक्षस लोग ज़मीन पर गिर पड़े। बहुत से बहादुर राक्षस ग़ुस्से में भर-कर, वज्र के तुल्य थपेड़े तानकर, वानरों पर दौड़ते थे। उस समय झपटकर वानर भी आते हुए राक्षसों को बहुत जल्दी मुक्कों, पैरों, दाँतों और वृक्षों से मार गिराते थे।

वानरों की मार से अपनी सेना को भागते देख-कर धूम्राक्ष क्रोधपूर्वक वानरों को मारने लगा। उसने बहुतों को जान से मारा जिससे वे गिर पड़े। उनके शरीर से रक्त की धाराएँ बहने लगीं। मुद्गरों की मार से बहुतेरे ज़मीन पर गिर गये। अनेक बेंवड़ों से मथ डाले गये तथा बहुत से भिन्दिपालों से विदीर्ण कर डाले गये। बहुत से पट्टिशों की मार से विह्वल होकर ज़मीन पर गिरकर मर गये। बहुत से वानर ज़मीन पर गिरकर रक्त बहाने लगे और अनेक, राक्षसों से खदेड़े जाकर, संग्राम-भूमि से भाग गये। बहुतों की छाती फट गई। बहुत से कर-वट के बल ज़मीन पर सुला दिये गये। त्रिशूल की मार से बहुत से वानरों की अँतड़ियाँ निकल पड़ीं।

उस समय वानरों और राक्षसों का वह बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। उसमें शस्त्र, पत्थर तथा वृक्षों की मार हो रही थी। उस युद्ध ने सङ्गीत का सा रूप धारण किया था। उसमें धनुष की प्रत्यञ्चा ही वीणा थी, घोड़ों का हिनहिनाना ताल देना था और मन्द जाति के हाथियों के शब्द गीत से सुन पड़ते थे।

अब धूम्राक्ष हँसता हुआ हाथ में धनुष लेकर बाणों की वर्षा से वानरों को भगाने लगा। धूम्राक्ष से सेना को पीड़ित देखकर हनुमान् को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने बड़ा भारी पत्थर उठाकर, क्रोध से अपनी आँखें दुगुनी लाल करके, धूम्राक्ष के रथ पर फेंक दिया। उस पत्थर को अपने ऊपर आते देख-कर वह राक्षस घबराया, और हाथ में गदा लेकर

रथ पर से उछलकर नीचे कूद पड़ा। फेंकी हुई शिला चक्र, धुरी, घोड़े, ध्वजा और धनुष-सहित उस रथ को चूर-चूर कर धरती में गिर पड़ी। तब हनुमान् ने रथ को छोड़ दिया। वे बड़े-बड़े वृक्षों से राक्षसों को मारने लगे। वृक्षों की चोट से राक्षसों के सिर फटने लगे; वे ख़ून से नहाकर ज़मीन पर गिरने लगे। इस तरह राक्षसी सेना को मारकर हनुमान् पर्वत का एक टुकड़ा ले धूम्राक्ष पर दौड़े। इनको आते देख वह राक्षस भी गदा तानकर गरजता हुआ हनुमान् पर झपटा। उसने कँटीली गदा से क्रोधपूर्वक हनुमान् के सिर पर प्रहार किया, परन्तु हनुमान् ने उस भारी गदा के प्रहार को कुछ भी न समझा। उन्होंने वह पहाड़ का टुकड़ा राक्षस के सिर पर फ़ौरन पटक दिया। उसकी चोट से वह राक्षस मर गया और हाथ-पैर फैलाकर, टूटे-फूटे पर्वत की नाईं, ज़मीन पर गिर पड़ा। धूम्राक्ष को मरा हुआ देखकर बाक़ी राक्षस, वानरों की मार से, डरकर लङ्का को भाग गये।

दोहा

रिपु निशिचर कहँ मारि कपि, रक्तनदी सरसाय।
श्रमित होइ अरि घात ते, बैठे मन हरषाय॥

———

५३ वाँ सर्ग

युद्ध के लिए रावण का वज्रदंष्ट्र को भेजना।

धूम्राक्ष के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह साँप की नाईं फुफकारने लगा और गरम साँसें लेकर क्रूर महाबली वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस से कहने लगा—हे वीर! तुम अपने साथ राक्षसों को ले जाओ और दशरथ के पुत्र को तथा वानरों-सहित सुग्रीव को मारो।

राजा की आज्ञा पा वह राक्षस बहुत सी सेना साथ लेकर चल पड़ा। उसके साथ हाथी, घोड़े, खच्चर, ऊँट तथा ध्वजा और पताकाओं से शोभित रथ थे। चित्र-विचित्र हस्तभूषण और मुकुट से सज-धजकर, और कवच पहन, वह धनुष लेकर बहुत जल्दी घर से निकल पड़ा। चमकीले और सोने से मनोहर चित्र-विचित्र रथ की प्रदक्षिणा करके वह उस पर सवार हुआ। उस पर झण्डा लगा हुआ था। ऋष्टि, तोमर, अच्छे और चिकने मूसल, भिन्दिपाल, धनुष, बरछी, पटा, खड्ग, चक्र, गदा, और तेज परश्वध तथा और भी कई तरह के हथियार हाथों में लेकर पैदल सेना चली। चित्र-विचित्र कपड़े पहने हुए और तेज से प्रज्वलित राक्षस उस सेना में देख पड़ते थे। मस्त और शूर हाथी ऐसे थे मानो चलते-फिरते हुए पर्वत हों। उन पर तोमर और अंकुशधारी वीर सवार थे। और भी दूसरी तरह के हाथी थे, जिनकी पीठों पर चढ़े हुए शूर बड़ी शोभा दे रहे थे। वर्षा के समय बिजली के साथ गरजते हुए बादलों की जिस तरह शोभा होती है उसी तरह लगातार जाती हुई राक्षसों की सेना शोभा दे रही थी। जहाँ अङ्गद यूथपति थे उसी दक्षिणी फाटक से यह सेना निकली। इसके निकलते ही अशकुन हुए। आकाश से बिजली गिरने लगी और पुच्छल तारे टूटने लगे। गीदड भयङ्कर शब्द करके चिल्लाने लगे। उस समय मृग इस तरह बोल रहे थे मानो राक्षसों के नाश

की सूचना दे रहे हैं। बिना ही कारण बहुत से योद्धा सूखी ज़मीन पर फिसल पड़ते थे। इन उत्पातों को देखता हुआ वह वज्रदंष्ट्र धीरज धरकर रण के लिए उत्साह-पूर्वक चला जाता था।

उन राक्षसों को आते देखकर विजयी वानर दिग्व्यापी नाद करने लगे। इसके बाद राक्षसों के साथ वानरों की घमासान लड़ाई हुई। वानरों के मारे हुए बड़े-बड़े राक्षसों के ख़ून से सने हुए धड़ ज़मीन पर पड़े दिखाई देते थे। युद्ध में पीठ न देनेवाले बहुत से राक्षस सामने आकर तरह-तरह के शस्त्र चला रहे थे। उस समय वृक्षों, पत्थरों और शस्त्रों के चलाने का ऐसा घोर शब्द हो रहा था कि जिसे सुनकर हृदय फटा जाता था। रथ, चक्र, धनुष, शङ्ख, तुरही और मृदङ्गों का भी भारी शब्द हो रहा था। बहुत से राक्षस तो शस्त्र फेंककर बाहुयुद्ध ही कर रहे थे। कितने ही थप्पड़ों, लातों, मुक्कों, और वृक्षों से लड़ रहे थे। बहुत से राक्षसों के शरीर वानरों के घुटनों की मार से टूट-फूट गये, और कितने ही तो पत्थरों की मार से चूर-चूर हो गये। अपनी सेना की ऐसी दुर्दशा देखकर वह वज्रदंष्ट्र वानरों को डर दिखलाने लगा और उनका नाश करने के लिए प्रलय समय के यम की नाईं घूमने लगा। बलवान् और शस्त्र चलानेवाले बहुत से राक्षस भी वानरी सेना में मार-काट मचा रहे थे। उन पर राक्षसों की तेज़ी देखकर अङ्गद को दूना क्रोध चढ़ आया। वे प्रलय-समय की आग की नाईं प्रज्वलित हुए और वृक्ष लेकर उन राक्षसों को ऐसे मारने लगे जैसे सिंह जङ्गली जीवों को मारता है। इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अङ्गद की मार से राक्षसों के सिर टूट गये। कटे हुए वृक्षों की नाईं वे ज़मीन पर लोटने लगे। चित्र-विचित्र रथों से, झण्डों से, घोड़ों से, वानरों और राक्षसों की लोथों से तथा ख़ून बहने से वहाँ की युद्ध-भूमि ने भयङ्कर रूप धारण किया। हार, बिजायठ, कपड़े और हथियारों से वहाँ की ज़मीन की ऐसी शोभा हो गई जैसी शरद ऋतु की रात की होती है।

दोहा

दारुण वृक्ष-प्रहार तें, दीन्हीं सेन कँपाइ।
बालि-तनय जिमि पवन तें, मेघ-घटा थहराइ॥

---

५४ वाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्र का मारा जाना।

अब वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेना का मारा जाना और अङ्गद का पराक्रम देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। इन्द्र के वज्र के तुल्य धनुष फैलाकर वह वानरी सेना पर बाण-वर्षा करने लगा। रथों पर चढ़े हुए मुख्य-मुख्य राक्षस तथा अन्यान्य वीर राक्षस तरह-तरह के शस्त्रों से युद्ध करने लगे। इधर बहादुर वानर भी इकट्ठे हो-हो उन पर पत्थर पटकने लगे। इस बड़ी लड़ाई में राक्षसों ने हज़ारों शस्त्रों से वानरों के सेनापतियों पर हमले किये और गजेन्द्र के समान भारी शरीरवाले वीर वानरों ने भी बड़े-बड़े वृक्ष और बड़े-बड़े पत्थर राक्षसों पर फेंके।

युद्ध से कभी मुँह न फेरनेवाले वीर वानरों और वीर राक्षसों का वह युद्ध उस समय देखने योग्य हो रहा था। उस युद्धभूमि में ऐसे अगणित वानर और राक्षस पड़े थे जिनमें से किसी का सिर

कट गया था तो किसी के पैर कट गये थे; किसी के हाथ नहीं थे; कितने ही बाणों से छेदे गये, और ख़ून से शराबोर थे। उनके शरीरों पर कौए, गीध, बगुले और गीदड़ बैठने लगे। डरनेवालों को डरानेवाले बहुत कबन्ध (धड़) उठते थे और बहुत से घायल वानर तथा राक्षस युद्धभूमि में गिरे देख पड़ते थे। इनकी बाँहें, हाथ, सिर और शरीर के अन्य भाग कट गये थे। वज्रदंष्ट्र के देखते-देखते वानरी सेना ने राक्षसी सेना को काट डाला। जब उसने देखा कि हमारे बहुत से राक्षस वानरों के हाथ से मारे जा रहे हैं और डरकर भाग रहे हैं तब तो वह लाल-लाल आँखें करके, हाथ में धनुष लेकर, वानरी सेना को डर दिखलाता हुआ सेना में घुस पड़ा। फिर वह सीधे-सीधे कङ्कपत्र बाणों से वानरों को छेदने लगा। क्रुद्ध होकर वह इस ढङ्ग से बाण चला रहा था कि सात सात, आठ-आठ, नौ-नौ और पाँच वानरों को एक ही बाण से छेद डालता था। अब वानरों की सेना चोट खाकर और डरकर शरण लेने की इच्छा से अङ्गद की ओर दौड़ी।

जब अङ्गद ने देखा कि ये बेचारे वानर मारे जा रहे हैं तब टेढ़ी नज़र से वे वज्रदंष्ट्र की ओर देखने लगे। वह भी उसी तरह से अङ्गद को घूर रहा था। अब ये दोनों परस्पर भिड़ गये। अनेक तरह के युद्ध-मार्ग में दोनों इस तरह घूमने लगे जिस तरह सिंह और मस्त गजेन्द्र घूमते हैं। फिर वज्रदंष्ट्र ने अग्निशिखा के तुल्य हज़ार बाण अङ्गद के मर्मस्थानों में मारे। उन बाणों के मारे बालि-पुत्र ख़ून से नहा गये। फिर उन्होंने वज्रदंष्ट्र पर एक वृक्ष चलाया। वृक्ष को अपने ऊपर आते देखकर राक्षस ने अनेक बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। राक्षस की यह बहादुरी देखकर अङ्गद ने पर्वत का एक भारी शिखर उखाड़कर उस पर चलाया और ज़ोर से गर्जना की। पर्वत के शिखर को आते देखकर, गदा हाथ में ले, वज्रदंष्ट्र रथ पर से कूद पड़ा। उस वार से वह तो बच गया, पर उसका घोड़ों सहित रथ चूर-चूर हो गया। अङ्गद ने वृक्षों सहित पर्वत का एक शिखर दुबारा उखाड़ा और वज्रदंष्ट्र के सिर पर पटक दिया। उसकी चोट से वह ख़ून बहाता हुआ, थोड़ी देर के लिए, बेहोश हो गया और गदा लिये हुए ऊपर-नीचे को साँस लेने लगा।

थोड़ी देर में जब चेत हुआ तब उसने बालि-पुत्र की छाती में गदा से चोट की। फिर गदा फेंककर दोनों मुष्टियुद्ध करके एक दूसरे को मारने लगे। दोनों ऐसे लड़े कि ख़ून से नहा गये। लड़ते-लड़ते थके हुए वे ऐसे मालूम होते थे मानों मङ्गल और बुध हों। इसके बाद तेजस्वी अङ्गद फूलों और फलों से लदे हुए एक वृक्ष को हाथ में लेकर खड़े हो गये। राक्षस ने भी भालू के चमड़े की ढाल और किङ्किणी-जाल से भूषित म्यान में रक्खी हुई मनोरम तलवार लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। दोनों पैतरे बदलते और एक दूसरे पर चोट करते हुए गरजने लगे। दोनों जय की इच्छा रखते थे इसलिए ज़रा देर भी रुकते न थे। चोट खाने से दोनों के शरीरों में जो घाव हो गये थे उनसे रक्त बहने के कारण फूले हुए टेसू के वृक्ष की नाईं वे देख पड़ते थे। जब युद्ध करते हुए खड़े-खड़े थक गये तब वे घुटनों के बल ज़मीन पर झुककर लड़ने लगे। पल भर में लाठी से छेड़े हुए साँप की नाईं लाल आँखें करके अङ्गद उठ खड़े हुए और उसी

राक्षस की तलवार छीनकर ऐसी मारी कि उसका सिर धड़ से अलग हो गया। उसकी देह ख़ून से सनी हुई तो थी ही अब और भी नहा उठो। उसकी आँखें फिर गईं। वज्रदंष्ट्र को मरा हुआ देखकर बाक़ी राक्षस, डरकर, लङ्का की ओर भाग गये। अब वे सब दीन होकर लज्जा से मुँह नीचे किये हुए लङ्का में घुस गये।

दोहा

मारि राक्षसहिं बालिसुत, कपिगण महँ हरषाइ।
पूजित भे जिमि स्वर्ग महँ, सुरनमध्य सुरराइ॥

---

५५ वाँ सर्ग

रावण का अकम्पन को युद्ध के लिए आज्ञा देना।

जब रावण ने सुना कि बालि के पुत्र ने वज्रदंष्ट्र को मार डाला तब उसने अपने सेनापति से कहा—सब पराक्रमी राक्षस इसी समय शस्त्र और अस्त्र चलाने में चतुर अकम्पन को आगे करके युद्ध करने के लिए जायँ। क्योंकि अकम्पन बड़ा शासक, रक्षक, नायक, लड़ाई के योग्य, सदा मेरी भलाई चाहनेवाला और सदा युद्धप्रिय है। संग्राम में यह उन दोनों भाइयों को और सुग्रीव को ज़रूर जीत लेगा। यह वानरों को तो मारेगा ही। रावण की आज्ञा पाकर मन्त्री ने सैनिकों को आज्ञा दी कि अपने शस्त्र और अस्त्र लेकर जल्दी तैयार हो जाओ। उसकी आज्ञा पाते ही बड़ी-बड़ी भयङ्कर आँखोंवाले और बड़े-बड़े शरीरवाले ख़ास-ख़ास राक्षस तरह-तरह के शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए।

मेघ के तुल्य काला और वैसा ही शब्द करनेवाला अकम्पन भी सोने से सजे हुए रथ पर चढ़कर और भयानक राक्षसों को साथ ले लङ्का से चल निकला। यह ऐसा दृढ़ था कि युद्ध में देवता भी इसे डिगा न सकते थे। जैसा इसका नाम था वैसा ही इसमें गुण था। यह शत्रु के सामने अपनी सेना में सूर्य की नाईं तपता था। अब ऐसा चमत्कार हुआ कि उसके घोड़े अकस्मात् दीन हो गये। युद्ध का उत्साह होने पर भी उसकी बाईं आँख फड़कने लगी। मुँह का रङ्ग बदल गया। शब्द भर्राने लगा। वह दिन पहले तो अच्छा था पर अब दुर्दिन हो गया। रूखी-रूखी हवा चलने लगी। सब पक्षी और जङ्गली जीव क्रूर तथा भयङ्कर शब्द से बोलने लगे। सिंह की तरह बड़े कन्धोंवाला और शार्दूल के तुल्य पराक्रमी वह अकम्पन इन उत्पातों की कुछ परवा न करके संग्राम-भूमि में जाने के लिए कटिबद्ध ही रहा। सेना के साथ उसके निकलते ही ऐसे ज़ोर की आवाज़ हुई कि जिससे समुद्र भी खलबला गया। उस शब्द से वानरी सेना डर गई। वृक्षों और पर्वतों के टुकड़े लेकर वानर लड़ने लगे। राम के लिए अपना शरीर अर्पण कर देनेवाले वानरों से रावण के पक्षपाती राक्षसों का घोर युद्ध ठन गया। बलवान्, शूर और पर्वत की सी देहोंवाले वे वानर और राक्षस परस्पर प्रहार करने लगे। उन सबके परस्पर ललकारने, ठनकने और गरजने की बड़ी भारी आवाज़ हुई। उस युद्ध से ज़मीन की धूमरी धूल ऐसी उड़ी कि दसों दिशाओं में भर गई। धूल के उड़ने से लड़ाई की सब चीजें छिप गईं। न तो वहाँ ध्वजा दीखती थी, न पताका, न हाथी, न घोड़ा, न शस्त्र और न रथ। ये सब

चीज़ें न मालूम कहाँ चली गईं। एक भी दिखाई न देती थी। हाँ, उनके गरजने और दौड़ने की आवाज़ ज़रूर सुनाई देती थी, पर सूरत किसी की न देख पड़ती थी। उस विकट अँधेरे में वानरों को ही वानर और राक्षसों को ही राक्षस मारते थे। वानर और राक्षस निरी मार-काट मचा रहे थे। वे यह न देखते थे कि यह अपना है या पराया। उस समय मारे ख़ून के उस ज़मीन में कीच मच गई। रक्त की धाराएँ गिरने से धूल दब गई। वीरों की लोथों से वह सारी ज़मीन छिप गई। वहाँ वानर और राक्षस वृक्ष, शक्ति, गदा, प्रास, पत्थर, परिघ और तोमरों से परस्पर शीघ्रतापूर्वक मारपीट कर रहे थे। पहाड़ के समान बड़े-बड़े राक्षसों को परिघों की ऐसी बड़ी भुजाओं से वानर मार रहे थे। क्रोध में भरकर राक्षस भी प्रास, तोमर हाथों में ले बड़े भयङ्कर शस्त्रों से वानरों का नाश कर रहे थे। सेनापति अकम्पन क्रुद्ध होकर राक्षसों का उत्साह बढ़ाता जाता था। इधर वानर भी बड़े-बड़े वृक्षों और पत्थरों से तथा राक्षसों के शस्त्रों को छीन-छीनकर उनसे भी राक्षसों को मारते थे। इतने में कुमुद, नल और मैन्द नामक वीर वानर क्रुद्ध होकर बड़े वेग से लड़ने लगे। वे बड़े-बड़े वृक्षों से खेल सा समझकर राक्षसों को मारकर गिराने लगे। इधर अकम्पन की आज्ञा से अनेक तरह के शस्त्रधारी राक्षस वानरों का मथन कर रहे थे।

---

५६ वाँ सर्ग

अकम्पन का मारा जाना।

जब अकम्पन ने देखा कि सङ्ग्राम में वानरों ने बड़ी बहादुरी दिखलाई है तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। धनुष के रौंदे को बजाता हुआ वह सारथि से कहने लगा—हे सारथे! जहाँ ये वीर वानर खड़े हैं वहाँ मेरे रथ को जल्दी से पहुँचाओ। ये क्रोधी वानर मेरे देखते हुए बहुत से राक्षसों को मार रहे हैं। अब मैं इनको मारूँगा। इन्होंने मेरी सेना का नाश कर डाला। सेनापति की आज्ञा से सारथि ने रथ हाँक दिया और वहीं पहुँचा जहाँ वह जाना चाहता था। वहाँ पहुँचकर अकम्पन बाणों से वीरों को मारने लगा। उसने ऐसी मार मारी कि वानरों के छक्के छूट गये। उस समय वानर उसके सामने खड़े भी न रह सकते थे, युद्ध की कौन कहे। उसके बाणों की चोट खा-खाकर वानर वहाँ से भाग खड़े हुए। वानरों को मौत के मुँह में गिरे और अकम्पन के बाणों से पीड़ित देखकर हनुमान् अपनी जातिवालों की सहायता करने के लिए तैयार हुए।

हनुमान् को तैयार देखकर वे सब उनको घेरकर इकट्ठे हो गये; उनको भी एक तरह से ढाढ़स बँध गया; क्योंकि बलवान् को देखकर दूसरों में भी हिम्मत हो जाती है। पर्वताकार हनुमान् को देखकर अकम्पन बाण-वर्षा करने लगा। परन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न कर अकम्पन के मारने का उपाय सोचा। वे हँसकर पृथ्वी को कँपाते हुए अकम्पन की ओर दौड़े। उस समय गरजते हुए और तेज से देदीप्यमान हनुमान् ऐसे देख पड़े

मानों जलती हुई आग हो। अपने को शस्त्ररहित देख कपि ने क्रोध से एक पर्वत उखाड़ लिया और गरजकर उसे घुमाते हुए वे अकम्पन पर ऐसे दौड़े जैसे पूर्व काल में नमुचि पर वज्र लेकर इन्द्र दौड़े थे। हनुमान् के हाथ में पर्वत का शिखर देखकर, अकम्पन ने दूर से ही अर्द्धचन्द्राकार बाण चलाकर उसका चूरा कर डाला। पर्वत का शिखर टूट जाने से हनुमान् बड़े क्रुद्ध हुए। पास ही एक पर्वत था, उस पर ऊँचा सा अश्वकर्ण वृक्ष लगा था। उन्होंने उसे ही उखाड़ लिया और वे अकम्पन पर दौड़े। क्रोध और गर्व में भरकर हनुमान् उसको घुमाते हुए ऐसे ज़ोर से दौड़े कि इनकी जाँघों के वेग से उस रास्ते के बहुत से वृक्ष उखड़ गये। उस वृक्ष से इन्होंने बहुत से महावतों-सहित हाथियों को, रथियों-सहित रथों को और बहुत से बलवान् राक्षसों को पीस डाला। हनुमान् को क्रुद्ध और वृक्ष से राक्षसों को मर्दते देखकर वहाँ जितने राक्षस थे वे सब भाग गये।

हनुमान् को आते और झपटते हुए देखकर अकम्पन थर्रा उठा और गरजने लगा। उसने बड़े तेज़ चौदह बाण हनुमान् के शरीर में मारे। यद्यपि कपि ने चौदह बाण खा लिये तो भी इनका चेहरा ठीक शृङ्गधारी पर्वत की नाईं देख पड़ता था। बड़े पराक्रमी, बड़े शरीरवाले महाबलवान् हनुमान् उस समय ऐसी शोभा पा रहे थे जैसे फूला हुआ अशोक और बिना धुएँ की आग शोभती है। अब हनुमान् ने एक दूसरा बड़ा वृक्ष उखाड़कर अकम्पन के सिर पर बड़े ज़ोर से दे मारा। उसकी चोट से राक्षस के धुर्रे उड़ गये। वह गिरकर मर गया। उसको गिरते देखकर राक्षस ऐसे दुखी हुए जैसे भूचाल से वृक्ष थर्रा उठते हैं। वे अपने-अपने शस्त्र छोड़कर लङ्का को भाग चले और वानरों ने उनको लताड़ दिया। उस समय राक्षसों की बड़ी दुर्दशा हुई। उनके बाल खुल गये। उन्होंने घबराकर मान-मर्यादा की भी परवा न की। मारे डर के उनके शरीरों से पसीना बह रहा था। वे प्राण लेकर भाग रहे थे। रास्ते में गिरते-पड़ते, लटपटाते और बारबार फिर-फिरकर पीछे देखते हुए वे लङ्का में घुस गये। यहाँ वानर हनुमान् की बड़ी प्रशंसा करने लगे। हनुमान् भी सब वानरों को सङ्ग्राम की प्रतिष्ठा (शाबाशी) देने लगे। अब विजय पाने से वानर बड़े ज़ोर से गरजने और अधमरे राक्षसों को खींचने लगे। उस समय वानरों के साथ वायुपुत्र ऐसे वीरों की शोभा को प्राप्त हुए जैसे श्रीविष्णु बड़े विकट दैत्य को मारकर शोभित हुए थे।

दोहा

रघुनन्दन सानुज तथा, अमर-गणनि कर यूथ।
कपिहि प्रशंसत भे तहाँ, निशिचरपति कपि-यूथ॥

---

५७ वाँ सर्ग

युद्ध के लिए प्रहस्त नामक सेनापति का लङ्का से निकलना।

अकम्पन का मारा जाना सुनकर रावण कुछ दीन और कुछ क्रुद्ध होकर अपने मन्त्रियों की ओर देखने लगा। थोड़ी देर तक कुछ सोच-विचार कर और मन्त्रियों की भी सम्मति लेकर वह दिन के पहले भाग में लङ्का की मोरचेबन्दी देखने के लिए निकला। लङ्का को राक्षसों से रक्षित तथा मोरचेबन्दी से घिरी हुई और ध्वजा-पताकाओं से शोभित देखकर

रावण ने वानरों के नगररोध पर ध्यान दिया। फिर उसने युद्ध करने में चतुर प्रहस्त नामक राक्षस से कहा—देखो, इस नगरी के पास ही यह वानरी सेना पड़ी हुई है जिससे नगर-वासियों को बहुत कष्ट हो रहा है। अब मैं किसी दूसरे को ऐसा नहीं देखता जो इसको हटा सके। मैं या कुम्भकर्ण या मेरे सेनापति तुम अथवा इन्द्रजित् या निकुम्भ, ये ही इस भार को उठा सकते हैं; दूसरे में सामर्थ्य नहीं। इसलिए तुम सेना साथ लो; रथ पर सवार होओ और युद्ध के लिए जल्दी जाओ। तुम्हारे जाते ही वानरी सेना थर्रा उठेगी। बड़े-बड़े राक्षसों की गर्जना सुनते ही वह भाग जायगी; क्योंकि वानर चपल, अशिक्षित और चञ्चल हैं। वे तुम्हारी गर्जना ऐसे न सह सकेंगे जैसे हाथी सिंह की गर्जना को नहीं सह सकता। जब सेना भाग जायगी तब वे दोनों भाई अवलम्ब न रहने से मेरे वश में हो जायँगे। इस समय सन्देह तो हार में ही है; जीत में बिलकुल नहीं। बतलाओ, मैं जो कह रहा हूँ वह तुम्हारी समझ में ठीक है या ग़लत? तुम अपना हित किस बात में समझते हो?

इन बातों का उत्तर देते हुए प्रहस्त ने रावण से इस तरह कहा जिस तरह शुक्राचार्य दैत्यराज से कहते हैं। उसने कहा—राजन्! आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक ही है। पहले हम लोगों ने चतुर मन्त्रियों के साथ इसी बात का परामर्श किया था। उस समय आपस में झगड़ा ही रहा, सबकी एक राय नहीं हुई। मैंने सीता के दे डालने की राय आपको दी थी। इसी में अपना हित सोचा था। न देने में तो युद्ध करना ही पड़ेगा—यही समझा गया था। वही समय हमारे आगे आ पहुँचा है। अस्तु, दान और मान द्वारा आपके यहाँ मेरी सदा प्रतिष्ठा ही हुई है और कई तरह से बहुत बार आपने मुझे धैर्य दिलाते हुए समझाया है। इससे अब मैं आपके हित का काम क्यों न करूँगा? अब मुझे न तो अपने जीवन की रक्षा करनी है और न पुत्र, स्त्री और धन की ही ममता है। देखो, मैं आपके लिए अपने प्राणों का इस संग्रामाग्नि में किस तरह हवन करता हूँ।

इस तरह रावण से कहकर उसने पास में खड़े हुए सेनापतियों से कहा—मेरे राक्षसों की सेना यहाँ जल्दी ले आओ। आज रणभूमि में मेरे बाणों से मारे गये वीरों के मांस से जङ्गल के मांसाहारी जीव तृप्त होंगे। प्रहस्त की आज्ञा से सेनाध्यक्ष उसी राक्षस के मकान में सेना इकट्ठी करने लगे। थोड़ी देर में अनेक तरह के शस्त्र-धारी भयङ्कर वीर राक्षसों से लङ्का भर गई। बहुत से राक्षस मङ्गल-कामना के लिए हवन करने लगे। बहुतेरे ब्राह्मणों को प्रणाम करने लगे। होम का धुआँ मिलने से सुगन्धित हवा चलने लगी और बहुत से राक्षस मन्त्र से अभिमन्त्रित मालाएँ पहन-पहनकर बड़े प्रसन्न हुए। कवच पहने हुए उन धनुर्धारी राक्षसों ने सवारी से जल्दी कूदकर रावण की ओर देखा फिर प्रहस्त के पास आ उसको घेरकर वे खड़े हो गये। जब कूच का डङ्का बजा तब राजा से पूछकर प्रहस्त सजे हुए अच्छे रथ पर चढ़ गया। उस रथ में बड़े तेज़ घोड़े जुते हुए थे। उसका सारथि भी चतुर था। वह चन्द्र और सूर्य के समान चमकीला था। चलते समय वह बादलों के समान शब्द करता था। उस पर सर्पा-कार ध्वजा लटक रही थी। उसके गुम्बज़ सुन्दर

थे। वह सोने की जाली से शोभित था। सब चीज़ों से वह रथ ऐसा मनोरम था मानो अपने को देख आप ही हँस रहा था।

ऐसे रथ पर चढ़कर रावण की आज्ञा से प्रहस्त लङ्का से निकला। उसके साथ-साथ बहुत सी सेना भी चली। सेना के चलते ही बादलों की ध्वनि की नाईं तुरहियाँ बजाई गईं तथा और-और भी अनेक बाजे बजाये गये जिनका शब्द पृथ्वी भर में गूँज उठा। अब सेनापति के निकलते ही शङ्ख फूँका गया; गरजते हुए राक्षस आगे-आगे चलने लगे। जो राक्षस प्रहस्त के आगे चलते थे उनका रूप और शरीर बड़ा भयङ्कर था। नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये सब प्रहस्त के दीवान थे। ये सब उसको घेरकर चले। सेना की व्यूह-रचना किये हुए वह पूर्व के दरवाज़े से निकला। उस समय उसकी सेना का झुण्ड हाथियों के यूथ के समान और समुद्र के तुल्य देख पड़ता था। अब प्रहस्त क्रोध में भरकर बहुत जल्दी निकल पड़ा। उस समय उसका चेहरा कराल काल के तुल्य मालूम पड़ता था। उसके निकलते ही चलने की धमक से और राक्षसों के नाद से सब लङ्कावासी जीव ज़ोर से चिल्लाने लगे। रक्त और मांस खाने-वाले पक्षी, मेघरहित आकाश में घुसकर, रथ के बाईं ओर मण्डल बनाकर घूमने लगे। गिदड़ियाँ मुँह से आग की लपटें निकाल-निकालकर ज़ोर से चिल्लाने लगीं। आकाश से पुच्छल तारे गिरने लगे। रूखी हवा चलने लगी। सूर्य आदि ग्रहों का प्रकाश धुँधला पड़ गया। वे मानो एक दूसरे का ग्रास करते थे। बादल रूखे स्वर से गरजकर रक्त बरसाने और प्रहस्त के आगे चलनेवाले राक्षसों को भिगोने लगे। इसके झण्डे पर गीध दक्षिण को मुँह करके बैठ गया और चोंच से दोनों ओर खुजलाने लगा। उसने प्रहस्त की सब श्री हर ली अर्थात् गीध ने झण्डे पर बैठकर प्रहस्त के पराजय की सूचना दे दी। सेना में घुसते ही सारथि के हाथ से अकस्मात् लगाम छूट गई। चलने के समय जो प्रकाशमान और दुर्लभ श्री देख पड़ती थी वह ज़रा देर में ही हवा हो गई। सुन्दर समतल भूमि में घोड़े मुँह के बल गिर पड़े।

प्रहस्त को निकलता हुआ देखते ही वानर अनेक तरह के शस्त्र लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। वानरी सेना में बड़ा शोर हुआ; क्योंकि वे वृक्षों को उखाड़ने और पर्वतों को तोड़ने लगे। इधर राक्षस और उधर वानर गरज रहे थे। दोनों सेनाएँ लड़ने के लिए ख़ुश हो रही थीं। युद्ध करने में समर्थ, फुर्तीले और आपस में एक दूसरे को मारने की इच्छा रखनेवाले वीर ललकार रहे थे; इससे दोनों सेनाओं में बड़ा शोर मचा हुआ था।

दोहा

तब प्रहस्त कपि-सेन महँ, पैठ्यो अति खल नीच।
जिमि पतङ्ग पावक निरखि, जानत नहिं निज मीच॥

---

५८ वाँ सर्ग

नील के हाथ से प्रहस्त का मारा जाना।

प्रहस्त को लङ्का से बाहर देख कुछ हँसकर राघव ने विभीषण से पूछा—यह मोटा-ताज़ा राक्षस कौन है जो बड़ी सेना लिये जल्दी-जल्दी आ रहा है? बतलाओ। इसका रूप, बल-पौरुष कैसा है? विभीषण ने कहा—महाराज! यह रावण

का सेनापति प्रहस्त है। एक-तिहाई सेना इसके अधिकार में रहती है। उसी को लिये हुए यह आ रहा है। यह बलवान् है, अस्त्रों को जानता है, शूर है और पराक्रम करने में प्रसिद्ध है। इतने में वानरी सेना ने भयङ्कर पराक्रमी, गरजते हुए, बड़े शरीरवाले और राक्षसों से घिरे हुए प्रहस्त को देखा। उसे देखते ही वह क्रोध में भरकर ज़ोर से गरजने लगी।

उधर राक्षस तलवार, शक्ति, ऋष्टि, बाण, शूल, मुसल, गदा, बेंवड़े, प्रास और नाना प्रकार के परश्वध तथा विचित्र धनुष लेकर वानरों की ओर दौड़ने लगे। इधर वानर भी वृक्ष और बड़े-बड़े पत्थर ले-लेकर युद्ध करने लगे। दोनों सेनाओं में बड़ा भयानक युद्ध होने लगा। एक ओर से पत्थरों की और दूसरी ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। बहुत से वानरों ने अनेक राक्षसों को और अनेक राक्षसों ने बहुत से वानरों को मार गिराया। बहुत से शूलों से, बहुत से चक्रों से, बहुत से परिघों से और कई एक फरसों से मारे गये। कितने ही तो श्वासरहित होकर ज़मीन पर गिर पड़े; बहुतों के कलेजे फट गये। बहुतेरों को शत्रुओं ने मथ डाला। बहुत से तलवारों से कट-कर ज़मीन पर छटपटाने लगे। बहादुर राक्षसों ने वानरों की पसलियाँ तोड़ डालीं और वानरों ने भी मारे वृक्षों और पत्थरों के राक्षसों को रणभूमि में पीस डाला। वानरों के वज्र-तुल्य हाथों के थपेड़े और मुक्के खाकर राक्षस मुँह से ख़ून की कै करने लगे। दाँत और आँखें निकालकर वे ज़मीन पर गिरकर मर गये। उस समय आर्त्तनाद और सिंहनाद ऐसी भयङ्करता से गूँज रहा था कि दूसरा शब्द सुनाई ही न देता था। क्रुद्ध हो-होकर और डर छोड़कर मुँह फैलाये हुए वानर और राक्षस वीरमार्गों के अनुसार काम कर रहे थे। नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—ये सब प्रहस्त के मन्त्री वानरों को मार रहे थे।

वे चारों दौड़-दौड़कर वानरों को मार ही रहे थे कि द्विविद ने पर्वत के एक शिखर से नरान्तक को मार गिराया। फिर दुर्मुख नामक वानर ने उठकर एक वृक्ष से शीघ्रता-पूर्वक युद्ध करते-करते समुन्नत राक्षस को कुचल डाला। इसके बाद जाम्बवान् ने क्रुद्ध हो एक बड़ा सा पत्थर उठाकर महानाद की छाती पर पटक दिया। उसकी चोट से वह ख़तम हो गया। तार नामक कपि ने कुम्भ हनु को एक बड़े वृक्ष से मार गिराया। वानरों का ऐसा पुरुषार्थ प्रहस्त को असह्य हो उठा। वह रथ पर चढ़कर अपने धनुष से वानरों पर चोट करने लगा। खलबला रहे अपार समुद्र के भँवर की सी दशा इस समय प्रहस्त की हो गई। उस समय वह इसी उपमा के योग्य बना हुआ था। वह दोनों सेनाओं के बीच का भँवर बना हुआ दिखाई पड़ता था। संग्राम में दुर्मद होकर वह बाण-समूहों से वानरों को मार रहा था। उस समय वानरों और राक्षसों की लाशों से भरी हुई वह ज़मीन ऐसी देख पड़ती थी मानों पर्वतों से भरी हुई पृथ्वी हो। ख़ून से भरी हुई वह ज़मीन ऐसी शोभा दे रही थी मानों वसन्त ऋतु में टेसू के फूलों से बिछ गई हो।

युद्ध-भूमि को नदी की उपमा देनी चाहिए। इस रण-रूप नदी में वीरों के शरीर तो करारे और टूटे-फूटे शस्त्र वृक्ष हैं। रक्त का समूह पानी, यकृत् (दहिनी कोख का मांस) और प्लीहा (बाईं

कोख का मांस) दोनों इसमें पङ्क (कीचड़) रूप हैं; कटे हुए शरीर और शिर इसमें मछलियाँ हैं, वीरों की आँतें सिवार और शरीर के बाल आदि घास हैं; गीध इसमें हंसगण और कङ्क पक्षी सारस हैं; वीरों के मेदे इसमें फेन और दुखी वीरों के आर्त्तस्वर इसके पानी का शब्द है; ऐसी यह नदी यमरूप सागर से मिलने जा रही थी। कायरों के लिए यह नदी दुःख से पार जाने योग्य थी। हंसों तथा सारसों से शोभित और कमलों के पराग से भरी हुई शरद ऋतु की नदी को जिस तरह गजेन्द्र पार कर जाते हैं उसी तरह वे वानर और राक्षस वीर इस रणरूप नदी को पार करने लगे। रथ पर चढ़कर प्रहस्त बाणवृष्टि करता हुआ घूम रहा था। उसको नील ने और नील को प्रहस्त ने देखा, फिर वह उसी पर बाणों की वर्षा करता हुआ दौड़ा। उस पर प्रहस्त ने ख़ूब ही बाण फेंके। इसके हाथ से छूटे हुए बाण नील के शरीर को छेद-छेदकर ज़मीन पर गिरते थे। वे बाण क्रोधित साँप के समान तेज़ थे। नील ने बाणों की चोट सहते हुए एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्त के रथ पर चलाया। प्रहस्त वृक्ष की चोट को सहकर भी नील पर बराबर बाणवर्षा करता रहा और नील आँखें मूँदे उसकी बाणवर्षा को सहता रहा। वह बाणों को रोक न सकता था, परन्तु उनको सहते हुए भी नील ने एक साख़ू का वृक्ष उखाड़ लिया और उससे प्रहस्त के घोड़े मार गिराये; फिर क्रोध में भरकर उस दुष्ट के धनुष को भी तोड़-ताड़कर वह गरजने लगा। अब धनुष न रहने पर हाथ में एक मूसल लेकर प्रहस्त रथ के नीचे कूद पड़ा।

अब दोनों सेनापति परस्पर लड़ने लगे। ये वेगवान् और महा वैरी थे। मारे चोटों के दोनों ख़ून से तर हो गये। मद बहानेवाले दो बड़े गजेन्द्रों की नाईं वे देख पड़ने लगे। दोनों एक दूसरे को दाँतों से ऐसे विदारण कर रहे थे जैसे सिंह और शार्दूल लड़ते हैं। वृत्रासुर और इन्द्र के तुल्य वे अपने पराक्रम द्वारा विजय चाहते और संग्राम से कभी मुँह न फेरते थे। बड़ाई की इच्छा से दोनों लड़ रहे थे। युद्ध करते-करते प्रहस्त ने नल के सिर में एक मूसल मारा। उस चोट से नील के सिर से ख़ून की धारा बहने लगी। ख़ून से सने हुए नील ने एक वृक्ष उखाड़कर क्रोध-पूर्वक प्रहस्त की छाती में मारा। इस चोट की परवा न करके प्रहस्त फिर मूसल लेकर नील पर झपटा। अब नील ने उसे दौड़ते देखकर एक बड़ा भारी पत्थर उठाया और ज़ोर से प्रहस्त के मस्तक पर पटक दिया। उस पत्थर की चोट से उसका सिर चकनाचूर हो गया। वह प्राण-रहित और कान्ति-हीन होकर ज़मीन पर ऐसा गिर पड़ा जैसे जड़ कट जाने पर वृक्ष गिर पड़ता है। पर्वत से झरने की तरह उसके मस्तक और शरीर से ख़ून बहने लगा। प्रहस्त के मरते ही उसकी सेना के बचे-बचाये राक्षस इस तरह भाग गये जैसे बाँध टूटने से जल बह जाता है। सेनापति के मारे जाने से बेचारे सब राक्षस निराश हो राक्षसराज के भवन में जाकर चुपचाप खड़े हो गये। शोक के कारण वे मूर्च्छित से हो गये।

दोहा

साधु साधु कपिगण कहहिं, नील विजय तहँ पाइ।
अति प्रहर्ष तनु पुलक कपि, मिले रघुपतिहिं आइ॥

५६ वाँ सर्ग

युद्ध के लिए ख़ुद रावण का जाना और हारकर लङ्का को लौटना।

राक्षसों ने आकर सेनापति प्रहस्त के मारे जाने का हाल रावण से कहा। यह बात सुनते ही वह बड़ा क्रुद्ध और कुछ शोकग्रस्त भी होकर अपने मुख्य राक्षसों से, देवताओं से इन्द्र की भाँति, बोला—हे राक्षसो! शत्रु के विषय में लापरवाही करना ठीक नहीं। देखो, इन्द्र को जीतनेवाला मेरा यह सेनापति प्रहस्त सेना के साथ मारा गया। अब मैं ख़ुद उस अद्भुत संग्राम में शत्रु का नाश करने जाऊँगा। वहाँ वानरी सेना को तथा लक्ष्मण-सहित राम को अपने बाणों की आग से ऐसे भस्म करूँगा जैसे वन को आग जला देती है। अब राक्षसराज अच्छे घोड़ों से जोते हुए और सब सामान से चमकीले रथ पर सवार हो गया। वह रथ आग के समान चमकता था। उस समय तुरही, शङ्ख और ढोल बजने लगे। वीर ताल ठोंकने और अपने सामर्थ्य का वर्णन कर सिंह का सा शब्द करने लगे। पवित्र स्तोत्रों से पूजित होकर रावण ने यात्रा की। उसके साथ बड़े-बड़े योधा तैयार हुए। ये पर्वतों और बड़े-बड़े मेघों के समान लम्बे-चौड़े थे। आग की नाईं इनकी आँखें जल रही थीं। ये सब मांसाहारी थे। इनके साथ रावण ऐसा शोभता था जैसे भूतों में रुद्र भगवान् शोभते हैं।

लङ्का से निकलकर रावण वानरी सेना को देखने लगा। वह सेना बड़ी भयङ्कर और समुद्र की नाईं शोर करती थी और हाथों में पर्वत तथा वृक्षों को लिये हुए खड़ी थी। रामचन्द्रजी रावण की प्रचण्ड सेना को आते देखकर विभीषण से पूछने लगे—यह सेना किसकी देख पड़ती है जिसमें अनेक ध्वजा-पताकाएँ और छत्र हैं; जो प्रास, खड्ग, शूल तथा अनेक तरह के और-और शस्त्रों से सजी हुई है; और जो बड़े-बड़े निडर वीरों से पूर्ण और ऐरावत के समान हाथियों से मनोहर है? विभीषण ने कहा—महाराज! यह सेना महाबली राक्षसों की है। सुनिए, वह जो हाथी की पीठ पर उगते हुए सूर्य के तुल्य लाल मुँहवाला, हाथी के मस्तक को कँपाता हुआ, चला आता है उसका नाम अकम्पन है*। यह जो रथ पर सवार है, जिसके झण्डे में सिंह का निशान है और जिसके दाँत खुले हुए हैं यह वर-प्रधान इन्द्रजित् है। यह इन्द्र की नाईं धनुष को कँपा रहा है। इसका हाथी के तुल्य तेज है। जिसका शरीर विन्ध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्राचल के समान देख पड़ता है और जो रथ पर चढ़ा चला आता है, यह महारथी और बड़ा धनुर्धर अतिकाय नामक वीर है। जिसके नेत्र प्रातःकालीन सूर्य के तुल्य हैं, जिसकी सवारी के हाथी के घण्टे बज रहे हैं और जिसकी गर्जना बड़ी कठोर है, यह महोदर नामक वीर है। जो सुवर्ण-भूषित घोड़े पर सवार है, सन्ध्या के पर्वताकार मेघ की नाईं जिसकी शोभा है, और हाथ में चमचमाते हुए प्रास को लिये है, यह पिशाच नामक राक्षस है। इसका वेग वज्र के तुल्य है। जो बिजली के तुल्य चमकीला है, जो ऐसे पैने शूल को लिये है कि जिसके आगे वज्र का भी

* यह कोई दूसरा अकम्पन था। एक अकम्पन तो मारा गया।

वेग कङ्कड़ सरीखा है और जो चन्द्र के समान बैल पर चढ़ा हुआ आ रहा है, यह त्रिशिरा नामक राक्षस है। जिसका शरीर मेघ के समान है, जिसकी छाती मोटी, मज़बूत और सुन्दर है तथा जो ख़ूब चौकन्ना होकर नागराज की ध्वजा फरफराता और धनुष फेरता चला आता है, इसका नाम कुम्भ है। यह राक्षसी सेना का पताका-रूप निकुम्भ आ रहा है जो सोने और हीरे से जड़े हुए चमकीले और धुएँ के आकारवाले परिघ को लिये हुए है। यह बड़ी विचित्र लड़ाई लड़ना जानता है। यह भी बड़ा वीर है। जिसके आग सरीखे चमकीले रथ पर धनुप, तलवार और बाण भरे हुए हैं और जो रथ पर बैठा दिखाई देता है, इसका नाम नरान्तक है। यह पर्वत के शिखरों से भिड़नेवाला योधा है।

जो कई तरह के घोर रूप व्याघ्र, ऊँट, नागेन्द्र, हाथी और घोड़े के समान मुँहवाले और आँखें फैलाये हुए भूतों से घिरा हुआ बैठा है, वह देवताओं के भी गर्व का नाश करनेवाला है। जहाँ चन्द्रमा के समान सफ़ेद और बारीक कमानियों से सजा हुआ छाता देख पड़ता है वहाँ महाबली राक्षसराज को समझिए। वह ऐसा शोभ रहा है जैसे भूतों से घिरे हुए भगवान् रुद्र हों। अब देखिए, वह जो किरीट पहने हुए है, जिसका मुँह झलमलाते हुए कुण्डलों से भूषित है, और जिसकी देह विन्ध्याचल के समान भारी है, जो इन्द्र और यम के भी गर्व का नाश करनेवाला और सूर्य की तरह तप रहा है, वही राक्षसों का राजा रावण है। यह सब सुनकर रामचन्द्र ने कहा—ओहो! राक्षसराज सचमुच बड़ा तेजस्वी देख पड़ता है। किरणों से चमकनेवाले सूर्य की ओर जैसे कोई देख नहीं सकता उसी तरह मारे तेज के रावण का रूप भी साफ़-साफ़ दिखाई नहीं देता। मैं जैसा रूप राक्षसराज का देख रहा हूँ वैसा तो देव-वीरों और दानव-वीरों का भी नहीं होता। इस महात्मा के साथ के योधा भी पर्वत के समान बड़े, पर्वतों से चोट लेनेवाले और चमकीले शस्त्र लिये हुए देख पड़ते हैं। ओहो! इन योद्धाओं से घिरा हुआ यह राक्षसराज ऐसा शोभ रहा है जैसे भयङ्कर भूतों से घिरे हुए साक्षात् यमराज हों। बहुत अच्छा हुआ जो यह पापी आज मेरी नज़र के सामने आ गया। देखो, आज मैं सीता-हरण का क्रोध इस पर छोड़ूँगा।

इस तरह कहकर श्रीरामचन्द्र अपना धनुष ले और अच्छा बाण निकालकर लक्ष्मण के साथ खड़े हो गये। इतने में रावण ने राक्षसों से कहा कि तुम लोग जाओ और द्वारों पर, राजमार्गों पर, घरों पर और बड़े-बड़े फाटकों पर होशियारी से डट जाओ; नहीं तो ये चञ्चल वानर जब यह जान लेंगे कि सब राक्षस रावण के साथ यहाँ चले आये हैं, नगरी सूनी पड़ी है, तब वे उसमें घुसकर बड़ा उपद्रव करेंगे। यों समझाकर उसने राक्षसों को वहाँ से भेज दिया और ख़ुद वानरी सेना को बाणों से ऐसे मारने लगा जैसे जल-जीवों से भरे हुए समुद्र को कोई खलबलाता हो। अब रावण को आता हुआ, और आग के समान तेज़ बाण चलाता हुआ देखकर सुग्रीव पर्वत के एक भारी शिखर को उखाड़कर उस पर दौड़े। उन्होंने जल्दी पहुँचकर उसके रथ पर वह शिखर फेंक दिया। रावण ने पर्वत-शिखर को, अपनी ओर आते देख, सोने से सजे हुए बाणों से चकनाचूर कर दिया। वृक्षों से शोभित पर्वतशिखर

को ज़मीन पर गिराकर रावण ने एक साँप के आकार का मृत्यु-तुल्य बाण अपने धनुष पर चढ़ाया। उस बाण में से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह बिजली की तरह चमक रहा था। सुग्रीव को मारने के लिए उसने वही बाण चलाया। रावण के हाथ से छूटे हुए उस बाण ने सुग्रीव के शरीर को ऐसे छेद दिया जैसे स्कन्द की शक्ति ने क्रौञ्च पर्वत को छेद डाला था। उस बाण की चोट से कपिराज विह्वल होकर आर्तनाद करते हुए ज़मीन पर गिरकर मूर्छित हो गये। सुग्रीव की ऐसी दशा देखकर रावण की सेना के राक्षस बड़े हर्षनाद से गरजने लगे। अब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल, ये सब वीर वानर बड़े-बड़े पर्वत उखाड़कर रावण के ऊपर दौड़े, पर रावण भी तो बड़ा योद्धा था। उसने सब प्रहारों को अपने पैने-पैने बाणों से व्यर्थ कर डाला और अपनी बाणावली से इन सबको ऐसा मारा कि इनकी देहें विदीर्ण हो गईं। सब ज़मीन पर लोटपोट हो गये।

इन सबको लौटाकर वह राक्षस वानरी सेना पर बाण बरसाने लगा। बड़े-बड़े शरीरधारी और रूपवान् वानर बाणों की चोट खा-खाकर ज़मीन पर गिर पड़े। राक्षसराज लगातार बाण बरसा रहा था। वानरों में से बहुत से तो लोट गये, बहुत से डर और बाणों की चोट के कारण दुख-भरी आवाज़ से चिल्लाने लगे। जब रावण ने उन्हें बहुत ही सताया तब वे बेचारे विकल होकर शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्र की शरण में गये। अब धनुष लेकर रामचन्द्र बहुत जल्दी रावण के सामने चले। उस समय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर रामचन्द्र से कहा— यद्यपि आप दुष्टात्मा रावण को मारने के लिए समर्थ हैं, तो भी इस नीच का विध्वंस मैं ही करूँगा। मुझे आप आज्ञा दीजिए। सत्यपराक्रमी रामचन्द्र ने कहा—अच्छा जाओ; पर बड़ी होशियारी से काम लेना। उसके छिद्रों को तो खोजो पर अपने छिद्र (कमी या बुराइयाँ) छिपाते रहो। आँख और धनुष के द्वारा सावधानी से अपने को बचाते रहो; क्योंकि रावण बड़ा पराक्रमी और अद्भुत युद्ध करनेवाला है। जब यह क्रुद्ध होता है तब तीनों लोक भी इसका कुछ नहीं कर सकते। उस समय इसको कोई नहीं रोक सकता।

इस तरह राम का कथन सुनकर, उनसे मिल-भेंटकर और उन्हें प्रतिष्ठा दे तथा प्रणाम करके लक्ष्मण चले। अब लक्ष्मण ने रावण को देखा कि हाथी की सूँड़ की तरह उसकी विशाल भुजाएँ हैं, वह देदीप्यमान भयङ्कर धनुष को हाथ में लेकर वानरों पर भयङ्कर बाण बरसा रहा है। इतने में हनुमान् उन बाणों के जाल को चीरते हुए रावण पर टूट पड़े। उसके रथ के पास पहुँचकर उन्होंने अपनी दाहिनी भुजा उठाई। वे रावण को धमकाते हुए कहने लगे—हे राक्षस! देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस इन्हीं से न मरने का तूने वर पाया है, वानरों से तो तुझको डर बना ही है। देख, यह पञ्चशाखावाला मेरा हाथ उठा है। तेरे शरीर में बहुत समय से रहनेवाले भूतात्मा—तेरे प्राणों—को यह हर लेगा। हनुमान् की यह बात सुनकर रावण क्रोध में भर गया। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने कहा कि बहुत जल्दी चोट करो जिससे तुम्हें स्थिर-कीर्ति मिले। तब मैं भी, तुम्हारा पराक्रम जानकर, तुम्हारा नाश कर डालूँगा। उसकी बात सुनकर

वायुपुत्र ने कहा कि मैंने तेरे पुत्र अक्ष को मारा है। उसे तू क्यों भूलता है? याद कर। यह कठोर बात सुनते ही रावण ने हनुमान् की छाती में एक घूँसा मारा। उसकी चोट से वे काँपने लगे। थोड़ी देर में सावधान होकर उन्होंने भी उसकी छाती में एक घूँसा मारा। उस चोट से वह ऐसा काँपने लगा जैसा भूचाल से पर्वत काँपता है। रावण की यह दशा देखकर ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता और दैत्य, सब हर्षनाद करने लगे।

थोड़ी देर में सचेत होकर रावण कहने लगा—वाह रे वानर वाह! तू मेरा शत्रु तारीफ़ करने के योग्य है। यह सुनकर कपि ने कहा—मेरे पराक्रम को धिक्कार है क्योंकि तू तो जीता-जागता देख पड़ता है। हे दुर्बुद्धे! एक बार तू मेरे ऊपर फिर चोट कर। मेरा यह घूँसा तुझे यमलोक में पहुँचा देगा। यह सुनकर वह क्रोध के मारे जल उठा। लाल आँखें करके उसने दहिने हाथ का घूँसा हनुमान् की छाती में मारा। उस चोट से हनुमान् फिर काँपने लगे। अब रावण उनको विह्वल होते देखकर अपना रथ नील के पास ले गया। नाग के तुल्य और शत्रु के मर्म-स्थलों को भेदनेवाले बाणों से वह नील सेनापति को मारने लगा। यद्यपि बाणों की वर्षा से नील व्याकुल हो गये थे तो भी उन्होंने एक हाथ से एक पर्वत का शिखर उखाड़कर रावण के ऊपर चलाया।

इतने में हनुमान भी सावधान हो गये। वे क्रुद्ध होकर फिर लड़ना चाहते थे पर जब देखा कि राक्षसराज तो नील से लड़ रहा है तब उन्होंने सोचा कि दूसरे के साथ उलझे हुए शत्रु पर दौड़ना उचित नहीं।

नील के चलाये हुए पर्वत के शिखर को रावण ने सात बाणों से चूर कर दिया। शिखर को चूर-चूर होते देखकर नील, कालाग्नि की तरह, मारे क्रोध के जलने लगे। अब वे अश्वकर्ण, धव, साखू, आम और अनेक तरह के और भी वृक्ष उखाड़-उखाड़कर रावण पर फेकने लगे। परन्तु रावण उन सबको काटकर नील के ऊपर बाण बरसाने लगा। बाण-वृष्टि सहते हुए नील, छोटा रूप बनाकर, रावण की ध्वजा के ऊपर जा बैठे। रावण ने सोचा कि यह मेरी ध्वजा पर कैसे आ बैठा! उन्हें देखकर वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। जब तक वह कुछ उपाय करने लगा तब तक नील उसके धनुष पर आ बैठे। धनुष से उछलकर वे उसके मुकुट पर चढ़ गये। यह चमत्कार देखकर लक्ष्मण, हनुमान् और रामचन्द्र को भी बड़ा अचम्भा हुआ। कपि की चञ्चलता और फुर्ती देखकर रावण भी बड़ा चकित हुआ। उनको मारने के लिए उसने आग्नेयास्त्र चलाया। इधर नील की चटपटी से रावण को व्याकुल देखकर वानर ख़ुश हो-होकर गरज रहे थे। वानरों के हर्षनाद से रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और ऐसा घबराया कि उस समय उसे कुछ भी न सूझता था। ध्वजा पर बैठे हुए कपि की ओर देखकर रावण ने कहा—हे वानर! तुम माया के बल से बड़ी जल्दी कर रहे हो; अच्छा, अब यदि तुममें शक्ति हो तो अपने प्राण बचाओ। यद्यपि माया के बल से तुम अपने अनेक रूप बना रहे हो तो भी यह मेरा मन्त्र से चलाया हुआ बाण-रूप अस्त्र तुम्हारे प्राण ले लेगा। अब महाबली रावण ने मन्त्र से फूककर नील पर आग्नेयास्त्र चलाया। वह बाण नील की छाती में आकर

लग गया। अस्त्र के तेज से नील के सब अङ्ग जलने लगे। वे ज़मीन पर गिर पड़े; परन्तु पिता अग्नि के माहात्म्य और अपने तेजोबल से वे, घुटनों के बल ज़मीन पर गिर पड़ने पर भी, प्राणहीन नहीं हुए।

नील को मूर्च्छित देख रावण, युद्ध की इच्छा से, रथ को गड़गड़ाता हुआ लक्ष्मण पर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर और वानरों को हटाकर वह अपना धनुष सुधारने लगा। तब लक्ष्मण बोले—हे राक्षस-राज, आओ, हम से लड़ो। वानरों से क्या मतलब है? अब वह रावण गर्जनापूर्वक लक्ष्मण की बातें, तेज़ और प्रत्यञ्चा की आवाज़ सुनकर क्रोध-पूर्वक कहने लगा—हे राघव! अच्छा हुआ जो तुम पर मेरी नज़र पड़ गई; क्योंकि अब तुम्हारा अन्त आ पहुँचा है। तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गई है। अब इसी समय मेरे बाणों से तुम यमलोक को जाते हो। इस पर लक्ष्मण ने कहा—हे पापाधम! अधिक प्रभाव रखनेवाले इस तरह गरजते नहीं, जैसे तू बक रहा है। तेरे वीर्य, बल, प्रताप और पराक्रम को मैं जानता हूँ। धनुष-बाण लिये मैं तेरे पास ही खड़ा हूँ। झूठमूठ क्यों बक-बक कर रहा है!

लक्ष्मण की बात सुनते ही रावण ने सात बाण चलाये पर लक्ष्मण ने उनको अपने बाणों से काट गिराया। अपने बाण कटते देखकर रावण ने क्रोध में भरकर पैने बाण चलाना शुरू किया। उसने लक्ष्मण पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु लक्ष्मण क्षुर, अर्द्धचन्द्र, कर्णी और भल्ल बाणों से उसके बाणों को काटते जाते थे। लक्ष्मण के अद्भुत कर्म और शीघ्रता को देखकर वह बड़ा चकित हुआ। वह फिर बाण चलाने लगा। अब लक्ष्मण ने भी धनुष चढ़ाकर पैने-पैने वज्र के तुल्य भयङ्कर और आग के समान जलते हुए बाण, रावण के मारने के लिए, चलाये। किन्तु रावण ने इन सब बाणों को काट डाला। फिर उसने कालाग्नि के तुल्य एक बड़ा बाण लक्ष्मण के माथे में मारा। यह बाण शिव का दिया हुआ था। उस बाण की चोट से लक्ष्मण कुछ हिल उठे। उनके हाथ का धनुष कुछ-कुछ ढीला हो गया; पर थोड़ी ही देर में सचेत होकर उन्होंने रावण का धनुष काट डाला। धनुष काटकर उन्होंने तीन बाण रावण को ऐसे मारे जिनकी चोट से वह भी थोड़ी देर के लिए अचेत हो गया। थोड़ी देर में वह सचेत तो हुआ पर ख़ून से तर हो गया। अब अपना धनुष कटा हुआ देखकर उसने ब्रह्मा की दी हुई शक्ति हाथ में ले ली। वह शक्ति धुएँ सहित आग के समान थी और वानरों को डराने-वाली थी। उसने वह लक्ष्मण पर चला दी। लक्ष्मण ने चाहा कि उसे अस्त्रों से और अनेक बाणों से काट डालें; पर वह कट न सकी, लक्ष्मण की छाती में घुस ही गई। उसकी चोट से लक्ष्मण विह्वल हो गये। उनको विह्वल और अचेत होते देखकर रावण झपटा। उसने दोनों भुजाओं से उनको थाम लिया और उठाकर ले जाना चाहा।

चाहे हिमवान्, मन्दर, मेरु अथवा देवताओं सहित त्रैलोक्य को कोई उठा ले तो उठा ले, पर श्रीलक्ष्मण को उठाने की शक्ति किसमें है? वह भी लड़ाई के मैदान में!* यद्यपि उस समय उनकी छाती में ब्रह्म की दी हुई शक्ति से चोट लगी

*इस वचन से ऋषि ने लक्ष्मण का शेषावतार जतलाया है।

हुई थी तो भी वे विष्णु के अचिन्त्य भाग से, अपने स्वरूप को याद कर, ऐसे भारी हो गये। मूर्च्छा आना तो उन्होंने मनुष्य के शरीर का धर्म दिखलाया था। जब रावण ने देखा कि उठाने से ये उठ नहीं सकते तब दोनों हाथों से बल-पूर्वक उनको दबाकर छोड़ दिया। उस समय हनुमान् की नज़र उधर जा पड़ी। उन्होंने यह सब देख लिया। फिर तो वे क्रोध में भरकर रावण पर दौड़े। उन्होंने वज्र-तुल्य एक घूँसा रावण की छाती में मारा। उस चोट से वह घुटनों के बल गिर पड़ा और सब रूप से लम्बा-चौड़ा हो गया। उसके मुँह, आँखों और कानों से ख़ून बहने लगा। उसका शरीर घूमने लगा। वह चेष्टा-रहित होकर अपने रथ पर ढुलक गया। वह ऐसा मूर्च्छित और अचेत हो गया कि उसे कहीं गति न दिखाई देती थी। रावण को मूर्च्छित देख ऋषि, वानर और इन्द्र-सहित देवता हर्षनाद करने लगे। इधर हनुमान् लक्ष्मण को दोनों भुजाओं से पकड़कर रामचन्द्र के पास ले आये।

यद्यपि लक्ष्मण शत्रु के हिलाये ज़रा भी न हिले थे, पर हनुमान् की मैत्री और परम भक्ति के कारण वे हलके हो गये। अब वह शक्ति लक्ष्मण को छोड़कर फिर, पहले की नाईं, रावण के रथ पर जा बैठी। थोड़ी देर में सचेत होकर रावण भी अपना धनुष-बाण सुधारने लगा। लक्ष्मण ने भी अपने को विष्णु का भाग समझकर धीरज धरा। फिर उस घाव का दर्द जाता रहा। जब रामचन्द्र ने देखा कि दुष्ट निशाचर ने बहुत सी सेना मार गिराई, अब इसको शिक्षा देनी ही चाहिए, तब वे सोच-विचार कर रावण पर दौड़े।

उस समय रामचन्द्रजी को रावण की ओर जाते देखकर बीच में खड़े हुए हनुमान् ने कहा—महाराज! मेरी पीठ पर सवार होकर युद्ध के लिए चलिए, जिस तरह विष्णु भगवान् गरुड़ पर चढ़कर दैत्य से युद्ध करते हैं। वायुपुत्र की बात मानकर रामचन्द्रजी उनकी पीठ पर चढ़कर चलने लगे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रावण को रथ पर सवार देखा। उसे देखते ही वे उस पर ऐसे झपटे जैसे विष्णु आयुध तानकर बलि पर दौड़े थे। वहाँ जाते ही उन्होंने वज्र के समान प्रत्यञ्चा का कठोर शब्द किया। फिर गम्भीर वाणी से रावण से कहा—अरे खड़ा रह, खड़ा रह। तू इस तरह मेरा अप्रिय काम करके कहाँ जाकर अपने को बचावेगा? यदि तू इन्द्र, यम, सूर्य, शिव, अग्नि और ब्रह्मा के भी शरण में जायगा या दसों दिशाओं में भी भागेगा तो भी न बचेगा। जिसको तूने अभी शक्ति द्वारा मारा है उसके दुःख को शान्त करने के लिए मैं तुझ सपुत्र-पौत्र को मृत्युरूप हूँ। मैंने ही बाणों से तेरे, जनस्थान में रहनेवाले अद्भुत रूपधारी, चौदह हज़ार राक्षसों को मार गिराया।

राम की बातें सुनकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने पहले वैर को याद करके हनुमान् को पैने-पैने बाणों से मारा। ये रामचन्द्र को पीठ पर चढ़ाये हुए थे। यद्यपि रावण के बाणों की हनुमान् को बड़ी चोट लगी तथापि स्वभाव से तेजस्वी होने के कारण उनका तेज और भी अधिक बढ़ा। इसके बाद हनुमान् के शरीर के घावों को देखकर राम-चन्द्र बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने मारे बाणों के रावण के रथ का चक्र, घोड़ा, ध्वजा, छत्र, पताका, सारथि, वज्र, शूल और तलवार आदि सब सामान चकना-

चूर कर दिया। फिर वज्र के तुल्य एक बाण उसकी छाती में ऐसा मारा मानों इन्द्र ने मेरु को वज्र मारा हो। जो रावण बड़े-बड़े वज्रों की चोट खाकर कभी क्षुब्ध न होता था वही आज राम के बाणों की चोट से बड़ा दुखी हो चेष्टारहित हो गया; उसके हाथ से धनुष भी गिर पड़ा। महाराज ने उसे विह्वल होते देख बड़े जलते हुए अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसके सिर के मुकुट को काट गिराया। उस समय रावण की ऐसी दशा थी जैसी विष-रहित साँप की, ज्वालारहित अग्नि की और प्रकाश-रहित सूर्य की होती है। श्रीहीन मुकुटरहित रावण से रामचन्द्रजी बोले—देख, तूने बड़ा भय-ङ्कर काम किया। तूने मेरे प्रधान वीरों को मारा। भला जो किया सो किया, अब मैं इस समय तुझे बहुत थका हुआ देखकर मारता नहीं हूँ। तू चला जा। मैं ख़ूब जानता हूँ कि तू लड़ने के कारण बहुत थक गया है। लङ्का में जाकर स्वस्थ-चित्त से फिर अपने शस्त्र-अस्त्र लेकर रथ पर चढ़-कर मेरे पास आना। उस समय मेरा बल देखना। इस तरह दुतकारा हुआ रावण लङ्का में घुस गया। उसके घोड़े सारथि समेत मार डाले गये थे। उसका गर्व और हर्ष छिन गया था। वह चाप-हीन, बाणों से पीड़ित और बिना मुकुट का था। उसके चले जाने पर राघव ने वानरों के और लक्ष्मण के घावों की पीड़ा दूर की।

दोहा

देखि हार सुर-शत्रु कर, सकल चराचर वृन्द।
देव असुर आदिक भये, तुष्ट परम आनन्द॥

———

६० वाँ सर्ग

रावण का पछतावा करना और कुम्भकर्ण को जगाना।

रावण लङ्का में चला तो गया पर वहाँ राम के बाणों को याद करके भय से दुखी हुआ। उसका गर्व जाता रहा और इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं। जिस तरह सिंह से हाथी और गरुड़ से साँप हार जाता है इसी तरह रामचन्द्र से रावण हार गया। राम के बाण ब्रह्मदण्ड के समान और बिजली की कड़क के तुल्य थे; उनको याद करके वह बड़ा दुखी हो रहा था। सोने के बने हुए अपने आसन पर बैठ-कर और राक्षसों की ओर देखकर वह कहने लगा—देखो, जो मैंने तप किया था वह आज सब निष्फल हो गया; क्योंकि इन्द्र के तुल्य होने पर भी मुझे मनुष्य ने जीत लिया। ब्रह्मा की बात ठीक निकली। उन्होंने कहा था कि तुझे मनुष्य के द्वारा भय होगा। उस समय मैंने देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागों से अभयदान चाहा था। मैंने यही इच्छा की थी कि इनसे मैं कभी न मारा जाऊँ। मैंने मनुष्यों से अभयदान नहीं चाहा था। इस-लिए मैं दशरथ के इस पुत्र को वही मनुष्य सम-झता हूँ जिसके विषय में इक्ष्वाकु-कुल के अनरण्य राजा ने मुझसे कहा था। उसने कहा था "हे राक्षसाधम, कुलाधम, हे दुर्बुद्धे! देख, मेरे ही कुल में एक मनुष्य ऐसा जन्म लेगा जो तुझे—पुत्र, मंत्री, सेना, घोड़े और सारथि-सहित—सङ्ग्रामभूमि में मारेगा।" इसके सिवा वेदवती ने भी मुझे शाप दिया था, क्योंकि उसका भी मैंने तिरस्कार किया था। मैं समझता हूँ कि उसी वेदवती ने जनक-

नन्दिनी महाभागा सीता का अवतार लिया है। पार्वती, नन्दी, शिव, रम्भा और वरुण की कन्या—इन्होंने भी जो कुछ कहा था वह मुझे प्रत्यक्ष दिख रहा है। ऋषि की बात झूठ नहीं होती।

अब यही करना चाहिए कि राजमार्गों और नगर के फाटकों पर राक्षस सावधानी से रक्षा करें। कुम्भकर्ण में बड़ी गम्भीरता है। वह देवों और दैत्यों का गर्व-मर्दन करता है तथा ब्रह्मा के शाप से सो रहा है; उसे जल्दी जगाओ। रावण ने अपनी हार और प्रहस्त का मारा जाना देखकर भयङ्कर राक्षसी सेना को आज्ञा दी कि नगर के फाटकों पर होशियार रहो और अटारियों पर जा बैठो। कुम्भकर्ण के जगाने का भी उपाय करो। वह निश्चिन्त और निष्काम होकर सो रहा है। वह नौ, सात, दस और आठ महीने तक भी सोता रहता है। आज नौ दिन हुए, वह हमारे साथ विचार करके सोया है। हे राक्षसो! कुम्भकर्ण सब राक्षसों से अच्छा है। वह वानरों और राज-पुत्रों को बहुत जल्दी मार गिरावेगा। लड़ाई में वह एक झण्डा है और सब राक्षसों का मुकुट है; परन्तु मूर्ख की तरह सदा सोया करता है। वह सोने को ही सुख मानता है जो असल में कुछ भी नहीं है। मैं भयङ्कर सङ्ग्राम में जो हार गया हूँ इसका, उसके जागने पर, मुझे शोक न करना पड़ेगा। वह इन्द्र के समान बली है; यदि वह इस तरह के घोर दुःख में सहायता न करेगा तो मैं उसे लेकर करूँगा ही क्या?

राक्षसराज की बातें सुनकर सब राक्षस घब-राने लगे। वे जल्दी-जल्दी कुम्भकर्ण के भवन की ओर चले। गन्ध, माला और बहुत सी खाने की चीज़ें उन्होंने साथ ले लीं। वे उसकी गुफा में घुस गये। गुफा योजन भर लम्बी-चौड़ी थी; उसका द्वार बड़ा भारी था। उसमें से फूलों की सुगन्ध आ रही थी। परन्तु कुम्भकर्ण की साँस ऐसे ज़ोर से चल रही थी कि राक्षसों को भीतर धँसने भी न देती थी। तो भी वे सब बड़े कष्ट से उसमें घुस ही गये। गुफा के भीतर जाकर देखा तो उसका फ़र्श रत्न और सोने से पुख़्ता बना हुआ था। वहीं पर वह सो रहा था। राक्षसों ने उसे फैले हुए पर्वत की नाईं बुरी तरह सोते देखा। वे सब मिलकर उसे जगाने लगे।

कुम्भकर्ण के सब रोयें खड़े हुए थे। वह भय-ङ्कर साँप की नाईं साँस छोड़ रहा था; और अपनी साँसों से राक्षसों को घुमा देता था। उसके दोनों नथुने बड़े भयङ्कर थे। मुँह तो मानों पाताल ही सा दिखाई देता था। बिछौने पर सब शरीर को फैलाये हुए वह चर्बी और ख़ून की बदबू छोड़ रहा था। उसकी भुजाएँ सोने के बिजायठों से भूषित थीं और वह अपने सिर पर बड़ा चमकीला सूर्य-कान्त मणि का मुकुट रक्खे हुए था।

कुम्भकर्ण की यह दशा देखकर राक्षसों ने पहले तो मृग, भैंसे, सुअर और अन्न आदि खाने की चीज़ों का, मेरु पर्वत के आकार के समान, ढेर भोजन के लिए उसके पास रख दिया। फिर ख़ून से भरे हुए घड़े और अनेक तरह के मांस उसके आगे रक्खे गये। उत्तम सुगन्धित चन्दन से उसका शरीर पोता गया। अच्छी-अच्छी मालाएँ और सुगन्धित चीज़ें उसको सुँघाई गईं। अनेक तरह की धूप जलाकर वे सब उसकी स्तुति करने लगे। बादलों के गरजने के समान बड़े ज़ोर से वे सब

गरजने और सफ़ेद-सफ़ेद शङ्ख बजाकर बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे। इन सब उपायों से जब कुछ काम न हुआ, वह किसी तरह न जागा, तब फिर गरजने और उसके शरीर को ढकेलकर ज़ोर से चिल्लाने लगे। वहाँ पर उस समय शङ्ख, तुरही और ढोलकों का शब्द तथा ताल ठोकने, ठनकने और सिंहनाद का शब्द मिलकर एक ऐसा घोर महानाद हुआ जिसको सुनकर आकाश में उड़ते हुए पक्षी भी ज़मीन पर गिर पड़े। इतने पर भी जब वह न जागा तब राक्षसों ने तोप, मूसल और गदाएँ हाथ में लीं और इन सब शस्त्रों से वे ज़ोर से उसकी छाती में प्रहार करने लगे। वज्र के तुल्य घूँसे भी उसे ख़ूब जमाये गये; परन्तु उसकी साँस ऐसे ज़ोर से चल रही थी कि राक्षस उसके पास खड़े भी न हो सकते थे। इतने उपाय किये जाने पर भी कुम्भकर्ण की नींद न टूटी। अब वे लोग कमर कसकर तैयार हुए; और मृदङ्ग, ढोल, तुरही, शङ्ख और दूसरी बजाने की चीज़ें हाथ में लेकर दस हज़ार राक्षस एक साथ ही बजाने लगे। वे सिर्फ़ बाजे ही न बजाते थे किन्तु मुँह से गरज भी रहे थे। तो भी वह नील पर्वत के आकार का कुम्भकर्ण न जागा। जब वे उसको इन उपायों से न उठा सके तब उन्होंने एक और बड़ा उपाय किया। वह यह कि इसे घोड़ों, ऊँटों, गदहों और हाथियों से खुँदवाने के लिए इन्हें लाठी, कोड़े और अंकुशों से मारने लगे। साथ ही तुरही, शङ्ख और ढोलों को अपनी शक्ति भर बजाने लगे। इसके सिवा वे भारी-भारी खम्भों, मुद्गरों और मूसलों से भर सक उसके शरीर को पीटने लगे। उस समय इन सबके बड़े शब्द से लङ्का तो गूँज उठी पर कुम्भकर्ण न जागा। अब राक्षसों ने एक हज़ार तुरहियों को उसके चारों ओर बजाना शुरू किया। ये तुरहियाँ सोने के डण्डों से बजाई गईं। इनका शब्द सबसे ऊँचा होता था किन्तु इतना करने पर भी शाप की नींद में पड़ा हुआ वह न जागा।

अब राक्षसों को बड़ा क्रोध आया। वे सब मिलकर एक साथ बड़े ज़ोर से उसको जगाने लगे। उनमें से बहुत तो तुरही बजाते और कई एक उसके बाल नोचते, कई उसके कान काटते और बहुतेरे सैकड़ों घड़े भर-भरकर उसके कानों में पानी डालते थे; फिर भी उसने करवट तक न बदली। बहुत से महाबली राक्षस काँटेदार मुद्गर हाथ में लेकर उसके सिर में, छाती में तथा और-और अङ्गों में भी मारते थे एवं बड़े-बड़े रस्सों से तोपें बाँध-बाँधकर उसके ऊपर पटकते थे, परन्तु वह टस से मस न हुआ। अन्त में राक्षसों ने उसकी देह पर हज़ारों हाथी दौड़ाये। अब वह हाथियों के ज़ोर से उठा। उसके शरीर पर जो पर्वतों के टुकड़े और वृक्ष पटके जाते थे उनकी उसने ज़रा भी परवा न की; उस तरफ़ उसकी नज़र ही न गई। नींद टूट जाने पर, भूख के डर से दुखी हो, वह जँभाई लेकर बहुत जल्दी उठ बैठा।

नाग और पर्वत-शिखर के तुल्य, तथा वज्र-सार को जीतनेवाली, भुजाएँ फैलाकर और बड़वा-नल के समान मुँह पसारकर वह जँभाई लेने लगा। जँभाई लेते समय उसका मुँह पाताल के समान देख पड़ा। मेरु पर्वत की चोटी पर उदय हुए सूर्य की नाईं वह चमकने लगा। जँभाइयाँ लेता हुआ जब वह जाग पड़ा तब उसके मुँह से ऐसे ज़ोरों की हवा निकली जैसे पर्वत से आँधी

चलती है। उस समय उसका मुँह युग के अन्त में संसार को भक्षण करनेवाले काल की नाईं देख पड़ा। उसकी आँखें, जलती हुई आग की नाईं, बिजली के समान चमकती हुई और देदीप्यमान दो नक्षत्रों के समान देख पड़ीं। राक्षसों ने सुअर और भैंसे आदि अनेक तरह के खाने के सामान उसे दिखलाये। वह उन्हें खाने लगा; पानी की जगह ख़ून पीने लगा। वह मज्जा (चरबी) और रक्त के भरे हुए घड़े उठा उठाकर पी गया। जब राक्षसों ने जाना कि यह तृप्त हो गया तब वे उठ खड़े हुए और सिर झुका-झुकाकर प्रणाम कर उसको घेरकर खड़े हो गये।

अब कुम्भकर्ण की नींद बिलकुल जाती रही। उसकी आँखें साफ़ हो गईं। चारों ओर नज़र फैलाकर उसने राक्षसों से बातें कर उन्हें धीरज बँधाया। परन्तु जगाये जाने से उसे बड़ा अचम्भा हुआ। वह पूछने लगा—"हे राक्षसो! बड़े आदर से तुमने मुझे क्यों जगाया? राजा तो अच्छी तरह है? कुछ डर तो नहीं है? मैं समझता हूँ कि ज़रूर शत्रु का भय हुआ है। इसी कारण तुमने बड़ी जल्दी मुझे जगाया है। आज ही मैं राक्षसराज के डर को उखाड़कर फेंके देता हूँ। यदि इन्द्र होगा तो उसे मटियामेट कर डालूँगा और अग्नि होगा तो उसे ठण्डा कर दूँगा। मुझे इस तरह सोते हुए जगाया गया है, इसका कोई मामूली कारण नहीं हो सकता। इसलिए हे निशाचरो! ठीक-ठीक बतलाओ कि मैं क्यों जगाया गया हूँ।" क्रोध में भरे हुए कुम्भकर्ण की बातें सुनकर राजा का यूपाक्ष नामक मन्त्री हाथ जोड़कर बोला—हे राजन्! हमको देवताओं से तो तनिक भी डर नहीं है परन्तु मनुष्य से भय हुआ है। इस तरह का भय हमको न दैत्यों से हुआ था और न दानवों से जैसा अब मनुष्य से हुआ है। देखिए, पर्वताकार वानरों ने आकर इस नगरी को घेर लिया है। सीता के हरण से रामचन्द्र-द्वारा हमको बड़ा भय उत्पन्न हुआ है। एक वानर ने पहले ही आकर इस नगरी को जला दिया और अक्षकुमार को सेना-सहित मार गिराया। देखिए तो, राक्षसराज पुलस्त्य-कुल में पैदा हुए और देवताओं के लिए कण्टक रूप हैं; उन्हीं से राम ने संग्रामभूमि में कहा कि 'जाओ, मैंने तुम्हारे प्राण बचा दिये!' महाराज! राम का तेज सूर्य के समान चमक रहा है। जो बात देवताओं, दैत्यों और दानवों के युद्ध में कभी नहीं हुई थी वही रामचन्द्र ने की है। देखिए न, रावण को प्राण-संशय से छोड़ दिया!

यूपाक्ष का इस तरह कहना और अपने भाई की हार का हाल सुनकर कुम्भकर्ण ने आँखें घुमाईं। उसने यूपाक्ष से कहा—"हे यूपाक्ष! अभी मैं सब वानरी सेना को और लक्ष्मण के साथ राम को जीतकर फिर रावण से मिलूँगा। मैं अभी वानरों के मांस और रक्त से राक्षसों को तृप्त करूँगा। उन दोनों भाइयों का ख़ून तो मैं ख़ुद पीऊँगा।" ये गर्वसहित और क्रोध से भरी हुई कुम्भकर्ण की बातें सुनकर महोदर नामक मुख्य योद्धा हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे राजन्! पहले आप रावण का कथन सुन लीजिए। उसके कथन में जो गुण और दोष हों उनका विचार कर लीजिए; फिर शत्रुओं का पराजय कीजिएगा।" महोदर की बात सुनकर कुम्भकर्ण, राक्षसों के साथ, रावण के भवन को जाने के लिए तैयार हुआ।

इस तरह भयङ्कर आँखोंवाले भयङ्कर पराक्रमी राक्षस को जगाकर वे राक्षस शीघ्र ही राजभवन को गये। वहाँ रावण के पास पहुँचकर वे हाथ जोड़े हुए बोले—"हे राक्षसेश्वर! आपके भाई कुम्भकर्ण जाग गये। क्या वे उधर से ही युद्ध में चले जायँ या आप उनको देखना चाहते हैं?" राजा ने ख़ुश होकर कहा—पहले मैं उसको देखना चाहता हूँ; मैं उसका ठीक-ठीक आदर करना चाहता हूँ।

राजा की आज्ञा पाकर वे कुम्भकर्ण के पास जा कहने लगे—"महाराज! आपको राक्षसराज देखना चाहते हैं। चलकर अपने भाई को ख़ुश कीजिए।" राजा की आज्ञा सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा—बहुत अच्छा। फिर वह सोने की जगह से उठ खड़ा हुआ। मुँह धोकर उसने स्नान किया। फिर जब उसने बलकारक पीने की चीज़ें चाहीं तब राक्षसों ने मद्य और अनेक तरह की खाने की चीज़ें उसको ला दीं। वह दो हज़ार घड़े शराब पीकर चलने के लिए तैयार हुआ। अब तक वह बहुत असह्य और मस्त नहीं हुआ था परन्तु तेजस्वी और बली तो था ही; और पहले से लड़ाई का हाल सुनकर क्रुद्ध भी था इसलिए यमराज के समान दिखाई देता था। उस समय राक्षसों को साथ लेकर जब वह चलने लगा तब पैरों की धमक से वह ज़मीन को कँपा सा देता था; और राजमार्ग को ऐसा प्रकाशित करता था जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी को प्रकाशित करता है। उसके चारों ओर लोग हाथ जोड़े खड़े थे और कोई-कोई उसके साथ चले जाते थे। वह राजभवन को इस प्रकार चला जैसे इन्द्र ब्रह्मा के भवन को जाते हैं। बड़े शरीरधारी इस राक्षस को देखकर प्राकार के बाहर के वानर अपने सेनापतियों-सहित डर गये। कोई तो राम के शरण में गये; कोई दुख के मारे गिर पड़े; कोई भाग गये और कोई ज़मीन पर सो गये।

दोहा

अद्रि-शृङ्ग सम मुकुटधर, रविकर-निकर-प्रकास।
कुम्भकर्ण कहँ देखि कपि, भागे मन अतित्रास॥

---

६१ वाँ सर्ग

रामचन्द्र के पूछने से विभीषण का कुम्भकर्ण के बल और पराक्रम का वर्णन करना।

अब तेजोधाम श्रीरामचन्द्र ने हाथ में धनुष लेकर मुकुटधारी बड़े शरीरवाले कुम्भकर्ण को देखा। वह पर्वताकार राक्षस ऐसा दिखाई दिया मानों आकाश का आक्रमण करते हुए वामनावतार नारायण हों। जल से भरे हुए मेघ-मण्डल के समान, सोने के बिजायठ पहने, उस महाभयङ्कर राक्षस को देखकर फिर वानरी सेना भागी। रामचन्द्रजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विभीषण से पूछा—देखो, वह कौन पर्वताकार वीर दिखाई पड़ता है, जो मुकुट पहने हुए है, जिसकी पीली आँखें हैं और जो बिजली से मिले हुए मेघमण्डल के समान है? मैं समझता हूँ कि यह पृथ्वी की पताका सा है। इसको देखकर सब वानर भाग रहे हैं। मुझे समझाकर बतलाओ कि यह बहुत बड़ा कोई राक्षस है या दैत्य? मैंने तो आज तक ऐसा प्राणी देखा ही नहीं।

विभीषण ने कहा—हे राघव! जिसने युद्ध में यमराज और इन्द्र को भी जीत लिया है वही यह

विश्रवा मुनि का पुत्र महाप्रतापी कुम्भकर्ण है। हे रघुनन्दन! इसने युद्ध में कई मर्तबा हज़ारों देवता, दैत्य, यक्ष, भुजङ्ग, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और नागों को नष्ट कर डाला है। कहाँ तक कहा जाय, जब इसने अपने हाथ में शूल लिया और आँखें टेढ़ी कीं तब देवता भी इसको न मार सके। इसे काल समझकर सब मूढ़ बन गये। महाराज! दूसरे राक्षसों को तो वरदान का बल है पर यह तो स्वभाव से ही तेजस्वी है। यह जिस समय पैदा हुआ उसी समय इसे भूख लगी। उस समय इसने हज़ारों प्रजा खा डाली। इसके कारण प्रजा बहुत दुखी हुई। इन्द्र के शरण में जाकर उन्होंने इसका हाल कह सुनाया। उस समय इन्द्र ने क्रोध करके अपने वज्र से इसको मारा। यह महात्मा वज्र की चोट से कुछ काँप तो उठा पर बड़े ज़ोर से गरजने लगा। इसकी गर्जना सुनकर प्रजा और भी अधिक डरी। इतने में कुम्भकर्ण ने क्रुद्ध हो इन्द्र के ही हाथी का दाँत उखाड़कर इन्द्र की छाती में मारा। उस चोट से इन्द्र बहुत दुखी हुए। उन्हें कष्ट में देखकर देवता, ब्रह्मर्षि और दानव सभी बड़े दुखी हुए। तब प्रजा को साथ ले इन्द्र ब्रह्मा के लोक में गये। उन्होंने वहाँ कुम्भकर्ण की सब दुष्टता ब्रह्मा को सुना दी कि 'वह दुष्ट राक्षस प्रजा को खाता है, देवताओं को सताता है, आश्रमों को नष्ट करता और दूसरों की स्त्रियों को हरण किया करता है। जो वह इसी तरह रोज़ भोजन करेगा तो थोड़े ही दिनों में संसार सूना हो जायगा।' इन्द्र की बातें सुनकर ब्रह्मा ने राक्षसों को बुलवाया। उन लोगों के साथ कुम्भकर्ण भी पहुँचा। उसे देखकर बाबा (ब्रह्मा) भी डर गये। चित्त को ठीक करके ब्रह्मा ने कुम्भकर्ण से कहा—हे कुम्भकर्ण! संसार का नाश करने के लिए विश्रवा मुनि ने तुझे ज़रूर पैदा किया है, इसलिए आज से तू मुर्दों की तरह सोया करेगा।

इस तरह ब्रह्मा का शाप पाते ही वह उन्हीं के सामने गिर पड़ा। यह देखकर रावण घबरा गया। उसने कहा—"महाराज! बढ़ा हुआ सोने का पेड़ क्या फलने के समय काटा जाता है? हे प्रजापते! यह तो आपका प्रपौत्र है। इसको इस तरह शाप देना ठीक नहीं। आपकी बात झूठ तो होगी ही नहीं और यह उसी तरह ज़रूर सोवेगा, परन्तु इसके सोने और जागने का समय नियत कर दीजिए।" यह प्रार्थना सुनकर पितामह (बाबा) ने कहा—हे रावण! यह छः महीना सोवेगा और एक दिन जागेगा। उसी एक दिन में यह वीर भूखा हो, मुँह फैलाकर, लोगों को इस तरह खायगा जैसे ख़ूब जलती हुई आग हो। हे रामचन्द्र! इस समय दुख पड़ने पर रावण ने इसको जगाया है, क्योंकि इस समय तुम्हारे पराक्रम से राजा रावण बहुत डर गया है। यह वीर कुम्भकर्ण अपने घर से निकला है और बहुत क्रुद्ध होकर वानरों को खाता हुआ दौड़ रहा है। उसको देखते ही वानर भाग रहे हैं। नहीं मालूम, वे उसे संग्राम में किस तरह रोक सकेंगे! वानरों से कह देना चाहिए कि लङ्का में यह एक यन्त्र खड़ा किया गया है। यह जानकर वे निडर हो जायँगे। इस तरह कारणवाद-पूर्वक विभीषण की बातें सुनकर रामचन्द्र ने नील से कहा—"तुम जाओ, सेना का व्यूह बनाकर तैयार रहो। लङ्का के द्वारों, राजमार्गों तथा रास्तों पर पर्वत के

शिखरों, वृक्षों और पत्थरों को इकट्ठा करके सब आयुधों-सहित तैयार रहो।" प्रभु की आज्ञा से नील ने सब जगह ठीक-ठीक प्रबन्ध कर दिया। गवाक्ष, शरभ, हनुमान्, अङ्गद ये पर्वताकार वानर पर्वत के शिखरों को हाथों में ले-लेकर लङ्का के फाटकों पर पहुँच गये। राम के मुँह से निकलते ही वानर जयजयकार करते हुए वृक्षों से शत्रु की सेना का संहार करने लगे।

दोहा

नाना पर्वत तरु धरे, कीस सेन बहुरूप।
शोभित भा जिमि गिरि निकट, मेघ-घटा सु अनूप॥

———

६२वाँ सर्ग

रावण के साथ कुम्भकर्ण की बातचीत।

नींद के मद से भरा हुआ वह राक्षससिंह सुन्दर राजमार्ग में चला जाता था और हज़ारों राक्षस उसको चारों ओर से घेरे हुए जा रहे थे। रास्ते में लोग उसके ऊपर घरों से फूल बरसा रहे थे। अब वह राजभवन में पहुँच गया। वहाँ आसन पर बैठे हुए अपने भाई को उसने दूर से देखा। जब उसके पास पहुँचा तब उसने देखा कि वह उद्वेग-पूर्वक पुष्पक विमान पर बैठा है। कुम्भकर्ण को आते देखकर रावण झट उठा और उसको अपने पास ले आया। भाई के आने से उसे बड़ी ख़ुशी हुई। कुम्भकर्ण ने पलँग पर बैठे हुए भाई के चरण छूकर प्रणाम किया और पूछा—'महाराज! आपने मुझे क्यों याद किया है?' रावण ने उठकर कुम्भकर्ण को गले से लगा लिया और सत्कार करके बैठने के लिए उसे अच्छा आसन दिया। महाबली कुम्भकर्ण ने क्रोध से लाल आँखें करके पूछा—राजन्! आपने मुझे आदर-पूर्वक क्यों जगाया है? बतलाइए, आपको किससे डर की शङ्का हुई है? आज कौन प्रेत होगा?

क्रोधयुक्त कुम्भकर्ण की बातें सुनकर रावण भी क्रोध के मारे अपनी आँखें तरेरकर बोला—हे महाबल! तुमको सोते हुए बहुत दिन हो गये। नींद के कारण तुम नहीं जानते कि मुझे राम से भय उत्पन्न हुआ है। देखो, रामचन्द्र सुग्रीव को साथ ले समुद्र पार आ गये और हमारे कुल का नाश कर रहे हैं। यह बड़े दुख की बात है। समुद्र के उस पार से पुल पर से आकर वानरों ने लङ्का के वन और उपवनों को एक समुद्र सा बना डाला है; समुद्र के किनारे से लङ्का तक भूमि देख ही नहीं पड़ती; वानर ही वानर दिखाई देते हैं। हमारे मुख्य-मुख्य राक्षसों को वानरों ने मार गिराया। युद्ध में उनका किसी तरह नाश मुझे देख नहीं पड़ता। यही भय उत्पन्न हुआ है। अब तुम इस भय से बचाओ और वानरों का नाश करो। तुम इसी लिए जगाये गये हो। मेरा तो सब ख़ज़ाना लुट चुका अर्थात् सब योद्धा मारे गये। अब लङ्का में केवल बालक और बूढ़े बचे हैं। इनकी रक्षा तुम्हारे हाथ है। हे महाबाहो! मुझ भाई के लिए अब तुम कठिन काम करो। आज तक मैं किसी भाई के सामने इस तरह नहीं गिड़गिड़ाया। तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति है और विश्वास भी बड़ा है। देवासुर-संग्राम में तुमने कई बार देवताओं को जीता है। हे भीमपराक्रमी! उन बातों को याद करो और इस काम को पूरा करो। देखो, तुम्हारे समान कोई बली नहीं देख पड़ता।

दोहा

रिपु सेनहिं विध्वंसहू, करहु मोर हित तात!
शरद-बुन्द कहँ जिमि प्रबल, मारि भगावत बात॥

———

६३वाँ सर्ग

पहले तो कुम्भकर्ण का नीतिशास्त्र से राजा को समझाना और फिर अपना पराक्रम कहना।

इस तरह रावण के विलाप को सुनकर कुम्भकर्ण बहुत हँसा और फिर बोला—राजन्! पहली बार सलाह करने में हम लोगों को जो दोष देख पड़ा उसी दोष को, अपने हितकारियों की बातों पर विश्वास न करके, तुम भोग रहे हो। हे भाई! पाप-कर्म का फल तुमको बहुत जल्दी मिल गया। करने के समय तुमने इस काम के विषय में अच्छी तरह विचार नहीं किया। अपने बल के निरे अभिमान से तुमने उसके सम्बन्ध की ओर नज़र भी नहीं उठाई।

हे राक्षसराज! जो ऐश्वर्यवान् राजा पहले करने योग्य कामों को पीछे करता है और पीछे करने योग्य काम पहले कर लेता है वह न्याय और अन्याय से असावधान कहा जाता है; वह न्याय और अन्याय को नहीं समझता। हे भाई! देश और काल के विरोधी उलटे-पुलटे जितने काम हैं वे सब दुःख के ही साधक होते हैं, जैसे कि बिना संस्कार की हुई आग में डाली हुई आहुतियाँ निष्फल होती हैं। राजन्! जो राजा अपने मन्त्रियों के साथ नियम से नाश, बढ़ती और स्थान, तीन कामों को—सहाय, साधन का उपाय, देश-काल का विभाग, विपत्ति का दूर करना और सिद्धि—पाँच प्रकार से जोड़ता है वही न्याय-मार्ग पर चलनेवाला कहलाता है। जो राजा शास्त्रानुसार मन्त्रियों के साथ विचार करता है और उनके चिताने से सावधान होता तथा बुद्धि के अनुसार अपने मित्रों को समझाता है; और जो राजा धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को समय-समय पर काम में लाता है अर्थात् इनका सेवन करता है; या इनमें से दो-दो को एक-एक समय में अपने अधिकार में लाता है वही नीति-मार्ग पर चलनेवाला होता है। जो इन तीनों में से किसी एक को सुनकर भी अपने मन पर नहीं लाता, एक से भी काम नहीं लेता, वह राजा हो या राजपुत्र, उसका बहुत पढ़ना-लिखना—शास्त्री होना—व्यर्थ है। देखिए, समय के अनुसार देना, समझाना, भेद (फूट) करना, पराक्रम दिखलाना और मेल कर लेना—इन्हीं को नीति और अनीति कहते हैं। जो समय के अनुसार हुआ वह तो नीति और जो न हुआ वह अनीति कहा जाता है। जो राजा समय के अनुसार, मन्त्रियों की राय से धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है वह आत्मज्ञ कहलाता है। संसार में वह कभी दुःख नहीं पाता। राजा को चाहिए कि सब बातों का तत्त्व समझनेवाले चतुर मन्त्रियों के साथ अपने हित-सम्बन्धी काम का विचार करे। जो मन्त्री कहलाकर, शास्त्रों का बिना मतलब समझे, केवल ढिठाई से बोलने लगते हैं वे पशुबुद्धि हैं। उनकी बुद्धि पशुओं की सी है। जो राजा लक्ष्मी या राज्यैश्वर्य प्राप्त करना चाहे उसे ऐसे मूर्ख और मतलब न समझनेवाले मन्त्रियों की बात पर कान न देना चाहिए। जो मनुष्य केवल

ढिठाई से अहित को हित बनाकर कहते हैं वे काम बिगाड़नेवाले हैं। इसलिए ऐसों को तो विचार-सभा से ही बाहर निकाल देना चाहिए; क्योंकि वे शत्रु से मिलकर अपने स्वामी का नाश करते और उलटे काम करवाते हैं। ऐसे मनुष्य ऊपर से तो मित्र पर भीतर से शत्रु होते हैं। विचार करने के निर्णय में ऐसे मनुष्य को व्यवहार-द्वारा शत्रु के वश में समझना चाहिए। राजन्! जो अपनी चञ्चलता से, बिना विचारे, झटपट कामों में हाथ डाल देता है उसके उस दोष को देखकर दूसरे उस पर आक्रमण कर लेते हैं। हे भाई! जो शत्रु को तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करता वह अवश्य अपना अनर्थ करता है, उसे अनर्थों का सामना ज़रूर करना पड़ेगा। वह अपने स्थान से हटा दिया जाता है। हे रावण! तुम्हारी स्त्री मन्दोदरी ने और छोटे भाई विभीषण ने जो कुछ कहा था वही हमारे लिए हितकारी था। अब जो चाहो सो करो।

कुम्भकर्ण की ये बातें सुनकर रावण ने अपनी भौंहें टेढ़ी कर लीं। वह क्रोध में भरकर बोला—हे कुम्भकर्ण! देख, मैं तेरा बड़ा भाई आचार्य के तुल्य मान्य हूँ। तू मुझे क्या समझा रहा है? तू बोलने की मेहनत क्यों करता है? इस समय जो करना उचित है वह कर। मैंने चित्त के मोह से या बल अथवा पराक्रम से जो बात नहीं सोची उसके विषय में अब बहुत सी बातें करना व्यर्थ है। इस समय जो उचित है वही सोचो। बड़े मनुष्य बीती हुई बात को नहीं सोचते; क्योंकि जो बात बीत गई वह तो बीत ही गई। अब शोक करने से क्या लौट आ सकती है? हे भाई! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम हो और तुम अपने पराक्रम पर भरोसा रखते हो और अगर मेरा यह काम तुम्हें बहुत ज़रूरी समझ पड़ता हो तो मेरी बुरी नीति से जो दुःख हुआ है, उसे अपने पराक्रम द्वारा शान्त करो। देखो, सुहृद वही है जो दीन पर दया-दृष्टि करे और बन्धु (भाई) वही है जो कुमार्गगामी की भी सहायता करे।

रावण के घोर और दारुण वचनों को सुनकर कुम्भकर्ण ने समझ लिया कि यह रुष्ट हो गया। अब धीरे से वह मधुर वचन बोला। जब उसने देखा कि मेरा बड़ा भाई इस समय बहुत घबरा गया है, तब उसकी शान्ति के लिए वह मीठे और ठण्डे वचन कहने लगा—हे राक्षसेन्द्र! इस समय दुःख करना व्यर्थ है। तुम क्रोध त्यागकर स्वस्थचित्त हो जाओ। मन में कोई दूसरी बात न समझो। जिस कारण तुम दुखिया हुए हो उसको मैं जीते जी नष्ट कर डालूँगा। राजन्! सब दशाओं में मुझे हित की बात कहनी चाहिए, इसलिए बन्धु-धर्म और भाई के स्नेह से मैंने यह बात कही थी। इस समय हितकारी भाई को जो बात करनी चाहिए वह तो मैं करता ही हूँ। तुम देखोगे कि आज शत्रु कैसे मारे जाते हैं। हे महाभुज! आज जब मैं राम और लक्ष्मण को मार डालूँगा तब तुम देखना कि वानरी सेना कैसी भागती फिरती है। आज मैं रामचन्द्र का सिर तुम्हें ला देता हूँ। उसे देखकर तुम तो सुखी होना और सीता दुखी होगी। राक्षसों को राम का नाश बड़ा प्यारा है सो वे आज उसका नाश देखेंगे। अपने भाइयों के मारे जाने से जो राक्षस शोक कर रहे हैं उनके आँसुओं को आज मैं शत्रुओं का नाश करके पोछूँगा। पर्वत के आकारवाले और सूर्ययुक्त मेघ के समान सुग्रीव को आज संग्राम में

गिरा हुआ और ख़ून से सना हुआ तुम देखोगे। जब ये राक्षस और हम शत्रुओं के मारने के लिए कमर कस रहे हैं तब तुम राम से क्यों डरते हो? देखो, जब राम पहले मुझे मार लेंगे तब न तुमको मारेंगे। सो मैं तो अपने विषय में कुछ भी फ़िक्र नहीं करता; तुम क्यों दुःख मना रहे हो?

हे राक्षसराज! तुम मुझे आज्ञा दो और दूसरे की परवा मत करो। मैं तुम्हारे महाबली शत्रुओं का विध्वंस कर डालूँगा। मेरे सामने चाहे इन्द्र या यम या अग्नि अथवा वायु या कुबेर अथवा वरुण भी आवें तो उनसे भी मैं युद्ध करूँगा। हे भाई! जब मैं तेज़ शूल को हाथ में लूँगा और अपने पर्वताकार शरीर से तीखे-तीखे दाँत दिखला-कर संग्राम में गरजूँगा तब इन्द्र भी डर जायँगे। हाँ, शस्त्रों की मुझे ज़रूरत ही क्या है? ख़ाली हाथों से भी यदि मैं शत्रुओं का मर्दन करने लगूँगा तो जो जीना चाहता होगा वह कभी मेरे पास न आवेगा। राजन्! मुझे शक्ति, गदा, तलवार और तेज़ बाणों की ज़रूरत नहीं। मैं अपने हाथों से ही शत्रुओं को मारूँगा। इस समय यदि राम मेरे घूँसों को सह लेंगे तो उसके बाद मेरे बाण उनका ख़ून पियेंगे ही। महाराज! मेरे रहते तुम चिन्ता क्यों कर रहे हो? मैं तुम्हारे शत्रु के नाश के लिए जाने को तैयार हूँ। तुम राम से मत डरो। देखो, मैं उन्हें, लक्ष्मण को, सुग्रीव को और राक्षसघाती तथा लङ्कादाही हनुमान् को भी मार डालूँगा। जो वानर संग्राम-भूमि में हैं उनको तो मैं खाही लूँगा और तुमको असाधारण यश प्राप्त करा दूँगा। यदि तुमको इन्द्र से या ब्रह्मा से भी भय हुआ हो तो भी मैं उसको ऐसे दूर कर दूँगा जैसे रात के अँधेरे को सूर्य दूर कर देता है। मेरे क्रोध से देवता भी ज़मीन पर लोट जायँगे। हे रावण! मैं यम को शान्त कर दूँगा और अग्नि को खा जाऊँगा; नक्षत्रों के साथ सूर्य को नीचे गिरा दूँगा; इन्द्र को मार डालूँगा; समुद्र को पी जाऊँगा; पर्वतों को चूर-चूर कर दूँगा और पृथिवी को विदीर्ण कर डालूँगा। देखो, मैं बहुत समय से सोता-सोता अब जागा हूँ। जिन प्राणियों को मैं खाऊँगा वे आज मेरा पराक्रम देखेंगे। ये तीनों लोक मेरे भोजन के लिए काफ़ी नहीं होते। हे रावण! दाशरथि राम-चन्द्र को मारने के लिए और उनके मारे जाने से तुमको सुख देने के लिए मैं जाता हूँ। पहले दोनों भाइयों को मारकर फिर वानरों को खा डालूँगा।

दोहा

रमहु वारुणी पान करि, करहु सकल निज काज।
राम-मरण ते होइहहि, सीता तव वश आज॥

---

६४ वाँ सर्ग

महोदर का बोलना।

कुम्भकर्ण की बातें सुनकर महोदर ने कहा—"हे कुम्भकर्ण! तुम अच्छे कुल में पैदा हुए हो; पर स्वभाव के बड़े ढीठ और अहङ्कारी हो। इसी से सब तरह के काम तुम नहीं जान सकते। हे कुम्भकर्ण! क्या महाराज नीति और अनीति नहीं जानते? तुम तो केवल ढिठाई के कारण लड़कों की तरह बातें मारना जानते हो। देखो, ये राक्षसराज स्थान, वृद्धि, हानि, देश और काल का विभाग—इन शत्रु-विषयक बातों को अच्छी तरह जानते हैं। भला सोचो तो सही, जो बलवान् होकर भी क्षुद्रबुद्धि है, जिसको

अक्ल नहीं है और जिसने बड़े मनुष्यों से वैसा ज्ञान नहीं सीखा, उसके लिए जो काम करना दु:साध्य है उसे भला कौन आदमी करेगा? यदि वह वैसा काम करेगा तो उसे मानेगा ही कौन? कोई न मानेगा। तुम यही कहते हो न कि धर्म, अर्थ और काम परस्पर-विरुद्ध हैं; एक मनुष्य सबका सेवन नहीं कर सकता--इस बात को तो तुम ख़ुद ही नहीं समझते। स्वभाव से उनकी स्थिति ऐसी नहीं है। देखो, सुख के जितने साधन हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन सबका कारण कर्म है; कर्म से ही इनकी उत्पत्ति है। एक ही कर्त्ता को पुण्य और पाप दोनों कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। यद्यपि धर्म और अर्थ दोनों चित्त की शुद्धि होने पर मोक्ष के साधन हो सकते हैं अर्थात् इन दोनों से मोक्ष मिल सकता है, तो भी ये दोनों स्वर्ग और अभ्युदय (महा-राज्यादिक लोक) भी देते हैं। लोग कहते हैं कि अधर्म और अनर्थ की प्राप्ति में जो फल होता है वह प्रत्यवायिक अर्थात् शास्त्र में बतलाई हुई रीति से उलटा आचरण करने से हुआ करता है। पुरुष इस लोक और परलोक के लिए भी काम करते हैं। सभी लोग ऐसे काम करते या करना चाहते हैं जिनसे इस लोक में और परलोक में भी सुख मिले। काम पर आरूढ़ हुआ मनुष्य भी अच्छा फल पा लेता है। जो जिस काम में निरन्तर लगा रहता है वह उस काम के अनुसार अच्छा फल पा ही लेता है। इसलिए धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का सेवन हर एक व्यक्ति कर सकता है। राजा को यह सीता-हरणरूप काम अपने मन में ही रखना चाहिए था, सब को न सुनाना चाहिए था। इस विषय में हम सबकी भी यही सम्मति थी। यद्यपि यह काम साहस का है तो भी शत्रु के विषय में यह किस प्रकार रोका जा सकता है।

"तुमने अहङ्कार-पूर्वक कहा कि मैं अकेला ही शत्रुओं को जीत लूँगा सो यह सर्वथा अनुचित है। भला सोचो तो सही, जिसने अकेले जनस्थान में बहुत से महाबली राक्षसों को जीत लिया उस राघव को तुम अकेले किस तरह जीत सकोगे? उसके बाणों की चोट खाकर भागे हुए बड़े पराक्रमी राक्षसों को तुम इस लङ्का में नहीं देखते? वे आज तक राम के डर से थरथर काँप रहे हैं। ओहो! तुम जान-बूझकर सोये हुए क्रुद्ध सिंह और साँप की तरह उस राघव को जगाना चाहते हो, जो सदा तेज से तपता रहता और क्रोध से दुर्द्धर्ष तथा काल की तरह असह्य है। भला उसका सामना करने योग्य कौन है? इसलिए हे कुम्भकर्ण! शत्रु का सामना करने में सर्वथा प्राणों का डर है। इतने पर भी तुम जाना चाहते हो तो जाओ; पर तुम्हारा अकेला जाना हमको नहीं सुहाता; क्योंकि ऐसा कौन मनुष्य होगा जो स्वयं सहायहीन होकर ससहाय शत्रु को, छोटा समझकर, अपने वश में लाना चाहेगा? हाँ, जो अपने जीवन का नाश करना चाहता है वह यह काम करेगा। हे राक्षसोत्तम, जिसके समान तीनों लोकों में आज कोई नहीं है और जो इन्द्र तथा यमराज के समान पराक्रमी है उसके साथ तुम किस तरह युद्ध करने की इच्छा करते हो?"

क्रोध में भरकर महोदर ने इस तरह कुम्भकर्ण को फटकारा। फिर राक्षसों के बीच में वह रावण से कहने लगा—राजन्! तुम सीता को पाकर अब देर क्यों करते हो? तुम जभी चाहो

तभी वह तुम्हारे वश में हो जायगी। मैंने इस विषय में एक उपाय सोच रक्खा है। यदि तुम्हें रुचे तो मैं कहता हूँ। सुनो। नगर में यह डौंड़ी पिटवा दो कि महोदर, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन, ये पाँचों राम के मारने के लिए जाते हैं। फिर हम पाँचों जाकर राम से युद्ध करें। यदि जीत जायँ तो दूसरे उपाय की ज़रूरत है ही नहीं और अगर तुम्हारा शत्रु जीता बच गया तथा हम लोगों ने जय न पाई तो हम सब राम-नामाङ्कित बाणों से अपने शरीर को विदीर्ण कर और ख़ून से नहाये हुए युद्ध-भूमि से यहाँ आवेंगे और कहेंगे कि हमने दोनों भाइयों को खा डाला। इस तरह कहकर तुम्हारे पैर छुवेंगे और कहेंगे कि तुम हमारे मनोरथ पूरे करो। उस समय तुम हाथी पर चढ़कर इस बात को फैला देना कि भाई और सेना-सहित राम मारे गये। इसके बाद तुम प्रसन्न होकर नौकरों को मुँह-माँगी चीज़ें और धन दिलवा देना। योद्धाओं को माला, कपड़े, गहने, अङ्गों में लगाने की सुगन्धित चीज़ें और पीने के लिए मद्य आदि दिलवाकर तुम भी पीना। जब यह बात नगर भर में फैल जायगी और सीता भी सुन लेगी कि राम को राक्षसों ने खा लिया तब तुम धीरे से अशोकवाटिका में जाकर सीता को समझाना और धन, धान्य, रत्न तथा अनेक तरह की अभीष्ट वस्तुओं का उसे लोभ दिखलाना। यह छल सीता के शोक को बढ़ावेगा। यद्यपि वह तुमको चाहती नहीं है तो भी पति के मरने का समाचार जानकर तुम्हारे वश में हो जायगी। जब वह सुनेगी कि मेरे ऐसे सुन्दर पति मारे गये हैं तब निराश हो जायगी। स्त्रियों की बुद्धि छोटी होती है, इसलिए वह तुम्हारे वश में ज़रूर हो जायगी। सीता सुख में ही पलकर इतनी बड़ी हुई है और सब तरह सुख के ही योग्य है, परन्तु इस समय दुःख में डूबी हुई है। इसलिए तुम्हारे अधीन होकर जब सुख देखेगी तब सर्वथा वश में हो जायगी। राजन्! मेरी राय में तो यही उपाय ठीक है। राम की नज़र के सामने जाने से अनर्थ ही होगा। काम की सिद्धि यहीं घर बैठे हो जायगी। उत्कण्ठित मत होओ। युद्ध न करने से बड़ा सुख मिलेगा।

दोहा

प्राण-सेन-रक्षा तथा, बिनहिं युद्ध जय तात।
यश-सुख-लक्ष्मी-लाभ पुनि, काहे तुम घबरात ॥

---

६५ वाँ सर्ग

कुम्भकर्ण की युद्धयात्रा।

महोदर की यह सलाह कुम्भकर्ण को अच्छी न लगी। उसे डपटकर वह फिर रावण से कहने लगा—भाई! आज मैं दुष्ट राम को मारकर तुम्हारा घोर भय दूर कर दूँगा। तुम वैर-रहित होकर सुखी होगे। देखो, वीर मनुष्य बिना पानी के बादलों की तरह वृथा नहीं गरजते। आज मेरा गरजना तुम मेरे युद्ध-कर्म से देखोगे। बहादुर आदमी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की इच्छा नहीं रखते, किन्तु कर्तब कर दिखला देते हैं। हे महोदर! कादर, बुद्धि-रहित और अपने को पण्डित माननेवाले राजाओं को तुम्हारी यह सलाह अच्छी लगेगी। तुम्हारे समान ओछी बुद्धिवाले, मीठी बोलीवाले और राजा के मन के अनुसार काम करनेवालों ने ही यह काम बिगाड़

दिया। देखो, लङ्का में केवल राजा ही रह गये हैं। ख़ज़ाना बरबाद हो गया और सेना सब मारी गई। तुम्हारे समान ऊपर से मित्र-भाव दिखलानेवाले अमित्रों ने ही यह दशा कर दी। राजन्! अब मैं युद्ध के लिए और शत्रु को जीतने के लिए तैयार हो गया। आज मैं तुम्हारी दुर्नीति को शान्त कर दूँगा।

कुम्भकर्ण की बातें सुनकर रावण हँसकर कहने लगा—हे कुम्भकर्ण! यह महोदर राम से ज़रूर डर गया है। हे प्यारे! यह युद्ध करना नहीं चाहता। अब आज सुहृद-भाव से और बल के प्रभाव से तुम्हारे समान मेरा कोई नहीं है। अब तुम शत्रु को मारने और विजय पाने के लिए जाओ। मैंने इसी लिए तुमको जगवाया था और राक्षसों के लड़ने का समय भी यही है। हाथ में फन्दा लिये हुए यमराज की तरह तुम हाथ में शूल लेकर जाओ और वानरों को तथा सूर्य की तरह तेजस्वी दोनों भाइयों को खा जाओ। हे भाई, तुम्हारी तो सूरत देखकर ही वानर भाग जायँगे और दोनों भाइयों के हृदय मारे डर के फट जायँगे। इस तरह कुम्भकर्ण से अपना मतलब कहकर रावण ने अपना पुनर्जन्म माना। एक तो वह कुम्भकर्ण के बल का अन्दाज़ा जानता था, दूसरे उसका उत्साह देखकर वह निर्मल चन्द्रमा की तरह बहुत ख़ुश हुआ।

अब कुम्भकर्ण ने काले लोहे से बना हुआ अपना बड़ा भारी शूल उठाया। सोने से सजा हुआ वह शूल इन्द्र के वज्र के तुल्य भारी और देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व तथा नागों को छेदनेवाला था। वह लाल माला से भूषित त्रिशूल अग्नि की चिनगारियाँ फेंकता हुआ, शत्रु के रक्त से लाल-लाल रँगा हुआ था। उस शूल को हाथ में लेकर वह कहने लगा—"राजन्! मैं अकेला ही जाऊँगा, सेना का कुछ काम नहीं है। मैं इस समय भूखा भी हूँ इसलिए वानरों को खा जाऊँगा।" कुम्भकर्ण की बातें सुनकर रावण ने कहा—"नहीं भाई, शूल और मुद्गरों से लड़नेवाले सेना के वीरों को साथ लेते जाओ; क्योंकि वानर बड़े बली, शूर, और उद्योगी हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे तुमको मस्त देखकर दाँतों से काट-कूटकर ठिकाने लगा दें। इसलिए बड़ी लड़ाकू सेना साथ लेकर शत्रुओं को मारो।" अब रावण अपने आसन से उठा और मणि की माला लेकर उसने कुम्भकर्ण के गले में डाल दी। रावण ने उसको बाजूबन्द, अँगूठियाँ, अच्छे-अच्छे चमकीले भूषण, चन्द्रमा के समान चमकीले हार और अच्छी सुगन्धित फूलों की मालाएँ तथा कानों में कुण्डल पहना दिये। उस समय सोने के बाज़ू (केयूर) और दूसरे आभूषणों से शोभायमान बड़े-बड़े कानोंवाला कुम्भकर्ण हवन की हुई अग्नि की नाईं जाज्वल्यमान हो गया। उसकी कमर में करधनी का काला डोरा ऐसा जान पड़ता था मानों समुद्र से अमृत मथते समय साँप से लपेटा हुआ मन्दराचल हो। कुम्भकर्ण ने सोने का बना हुआ बड़ा भारी कवच पहना। इस कवच की चमक बिजली की सी थी। वह अपने तेज के प्रभाव से दमक रहा था। उसका भेदन कोई न कर सकता था; उसमें तो हवा तक न जा सकती थी। इस कवच को पहनने से सन्ध्या समय के बादलों से रँगे हुए हिमालय पर्वत के समान कुम्भकर्ण की अपूर्व शोभा हुई। सब अङ्गों में भूषण पहने हुए और हाथ में शूल लिये

हुए वह राक्षस उस समय ऐसा देख पड़ता था जैसे तीन पैर पृथ्वी के नापने में नारायण देख पड़ते थे।

अब कुम्भकर्ण भाई से मिला। उसकी प्रदक्षिणा करके और उसे प्रणाम कर वह युद्ध के लिए चला। रावण ने उसे अच्छे-अच्छे आशीर्वाद दिये और शङ्ख तथा तुरही बजवाकर बिदा किया। उसके साथ अच्छे हथियारोंवाली सेना चली। बड़े-बड़े राक्षस हाथियों और मेघ के तुल्य गरजते हुए रथों पर चढ़कर चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चले। बाक़ी राक्षस साँप, ऊँट, गदहा, सिंह, हाथी, मृग और पक्षियों पर चढ़कर उसके साथ गये। उस समय उसके ऊपर फूल बरसाये गये। सिर पर छत्र लगने से शोभायमान, बड़ा तेज शूल लिये हुए, महादारुण रक्त के गन्ध से मस्त, देवों और दानवों का शत्रु कुम्भकर्ण लङ्का से निकल पड़ा। इसके साथ बहुत से पैदल राक्षस भी थे। उन गरजनेवाले महाबली राक्षसों के हाथों में शस्त्र थे। उनकी आँखें लाल-लाल थीं। वे बड़े लम्बे-चौड़े, और नील अञ्जन के ढेर के समान देख पड़ते थे। वे शूल, तलवार, परश्वध, गोफिया, परिघ, गदा, मूसल और तालस्कन्ध नामक अस्त्रों को और फेंकने के ख़ास-ख़ास हथियारों को ताने हुए थे। युद्ध-यात्रा के समय कुम्भकर्ण का रूप भयङ्कर और दारुण देख पड़ता था। इसके शरीर की चौड़ाई सौ धनुष (चार सौ हाथ) और ऊँचाई छः सौ धनुष (दो हज़ार चार सौ हाथ) थी। गाड़ी के पहियों के समान भयङ्कर उसकी आँखें थीं। बड़े पर्वत के आकारवाला वह राक्षसों के साथ मिलकर चला। उस समय वह जले हुए पर्वत की नाईं देख पड़ता था। वह हँसकर राक्षसों से कहने लगा—"देखो, आज मैं वानरी सेना को ऐसे भस्म कर डालूँगा जैसे आग पतङ्गों को भस्म कर देती है; परन्तु वे बेचारे तो हमारी कुछ भी हानि नहीं करते। वे तो हमारे जैसे पुरुषों के नगरों और फुलवाड़ियों के भूषण हैं। हमारे नगर को घेरनेवाले तो वे दोनों भाई हैं। उनको मार डालने से सब मरे ही से हैं। इसलिए मैं उन्हीं दोनों को मारूँगा।" कुम्भकर्ण की ये बातें सुनकर उसके साथ के राक्षस ऐसे गरजे मानों समुद्र को खलबला देंगे।

कुम्भकर्ण के चलते समय बड़े अशकुन हुए। उल्का और बिजली के साथ बादल लाल दिखाई देने लगे। भूकम्प हुआ। घोर रूप गिदड़ियाँ मुँह में अङ्गारे और घास के तिनकों के ग्रास लिये हुए ज़ोर से चिल्लाने लगीं। पक्षी उलटी प्रदक्षिणा करने लगे। एक गीध इसके शूल पर आ गिरा। इसकी बाईं आँख और भुजा फड़कने लगी। जलती हुई बड़ी भारी उल्का भयङ्कर शब्द के साथ आकाश से इसके सामने गिरी। सूर्य की चमक जाती रही। असुखकारी हवा चलने लगी। इन उत्पातों की ओर ज़रा भी नज़र न करके मृत्यु का भेजा हुआ कुम्भकर्ण चला ही जाता था। पर्वताकार कुम्भकर्ण पैदल ही क़िले की दीवाल लाँघकर बाहर आया तो उसने मेघमण्डल के समान वानरी सेना को देखा। वे वानर, पर्वताकार राक्षस को देखते ही, हवा से उड़ाये हुए बादलों की तरह चारों ओर भागने लगे। वानरों की सेना को भागते देख कुम्भकर्ण बड़े ज़ोर से गरजा। उसकी गर्जना सुनते ही बहुत से वानर मूर्छित होकर ज़मीन पर ऐसे लोट गये जैसे जड़ से कटे हुए वृक्ष धमाधम गिरते हैं।

दोहा

भये त्रास-वश कपि सकल, कुम्भकर्ण कहँ देखि।
जिमि युगान्त महँ रुद्र कहँ, काल दण्डधर पेखि॥

---

६६ वाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का युद्ध।

अब कुम्भकर्ण बिजली की कड़क की तरह अपनी गर्जना से गाज गिरने की सी सूचना कराता और पर्वतों को ढहाता हुआ सा सेना में पहुँचा। उसको देखते ही वानर चारों ओर भागने लगे। नील, नल, गवाक्ष और कुमुद को भागते देख अङ्गद ने कहा--"हे वानरो! तुम अपने पराक्रम और कुल को भूल-भूलकर इस तरह भाग रहे हो जैसे छोटे-छोटे वानर भागते हैं! वाह! क्या अपने प्राण बचाना चाहते हो? देखो, यह राक्षस बड़ा योद्धा नहीं है। इसकी तो सिर्फ़ सूरत डरावनी है। यह राक्षसों की ओर से एक विभीषिका (डराने की चीज़) मात्र है। हम लोग अपनी बहादुरी से इसका विध्वंस कर डालेंगे। तुम सब लौट आओ।" अङ्गद की बात सुनकर वे बड़े कष्ट से लौटे। फिर वृक्ष ले-लेकर वे युद्ध के लिए तैयार हुए। क्रोध में भरकर, पागल हाथी की नाईं, वे कुम्भकर्ण पर चोटें करने लगे। उस समय वह बड़े-बड़े पर्वत के शिखरों, पत्थरों और फूले हुए बड़े-बड़े वृक्षों से मारा जाता था; पर उसने चूँ तक नहीं की। उलटे वे पत्थर और वृक्ष ही उसके शरीर की टक्कर खाकर टूट-फूटकर ज़मीन पर गिर पड़ते थे। उस समय वह वानरी सेना का नाश ऐसे कर रहा था जैसे आग जङ्गल का नाश करती है। बहुत से प्रधान वानर ख़ून से सने हुए संग्राम-भूमि में इस तरह सो गये मानो लाल फूल-वाले वृक्ष पड़े हों। उसकी मार से वानर इतने ज़ोर से भाग रहे थे कि उनको अपने पैरों-तले की किसी चीज़ का ख़याल भी न होता था। कितने ही वानर तो समुद्र में जाकर कूद पड़े; बहुत से जङ्गलों में भाग गये और बहुत से जिस रास्ते से इस पार आये थे उसी रास्ते पर भागते चले जाते थे। बहुत से मारे डर के गड्ढों में घुस गये और उनके मुँह का रङ्ग बदल गया। भालू पर्वतों और वृक्षों पर चढ़ गये। बहुत से गिर पड़े और बहुत से वहाँ खड़े भी न रह सके। बहुत से मुर्दे की तरह ज़मीन पर सो गये।

जब अङ्गद ने वानरों को भागते देखा तो ललकारकर कहा—अच्छा, अब तुम ठहर जाओ; हम युद्ध करेंगे। तुम लोग भागकर कहाँ जाओगे? समस्त पृथ्वी घूमोगे तो भी तुम्हें ठौर मिलना कठिन है, इसलिए लौट आओ। क्या तुम प्राण बचाकर भागे जाते हो? तुम तो बड़े वेगवान् और पराक्रमी कहलाते हो! अरे! हथियार छोड़कर भागे जाते हो! तुमको इस तरह देखकर तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी हँसी करेंगी। फिर तुम तो ऐसे कुल में पैदा हुए हो जो बहुत विस्तृत और बड़ा कहलाता है। तुम छोटे वानरों की नाईं क्यों भागे जाते हो? हे छोटी बुद्धिवालो! तुम तो ऐसे डर गये हो कि अपना बल छोड़कर भाग रहे हो। चार मनुष्यों के सामने तुमने जो बड़ी-बड़ी बातें मारी थीं वे इस समय कहाँ गईं? तुम तो बड़े ज़ोर से डींग हाँकते थे और उसी में अपनी भलाई समझते थे। अरे वीर वानरो! युद्ध में डरपोक मनुष्य की बड़ी निन्दा

सुनी जाती है। लोग कहते हैं कि जो युद्ध में डरकर भाग जावे उसके जीवन को धिक्कार है। इसलिए तुम अच्छे मनुष्यों के मार्ग पर चलो। डर छोड़ दो। चिन्ता ही क्या है? बहुत होगा तो यही कि हम मारे जावेंगे और ज़मीन पर सो जायँगे। ऐसा होने पर हम उस ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे जो डरपोकों को मिलना कठिन है। यदि हम शत्रु को मारेंगे तो संसार में नाम होगा। हे वानरो! मारे जाने पर भी हम वीर-लोक के ऐश्वर्य को भोगेंगे। यह कुम्भकर्ण राम को पाकर जीता हुआ न जायगा, जैसे जलती हुई आग को पाकर पतङ्ग की कुशल नहीं होती। देखो, भागकर जो हम अपने प्राण बचावेंगे तो लोग यही कहेंगे कि एक कुम्भकर्ण ने बहुतों को मारकर भगा दिया। ऐसा होने से हमारी कीर्त्ति नष्ट हो जायगी।

अङ्गद के इस तरह समझाने पर भागते हुए वानरों ने शूर मनुष्यों से निन्दित बात कही—"भाई! कुम्भकर्ण ने हमको बहुत मारा इसलिए यह समय हमारे ठहरने का नहीं है। हम तो जायँगे। हमको प्राण प्यारे हैं।" इस तरह कहकर वे कुम्भकर्ण को देखते हुए भागते जाते थे। परन्तु अङ्गद ने फिर भी बड़े प्रयत्न से उन्हें समझा-बुझाकर और आदर-सत्कार करके लौटाया तथा प्रसन्न किया। तब वे बालिपुत्र की आज्ञा पर ठहरे। फिर ऋषभ, शरभ, मैन्द, धूम्र, नील, कुमुद, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद, पनस और वायुपुत्र, ये सब दुबारा युद्ध के लिए तैयार हुए।

दोहा

कुम्भकर्ण कहँ देखि सब, वानर भागे जानि।
बालिपुत्र रण-बाँकुरा, फिर सनमाने आनि॥

६७ वाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का महाघोर युद्ध करना और मारा जाना।

अङ्गद की बातें सुनकर सब वानर लौट आये और युद्ध करने के लिए तैयार होकर अपने-अपने पराक्रम का वर्णन करने लगे। अङ्गद के समझाने से स्थिर-चित्त और प्रसन्न हो, मरने का निश्चय करके, वे घोर युद्ध करने लगे। उन्होंने वृक्षों और पर्वतशिखरों को उखाड़-उखाड़कर कुम्भकर्ण पर धावा किया। वह भी अपनी गदा उठाकर चारों ओर से वानरों को मारने लगा। उसकी मार से सात सौ, आठ सौ और हज़ार-हज़ार वानर चूर होकर ज़मीन पर सो गये। फिर वह आठ, दस, सोलह, बीस और तीस वानरों को उठाकर खाने लगा। वह खाते-खाते इधर-उधर ऐसा दौड़ रहा था जैसे गरुड़ साँपों को खाते हुए इधर-उधर डोलते-फिरते हैं। अब वानर बड़ी कठिनाई से धीरज धरकर हाथों में वृक्ष और पर्वतों को ले-लेकर संग्राम में खड़े हुए। फिर द्विविद ने एक पर्वत उखाड़कर हाथ में लिया और लटकते हुए बादल की तरह दौड़कर कुम्भकर्ण पर बड़े ज़ोर से फेंका। परन्तु वह कुम्भकर्ण तक न पहुँचकर राक्षसी सेना में जा गिरा। उसने घोड़ों, हाथियों और रथों को चकनाचूर कर डाला। इसके बाद कपि ने फिर भी एक पर्वत-शिखर उसकी सेना पर चलाया। उससे भी बहुत से घोड़े, रथ और सारथि नष्ट हुए। अब उस युद्धभूमि में राक्षसों के ख़ून से कीचड़ मच गई। वहाँ ख़ून ही ख़ून दिखाई देने लगा। रथी राक्षस भी बड़े काल

कुम्भकर्ण-वध ।

के समान गरजते हुए बाणों से वानरों के सिर काट डालते और बड़ा डरावना शब्द करते थे। वानर भी बड़े-बड़े वृक्षों से रथों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों और राक्षसों को पीस डालते थे।

इतने में हनुमान् आकाश में ठहरकर कुम्भकर्ण के सिर पर पर्वत के शिखरों की, पत्थरों की, और अनेक तरह के वृक्षों की वर्षा करने लगे। परन्तु वह अपने शूल से उन वृक्षों और पर्वतों को चूर करता जाता था। थोड़ी देर में वह राक्षस शूल लिये वानरी सेना पर झपटा। उसी समय वायुपुत्र हनुमान् एक पर्वत लेकर उसके पास आ खड़े हुए। उन्होंने शिखर से उसे ख़ूब मारा। उसकी चोट से वह घबरा गया और रक्त तथा चरबी से नहा उठा। तब उसने भी बिजली के समान अपने शूल से हनुमान् की छाती में इस प्रकार चोट की, जैसे आग से जलता हुआ पर्वत अपने शिखर को फेंके; या जैसे स्वामिकार्त्तिक ने अपनी शक्ति से क्रौञ्चपर्वत को फोड़ा था। शूल की चोट से हनुमान् की छाती विदीर्ण हो गई। वे बहुत विह्वल हो गये, उनके मुँह से रक्त निकलने लगा। फिर वे बड़े ज़ोर से प्रलय समय के मेघ की नाईं गरज उठे। हनुमान् को पीड़ित देखकर राक्षस बड़ा हर्षनाद करने लगे और वानर दुखी हुए। वे डरकर कुम्भकर्ण के पास से भागने लगे। अब नील ने सेना को समझाया और एक पर्वत का टुकड़ा कुम्भकर्ण के ऊपर फेंका। उसे आते देख उसने घूँसे से उसका चूरा कर डाला। घूँसे की चोट से पर्वत के टुकड़े में से चिनगारियाँ और ज्वाला निकल पड़ी।

अब तो ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन ये पाँचों वीर वानर कुम्भकर्ण पर टूट पड़े; और पर्वतों, वृक्षों, लातों और मुक्कों से उसे मारने लगे। परन्तु इन सबकी मार को वह सुखस्पर्श ही समझता था। इसके बाद उसने अपनी भुजाओं से ऋषभ को ऐसा दबाया कि वह बहुत पीड़ित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसके मुँह से ख़ून बहने लगा। फिर राक्षस ने घूँसे से शरभ को, घूँटे से नील को और थपेड़े से गवाक्ष को मारा जिससे वे सब पीड़ित होकर मूर्च्छित हो गये और रक्त से नहा उठे। वे ज़मीन पर ऐसे गिर पड़े जैसे कटे हुए टेसू के वृक्ष गिर पड़ते हैं। मुख्य वानरों को परास्त हो गिरते देखकर हज़ारों वानर एक साथ कुम्भकर्ण पर टूट पड़े। वे पर्वताकार राक्षस के ऊपर कूदकर चढ़ गये और दाँतों से उसे काटने लगे। उन्होंने उस समय नाख़ूनों, दाँतों, घूँसों और भुजाओं से राक्षस को विदीर्ण कर डाला। जब उस पर वानर चढ़ गये तब वह ऐसा मालूम होता था मानों अपने ऊपर लगे हुए वृक्षों से पर्वत शोभायमान हो। अब वह दोनों भुजाओं से वानरों को पकड़-पकड़कर फङ्का मारने लगा। उसका मुँह एक पाताल ही था। वानर उसकी नाक के छेदों से और कानों से निकल आये। फिर भी उसने वानरों का खाना और क्रोधपूर्वक उनको मारना नहीं छोड़ा। वह वानरी सेना में मांस और रक्त का कीचड़ करता हुआ, प्रज्वलित कालाग्नि की नाईं, घूमने लगा। जैसे हाथ में वज्र लिये इन्द्र और फाँसी लिये यम देख पड़ते हैं उसी तरह शूल लिये हुए कुम्भकर्ण मालूम पड़ता था। जैसे गरमी में सूखे जङ्गल को आग जला डालती है वैसे ही कुम्भकर्ण वानरी सेना को जला

रहा था। अब तो झुण्ड के झुण्ड मारे जाने पर वानर बहुत डर गये और बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे। उसने बहुतेरे वानरों को मार गिराया। जो बच रहे वे बड़े दुखी थे। किसी तरह सचेत होकर वे रामचन्द्रजी की शरण में गये।

वानरों को इस तरह भागते देख हाथ में पर्वत का एक खण्ड लेकर अङ्गद कुम्भकर्ण पर दौड़े। वे बार-बार गरजते तथा कुम्भकर्ण के साथी राक्षसों को डरवाते जाते थे! बड़ी जल्दी जाकर उन्होंने बड़े ज़ोर से वह टुकड़ा कुम्भकर्ण के सिर पर पटक दिया। उसकी चोट खाकर वह राक्षस क्रोध से प्रज्वलित हो अङ्गद के ऊपर दौड़ा। अपनी बड़ी गर्जना से वानरों को डरवाकर उसने अङ्गद पर अपना शूल चलाया। अङ्गद भी बड़े पैंतड़ेबाज़ थे। इन्होंने उसकी चोट बचाकर और कूदकर कुम्भकर्ण की छाती में एक लात मारी। लात की चोट से वह पर्वताकार राक्षस मूर्च्छित हो गया। थोड़ी देर में जब वह सावधान हुआ तब उसने हँसकर अङ्गद को एक मुक्का मारा। उस मुक्के के मारे वे मूर्च्छित हो ज़मीन पर गिर पड़े। इनको मूर्च्छित देखकर कुम्भकर्ण शूल लिये सुग्रीव पर दौड़ा। राक्षस को झपटते देखकर सुग्रीव कूद पड़े। एक पर्वत का टुकड़ा उखाड़कर उसे घुमाते हुए वे कुम्भकर्ण पर दौड़े। उस समय कुम्भकर्ण अपने शरीर को फैलाकर सुग्रीव के पास खड़ा हो गया। तब सुग्रीव ने कहा—अरे राक्षस! तूने बहुत वीरों को मार गिराया और बड़ा कठिन काम किया। तूने सेना को भक्षण कर डाला और बड़ी कीर्ति पाई। अब वानरों को छोड़ दे। छोटों से क्या लड़ता है! मेरे इस पर्वत का प्रहार सह।

सुग्रीव की बातें सुनकर राक्षस ने कहा—हे कपे! तू प्रजापति का पौत्र, ऋक्षरजा वानर का पुत्र है तथा धैर्य और पुरुषार्थवाला है; इसी से गरज रहा है।

राक्षस की बात सुनकर कपिराज ने उस वज्र-तुल्य पर्वतशिखर को कुम्भकर्ण की छाती पर दे मारा। परन्तु वह शिखर उसकी बड़ी छाती से टकराकर चूर-चूर हो गया। यह देखकर वानर बड़े दुखी हुए और राक्षस खिलखिलाने लगे। फिर पर्वत की चोट से क्रुद्ध हो वह मुँह फैलाकर गरजा; उसने अपना शूल घुमाकर सुग्रीव पर चलाया। उस शूल को सुग्रीव पर आते देख हनुमान् ने कूद-कर बीच में ही उसे पकड़कर तोड़ डाला। यह बड़ा अद्भुत काम हुआ; क्योंकि वायुपुत्र ने हज़ार भार* लोहे से बने हुए शूल के दो टुकड़े सहज में कर दिये। उनकी यह बहादुरी देख वानरी सेना ख़ुशी में फूलकर शोर करने लगी और चारों ओर से घिर आई। इनके सिवा और-और वानर भी ख़ुश होकर सिंहनाद करने और वायु-पुत्र की सराहना करने लगे। अब कुम्भकर्ण ने शूल को टूटा-फूटा देखकर क्रुद्ध हो लङ्का के पर्वत से एक टुकड़ा उखाड़कर उससे सुग्रीव को मारा। उसकी चोट से वे अचेत हो ज़मीन पर गिर पड़े। उनकी ऐसी दशा देखकर राक्षस हर्षनाद करने लगे। हवा जैसे अपने ज़ोर से मेघों को उड़ा देती है इसी तरह कुम्भकर्ण ने वानरराज को गिराकर फिर उन्हें दोनों हाथों से उठा लिया। सुग्रीव का आकार भी महाघोर मेघ के तुल्य था, और राक्षस भी पर्वताकार था। अब वह उनको

* एक भार = अढ़ाई मन।

लेकर चला। उस समय ऐसा मालूम हुआ मानो शिखरों-सहित मेरु पर्वत चलता हो। राक्षस उसकी प्रशंसा कर रहे थे और वह सुग्रीव को लिये हुए चला जाता था। इधर वानरराज के पकड़े जाने से देवता लोग विस्मित हो कोलाहल कर रहे थे और उधर वह इन्द्र का शत्रु इन्द्र के तुल्य पराक्रमी सुग्रीव को लिये हुए अपने मन में सोचता जाता था कि इसके मारे जाने से बाक़ी इसके साथी मारे गये ही के समान हैं। उधर वानरी सेना भी सुग्रीव की यह दशा देखकर भाग चली।

हनुमान् सोचने लगे कि मुझे क्या करना चाहिए। इस समय जो न्याय्य है वही मैं करूँगा। वह यह कि मैं पर्वताकार बनकर इस राक्षस को मार गिराऊँगा और उससे वानरराज को छीन लूँगा। उस समय ये वानर ख़ुश हो जायँगे। अथवा यह प्रयत्न करना ही क्यों चाहिए। वे आप ही अपने को छुड़ा लेंगे। चाहे देवता, दैत्य या नाग भी उन्हें पकड़ लें तो भी वे अपने को छुड़ा सकते हैं। परन्तु अब तक वे कुछ भी सगबगाते क्यों नहीं! इसका कारण यह मालूम होता है कि उन्हें कुम्भकर्ण के हाथ से पहाड़ की बड़ी भारी चोट लगी है। फिर भी थोड़ी ही देर में वे सचेत हो अपने लिए और वानरों के विषय में जो हित की बात होगी वही करेंगे। मैं तो उनको छुड़ा सकता हूँ, पर पीछे से उनको इससे बुरा लगेगा। वे अप्रीति मानने लगेंगे और यश में बट्टा लगेगा। अब थोड़ी देर प्रतीक्षा करूँगा और छूटने पर उनका पराक्रम भी देखूँगा। तब तक इन वानरों को समझाना अच्छा होगा। इस तरह सोच-विचारकर हनुमान् तितर-बितर हुई सेना को ठिकाने ले आये।

उधर कुम्भकर्ण हाथ-पैर फेकते हुए वानरराज को लिये हुए लङ्का में पहुँचा। वहाँ अटारियों के, राजमार्गों के, सामान्य घरों के और फाटक पर रहनेवाले मनुष्यों ने कुम्भकर्ण की तारीफ़ कर उस पर फूल बरसाये। उस समय वहाँ के राजमार्ग सुगन्धित चीज़ों और ठण्डे पानी से सींचे गये थे; वहाँ लावा फेके गये थे। इसलिए धीरे-धीरे उनकी ठण्डक पाकर महाबलवान् सुग्रीव कष्ट से कुछ सचेत हुए। उन्होंने अपने को कुम्भकर्ण की बग़ल में देखा और राज-मार्ग की ओर दृष्टि की। अब वे बार-बार मन में सोचने लगे कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। इसने निस्सन्देह मेरा बड़ा भारी तिरस्कार किया है। अब मैं ऐसा काम करूँगा जिससे वानरों की भलाई और इष्टसाधन हो।

इस तरह सोच-विचारकर सुग्रीव ने अपने पैने-पैने नाख़ूनों से तो कुम्भकर्ण के कान और दाँतों से उसकी नाक काटकर गिरा दी और पैरों के नाख़ूनों से उसकी दोनों ओर की पसलियाँ विदीर्ण कर डालीं। उस समय कुम्भकर्ण बिना नाक-कान का हो गया। शरीर भी उसका अत्यन्त विदीर्ण हो गया। वह मेद और रक्त के मारे नहा उठा। अपनी बुरी हालत देख वह सुग्रीव को पकड़कर ज़मीन पर पीसने लगा। उसके साथी राक्षस भी उन पर चोट करने लगे; परन्तु वे भी लड़ने में एक ही थे। उसके हाथ से छूटकर गेंद की तरह वे आकाश में उड़ गये और राम के पास आ पहुँचे।

वह दुष्ट राक्षस नकटा और बूचा होकर इस तरह ख़ून बहा रहा था जैसे पर्वत अपने झरने बहाता है। उस समय वह रक्त से सना हुआ

और ख़ून के फुहारे उड़ाता हुआ सन्ध्या के काले बादलों की नाईं देख पड़ता था। मारे डाह के वह फिर लड़ने के लिए चला। अपने को शस्त्र-रहित देख उसने एक बड़ा भारी मुद्गर हाथ में लिया। वह वानरों की सेना में घुस गया। प्रलय-काल की आग की नाईं वह वानरों को खाने लगा। उस समय वह केवल वानरों को ही न खाता था किन्तु राक्षसों, पिशाचों और भालुओं को भी पकड़-पकड़कर मुँह में डालने लगा। उस समय तो वह रक्त और मांस का भूखा था। उसे अपने और पराये सूझ नहीं पड़ते थे। जो हाथ में आ गया उसी को उसने चबा डाला। एक, दो, तीन या बहुत से वानरों को वह राक्षसों-सहित एक ही हाथ से जल्दी मुँह में डाल लेता था। वीर वानर बड़े-बड़े पर्वत-शिखरों और वृक्षों से उसे मार रहे थे। उसके शरीर से मज्जा और रक्त बराबर बह रहा था पर वह खाता ही जाता था।

अब वानर डरकर रामचन्द्र की शरण में गये और कहने लगे—प्रभो! कुम्भकर्ण हम लोगों को खाता हुआ इधर-उधर दौड़ रहा है। वह सात, आठ, बीस, तीस और सौ वानरों को पकड़-पकड़-कर खा लेता है। इसकी दशा देखिए कि मेद, मज्जा और रक्त से तो नहा उठा है और उसके कानों पर अँतड़ियाँ लटक रही हैं, फिर भी तीखे दाँत निकाले हुए शूल बरसा रहा है, मानो युग के अन्त का काल हो।

उस समय लक्ष्मण क्रुद्ध हो गोह के चमड़े से बने हुए दस्ताने पहनकर युद्ध करने लगे। उन्होंने कुम्भकर्ण को सात बाण मारे। फिर और भी बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाये। वे विशेष बाण थे। उनसे वह राक्षस कुछ पीड़ित हुआ। फिर लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर बाणों से उसके सोने के बने हुए कवच को ऐसे ढक दिया जिस तरह सन्ध्या समय के मेघ को हवा ढक लेती है। परन्तु वह पर्वताकार काला-काला राक्षस बाणों से ढक जाने और पीड़ित होने पर भी, बादलों से ढके हुए, सूर्य की तरह शोभायमान हुआ। वह मेघ की गर्जना के समान गरजकर लक्ष्मण से अनादर-पूर्वक कहने लगा—देखो, मैं बिना ही कष्ट के यम-राज को जीत लेता हूँ। तुम निडर होकर मुझ पर चोट करो। तुमने वीरता दिखला दी; क्योंकि जब मैं हाथ में शस्त्र लेता हूँ तब मृत्यु के तुल्य भय-ङ्कर हो जाता हूँ। उस समय मेरे पास जो खड़ा भी रहता है वह भी धन्यवाद के योग्य है। युद्ध करनेवाले की तो बात ही क्या। देखो, ऐरावत पर सवार और देवताओं से घिरे हुए इन्द्र भी मेरे पास कभी खड़े नहीं रह सके। हे सुमित्रानन्दन! आज मैं तुम्हारे बल और पराक्रम से बहुत ख़ुश हुआ। अब मैं तुमको शाबाशी देकर राम के पास जाना चाहता हूँ। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे वीर्य, बल और पराक्रम से सन्तुष्ट हो गया। अब मैं केवल एक राम को ही मारना चाहता हूँ जिसके मारे जाने से सब मरे हुओं के समान हो जायँगे। यदि मैं राम को मार लूँगा तो फिर बचे हुओं के साथ मैं अपने मथन करनेवाले पराक्रम से युद्ध करूँगा।

जब राक्षस ने स्तुति करके चुभती हुई बातें कहीं तब लक्ष्मण हँसते हुए कोमल वाणी से बोले—हे वीर! इन्द्र आदि देवता मेरे पराक्रम को नहीं सह सकते—यह जो तुमने कहा वह ठीक ही कहा। इसमें कुछ सन्देह नहीं। भला हुआ

जो आज मैंने भी तुम्हारा पराक्रम देख लिया। देखो, पर्वत की नाईं अचल ये ही रामचन्द्र खड़े हैं। लक्ष्मण की ये बातें सुनकर वह राक्षस अनादर-पूर्वक उनका सामना छोड़कर ज़मीन को कँपाता हुआ राम के ऊपर दौड़ा। उस समय उसको अपनी ओर आते देख राम ने रौद्र अस्त्र का प्रयोग किया और उसके हृदय में बड़े पैने-पैने बाण मारे। परन्तु वह बाणों की चोट खाता हुआ भी रामचन्द्र के पास जाने को दौड़ता ही रहा। क्रोध के मारे उसके मुँह से चिनगारियाँ निकल रही थीं। राम के अस्त्र से बिंधकर उसने बड़ा भयङ्कर शब्द किया। क्रोध के मारे वानरों को खदेड़ता तथा उन्हें तितर-बितर करता हुआ वह रामचन्द्र के ऊपर दौड़ा चला जाता था। परन्तु मोर के पङ्खवाले बाणों ने उसकी छाती में घुसकर ऐसी पीड़ा पहुँचाई कि उसके हाथ की गदा छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसके हाथ में जो और-और अस्त्र थे वे भी ज़मीन पर गिरकर इधर-उधर बिखर गये। जब वह शस्त्रहीन हो गया तब घूँसों और थपेड़ों से ही नाश करने लगा। लड़ते-लड़ते श्रीराघव के बाणों से उसके सब अङ्ग छिद गये और वह ख़ून से नहा उठा। उसके शरीर से रक्त ऐसे ज़ोर से बह रहा था जैसे पर्वत से झरना बहता है। फिर भी मारे क्रोध के, मूर्च्छित की तरह, वह वानरों, राक्षसों और भालुओं को खाता हुआ दौड़ रहा था। थोड़ी देर में उसने पर्वत का एक टुकड़ा उठाकर राम के ऊपर फेक दिया। राम ने सात बाणों से टुकड़े करके उसको ज़मीन पर गिरा दिया। फिर धनुष चढ़ाकर बाणों से राम ने उसके सोने के बने कवच को काट गिराया। वह कवच मेरु के शिखर के तुल्य था और चमक रहा था। जब वह ज़मीन पर गिरा तब उसके नीचे दबकर दो सौ वानर मर गये।

उस समय लक्ष्मण भी कुम्भकर्ण के मारने के लिए अनेक उपाय सोच रहे थे। उन्होंने रामचन्द्र से कहा—"महाराज! इस समय यह राक्षस रक्त की गन्ध से मतवाला हो गया है। न तो यह वानरों को पहचानता है और न राक्षसों को। इसे अपने और पराये का कुछ ख़याल नहीं है। दोनों को ही पकड़-पकड़कर खा रहा है। इसलिए यदि वानर और सेनापति, इकट्ठे इसके शरीर पर चढ़ जायँ तो यह दुष्टबुद्धि मारे बोझ के पीड़ित होकर और वानरों को न मारेगा।" लक्ष्मण के मुँह से निकलते ही वानर ख़ुश हो कूदकर उसके ऊपर चढ़ गये। परन्तु कुम्भकर्ण ने क्रुद्ध हो बड़े ज़ोर से ऐसे झड़झड़ा दिया जैसे दुष्ट हाथी महावतों को फेक देता है। जब रामचन्द्र ने देखा कि राक्षस क्रोध से मतवाला हो गया है तब उन्होंने अपना धनुष सजाया। वे क्रोध से लाल आँखें करके, मानों उसको जलाते हुए, बड़े वेग से उस पर दौड़ पड़े। साँप की नाईं मज़बूत प्रत्यञ्चा से बँधे और सोने से चित्रविचित्र धनुष को हाथ में लेकर, कुम्भकर्ण से सताये हुए वानरों को समझाते और ख़ुश करते हुए तथा बाणों से भरे हुए तरकस को लिये हुए, वे राक्षस पर दौड़े। उस समय बड़े-बड़े दुर्जय वानर महाराज को घेरे हुए साथ-साथ चले। लक्ष्मण भी पीछे-पीछे चलने लगे। आगे जाकर राम ने देखा कि महाबली कुम्भकर्ण मुकुट पहने और लाल आँखें किये हुए वानरों को मार रहा है। वह सबके ऊपर दिग्गज की तरह दौड़ रहा है।

वह वानरों को खोजता फिरता है और राक्षस उसे घेरे हुए हैं। आकार में वह विन्ध्याचल और मन्दराचल के समान है। सोने के बाज़ूबन्द पहने हुए वह बरसनेवाले बादलों की तरह मुँह से रक्त की धारा बहा रहा है और ख़ून से सने हुए ओठों के किनारों को जीभ से चाट रहा है। वह काल की नाईं वानरों का मर्दन करता और महा प्रज्वलित आग की तरह दिखाई दे रहा है।

इस दशा में उसे देखकर रामचन्द्र ने अपने धनुष का टङ्कार किया। टङ्कार का शब्द सुनते ही उसे असह्य हुआ। क्रोध के मारे जलता-भुनता हुआ वह राम पर दौड़ा। हवा से उड़ाये हुए बादल की तरह राक्षस को आते देख रामचन्द्र ने उससे कहा—"हे राक्षसराज! आओ, ख़ुशी से आओ; दुख मत करो। देखो, मैं धनुष लिये खड़ा हूँ। मैं राक्षसवंश का नाशक हूँ। थोड़ी देर में तुम्हें भी अचेत कर दूँगा।" राघव का इतना कहना सुनते ही उसने जान लिया कि यही राघव हैं। अब तो वह बड़े ज़ोर से खिलखिलाकर हँसा और वानरों को तितर-बितर करके रामचन्द्र पर दौड़ा। उस समय वह बादलों की कड़क की तरह ऐसे ज़ोर से हँसा कि वानरों का हृदय थर्रा गया। वह हँसता हुआ बोला—हे राम! तुम मुझे विराध न समझना; कबन्ध, खर, बाली और मारीच भी मुझे मत जान लेना। मैं कुम्भकर्ण हूँ। मेरा यह मुद्गर देखो। यह लोहे का है। इसी से मैंने देवताओं और दानवों को जीता है। बिना नाक-कान का देखकर मेरा अनादर न करना; क्योंकि इनके कट जाने से मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है। तुम मेरे ऊपर अपना पराक्रम दिखलाओ, फिर मैं तुमको खाऊँगा।

गर्वभरी कुम्भकर्ण की बातें सुनकर रामचन्द्र ने उस पर वज्र के समान बाण चलाये। परन्तु उनसे न तो वह तनिक भी हिला और न दुखी हुआ। आश्चर्य है कि जिन बाणों से बहुत से राक्षस मारे गये और बाली भी एक ही बाण से मर गया उन्हीं बाणों ने कुम्भकर्ण के शरीर को कुछ भी पीड़ित न कर पाया। उस समय वह राक्षस जलधारा की नाईं बाणधाराओं को पीता था और मुद्गर घुमा-घुमाकर राम के बाणों के वेग को बचाता था। इसके बाद वह राक्षस ख़ून से सना हुआ, देवसेना को डरानेवाला, अपना मुद्गर घुमाकर वानरों की सेना को भगाने लगा। तब तो रामचन्द्र ने वायव्य अस्त्र से बाण को अभिमन्त्रित करके, और उसकी भुजा को ताककर, ऐसा मारा कि मुद्गर-सहित उसकी भुजा कटकर गिर पड़ी। हाथ कट जाने पर वह बड़े ज़ोर से चिल्लाया। उसकी भुजा क्या थी, पर्वत का एक शिखर ही था। जब वह मुद्गर-सहित कटकर गिरी तब उससे बहुत सी वानरों की सेना मर गई। जो वानर मरने से बच गये वे भी अत्यन्त पीड़ित होकर किनारे खड़े हो गये और राम तथा कुम्भकर्ण के भयङ्कर संग्राम को देखने लगे। वह कुम्भकर्ण उस समय ऐसे पर्वत की नाईं दिखाई देता था जिसकी चोटी तलवार से काट ली गई हो। अब वह बायें हाथ से एक वृक्ष उखाड़कर महाराज पर झपटा। उस समय ऐन्द्रास्त्र का बाण लेकर रामचन्द्र ने उसके उस हाथ को भी काट गिराया। पर्वत के टुकड़े के समान उसका वह हाथ ज़मीन पर गिरकर छटपटाने लगा। उसके गिरने से वृक्ष, पर्वत के पत्थर, वानर और बहुत से राक्षस भी चूर-चूर हो गये। फिर जब राम-

चन्द्र ने देखा कि बाँहें कट जाने पर भी वह राक्षस बड़ा शोर मचाता हुआ चला ही आता है तब उन्होंने अर्द्धचन्द्राकार दो बाण तरकस से निकाले और उनसे उसके दोनों पैर काट डाले। उस समय उसके पैर दिशाओं, विदिशाओं, गुहाओं, समुद्र और लङ्का को प्रतिध्वनित कर तथा वानर और राक्षसों की सेना का मर्दन करते हुए धमाके से गिर पड़े। उसके हाथ भी कट गये और पैर भी कट गये। अब वह राक्षस क्या करे! तब वह बड़वानल के समान मुँह फैलाकर, गरजता हुआ, बड़े वेग से, चन्द्रमा पर राहु की नाईं, राम पर दौड़ा। महाराज ने बड़ी तेज धारवाले सोने से भूषित बाणों से उसका मुँह भर दिया। मुँह भर जाने से बोलना तो उसका बन्द हो गया पर गले से एक तरह की घरघराहट निकलती थी। उस वक्त उसे मूर्च्छा भी आ गई। अब रामचन्द्र ने सूर्य की किरण के समान जलता हुआ, ब्रह्मदण्ड और मृत्यु के समान असह्य, शत्रु का अशुभ करनेवाला, इन्द्र देवतावाला बड़ा पैना और हवा के तुल्य वेग से जानेवाला बाण निकालकर राक्षस पर छोड़ दिया। धनुष से छूटकर वह बाण दसों दिशाओं में प्रकाश करता और बिना धुएँ की जलती हुई आग की नाईं दिखाई देता हुआ वज्र के समान कुम्भकर्ण पर चला। बड़े पर्वत के शिखर के तुल्य दाँत बाये और मनोहर हिलते हुए कुण्डलोंवाले राक्षस का सिर उस बाण ने जाकर इस तरह काट गिराया, जिस तरह वृत्रासुर का सिर वज्र ने काट गिराया था। कुण्डलों-सहित कटा हुआ राक्षस का वह सिर ऐसा मालूम होता था जैसे सूर्योदय के समय आकाश में चन्द्रमा मालूम होता है—अर्थात् वह प्रभारहित हो जाता है। कटे हुए सिर ने लङ्का में उचटकर राजमार्गों के घर, फाटक और अटारियों को भी गिरा दिया। हिमालय के समान उसका धड़ समुद्र में गिरा। वहाँ बहुत से ग्राहों, मछलियों और साँपों को मथता हुआ वह ज़मीन में घुस गया।

ब्राह्मणों और देवताओं के शत्रु कुम्भकर्ण के मरते ही भूमि और पर्वत थरथरा उठे। देवता हर्ष-पूर्वक ज़ोर से बोलने लगे। देवर्षि, महर्षि, नाग, देवता, भूतगण, गरुड़ आदि पक्षी, गुह्य, यक्ष और गन्धर्व—ये सब रामचन्द्र के पराक्रम से बड़े प्रसन्न हुए। कुम्भकर्ण के मारे जाने से उधर राक्षसराज के बड़े-बड़े बन्धु हाय-हाय करके ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। वे रामचन्द्र को देखकर ऐसे डर गये जैसे सिंह को देखकर हाथी डर जाते हैं। देवलोक के अन्धकार के तुल्य कुम्भकर्ण को मारने पर वानरी सेना में रामचन्द्र की ऐसी शोभा हुई जैसे राहु के मुँह से छूटे हुए चन्द्रमा की होती है। वीर वानरों के मुँह खिले हुए कमल की नाईं देख पड़ने लगे। वे सब रामचन्द्र की स्तुति करने लगे। देव-सेना का मर्दन करनेवाले दुष्ट राक्षस को, जो बड़े-बड़े युद्धों में कभी हारा न था, मारकर रामचन्द्र भी इस तरह बड़े प्रसन्न हुए जिस तरह वृत्रासुर को मारकर इन्द्र प्रसन्न हुए थे।

---

६८ वाँ सर्ग

रावण का विलाप।

अब राक्षसों ने आकर कुम्भकर्ण के मारे जाने का हाल रावण को यों सुनाया—राजन्! काल के तुल्य वह तुम्हारा भाई कुम्भकर्ण मारा गया। महा-

राज! वह वानरी सेना को भगाकर, वानरों को खाकर और थोड़ी देर तप करके राम के तेज से शान्त हो गया। हे राक्षसाधिप! उसका आधा शरीर समुद्र में जा पड़ा। उसके नाक-कान वानरों ने काट डाले। उसके कुछ अङ्गों ने अपनी लङ्का के द्वार को रोक दिया। आपका वह भाई राम के बाणों से पीड़ित तथा हाथ-पैर-हीन होकर मर गया। उसका शरीर तितर-बितर हो गया। वन की आग से जले हुए वृक्ष की जो दशा होती है वही उसकी हुई।

महाबली कुम्भकर्ण के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय—ये सभी अपने चचा का मरना सुनकर दुखी हुए और रोने लगे। महोदर और महापार्श्व ने भी, अपने भाई का राम के द्वारा मारा जाना सुनकर, बड़ा शोक किया। इसके बाद बड़े दुःख से रावण साव-धान हुआ और दीनतापूर्वक विलाप करने लगा—हे वीर, हे शत्रुनाशक, हे महाबली कुम्भकर्ण! तुम मुझे छोड़कर यमलोक चले गये! अरे! मेरे और अपने भाइयों के काटे बिना निकाले और शत्रु की सेना को बिना पीड़ा पहुँचाये मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाते हो? हा! इस समय मैं नहीं सा हो गया; क्योंकि मेरी दहिनी भुजा काट दी गई, जिसके भरोसे मैं देवताओं और दैत्यों से बिलकुल न डरता था। ओहो! इतने बड़े वीर को राम ने किस तरह मारा, जो सुरों और असुरों के गर्व का नाश करनेवाला और कालाग्नि के समान था! अरे भाई, वज्र का प्रहार तो तुमको कभी पीड़ा ही न देता था, फिर तुम किस तरह राम के बाणों से इस दशा को पहुँचे! देखो, आकाश में खड़े होकर ये देव और महर्षि तुम्हारी मृत्यु सुन करके आनन्द मना रहे हैं। अपना मौक़ा देख ये सब वानर आज ही लङ्का के शिखरों और द्वारों पर ज़रूर चढ़ आवेंगे। अब राज्य से मुझे कुछ काम नहीं। सीता को लेकर मैं क्या करूँगा! अब मैं कुम्भकर्ण के बिना रह गया। मैं जीना नहीं चाहता। व्यर्थ जीने से क्या काम! आज मैं उसी देश में जाऊँगा जहाँ मेरा छोटा भाई गया है, क्योंकि भाइयों को छोड़कर जीने में मुझे उत्साह नहीं। हा! जिन देवताओं का मैंने पहले अपकार किया है वे मुझको देखकर मेरी हँसी करेंगे। हे कुम्भ-कर्ण! तेरे मरने से अब मैं इन्द्र को किस तरह जीतूँगा? देखो, विभीषण की वह अच्छी राय मुझे मिली थी जिसे अज्ञान के कारण मैंने स्वीकार नहीं किया। उसी को स्वीकार न करने से कुम्भकर्ण और प्रहस्त का यह भयानक विनाश मुझे दुःख दे रहा है। देखो, उसी बुरे काम के फल ने मुझे शोक में डाला, जो मैंने उस धार्मिक और श्रीमान् विभीषण को निकाल दिया।

दोहा

एहि विधि राक्षसराज तहँ, शोकाकुल बहु दीन।
गिरयो भूमि पर विकल होइ, यथा मीन जल-हीन॥

———

६९ वाँ सर्ग

त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक प्रभृति छः वीरों की युद्ध-यात्रा।

इस तरह वह दुष्ट रावण शोकाकुल होकर विलाप कर रहा था। इतने में त्रिशिरा बोला—"हाँ महाराज! इस तरह मेरे मँझले चाचा मारे गये;

परन्तु राजन्! अच्छे मनुष्य ऐसा विलाप नहीं करते जैसा इस समय आप कर रहे हैं। प्रभो! आप तीनों लोकों के लिए भी काफ़ी हैं, क्षुद्र मनुष्य की तरह अपने को आप ऐसे शोकसागर में क्यों डालते हैं? आपके पास ब्रह्मा की दी हुई शक्ति, कवच, बाण, धनुष और हज़ार खच्चरों से जोता जानेवाला रथ मौजूद है। उस रथ का शब्द मेघ के तुल्य होता है। आपने अनेक बार दैत्यों और देवताओं को शस्त्रों से मारा है। इसलिए आप सब आयुध लेकर राम को भी अपना सामर्थ्य दिखलाइए। अब मैं ही लड़ाई में जाऊँगा। आप यहीं ठहरे रहिए। जिस तरह गरुड़ साँपों का नाश करता है उसी तरह मैं आपके शत्रुओं को मारूँगा। जिस प्रकार देवराज ने शम्बरासुर को और विष्णु ने नरक को मारा था उसी तरह मेरे मारे हुए रामचन्द्र आज समरभूमि में सोवेंगे।" त्रिशिरा की ये बातें सुनकर रावण ने अपना पुनर्जन्म माना; क्योंकि उस समय वह कालग्रस्त हो रहा था; समझे तो किस प्रकार? त्रिशिरा की बातें सुनकर देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय—ये सभी युद्ध के लिए ख़ुश हो उठे। फिर वे इन्द्र के तुल्य पराक्रमी रावण के बेटे 'मैं लड़ूँगा, मैं लड़ूँगा' कहकर गर्जना करने लगे।

वे आकाश-मार्ग से चलना जानते थे; माया के जानकार थे और देवताओं के गर्वनाशक थे। वे समर में दुर्द्धर्ष, अच्छे बली और बड़े कीर्तिवान् थे। वे कभी न तो देवों से, न गन्धर्वों से, न किन्नरों से और न नागों से ही लड़ाई में हारे थे। वे बड़े-बड़े अस्त्रों के जाननेवाले, युद्ध करने में चतुर और ज्ञानी थे। इन लोगों ने वरदान भी पाये थे। सूर्य के तुल्य कान्तिमान्, शत्रुओं के बल और लक्ष्मी के नाश करनेवाले, और दानवों के अहङ्कार को तोड़नेवाले अपने बेटों से घिरा हुआ रावण उस समय ऐसा शोभ रहा था जैसे देवताओं से घिरे हुए इन्द्र शोभा पाते हैं। अपने पुत्रों को गले से लिपटाकर, अनेक तरह के आभूषणों से सजाकर और बहुत-बहुत आशीर्वाद देकर, उसने उनको संग्राम में भेजा। कुमारों की रक्षा करने के लिए उसने युद्धोन्मत्त और मत्त (महोदर-महापार्श्व) नामक अपने दोनों भाइयों को साथ भेज दिया। अब छहों राक्षसों ने रावण को प्रणाम किया और उसकी प्रदक्षिणा कर तथा सब तरह की ओषधियाँ छूकर, एवं अनेक प्रकार के मन्त्रों का जाप करके युद्ध-यात्रा की। काले मेघ के समान, ऐरावत के कुलवाले, सुदर्शन नामक हाथी पर महोदर चढ़ा। इसने सब आयुध ले लिये और तरकसों में बाण भर लिये। राजमार्ग में इसकी ऐसी शोभा हुई जैसी अस्ताचल पर सूर्य की होती है। रावण का पुत्र त्रिशिरा उस रथ पर सवार हुआ जिसमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे और शस्त्र भरे हुए थे। उस समय यह ऐसा शोभित हुआ मानों बिजली और पुच्छल तारे से प्रज्वलित और इन्द्र-धनुष-सहित मेघ हो। जिस तरह हिमवान् पर्वतराज तीन सोने के पर्वत-शिखरों से शोभायमान होता है उसी तरह इसके तीन मस्तक किरीटों से शोभित थे। धनुष-धारियों में पहले गिने जाने के योग्य रावण का पुत्र बड़ा तेजस्वी अतिकाय, अच्छे घोड़ों से जुते हुए, अच्छे रथ पर सवार हुआ। इस रथ के पहिये और धुरे अच्छी तरह जुड़े हुए थे। यह अनुकर्ष और कूबर दो विशेष अङ्गों से शोभित था। इसमें बाण, शरा-

सन, प्रास, खड्ग और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्र सजे-सजाये रक्खे हुए थे। वीर-श्रेष्ठ अतिकाय के सिर पर विचित्र सोने का मुकुट था। वह तरह-तरह के गहने पहने हुए था। जिस तरह सुमेरु पर्वत अपनी प्रभा से प्रकाशित रहता है वैसी ही अनुपम शोभा अतिकाय पाने लगा। जब वह रथ पर चढ़ा और चारों ओर से राक्षसों ने उसे घेर लिया तब वह ऐसा देख पड़ने लगा जैसे देवताओं से घिरे हुए इन्द्र देख पड़ते हैं। इन्द्र के घोड़े के तुल्य अच्छे सफ़ेद घोड़े पर नरान्तक सवार हुआ। वह घोड़ा सोने के साज से सजा हुआ था। मन के तुल्य उसकी चाल थी और शरीर भी ख़ूब भारी था। पुच्छलतारे के समान चमकीले प्रास को हाथ में लेकर नरान्तक ऐसा शोभ रहा था जैसे हाथ में शक्ति लिये और मोर पर चढ़े हुए स्वामिकार्त्तिक शोभा पाते हैं। सोने से सजे हुए परिघ को हाथ में लेकर देवान्तक ऐसा देख पड़ता था जैसे समुद्र मथने के समय दोनों हाथों से मन्दराचल को थामे हुए विष्णु देख पड़ते थे। महापार्श्व गदा लिये हुए गदाधारी कुवेर की नक़ल कर रहा था।

अब वे सब राक्षस सज-धजकर लङ्का से ऐसे निकले जैसे अमरावती से देवता निकलते हैं। उनके पीछे हाथियों को, चतुरङ्ग सेनाओं को, और मेघ के समान गरजते हुए रथों को लिये हुए बड़े-बड़े महा-पराक्रमी राक्षस भी चल निकले। अब ये सूर्य के समान तेजस्वी राजकुमार किरीट पहने बैठे हुए शोभा से ऐसे चमक रहे थे जैसे आकाश में तारे चमकते हैं। पङ्क्ति में रक्खे हुए उनके शस्त्र ऐसे अच्छे मालूम होते थे जैसे आकाश में शरद ऋतु के बादलों की सी सफ़ेद हंसों की पङ्क्ति शोभा पाती है। इन्होंने मन में यही ठान लिया कि या तो लड़कर मर जायँगे या शत्रुओं को हरा देंगे। इसलिए ये सब गरजते, ठनकते, शत्रुओं को दुर्वचन कहते, बाणों को हाथ में लेते और युद्ध की बातें करते चले जाते थे। इनके गरजने और सिंहनाद करने से मानो पृथ्वी काप उठती थी और आकाश फटने लगता था। इन सबने युद्ध-भूमि में जाकर देखा कि वानर पत्थर और वृक्ष हाथ में लिये युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। उधर वानरों ने भी देखा कि बड़े-बड़े घोड़े, हाथी और रथ की भीड़ के साथ राक्षसों से भरी हुई सेना आ रही है। उसमें सैकड़ों छोटे-छोटे घूँघरों की झनकार हो रही थी। काले मेघ के समान आयुधों से प्रकाशमान, जलती हुई आग और सूर्य के समान तेजस्वी, अनगिनत राक्षस थे। उस सेना को देखते ही वानर बड़े-बड़े पर्वत उठाकर गरजने लगे; क्योंकि वे राक्षसों की गर्जना सह नहीं सकते थे। राक्षस भी वानरों की गर्जना न सहकर और भी ज़ोर से गरजने लगे।

अब वानर हाथ में पर्वत लिये सब राक्षसी सेना में घुसकर घूमने लगे। उनमें से कितने ही तो आकाश में उड़ गये और बहुत से पृथ्वी पर से ही युद्ध का आरम्भ करने लगे। अब वानरों और राक्षसों का घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। वानर पत्थरों और वृक्षों की तथा राक्षस बाणों की वर्षा करने लगे। दोनों दलों के वीर सिंहनाद करते जाते थे। वानरों ने पत्थरों से राक्षसों को चूर कर डाला। कवचों तथा भूषणों से भूषित, रथों-घोड़ों और हाथियों पर चढ़े हुए राक्षस वानरों के प्रहार से पिस गये। वानरों ने कितनों ही को पर्वत-शिखरों से और बहुतों को मुक्कों से ऐसा मारा कि चोट के

लगने से उनकी आँखें निकल पड़ीं। वे प्रहारों से काँप उठे, गिर पड़े और आर्तनाद करने लगे। राक्षस भी पैने-पैने बाणों से तथा शूल, मुद्गर, खड्ग, प्रास और शक्तियों से वानरों को मार रहे थे। वानर और राक्षस एक दूसरे के ऊपर गिरते और शत्रुओं के रक्त से अपने को भिगो रहे थे। इस समय ऐसे ज़ोर से लड़ाई हुई कि थोड़ी देर में वह भूमि रक्त से भर गई और बड़े-बड़े पर्वताकार राक्षसों से पूर्ण हो गई। जब मारते-मारते और चलाते-चलाते वानरों के वृक्ष और पर्वत टूट-फूट गये तब वे हाथों से ही लड़ने लगे। राक्षस वानरों से वानरों को और वानर राक्षसों से राक्षसों को मार रहे थे। राक्षस वानरों के हाथों से पत्थरों और वृक्षों को छीन-छीनकर और वानर राक्षसों के हाथों से शस्त्र छीन-छीनकर उन्हीं को मारते थे। पर्वत-शिखरों से मारते और एक दूसरे के पर्वत-शिखर को तोड़ते-फोड़ते वे दोनों सेनाओंवाले बड़ा सिंहनाद कर रहे थे। वानरों ने राक्षसों के कवच तोड़कर उनका ख़ूब मर्दन किया। उनके शरीरों से ऐसा ख़ून बह चला मानों वृक्षों से रस टपकता हो। उनमें से अनेक वीर वानर रथ से रथ को, हाथी से हाथी को और घोड़े से घोड़े को मारते थे। पत्थर, वृक्ष और शस्त्रों के प्रहार से वह युद्ध बड़ा भयङ्कर हुआ। रथी राक्षस क्षुरप्र, अर्द्धचन्द्र और भल्ल नामक बाणों से वानरों के वृक्षों और शिखरों को काट फेंकते थे। उस समय वह युद्ध-भूमि टूटे-फूटे तितर-बितर हुए पर्वतों, वृक्षों और शस्त्रों से ऐसी भर गई कि वहाँ वीर बड़ी कठिनाई से चल-फिर सकते थे। जो वानर बड़े गर्वित और हर्षित हो रहे थे वे सङ्ग्राम में निडर होकर अनेक तरह के आयुधों-द्वारा राक्षसों से लड़ रहे थे। जहाँ वानर बड़े हर्ष से राक्षसों को मारकर गिरा रहे थे उस भयङ्कर युद्ध का तमाशा देख-देखकर देवता और महर्षि बड़ा हर्षनाद कर रहे थे।

वायु के समान वेगवाले घोड़े पर सवार नरान्तक हाथ में भयङ्कर शक्ति लिये वानरी सेना में ऐसे घुस गया जैसे समुद्र में मगर-मच्छ घुस जाता है। उसने अकेले ही, थोड़ी देर में, सात सौ वानरों को मार डाला। फिर वह वानरी सेना का विध्वंस करने लगा। विद्याधर और महर्षि घोड़े पर सवार इसको वानरी सेना में घूमते देख रहे थे। जिस रास्ते से वह घूम रहा था वह रास्ता पर्वताकार वानरों से और उनके मांस तथा रक्त की कीचड़ से जाने के योग्य न देख पड़ता था। वह युद्ध में ऐसी फुर्ती कर रहा था कि जब तक बड़े-बड़े वीर चोट करने की इच्छा ही करते थे तब तक वह उन्हें मार गिराता था। वानरी सेना को वह ऐसा भस्म कर रहा था मानो सूखे वन को आग जला रही हो। उसकी चोटें ऐसी फुर्ती से हो रही थीं कि जब तक वानर वृक्ष और पर्वत उखाड़ने लगते थे तब तक देखो तो उसके प्रास से दो टूक हुए पड़े हैं, जिस तरह वज्र से कटे हुए पर्वत हों। इस तरह वह देवताओं का अन्त करनेवाला नरान्तक चमचमाते हुए प्रास को लिये चारों ओर घूमकर वर्षाकाल की आँधी की नाईं वानरों का मर्दन कर रहा था। बेचारे वानर न तो भाग सकते थे और न ठहर ही सकते थे; हिलने-डुलने की कौन कहे। चाहे कोई वीर उछलता हो, चाहे खड़ा हो, चाहे चला जाता हो, वह सभी को मारता जाता था। अकेले उसी नरान्तक के सूर्य की नाईं चमकीले प्रास से वानरी सेना कट-कुटकर ज़मीन पर गिर

पड़ी। वज्र की चोट के समान उस प्रास के प्रहार को वानर नहीं सह सके। वे हाय-हाय करने लगे। उस समय गिरते हुए वीर वानरों के चेहरे ऐसे मालूम होते थे जैसे वज्र के द्वारा टूटे हुए शिखर-वाले पर्वत धड़ाम-धड़ाम गिरते हों। उनमें से महाबली वीर वानर, जो पहले कुम्भकर्ण के युद्ध में मूर्च्छा आदि से व्याकुल हुए थे, सचेत हो सुग्रीव के पास जा पहुँचे।

जब सुग्रीव ने देखा कि हमारी सेना नरान्तक के डर से इधर-उधर भागी जाती है और नरान्तक घोड़े पर चढ़ा हुआ प्रास हाथ में लिये चला आता है तब उन्होंने वीर अङ्गद से कहा—"जाओ देखो तो, यह कौन वीर घोड़े पर चढ़ा हुआ वानरी सेना को बहुत दुखी कर रहा है। इसे जल्दी मारो।" कपिराज की आज्ञा पाकर अङ्गद अपने झुण्ड में से जल्दी उधर झपटे। सूर्य की नाईं तेजस्वी, पर्वता-कार और वानरों में बड़े अच्छे अङ्गद उस समय ऐसे देख पड़े जैसे धातुवाला पर्वत हो। बाज़ूबन्दों से उनकी भुजाएँ भूषित थीं पर उनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र न था। वे केवल नाख़ूनों और दाँतों का भरोसा रखते थे। तो भी वे राक्षस के पास पहुँचकर कहने लगे—"खड़ा रह। छोटे वानरों से लड़कर तू क्या करेगा? उस प्रास की चोट मेरी छाती पर कर।" अङ्गद की गर्वीली बातें सुनकर वह मारे क्रोध के दाँतों से ओठ चबाने और साँप की नाईं साँस छोड़ने लगा। फिर इनके पास पहुँचकर उसने इनकी छाती में वह प्रास मार ही दिया; परन्तु इनकी छाती में लगते ही प्रास टूट गया। जिस तरह गरुड़ साँप के टुकड़े-टुकड़े कर देता है उसी तरह प्रास के टुकड़े-टुकड़े होकर ज़मीन पर गिर गये। जब अङ्गद ने प्रास की यह दशा देखी तब इन्होंने कूदकर उसके घोड़े के सिर पर एक लात मारी। इससे घोड़े के चारों पैर ज़मीन में धँस गये, उसकी आँखें निकल पड़ीं और सिर चूर-चूर हो गया। जब वह जीभ निकालकर ज़मीन पर लोट गया तब तो नरान्तक को बड़ा क्रोध आया। उसने अङ्गद के सिर पर एक मुक्का मारा। इस चोट से उनका सिर फूट गया और उससे बहुत गर्म ख़ून बहने लगा। वे बार-बार मूर्च्छित हो गये। फिर थोड़ी ही देर में सचेत होकर वे चकित हुए। अब अङ्गद ने भी अङ्गुलियाँ सिकोड़कर घूँसा बनाया। वह मृत्यु के तुल्य वेगवान् और पर्वत के शिखर के समान बड़ा भारी था। उन्होंने बहुत जल्दी मज़बूती से नरा-न्तक की छाती में वह घूँसा मार दिया। उसकी चोट से नरान्तक की छाती विदीर्ण हो भीतर घुस गई। वह ज्वाला फेंकता और रक्त से सना हुआ ज़मीन पर लम्बा-चौड़ा होकर पड़ रहा। ऐसा जान पड़ता था मानों वज्र की चोट से पर्वत फट गया हो। उस समय देवताओं और वानरों के आनन्द का बड़ा कोलाहल मच गया।

दोहा

बालि-तनय कर कर्म लखि, अति दुष्कर श्रीराम।
मन हर्षे विस्मित हृदय, कपि पायो विश्राम॥

———

७० वाँ सर्ग

अतिकाय के सिवा सब का मारा जाना।

अब नरान्तक की मृत्यु देखकर देवान्तक, त्रिशिरा और रावण का भाई महोदर, सब आर्त्त-

नाद करने लगे। फिर मेघाकार महोदर हाथी पर सवार होकर बालिपुत्र पर झपटा। भाई के मारे जाने से अत्यन्त दुखी होकर देवान्तक भी भयानक परिघ लेकर अङ्गद पर झपटा। इधर त्रिशिरा भी घोड़ों से जुते हुए चमकीले रथ पर चढ़ा हुआ दौड़ा। इन तीनों बड़े-बड़े राक्षसेन्द्रों से घेरे जाने पर भी अङ्गद ज़रा भी नहीं घबराये। उन्होंने एक बड़ा सा वृक्ष उखाड़कर देवान्तक पर चलाया; पर उसे बीच में ही त्रिशिरा ने काट गिराया। वृक्ष के काटे जाने पर अङ्गद वहाँ से उछले और ऊपर से वृक्ष तथा पत्थर बरसाने लगे। परन्तु त्रिशिरा ने अपने बाणों से उन्हें भी काटकर गिरा दिया। बहुत से चलाये हुए वृक्षों को महोदर ने अपने परिघ से तोड़-फोड़ डाला। फिर त्रिशिरा बाणों की वर्षा करता हुआ अङ्गद पर दौड़ा। हाथी पर सवार महोदर भी अपने वज्र के समान तोमरों से अङ्गद की छाती में चोट करने लगा। देवान्तक भी वहाँ जा पहुँचा और अपने परिघ से अङ्गद पर प्रहार करके अलग हो गया। इन तीनों महाबली राक्षसों के प्रहार करने पर भी बालिपुत्र घबराये नहीं। उन्होंने कूदकर महोदर के हाथी को एक लात मारी। इससे उसकी आँखें निकल पड़ीं और वह बड़े ज़ोर से चिग्घारने लगा। अब अङ्गद ने उसी हाथी का दाँत उखाड़कर, दौड़कर, उसी दाँत से देवान्तक को मारा। इस चोट से, हवा से झकोरे हुए वृक्ष की नाईं, वह विह्वल हो गया। उसके मुँह से लाख का जैसा ख़ून बहने लगा। थोड़ी ही देर में सचेत होकर उसने अपना परिघ घुमाकर अङ्गद को मारा। बालिपुत्र उस चोट से केवल घुटनों के बल ज़मीन पर गिरकर फिर उड़े। इन्हें उछलते देखकर त्रिशिरा ने इनके माथे में तीन बाण मारे।

इधर हनुमान् ने और नील ने जब देखा कि तीन राक्षस अकेले अङ्गद को घेरकर मार रहे हैं तब वे दोनों दौड़ पड़े। नील ने एक पर्वत-शिखर त्रिशिरा पर चलाया, परन्तु वह तो रावण का बेटा था, उसने अपने बाणों से उसे काट गिराया। उस समय बाण और शिखर के घर्षण से आग पैदा हो गई जिससे गिरते समय उस पत्थर में से चिनगारियों के साथ ज्वाला देख पड़ी। त्रिशिरा का यह पौरुष देखकर देवान्तक प्रसन्न हुआ। वह अपना परिघ लेकर हनुमान् पर दौड़ा। परन्तु उसके आते ही कपि ने कूदकर, वज्र के तुल्य, एक मुक्का उसके सिर में मारा और गरजकर राक्षसों को डरा दिया। उस चोट से देवान्तक का सिर पिस गया। दाँत तथा आँखें निकाले हुए जीभ निकालकर वह ज़मीन पर गिरा और मर गया।

अब मुख्य देवशत्रु वीर राक्षस के मारे जाने पर त्रिशिरा को बड़ा क्रोध हुआ। वह अस्त्र सजाकर नील की छाती में लगातार बाण मारने लगा। फिर महोदर भी पर्वताकार हाथी पर चढ़कर नील पर इस तरह बाण बरसाने लगा, जैसे बिजली और इन्द्रधनुष के साथ पर्वत पर मेघ जल बरसाता है। उन बाणों से उस सेनापति का शरीर विदीर्ण हो गया और उसे बेहोशी हो गई। फिर थोड़ी देर में सचेत होकर नील ने वृक्षों-सहित एक पर्वत का शिखर उठाकर महोदर के सिर पर पटक दिया। अब क्या था, उस चोट से वह हाथी-समेत चकनाचूर हो गया और प्राण छोड़कर ज़मीन पर ऐसे गिर पड़ा, मानो वज्र का मारा पर्वत गिरा हो।

चाचा को मरा हुआ देखकर त्रिशिरा ने धनुष उठाया। वह बाणों से जब हनुमान् को मारने लगा तब वायु-पुत्र ने क्रोध कर एक पर्वत का टुकड़ा त्रिशिरा पर फेंका, पर उसने उसे बाणों से काट गिराया। उस प्रहार को व्यर्थ देखकर हनुमान् उस पर वृक्षों की वर्षा करने लगे। उस वर्षा को भी बाणों से काट-कर त्रिशिरा ज़ोर से गरजने लगा। तब हनुमान् क्रोध में भर गये। वे कूदकर उसके घोड़े को अपने नाखूनों से ऐसे फाड़ने लगे जैसे सिंह हाथी को फाड़ता है। अब त्रिशिरा ने कालरात्रि के समान भयङ्कर अपनी शक्ति लेकर हनुमान् पर चलाई। बड़ी जल्दी आकाश के पुच्छल तारे की नाईं आती हुई उस शक्ति को वायुपुत्र ने बीच में ही पकड़कर तोड़-मरोड़ डाला। फिर वे ज़ोर से गरजे। शक्ति का तोड़ा जाना देखकर वानर फूले न समाये। वे सब बादलों की तरह गरजने लगे। इसके बाद त्रिशिरा ने तलवार खींचकर वानरेन्द्र की छाती में मारी। तब हनुमान् ने उस चोट को सहकर उसकी छाती में ज़ोर से एक लात मारी। अब उसके हाथ से शस्त्र गिर पड़ा और वह बेहोश होकर ज़मीन पर गिर गया। उस समय हनुमान् ने उसके हाथ से तलवार ले ली और राक्षसों को डर दिखाते हुए बड़ा शब्द किया। उस शब्द को न सहकर वह निशाचर फिर उठा। उसने कूदकर हनुमान् के सिर पर एक मुक्का मारा। यह हनुमान् को असह्य हुआ। उन्होंने उसका किरीट पकड़ लिया और उसी तलवार से कुण्डल तथा किरीट-सहित उसके तीनों सिर इस तरह काट गिराये जैसे इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के सिर काटे थे। बड़ी-बड़ी आँखों-वाले पर्वताकार वे सिर ज़मीन पर गिरकर ऐसे मालूम होते थे मानों सूर्य के मार्ग से चमकते हुए तारे टूट पड़े हों। उन सिरों में जो आँखें थीं वे जलती हुई आग की भाँति चमचमा रही थीं।

देवशत्रु त्रिशिरा के मारे जाने से वानरों ने बड़ा आनन्द मनाया, धरती हिलने लगी और राक्षस चारों ओर भाग खड़े हुए। त्रिशिरा, महोदर, देवान्तक और नरान्तक ये चारों वीर राक्षस मारे गये। इनका मारा जाना जानकर राक्षसश्रेष्ठ मत्त (महापार्श्व) को बड़ा क्रोध आया। उसने अपनी लोहे की गदा उठाई। यह सोने से सजी हुई थी तथा इसमें मांस और रक्त लिपटा हुआ था। यह बड़े तेज से चमचमाती थी; शत्रुओं के रक्त से तृप्त थी, और रक्त-माला से पूजित थी। ऐरावत, महापद्म तथा सार्वभौम महा-दिग्गजों को भी इससे डर लगता था। उस गदा को हाथ में लेकर और सुधारकर, युगान्त अग्नि की तरह जलता हुआ, वह वानरों पर दौड़ा। ऋषभ नामक वीर वानर उसी समय कूदकर महा-पार्श्व के पास जा खड़ा हुआ। उस पर्वताकार वानर को आगे खड़ा देखकर उसने उसी की छाती में गदा मारी। उसकी चोट से वानर की छाती फट गई। उसमें से बहुत सा ख़ून बहने लगा और वह बेहोश हो गया। कुछ देर में वह सावधान हुआ और क्रोध से अपने ओठ चबाता हुआ महापार्श्व की ओर देखने लगा। फिर बड़ी जल्दी झपटकर उसने राक्षस की छाती में एक घूँसा मारा। इस चोट से वह राक्षस, कटे हुए वृक्ष की नाईं, ज़मीन पर गिर पड़ा और ख़ून से नहा उठा। इतने में ऋषभ ने झट पहुँचकर उसके हाथ से गदा छीन ली और बड़ा वीर नाद किया। कुछ देर तक तो वह

मुर्दे की तरह पड़ा रहा, फिर सावधान होने पर कूदकर वरुण के पुत्र ऋषभ को उसने भी मारा। उस समय उस राक्षस का रङ्ग सन्ध्या के बादलों का सा देख पड़ता था। उसकी चोट से ऋषभ मूर्च्छित होकर गिर गया। थोड़ी देर में सचेत हो उसने उसी गदा से राक्षस पर प्रहार किया। उस चोट से देव, यज्ञ और ब्राह्मणों के शत्रु महापार्श्व के शरीर से ऐसा रक्त बहने लगा मानो हिमालय का झरना बहता हो। फिर भी ऋषभ उसी गदा को लेकर उस पर दौड़ा और उसे घुमाकर ऐसा मारा कि उसके दाँत और आँखें चूर हो गईं और वह, वज्र के मारे हुए पर्वत की नाईं, ज़मीन पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही राक्षसी सेना भागने लगी।

दोहा

वध रावण के अनुज कर, देखि राक्षसी सैन।
भागि चली सब शस्त्र तजि, सागर सदृश सुनै न॥

---

७१ वाँ सर्ग

अतिकाय का मारा जाना।

अब अतिकाय नामक राक्षस ने अपनी सेना को पीड़ित देखा। इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अपने भाइयों का मारा जाना देखकर और अपने दोनों चचा युद्धोन्मत्त तथा मत्त के मरने का सोच कर उसने बड़ा क्रोध किया। अतिकाय देवताओं और दैत्यों के गर्व का नाश कर देता था। वह शरीर से बड़ा लम्बा-चौड़ा, पर्वत के समान और ब्रह्मा के वरदान से बड़ा दुर्द्धर्ष था। वह हज़ार सूर्य के समान चमकीले रथ पर चढ़कर वानरों पर दौड़ा। अपने किरीट और कुण्डलों के द्वारा अधिक तेज का प्रकाश करता हुआ, धनुष को टङ्कार कर तथा अपना नाम सुनाकर वह बड़े ज़ोर से गरजा। उसकी सिंह की सी गर्जना, नाम और धनुष की टङ्कार सुनकर वानर डर गये; क्योंकि उसका शरीर देखकर उन्होंने समझा कि यह कुम्भकर्ण ही उठ खड़ा हुआ है। वे सबके सब एक दूसरे का सहारा तकने लगे। तीन पैर ज़मीन नापने में श्री वामन का जैसा चेहरा हुआ था वैसा राक्षस-श्रेष्ठ का चेहरा देखकर सब वानर भाग चले और अचेत हो राम की शरण पुकारने लगे।

रामचन्द्र ने भी उसको रथ पर सवार, पर्वताकार, धनुष लिये और काले बादलों की नाईं गरजते हुए दूर से देखा। देखकर वे विस्मित हुए। वानरों को समझाकर उन्होंने विभीषण से पूछा—भाई! यह कौन है जो पर्वताकार, धनुष लिये, हज़ार घोड़ों के रथ पर चढ़ा चला आता है? इसकी आँखें सिंह की सी हैं। यह शूल, तीखे-तीखे प्रास और मुद्गरों से, जिनमें से लौ निकल रही है, ऐसा जान पड़ता है जैसे भूतों से घिरे हुए शिव हों। इसकी शक्तियाँ काल की जीभों की नाईं चमचमाती हुई इसको ऐसा शोभित कर रही हैं, जैसे बिजली से बादलों की शोभा होती है। देखो, सोने की पीठवाले और प्रत्यञ्चा से सजे हुए इसके धनुष रथ की ऐसी शोभा कर रहे हैं जैसे इन्द्र का धनुष आकाश को भूषित करता है। सूर्य के समान चमकीले रथ पर चढ़ा हुआ यह राक्षससिंह रणस्थल को कैसा शोभित करता चला आता है। इसके रथ की ध्वजा के आगे के हिस्से में राहु से कैसी शोभा हो रही है। सूर्य की किरणों के समान इसके बाण भी दसों दिशाओं को कैसे प्रका-

शित कर रहे हैं। बादल के समान शब्द करता हुआ, तीन जगह झुका, और सोने की पीठ से सजा हुआ इसका धनुष इन्द्र-धनुष की तरह कैसी शोभा दे रहा है। इसके रथ पर ध्वजा और पताकाएँ लगी हुई हैं। चार बड़े-बड़े सारथियों से वह जोता जाता है। इसका रथ मेघ के समान कैसा घरघराता आता है। देखो, इसके रथ पर अड़तीस तरकस, भयङ्कर अड़तीस धनुष और सोने के समान पीली अड़तीस प्रत्यञ्चाएँ कैसी शोभा दे रही हैं। इसकी बग़ल में दो चमकीली तलवारें इसकी दोनों बग़लों को कैसी शोभायमान कर रही हैं! ये तलवारें चार हाथ की मूठों से शोभित तथा लम्बाई में दस हाथ की हैं। लाल माला पहने हुए, धैर्ययुक्त, महा पर्वत के समान, काल वर्ण और काल के समान मुँह बाये यह ऐसा देख पड़ता है, मानों बादलों पर सवार सूर्य हो। सोने के बाजूबन्दों से मनोहर दोनों भुजाओं के द्वारा इसकी ऐसी शोभा हो रही है जैसे ऊँचे-ऊँचे दो शिखरों से हिमवान् शोभित हो। सुन्दर नेत्रों-सहित इसका मुँह दो कुण्डलों से ऐसा दिखाई पड़ता है मानों पुनर्वसु नक्षत्र के बीच में पूरा चन्द्रमा हो। हे महाबाहो ! तुम मुझे बतलाओ कि यह कौन राक्षस है ? इसको देखकर सब वानर भाग रहे हैं।

रामचन्द्रजी के पूछने पर विभीषण ने उत्तर दिया—राजन् ! आप जानते ही हैं कि कुवेर का छोटा भाई रावण कैसा तेजस्वी, और भयानक काम करनेवाला है। यह उसी का पुत्र है। यह धान्यमालिनी (मन्दोदरी) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इसका नाम अतिकाय है। यह रावण के तुल्य शूर, वृद्धों की सेवा करनेवाला, विख्यात बलवान् और सब शस्त्रधारियों में अगुआ है। घोड़े, हाथी और रथ की सवारी में तथा तलवार चलाने और धनुष खींचने में, इसी तरह साम, दान, भेद, नीति और विचार करने में यह रावण के ही समान चतुर है। इसके बाहुबल के सहारे लङ्का नगरी निर्भय रहती है। प्रभो ! इसने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर अस्त्र पाये हैं और उनसे शत्रुओं को जीता है। यह ब्रह्मा के वरदान से देव और दैत्य किसी से भी नहीं मर सकता। इसने तपोबल से दिव्य कवच और सूर्य के समान चमकीला रथ भी पाया है। इनके द्वारा इसने सैकड़ों बार देवताओं और दानवों को हराकर राक्षसों की रक्षा की है और यक्षों को जीता है। इसने अपने बाणों से इन्द्र के वज्र को भी रोक दिया था तथा वरुण के पाश को भी हटा दिया था। महाराज ! यह देवताओं और दैत्यों के गर्व को दूर करनेवाला रावण का पुत्र अतिकाय है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसके लिए उपाय कीजिए, नहीं तो यह वानरी सेना को नष्ट कर डालेगा।

वानरी सेना में जाकर अतिकाय अपना धनुष फैलाकर बड़ा शोर करने लगा। उस बड़े राक्षस को रथ पर सवार देखकर बड़े-बड़े प्रधान वानर दौड़े। कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ आदि वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर उसके पास पहुँच गये और प्रहार करने लगे। उसने उन प्रहारों को अपने अस्त्रबल से व्यर्थ कर दिया। फिर उसने वानरों पर लोहे के बाणों की वर्षा करना आरम्भ किया। उस समय बाणों की चोट से वानर ऐसे छिन्न-भिन्न होकर हार गये कि उसके सामने भी खड़े नहीं रह सके; युद्ध की तो बात ही क्या। वह मस्त राक्षस जवानी के गर्व से वानरों को ऐसे डरवाने

लगा, मानों सिंह मृगों को डरवाता हो। परन्तु जो वानर युद्ध नहीं करता था उसको वह न मारता था। अब अतिकाय झपटकर राम के पास गया और धनुष लिये गर्व में भरकर कहने लगा—"देखो, मैं रथ पर सवार हूँ और हाथ में धनुष-बाण लिये हूँ। मैं छोटे-छोटे वीरों पर हमला नहीं करता। यदि किसी में सामर्थ्य और लड़ने का साहस हो तो मेरे साथ लड़े।" अतिकाय की ये, गर्व की, बातें लक्ष्मण को असह्य हुईं। वे क्रोध से धनुर्बाण लेकर उस पर लपके। उन्होंने तरकस से बाण निकालकर उसके सामने धनुष खींचा। उसके शब्द से आकाश, दिशाएँ और पृथ्वी भर गई। राक्षस घबरा उठे और डर गये। उस राक्षस को भी बड़ा अचम्भा हुआ। फिर वह धनुष पर बाण चढ़ाकर बोला—"हे लक्ष्मण! तुम लड़के हो, पराक्रम करने में चतुर नहीं हो, इसलिए तुम चले जाओ। मुझ काल-रूप के साथ तुम क्यों लड़ना चाहते हो? मेरी भुजाओं से छूटे हुए बाणों के वेग को हिमवान्, आकाश और पृथ्वी, कोई नहीं सह सकता। सुख से सोई हुई कालाग्नि को तुम क्यों जगाना चाहते हो? धनुष छोड़कर लौट जाओ। ऐसा न हो कि मेरे साथ लड़ने से तुम्हारे प्राण जाते रहें। अगर तुम ढीठ हो और लौटना नहीं चाहते तो खड़े रहो। प्राण छोड़कर यम के मन्दिर को पहुँचोगे। मेरे बाणों को देखो; ये शत्रु के गर्व का नाश करनेवाले, शिव के आयुध के समान और सोने से सजे हुए हैं। देखो, यह साँप के समान मेरा बाण तुम्हारा ख़ून इस तरह पियेगा जिस तरह क्रोधी सिंह गजेन्द्र का रक्त पीता है।" अब वह राक्षस धनुष पर बाण चढ़ाने लगा।

क्रोध में भरे हुए अतिकाय राक्षस की बातें सुनकर बड़े बलवान् लक्ष्मण बोले—"हे राक्षस! सिर्फ़ कह देने से तो तुम बड़े नहीं हो सकते और न बहुत बकनेवाले ही अच्छे कहलाते हैं। हे दुष्टात्मन्! मैं धनुर्बाण लिये खड़ा हूँ। मेरे ऊपर अपना बल दिखला, कर्मों से अपने को प्रकट कर। बहुत मत बक। जो पुरुषार्थी है, जिसमें पौरुष है, वही शूर कहलाता है। हे राक्षस! सब आयुधों के साथ धनुष लेकर तू रथ पर बैठा हुआ है, अब बाणों से या अस्त्रों से अपना पराक्रम दिखला। फिर मैं अपने बाणों से तेरा सिर काट गिराऊँगा, जिस तरह हवा पके हुए ताड़ के फल को गिराती है। आज ये सोने से सजे हुए बाण तेरे शरीर का रक्त निकालकर पियेंगे। हे राक्षस! मुझे लड़का समझकर मेरा अनादर न करना। मैं चाहे बालक हूँ या बुड्ढा; पर तेरा मृत्यु-रूप ही हूँ। तू ख़ूब समझ ले। देख, विष्णु बालक ही थे; पर तीन ही पैर से उन्होंने तीनों लोकों को नाप डाला।" इस प्रकार हेतुयुक्त और अर्थ-सहित लक्ष्मण की बातें सुनकर अतिकाय को बड़ा क्रोध आया। उसने एक बढ़िया बाण हाथ में लिया। उस समय उस लड़ाई को देखने के लिए विद्याधर, भूत, देव, दैत्य, महर्षि, गुह्यक तथा दूसरे-दूसरे महात्मा इकट्ठे हो गये। अतिकाय ने वह बाण ऐसे ज़ोर से चलाया मानों लक्ष्मण और अपने बीच के आकाश को छोटा कर डाला हो। पर उस सर्पाकार बाण को लक्ष्मण ने अपने अर्द्धचन्द्र बाण से काट दिया। निशाने को ख़ाली देखकर उसने लक्ष्मण पर पाँच बाण चलाये। इन्होंने उनको भी बीच में ही काट दिया और अपना प्रज्व-

लित बाण लेकर अतिकाय के माथे में मारा। वह बाण उसके माथे में घुस गया। उस समय वह ऐसी शोभा देने लगा मानों पर्वत में रक्त से लिपटा हुआ साँप घुसा हो। उस चोट से वह राक्षस पीड़ित होकर इस तरह काँपने लगा जिस तरह रुद्र के बाण से त्रिपुरासुर का फाटक काँप उठा था। पर थोड़ी ही देर में वह फिर सचेत हो गया और सोचने लगा कि वाह, बाण मारे तो ऐसा! भई लक्ष्मण, तुम हमारे शत्रु होने पर भी स्तुति करने के योग्य हो। इस तरह सोच-समझकर मुँह बाये हुए, दोनों भुजाओं को झुका करके, वह रथ पर बैठा हुआ घूमने लगा। फिर वह एक ही बार में एक, तीन, पाँच, सात बाण तक चढ़ाने और चलाने लगा। वे बाण आकाश में प्रकाश करते हुए लक्ष्मण की ओर चले किन्तु लक्ष्मण ने अपने बाणों से उनका वेग बीच में ही नष्ट कर दिया। इस वार को भी निष्फल देखकर उसने एक बहुत ही भयानक बाण लक्ष्मण की छाती में मारा। इस प्रहार से उनकी छाती में बहुत चोट लगी। उनकी छाती से इस तरह ख़ून बहने लगा जैसे हाथी के शरीर से मद बहता है। लक्ष्मण ने तीर निकालकर फेंक दिया और अपना एक बहुत तेज़ बाण लेकर उसे आग्नेयास्त्र के मन्त्र से पूजित करके छोड़ा। जिस समय वे उस बाण को चलाने लगे उस समय वह बाण और धनुष दोनों जलती हुई आग की तरह प्रकाशित हो उठे। तब तक इधर अतिकाय ने भी रुद्रास्त्र मन्त्र से पूजित कर एक साँप के समान बाण चलाया। इसी बीच में उसने देखा कि आग्नेयास्त्र का बाण कालदण्ड की नाईं चला आता है। तब तो उसने अपने बाण को सूर्यास्त्र से पूजित करके चलाया। अब वे दोनों भयङ्कर बाण आकाश में ऐसे टक्कर खाने और लड़ने लगे जैसे दो बड़े-बड़े साँप लड़ते हैं। फिर एक दूसरे का तेज जलाकर भस्म हो गये और ज़मीन पर गिर पड़े। अब अतिकाय ने क्रुद्ध होकर त्वष्टा देवतावाला ऐषिक अस्त्र चलाया किन्तु लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र से उसे भी काट गिराया। इस वार को भी ख़ाली देखकर राक्षस ने यम का अस्त्र चलाया। लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र से उसका भी नाश कर दिया और उस पर बहुत से बाणों की वर्षा की। परन्तु लक्ष्मण के वे सब बाण वज्र से भूषित उसके कवच पर टक्कर खा-खाकर टूटकर गिर गये। हर एक वार को ख़ाली जाते देखकर लक्ष्मण ने एक ही साथ हज़ार बाण चलाये। पर उसका कवच ऐसा मज़बूत था कि वे बाण उसका कुछ भी न कर सके और लक्ष्मण संग्राम में उसको कुछ भी कष्ट न पहुँचा सके।

अब वायु देवता ने आकर लक्ष्मण से कहा—"हे राघव! इसको ब्रह्मा ने वर दिया है। इसी से इसका कवच अभेद्य है; उसका भेदन कोई नहीं कर सकता। आप ब्रह्मास्त्र से इसे मारिए तो यह मरेगा, नहीं तो नहीं। दूसरे अस्त्र इस पर काम न कर सकेंगे और न इसका कवच तोड़ सकेंगे।" वायु का यह कथन सुनकर श्रीलक्ष्मण ने बाण लेकर ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित किया। फिर ज्योंही उसे धनुष पर चढ़ाया त्योंही दिशाएँ, चन्द्र, सूर्य, बड़े ग्रह और आकाश, सब अन्धकारमय हो गये और ज़मीन तड़ककर फट गई। उन्होंने वज्र के समान वह बाण अतिकाय पर चला दिया। उसका वेग वायु के समान था और सोने तथा

हीरों से उसका पुङ्ख जड़ा हुआ था। उस समय अतिकाय ने उसे अपने ऊपर आते देख, उसे नष्ट करने के लिए, अनेक बाण चलाये; परन्तु वह तो ब्रह्मास्त्र था। वह कब हटनेवाला था! ज़बरन् उसके पास पहुँच ही गया। तब तो अतिकाय मृत्यु के तुल्य जलते हुए बाण को पास आया देख शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल और बाणों से मारने लगा। पर उसने उसके सब आयुध निष्फल कर डाले और ठीक निशाने पर पहुँचकर किरीट से भूषित उसका सिर काट ही डाला। हिमवान् पर्वत की चोटी की नाईं उसका सिर ज़मीन पर गिर पड़ा। फिर वस्त्र-भूषण-सहित उसका लम्बा-चौड़ा शरीर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसकी यह दशा देखकर बाक़ी राक्षस बहुत दुखी हुए और प्रहारों से लथर-पथर होकर बड़ा आर्त्तनाद करने लगे। फिर सब लङ्का को भाग गये।

दोहा

अति प्रफुल्ल-मुख कीस सब, देखि लखन की जीति।
प्रभुहिं प्रशंसहिं कूदहीं, छाँड़ि निशाचर-भीति॥

---

७२ वाँ सर्ग

रावण की चिन्ता और शोक।

लक्ष्मण के हाथ से अतिकाय का मारा जाना सुनकर राजा रावण को बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगा—देखो, धूम्राक्ष बड़ा क्रोधी और शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ था। अकम्पन और कुम्भकर्ण भी बड़े वीर थे। इन्हें युद्ध करने की बड़ी चाह रहती थी; ये शत्रु की सेना को जीत लेते थे। ये सब शत्रुओं से हार गये। सेना-सहित इन सबको राम ने मार डाला। और भी बहुत से शूर महापराक्रमी और अनेक तरह की शस्त्रविद्या जानने में चतुर राक्षस राम के हाथ से मारे गये। विख्यात पराक्रमी मेरे लड़के इन्द्रजित् ने उन दोनों भाइयों को वरदान के घोर बाणों से बाँध लिया था। उन बाणों को देवता और दैत्य कोई भी न छुड़ा सकता था। पर मैं नहीं समझा कि किस प्रभाव से, किस माया से या किस मोहन से वे दोनों छूट गये। मैंने जिस-जिस योधा को लड़ने के लिए भेजा उसी-उसी को वानरों ने मार गिराया। भाइयो! अब मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जो आज राम-लक्ष्मण को और विभीषण-सहित सुग्रीव को जीत सके। ओहो! रामचन्द्र बड़े बलवान् हैं, जिनके पराक्रम से राक्षस मारे गये। मैं तो राघव वीर को साक्षात् नारायण ही जानता हूँ जिनके डर से इस पुरी के सब फाटक रुक गये हैं। जगह-जगह, बड़ी होशियारी से, इस नगरी की रक्षा करनी चाहिए और अशोक-वाटिका की भी ख़ूब रक्षा करनी होगी; हे राक्षसो! जहाँ मैंने सीता को रक्खा है, जो ख़ास-ख़ास जगह हैं, वहाँ निकलने और बैठने का बहुत विचार रखना। चारों ओर सेना लिये खड़े रहना। वानरों के ठहरने और चलने-फिरने पर कड़ी निगाह रखकर दूसरा काम करना। चाहे शाम हो, चाहे आधी रात, चाहे सबेरा, कभी वानरों का ख़याल मत भूलना। हमेशा देखते रहो कि शत्रु की सेना लड़ने को तैयार है या इधर आती है या खड़ी है, या क्या करती है।

इस तरह रावण की आज्ञा पाकर राक्षस उसी तरह काम करने लगे। उनको आज्ञा देकर रावण हृदय में प्रदीप्त कोपरूप बाण धारण किये हुए अपने भवन में घुस गया।

दोहा

क्रोधदीप्त लङ्काधिपति, आरत अति पछतात।
पुत्र-शोक ते बहु विकल, बार बार बिलखात॥

———

७३ वाँ सर्ग

इन्द्रजित् का, पहले की तरह, छिपकर फिर युद्ध करना।

रावण अपने सब वीरों का मारा जाना सुनकर बार-बार सोचता और आँखों में आँसू भर लेता था। उस समय अपने पिता की बुरी दशा देखकर इन्द्रजित् ने कहा—हे राक्षसराज! जब कि इन्द्रजित् जीता है तब आप इतना शोक क्यों कर रहे हैं? ऐसा कोई नहीं है जो इन्द्रजित् के बाणों से अपने प्राण बचाने में समर्थ हो। आप देखेंगे कि आज मैं राम और लक्ष्मण को कैसा मारता हूँ। वे छिन्न-शरीर होकर आज संग्राम-भूमि में सोते देख पड़ेंगे। उनके शरीर को बाणों से छिदा हुआ लोग देखेंगे। मुझ इन्द्रशत्रु की आज यह प्रतिज्ञा है कि यदि पौरुष और दैव विमुख न हो जायँ तो आज राम और लक्ष्मण दोनों को अपने अमोघ बाणों से तृप्त कर दूँगा। इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, चन्द्र और सूर्य आज मेरे वैसे अप्रमेय पराक्रम को देखें जैसा कि बलि के यज्ञ में वामन ने किया था।

रावण से इस तरह कहकर और बिदा ले वह इन्द्रजित् वायु के तुल्य वेगवान् रथ पर चढ़ा और युद्ध-भूमि में जा पहुँचा। उसके साथ बड़े-बड़े धनुर्द्धर राक्षस भी चले। कोई हाथी पर, कोई घो᳚ पर और कोई-कोई वीर राक्षस व्याघ्र, बिच्छू, बिलाव, गदहा, ऊँट, साँप, सुअर, चीता, सिंह, सियार, कौआ, हंस और मोरों पर सवार हुए। ये वाहन बड़े-बड़े पर्वताकार थे। प्रास, मुद्गर, तलवार, परश्वध, गदा, तोप, लाठी, भुशुण्डी और परिघों को राक्षस लिये हुए थे। जब राक्षस सवारियों पर चढ़कर और शस्त्र ले-लेकर युद्ध के लिए चलने लगे तब शङ्ख और तुरहियाँ ज़ोर से बजने लगीं। इन्द्रजित् के सिर पर, शङ्ख और चन्द्रमा के समान, उजला छाता ऐसा शोभता था जैसे चन्द्रमा से आकाश शोभता है। सोने से सजे हुए चमर उसके ऊपर ढुल रहे थे। सूर्य के समान तेजस्वी मेघनाद से उस समय लङ्का की ऐसी शोभा हुई जैसे चन्द्रमा से आकाश की होती है।

अब इन्द्रजित् युद्ध-भूमि में पहुँच अपने रथ के चारों ओर राक्षसों को खड़ाकर और वहाँ आग जलाकर अच्छे मन्त्रों से आहुति देने लगा। हविष्य, लावा, माला और सुगन्धित चीज़ों से सत्कारपूर्वक उसने अग्नि का पूजन किया। सरहरी के पत्तों के बदले शस्त्र, ढाक की लकड़ी, बहेड़े की लकड़ी, लाल कपड़े और लोहे का स्रुवा—ये सब चीज़ें उसने इकट्ठी कीं। तोमर और पूर्व-कथित सरहरी के पत्ते बिछाकर उस पर उसने आग रक्खी। फिर जीते हुए समूचे बकरे का गला पकड़कर आहुति के द्वारा अग्नि को तृप्त किया। वहाँ एक ही बार बिना धुएँ के आग जली। उससे विजय के सब चिह्न सूचित हुए। सोने के समान ज्वाला से दक्षिण की ओर होकर आग स्वयं उठकर उसका हवि ग्रहण कर रही थी। उस समय इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्र के मन्त्र का जाप करने लगा। अपने धनुष, रथ और कवच का भी उसने उस मन्त्र से पूजन किया।

जिस समय उसने ब्रह्मास्त्र का आह्वान किया और आहुति देना आरम्भ किया उस समय सूर्य, चन्द्र और ग्रह-नक्षत्रों-सहित आकाश-मण्डल भयभीत हो गया। इस प्रकार वह आहुति से अग्नि को तृप्त कर रथ और आयुधों-सहित आकाश में छिप गया। इसके बाद घोड़ा, हाथी, रथ, झण्डा और पताका से शोभित वह राक्षसी सेना गरजती हुई युद्ध की इच्छा करके चली। वे राक्षस बाणों से, और चित्र-विचित्र, पैने, वेगवान् और सुन्दर तोमरों तथा अङ्कुशों से वानरों को मारने लगे। इन्द्रजित् ने भी क्रोध में भरकर कहा कि तुम लोग वानरों को मारो। आज्ञा पाते ही राक्षस लोग वानरों पर बाण-वर्षा करने लगे।

उधर इन्द्रजित् भी नालीक और नाराच बाणों से तथा गदा और मूसलों से वानरों को मारने लगा। वानर भी उन पर वृक्षों और पर्वतों की वर्षा करने लगे। रावण का लड़का उस समय मार-मारकर वानरों का विध्वंस करने लगा। वह ऐसा चमत्कार कर रहा था कि एक ही बाण से नौ, पाँच, सात वानरों को विदीर्ण कर देता था। अपनी बहादुरी दिखाकर वह राक्षसों को उस समय ख़ुश कर रहा था। सूर्य के समान चमकीले बाणों से उसने वानरों का मथन कर डाला। वानर छिन्न-भिन्न होकर और बाणों से बहुत पीड़ित होकर ज़मीन पर गिरते जाते थे। उनकी आशा नष्ट हो रही थी। अब बड़े-बड़े सेनापति वानर बाणरूपी किरणों से तपते हुए इन्द्रजित्-रूपी सूर्य के ऊपर क्रोध करके दौड़े; परन्तु बाणों की चोट से दुखी हो रक्त से नहा-नहाकर भागे। श्रीरामचन्द्र के लिए अपना-अपना पराक्रम दिखाकर अन्त में उन बेचारे वानरों ने वीर-गति पाई। बहुत से पत्थर लिये गरजते हुए लौटे और मेघनाद पर पत्थरों तथा वृक्षों की वर्षा करने लगे। परन्तु वह संग्राम का जीतनेवाला अपने पराक्रम से इस वर्षा का नाश ही करता जाता था। वह अग्नि और विष-धर के तुल्य अपने बड़े घोर बाणों से वानरी सेना को छेदता ही जाता था।

अब उसने अठारह बाण दूर खड़े हुए गन्ध-मादन को और नौ बाण नल को मारे। इसी तरह उसने सात बाण मैन्द को, पाँच बाण गज को, दस जाम्बवान् को और तीस नील को मारे। सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद और द्विविद को तो उसने, अपने वरदान से मिले हुए, पैने-पैने बाणों से प्राणरहित सा कर दिया। और-और वानरों को भी उसने बढ़ी हुई आग की तरह क्रोध से मारे बाणों के छेद डाला। उसके सूर्य के समान चमकीले और बड़े वेग से चलनेवाले बाणों ने वानरी सेना को तहस-नहस कर डाला। उस समय वानरी सेना बड़ी व्याकुल, बाण-जाल से पीड़ित और रक्त से नहाई हुई थी। उसको इन्द्रजित् बड़ी ख़ुशी से देखने लगा। फिर भी वह बाणों और दारुण शस्त्रों की वर्षा करके चारों ओर से वानरी सेना का मर्दन करने लगा। अपनी सेना को छोड़कर वह वानरी सेना में आकर घुस गया। वहाँ छिपकर वह बाणों की ऐसी वर्षा करने लगा जैसे बादल जल बरसाते हैं। उन पर्वताकार वानरों के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। वे आर्तनाद करते और माया के बल से मारे हुए ऐसे गिरते जाते थे जैसे वज्र के मारे पर्वत गिरते हैं। वानर केवल बाणों का गिरना ही देखते थे, इन्द्रजित् तो माया के बल से

छिप ही रहा था। उसको कैसे देखते? अब राक्षस ने अपने बाणों से सब दिशाएँ भर दीं, जिनसे वानर कटते और गिरते जाते थे। इसके बाद फिर वह शूल, तलवार और परश्वध आदि शस्त्र लेकर वानरों की सेना पर फेंकने लगा। वे शस्त्र जलती हुई आग की नाईं चमकीले थे और उनमें से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बाणों की चोट खाते-खाते वानर फूले हुए टेसू की नाईं देख पड़ने लगे। वे एक दूसरे की देखादेखी भागते और भयङ्कर आर्त्तनाद करते हुए बड़े दुखी हुए। उस राक्षस को ढूँढ़ने के लिए जब वे ऊपर को मुँह करके देखने लगते तब वह दुष्ट उनकी आँखों में ही बाण मार देता था। उस दुख से वे मानो एक दूसरे के शरीर में घुसे जाते थे और ज़मीन पर गिर पड़ते थे।

हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरी, हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट्र, सूर्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद इन प्रधान वानरों को इन्द्रजित् प्रास, शूल और पैने-पैने बाणों से मारता था। ये बाण मन्त्रों से पूजित थे। इसके बाद वह इनको गदाओं से मारने लगा। बहुत से बाणों से इनको छिन्न-भिन्न कर वह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण पर बाण बरसाने लगा।

श्रीराघव उस वर्षा को पानी की वर्षा के तुल्य मानकर और उसे कुछ भी न समझकर लक्ष्मण से बोले—"लक्ष्मण! देखो, वह इन्द्रजित् फिर उस महाअस्त्र से वानरों की सेना को छिन्न-भिन्न कर अब हम दोनों पर फिरा है। इसको ब्रह्मा ने वर दिया है। उसी के प्रभाव से यह आकाश में छिप जाता है। यह किस तरह मारा जायगा? देखो, भगवान् ब्रह्मा बड़ी अचिन्त्य शक्तिवाले हैं। उनके अस्त्र का ऐसा प्रभाव है कि सेना मर मिटी। अब तुम मेरे साथ इस बाण-वर्षा को सहो। देखो, दसों दिशाओं को अपने बाणों से इसने छा लिया है। प्रधान वानरों के गिर जाने से अब वानरी सेना की कुछ भी शोभा नहीं रह गई। जब यह हम दोनों को मूर्च्छित कर लेगा तभी संग्राम-विजयी हो जायगा और लङ्का को जायगा।" रामचन्द्रजी इस तरह कह ही रहे थे कि वह दुष्ट राक्षस अपने अस्त्रों से इन दोनों भाइयों को मूर्च्छित सा करके ज़ोर से गरजा।

दोहा

दोउ भाइन कहँ जीति इमि, वानर सैन्य बिदारि।
जाइ सुनायौ पितहिं सब, मायावी शक्रारि॥

---

७४ वाँ सर्ग

हनुमान् का ओषधि-पर्वत लाना और सब का जी उठना।

अब राम और लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर प्रधान वानरों की सेना बड़ी दुखी हुई। उस समय सुग्रीव, नील, अङ्गद और जाम्बवान् ऐसे घबरा गये कि उनको कुछ भी न सूझता था। उनकी समझ में ही न आता था कि इस समय क्या करना चाहिए। इन सबको दुखी देखकर विभीषण बोले—भाइयो! डरो मत। यह समय दुःख करने का नहीं है। ये दोनों महावीर जो मूर्च्छित हो रहे हैं सो ब्रह्मा के वरदान-वाक्य का मान रहे हैं। क्योंकि ब्रह्मा ने मेघनाद को अमोघ वीर्यवाला बड़ा अस्त्र दिया है। उसे भी तो आदर देना चाहिए। इसी

लिए दोनों वीर मूर्च्छित से हो रहे हैं। इस बात का दुःख ही क्या करना है। यह दुःख मानने का समय नहीं है।

विभीषण की बात सुनकर हनुमान् बोले—"देखो, ये सब मारे गये। प्रधान वानरों में से जो-जो जीते हैं, आओ उनको तो समझावें।" इस तरह कहकर विभीषण और हनुमान् दोनों, हाथों में बड़ी मोटी-मोटी बत्तियाँ लेकर, उस रात के समय सेना में घूमने लगे। वहाँ क्या देखते हैं कि वानरों की पूँछें, हाथ, जङ्घाएँ, अँगुलियाँ और सिर कट-कटकर गिर पड़े हैं; चारों ओर से रक्त की धारा बह रही है। पर्वताकार बड़े-बड़े वानर उस जगह पड़े हैं। कहीं पैर रखने तक को जगह नहीं है। धरती में पड़े हुए बड़े-बड़े शस्त्र चमक रहे हैं। इसके बाद सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख और द्विविद, इन सबकी ओर जब उनकी नज़र गई तब क्या देखते हैं कि ये सब मरे हुए से पड़े हैं। ब्रह्मा के प्यारे इन्द्रजित् ने बारह घड़ी में सरसठ करोड़ बड़े-बड़े वीर वानरों को मार गिराया।

अब विभीषण और हनुमान् दोनों, समुद्र के तुल्य वानरी सेना को बाणों से मथित देखकर जाम्बवान् को खोजने लगे। उसको इन दोनों ने देखा। वह बेचारा एक तो बुड्ढा था ही, दूसरे सैकड़ों बाणों की चोट खाकर बुझती हुई आग की नाईं ज़मीन पर सो रहा था। प्रजापति के उस पुत्र की ऐसी दशा देख विभीषण उसके पास जाकर बोले—"हे आर्य! तीखे-तीखे बाणों से तुम्हारे प्राण तो नष्ट नहीं हुए?" विभीषण की आवाज़ सुनकर, बड़े दुःख से कराहते हुए, जाम्बवान् ने कहा—"हे महापराक्रमी राक्षसराज! मैं आवाज़ से ही तुम्हें पहचानता हूँ। मेरा शरीर बाणों से ऐसा छिद गया है कि मैं आँखों से तुम्हें देख नहीं सकता। भला यह तो बतलाओ कि जिनके कारण अञ्जना और वायु दोनों सुपुत्रवाले कहलाते हैं वे हनुमान् कहीं जीवित तो हैं?" यह सुनकर विभीषण बोले—"हे भाई! उन दोनों आर्यपुत्रों को छोड़कर, तुम वायुपुत्र की बात क्यों पूछते हो? हे आर्य! न तो राजा सुग्रीव पर, न अङ्गद पर और न श्रीराघव पर तुमने ऐसा स्नेह दिखलाया जैसा हनुमान् पर प्रकट किया।" विभीषण की बात का उत्तर जाम्बवान् ने दिया—हे राक्षससिंह! हनुमान् के पूछने का कारण सुनो। यदि वह जीता है तो तुम समझो कि यह मरी हुई सेना भी नहीं मरी। यदि हनुमान् ने प्राण छोड़ दिये, वे मर गये, तो हम सब जीते हुए भी मरे हुए के समान हैं। यदि वायु के तुल्य वेगवान् हनुमान् जीते होंगे तो मुझे जीने की आशा होगी।

इसके बाद हनुमान् ने वृद्ध ऋक्षराज के पास जाकर उनके चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया। उस समय हनुमान् की आवाज़ सुनकर, बहुत व्याकुलेन्द्रिय होने पर भी, जाम्बवान् ने अपना पुनर्जन्म माना। वे बहुत प्रसन्न होकर हनुमान् से बोले—"हे वानरसिंह! आओ, इन मरे हुए वानरों की रक्षा करो; क्योंकि ऐसा पराक्रम दूसरा कोई नहीं कर सकता। तुम तो इनके परम मित्र हो। यह समय तुम्हारे ही पराक्रम करने का है। दूसरे किसी को मैं ऐसा नहीं देखता। ऋक्ष-वीरों और वानर-वीरों की सेना को ख़ुश करो; और श्रीराम तथा लक्ष्मण को बाणों की पीड़ा से बचाओ।

हे हनुमन्! तुम सागर के ऊपर होकर हिमालय पर्वत पर चले जाओ; वहाँ से ऋषभ नामक उत्तम पर्वत पर जाना। वह सोने का है। वहाँ तुमको कैलास भी मिलेगा। उन दोनों पर्वतों के बीच में तुम्हें अत्यन्त तेजस्वी, चमकीला तथा सब ओषधियों से भरा ओषधि-पर्वत मिलेगा। हे वानरश्रेष्ठ! उस पर्वत के सिर पर चार ओषधियाँ मिलेंगी। वे बड़ी चमकीली और अपनी चमक से दसों दिशाओं को प्रकाशित करती हैं। उनका नाम मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और सन्धानकरणी है। हे वायुपुत्र! इन चारों को लेकर तुम जल्दी चले आओ और इन मरे हुए वानरों को जिला दो।

जाम्बवान् की बात सुनते ही वायुपुत्र बल और हर्ष से ऐसे भर गये जैसे वायु के वेग से समुद्र पूर्ण हो। पर्वत के अगले हिस्से पर खड़े होकर और पैरों से उसे दबाकर श्रीहनुमान् दूसरे पर्वत की नाईं देख पड़े। उनके पैरों की दाब से वह पर्वत बिल्कुल पिस उठा। वह अपने को सँभाल तक न सका। उसके ऊपर के वृक्ष कपि के वेग से गिर पड़े और जलने लगे। उसके शिखर तितर-बितर हो गये। कपि के आक्रमण से वह पर्वत ऐसा हिल उठा कि उस पर वानर ठहर न सके। उसी पर लङ्का भी बसी हुई थी। इसलिए उसके उस हिस्से के फाटक, दरवाज़े और घर सब टूट पड़े। उस रात को वह नगरी डर से व्याकुल हो नाच सी उठी। उस पर्वत के धँसने से वहाँ की ज़मीन समुद्र-सहित क्षुब्ध हो गई।

इस तरह कपिश्रेष्ठ हनुमान् पर्वत को दबाकर और बड़वाग्नि के समान अपना मुँह फैलाकर ऐसे ज़ोर से गरजे कि राक्षस मारे डर के अपनी जगह से हिल न सके। अब हनुमान् ने रामचन्द्रजी को प्रणाम कर प्रभु के लिए बड़ा भारी काम करना आरम्भ किया। वे साँप के समान अपनी पूँछ को उठाकर, पीठ को हिला, कानों को सिकोड़ और बड़वा के मुख की नाईं अपने मुँह को फैलाकर बड़े ज़ोर से वहाँ से कूदे। कूदते समय बहुत से वृक्षों, पर्वतों, पत्थरों और त्रिकूट पर रहनेवाले वानरों को हनुमान् अपनी भुजाओं और जङ्घाओं के वेग से लिये हुए उड़े। ऊपर जाकर जब वेग कम हुआ तब वे सब समुद्र के जल में गिर पड़े। अब हनुमान् साँप के शरीर के समान अपनी भुजाएँ फैलाकर, गरुड़ के तुल्य पराक्रम दिखलाते हुए, दिशाओं को खींचते से, उस उत्तम पर्वत की ओर चले। हनुमान्जी घूमते समुद्र की लहरों में नाना प्रकार के जल-जीवों को देखते हुए, विष्णु के हाथ से छूटे हुए चक्र की नाईं, चले जाते थे। मार्ग में पर्वतों, वृक्षों, सरोवरों, नदियों, तड़ागों, अच्छे नगरों और वहाँ के अच्छे सामर्थ्यवान् मनुष्यों को देखते हुए वे वायु के तुल्य उड़े चले जाते थे। हनुमान् सूर्य के रास्ते से चले। वे अपनी आवाज़ से दिशाओं को शब्दायमान करते जाते थे। अब जाम्बवान् की बात का स्मरण कर कपि अनेक झरनों से भरे हुए, बहुत सी गुफाओं से शोभित, सफ़ेद बादलों के समान सुन्दर शिखरों से मनोहर और अनेक वृक्षों से लहलहाते हुए हिमालय पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देवताओं और ऋषियों के पवित्र आश्रम देखे। वहाँ कपि ने ब्रह्मकोश (भगवान् हिरण्यगर्भ का स्थान), रजतालय (उन्हीं का रजत नामक स्थान), शक्रालय (इन्द्र की बैठक), रुद्रशरप्रमोक्ष (जहाँ से शिव ने त्रिपुरासुर पर बाण

चलाया था वह स्थान), और हयानन (हयग्रीव का स्थान) देखा। ब्रह्मशिरः (ब्रह्मास्त्र देवता का स्थान), यम के नौकर और अग्नि का स्थान, कुबेर का भवन, सूर्य के समान प्रकाशमान सूर्यों की बस्ती और ब्रह्मा के घर को हनुमान् ने देखा। शिव के धनुष, पृथ्वी की नाभि (जिसका नाम भूमा भी है), विघ्नेश्वर भगवान्, नन्दिकेश्वर, देवगणों-सहित महाराज स्वामिकार्त्तिक और श्रीदुर्गा के साथ पार्वती (जो कन्याओं को साथ लिये दुष्टों को डर दिखलाती हुई वहाँ रहती हैं) को वहाँ कपि ने देखा। वहाँ बहुत अच्छे कैलास, हिमालय और देदीप्यमान वृष नामक सोने के पर्वत को हनुमान् ने देखा। वह पर्वत उन ओषधियों से प्रकाशमान हो रहा था। इसको देखकर वायुनन्दन बड़े चकित हुए और कूदकर इस पर चढ़ गये। फिर ओषधियाँ खोजने लगे। वे महाकपि हज़ार योजन मार्ग लाँघकर वहाँ गये और परिश्रम से दवा खोजने लगे। आते हुए अर्थी (चाहनेवाले) को देखकर वे ओषधियाँ अदृश्य हो गईं। उनके छिप जाने से हनुमान् बड़े क्रुद्ध हुए और बड़े ज़ोर से गरजे। फिर छिप जाने की बात को न सहकर, क्रोध से अग्नि के तुल्य लाल-लाल आँखें करके वे पर्वत से बोले—"क्या तुमने यही निश्चय कर लिया है? राम ने तो तुम्हारे ऊपर बड़ी दया की है, पर तुम छल करना चाहते हो। देखो, आज मैं अपनी भुजाओं के बल से तुम्हें कैसा तितर-बितर किये डालता हूँ।" अब वायुसुत ने वृक्षों और साँप आदि अनेक जीवों-सहित, तथा हज़ारों धातुओं से शोभायमान, उसके सुनहरे शिखर को दोनों भुजाओं से पकड़कर ज़ोर से उखाड़ लिया। देवताओं, दैत्यों को डर दिखलाते और आकाश में विचरनेवाले अनेक प्राणियों से सराहे जाते हुए श्रीहनुमान् सूर्य के मार्ग से उड़ चले। उस समय, उस पर्वत को हाथ में लिये वायुपुत्र की ऐसी शोभा हुई जैसी चक्र-सहित विष्णु की होती है। हनुमान् को आते देखकर वानर बड़ा हर्षनाद करने लगे। उनको देखकर हनुमान् भी आनन्द का शब्द करने लगे। इनकी आवाज़ सुनकर राक्षस बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे। अब हनुमान्, वानरी सेना में, पर्वत पर उतर पड़े। वे बुड्ढे वानरों को प्रणाम कर विभीषण के गले से मिले। ओषधि-पर्वत के वहाँ आते ही वायु के द्वारा ओषधियों की गन्ध फैल गई। उसे सूँघते ही दोनों भाइयों के बाण दूर हो गये और उनका शरीर आरोग्य हो गया। और-और वानरों के घावों की पीड़ा भी थोड़ी ही देर में दूर हो गई; वे पहले की तरह भले-चंगे हो गये। उनके सब घाव भर गये। जो मर गये थे वे ऐसे उठ बैठे जैसे अपने घर में सोकर उठते हैं। जब से वानरों और राक्षसों का यह युद्ध छिड़ा तब से जो राक्षस लड़ाई में मारे जाते थे वे सब रावण की आज्ञा से उठाकर समुद्र में फेंक दिये जाते थे, इसलिए राक्षसों के मुर्दे जीवित नहीं हो सके। सबके आरोग्य हो जाने पर हनुमान्जी पर्वत को जहाँ का तहाँ रख आये।

७५ वाँ सर्ग

सुग्रीव की आज्ञा से लङ्का को भस्म करना और रात का युद्ध।

अब सुग्रीव हनुमान् से बोले—देखो, जब से कुम्भकर्ण और वे कुमार मारे गये तब से रावण

की ओर से कोई वीर युद्ध करने के लिए नहीं निकलते। इसलिए हमारी सेना में जो बड़े-बड़े बलवान् या छोटे वानर हैं वे सब अपने-अपने हाथों में मशालें ले-लेकर लङ्का में घुस पड़ें।

अब क्या था; राजा की आज्ञा पाकर सब वानर सूर्य डूबने पर भयङ्कर रात के आरम्भ में बड़ी-बड़ी मशालें जलाकर लङ्का में घुसने लगे। वानरों को घुसते देखकर जगह-जगह के रक्षक राक्षस भाग गये। उन राक्षसों की बड़ी भयङ्कर आँखें थीं। वानर भीतर घुसकर फाटकों में, अटारियों में, गलियों में, अनेक तरह के राज-मार्गों तथा राज-भवनों में आग लगाते चले जाते थे। थोड़ी देर में लाखों मकान जलने लगे। बड़े-बड़े पर्वताकार महल टूट-टूटकर ज़मीन पर गिरने लगे। कहीं अगुरु जल रहा है; कहीं चन्दन की लकड़ियाँ जल रही हैं; कहीं मणि, मोती, हीरे, मूँगे और कहीं छाल के कपड़े जल रहे हैं। कहीं रेशमी कपड़े, कहीं ऊनी कपड़े, कहीं सोने के बर्तन और कहीं हथियार आग में जल रहे थे। कहीं अनेक तरह के चित्र-विचित्र घोड़ों के भूषण, कहीं हाथियों की गर्दनों के भूषण, कहीं भूलें और कहीं रथों के सजाने की नई बनी हुई चीजें धायँ-धायँ जल रही थीं। कहीं योधाओं के कवच, कहीं हाथियों और घोड़ों के कवच, कहीं तलवारें, धनुष, जीवा, बाण, तोमर, अंकुश, शक्ति और अच्छे-अच्छे कम्बल आग में भस्म हो रहे थे। कहीं चमर, बाघ के चर्म, कस्तूरी, मुक्ता और मणियों से शोभित महल, और कहीं शस्त्र-अस्त्र रखने के चित्र-विचित्र गृह आदि सब चीज़ें अग्नि के द्वारा भस्म हो रही थीं। तरह-तरह के चित्र-विचित्र घरों और राक्षसों की बैठकों को, तथा घर में रक्खे हुए गृहस्थों के सोने के गहनों और कवचधारियों के माला प्रभृति भूषणों को भी आग भस्म कर रही थी। मद्य पीने के कारण चञ्चल आँखोंवाले, कपड़ों से सजे हुए, अमल से व्याकुल, जाते हुए जिनके कपड़े स्त्रियों ने थाम रक्खे हैं ऐसे पुरुषों को आग जला रही थी। ये राक्षस शत्रुओं पर क्रोध कर रहे थे। राक्षसों में कोई तो भोजन कर रहा था, और कोई अच्छे बिछौनों पर अपनी स्त्री के साथ लेटा हुआ था। कोई डर के मारे अपने लड़के-बच्चों को लेकर इधर-उधर भाग रहा था और कोई गदा-शूल-खड्ग आदि धारण किये हुए था— ऐसी अवस्था में उन्हें अग्नि ने जलाकर भस्म कर दिया। इनकी गिनती सैकड़ों और हज़ारों थी। वहाँ आग धधक-धधककर बढ़ती ही जाती थी। बड़े भारी-भारी, क़ीमती, गम्भीर गुणवाले, हेमचन्द्र और अर्द्धचन्द्र नामक राजभवनों को वह आग बैठकों-सहित जलाती जाती थी। इन भवनों की चन्द्रशाला अच्छी से अच्छी बनी थी और इनकी बैठकों के झरोखे बढ़िया-बढ़िया रत्नों से खचित थे।

जो घर मणि और मूँगों से चित्र-विचित्र थे, जो उँचाई में मानो सूर्य को छूना चाहते थे, क्रौञ्च पक्षी और मोर के शब्द की नाईं जिनमें भूषणों के शब्द सुन पड़ते थे और जो देखने में दूसरे पर्वत की नाईं मालूम होते थे, ऐसे अच्छे से अच्छे घरों को आग जला रही थी। वहाँ आग से जलते हुए तोरण ऐसे देख पड़ते थे मानों गरमी के समय में बिजलियों के साथ मेघ-जाल हों। जलते हुए राक्षसों के घर वन की आग से जलते हुए पर्वत के शिखरों की नाईं चमक रहे थे। सात खनवाले

घरों में सोती हुई सुन्दर स्त्रियाँ अपने शरीरों के गहने फेंक-फेंककर हाहाकार करके चिल्ला रही थीं। आग से जल-जलकर गिरते हुए वहाँ के घर ऐसे जान पड़ते थे मानों वज्र से टूटे हुए बड़े पर्वत के शिखर हों। दूर से वे ऐसे मालूम होते थे मानों हिमालय के शिखर भस्म हो रहे हों। अटारियों पर देखो तो बड़ी-बड़ी लपटों के साथ आग दहक रही है। उस समय रात में लङ्का ऐसी देख पड़ती थी मानों फूले हुए टेसू के वृक्षों का जङ्गल हो। कहीं तो हाथीवान् और कहीं छूटे हुए हाथी-घोड़े इधर-उधर भाग रहे थे। उनसे लङ्का ऐसी देख पड़ती थी जैसे प्रलयकाल में घबराये हुए मगर-मच्छों से समुद्र देख पड़ता है। कहीं तो छूटे हुए घोड़े को देखकर मारे डर के हाथी भाग रहे थे और कहीं छूटे हाथी को देखकर घोड़े भाग रहे थे। जलती हुई लङ्का के कारण समुद्र ऐसा देख पड़ता था मानों उसमें लाल पानी भरा हो।

वानरों ने एक मुहूर्त्त में लङ्का को जलाकर ऐसे भस्म कर दिया जैसे संसार के प्रलय-समय में ज़मीन जलाई जाती है। धुएँ से व्याकुल, ज़ोर से चिल्लाती हुई स्त्रियों की आवाज़ सौ योजन तक सुन पड़ती थी। जिन राक्षसों के शरीर जलते थे वे कूद-कूदकर बाहर निकल पड़ते थे। उनके निकलते ही वानर भी कूद-कूदकर उनसे लड़ने की इच्छा से उनके पास पहुँच जाते थे। उस समय वानरों और राक्षसों का बड़ा शब्द दसों दिशाओं को, समुद्र और पृथ्वी को शब्दायमान कर रहा था। इधर बाणों की पीड़ा से मुक्त रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने-अपने धनुष तैयार करने लगे। उनकी प्रत्यञ्चाओं का ऐसा शब्द हुआ जिससे सब राक्षस डर गये। उस समय धनुष लिये हुए रामचन्द्रजी ऐसे शोभायमान थे जैसे क्रुद्ध भगवान् शिव वेदमय धनुष लिये शोभित हों। वानरों और राक्षसों की गर्जना को दबाकर राम के धनुष का शब्द सुन पड़ता था। दोनों सेनाओं के शब्द ने, तथा प्रभु की प्रत्यञ्चा के शब्द ने अर्थात् तीनों शब्दों ने दिशाओं को भर दिया। महाराज के धनुष से छूटे हुए बाणों से लङ्का के फाटक, कैलास-शिखर की नाईं, टूट-टूटकर गिरते जाते थे। अब बड़े-बड़े और छोटे-छोटे घरों में भी राम के बाणों को देखकर अच्छे राक्षस युद्ध के लिए उद्योग करने लगे। उनके कवच आदि पहनने, तैयार होने और सिंह के समान गरजने के शब्दों से वह रात राक्षसों के लिए बड़ी भयङ्कर हुई। सुग्रीव ने आज्ञा दी कि जो वानर जिस द्वार पर है वह उसी जगह युद्ध करे। यदि वह इसके विरुद्ध करेगा तो मारा जायगा; क्योंकि वह राजा की आज्ञा भङ्ग करनेवाला समझा जायगा। अब प्रधान वानरों के हाथों में जलती हुई मशालें देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने जँभाई ली। उस समय दसों दिशाओं में एक तरह का विक्षोभ सा देख पड़ा। उसके अङ्गों में रूपधारी क्रोध इस तरह दिखाई दिया जिस तरह रुद्र के शरीर में देख पड़ता है। उसने कुम्भकर्ण के लड़कों—कुम्भ और निकुम्भ—को युद्ध करने के लिए भेजा। राजा की आज्ञा से इन दोनों के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन ये चारों भी निकले।

रावण ने उनसे कहा—"हे राक्षसो! तुम जल्दी सिंह की नाईं गरजते हुए निकलो।" वे उसी तरह सिंहनाद करते हुए निकले। उन राक्षसों के गहनों की चमक से और वानरों की मशालों की कान्ति

से आकाश चमक गया। उस समय केवल इन्हीं दोनों का उजेला न था, किन्तु चन्द्रमा और तारों का उजेल भी उनमें मिला हुआ था। इसलिए बहुत उजेला हो गया। उस समय चाँदनी का प्रकाश, और गहनों तथा जलते हुए घरों का प्रकाश उन दोनों सेनाओं को बहुत ही शोभित कर रहा था। अधजले घरों के प्रकाश से चञ्चल लहरोंवाला समुद्र बहुत शोभायमान हुआ। उस समय राक्षसों की सेना बड़ी दुर्द्धर्ष देख पड़ती थी। उसमें झण्डे और झण्डियाँ फरफराती थीं। उत्तम तलवारें और परश्वध चमचमाते थे। उसमें भयङ्कर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल धमधमाते तथा दीप्त शूल, गदा, खड्ग, प्रास, तोमर और धनुष खनखनाते थे। उसमें बड़े भयङ्कर, बड़े घोर पराक्रमी पुरुषार्थी राक्षस थे। कहीं तो ऐसा जलता हुआ प्रास देख पड़ता था जिसमें सैकड़ों किङ्किणियाँ बज रही हैं। कहीं सोने से शोभायमान और परश्वध लिये वीरों की भुजाएँ देख पड़ती थीं। कहीं कोई वीर बड़ा शस्त्र और कहीं कोई बाण-सहित धनुष फेर रहा था। कहीं सुगन्धित फूलों की सुगन्धि और कहीं शराब की गन्ध वायु के द्वारा फैल रही थी।

शूरों से संयुक्त, मेघ की घटा के तुल्य भयङ्कर, दुर्द्धर्ष राक्षसों की सेना को आते देख वानरों की सेना खड़बड़ा गई और बड़े ज़ोर से गरजने लगी। इधर राक्षसी सेना वानरों की सेना में ऐसी घुसी जैसे पतङ्गों का झुण्ड आग में घुसता है। उस समय राक्षसों की भुजाओं में परिघ और वज्राकार शस्त्र बड़ी शोभा दे रहे थे। उनसे राक्षसी सेना की बड़ी शोभा हो रही थी। अब वानर, पागल की नाईं, उस सेना पर टूट पड़े। वे वृक्षों, पर्वतों और घूँसों से राक्षसों को मारने लगे। इधर राक्षस भी बाणों से उनके मस्तक काट-काटकर गिराते थे। वानर दाँतों से राक्षसों के कान, मुक्कों से मस्तक और पत्थरों से उनके अङ्ग काट गिराते थे। अनेक राक्षस तीखी तलवारों से ख़ास-ख़ास वानरों को मारते थे और इसी तरह वानर भी राक्षसों को मार रहे थे। इस प्रकार वानर और राक्षस दोनों दल आपस में एक दूसरे को मार रहे थे। जिस तरह एक दूसरे को मारता था, उसी तरह वह भी उसको मारता था। किसी को कोई डपटता तो वह भी उसे डपटता था। किसी को कोई काटता तो वह भी उसे काटता था। इसी तरह वे आपस में एक दूसरे से कह-कहकर लड़ रहे थे। योद्धा इस युद्ध में शस्त्रों को हाथ से छीन लेते और वीरों को बिना कवच तथा बिना आयुध के कर डालते थे। फिर वीर लोग महाप्रास, मुक्का, शूल, तलवार और बरछियाँ उठाते थे। इस तरह, उन दोनों सेनाओं का महाभयङ्कर युद्ध हुआ। एक-एक बार में दस, सात वानरों को राक्षसों ने और इतने ही राक्षसों को वानरों ने मारा। वस्त्र, कवच और ध्वजाएँ राक्षसों की टूट गईं। उनको रोकने के लिए वानर खड़े हो गये।

---

७६ वाँ सर्ग

अङ्गद आदि मुख्य वानरों से कम्पन आदि मुख्य राक्षसों का युद्ध।

उस घोर संग्राम में बड़े-बड़े वीर मारे जा रहे थे। बड़े रण-कौतुकी अङ्गद ने कम्पन का सामना किया। उसने ललकारकर अङ्गद के एक गदा

मारी। उसकी चोट से अङ्गद काँप गये और कुछ-कुछ बेहोश भी हो गये; परन्तु थोड़ी ही देर में सचेत हो इन्होंने एक पर्वत का शिखर लेकर कम्पन को ऐसा मारा कि उसके प्राण निकल गये। वह संग्राम-भूमि में गिर पड़ा। कम्पन का मारा जाना देख शोणिताक्ष ने निडर हो बहुत जल्दी अङ्गद के सामने रथ चलाया। वह बड़े वेग से, कालाग्नि के समान, बाणों से अङ्गद को मारने लगा। अङ्गद ने पहले तो क्षुर, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णी, शल्य और विपाठ आदि बहुत से बाणों की चोट खाई किन्तु फिर कूदकर उसके धनुष, रथ और बाणों का मर्दन कर डाला। अब वह हाथ में तलवार और ढाल लेकर रथ से बहुत जल्दी कूद पड़ा। कूदने के साथ ही अङ्गद ने लपककर उसकी तलवार हाथ से छीन ली और वीरनाद किया। फिर जनेऊ के ढङ्ग से उसके कन्धे पर तलवार मारी और वही तलवार लिये गरजते हुए अङ्गद दूसरे शत्रुओं पर दौड़े। प्रजङ्घ के साथ यूपाक्ष नामक राक्षस रथ पर चढ़कर अंगद के ऊपर दौड़ा। वह हाथ में लोहे की गदा लिये और सोने के बाजूबन्द पहने बहुत अच्छा मालूम हुआ। इतने में शोणिताक्ष भी सचेत होकर अङ्गद पर ही दौड़ा। उस समय शोणिताक्ष और प्रजङ्घ के बीच में अङ्गद ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे दो विशाखा नक्षत्रों के बीच में पूर्ण चन्द्रमा की शोभा होती है। इतने में द्विविद और मैन्द भी, अङ्गद की रक्षा के लिए, दौड़कर वहाँ आ गये। वे एक दूसरे को देखने के लिए उनके पास खड़े हो गये। राक्षस भी तलवार, बाण और गदा लिये हुए क्रोधपूर्वक वानरों पर दौड़ पड़े। अब तीनों राक्षसों का तीनों वानरों के साथ बड़ा भयङ्कर रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। वानर वृक्ष उखाड़-उखाड़कर राक्षसों पर चलाते और प्रजङ्घ अपनी तलवार से उन सबको काट गिराता था। तदनन्तर वानर रथों, घोड़ों, पर्वतों और वृक्षों को फेंकने लगे; परन्तु यूपाक्ष ने बाणों से उन सबको काट गिराया। द्विविद और मैन्द के फेंके हुए वृक्षों को शोणिताक्ष बीच में ही गदा से तोड़कर फेंक देता था। इतने में प्रजङ्घ एक बड़ी सी तलवार लेकर अङ्गद पर दौड़ा। जब वह पास आ गया तब बालिपुत्र ने एक अश्वकर्ण वृक्ष उखाड़कर उसको ज़ोर से मारा; एक घूँसा भी उसकी बाँह में मारा। घूँसे की चोट लगने से उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी। मूसल के समान तलवार के गिरते ही उसने मुट्ठी बाँधकर बड़े ज़ोर से अङ्गद के माथे में एक मुक्का मारा। उसकी चोट से थोड़ी देर के लिए अङ्गद अचेत हो गये; परन्तु सचेत होते ही इन्होंने भी उसके सिर में एक ऐसा मुक्का जमाया कि उसका सिर फट गया और वह ज़मीन पर गिर पड़ा।

अब चचा का मरना देखकर यूपाक्ष हाथ में तलवार ले रथ से उतर पड़ा; क्योंकि उस समय उसके पास बाण न थे। उसे उतरते और झपटते देख द्विविद ने उसकी छाती में एक मुक्का मारा और उसे पकड़ भी लिया। तब शोणिताक्ष ने बड़े ज़ोर से दौड़कर द्विविद की छाती में चोट की। यद्यपि द्विविद उस चोट से घबरा गया तो भी सावधान होकर उसने उसके हाथ की गदा छीन ली। इतने में मैन्द भी द्विविद के पास पहुँच गया। द्विविद ने अपने तेज़ नाखूनों से शोणिताक्ष का मुँह नोच डाला। अब इन दोनों राक्षसों के साथ दोनों

वानरों की बड़ी खींचा-तानी, तोड़ा-तोड़ी और बकोटाबकोटी हुई। मैन्द ने अपनी बहादुरी से यूपाक्ष को पछाड़ दिया और भुजाओं से उसे ऐसा पीसा कि वह मर ही गया। इन बड़े वीरों को मरते देखकर वह राक्षसी सेना भागकर कुम्भकर्ण के पुत्र की ओर शरण के लिए गई। उसने उसको समझाया। जब उसने वानरों की बहादुरी और अपनी सेना का नाश देखा तब वह अपने धनुष को खींचकर बड़े कठोर बाण चलाने लगा। बाणों-सहित उसका धनुष ऐसा शोभित हुआ जैसे बिजली और ऐरावत के साथ चमकीला इन्द्र का धनुष हो। उसने प्रत्यञ्चा को कान तक खींचकर कङ्कपक्ष-वाला, सोने से भूपित, बाण द्विविद पर चलाया। उसके लगते ही वह पर्वताकार ज़मीन पर गिरकर मूर्च्छित हो गया। अपने भाई की ऐसी दशा देखकर मैन्द ने एक बड़ा भारी पत्थर उठाया और कुम्भ पर फेंक दिया। परन्तु उसने उसी दम पाँच बाणों से उसे काट गिराया और साँप की सूरत का एक दारुण बाण मैन्द को मारा। उसके लगते ही मैन्द भी गिरकर मूर्च्छित हो गया। तब अङ्गद दोनों मामाओं को मूर्च्छित देख कुम्भ पर दौड़े। कुम्भ ने अङ्गद को झपटते देख लोहे के पाँच बाण और दूसरी तरह के तीन बाण अङ्गद के मारे। फिर वह अङ्गद पर और भी बाण-वर्षा करने लगा। किन्तु अङ्गद उन प्रहारों को सहते हुए उस पर पत्थर और वृक्ष बरसाने लगे। वह राक्षस युद्ध करने में बड़ा चतुर था। इससे वह अङ्गद के सब प्रहारों को काटता ही जाता था। अब उसने दो बाण अङ्गद की भौंहों में इस तरह मारे जिस तरह दो जलती हुई लुकों से कोई हाथी को मारे। उन बाणों के मारे बालिपुत्र की भौंहों से ख़ून निकलने लगा और उनकी आँखें बन्द हो गईं। पर अङ्गद ने हाथ से ख़ून पोंछकर, एक हाथ से एक साखू का वृक्ष उखाड़ा और राक्षस पर चलाया। वह वृक्ष बहुत बड़ा था, इसलिए उखाड़ने में मेहनत करनी पड़ी और फिर छाती के सहारे कन्धे पर चढ़ाकर और कुछ थोड़ा झुकाकर उसे बड़े ज़ोर से फेंका। वह वृक्ष मन्दराचल अथवा इन्द्रध्वज के तुल्य देख पड़ता था। चलाते समय सब राक्षस उसी ओर देख रहे थे। यद्यपि वह वृक्ष इतना बड़ा था तो भी राक्षस ने उसे सात बाणों से काट ही डाला और फिर अङ्गद को भी मारा। उस समय अङ्गद उसकी चोट से बहुत दुखी हुए और ज़मीन पर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

अङ्गद को गिरे और पीड़ारूपी समुद्र में ग़ोता खाते देख बड़े-बड़े वानरों ने जाकर श्रीरामचन्द्र से निवेदन किया। रामचन्द्र ने सब हाल जानकर बड़े-बड़े वानर जाम्बवान् आदि को अङ्गद की रक्षा के लिए भेजा। प्रभु की आज्ञा पाते ही वे वीर वानर कुम्भ पर दौड़े और हाथों में वृक्ष तथा पत्थर ले-लेकर अङ्गद की रक्षा के लिए उस पर झपट पड़े। उनमें से जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी ये सब कुम्भकर्ण के लड़के पर टूटे। परन्तु वह भी इन महाबलियों के वेग को अपने बाण-जालों से ऐसे रोकता था जैसे पर्वत से जल के वेग की रोक होती है। वे वीर उसके बाणों के सामने ऐसे रुक गये थे कि उस पर हाथ चलाने की किसी को सामर्थ्य न थी।

अब सुग्रीव वीर वानरों और अपने भतीजे को विपन्न देख कुम्भ पर ऐसे दौड़े जैसे शिखर पर

घूमनेवाले हाथी पर सिंह झपटता है। वानरराज ने बहुत से अश्वकर्ण आदि वृक्ष उसके ऊपर फेंके। उन्होंने वृक्षों की ऐसी घोर वर्षा की कि आकाश छा गया था; पर कुम्भ ने मारे बाणों के उसे काट फेंका। उस समय उन कटे और टूटे-फूटे वृक्षों की ऐसी शोभा हुई मानों बहुत सी तोपें आकाश में उड़ रही हों। यद्यपि वानरराज के वे प्रहार व्यर्थ गये तथापि उन्हें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। राक्षस के बाणों की चोट सहते हुए वे उसके रथ के पास पहुँच गये। इन्द्र-धनुष के तुल्य उसके धनुष को झटका मारकर सुग्रीव ने तोड़ डाला। यह कठिन काम करके वे झट वहाँ से अलग हो गये। उस समय राक्षस की ऐसी दशा हो गई जैसी दाँत के टूटने से हाथी की हो जाती है। सुग्रीव प्रशंसापूर्वक कहने लगे—हे निकुम्भ के बड़े भाई! तुम्हारी बहादुरी, बाण का अद्भुत वेग, अपने आदमियों की रक्षा और प्रभाव—यह सब ऐसा देखने में आया मानों ये बातें रावण ने ही की हों। प्रह्लाद, बलि, इन्द्र, कुवेर और वरुण के तुल्य हे राक्षस! तुम ठीक अपने पिता के ही तुल्य बलवान् हुए हो। जब तुम हाथ में शूल लेकर खड़े होते होगे तब देवता भी तुमको उसी तरह न हरा पाते होंगे जिस तरह जितेन्द्रिय मनुष्य को व्याधियाँ नहीं सता सकतीं। अब तुम पराक्रम करो और मेरा भी पराक्रम देखो। तुम्हारे पितृव्य (ताऊ) वरदान के बल से देवों और दानवों को कुछ नहीं लेखते; पर कुम्भकर्ण में यह सामर्थ्य अपने वीर्य-बल के कारण थी। तुम धनुष चलाने में तो इन्द्र-जित् के और प्रताप में रावण के तुल्य हो; बल तथा वीर्य में तुम सब राक्षसों से अच्छे हो। इसलिए आज हमारा-तुम्हारा युद्ध हो। जिस तरह इन्द्र और शम्बरासुर का युद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध हो। उसे सब लोग देखेंगे। तुमने अच्छे से अच्छा अपना युद्ध-कर्म दिखलाया और अस्त्र के चलाने में बड़ी चतुरता दिखलाई। तुमने बहुत से वानरों को मारकर बेहोश कर दिया। केवल उलहने की आशङ्का से मैंने तुमको मार नहीं डाला। तुम युद्ध कर चुके हो। थोड़ी देर आराम कर लो। फिर मेरा बल देखो।

सुग्रीव की बातों में कुछ-कुछ अनादर तथा व्यंग्य भरा हुआ था; प्रकट में कुछ-कुछ आदर भी था। इन बातों को सुनकर कुम्भ का तेज ऐसा बढ़ गया जैसे घी की आहुति पाकर आग का तेज बढ़ जाता है। अब तो उसने अपनी भुजाओं से सुग्रीव को पकड़ लिया। वे दोनों मस्त हाथियों की तरह लड़ते हुए बार-बार हाँफने लगे। एक दूसरे के अङ्गों को पकड़ता और एक दूसरे को खींचता था। कभी-कभी परिश्रम के कारण वे मुँह से धुआँ-सहित ज्वाला फेंकते थे। लड़ते-लड़ते उन दोनों के पैरों की धमक से ज़मीन में गड्ढे हो गये। समुद्र को ऐसा क्षोभ हुआ कि वह बड़ी-बड़ी लहरों से लह-राने लगा। इतने में सुग्रीव ने कुम्भ को उठाकर समुद्र में ऐसा फेंका कि उसका पैर ज़मीन में जा लगा। समुद्र का पानी इतना उछला कि विन्ध्य और मन्दराचल के समान ऊँचा और बड़ा दिखाई दिया और चारों ओर फैल गया। फिर कुम्भ ने वहाँ से उछलकर सुग्रीव की छाती में वज्र के समान एक मुक्का मारा। उसकी चोट से सुग्रीव की छाती का चमड़ा फट गया और ख़ून बहने लगा; क्योंकि उसने ऐसे ज़ोर से मुक्का मारा था

जिससे उसकी चोट हड्डी तक पहुँची थी। उसमें से आग की बड़ी ज्वाला भभक उठी मानों वज्र की रगड़ से मेरु पर ज्वाला उठी हो। अब सुग्रीव ने भी कुम्भ की छाती में वज्र के समान ज़ोर से एक घूँसा मारा। यह मुक्का ऐसे ज़ोर से लगा कि कुम्भ विह्वल होकर गिर गया। उसकी दशा बिना लपट की आग की नाईं हो गई। वह ज़मीन पर ऐसा गिरा जैसे मङ्गल का तारा लपलपाकर अकस्मात् ज़मीन पर आ गिरे। मुक्के की चोट से छाती फट जाने के कारण कुम्भ उस समय ऐसा देख पड़ा जैसे रुद्र से ध्वस्त किये गये सूर्य का रूप दिखाई दे।

दोहा

गिरत ताहि के भूमि कपि, शैल अरण्य समेत।
लङ्कावासी रजनिचर, भय ते भये अचेत॥

---

७७ वाँ सर्ग

निकुम्भ का मारा जाना।

वानरराज के हाथ से बड़े भाई को मारे जाते देख निकुम्भ राक्षस क्रोध से आगबबूला होकर सुग्रीव की ओर देखने लगा। वह एक बड़े परिघ को हाथ में लिये, भयङ्कर मुँह फाड़कर, गरजने लगा। वह परिघ माला से भूषित, हाथ के थापेवाला, हिमालय के शिखर के तुल्य और सोने के पत्तों से जड़ा हुआ था। वह परिघ हीरों और मूँगों से भूषित, यम के दण्ड के समान भयङ्कर, राक्षसों के भय का नाशक और इन्द्र की ध्वजा के समान बड़ा था। कण्ठ में हार, भुजाओं में बाज़ूबन्द, कानों में कुण्डल और गले में माला पहने हुए निकुम्भ उस समय ऐसी शोभा देता था मानों बिजली से प्रदीप्त इन्द्र-धनुष-सहित गरजता हुआ बादल हो। उसके उस परिघ के आगे के हिस्से से हवा की गाँठें फूटकर, बिना धुएँ के, आग भभक उठती थी। विटपावती नगरी के अच्छे भवन, अमरावती के देवताओं के घर और तारागणों तथा ग्रहों-सहित चन्द्रमण्डल, ये सब उसके परिघ के वेग से घूमते से देख पड़ते थे। उस समय वह राक्षस परिघ और भूषणों की चमक से ऐसा दुर्द्धर्ष देख पड़ता था मानों क्रोधरूप ईंधन से भभकती हुई प्रलय-समय की आग हो। उस समय डर के मारे राक्षस और वानर कोई हिल तक न सकते थे। इतने में हनुमान् अपनी छाती फैलाकर उसके पास खड़े हो गये। इनको देखते ही उसने बड़े ज़ोर से इनकी छाती में परिघ का प्रहार किया परन्तु वज्र के तुल्य इनकी छाती की टक्कर खाकर उस परिघ के सौ टुकड़े हो गये; और वह ऐसा छितरा गया मानों सौ लुक्क आकाश से टूट पड़े हों। परिघ की चोट से कपि को कुछ भी कष्ट नहीं हुआ, जैसे कि भूचाल से पर्वत का कुछ भी नहीं बिगड़ता। अब मुट्ठी बाँधकर हनुमान् ने निकुम्भ की छाती में एक मुक्का मारा। उसकी चोट से राक्षस का चमड़ा फट गया और रक्त बहने लगा तथा ऐसी ज्वाला भभक उठी जैसे बादलों में बिजली की चमक होती है। उस समय तो वह विह्वल हो गया; पर थोड़ी ही देर में उसने सचेत हो हनुमान् को पकड़कर उठा लिया। हनुमान् जैसे महाबली को निकुम्भ के क़ाबू में देखकर लङ्का के रहनेवाले बड़ा शोर करने लगे। जब हनुमान् ने देखा कि अब तो यह लिये ही जाता

है तब उन्होंने राक्षस को एक ज़ोर का मुक्का मारा जिससे उसने इनको छोड़ दिया। तब कपि ने निकुम्भ को उठाकर ज़मीन पर पटक दिया और ख़ूब मीसा। फिर उछलकर कपि बड़े वेग से उसकी छाती पर कूदे और दोनों हाथों से पकड़कर उसका सिर ऐंठकर तोड़ डाला। उस समय वह बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगा। इधर श्रीरामचन्द्र और मकराक्ष का बड़ा विकट युद्ध हुआ। निकुम्भ के मर जाने पर पक्षी आनन्दित होकर चहचहाने लगे और दिशाएँ निर्मल हो गईं।

दोहा

गिरत ताहि भूकम्प भौ, दिशानाद अति शोर।
गिर्यो भूमि आकाश जनु, निशिचर डरेतिघोर॥

———

७८वाँ सर्ग

युद्ध के लिए मकराक्ष की यात्रा।

अब कुम्भ और निकुम्भ का मारा जाना सुनकर रावण आग की तरह जल उठा। वह क्रोध और शोक से बेहोश सा हो गया। उसने खर के पुत्र मकराक्ष से कहा— हे पुत्र! मेरी आज्ञा से तुम संग्राम-भूमि में जाओ। साथ में सेना लेकर राम, लक्ष्मण और वानरों का नाश करो।

रावण की आज्ञा पाकर, अपने को शूर माननेवाला, मकराक्ष बहुत ख़ुश होकर बोला—"बहुत अच्छा महाराज!" अब वह रावण को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर घर से निकल पड़ा। उसका सेनापति पास ही था। उसने उसे आज्ञा दी कि सेना को और मेरे रथ को बहुत जल्दी लाओ। आज्ञा पाते ही उसने सेना और रथ लाकर खड़ा कर दिया। अब मकराक्ष रथ की प्रदक्षिणा कर उस पर सवार हो गया। सारथि को रथ हाँकने की आज्ञा देकर वह राक्षसों से कहने लगा—"तुम सब मेरे पास युद्ध करो। मुझको तो महात्मा राक्षसराज ने आज्ञा दी है कि तुम उन दोनों भाइयों को मारो। सो मैं उन दोनों को, सुग्रीव को तथा और-और वानरों को अपने बाणों से मारूँगा। तुम देखना कि आज शूल के प्रहारों से मैं वानरी सेना को ऐसे भस्म कर डालूँगा जिस तरह सूखी लकड़ियों को आग जलाती है।" इस प्रकार मकराक्ष की बातें सुनकर वे निशाचर, हर्षपूर्वक उस महाबली को घेरकर, ज़मीन को कँपाते हुए चले। वे राक्षस अनेक शस्त्र धारण करनेवाले, बलवान्, धीर, कामरूपी, क्रूर, बड़े-बड़े दाँतोंवाले, पीली आँखोंवाले, गजेन्द्र की तरह गरजते हुए और बिना बालों के थे। उस समय हज़ारों, लाखों शङ्खों और तुरहियों के बजने तथा राक्षसों के गरजने और तड़पने का ऐसा शब्द हुआ कि आकाश भर गया। परन्तु सारथि के हाथ से कोड़ा टूट पड़ा। ध्वजा भी अकस्मात् ज़मीन पर गिर पड़ी। उसके रथ के घोड़े, शक्ति न रहने से, लड़खड़ा गये। वे दीन से होकर आँखों से आँसू बहाने लगे। धूल के साथ रूखी और भयङ्कर हवा चलने लगी। उनके चलते समय ये सब अशकुन हुए, परन्तु अशकुनों की ओर दृष्टि न करके वे सब राक्षस चल दिये। बादलों, हाथियों और भैंसों के समान उन राक्षसों के शरीर थे और ऐसा ही रङ्ग था। वे एक बार भी गदा और तलवार से न मारे गये थे। अब वे सब अपने-अपने युद्ध की चतुरता को बकते और गरजते हुए वानरी सेना में जा पहुँचे।

७९ वाँ सर्ग

राम के हाथ से मकराक्ष का मारा जाना ।

अब मकराक्ष को आते देख वानर कूद-कूदकर युद्ध की इच्छा से आ पहुँचे । थोड़ी ही देर में वानरों और राक्षसों का ऐसा रोमाञ्चकारी महा घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जैसा कि देवों और दानवों का हुआ था । वृक्ष, शूल, गदा और परिघ आदि के प्रहारों से वे एक दूसरे का मर्दन करने लगे । राक्षस लोग शक्ति, तलवार, गदा, बर्छी, तोमर, पटा, भिन्दिपाल, बाण, पाश, मुद्गर तथा और-और बड़े-बड़े शस्त्रों से वानरों को मारने लगे । इधर मकराक्ष भी बाणों से उनको मार रहा था । अब दोनों ओर के प्रहारों से वानर अत्यन्त पीड़ित होकर भागने लगे । उनको भागते देख राक्षस, अपना विजय जानकर, सिंह के समान गरजने लगे । वानरों को भागते देख श्रीरघुनन्दन ने बाण-वर्षा से राक्षसों को रोका। राक्षसों का रोका जाना देख मकराक्ष बड़े क्रोध में भरकर बोला—हे राम ! खड़े रहो । मेरे साथ तुम्हारा द्वन्द्व-युद्ध होगा । मैं अपने बाणों से तुम्हारे प्राण ध्वस्त कर दूँगा । तुमने दण्डकारण्य में मेरे पिता को मार डाला है । उस बात की याद आ जाने से मेरा क्रोध भभक उठा है । हे दुरात्मन् ! मेरे अङ्ग क्रोध से जले जाते हैं । क्या कहूँ, उस समय मैंने तुमको न पाया । भला, इस समय तो तुम मेरी आँखों के पास आ गये हो । मैं यही चाहता था । जिस तरह भूखा सिंह मृग को चाहता है उसी प्रकार मैं तुम्हारी खोज में था । आज मेरे बाणों की मार से तुम प्रेतराज की पुरी में जाकर अपने मारे हुए शूरों के साथ मिलोगे । अब बहुत क्या कहूँ । हे राम, मेरी बात सुनो । आज सब लोग हमारी और तुम्हारी लड़ाई देखें । अस्त्रों से, गदा से, अथवा भुजाओं से, जिसमें तुमको सुभीता जान पड़े वैसे तुम लड़ो ।

मकराक्ष बातों में बढ़ता ही जाता था । उसकी गर्वभरी बातें सुनकर रामचन्द्रजी बोले—हे राक्षस, वृथा अनुचित बातें क्यों कर रहे हो ? बिना युद्ध किये, केवल वचन-बल से, युद्ध में कोई जीतता नहीं । देखो, चौदह हज़ार राक्षस, तुम्हारे पिता, त्रिशिरा और दूषण आदि सब मेरे हाथों से मारे गये । इनके मांसों से मैंने गीध, गीदड़ और कौओं को तृप्त किया है । हे पापात्मन्, इस समय भी उन आकाश में विचरने और पृथिवी पर रहनेवाले जीवों के मुँह रक्त से भीग जायँगे और पङ्ख ख़ून से रँग जायँगे । उन जीवों की चोंचें तीखी और नाखून तेज़ हैं ।

राम की बातें सुनते-सुनते मकराक्ष बाण चलाने लगा । राघव भी अपने बाणों से उसके बाणों के टुकड़े करने लगे । अब मकराक्ष और राम का बड़े पराक्रम के साथ युद्ध आरम्भ हुआ । उन दोनों की प्रत्यञ्चाओं और बाणों के छूटने का ऐसा शब्द होता था जैसे आकाश में बादलों का होता है । वहाँ आकाश से देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर और महोरग यह तमाशा देख रहे थे । परस्पर बाणों की चोट से दोनों का दूना बल बढ़ता जाता था । दोनों ही शस्त्रों से मार और बचाव कर रहे थे । राम के बाणों के राक्षस, और राक्षस के बाणों के रामचन्द्र, सैकड़ों टुकड़े कर डालते थे । अब मारे बाणों की बौछार के दिशा और विदिशाएँ भर गईं । आकाश और पृथिवी ऐसी ढक गई कि कुछ भी

दिखाई नहीं देता था। थोड़ी देर में रामचन्द्र ने राक्षस का धनुष काट डाला। फिर आठ बाणों से उसके सारथि को, रथ को और घोड़ों को काट गिराया। जब राक्षस बिना रथ के रह गया तब ज़मीन पर आ गया और उसने प्रलय की आग के समान शूल हाथ में लिया। यह शूल बड़ा भयङ्कर तथा सबको डर देनेवाला था। यह शूल इसे रुद्र से मिला था। यह औरों को मिलना दुर्लभ था। इस शूल का स्वरूप ऐसा जलता हुआ सा था मानों संहारास्त्र ही है। यह शूल उठाते देख सब देवता भागने लगे। थोड़ी देर में उसने वह शूल रामचन्द्र के ऊपर चलाया; परन्तु रामचन्द्र के चार बाणों से उसके कई टुकड़े हो गये। वे लुकों की नाईं तितर-बितर होकर ज़मीन पर गिर पड़े। उस भयङ्कर शूल को नष्ट होते देखकर सब आकाशचारी प्राणी वाह-वाह करने लगे। शूल को निष्फल देख वह राक्षस मुक्का बाँधकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' ललकारता हुआ राम पर दौड़ा। तब रामचन्द्र ने हँसकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और उसे आग्नेयास्त्र से पूजित करके राक्षस पर चला दिया। बाण लगते ही उसका हृदय फट गया और वह ज़मीन पर गिरकर मर गया। अब बचे-बचाये राक्षस मकराक्ष की ऐसी दशा देख और राम के बाणों से पीड़ित होकर लङ्का को भाग गये।

दोहा

भये मुदित सब देवगण, देखि निशाचर छिन्न।
जैसे वज्र-प्रहार तें, होत महा गिरि भिन्न॥

---

८० वाँ सर्ग

मेघनाद का अन्तर्द्धान होकर युद्ध करना।

मकराक्ष के मारे जाने की ख़बर सुनकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह दाँत पीसता हुआ सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इस तरह वह थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर अपने पुत्र इन्द्रजित् को बुलाकर कहने लगा—हे वीर, अब तुम जाकर उन दोनों वीरों को मारो; क्योंकि तुम तो प्रकट और गुप्त दोनों तरह से युद्ध करने में बड़े बली हो। तुमने महाबली इन्द्र को भी जीता है। फिर मनुष्यों का मारना क्या बड़ी बात है?

रावण की आज्ञा सुनकर और उसे स्वीकार कर वह यज्ञ-भूमि में आकर विधिपूर्वक हवन करने लगा। होम करते ही वहाँ पर लाल पगड़ी पहने बहुत सी राक्षसियाँ घबराती हुई आईं। उन्होंने पहले की तरह शस्त्र, शरपत्र, बहेड़े की लकड़ियाँ, लाल कपड़े और लोहे के स्रुवा आदि सब चीज़ें लाकर वहाँ रख दीं। शरपत्र और तोमर को उसने अग्नि का आधार बनाया—अर्थात् उनसे अग्नि जलाई। फिर उसने काले रङ्ग के एक जीते हुए बकरे को पकड़ा। उसकी गर्दन काटकर वह होम करने लगा। होम करने से लपट के साथ आग जलने लगी। विजय के सब चिह्न दिखाई दिये। सोने के समान शिखावाली आग ने दक्षिण की ओर होकर, स्वयं उठकर, इसके हवि को ग्रहण किया। अब इसने अग्नि में हवन कर देव, दानव और राक्षसों को तृप्त कर छिप जानेवाला रथ पाया। उस रथ में चार घोड़े जुते हुए थे; उसमें तीखे-तीखे बाण भरे हुए थे। उसमें एक बड़ा धनुष रक्खा हुआ था

और वह बड़ा देदीप्यमान था। वह सोने से बना हुआ था; मृग, चन्द्रमा और अर्द्धचन्द्रों की मूर्त्तियों से सजा हुआ था। वह सोने के कङ्कणों से मनोहर, ज्वाला के सदृश प्रकाशमान और हरे रङ्ग की मणि-पताकाओं से ख़ूब सजा हुआ था।

सूर्य के समान उस ब्रह्मास्त्र से रक्षा किया हुआ इन्द्रजित् बड़ा ही दुर्द्धर्ष हो गया। वह उसी रथ पर चढ़कर लङ्का से बाहर निकला और राक्षसों से कहने लगा—"आज इन झूठे तपस्वी दोनों भाइयों को मारकर पिता को जयलाभ कराऊँगा। आज पृथ्वी पर से वानरों का नाम-निशान मिटाकर बड़ी प्रीति उत्पन्न करूँगा।" बस, अब वह गुप्त हो गया। फिर वानरी सेना में गया। वहाँ वानरों के बीच में तीन-तीन मस्तकोंवाले* नागों के समान खड़े दोनों भाई बाण चला रहे थे; उनको उसने पहचान लिया कि यही राम और लक्ष्मण हैं। यह ज्ञात होते ही वह छलपूर्वक लड़नेवाला राक्षस अपने धनुष को सजाकर बादलों की नाईं बाण वर्षा करने लगा। आकाश में रथ पर चढ़, नेत्रों से छिपकर, वह बड़े तेज़ बाणों से दोनों को मारने और पीड़ा पहुँचाने लगा। वे दोनों भाई बाणों के मारे बिंध गये; उनके शरीरों में बाण ही बाण दिखाई देने लगे। अब उन्होंने अपने धनुष तैयार किये और अच्छे-अच्छे दिव्य अस्त्र लगाकर बाणों से वे आकाश-मण्डल को भरने लगे। यद्यपि इनके अस्त्र सूर्य के समान चमकीले थे, फिर भी उसे छूते तक न थे; क्योंकि वह माया के बल से, धुएँ के समान अन्धकार से, दिशाओं को ढककर छिपा हुआ था। उस समय दिशाएँ ऐसी देख पड़ती थीं मानों कुहरे से भर गई हों। न तो उसकी प्रत्यञ्चा का शब्द सुनाई देता था, न पहिये का और न घोड़ों के सुमों का; और न घूमते हुए उसी का रूप दिखाई देता था। वह तो बादलों के अँधेरे में से पत्थरों की वर्षा की नाईं बाण-वर्षा कर रहा था। सूर्य के समान प्रकाशमान वरदान के बाणों से वह राघव के शरीर को ख़ूब छेद रहा था। जिस तरह पर्वत जल की धाराओं को सहते हैं उसी तरह वे इसके बाणों को सहते हुए अपने सुवर्ण-भूषित बाण चला रहे थे। वे बाण उसके शरीर में लगकर रक्त से भरे हुए ज़मीन पर गिर जाते थे। बहुत बाणों की चोट से पीड़ित वे दोनों पुरुषसिंह उन गिरते हुए बाणों को भल्लाकार बाणों से काटते जाते थे। वे जहाँ देखते थे कि बाण गिर रहा है वहाँ अच्छा अस्त्र चलाते थे। वह राक्षस आकाश में चारों ओर घूम-घूमकर दोनों को मार रहा था। अब बाणों की चोट सहते-सहते वे दोनों भाई फूले हुए ढाक के वृक्ष की नाईं देख पड़ने लगे। उसकी चाल, रूप, धनुष और बाण कुछ भी दिखाई न देता था। मेघमण्डल में छिपे हुए सूर्य की नाईं वह काम कर रहा था। उसके मारे हुए सैकड़ों वानर प्राणरहित होकर ज़मीन पर सो गये।

इतने में लक्ष्मण क्रुद्ध होकर रामचन्द्र से बोले—"हे महाबल! अब मैं ब्रह्मास्त्र चलाऊँगा जिससे सब राक्षस नष्ट हो जायँ। मैं यह लोक राक्षसों से ख़ाली कर डालूँगा।" लक्ष्मण की ये बातें सुनकर राघव बोले—देखो, एक के लिए सब राक्षसों का मारना ठीक नहीं। उनमें से कोई तो

* दोनों ओर दो तरकस और बीच में सिर होने से तीन मस्तक से जान पड़ते थे।

युद्ध नहीं करता, कोई छिपा है, कोई हाथ जोड़े है, कोई शरणागत है, कोई भाग रहा है और कोई मस्त है। तुम्हारा इन सबको मारना अनुचित है। इसलिए हे महाभुज! उसी छल से लड़नेवाले को मारने का उपाय करेंगे। हम बड़े वेगवान् और साँप के समान अस्त्र चलावेंगे जिससे उस मायावी, क्षुद्र और छिपकर रथ पर चलनेवाले को वानरों के सेनापति भी देख सकेंगे और मारेंगे। फिर अगर वह भूमि में या आकाश में अथवा स्वर्ग या रसातल में भी जा घुसेगा तो भी मेरे अस्त्र से जलकर प्राणरहित हो धरती पर आ गिरेगा।

दोहा

एहि विधि वानर-यूथपति, सहित सलखन खरारि।
प्रबल अस्त्र छाँड़न चहत, निशिचर कर वधकारि॥

८१ वाँ सर्ग

इन्द्रजित् का माया की सीता को मारना।

जब इन्द्रजित् ने जाना कि अब तो रामचन्द्र मेरे मारने के लिए कोई न कोई प्रबल अस्त्र छोड़ना चाहते हैं तब झटपट युद्ध बन्द कर वह लङ्का में घुस गया। थोड़ी देर में महाबली राक्षसों का मारा जाना याद कर, क्रोध से लाल आँखें करके, वह फिर पश्चिम द्वार से राक्षसों को साथ लिये निकला। अब वह देवकण्टक दुष्ट क्या देखता है कि दोनों भाई युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। तब तो उसने माया रची। उसने क्या किया कि एक माया की सीता बनाकर उसे रथ पर बैठा लिया और मारने को तैयार हुआ जिससे सबकी बुद्धि मोहित हो जाय। वह बनावटी सीता को लेकर वानरों के पास गया। उसे निकलते देख वानर क्रोधपूर्वक हाथों में पत्थर लेकर दौड़े। उन सबके आगे हनुमान् एक भारी पर्वत का शिखर लेकर बढ़े। परन्तु उन्होंने इन्द्रजित् के रथ पर श्रीरामचन्द्रजी की प्रिया को देखा। वे उलझे हुए केशों की एक वेणी किये, दीन, उपवास करने से दुबली, मलिन, एक कपड़ा पहने, धूल और मैल से बहुत मैली थीं। उन्हें देखकर वानर आँखों में आँसू भर के बड़े दुखी हुए। वे कहने लगे—"देखो, शोकपीड़ित और आनन्दरहित तपस्विनी वैदेही का अब यह दुष्ट क्या करना चाहता है?" यह कहकर वे वानरों के साथ उस पर दौड़े। जब उस दुष्ट ने देखा कि ये सब वानर मेरे ऊपर दौड़े आ रहे हैं तब झट तलवार खींचकर सीता के बाल पकड़ लिये और उन सबके देखते ही उसने 'राम, राम' रटती हुई जानकी को मारना शुरू किया। सीता के बालों का पकड़ना देख वायुपुत्र दीन हो गये और दुःख से आँसू बहाने लगे। सीता की वह दशा देख उनसे न रहा गया। वे क्रोध में भरकर दुष्ट इन्द्रजित् से बोले—रे दुष्ट! तू अपने नाश के लिए इसके बाल खींच रहा है। तू ब्रह्मर्षियों के वंश में पैदा होकर राक्षस-योनि में पैदा हुओं का सा काम करता है! अरे पापी! जो तेरी ऐसी ही बुद्धि है तो तुझे धिक्कार है। अरे घातक, अधम, दुराचारी, नीच! अरे पाप की बहादुरी दिखानेवाले! तू यह नीच काम कर रहा है। अरे निर्दय! तुझे दया नहीं आती? देख तो सही, यह बेचारी सीता घर से, राज्य से और श्रीराघव से रहित हुई आप ही दुखी है। इसने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू इसको मारता है? अरे निर्दय! देख, सीता को मारकर तू किसी तरह बहुत समय तक जीता नहीं रह सकता। तू अपने

मारे जाने के लिए यह काम कर रहा है और अब तो तू मेरे हाथ में आ गया है। देख, स्त्री की हत्या करनेवालों के लिए जो लोक हैं वही तुझे मिलेंगे। उन लोकों से चोर आदि भी घिन करते हैं।

इस तरह कहते हुए हनुमान् उन वानरों के साथ उस पर दौड़े; परन्तु उसने अपनी राक्षसी सेना द्वारा उन सबको रोक दिया। वह ख़ुद भी हज़ारों बाणों से वानरी सेना को भयभीत करता हुआ हनुमान् से बोला—"देखो तुम, सुग्रीव और राम जिसके लिए यहाँ आये हो उस सीता को ही मैं तुम्हारे आगे मारे डालता हूँ। इसके मारने के बाद राम, लक्ष्मण, तुम, सुग्रीव और वह नीच विभीषण—सब मेरे हाथ से मारे जायँगे। हे वानर! तुमने कहा कि स्त्री का मारना अनुचित है, सो मैं तो यह समझता हूँ कि शत्रुओं को कष्ट पहुँचानेवाला काम, अनुचित हो चाहे उचित, करना ही चाहिए। रामचन्द्र ने ताड़का को क्यों मारा? मैं भी उनकी रानी जनकनन्दिनी को मारूँगा।" अब उसने रोती हुई मायारूप सीता को तलवार से मार डाला। सिर कट जाने से वह ज़मीन पर गिर पड़ी। सीता को मारकर इन्द्रजित् हनुमान् से बोला—"देखो, राम की प्यारी रानी को मैंने शस्त्र से काट डाला। अब तुम्हारा पराक्रम व्यर्थ है।" इतना कहकर रथ पर चढ़ा हुआ वह बड़े ज़ोर से गरजा। वहाँ जो वानर खड़े हुए थे उन्होंने मुँह फाड़े हुए उस दुष्ट राक्षस की गर्जना सुनी।

दोहा

माया-सीतहि मारि इमि, मुदित नद्यो घननाद।
कपिगण हर्षित देखि तेहि, भागे परम विषाद॥

८२वाँ सर्ग

थोड़ा युद्ध करने के बाद मेघनाद का निकुम्भिला में जाकर यज्ञ करना।

अब वानर रावण के पुत्र की भयङ्कर गर्जना सुनकर चारों ओर देखते हुए भागने लगे। उनके मुँह सुस्त और दीन थे। भागते हुए वानरों से हनुमान् कहने लगे—"हे वानरो! खेद करते हुए क्यों भागते हो? युद्ध का उत्साह क्यों छोड़ते हो? तुम्हारी बहादुरी कहाँ गई! देखो, मैं लड़ने के लिए आगे बढ़ता हूँ। मेरे पीछे-पीछे तुम लोग आओ। अरे, वीर और कुलीन का यह काम नहीं है कि संग्राम से मुँह मोड़ें।" इस तरह वायुपुत्र की उत्साह भरी बातें सुनकर वे सब पर्वत और वृक्ष ले-लेकर ख़ुश होते हुए युद्ध करने के लिए तैयार हुए। वे सब राक्षसों पर जा टूटे; हनुमान् को इधर-उधर से घेरकर उन्हीं की आज्ञा के अनुसार युद्ध करने लगे। हनुमान् भी, उन सबको साथ लिये, ज्वाला से प्रकाशमान अग्नि की नाईं, शत्रु की सेना को भस्म करने लगे। उस समय वायुपुत्र ने बड़े राक्षसों का नाश किया। ऐसा नाश किया मानो मृत्यु नाश करे। वे सीता के शोक से व्याकुल थे; फिर भी बड़े क्रोध से एक पत्थर उठाकर उन्होंने इन्द्रजित् के रथ पर फेंका। उसका सारथि बड़ा चतुर था। घोड़े भी उसके सधे हुए थे। वे अच्छी तरह पैंतरा बदलना जानते थे। इसलिए सारथि ने घोड़ों को पैंतरे से इतना दूर हटा लिया कि वह पर्वताकार पत्थर रथ पर न गिरने पाया; ज़मीन पर गिरकर टूट गया। हनुमान् का प्रहार व्यर्थ तो गया पर उसके गिरने से बहुत से राक्षस पिस

गये। अब वानर वृक्षों और पत्थरों को ले-लेकर इन्द्रजित् पर दौड़े और उस पर फेंकने लगे। वे बड़ी गर्जना के साथ राक्षसों का मथन करने लगे। उनके मारे हुए राक्षस ज़मीन पर गिरकर छटपटाने लगे। अपनी सेना की दुर्दशा देख इन्द्रजित् आयुध लेकर दौड़ा और बाण-वर्षा करने लगा। वह मुख्य-मुख्य वानरों को शूल, वज्र, तलवार, पटा और काँटेदार मुद्गरों से मारने लगा। वानर भी उसकी सेना का नाश करते रहे। हनुमान् भी वृक्षों, पर्वतों और पत्थरों से मुख्य-मुख्य राक्षसों को मार रहे थे। इस तरह युद्ध करते-करते हनुमान् ने शत्रु की सेना को भगा दिया। फिर वानरों से कहा—"भाइयो! अब लौट चलो। यह सेना हमारे वश की नहीं है; क्योंकि हम लोग प्राण होम कर रामचन्द्र का प्रिय काम करते थे। जिसके लिए इतना कष्ट सहते थे वह जानकी ही मारी गई तो अब कुछ करना व्यर्थ है। चलो, अब यह समाचार राम और सुग्रीव से कहें। फिर जैसा वे कहेंगे वैसा किया जायगा।" यह कहकर और सेना को लौटाकर हनुमान् धीरे-धीरे लौटने लगे। इन्द्रजित् ने देखा कि हनुमान् ने युद्ध से मुँह फेर लिया। फिर तो वह दुष्ट होम करने की इच्छा से निकुम्भिला देवी के मन्दिर में पहुँचा और वहाँ हवन करने लगा। रक्त की आहुति पाकर आग जल उठी; उसकी ज्वाला सन्ध्या-समय के सूर्य की नाईं ढकी हुई सी देख पड़ने लगी। उसका तेज तीव्र झलकने लगा।

दोहा

उहाँ इन्द्रजित् जाय खल, ठयौ सुहोम विधान।
रक्षक भे तहँ रजनिचर, नीति अनीति सुजान॥

८३ वाँ सर्ग

सीता के मारे जाने का समाचार सुन राम का मूर्च्छित होना और लक्ष्मण का समझाना।

रामचन्द्र ने वानरों और राक्षसों के संग्राम में बड़ा कोलाहल सुना। उन्होंने जाम्बवान् से कहा—"हे सौम्य! मैं समझता हूँ कि हनुमान् ने युद्ध में कोई बड़ा कठिन काम किया है; क्योंकि शस्त्रों का बड़ा भारी शब्द यहाँ से सुन पड़ता है, इसलिए तुम भी अपनी सेना लेकर वहाँ जाओ और उसकी सहायता करो।" महाराज की आज्ञा पाकर वे सेना लेकर पश्चिम द्वार की ओर चले; परन्तु उन्होंने देखा कि हनुमान् लौटे आ रहे हैं। वानर भी लड़कर, ऊपर-नीचे साँस लेते, हनुमान् को घेरे हुए लौटे आते हैं। हनुमान् ने भी भालुओं की सेना देखी, जो नीले बादलों के समान भयङ्कर थी। उसे देखते ही उन्होंने युद्ध के लिए मना कर दिया। फिर उन सबको साथ ले वे रामचन्द्र के पास आये और दुखी होकर कहने लगे—"महाराज! संग्राम में युद्ध करते समय हम लोगों के सामने ही रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने सीता को मार डाला। वह काम देखकर मैं व्याकुल और दुखी होकर आपके पास निवेदन करने आया हूँ।" हनुमान् के मुँह से यह वाक्य निकलते ही रामचन्द्रजी शोक से मूर्च्छित हो गये और ज़मीन पर इस तरह गिर पड़े जैसे कटा हुआ वृक्ष गिरता है। देवतुल्य रामचन्द्र को ज़मीन पर गिरे देखकर वानर चारों ओर से उन्हें घेरकर खड़े हो गये। वे उनको कमलों से सुगन्धित जल के छींटे देने

लगे, जिस तरह जलानेवाली बहुत जलती हुई आग को लोग बुझाते हैं ।

राम को दुखी देखकर लक्ष्मण भी बहुत दुखी हुए और दोनों भुजाओं से भाई को थामकर बोले—हे आर्य! मङ्गल मार्ग पर आरूढ़ और जितेन्द्रिय आपको अगर यह धर्म अनर्थों से नहीं बचा सकता तो व्यर्थ है । देखिए, स्थावर और जङ्गम—स्थिर रहनेवाले और चलनेवाले—जीव-धारियों का जैसा प्रत्यक्ष दर्शन होता है, वैसा धर्म का नहीं । अर्थात् फल के द्वारा भी उसका अनुमान नहीं कर सकते । इसलिए हमारी समझ में वह है ही नहीं । भाई! जैसे स्थावर और जङ्गम दोनों प्रत्यक्ष हैं वैसा धर्म या धर्म का फल प्रत्यक्ष नहीं है । यदि होता तो आप जैसे महात्मा ऐसी विपत्ति में क्यों पड़ते ? और, मेरी समझ में, अधर्म भी कुछ नहीं है; क्योंकि अगर अधर्म ठीक है तो रावण को नरक में जाना चाहिए, और आप जैसे धर्मात्मा को दुःख न मिलना चाहिए । सो रावण को तो दुःख न हुआ, उलटा आपही दुखी देख पड़ते हैं । इससे तो यही मालूम होता है कि धर्म ही अधर्म है और जो अधर्म है वही धर्म है । यह परस्पर-विरोध देख पड़ता है । यदि धर्म से सुख और अधर्म से दुख मिले तो यह ज़रूर होना चाहिए कि जिनमें अधर्म का वास है, जो अधर्मी हैं, वे दुख पावें । जिनमें अधर्म की रुचि नहीं है, जो अधर्म को अपने पास नहीं फटकने देते, वे कभी सुख से अलग न किये जायँ । धर्म-मार्ग से आचरण करने में उनको सुख रूप फल की प्राप्ति होनी चाहिए । परन्तु यह तो देख नहीं पड़ता; क्योंकि जिनमें अधर्म ने अपना अड्डा बनाया है उनकी अर्थवृद्धि देखी जाती है । वे रात-दिन फलते-फूलते दिखाई देते हैं और बेचारे धर्मशील दुःख पाते देखे जाते हैं । इससे ये दोनों—धर्म, अधर्म—व्यर्थ हैं; इनका कुछ काम नहीं । पाप करनेवाले यदि अधर्म से मारे जाते हैं तो यह भी ठीक नहीं समझ पड़ता; क्योंकि जितनी क्रियाएँ हैं वे सब तीन क्षण रहती हैं । चौथे क्षण में उनका नाश आप ही हो जाता है । अधर्मरूप क्रिया तो ख़ुद नष्ट हो गई । अब वह है ही नहीं । फिर वह मारेगी किसको ? अगर कहो कि मारण आदि अभिचार कर्म के द्वारा प्राणी मारा जाता है और वह दूसरे को भी मारता है—यह क्या है ? तो मैं कहूँगा कि उस पाप के द्वारा उस कर्म का ही बन्धन होता होगा; परन्तु उससे कर्त्ता (करनेवाले) को कुछ भी नहीं । हे शत्रुनाशिन्! धर्म वर्त्तमान होने पर भी वह मारना आदि कार्य करने के पाप में लिप्त नहीं हो सकता । क्योंकि अपनी शक्ति से अनुभव होनेवाला, असत् कल्पना किया हुआ, अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतन है । इसलिए वह अपने कर्त्तव्य (शत्रु को वश में करने आदि कार्य) का कुछ भी नहीं जानता । असल में यदि धर्म होता तो आपको कुछ भी दुःख न होना चाहिए था; सो तो है नहीं । क्योंकि आप ऐसे धर्मात्मा होकर ऐसा भारी दुःख पा रहे हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि वह है ही नहीं । यदि वह धर्म दुर्बल और पुरुषार्थ (सत्व)-रहित है, अतएव केवल बल के अनुसार बर्तता है तो मैं कहता हूँ कि ऐसे दुर्बल और मर्यादारहित का कभी सेवन न करना चाहिए । धर्म यदि बल का ही एक अंश (हिस्सा) है तो उसको छोड़कर बल और पराक्रम के द्वारा व्यवहार कीजिए । क्योंकि

जैसा धर्म वैसा ही बल; या यदि आप सत्य वचन पालनरूप धर्म मानते हों तो आपने एक भी ऐसा काम नहीं किया जिससे आपमें असत्यता आ गई हो। अर्थात् पिता ने पहले तो आपका राज्याभिषेक करने को कहा; वह कहना सत्यरूप धर्म था। उसे आपने पहले तो स्वीकार कर लिया; फिर मना कर दिया। यही नहीं, किन्तु राज्याभिषेक को स्वीकार न करने से पिता के प्राण भी गये और धर्म भी छूटा। महाराज! धर्म या अधर्म दोनों में से एक के ही भरोसे रहना भी ठीक नहीं। यदि ऐसा होता तो मुनि को मारकर फिर इन्द्र यज्ञ क्यों करते? इससे यह बात सिद्ध होती है कि अधर्म मिला हुआ धर्म शत्रु का नाश करता है। इसी से लोग ऐसा ही करते भी हैं। हे भाई! मेरी राय में वही धर्म है। आपने राज्य का त्याग क्या किया मानों धर्म को जड़ से काट डाला; क्योंकि सम्पत्ति (धन-दौलत) ही धर्म का मूल है। जब इधर-उधर से लाकर सम्पत्तियाँ इकट्ठी की जाती हैं और वे बढ़ती हैं तब उनके द्वारा सब काम हो सकते हैं। उन्हीं के द्वारा सब क्रियाएँ निकली हैं, जैसे पर्वतों से नदियां। अर्थहीन (धनरहित) मनुष्य मन्द-बुद्धि हो जाता है। उस समय उसके सब काम बिगड़ जाते हैं। उसे सब काम छोड़ देते हैं—उसकी दशा गर्मी की ऋतु के तालाब की सी हो जाती है। जब मनुष्य धन त्यागकर सुख चाहता है, क्योंकि पहले उसका सुख में ही पालन-पोषण हुआ है, तब वह पाप करने के लिए तैयार होता है। वही समय बुराइयों के पैदा होने का है। हे प्रभो! जिसके पास सम्पत्ति होती है उसी के मित्र और उसी के बन्धु होते हैं। संसार में सम्पत्तिवाला ही पण्डित, पराक्रमी और बुद्धिमान् कहलाता है; वही बड़ी भुजाओंवाला, और वही सबसे अधिक गुणी कहलाता है। हे धीर! देखिए, धन के त्याग में सब दोष ही दोष हैं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आपने राज्य का परित्याग कर धन का मूलोच्छेद कर डाला। देखिए, जिसके पास धर्म और काम के लिए धन वर्तमान है उसके लिए सब कुछ उसके पास ही है। अर्थात् वह जो काम करना चाहेगा उसे धन की सहायता से कर सकता है। जो धनहीन होकर अपना काम पूरा करना चाहता है उसका कोई भी काम पूरा नहीं होता। आनन्द, काम, दर्प (घमण्ड), धर्म, क्रोध, शान्ति और दम—ये सब धन की ही सहायता से सिद्ध होते हैं। हे नराधिप! धर्मचारियों का सांसारिक पुरुषार्थ जिन धनों के बिना नष्ट होता है वे धन तुम्हारे पास बिलकुल नहीं देख पड़ते, जैसे कि दुर्दिन में तारे दिखलाई नहीं देते। देखिए, पिता के कहने से वन में आने के कारण राक्षस ने तुम्हारी स्त्री का हरण कर लिया। इसके बाद इन्द्रजित् ने तो बहुत ही दुःख का काम कर डाला। परन्तु मैं अपने काम से इस दुःख को मिटा दूँगा। आप उठिए। हे नर-शार्दूल, दीर्घ-बाहो, धृतव्रत, हे महात्मन्! आप अपने माहात्म्य की याद क्यों नहीं करते?

दोहा

जनकसुता कर देखि बध, हे रघुकुल-सिरताज।
बाण-निकर ते लङ्क कहँ, मारि ढहावहु आज॥

८४ वाँ सर्ग

मेघनाद के मारने के लिए विभीषण की सलाह ।

इधर लक्ष्मण रामचन्द्रजी को समझा ही रहे थे कि उधर से विभीषण, सेनाओं को यथोचित स्थानों पर ठहराकर, चारों राक्षसों को साथ लिये आये। वे क्या देखते हैं कि रामचन्द्र तो शोक-ग्रस्त हैं और वानर आँखों में आँसू भरे खड़े हैं। लक्ष्मण की गोद में रामचन्द्र बेहोश, लज्जित और शोक में डूबे हुए सो रहे हैं। यह दशा देखकर विभीषण भी ग़रीब मनुष्य की नाईं दुखी होकर बोले—भाई! यह क्या है? तब लक्ष्मण ने विभीषण, सुग्रीव और वानरों की ओर देख, आँखों में आँसू भरकर, धीरे से कहा—"इन्द्रजित् ने सीता को मार डाला, इतना हनुमान् के मुँह से सुनते ही श्रीराघव मूर्च्छित हो गये।" लक्ष्मण की बात सुनकर विभीषण ने उस बात को ठीक नहीं माना।

वे रामचन्द्र से कहने लगे—हे मनुजेन्द्र! हनुमान् ने आर्त्त होकर जो बात आपसे कही उसे मैं असम्भव समझता हूँ। जैसे समुद्र का सूख जाना असम्भव है वैसे ही वह बात भी है। मैं रावण का मतलब ख़ूब जानता हूँ। वह सीता को कभी न मारने देगा; क्योंकि मैंने उससे बहुत प्रार्थना की थी कि सीता को छोड़ दे, पर उसने मेरी बात नहीं मानी। हे राम! साम, दान और भेद से तो कुछ हुआ नहीं, फिर युद्ध तो दूर की बात है! क्या सीता को कोई दूसरा देख भी सकता है? वह इन्द्रजित् वानरों को धोखा दे गया है। वह सीता माया की थी। अब वह दुष्ट तुम लोगों को धोखा देकर ख़ुद निकुम्भिला देवी के मन्दिर में जाकर होम करेगा। यदि वह होम करके आता है तो फिर संग्राम में इन्द्र आदि से भी दुराधर्ष हो जाता है। इसी भुलावे में डालने के लिए उसने माया करके तुम लोगों को ठग लिया और वानरों के पराक्रम में विघ्न डाला। हे राघव! जब तक उसका होम समाप्त नहीं होता तब तक हम सेना लेकर वहाँ पहुँचेंगे। आप वृथा सन्ताप न कीजिए। आपके शोक करने से सब सेना भी शोक करती है। आप, यहीं, स्वस्थचित्त होकर बैठिए, लक्ष्मणजी को हमारे साथ कर दीजिए। ये अपने बाणों से उसका होम करना छुड़ा देंगे। फिर वह मारने के योग्य हो जायगा। लक्ष्मण के पैने-पैने और बड़े वेगवाले बाण, पक्षी की तरह उड़कर, उसका रक्त पी लेंगे। हे महाबाहो! अब आप लक्ष्मण को आज्ञा दीजिए, जिससे उस राक्षस का जल्दी नाश हो। राक्षस के नाश के लिए जैसे इन्द्र वज्र को आज्ञा देते हैं उसी तरह आप भी आज्ञा दीजिए। अब समय नहीं है। इस समय यही करना ठीक है। आप देर न कीजिए।

दोहा

यदि करि कर्म-समाप्ति सो, आवत रण महँ वीर।
महाप्राण-संशय प्रभो! होत सुरनि कहँ धीर॥

---

८५ वाँ सर्ग

सेना-सहित लक्ष्मण का निकुम्भिला में जाना

यद्यपि विभीषण ने सब भेद समझाकर कहा तथापि रामचन्द्र को ढाढ़स न बँधा। परन्तु धैर्य धरकर श्रीराघव विभीषण से बोले—"हे राक्षस-

राज ! तुमने क्या कहा ? उस बात को फिर तो कहो।" रामचन्द्र के कहने पर विभीषण फिर बोले—महाराज! आपने सेना नियत करने के लिए जैसी आज्ञा की थी उसी प्रकार से मैंने सब कुछ कर दिया। उन झुण्डों का यथोचित विभाग करके सेनापतियों को यथास्थान नियुक्त कर दिया। परन्तु आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि आपका व्यर्थ शोक करना देखकर हम सब भी बड़े दुखी हो गये। राजन् ! इस व्यर्थ सन्ताप को आप छोड़ दीजिए। आपकी यह चिन्ता शत्रु के आनन्द को बढ़ानेवाली है। उद्योग कीजिए और आनन्द का सहारा लीजिए। यदि आपको सीता का पाना और राक्षसों का मारना अभीष्ट हो तो मैं जो कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनिए। ये लक्ष्मणजी बड़ी सेना लेकर निकुम्भिला को चलें और मेघनाद को मारें। क्योंकि उस दुष्ट ने ब्रह्मा के वरदान से ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और कामगामी घोड़े पाये हैं। सेना-सहित वह निकुम्भिला में जाकर बैठा है। यदि वह अपना पूरा काम करके उठेगा तो हम सबको मरा हुआ जानिए। जब ब्रह्मा ने उसे वर दिया था तब कहा था कि 'जिस समय तुम निकुम्भिला में न पहुँचोगे और अग्नि का पूरा हवन न कर चुकोगे, इतने ही समय में—इसी बीच में—जो तुमको मारेगा वही तुम्हारा मृत्यु है।' राजन् ! इस तरह उसकी मृत्यु निश्चित है। इसलिए उसे मारने की आज्ञा महाबली लक्ष्मण को दीजिए। हे प्रभो ! जब वह मारा जायगा तब बन्धु-बान्धवों-सहित रावण को भी मरा हुआ ही समझिए।

विभीषण की ये बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—"हे सत्यपराक्रमी, उस भयङ्कर की माया को मैं जानता हूँ। वह ब्रह्मास्त्र के चलाने में बड़ा चतुर और मायावी है। मैं समझता हूँ कि वह संग्राम में वरुण-सहित देवताओं को भी मूर्च्छित कर देता होगा। हे महाकीर्तिवाले ! जब वह रथ पर चढ़कर आकाश में घूमने लगता है तब, घटाओं में सूर्य की तरह, उसकी चाल बिलकुल नहीं जान पड़ती।" इस तरह रामचन्द्र भी उस राक्षस की माया और बड़ी बहादुरी का विचार कर लक्ष्मण से बोले—"हे लक्ष्मण ! तुम अपने साथ वानरी सेना को, हनुमान् आदि वीरों को, और जाम्बवान् को उनकी सेना-सहित ले जाकर उस मायावी राक्षस को मारो। राक्षसों के साथ यह महात्मा राक्षसराज तुम्हारे पीछे-पीछे जायगा; क्योंकि यह उसकी माया को अच्छी तरह जानता है।" रामचन्द्रजी की यह आज्ञा सुनकर लक्ष्मणजी विभीषण के साथ हो लिये। दूसरा धनुष लेकर उन्होंने कवच पहना और बाणों को सुधारकर रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम कर कहा—"आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण रावण के लड़के के शरीर को छेदकर लङ्का में जा गिरेंगे जैसे पुष्करणी में हंस जाते हैं। आज ही उस भयानक के अङ्गों को मेरे बाण छेदकर ध्वस्त कर डालेंगे।" यह कहकर, इन्द्रजित् को मारने की इच्छा से, लक्ष्मण रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा कर तथा यात्रा का शुभ आशीर्वाद पाकर चले। इनके साथ कई हज़ार वानरों-सहित हनुमान् और अपने मन्त्रियों के साथ विभीषण चले; तथा और-और वानरों की सेना और ऋक्ष-राज की भी सेना तैयार होकर चल दी। बहुत दूर जाकर जब लक्ष्मण ने देखा कि राक्षसेन्द्र की सेना व्यूह बनाये खड़ी है तब वे वहाँ जाकर

और माया का योग समझ ब्रह्मा के वरदान की रीति से उसको जीतने के लिए खड़े हो गये। महावीर अङ्गद, पवनकुमार हनुमान् और राक्षस-राज विभीषण लक्ष्मण के साथ थे। राक्षसों की सेना अनेक तरह के चमकीले दमकीले अस्त्र-शस्त्र धारण किये शोभा पा रही थी। वह सेना रथों और ध्वजाओं के डण्डों से बहुत बड़ी और दुर्गम थी। उसके वेग का कुछ पार न था। लोग जिस तरह बड़े भारी अन्धकार में घुसते हैं उसी तरह वीर लक्ष्मण शत्रु की सेना में घुस गये।

८६वाँ सर्ग

मेघनाद से युद्ध।

उस समय विभीषण लक्ष्मण से शत्रुओं का अहित-कारक और अपना कार्य-साधक वाक्य बोले— हे लक्ष्मण! मेघों के समान उस काली राक्षसों की सेना को वानर लोग पत्थरों से मारें। तुम भी इसी को तितर-बितर करने का उपाय करो। जब यह सेना इधर-उधर हो जायगी तब वह दुष्ट देख पड़ेगा। तुम इन्द्र के वज्र के समान और सूर्य की किरणों की नाईं चमकीले बाणों से इसे काटो। यह काम जल्दी करो। जब तक उसका काम समाप्त न होने पावे तब तक यह काम कर लो। हे वीर! दुरात्मा, मायावी, पापी, क्रूरकर्मा, और सबसे भयङ्कर रावण के इस पुत्र को मारो।

यह सुनकर लक्ष्मण उसी ओर बाण-वर्षा करने लगे। भालू और वानर बड़े-बड़े वृक्ष लेकर उसी सेना की ओर दौड़े। उस सेना के राक्षस भी पैने-पैने बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरों से वानरी सेना पर प्रहार करने लगे। अब उन वानरों और राक्षसों का ऐसा भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ जिससे सारी लङ्का में शोर फैल गया। अनेक तरह के शस्त्रों, बाणों, वृक्षों और घोर पर्वत-शिखरों से आकाश ढका हुआ सा दिखाई देने लगा। भयङ्कर मुँह और भुजाओंवाले राक्षस बड़े-बड़े शस्त्र चलाते हुए बड़ा डर पैदा करते थे। उसी तरह वानर भी वृक्ष और पर्वत ले-लेकर दौड़ते और मारते थे। महाबली भालुओं और वानरों के साथ लड़ते-लड़ते राक्षसों को बड़ा डर लगा। अब इन्द्रजित् ने सुना कि हमारी सेना का शत्रु लोग अच्छी तरह मर्दन कर रहे हैं, इसलिए वह दुर्धर्ष अपना होम अधूरा छोड़कर वहाँ से उठा और वृक्षों के अँधेरे में से निकला। क्रुद्ध होकर वह पहले के जोते हुए रथ पर चढ़ गया। उस समय वह भयङ्कर धनुष और बाणों को लिये हुए काजल के समूह के तुल्य, लाल मुँह और लाल ही भयङ्कर आँखें किये, दूसरे संहार-कारक मृत्यु की नाईं देख पड़ता था। जो राक्षसी सेना लक्ष्मण के साथ लड़ रही थी वह उसको रथ पर सवार देख फिर तैयार हुई। उस समय पर्वत के समान बड़े हनुमान्‌जी एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़-कर, कालाग्नि की नाईं जलाते हुए, राक्षसी सेना पर दौड़े। उन्होंने ऐसी मार मारी कि राक्षसी सेना के छक्के छूट गये।

हनुमान् को सेना का नाश करते देख हज़ारों राक्षस इन पर टूट पड़े। राक्षस लोग शूल, तलवार, धनुष, शक्ति, पटा, परिघ, गदा, बर्छी, बन्दूक, लोहे के मुद्गर, परशु और भिन्दिपाल आदि अस्त्र-शस्त्र अलग-अलग लेकर उन्हें मारने लगे। कोई-कोई वज्र के समान मुक्का और बड़े ज़ोर से थपेड़ा चलाने

लगे। चारों ओर से उन्होंने पर्वताकार वायुपुत्र को घेर लिया। जब मेघनाद ने देखा कि यह पर्वताकार वानर तो बड़ा नाश कर रहा है तब वह अपने सारथि से बोला—मेरा रथ इस वानर के पास ले चलो; नहीं तो यह मेरी सब सेना को चौपट कर डालेगा।

उसकी आज्ञा से सारथि ने उसे वायुपुत्र के पास पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचते ही वह हनुमान् के ऊपर बाण, तलवार, पटा और परश्वध चलाने लगा। उसके भयङ्कर प्रहार सहते हुए क्रोध में भरकर हनुमान् बोले—"हे रावण के पुत्र दुर्बुद्धे! यदि तुम बहादुर हो तो लड़ाई करो। अब तुम वायुपुत्र के सामने आकर जीते-जी नहीं जा सकते। हे राक्षसों में नीच! यदि तुम मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध (कुश्ती) करना चाहते हो तो आओ; भुजाओं से लड़ो और मेरा वेग सहो।" उस समय हनुमान् को मारने की इच्छा से इन्द्रजित् को धनुष उठाये देखकर लक्ष्मण से विभीषण बोले—हे लक्ष्मण! सुरों और असुरों के जीतनेवाले रावण के पुत्र को देखो। वह दुबारा रथ पर चढ़कर हनुमान् को मारना चाहता है। अब तुम दुर्धर्ष शत्रुओं के रोकनेवाले, घोर और प्राणों का अन्त करनेवाले, बाणों से इसको मार ही डालो।

दोहा

उचित विभीषण वचन सुनि, श्रीलक्ष्मण रणधीर।
देख्यो रावण-तनय कहँ, पर्वत सम बलवीर॥

---

८७ वाँ सर्ग

विभीषण और मेघनाद का एक दूसरे को धिक्कारना।

इतना कहकर विभीषण लक्ष्मण को साथ लेकर चले। थोड़ी ही दूर जाकर विभीषण ने उस बड़े जङ्गल में घुसकर लक्ष्मण को उसके सब होम के काम दिखला दिये। वहाँ नीले बादल के समान बड़ा भयङ्कर एक वट का वृक्ष था। उसे लक्ष्मण को दिखलाकर विभीषण बोले—"यहीं वह राक्षस होम की भेंट चढ़ाता है और फिर ऐसा छिप जाता है कि उसे कोई नहीं देख सकता। इसके बाद वह संग्राम में शत्रुओं को अपने बाणों से बेधता है। हे लक्ष्मण! जब तक वह बरगद के नीचे नहीं जाता उससे पहले ही घोड़े, सारथि और रथ-समेत इसको अपने जलते हुए बाणों से मार गिराओ।" यह सुनकर लक्ष्मण ने "बहुत अच्छा" कहा। फिर वे अपना धनुर्बाण लेकर खड़े होगये। इतने में अग्नि के तुल्य रथ पर चढ़ा हुआ, कवच पहने और तलवार लिये, वह मेघनाद देख पड़ा। तब लक्ष्मण बोले—"हे राक्षस! मैं तुझे युद्ध के लिए ललकारता हूँ। आओ, हमारा और तुम्हारा युद्ध हो।" यह सुनकर रावण के शूर पुत्र ने वहाँ विभीषण को भी खड़ा देखा। उनको देखकर वह कड़ी-कड़ी बातें कहने लगा—हे राक्षस! तुम इसी राक्षस-कुल में पैदा हुए। तुम मुझसे बड़े, मेरे पिता के भाई, हो। तुम मेरे चचा होकर मुझसे वैर क्यों करते हो? हे बुरी मतिवाले, धर्मदूषक! भला सुनो तो; न तो तुम इन लोगों की बिरादरी के, न मित्र, न जाति-धर्मवाले, न प्रामा-

णिक और न एक पेट से पैदा हो। इनमें कुछ धर्म भी तो नहीं पाया जाता। फिर तुमने अपने लोगों को छोड़कर दूसरों का दासभाव किसलिए स्वीकार किया है? हे दुर्बुद्धे! तुम अच्छे आदमियों-द्वारा निन्दनीय हो। तुम्हारे विषय में हमको बड़ा शोक है। तुम अपनी बड़ी निन्दा को अपनी थोथी बुद्धि के कारण नहीं समझते! भला सोचो तो सही, कहाँ तो अपने लोगों के साथ रहना और कहाँ नीच दूसरे का सहारा लेना! चाहे दूसरा पुरुष गुणवान् ही क्यों न हो, पर उसकी अपेक्षा अपना निर्गुण आदमी ही भला है। दूसरा हर तरह से दूसरा ही है। देखो, जो अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष का सेवन करता है वह अपने पक्ष के नाश होने पर दूसरों से मारा जाता है। हे रावण के छोटे भाई! यह जो तुम्हारा निर्दयपना है वह हमारे पक्षवालों में से तुम्हारे ही पौरुष से साध्य है; तुम्हीं ऐसा काम कर सकते हो। दूसरा नहीं।

भतीजे की ये बातें सुनकर विभीषण बोले—हे राक्षस! मेरे स्वभाव को जाने बिना तुम क्यों बकते हो? हे असाधु, राक्षसराजपुत्र! मैं तुम्हारा चचा हूँ, इसलिए मेरा गौरव मानकर तुम कठोर बातें कहना छोड़ दो। यद्यपि मैं क्रूरकर्मा राक्षसों के कुल में पैदा हुआ हूँ तथापि कठोर का सङ्ग मुझे अच्छा नहीं लगता; और न अधर्म में मेरी रुचि है। भला सुनो तो, क्या भाई को यही उचित है कि अपने सगे भाई को घर से निकाल दे? चाहे भाई का स्वभाव दुष्ट ही हो पर उसको रखना ही चाहिए। हे मेघनाद! जो धर्म से पतित है और पापकर्मा है उसको छोड़ देने से ही सुख मिलता है, जिस तरह हाथ से साँप को छोड़ देने में आराम है। बुद्धिमान् कहते हैं कि जो दूसरे का धन और पराई स्त्री का हरण करता हो उसे जलते हुए घर की नाईं छोड़ देना चाहिए। दूसरे के धन का हरना, पराई स्त्रियों पर हाथ डालना और अपने मित्रों पर शङ्का करना—ये तीनों बुराइयाँ नाशकारक हैं। जो ऐसे काम करता है उसका नाश ज़रूर होता है। देख, महर्षियों का मारना, देवताओं के साथ वैर, अभिमान, क्रोध, वैर और विरुद्धता—ये सब दोष मेरे भाई में हैं। ये बुराइयाँ उसके जीते-जी उसके ऐश्वर्य का नाश करनेवाली हैं। जिस तरह मेघ पर्वतों को ढक लेते हैं उसी तरह इन दोषों ने उसके गुणों को छिपा लिया है। इन्हीं बुराइयों के कारण मैंने अपने भाई—तेरे पिता—को छोड़ दिया। हे राक्षस! अब तो न यह लङ्का रहेगी, न तू रहेगा और न तेरा पिता बचेगा। यद्यपि तू लड़का है तथापि बड़ा अहङ्कारी और असभ्य है। अब तू कालपाश में बँध रहा है। जो चाहे सो बक। आज तुझ पर यह विपत्ति आ पड़ी, इसी से तूने मुझे कठोर वचन कहे हैं। हे राक्षसाधम! अब तुझे सामर्थ्य नहीं कि तू फिर उस वट-वृक्ष के नीचे जा सके। अब तू रामचन्द्रजी का तिरस्कार करके जी भी नहीं सकता। तू नरदेव लक्ष्मण के साथ युद्ध कर। जब तू मारा जायगा तब यमलोक में जाकर देवताओं को सन्तोष देना।

दोहा

निज बल अरु आयुध प्रबल, दिखरावहि अब नीच।
आय बनी सौमित्रि कर, सेन-सहित तव मीच॥

———

८८ वाँ सर्ग

लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध ।

विभीषण की यथार्थ बातें सुनकर इन्द्रजित् बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कूदकर कड़ी-कड़ी बातें कहने लगा। फिर वह तलवार उठाकर काले घोड़ों से जुते हुए अच्छे रथ पर चढ़ा। उस समय वह भयानक रूपवाला कालमृत्यु के समान था। हाथ में बड़ा और मज़बूत धनुष तथा बड़े तेज़ बाण लेकर और अनेक अलङ्कारों से भूषित हो वह, उदयकालीन सूर्य की भाँति हनुमान् की पीठ पर चढ़े हुए लक्ष्मण को, पास ही खड़े विभीषण को, और वानरी सेना को, देखकर बोला—तुम लोग आज मेरा पराक्रम देखना; आज मेरे धनुष से निकली दुर्धर्ष बाण-वर्षा को सहना। आज मेरे बाण तुम्हारे शरीर का ऐसा विध्वंस करेंगे जैसे रुई के ढेर को आग जला देती है। आज मैं तेज़ बाणों से, शूल, शक्ति, ऋष्टि और पटाओं से तुम्हारे शरीर को काटकर यमलोक में भेज दूँगा। जब मैं हाथों से जल्दी-जल्दी बाण बरसाने लगूँगा और जब बादलों की नाईं गरजने लगूँगा तब ऐसा कौन है जो मेरे सामने खड़ा रह सके! तुमने तो देखा ही है कि उस दिन, रात की लड़ाई में, मैंने वज्र के समान बाणों से सेना-सहित दोनों भाइयों को बेहोश कर सुला दिया था। मालूम होता है, तुम उस बात को भूल गये; क्योंकि आज यमलोक में जाने की तुम्हारी इच्छा है। तभी तो महाविषधर साँप की नाईं क्रुद्ध हुए मेरे साथ तुम युद्ध करना चाहते हो।

इस तरह मेघनाद की गर्जना सुनकर निर्भय और क्रुद्ध हुए लक्ष्मण बोले—हे राक्षस! कार्यों का पार पाना तो तुमने बड़ा दुर्गम कह सुनाया। परन्तु बुद्धिमान् उसी को कहना चाहिए जो कर्म के द्वारा कार्यों के पार जाय। सो तू तो कार्य पूरा करने में असमर्थ है। जिस काम को कोई सिद्ध नहीं कर सकता उसे तू वाणी से कहकर अपने को कृतार्थ मानता है। हे दुर्मते! उस दिन, रात के युद्ध में, तूने छिपकर हमारा तिरस्कार किया। यह तो चोरों का काम है। वीर मनुष्य उस मार्ग पर पैर नहीं रखते। हे राक्षस! आज मैं तेरे बाणों के मार्ग में पास ही खड़ा हूँ। तू अपना वह तेज दिखला। झूठी बकवाद मत कर। अब मेघनाद बाण चलाने लगा। उसके चलाये हुए बाण साँप की नाईं फुफकारते हुए लक्ष्मण के ऊपर आकर गिरे। वह रावण का पुत्र बड़े शीघ्रगामी बाणों से लक्ष्मण को बेधने लगा। यद्यपि लक्ष्मण उसके बाणों से बहुत छिद गये और रक्त से नहा उठे तो भी वे बिना धुएँ की आग की नाईं शोभित हो रहे थे। थोड़ी देर में इन्द्रजित् अपना पुरुषार्थ देखकर लक्ष्मण के पास गया और गरजता हुआ बोला—हे लक्ष्मण! मेरे बाण बड़े पैने और प्राणों का अन्त करनेवाले हैं। वे आज तुम्हारा जीवन समाप्त कर देंगे। आज गीदड़, बाज़ और गीध आदि मांसाहारी जीव तुम्हारे ऊपर अवश्य गिरेंगे। तुम हमारे हाथ से ज़रूर मारे जाओगे। क्षत्रियाधम, सदा बुरे और परम दुर्मति राम आज ही अपने भक्त भाई को मेरे हाथ से मारा गया देखेंगे। जब मैं तुमको मारूँगा तब तुम्हारा यह कवच टूट-फूट जायगा। धनुष कटकर इधर-उधर गिर पड़ेगा। सिर कटकर अलग जा पड़ेगा। तुम्हारी इस तरह की दशा आज राम देखेंगे।

क्रोध में भरकर अट्ट-सट्ट बकते हुए इन्द्रजित् से लक्ष्मण ने कहा—हे दुर्बुद्धे, क्रूरकर्मा राक्षस! तू वाणी का बल छोड़ दे। बकता क्यों है? अपने काम से उसे कर दिखा। हे राक्षस! बिना काम किये क्यों बड़बड़ाता है? तू अपना ऐसा पुरुषार्थ दिखला जिससे मुझे तेरी बातों पर विश्वास हो। तुझको मैं न कठोर वचन कहूँगा, न धिक्कारूँगा और न अपनी बड़ाई करूँगा। हे मनुष्यभक्षक! मैं तुझे बिना मारे न छोड़ूँगा। अब लक्ष्मण ने बड़े पैने-पैने पाँच बाण इन्द्रजित् की छाती में मारे। तदनन्तर उसने भी क्रोध में भरकर तीन बाण लक्ष्मण के मारे। इस तरह अपना-अपना विजय चाहते हुए नरसिंह और राक्षससिंह, दोनों का बड़ा विकट संग्राम होने लगा। दोनों ही पराक्रमी, बली, वीर, परम दुर्जय और अतुल्य तेजस्वी थे। वे ऐसा युद्ध कर रहे थे मानों आकाश में दो ग्रह लड़ते हों; या जैसे बलि और वृत्रासुर इन्द्र से लड़े थे, या जैसे दो सिंह भिड़ गये हों। बहुत से बाणों को चलाते हुए वे दोनों बड़ी ख़ुशी से लड़ रहे थे। जिस तरह इन्द्र और शम्बर दैत्य का युद्ध हुआ था उसी तरह लक्ष्मण और मेघनाद का भी घोर युद्ध हुआ। युद्ध करते हुए दोनों एक दूसरे को पीड़ा दे रहे थे और आपस में मारने के लिए घात की खोज में थे।

---

८९ वाँ सर्ग

लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का ही वर्णन।

अब लक्ष्मण ने धनुष तानकर मेघनाद को बहुत से बाण मारे। उनके धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द सुनकर इन्द्रजित् के मुँह का रङ्ग बदल गया। वह उनके मुँह की ओर देखने लगा। मेघनाद के मुँह पर सुस्ती देखकर विभीषण लक्ष्मण से बोले—"हे राघव! मैं इस रावण-पुत्र में कारणों को देख रहा हूँ अर्थात् इसमें अब मरने के चिह्न दिखाई देने लगे। हे महाबाहो! जल्दी करो। अब इसको मरा ही समझो।" इसके बाद लक्ष्मण ने बड़े विषधर साँपों के समान भयङ्कर बाण मेघनाद पर चलाये। उनकी चोट खाकर वह थोड़ी देर के लिए विह्वल हो गया। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। थोड़ी देर बाद सचेत हो, लक्ष्मण की ओर लाल-लाल आँखें करके, वह देखने और कठोर वचन कहने लगा कि हे सौमित्रे! क्या तुम उस दिन की बात भूल गये? मैंने राम के साथ तुमको नागफाँस से बाँध लिया था। उस समय तुम दोनों छटपटाते ही रहे। बड़े-बड़े सेनापतियों के साथ मैंने तुमको संग्राम-भूमि में सुला दिया था। क्या तुमको वह बात याद नहीं? मैं समझता हूँ, तुम यमपुरी में जाना चाहते हो, तभी तो तुम मेरा तिरस्कार करने आये हो। अच्छा, यदि तुमने पहली लड़ाई में मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो खड़े रहो। अब मैं तुमको अपनी बहादुरी दिखलाऊँगा।

इस प्रकार बक-झककर उसने सात बाण लक्ष्मण को और दस हनुमान् को मारे। फिर बहुत क्रोध में भरकर और ख़ूब प्रत्यञ्चा तानकर उसने विभीषण पर सौ बाण चलाये। यह बहादुरी देखकर हँसते हुए लक्ष्मण इन्द्रजित् से बोले—"यह तो कुछ नहीं है। ऐसा करना कौन कठिन है?" फिर क्रोध में भरकर लक्ष्मण बड़े घोर बाण इन्द्रजित् पर चलाकर कहने लगे—"हे निशाचर! तुम जैसी मार करते हो, यह रण में खड़े होकर लड़नेवाले शूरों की नहीं

है; क्योंकि तुम्हारे ये बाण बड़े हलके, थोड़ी शक्तिवाले और सुख से सहने के योग्य जान पड़ते हैं। जिनकी इच्छा युद्ध करने की होती है वे शूर ऐसा घटिया युद्ध नहीं करते।'' अब सुमित्रानन्दन उस पर फिर बाणवर्षा करने लगे। उस बाण-धारा से इन्द्रजित् का कवच टुकड़े-टुकड़े होकर रथ पर ऐसे गिर पड़ा जैसे आकाश से झुण्ड के झुण्ड तारे ज़मीन पर आ गिरें। कवच कट जाने से उसका शरीर बाणों से छिदकर ऐसा देख पड़ने लगा मानों सेबेरे का सूर्य हो। फिर उसने भी लक्ष्मण पर हज़ार बाण चलाये। उनसे इनका भी कवच कटकर गिर पड़ा। इस तरह एक दूसरे से बदला लेते-देते और बार-बार साँसें लेते हुए वे दोनों वीर भयङ्कर युद्ध कर रहे थे। एक दूसरे की चोट से उनके अङ्ग छिद गये और ख़ून से नहा गये। फिर भी बहुत देर तक पैने-पैने बाणों से वे एक दूसरे को विदीर्ण करते रहे। दोनों ही रण के काम में चतुर, महाबली, अपनी-अपनी जय में लगे हुए, और भयङ्कर पराक्रमी थे। वे एक दूसरे के बाणों से छिद गये थे; कवच तथा ध्वजा से हीन थे; और पर्वत के झरने की तरह उनके शरीरों से गर्म-गर्म ख़ून बह रहा था। वर्षा कर रहे दो काले बादलों के समान बड़ी भयङ्कर गर्जना के साथ घोर बाणों की वर्षा करते हुए उन दोनों ने युद्ध में बहुत समय बिता दिया; परन्तु न तो कोई हटा और न कोई दुखी हुआ। अस्त्र जाननेवालों में श्रेष्ठ दोनों, अपनी-अपनी अस्त्र-विद्या बार-बार दिखलाते; आकाश में अनेक तरह के बाणों का बन्धन बाँधते; दोष-रहित, छोटा, चित्र-विचित्र, सुन्दर और भय देनेवाला युद्ध कर रहे थे। उस समय दोनों का अलग-अलग भयङ्कर, खड़बड़ाहट के साथ कँपानेवाला और बिजली की कड़क की नाईं दारुण शब्द सुन पड़ता था। लड़ाई के कारण मस्त हुए उन दोनों का वह शब्द ऐसा ललक के साथ सुनाई देता था जैसा घोर शब्द करते हुए दो बादलों का हो। सुवर्ण पुङ्खवाले नाराच बाणों से दोनों के शरीर छिद जाने पर भी कीर्तिमान् और जय में लगे हुए वे दोनों रक्त बहा रहे थे। उस समय सुवर्ण पुङ्खवाले बाण दोनों के शरीरों का भेदन कर, रक्त में भीगे हुए, ज़मीन में घुस जाते थे; और दोनों के बहुत से बाण आकाश में शस्त्रों से टक्कर खा-खाकर टूट जाते और उनके हज़ारों टुकड़े हो जाते थे। उस लड़ाई में भयानक बाणों का ऐसा ढेर हो गया जैसा यज्ञ में दो जलते हुए अग्नियों के पास कुशों का ढेर हो जाता है। एक दूसरे के बाणों से छिदे हुए उन दोनों के शरीर ऐसे शोभा पाते थे जैसे जङ्गल में टेसू और सेमर फूले हों। उस समय वे दोनों परस्पर जय की इच्छा से बड़ी भयानक मार कर रहे थे। लक्ष्मण झपटकर इन्द्रजित् को मारते थे और वह झपटकर उनको मारता था। दोनों थकते न थे। अङ्गों में गड़े हुए बाणों से उनकी ऐसी शोभा हो रही थी मानों वृक्षों-सहित दो पर्वत हों। ख़ून से सिँचे और बाणों से ढके हुए दोनों के अङ्ग जलती हुई आग की नाईं देख पड़ते थे। इस तरह युद्ध करते-करते दोनों को बहुत समय बीत गया; पर उनमें से न कोई हटा और न थका।

दोहा

समर-श्रम के नाश हित, लक्ष्मण के प्रिय हेत।
आइ विभीषण ठाढ़ भे, निज वीरहिं सुख देत॥

९० वाँ सर्ग

फिर महाघोर युद्ध का वर्णन ।

अब विभीषण, मतवाले हाथियों की नाईं, दोनों को भिड़े हुए देखकर युद्ध देखने की इच्छा से वहाँ आकर खड़े हुए और धनुष चढ़ाकर राक्षसों पर बाण छोड़ने लगे। विभीषण के बाणों का छूना आग के समान था। जिस तरह वज्र पर्वत को फाड़ता है इसी तरह उनके बाण राक्षसों को विदीर्ण करने लगे। उनके साथी भी शूल, तलवार और पटाओं से राक्षसों को मारने लगे। उस समय चारों राक्षसों के बीच में विभीषण ऐसे शोभायमान थे जैसे हाथियों के चार बच्चों के बीच में गजेन्द्र शोभित हो। इसके बाद राक्षसों की मृत्यु चाहते हुए विभीषण ने वानरों से कहा—हे वानरो! चाहे इसे रावण की परम गति कहो, चाहे बड़ा योद्धा कहो, यही एक इन्द्रजित् बचा हुआ है; और यही थोड़ी सी सेना बाक़ी है। तुम लोग खड़े-खड़े क्या करते हो? मारो, जिससे इनमें से बचकर कोई लङ्का न जाने पावे। जहाँ यह पापी मेघनाद मारा गया तहाँ रावण के सिवा और कोई लड़नेवाला दिखाई न देगा इसलिए इस सेना को मार गिराओ। देखो, प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भकर्ण, कुम्भ, धूम्राक्ष, जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, वज्रदंष्ट्र, संह्राद, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रयास, प्रघस, प्रजंघ, जंघ, अग्निकेतु, दुर्धर्ष, रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, चक्रमाली, कम्पन, सत्ववन्त, देवान्तक और नरान्तक—इतने राक्षसों को मारकर अर्थात् दोनों भुजाओं से समुद्र के पार होकर अब गोष्पद (गौ के खुर भर) को क्यों छोड़ते हो! अरे, अब तो तुमको इतना ही जीतना बाक़ी रहा है। बल के अहङ्कारी सब राक्षस मारे गये। यद्यपि यह उचित नहीं है कि मैं पिता होकर पुत्र को मारूँ, परन्तु रामचन्द्र के लिए उस घृणा को भी छोड़कर मैं भाई के लड़के को मारता हूँ। जब मैं इसे मारना चाहता हूँ तब मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं। अब उन आँसुओं को लक्ष्मण ही पोंछेंगे। हे वानरो! इसके पास जो राक्षस खड़े हैं इनको तुम मारो।

विभीषण के उत्साह भरे इन वचनों को सुनकर सब वानर बड़े प्रसन्न हो अपनी पूँछों को कँपाने लगे। वे बार-बार गरजने और तरह-तरह के शब्द करने लगे, जैसे बादलों को देखकर मोर बोलते हैं। उन वानरों के साथ अपने झुण्ड-समेत जाम्बवान् भी मिल गये। अब वे सब पत्थरों, नाख़ूनों और दाँतों से राक्षसों को मारने लगे। राक्षस भी डर छोड़कर डपटते हुए जाम्बवान् को मारने लगे। साथ ही जाम्बवान् भी राक्षसी सेना को मारते जाते थे। सब राक्षस मिलकर बाण, परसा, तीखे-तीखे पटा, डण्डे और तोमर लेकर जाम्बवान् के ऊपर झुक पड़े। बड़े भयङ्कर शब्द के साथ वानरों और राक्षसों का ऐसा युद्ध हुआ जैसा देवासुर-संग्राम हुआ था। इतने में हनुमान् भी क्रुद्ध हो, लक्ष्मण को पीठ से उतारकर और पर्वत के टुकड़े उखाड़कर, हज़ारों राक्षसों को मारने लगे। इधर वह मेघनाद अपने चचा विभीषण के साथ कुछ देर तक युद्ध कर फिर लक्ष्मण की ओर दौड़ा। अब वे दोनों एक दूसरे पर बाण-वर्षा करने लगे। थोड़ी-थोड़ी देर में वे दोनों बाण-जालों से ऐसे छिप जाते थे जैसे वर्षा के समय में चन्द्र और सूर्य

मेघों में छिप जाते हैं। वे दोनों बाण चलाने में ऐसी जल्दी कर रहे थे कि बाण का लेना, सन्धान करना, धनुष पकड़ना, छोड़ना, बाणों को चलाना, प्रत्यञ्चा खींचना, उससे हाथ का अलग होना, मुट्ठी बाँधना और निशाने पर दृष्टि लगाना—कुछ भी न जान पड़ता था। वे दोनों अपने हाथों की सफ़ाई से ऐसे लड़ रहे थे कि उनकी चाल तनिक भी दिखाई न पड़ती थी। चारों ओर से मारे बाणों के उन्होंने ऐसा छा दिया कि आकाश की कोई चीज़ देख न पड़ती थी। लक्ष्मण इन्द्रजित् को और वह लक्ष्मण को पाकर ऐसा युद्ध मचा रहा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि उनके बाणों से आकाश अन्धकार-मय हो गया। सब दिशाएँ बाणों से छा गईं। चारों ओर अँधेरा हो जाने से बड़ा भयङ्कर सा देख पड़ने लगा। थोड़ी ही देर के बाद सूर्य छिप गया और अधिक अँधेरा हो गया। हज़ारों प्रवाहों से रक्त की नदियाँ बहने लगीं और मांसाहारी जन्तु तरह-तरह के भयङ्कर शब्दों से चिल्लाने लगे। उस समय न तो हवा चलती थी और न आग जलती थी। आकाश में महर्षि लोग यही कह रहे थे कि इस उपद्रव में लोगों का कल्याण हो। ऐसा न हो कि औरों पर भी कोई विपत्ति आ पड़े। इतने में चारणों सहित गन्धर्व लोग भी वहाँ आ पहुँचे।

अब लक्ष्मण ने मेघनाद के काले, सुवर्ण-भूषित, चारों घोड़ों को बाणों से बेध डाला। इसके बाद उन्होंने पीला, पैना, अच्छे पत्रवाला और वज्र के तुल्य दूसरा भल्लबाण ऐसा खींचकर मारा कि सारथि का सिर उड़ गया। अब वह मन्दोदरी का बेटा आप ही घोड़ों को चलाने लगा। उसने अद्भुत रूप से सारथि का काम किया। जब वह घोड़ों को चलाने लगता था तब तो लक्ष्मण उसको मारते थे, और जब वह बाण लेने लगता था तब वे घोड़ों को मारते थे। मौक़ा देख-देखकर लक्ष्मण उसे ख़ूब ही सता रहे थे। फिर भी वह बड़ी निर्भयता से लड़ रहा था। किन्तु सारथि के गिर जाने से उसकी लड़ाई की शीघ्रता घट गई और वह दुखी हुआ। उसे खिन्न देख वानर बहुत प्रसन्न होकर लक्ष्मण की प्रशंसा करने लगे। फिर प्रमाथी, रभस, शरभ और गन्धमादन ये चारों वीर बड़े वेग से कूदकर उसके घोड़ों के ऊपर गिर पड़े। इन पर्वताकार वानरों के गिरने से घोड़ों के मुँह से ख़ून बहने लगा और मारे बोझ के वे पिस गये। वे मरकर ज़मीन पर गिर पड़े। इस तरह वे चारों वीर, घोड़ों को मार और उसके रथ का चूरा कर, वहाँ से कूदे और लक्ष्मण के पास आ खड़े हुए। अब इन्द्रजित् टूटे-फूटे रथ से कूदकर लक्ष्मण पर बाण-वर्षा करने लगा।

दोहा

भूमिहु पर सो ठाढ़ खल, करत युद्ध अति धीर।
लक्ष्मण ताहि विदीर्ण किय, लखि अवसर बलवीर॥

---

९१ वाँ सर्ग

इन्द्रजित् का मारा जाना।

घोड़ों के मारे जाने से ज़मीन पर खड़ा हुआ वह राक्षस क्रोध से जलता हुआ लड़ रहा था। वे दोनों एक-दूसरे को मारना चाहते थे, अतएव दो गजेन्द्रों की नाईं लगातार लड़ते रहे। यद्यपि राक्षस

और वानर एक दूसरे पर चोट कर रहे थे, तथापि उन्होंने अपने-अपने स्वामी को न छोड़ा। इसके बाद मेघनाद अपने राक्षसों को समझाता और उनकी प्रशंसा करता हुआ कहने लगा—"हे श्रेष्ठ राक्षसो! रात हो जाने से सब दिशाओं में अँधेरा छा गया है। इसलिए, यहाँ अपना और पराया कुछ भी नहीं देख पड़ता। अब तुम ढिठाई के साथ वानरों को मोहित करने के लिए युद्ध करो। मैं जाता हूँ, और रथ पर सवार होकर अभी आता हूँ। तब तक तुम लोग ऐसा करो कि नगर में मेरे जाने पर ये दुष्ट वानर युद्ध न करें।" इस तरह राक्षसों को समझाकर और वानरों को धोखा देकर मेघनाद रथ के लिए नगर में घुस गया।

सुवर्ण-भूषित प्रास, खड्ग और बाणों से भरे हुए, अच्छे घोड़ों से जुते और हितकारी सारथि से युक्त रथ पर चढ़कर तथा बहुत से राक्षसों को साथ ले मौत का भेजा हुआ मेघनाद फिर नगर से बाहर निकला। थोड़ी देर में, बड़ी जल्दी चलनेवाले घोड़ों को दौड़ाकर, वह लक्ष्मण और विभीषण के पास रथ लाकर खड़ा हो गया। उसे रथ पर सवार देखकर लक्ष्मण, वानर, राक्षस और विभीषण आदि सब भौंचक हो गये। वे उसकी जल्दबाज़ी से बड़े चकराये। अब मेघनाद क्रोध में भरकर बाणों के द्वारा सैकड़ों-हज़ारों वानरों के सेनापतियों को मार गिराने लगा। बाण चलाने में वह ऐसी जल्दी कर रहा था कि उसका धनुष चक्राकार दिखाई देता था। मारे जाने पर सब सेनापति लक्ष्मण की शरण पुकारने लगे, जैसे प्रजा पीड़ित होने पर प्रजापति की शरण में जाती है। अब लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर अपने हाथ की सफ़ाई दिखलाई। उन्होंने उसका धनुष काट डाला। फिर उसने दूसरा धनुष उठाया और बड़ी जल्दी उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई, परन्तु उसको भी रघुनन्दन ने काट गिराया। अब ज्योंही वह दूसरा धनुष लेने लगा त्योंही उन्होंने पाँच सर्पाकार बाण उसकी छाती में जमा दिये। ये बाण महाधनुष से छूटे हुए थे, अतएव उसके शरीर को फोड़कर पार हो गये और लाल-लाल सर्पों की नाईं नीचे जा गिरे। इस भारी चोट के लगने से राक्षस के मुँह से ख़ून बहने लगा। फिर उसने एक बड़ा मज़बूत और पक्की प्रत्यञ्चावाला धनुष बड़ी जल्दी हाथ में लिया। उससे वह बड़ी जल्दी-जल्दी लक्ष्मण पर बाण बरसाने लगा। उसकी बाणवर्षा को लक्ष्मण बहुत सहज में रोकते जाते थे और मेघनाद को अपना पराक्रम दिखला रहे थे। यह सब देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब लक्ष्मण ने क्या चमत्कार दिखलाया कि वहाँ जितने राक्षस थे उन सबको तीन-तीन बाण मारे और अपने सर्ववेधक अस्त्र का चमत्कार दिखलाते हुए मेघनाद को भी मारे बाणों के बिछा दिया। रावण का पुत्र मेघनाद, बलवान् शत्रु के हाथ की बड़ी भारी चोट खाकर, लक्ष्मण के ऊपर बहुत से बाण फेकने लगा, परन्तु लक्ष्मण उनको पास पहुँचते-पहुँचते अपने बाणों से काट देते थे। इसके बाद राम के छोटे भाई ने बड़े पैने भल्लाकार बाण से उसके सारथि का सिर उड़ा दिया। रथ बिना सारथि के रह गया। इसलिए उसके घोड़े रथ लेकर यथेष्ट दौड़ने और मण्डलाकार घूमने लगे। यह भी एक चमत्कार ही हुआ। अब सौमित्रि ने क्रुद्ध हो उसके डरे हुए घोड़ों को भी मारे बाणों के छेद

डाला। यह काम उसे असह्य हुआ, अतएव उसने भी रोमाञ्चकारी दस बाण लक्ष्मण पर चलाये। परन्तु सोने के बने और चमकते हुए वे दसों बाण उनके कवच से टकराकर टूटकर गिर पड़े। तब तो रावण के बेटे ने उनको अभेद्य कवच (जिनके कवच का भेदन न हो सके) जान रामानुज के माथे में तीन बाण मारे। उस समय उसने शीघ्र अस्त्र चलाना अच्छी तरह दिखला दिया। माथे में गड़े हुए तीनों बाणों से रघुनन्दन की ऐसी शोभा हुई जैसे युद्ध करते हुए तीन चोटी वाले पर्वत की शोभा हो। यद्यपि लक्ष्मण ने तीन बाणों की चोट खाई तथापि कुण्डलों से झलमलाते हुए उसके मुँह में उन्होंने भी पाँच बाण मारे। अब फिर वे दोनों एक दूसरे को मारने और मार खाने लगे! खून से नहाये हुए वे दोनों फूले हुए टेसू की भाँति दिखाई पड़ते थे। वे जय की इच्छा से बाणों के मारे एक दूसरे को पीड़ा दे रहे थे।

थोड़ी देर बाद इन्द्रजित ने क्रोध में भरकर तीन बाण विभीषण के मुँह पर मारे और हर एक वानर-सेनापति को भी बाणों से छेदा। अब तो विभीषण को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपनी गदा से उसके घोड़ों को मार डाला। सारथि तो पहले मारा ही जा चुका था, अब घोड़े भी मारे गये। राक्षस करे तो क्या करे। वह रथ से कूद पड़ा और हाथ में शक्ति ले अपने चचा के ऊपर चला दी। परन्तु लक्ष्मण ने, बाणों के द्वारा, उसके दस टुकड़े कर डाले। फिर तो विभीषण भी क्रोध में भर गये। उन्होंने उसकी छाती में वज्र के समान पाँच बाण मारे। वे बाण मेघनाद की छाती को फाड़कर, लाल साँप की तरह, रुधिर में सने हुए पार होकर बाहर निकल पड़े। अब तो इन्द्रजित् बहुत ही क्रोध कर यम के दिये हुए बाण चलाने लगा। उनसे उसने विभीषण को मारना चाहा पर लक्ष्मण ने उसे उस बाण को चलाते देख कुबेर का दिया हुआ बाण अपने धनुष पर चढ़ा लिया। कुबेर ने इनको यह बाण स्वप्न में दिया था। यह इन्द्रादि देवताओं तथा असुरों से भी दुर्जय और असह्य था। जब उन दोनों ने अपनी अपनी, परिघ के समान, भुजाओं से धनुषों को खींचा उस समय वे धनुष क्रौंच पक्षी की नाई शब्द करने लगे। वे सन्धान किये हुए बाण बड़े तेज से प्रज्वलित दिखाई देते थे। जब वे चलाये गये तब आकाश में प्रकाश कर दोनों आपस में टकराकर ज़मीन पर आ गिरे। जब वे एक दूसरे से भिड़े तब उनकी टक्कर से धुएँ के साथ चिनगारियाँ प्रकट हुईं। फिर बड़ी भयङ्कर आग पैदा हुई। वे दोनों इस तरह बड़े ग्रहों की नाईं लड़कर ज़मीन पर आ, सौ सौ टुकड़े होकर, गिर गये।

अब दोनों वीर अपने अपने बाणों की निष्फलता देख लज्जित और क्रोधयुक्त हो गये। सौमित्रि ने क्रोध में भरकर वारुणास्त्र का प्रयोग किया और इन्द्रजित् ने रौद्रास्त्र का। परन्तु वारुणास्त्र को देखकर इन्द्रजित् ने बहुत जल्दी आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। किन्तु उस अस्त्र को लक्ष्मण ने सौर्यास्त्र से रोक दिया। अपने अस्त्र का रोका जाना मेघनाद को असह्य हुआ। वह क्रोध में भरकर शत्रु को विदारण करनेवाले बड़े तेज़ आसुरास्त्र को धनुष पर लगाने लगा। उस समय उसके धनुष में से बड़े चमकीले काटेदार मुद्गर, शूल, भुशुण्डी, गदा, खड्ग और परश्वध निकलने लगे। जब लक्ष्मण ने देखा कि यह बड़ा भयङ्कर और दुर्निवार्य अस्त्र

चलाना चाहता है तब उन्होंने माहेश्वरास्त्र से उस अस्त्र को रोक दिया। अब फिर दोनों का अद्भुत और रोमांचकारक युद्ध आरम्भ हुआ। आकाश-चारी जीवों ने आकर लक्ष्मण को घेर लिया। उस समय बड़े भयङ्कर शब्द के साथ वानरों और राक्षसों का भी युद्ध हो रहा था। आकाश में विचरनेवाले जीव तो इतने इकट्ठे हो गये कि उनसे सब आकाश भर गया। ऋषि, देवता, पितर, गन्धर्व, गरुड़ और नाग—ये सब इन्द्र को साथ लेकर लक्ष्मण की रक्षा कर रहे थे। इसके बाद लक्ष्मण ने एक ऐसा बढ़िया बाण धनुष पर चढ़ाया, जो आग के समान, मेघनाद का विदारण करनेवाला, अच्छे पत्रवाला और सुडौल था। वह बाण सुन्दर धार से सुशोभित, सोने से बना, शरीर का अन्त करने-वाला, और कठिनता से रोका जानेवाला था। वह दुःसह बाण राक्षसों को भय देनेवाला, महासर्प के विष के तुल्य तथा देवताओं से पूजित था। इन्द्र ने देवासुर-संग्राम में इस बाण से दानवों को जीता था और यह संग्राम में कभी निष्फल नहीं होता था। उसको खींचते समय लक्ष्मण ने कहा कि 'यदि दशरथ राजा के पुत्र श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञावाले और पराक्रम करने में अद्वितीय हों तो हे बाण! तू इस इन्द्रजित् को मार।' इतना कहकर ऐन्द्रास्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर और कान तक प्रत्यञ्चा खींचकर छोड़ दिया। उसने जाकर टोप और कुंडलों से देदीप्यमान मेघनाद के मस्तक का मथन कर उसे काट गिराया। धड़ से कटा हुआ और खून से भरा हुआ वह सिर सोने की नाईं चमकने लगा। सिर कट जाने से उसका कवच-धारी धड़ धनुष को अलग फेंककर गिर पड़ा। उस समय वानर और विभीषण बड़ा हर्षनाद करने लगे, जैसे वृत्रासुर के मरने से देवता प्रसन्न हुए थे। देवता, ऋषि, महात्मा, गन्धर्व और अप्स-राओं का भी बड़े आनन्द का शब्द हुआ।

इतने में उसकी बची हुई सेना को भी वानर मारने लगे। वह मेघनाद के गिर जाने से निरालम्ब हो भाग गई। अब यहाँ तक नौबत आई कि राक्षस अपने अपने शस्त्र छोड़ छोड़कर लङ्का को भागने लगे। उनमें से बहुत से दौड़ते दौड़ते बेहोश हो इधर उधर भी भागते तथा पटा और परश्वध छोड़कर मारे डर के लङ्का में घुसे जाते थे। बहुत से तो समुद्र में जा पड़े और बहुतों ने पर्वत का सहारा लिया। जब इन्द्रजित् मरकर लड़ाई के मैदान में सो गया तब हज़ारों राक्षसों में से वहाँ एक भी दिखाई न देता था। जिस तरह सूर्य के अस्त हो जाने पर एक भी किरण नहीं देख पड़ती, इसी तरह मेघनाद के गिर जाने से राक्षस भी इधर उधर भाग गये। जिस प्रकार बिना किरणों के सूर्य और बुझी हुई आग दिखाई देती है उसी तरह मरा हुआ इन्द्रजित् भी देख पड़ता था। जिनको वह दुख देता था उनको, उसके मरने से, बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका कंटक दूर हो गया। भगवान् इन्द्र तो महर्षियों-सहित इस पापी के मरने से बड़े ही प्रसन्न हुए। आकाश में देवताओं ने दुन्दुभि बजाई; अप्सराएँ और बड़े बड़े गन्धर्व नाचने लगे। आकाश से फूलों की वर्षा हुई। ये सब काम अद्भुत रूप से हुए। उस क्रूरकर्मा राक्षस के मारे जाने से जल और आकाश निर्मल हो गये; देवता और दानव प्रसन्न हुए। देवता, दानव और गन्धर्व वहाँ आकर कहने लगे कि, अब पीड़ा और पापों से रहित हो ब्राह्मण लोग

आनन्द-पूर्वक बिचरें। वानरों के सेनापति, मेघनाद को लड़ाई के मैदान में मरा हुआ देखकर, फूले न समाते थे। विभीषण, हनुमान्, और जाम्बवान् आदि विजय का डङ्का बजाते हुए लक्ष्मण की प्रशंसा करने लगे। वानर गरजते, और नाद करते हुए लक्ष्मण को घेरकर खड़े हो गये। वे अपनी पूँछों को घुमाते और फटकारते हुए लक्ष्मण का जय जय-कार करने लगे। सब लोग आपस में गले से गला मिलाकर भेंटने और राघव का गुणानुवाद करने लगे।

दोहा।

इन्द्रशत्रु कर देखि वध, दुष्कर लक्ष्मण कर्म।
भे प्रसन्न अति देवगण, पाइ सुमङ्गल शर्म॥

---

९२ वाँ सर्ग

सेना-सहित लक्ष्मण का रामचन्द्र के पास जाना और मेघनाद के वध का समाचार सुनाना।

लड़ते लड़ते लक्ष्मण तो रुधिर से भीग गये थे फिर भी वे इन्द्रजित् के वध से प्रसन्न हो जाम्बवान्, हनुमान्, और वानरों से मिले। फिर वे विभीषण और हनुमान् का हाथ पकड़कर सुग्रीव और राम-चन्द्र के पास आये। वे महाराज रामचन्द्र को प्रणाम कर उनके पास ऐसे खड़े हो गये, मानो इन्द्र के पास उनके छोटे भाई खड़े हों। उस समय विभीषण ने गर्जकर कहा—"हे महाराज! महात्मा श्रीलक्ष्मण ने मेघनाद का सिर काट गिराया।" यह समाचार सुनकर श्रीरघुनन्दन बड़े प्रसन्न हो-कर बोले—"शाबाश लक्ष्मण! मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ। तुमने बड़ा कठिन काम कर डाला। उस दुष्ट के मारे जाने से अब अपनी जीत ही समझनी चाहिए।" इतना कहकर लज्जित होते हुए लक्ष्मण को उन्होंने ज़बरन् गोद में उठा लिया और गले से लगाकर उनका सिर सूँघा। फिर वे बार बार उन की ओर देखने लगे बाणों से पीड़ित, घावों से भरे, बार बार साँसें छोड़ते और दुःख से संतप्त लक्ष्मण को वे समझाते हुए कहने लगे—"हे लक्ष्मण! यह कठिन काम करके तुमने बड़े कल्याण का काम किया। आज पुत्र के मारे जाने से रावण को भी मैं मरा हुआ सा ही समझता हूँ। आज उस दुष्ट के मारे जाने से मैं विजयी हो गया। यह बड़ी अच्छी बात हुई। मैं तो समझता हूँ कि आज रावण की दहिनी भुजा कट गई। विभीषण और हनुमान् ने संग्राम में बड़ा भारी काम किया। तीन दिन-रात में वह किसी तरह मारा गया। इस समय मैं शत्रुरहित हो गया। अब रावण अपने पुत्र का मारा जाना सुनकर बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिए निकलेगा। पुत्र के मारे जाने से सन्तप्त उस राक्षसराज को मैं बड़ी सेना के साथ मार गिराऊँगा। हे लक्ष्मण! तुम्हारी सहायता से सीता और पृथिवी हमको दुष्प्राप्य नहीं है। क्योंकि सबसे अधिक दुष्ट वही इन्द्रजित् था। उसे जब तुमने मार गिराया तो अब बात ही क्या है।" इस तरह अपने छोटे भाई से कहते हुए रामचन्द्र ने उनको फिर गले से लगाया; फिर हर्षित हो वे सुषेण की ओर देखकर बोले—"हे भद्र! देखो, ये लक्ष्मण बाणों की चोट से पीड़ित हो रहे हैं। तुम ऐसा उपाय करो जिससे इनकी पीड़ा दूर हो जाय। विभीषण, और वृक्षों से लड़नेवाले ये शूर वानर तथा सब भालू जिस तरह पीड़ारहित हो जायँ वैसा

ही तुम उपाय करो।" रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर वानरों के सेनापति सुषेण ने लक्ष्मण को एक ओषधि सुँघा दी। उसे सूँघते ही वे बाण-पीड़ा से और घावों के दर्द से रहित हो गये, उनके सब घाव भर गये। इसके बाद सुषेण ने विभीषण आदि मित्रों की और सब वानरों की दवा कर उन्हें आरोग्य कर दिया। अब लक्ष्मण ज्यों के त्यों हो गये। उनकी थकावट जाती रही। वे थोड़ी ही देर में प्रसन्न हो गये। रामचन्द्र, सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान् और सेना के सब वानर लक्ष्मण को प्रसन्न देखकर बहुत ख़ुश हुए।

दोहा।

रघुपति पुनि पुनि लखन कर, सो अति दुष्कर कर्म।
बहुत सराहत हरिपतिहु, सो सुनि पायउ शर्म॥

---

९३ वाँ सर्ग

रावण का विलाप और क्रोध से सीता को मारने के लिए दौड़ना।

इसके बाद रावण के मन्त्री लोग इन्द्रजित का मारा जाना सुनकर बड़ी जल्दी से दौड़कर अनादरपूर्वक रावण से कहने लगे—महाराज! लक्ष्मण ने विभीषण की सहायता से हमारे देखते देखते आपके पुत्र इन्द्रजित् को लड़ाई के मैदान में मार डाला। देखिए, वह कैसा शूर था। लड़ाई में कभी हारा नहीं, और वह इन्द्र का भी जीतनेवाला था। उसकी ऐसी दशा हो गई! क्या चिन्ता है। वह बहादुर के साथ लड़ा और अपने बाणों से लक्ष्मण को तृप्त कर उत्कृष्ट लोकों में चला गया।

इस तरह पुत्र के मारे जाने का भयङ्कर और घोर दारुण संवाद सुनकर रावण बेहोश हो गया। बहुत देर में उसे जब चेत हुआ तब पुत्र के शोक से व्याकुल और दीन होकर वह कहने लगा—हा राक्षसी सेना के मुखिया! हा महाबली, मेरे पुत्र! तू इन्द्र का जीतनेवाला होकर भी आज किस तरह लक्ष्मण के चङ्गुल में पड़ गया? हे प्यारे! तू तो क्रोध में भरकर अपने बाणों से काल को भी छिन्न भिन्न कर सकता था। तू मन्दराचल के शृङ्गों को भी तोड़ फोड़ सकता था। तुझ में ऐसा बड़ा सामर्थ्य होने पर लक्ष्मण तेरे आगे थे ही क्या चीज़! आज मुझे राजा यम की प्रशंसा करनी चाहिए जिन्होंने तुमको भी मार डाला। बड़े बड़े योद्धाओं के लिए यही मार्ग है और देवगणों में भी यही प्रसिद्ध है कि जो अपने स्वामी के लिए प्राणों का त्याग करता है वह स्वर्ग को प्राप्त होता है। हा! आज सब देवता, लोकपाल और महर्षिगण, इन्द्रजित् का वध देख, निर्भय हो, सुख की नींद सोवेंगे! आज तीनों लोक और सम्पूर्ण पृथ्वी एक इन्द्रजित् के न रहने से मुझे सूनी सी जान पड़ती है। हा! आज मैं लङ्का के अन्तःपुर में राक्षस-कन्याओं का ऐसा विलाप सुनूँगा जैसी पर्वत की कन्दरा में हथिनियों की चिल्लाहट सुनाई देती है। हे मेघनाद! यौवराज्य को, लङ्का को, राक्षसों को, अपनी माता को, मुझको और अपनी स्त्रियों को छोड़ तू कहाँ चला गया? रे पुत्र! तुझे तो यही उचित था कि मेरे मरने पर मेरा प्रेत-कार्य करता। पर तूने उलटा ही किया। हा! सुग्रीव, लक्ष्मण और राम, इन तीनों को जीता छोड़कर—मेरे काँटों को बिना निकाले—तू कहाँ चला गया?

इस तरह बहुत विलाप करते करते रावण को पुत्र के मारे जाने के कारण बड़ा क्रोध हुआ। एक तो वह स्वभाव ही से क्रोधी था, दूसरे पुत्र-शोक की चिन्ता ने उसे इस तरह प्रज्वलित कर दिया जिस तरह गर्मी की ऋतु में किरणों द्वारा सूर्य प्रदीप्त होता है। क्रोध में भरकर जब उसने जँभाई ली तब उसके मुँह से धुएँ के साथ आग ऐसे निकल पड़ी जैसे वृत्रासुर के मुँह से निकली थी। पर, उस समय वह क्रुद्ध होकर भी क्या कर सकता था। तो भी उस दुष्ट ने क्रोध-पूर्वक मैथिली को मारना चाहा। उसकी आँखें स्वभाव से लाल थीं ही, उस समय क्रोध के कारण वे और भी लाल हो गईं। वे बड़ी भयङ्कर और जलती हुई सी मालूम देने लगीं। क्रोध के मारे उसका रूप भी ऐसा भयङ्कर हो गया जैसा क्रोध से भगवान् रुद्र का होता है। उसकी आँखों से आँसू के बिन्दु ऐसे गिरे जैसे दीपक की चिनगारी के साथ तेल की बूँदें टपक पड़ती हैं। जब वह क्रोध से अपने दाँत पीसने लगा तब ऐसा शब्द सुनाई दिया मानो समुद्र के मथन के समय मन्दराचल की रगड़ का शब्द हो। उस समय मृत्यु की भाँति क्रोध में भरे हुए, मानो चराचर को भक्षण करने की इच्छा से, सब दिशाओं की ओर देखते हुए रावण को देखकर सब राक्षस मारे डर के सन्न हो गये। राक्षसों के बीच में अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिए वह बोला—मैंने हज़ार वर्ष तक बड़ा तप किया और समय समय पर ब्रह्मा को प्रसन्न किया है। उसी तपस्या के बल से, और ब्रह्मा के प्रसाद से मुझे न कभी देवताओं से और न दैत्यों से भय हुआ। ब्रह्मा ने मुझे एक कवच दिया है, जिसका प्रकाश सूर्य की नाईं है। देवासुरसंग्राम में वह वज्र की शक्तियों से भी नहीं कटा। जब मैं उस कवच को पहनकर रथ पर चढ़ूँगा तब मेरा सामना करने का सामर्थ्य कौन रखता है? इन्द्र में भी ऐसा सामर्थ्य नहीं जो मेरे सामने आवे। देवासुर-संग्राम में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर बाणों-सहित मुझे जो धनुष दिया है उसे, सैकड़ों नगाड़ों के शब्द के साथ, उठाओ; उससे मैं राम और लक्ष्मण को मारूँगा।

यह कह-सुनकर, पुत्र-शोक से संतप्त वह रावण सीता के मारने के लिए तैयार हुआ। वह लाल आँखें किये, भयङ्कर रूप और दीन मुँह होकर दीन बोलनेवाले राक्षसों से बोला—"हे राक्षसो! मेरे पुत्र ने वानरों को बहकाने के लिए किसी चीज़ को मारकर, उनको सीता के मारे जाने का निश्चय कराया था। मैं उसे इस समय सच्चा करूँगा। सीता को मार ही डालूँगा, क्योंकि वह उस अधम क्षत्रिय पर अनुरक्त है।" इस तरह अपने सचिवों से कहकर उसने सूत्र से बँधी और साफ़ आकाश की नाईं चमकीली तलवार हाथ में उठाई। फिर वह स्त्रियों और मंत्रियों को साथ ले बड़े वेग से चल दिया। एक तो वह पुत्र-शोक से व्याकुल था ही, दूसरे क्रोध में भी भरा हुआ था। इसलिए वह बड़े ज़ोर से मैथिली की ओर झपटा। उसे झपटकर जाते देख राक्षस बड़े सिंहनाद से चिल्लाने लगे। वे आपस में मिलकर कहने लगे—"आज इसे देखकर वे दोनों भाई ज़रूर दुखी होंगे। क्योंकि क्रोध में भरकर इसने चारों लोकपालों को जीता है। इसके सिवा और और भी बहुत से शत्रुओं को इसने संग्राम-भूमि में मार गिराया है। यह तीनों लोकों के रत्नों का हरण

कर भोग करता है। पराक्रम में और बल में इसके समान भूमण्डल भर में कोई नहीं है।" वे सब इस तरह बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में रावण अशोक-वाटिका में सीता के पास पहुँच गया। यद्यपि उस समय भलाई चाहनेवाले मित्रों ने उसे बहुत मना किया तथापि क्रोध के वशीभूत होकर वह ऐसा लपका जैसे आकाश में ग्रह रोहिणी तारे के ऊपर झपटता है।

अशोक-वाटिका में सीताजी की रक्षा राक्षसियाँ करती थीं। रावण को क्रोधपूर्वक तलवार लिये आते देख जानकीजी बड़ी दुखी हुई। वह दुष्ट कितना ही रोका जा रहा था तो भी दौड़ा ही चला आता था। अब सीता दुख में भरकर विलाप करती हुई कहने लगीं—देखो, यह मूर्ख क्रोध में भरा हुआ मेरी ही ओर दौड़ा आता है। यह मुझ सनाथा को अनाथा की नाईं मारेगा। क्योंकि इसने मुझसे कई बार कहा कि तू मेरी स्त्री बन जा; पर मैंने इसका सदा तिरस्कार ही किया है। इसलिए, अब यह मेरे स्त्री होने के विषय में सर्वथा निराश हो गया। अतएव क्रोधी मोही बनकर मेरे मारने के लिए तैयार हुआ है। या यह बात हो कि इस दुष्ट ने, मेरे लिए, उन दोनों भाइयों को संग्राम में मार डाला हो। क्योंकि बहुत से प्रसन्न और प्यारी बातें कहकर चिल्लाते हुए राक्षसों का मैंने भयङ्कर महाशब्द सुना था। आह! मुझे धिक्कार है! मेरे लिए दोनों राजपुत्रों का विनाश हुआ, या उनको न भी मारा हो; केवल पुत्र-शोक के कारण यह पापी, भयङ्कर राक्षस मुझे मारने के लिए आता हो। देखो, मुझ क्षुद्रा ने हनुमान् का वचन न माना। यदि मैं उसकी पीठ पर चढ़कर राम के पास चली गई होती तो आज पति की गोद में बैठकर सब शोकों से छूट गई होती। हा! जब एक-पुत्रा कौशल्या सुनेगी कि मेरा पुत्र युद्ध में मारा गया तब उसकी छाती ज़रूर फट जायगी। हा! वह रोती हुई उस महात्मा के जन्म, बाल्य, यौवन और धर्म-कार्यों को अवश्य याद करेगी। हा! वह पुत्र के मारे जाने से श्राद्ध करके आग या पानी में ज़रूर कूद पड़ेगी। असती, पापनिश्चया और कुब्जा मन्थरा को धिक्कार है जिसके कारण कौशल्या को इतना शोक सहना पड़ा।

इस प्रकार विलाप करती और रोती हुई—चन्द्रमा को छोड़ दूसरे ग्रह के फन्दे में पड़ी हुई रोहिणी की नाईं—उस दीन, तपस्विनी मैथिली को देखकर रावण के बुद्धिमान्, शीलवान् और पवित्र मंत्री सुपार्श्व ने रावण को समझाया। यद्यपि दूसरे मन्त्रियों ने भी उसे मना किया तो भी वह आगे बढ़कर और निडर होकर कहने लगा—हे दशग्रीव, कुबेर के भाई! तुम धर्म त्याग कर क्रोध के वशीभूत क्यों होते हो? क्या तुम इस बेचारी मैथिली को मारना चाहते हो! देखो, तुमने वेद-विद्या के व्रत में स्नान किया है और तुम सदा अपने कर्म में तत्पर रहते हो। हे राक्षसेश्वर! स्त्री के मारने में तुम क्यों अपनी इच्छा करते हो? देखो, यह बेचारी रूपसम्पन्ना स्त्री है। इसको क्षमा करो। हम लोगों के साथ चलकर अपना क्रोध राम के ऊपर निकालो। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। सेना की चढ़ाई करो। कल अमावास्या के दिन सेना लेकर धावा कर दो। तुम शूर और बुद्धिमान् हो। रथ पर चढ़ो; तलवार लो और चलकर दशरथ के पुत्र राम को मारो तब सीता को प्राप्त करना।

दोहा ।

धर्म वचन यह ताहि कर, मानि लियो दसकन्ध ।
जाइ भवन निज युद्ध करि, लाग्यो करन प्रबन्ध ॥

---

९४ वाँ सर्ग

रावण का सेना भेजना और रामचन्द्र के बाणों से उसका मारा जाना ।

अब रावण अपनी सभा में गया और बड़ा दुखी हो, दीन मुँह किये, मारे क्रोध के सिंह की नाईं साँसें छोड़ता हुआ अपने मुख्य सिंहासन पर बैठ गया । वहाँ हाथ जोड़कर, पुत्र-शोक की पीड़ा से दुर्बल, रावण मुख्य सेनापतियों से कहने लगा—"अब आप लोग सब हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना को साथ लेकर लड़ाई में जाओ । वहाँ अकेले राम को घेरकर, वर्षाकाल के मेघों की नाईं बाण-वर्षा कर, मार डालो; या कल तुम लोगों को साथ ले अपने पैने बाणों से मैं ही मारूँगा ।" राजा की यह बात सुनकर वे राक्षस रथों और तरह तरह की सेनाओं को लेकर वहाँ से निकल पड़े । युद्धक्षेत्र में पहुँचकर वे परिघ, पटा, बाण, तलवार और परश्वध आदि शस्त्र वानरों पर चलाने लगे । उधर से वानर भी राक्षसों पर वृक्ष और पर्वत फेंकने लगे । सूर्य के उदय होते ही यह महा घोर संग्राम आरम्भ हुआ । चित्र-विचित्र गदा, प्रास, तलवार और परश्वधों से वानरों को राक्षस और वृक्षों तथा पर्वतों से राक्षसों को वानर मारने लगे । इस लड़ाई में बड़ी अद्‌भुत धूल उड़ी; पर राक्षसों और वानरों के रुधिर के प्रवाहों से वह थोड़ी ही देर में शान्त हो गई । वहाँ इतना ख़ून बहा कि कई एक नदियों की धाराएँ बहने लगीं । उन नदियों के हाथी और रथ तो करारे थे, बाण मगर-मच्छ थे, ध्वजाएँ उनके किनारे के वृक्ष, और लोथें बरनई थीं । रुधिर में सने हुए वानर कूद-कूदकर राक्षसों की ध्वजाओं, ढालों, रथों, घोड़ों और तरह तरह के शस्त्रों को चूर चूर कर डालते थे । वे दौड़-दौड़कर उनके बालों को, कानों को, माथों को और नाकों को अपने पैने पैने दाँतों तथा नखों से चीर-फाड़कर अलग कर देते थे । जिस तरह किसी फले हुए वृक्ष पर सैकड़ों पक्षी टूट टूट पड़ते हैं इसी तरह कहीं कहीं एक एक राक्षस पर सौ सौ वानर दौड़ पड़ते थे । वे बड़े बड़े पर्वताकार राक्षस भी भारी भारी गदाओं, प्रासों, तलवारों और परश्वधों से बड़े बड़े वानरों को मारते जाते थे । राक्षसों ने वानरी सेना का बहुत संहार किया और उसे पीड़ित किया ।

अब इस सेना ने श्रीरामचन्द्र की शरण के लिए गुहार मचाई । दयासागर और शरणागतवत्सल महाराज राघव आर्त्तनाद सुनकर चुप कैसे रह सकते थे ? वे अपना धनुष ले राक्षसी सेना में आ पहुँचे और बाणों की वर्षा करने लगे । वे सेना में ऐसे गये जैसे मेघमण्डल में सूर्य जाता है । वे अपने बाणों की अग्नि से राक्षसों को भस्म करने लगे । रामचन्द्र कहाँ हैं—यह ज्ञान राक्षसों को न हुआ । वे केवल उनकी बाण-वर्षा देखते थे । रामचन्द्रजी सेना को बराबर उथल पुथल और रथों को ध्वस्त कर रहे हैं—इतना तो राक्षसों को जान पड़ता था; पर वे दिखाई न देते थे । जैसे वन में घुसी हुई हवा तो दिखाई देती नहीं; पर उसका काम दिखाई पड़ता है । केवल राक्षसों की ही यह बात न थी । किन्तु

वहाँ जो और लोग खड़े थे, वे भी राक्षसी सेना को तो छिन्न भिन्न, बाणों से दग्ध, और शस्त्रों से पीड़ित देखते थे; परन्तु परम शीघ्रकारी श्रीरामचन्द्र को न देख पाते थे। जिन राक्षसों के शरीरों में चोट लगती थी वे प्रभु को ऐसे न देख पाते थे, जैसे सब प्राणी जीवात्मा को नहीं देख पाते यद्यपि वह इन्द्रियों के विषय शब्द आदि में अनुभवकारक रूप होकर सर्वदा विद्यमान रहता है। "यह देखो, हाथियों को मार रहा है; यह देखो, रथों को तोड़ रहा है; यह देखो, पैने पैने बाणों से पैदल सेना को घोड़ों-सहित फाड़ रहा है"—इस प्रकार बकते हुए वे राक्षस परस्पर राम को देखने लगे और आपस में प्रहार कर कर कटने मरने लगे। प्रभु रामचन्द्र अपनी लगातार बाणाग्नि से राक्षसी सेना को भस्म कर रहे थे; पर सेनावाले उनको देख न पाते थे। इसका कारण यह था कि उन्होंने गन्धर्वास्त्र से उन सबको मोहित कर दिया था। वे राक्षस देखने लगे कि हज़ारों राम लड़ रहे हैं। फिर थोड़ी देर बाद उन्हें एकही राम दिखलाई दिया। फिर वे राम के धनुष की सोने की बनी हुई कोटि को सिर्फ़ जलती हुई और चक्कर खाती हुई बनैटी की नाईं देखने लगे। पर तब तक भी उन्हें राम का चेहरा न जान पड़ा। राक्षसों को मारते हुए श्रीरामचन्द्र को उस समय प्रजा ने कालचक्र (रथ) की नाईं देखा। रामचन्द्रजी के शरीर के बीच का भाग तो उसका मध्य (नाभि), बल ज्वाला, बाण अरे और धनुष नेमी है—अर्थात् पहिये का वह भाग है जो ज़मीन को छूता है;—प्रत्यञ्चा और तल का शब्द ही उसका शब्द है, प्रताप और ज्ञान उसके प्रभाव आदि हैं और दिव्य अस्त्र के सामर्थ्य को उसकी धारणा समझनी चाहिए। वायु के वेग वाले दस हज़ार रथों को, अठारह हज़ार गजेन्द्रों को, चौदह हज़ार घुड़सवारों को और दो लाख पैदल राक्षसों को अकेले श्रीरामचन्द्रजी ने दिन के आठवें हिस्से में बाणों से काट फेंका। बाक़ी कुछ ही राक्षस रह गये थे। उनमें से बहुतों के तो घोड़े और कितने ही के रथ कट गये थे। वे बेचारे बिना हाथ-पैर हिलाये और बिना झण्डे के लङ्का को भाग गये। उस समय वह लड़ाई का मैदान मरे, कटे, गिरे, हाथी, पैदल और घोड़ों से ऐसा देख पड़ता था मानो क्रुद्ध हुए रुद्र का क्रीड़ा-स्थान हो। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि रामचन्द्र के उस पराक्रम को देखकर वाह वाह करने लगे। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान, मैन्द और द्विविद, इन सबकी ओर दृष्टि करके रामचन्द्रजी बोले—देखो, यह अस्त्र का बल या तो मुझमें है या शिव में है।

दोहा।

येहि विधि राक्षस-सेन हति, इन्द्र तुल्य रघुराज।
लहत प्रशंसा सुरनि ते, बिनु श्रम अतिहि विराज॥

---

९५ वाँ सर्ग

राक्षसियों का विलाप।

हज़ारों हाथियों-घोड़ों पर सवार और सोने की ध्वजाओं से युक्त, अग्नि के समान प्रदीप्त रथों में बैठे हुए, शूर तथा कामरूपी राक्षस श्रीराम के हाथ से मारे गये। ये राक्षस गदाओं और परिघों से युद्ध करते थे। यह हाल देख सुनकर बाक़ी बचे हुए राक्षस बहुत ही घबरा गये। सब राक्षसियाँ इकट्ठी हो गईं। राक्षसों की विधवाएँ,

और जिनके पुत्र तथा बान्धव मारे गये थे वे राक्षसियाँ दीन होकर चिन्ता और दुःख करती हुई विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं—भयङ्कर और लम्बे पेटवाली बुढ़िया शूर्पणखा ने वन में राम को न जाने कैसे पाया। वे काम के तुल्य सुन्दर, सुकुमार, महाबली और सबकी भलाई में तत्पर रहनेवाले हैं। उनको देखकर वह सबके मारने योग्य, रूपरहित शूर्पणखा कामपीड़ित हुई। सब गुणों से हीन उस राक्षसी ने बुरे मुँहवाली होकर भी ऐसे गुणवान्, महापराक्रमी और सुन्दर मुँहवाले रामचन्द्र को कैसे चाहा! हा! राक्षसों के थोड़े भाग्य के कारण उस पके बालोंवाली और निन्दित रूपवाली बुड्ढी ने यह अकार्य, हँसी के योग्य और सर्वलोकनिन्दित किया। इससे राक्षसों का और खर-दूषण का भी विनाश हुआ। उसी कारण रावण ने यह वैर किया कि वह अपने मारे जाने के लिए वहाँ से सीता को हर लाया। परन्तु वह सीता को कभी न पावेगा। बड़े बलवान् रामचन्द्र के साथ इसने अक्षय वैर कर लिया। देखो, विराध ने भी तो सीता को चाहा था परन्तु वह भी राम के हाथ से मारा ही गया। यह पूरा दृष्टान्त मिल चुका है। फिर भयङ्कर काम करनेवाले चौदह हज़ार राक्षस, खर, दूषण और त्रिशिरा आदि सब अकेले राम के द्वारा मारे गये। यह दूसरा उदाहरण है। तीसरा दृष्टान्त यह है कि योजन भर की लम्बी भुजाओं वाला वह कबन्ध क्रोध से गरजता हुआ मारा गया। यही नहीं किन्तु इन्द्र के पुत्र, मेघ के समान बड़े और महाबली बाली को भी राम ने ही मारा; और ऋष्यमूक पर्वत पर मनोरथ छोड़कर रहनेवाले दीन सुग्रीव को राज्यासन दिया। यह चौथा दृष्टान्त है। हे राक्षसियो! सब राक्षसों के हित की, धर्म और अर्थ-सहित, बातें विभीषण ने इससे कहीं; उसने इसे ऐसे अच्छे ढङ्ग से समझाया जिसमें सबकी भलाई थी। परन्तु मोह में पड़े रहने से इसे उसकी बातें अच्छी न लगीं। यदि यह विभीषण की बात मान लेता तो यह लङ्का श्मशान रूप और दुःख से पीड़ित न होती। देखो, राम ने कुम्भकर्ण को मारा, लक्ष्मण ने अतिकाय को और इसके प्यारे पुत्र इन्द्रजित् को भी। इतने पर भी यह न चेता। पहले पहल हनुमान् ने अपनी पूँछ की आग से इस लङ्का को भस्म किया और अक्षयकुमार को मारा, तो भी इसे ज्ञान न हुआ। देखो, मेरा पुत्र, मेरा भाई, मेरा पति और किसी का कोई न कोई संग्राम में मारा गया।

इस तरह राक्षसों के घर-घर में राक्षसियों के विलाप करने का कोलाहल सुन पड़ता था। शूरवीर राम ने कई हज़ार हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सेना को काट डाला। राक्षसियाँ कहने लगीं—कहीं रुद्र, विष्णु या इन्द्र अथवा यमराज तो रामरूप होकर हमको नहीं मार रहे हैं! अब तो हमें बड़े-बड़े वीरों के मारे जाने से, अपने जीवन की भी आशा नहीं। भय का अन्त न देखकर अनाथ हो हम विलाप कर रही हैं। दशग्रीव अपनी शूरता और वरदान के भुलावे में पड़ा है। वह नहीं समझता कि राम के हाथ से यह महाघोर भय आ पहुँचा है। देवता, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच कोई भी राम का सामना करने में समर्थ नहीं है। देखो, रावण के लिए प्रत्येक संग्राम में उत्पात दिखाई देते हैं। उन उत्पातों से जान पड़ता है कि राम के हाथ से रावण मारा जायगा।

ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर रावण को वर दिया था कि देवता, दानव और राक्षसों से तुमको भय न होगा। उस समय रावण ने मनुष्यों की परवा नहीं की—उसने उनसे अभय माँगा ही नहीं। हम ज़रूर जानती हैं कि यह मनुष्य का भय—मनुष्य के द्वारा—हमारे लिए आ पहुँचा। यह राक्षसों का और रावण का भी प्राणान्तकारी है। जब वर-दान के भरोसे बली रावण ने सब देवताओं को सताया तब उन्होंने जाकर अपनी भारी तपस्या के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा कि आज से सब दानव और राक्षस भयभीत हो तीनों लोकों में घूमेंगे। तब इन्द्र-सहित सब देवताओं ने त्रिपुरासुर के शत्रु वृषध्वज श्री महादेव को सन्तुष्ट किया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"तुम लोगों के हित के लिए एक ऐसी स्त्री पैदा होगी जो राक्षसों का नाश करेगी।" सो यह सीता देवताओं के द्वारा आई है। यह राक्षसों को मारने-वाली है, यह हमको ज़रूर खा लेगी—जैसे पहले क्षुधा ने दानवों को मारा था। इस दुर्विनीत और दुर्मति रावण की अनीति से हम पर यह विपत्ति शोकसहित आ पड़ी। इस समय ऐसा एक भी नहीं देख पड़ता जो राघव के ग्रास से हमको बचा सके। जैसे प्रलय के समय काल से कोई नहीं बच सकता वैसी ही हमारी दशा है। हम लोग बड़े सङ्कट में पड़ी हुई हैं। हमारे लिए कोई शरण नहीं है। जैसे कालाग्नि के वश में हथिनियाँ अनाथ हो जाती हैं वैसे ही हम अनाथ हैं। देखो, पुलस्त्यवंशी महात्मा विभीषण ने समझकर समय पर कैसा काम किया कि जहाँ से भय आनेवाला था उसी की शरण में वह पहले से ही चला गया। इस तरह राक्षसियाँ गले से गला लगाकर बड़ी भयभीत हो ज़ोर से आर्तनाद करने लगीं।

---

९६ वाँ सर्ग

रावण का युद्ध के लिए चलना और कुछ युद्ध भी करना।

लङ्का की राक्षसियों का विलाप और रोने का शब्द रावण ने सुना। उसे सुनकर वह लम्बी साँसें ले कुछ देर तक तो कुछ सोचता रहा; फिर बड़े क्रोध में भरकर भयङ्कर सा हो गया। वह क्रोध के मारे दाँतों से ओठ काटने लगा। उसकी आँखें लाल-लाल हो गईं। उस समय वह मूर्त्तिमान् कालाग्नि की नाईं ऐसा देख पड़ता था कि राक्षस लोग भी मारे डर के उसकी ओर नहीं देख सकते थे। फिर वह पास खड़े हुए एक राक्षस से बोला। यद्यपि मारे क्रोध के उसके मुँह से साफ़ बात न निकलती थी तो भी वह अपनी आँखों से मानों भस्म करता हुआ कहने लगा—"महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष राक्षस से कहो कि मेरी आज्ञा से वे सेनावालों से कहें कि सब लोग तैयार होकर चलते जायँ।" उन भयभीत राक्षसों ने राजा की आज्ञा सावधान चित्तवाले राक्षसों से कह सुनाई। वे सब राक्षस 'बहुत अच्छा' कह, युद्धयात्रा के लिए मङ्गलपाठ कर संग्राम करने को तैयार हो गये; और राजा के पास आ हाथ जोड़कर 'जय जय महाराज' कहने लगे। राक्षसी सेना को देखकर रावण उन तीनों राक्षसों से क्रोध और हास्य-पूर्वक कहने लगा—आज मैं अपने प्रलय-काल के सूर्य के तुल्य बाणों से राम और लक्ष्मण को यम-

पुरी दिखलाऊँगा। आज मैं खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त और इन्द्रजित् का बदला लूँगा। मेरी बाण-वर्षा से आकाश, दिशाएँ और सागर कोई भी न देख पड़ेगा। आज मुख्य-मुख्य वानरों के झुण्डों को अपने पङ्खधारी बाणों के जालों से ध्वस्त कर डालूँगा। आज मैं पवन के तुल्य वेगवाले रथ पर चढ़कर समुद्ररूपी धनुष से छूटे हुए तरङ्गरूपी बाणों से वानरी सेना को मथ डालूँगा। जिन वानरों का रङ्ग कमल-केसर के समान है और जिनके मुख ही मानों खिले हुए कमल हैं उनके यूथरूपी तड़ागों को मैं आज हाथी की नाईं मथ डालूँगा। आज वे वानरों के सेनापति बाणों से बिंधे हुए अपने मुखों से, नाल-सहित कमलों की नाईं, पृथ्वी को भूषित करेंगे। युद्ध करने में बड़े तेज और वृक्षों से लड़ने-वाले सौ-सौ वानरों को आज मैं एक ही बाण से छेद डालूँगा। जिन राक्षसियों के भाई, पति और पुत्र मारे गये हैं, आज उनके शत्रु को मारकर इस तरह मैं उनके आँसू पोंछूँगा। आज मैं बाणों से छिन्न-भिन्न और तितर-बितर होकर मरे हुए वानरों से युद्ध का मैदान ऐसा भर दूँगा कि वह दिखाई न पड़ेगा। आज मैं कौओं, गीधों और दूसरे मांस-भक्षी जीवों को शत्रुओं के मांस से तृप्त कर दूँगा। लो, मेरा रथ तैयार करो और मेरा धनुष लाओ। जो राक्षस बचे हुए हैं वे मेरे पीछे-पीछे चलें।

रावण की ये बातें सुनकर महापार्श्व ने सेना-पतियों से कहा—अब जल्दी करो। सेनापतियों ने जाकर घर-घर में राजा की आज्ञा सुना दी। राजा की आज्ञा सुनते ही सब राक्षस तरह-तरह के अपने शस्त्र ले गरजते हुए दौड़े। तलवार, पटा, शूल, गदा, मूसल, हल, तेज़ धारवाली शक्तियाँ, बड़े-बड़े काँटेदार मुद्गर, लाठी, अनेक तरह के चक्र, पैने-पैने फरसे, भिन्दिपाल, बन्दूक़ तथा और भी तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर वे सब मौजूद हो गये। अब चार बलाध्यक्ष लोग आठ घोड़ों से जुता हुआ रावण का रथ ले आये। राजा उस पर चढ़कर राक्षसों को साथ ले, अपने बल के ज़ोर से पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ, चल पड़ा। फिर रावण के कहने से महापार्श्व, महोदर, विरूपाक्ष और दुर्द्धर्ष—ये चारों भी चार रथों पर सवार हो गर-जते और पृथ्वी को थरथराते तथा घोर नाद करते हुए जय की इच्छा से चल पड़े। कालान्तक यम के समान तेजस्वी रावण धनुष उठाये और राक्षसों को अपने साथ लिये, बड़े वेगवान् घोड़ों से जुते हुए रथ पर चढ़ा हुआ, उसी द्वार से निकला जहाँ राम और लक्ष्मण थे। उस समय सूर्य का तेज मन्द पड़ गया। दिशाओं में अँधेरा छा गया। पक्षी भयङ्कर शब्द बोलने लगे। भूकम्प हुआ। बादल रक्त की वर्षा करने लगे। मुँह के बल घोड़े गिर पड़े। झण्डे के अग्रभाग पर गीध आ बैठा। अमङ्गल स्वर से सियार रोने लगे। बायाँ नेत्र और बाईं भुजा फड़कने लगी। मुँह का रङ्ग बदल गया। गले की आवाज़ कुछ-कुछ बिगड़ गई। रावण की युद्ध-यात्रा में ये सब अशकुन दिखाई दिये। ये सभी मरणसूचक थे। इतना ही नहीं किन्तु कड़क के साथ आकाश से टूटकर उल्का भी गिरी। गीध और कौए अमङ्गल शब्द करने लगे। ये सब अशकुन होते जाते थे—ये दुर्निमित्त थे; पर रावण तो मृत्यु का भेजा हुआ था। इसलिए उसने इनकी ओर ज़रा भी नज़र न की। वह सेना में बराबर घुसा ही चला गया। अब महाबली

राक्षसों के रथों की गड़गड़ाहट सुनकर वानरी सेना भी युद्ध के लिए तैयार हो गई। दोनों सेनाओंवाले परस्पर ललकारकर बड़े क्रोध से युद्ध करने लगे। बड़ा घोर युद्ध हुआ। कुछ देर बाद, क्रोध में भरकर रावण ने सोने से सजे हुए बाणों से वानरों को ख़ूब मारा। कितनों के ही तो सिर कट गये; बहुतों के हृदय फट गये; और बहुत से कर्ण-हीन हो गये। बहुतों की साँसें बन्द हो गईं; कई एक की पसलियाँ टूट गईं; कई के मस्तक के टुकड़े-टुकड़े हो गये। बहुतेरों की आँखें फूट गईं। क्रोध में भरा रावण आँखें घुमाता और रथ पर चढ़ा हुआ जिधर जाता था उधर वानरी सेना के सेनापति उसके बाणों की चोट न सह सकते थे।

---

९७ वाँ सर्ग

विरूपाक्ष का मारा जाना।

रावण के बाणों से कटे हुए वानरों से वह भूमि बिछ गई। उसके बाणों के प्रहार को वानर इस तरह नहीं सह सकते थे जैसे आग की लपट को पतङ्ग नहीं सह सकते। वे बाणों की चोट से चिल्लाते हुए भागने लगे; जैसे जलती हुई आग में भूल से घुस जाने पर हाथी जब जलने लगते हैं तब चिल्ला-चिल्लाकर भागने लगते हैं। रावण उन्हें ऐसे भयङ्कर बाणों से मारता और विध्वस्त करता था जैसे मेघ की घटा को उड़ाकर हवा नष्ट कर देती है। वह राक्षस वानरों को मारता-पीटता हुआ राम के पास पहुँच गया। इधर सुग्रीव अपनी सेना को नष्ट होते देख अपने तुल्य सुषेण को सेना की रक्षा में तैनात करके ख़ुद लड़ने के लिए तैयार हुए। वे वृक्ष उठाकर शत्रु के पास दौड़े गये। इनके आगे-पीछे और दायें-बायें बड़े-बड़े सेनापति हाथों में वृक्ष ले-लेकर इनको घेरे हुए गये। सुग्रीव गर्जते-तर्जते अच्छे-अच्छे राक्षसों का मथन करते हुए गये। उन्होंने राक्षसों का ऐसा मर्दन किया जैसे प्रलय-समय की हवा बड़े-बड़े पर्वतों को तोड़-फोड़कर उड़ा देती है। वे राक्षसों पर इस तरह पत्थर बरसाने लगे जैसे वन के पक्षियों पर मेघ पत्थर बरसाता है। उस समय कपिराज के फेंके हुए वृक्षों और पत्थरों से शत्रुओं के सिर चूर-चूर हो रहे थे। राक्षस ज़मीन पर इस तरह गिर रहे थे मानों चूर हुए पर्वत हों।

अब राक्षसों की सङ्ख्या घटने लगी। राक्षसों को सुग्रीव के प्रहार से भग्न होते और चिल्लाते तथा गिरते-पड़ते देखकर विरूपाक्ष को बुरा लगा। वह अपना नाम सुनाकर रथ से कूदा; फिर हाथी पर सवार हो बड़े ज़ोर से गरजता हुआ वानरों पर दौड़ा। सुग्रीव के पास पहुँचकर वह उन पर बड़े भयङ्कर बाण छोड़ने और घबराये हुए राक्षसों को समझाने लगा। जब सुग्रीव को उसके बाणों की बड़ी चोट लगी तब वे बड़े ज़ोर से गरजे। वे उसके मारने के लिए उपाय सोचने लगे। उन्होंने एक वृक्ष उखाड़कर और झपटकर उसके बड़े हाथी को मारा। चोट लगते ही वह चार हाथ पीछे हट गया और ज़ोर से चिग्घाड़ने लगा। राक्षस समझ गया कि अब यह हाथी काम का नहीं रहा। यह ज़रूर गिर पड़ेगा। यह विचारकर वह उस पर से कूद पड़ा और तलवार तथा बैल के चमड़े की ढाल लेकर बड़ी जल्दी ललकारता हुआ सुग्रीव पर झपटा। तब सुग्रीव ने भी मेघाकार बहुत बड़ा पत्थर उठाकर

विरूपाक्ष पर चलाया। परन्तु उसने कूदकर पैंतड़े बदले और पत्थर की चोट से बचकर सुग्रीव को तलवार मारी। बली राक्षस का वह वार बड़े ज़ोर का था, इसलिए कुछ देर तक वानरराज मूर्छित से होकर ज़मीन पर पड़े रहे। फिर थोड़ी ही देर में उठकर उन्होंने उसकी छाती में एक मुक्का मारा। उस वार को सहकर उसने अपनी तलवार से उनका कवच काट गिराया। फिर उसने ऐसा मारा कि वे पैरों के बल गिर पड़े; पर झट उठकर उन्होंने राक्षस को थप्पड़ मारा। पैंतड़े बदलने की चतुराई से उसने वह वार भी बचाकर कपि की छाती में एक घूँसा मारा। उस चोट से, और अपने प्रहार को निष्फल देखकर उन्होंने बड़ा क्रोध किया। अब वे मौक़ा ढूँढ़ने लगे कि उसे किस तरह मारें। फिर मौक़ा पाकर कपि ने उसके माथे में एक ऐसा थप्पड़ जमाया जिससे वह ज़मीन पर गिर पड़ा और रक्त से लथपथ हो गया। उसके मुँह, नाक और आँखों से ऐसा रक्त बहने लगा मानों पर्वत का झरना हो। वह क्रोध के मारे आँखें घुमाने लगा और फेन-सहित रक्त से सन गया। वह विकराल आँखोंवाला अपने 'विरूपाक्ष' नाम को सार्थ करने लगा। वह छटपटाता और लोटता हुआ हा हा करके चिल्लाने लगा। वहाँ खड़े हुए बन्दर अपने शत्रु की यह दुर्दशा देख रहे थे। अब दोनों सेनाएँ इस प्रकार भयङ्कर शब्द करने लगीं जैसे पुल के टूट जाने पर दो समुद्र खलबला उठते हैं।

दोहा

बढ़े हर्ष अरु शोक ते, वानर-राक्षस सेन।
उमड़ी गङ्गा के सरिस, भई लोक सुख-देन॥

———

९८ वाँ सर्ग

महोदर का युद्ध और उसका मारा जाना।

युद्ध के मैदान में लड़ते-लड़ते राक्षसी और वानरी सेनाएँ ऐसी क्षीण हो गईं जैसी बड़ी गर्मी में छोटी-छोटी तलैयाँ हो जाती हैं। इधर अपनी सेना का नाश और विरूपाक्ष का मारा जाना देख रावण दूना क्रुद्ध हुआ। अपने दल की कमज़ोरी, उसका नाश तथा वानरों का प्रहार करना देखकर रावण को बड़ा दुःख हुआ। वह सोचने लगा कि इस युद्ध में भाग्य का विपर्यय (उलटापन) तो देखो। थोड़ी देर में अपने पास खड़े हुए महोदर को देखकर उसने कहा—हे महाबाहो! अब मुझे विजय की आशा तुम्हारे ही भरोसे है। हे वीर! अब तुम्हीं शत्रु की सेना को मारो और अपना पराक्रम दिखलाओ। स्वामी से उऋण होने का यही समय है, इसलिए तुम अच्छी तरह युद्ध करो।

रावण की बातें सुनकर, और उन्हें मान करके वह शत्रु की सेना में ऐसे घुसने लगा जैसे आग को देखकर पतङ्ग उसकी ओर लपकते हैं। वह अपने पराक्रम से वानरों को मारने लगा। महाबली वानर भी बड़े-बड़े पत्थर लेकर राक्षसी सेना में घुस गये और उन्हें मारने लगे। महोदर ने क्रुद्ध होकर सुवर्ण-भूषित बाणों से वानरों के हाथ, पैर और जङ्घाएँ काटना आरम्भ किया। अब वानरों को राक्षसों से बड़ी पीड़ा होने लगी। वे इधर-उधर भागने लगे। बहुत से सुग्रीव की शरण में गये। सुग्रीव ने अपनी सेना को भङ्ग होते देखकर पर्वत के समान एक बड़ी भारी चट्टान उठाई और महोदर के ऊपर फेंक दी। पर उसने बाणों से उसके

हज़ारों टुकड़े कर डाले। उसके टुकड़े धरती पर ऐसे गिरे मानों गीधों का झुण्ड आ पड़ा हो। शिला को ख़ाली जाते देखकर वानरराज ने एक साखू का वृक्ष उखाड़कर उस पर फेंका। राक्षस ने अपने नाख़ूनों से उसे विदीर्ण कर डाला। फिर उन्होंने ज़मीन पर पड़ा हुआ एक परिघ उठाया और उसे घुमाकर ऐसा मारा कि उसके चारों घोड़े चूर हो गये। तब वह राक्षस रथ से कूद पड़ा और हाथ में गदा लेकर कपि के सामने आया। एक के हाथ में परिघ और दूसरे के हाथ में गदा थी। अब दो साँड़ों की नाईं दोनों का युद्ध हुआ। बिजली-सहित बादलों की नाईं गरजते हुए दोनों भिड़ गये। महोदर ने सूर्य की नाईं चमकती हुई गदा सुग्रीव पर चलाई। तब उसे सुग्रीव ने परिघ से मारा। पर वे दोनों अस्त्र टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गये। वहाँ धरती पर सुवर्ण-भूषित एक लोहे का मुद्गर पड़ा हुआ था। उसे उठाकर कपि ने महोदर पर फेंका। उसने भी एक दूसरी गदा लेकर उन पर चलाई। ये दोनों शस्त्र बीच में ही टकराकर गिर पड़े। शस्त्रों के चूर हो जाने पर दोनों घूँसों से लड़ाई करने लगे। वे अपने-अपने तेज और बल से, प्रदीप्त अग्नि की तरह, मालूम होते थे। अब परस्पर लातों-घूँसों की मार होने लगी। वे एक दूसरे को मारते, गरजते और परस्पर थप्पड़ों की मार से ज़मीन पर गिर पड़ते तथा फिर उठते थे। अपनी-अपनी भुजाओं के बल से वे एक दूसरे को उठाकर फेंक देते थे। अब तक एक भी न हारा। लड़ते-लड़ते जब बहुत समय हो गया तब दोनों थक गये। उन्होंने बाहु-युद्ध बन्द कर दिया। वहीं ढाल-सहित दो तलवारें पड़ी थीं। उनको उठाकर दोनों ने फिर लड़ना शुरू किया। दोनों पहले की तरह क्रोध में भरकर गरजते, और एक दूसरे पर दौड़ते थे; तलवार उठाये हुए, शस्त्र चलाने में चतुरता दिखलाते और एक दूसरे पर क्रोध करते हुए, जीतने की आशा कर रहे थे। इतने में दुष्ट राक्षस ने सुग्रीव की ढाल पर तलवार का प्रहार किया। परन्तु तलवार उसमें धँस गई। जब तक वह उसमें से तलवार को निकालने लगा तब तक कपिराज ने टोप और कुण्डलों से शोभायमान उसका सिर ही काट डाला। सिर कटते ही जब वह ज़मीन पर गिर पड़ा तब राक्षसराज की सेना न मालूम क्या हो गई। वहाँ उसका पता ही न चला। उसे मारकर वानरों के साथ सुग्रीव बड़े प्रसन्न हुए। रावण क्रुद्ध हुआ और रामचन्द्र प्रसन्न हुए। सेनावाले राक्षस दीन-मन हो डरकर इधर-उधर भागने लगे। पर्वत के शृङ्ग के समान बड़े महोदर को मारने से जयलक्ष्मी के द्वारा कपिराज की ऐसी शोभा हुई जैसी तेज से सूर्य की होती है।

दोहा

प्राप्त-विजय कपिराज कहँ, सिद्ध-यक्ष-सुर-यूथ।
भूमि जीव सब हर्ष युत, देखन लगे बरूथ॥

---

९९ वाँ सर्ग

महापार्श्व का युद्ध और उसका मारा जाना।

महोदर के मारे जाने से महापार्श्व बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसकी आँखें लाल हो गईं। अङ्गद की सेना को वह बाणों से विदीर्ण करने लगा। वह मुख्य-मुख्य वानरों के सिरों को इस तरह काट गिराता था जैसे हवा फल को गिराती है। कितनों

हीं की भुजाओं को और बहुतों के कुक्षिभागों को वह छिन्न-भिन्न कर डालता था। उसकी बाण-वर्षा से पीड़ित और अचेत हो-होकर वानर गिरते जाते थे। अपनी सेना का उद्वेग देखकर अङ्गद ने बड़ा वेग किया। जैसे पर्वसमय में समुद्र उबलता है उसी तरह वे मारे क्रोध के उबलने लगे। उन्होंने सूर्य के समान चमकीला लोहे का एक परिघ, वहीं से उठाकर, महापार्श्व को फेंककर मारा। वह इस एक ही वार में सारथि-सहित मूर्च्छित हो ज़मीन पर गिर पड़ा। इधर इसका गिरना था कि उधर कज्जलराशि के समान काले जाम्बवान् अपने झुण्ड में से झपटे। उन्होंने पर्वत पर से एक बड़ा पत्थर उठाकर उससे उसके रथ के घोड़ों को मार डाला और रथ को भी चूर कर डाला। थोड़ी देर में वह राक्षस सचेत हो अङ्गद पर बड़ी बाण-वर्षा करने लगा। महापार्श्व ने तीन बाण जाम्बवान् की छाती में मारे और बहुत बाणों से गवाक्ष को भी छेदा। गवाक्ष और जाम्बवान् को बाणों से पीड़ित देख अङ्गद ने क्रोध में भरकर फिर एक परिघ हाथ में लिया। उसे दोनों हाथों से ज़ोर से घुमाकर उन्होंने महापार्श्व के ऊपर फेंका। यद्यपि वह दूर था तो भी परिघ ने बाण-सहित उसका धनुष उसके हाथ से गिरा दिया और उसके सिर की टोपी गिरा दी। इतने में ही बालिपुत्र ने दौड़कर उसकी कनपटी में, जहाँ कुण्डल लटक रहा था वहाँ, एक थप्पड़ मारा। इस चोट को सहकर भी उसने एक हाथ से एक बड़ा भारी फरसा उठाया। वह तेल से साफ़ किया हुआ और पर्वत के समान मज़बूत था। उससे उसने बालिपुत्र को मारा। राक्षस ने यह प्रहार अङ्गद के बायें कन्धे पर किया था। परन्तु कपि ने पैंतड़े बदलकर उससे अपने को बचा लिया और राक्षस की छाती में, मर्मस्थल समझकर, एक मुक्का मारा। उस चोट से उसका हृदय फट गया। वह मरकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उसके मरते ही उसकी सेना तो भाग गई पर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ। वानरों का तो ऐसा हर्षनाद हुआ मानों लङ्का फट गई हो। जिस तरह इन्द्र के जीतने पर देवताओं का हर्षनाद हुआ था वैसा ही वह भी हुआ।

दोहा

रावण तेहि छन कपिन्ह कर, अरु सुरगण कर हर्ष।
सुनि अतिशय क्रोधित भयउ, बाढ़ेउ हृदय अमर्ष॥

---

१०० वाँ सर्ग

रावण का युद्ध आरम्भ।

महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष का मारा जाना देखकर रावण ने बड़ा क्रोध किया। उसने सारथि से कहा—"मारे गये इन मन्त्रियों का और रोके हुए नगर का दुःख मैं अभी उन दोनों भाइयों को मारकर दूर करता हूँ। देखो, मैं इसी समय रामरूपी वृक्ष को काट गिराता हूँ जो सीतारूप फूल से फल देनेवाला है और जिसकी शाखाएँ सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान्, सुषेण तथा और-और भी सेनापति हैं।" वह इस तरह बकता-झकता हुआ और अपने रथ से दिशाओं को शब्दायमान करता हुआ रामचन्द्र के सामने गया। उस समय पृथ्वी काँप उठी। वहाँ के सिंह, मृग और पक्षी डर गये। उस समय उसने बड़े भयङ्कर तामस अस्त्र का प्रयोग कर बन्दरों पर चलाया। इससे वे चारों ओर कट-कटकर

गिरने लगे। बचे हुए वानर डर के मारे भागने लगे। उनके एक साथ दौड़ने से बड़ी धूल उड़ी। राक्षस का अस्त्र सहने में कोई समर्थ न हुआ; क्योंकि वह ब्रह्मा का बनाया हुआ था। अब वानरी सेना को भागते देखकर रामचन्द्र लड़ने के लिए तैयार हुए। रावण ने इस तरह सेना को भगा, आगे बढ़कर देखा कि किसी से भी न हारे हुए रामचन्द्र खड़े हैं। उन्हीं के पास लक्ष्मण को भी ऐसे खड़ा हुआ देखा मानों विष्णु के साथ इन्द्र हों। अब राक्षसराज ने कमल के समान बड़ी आँखों-वाले, बड़ी भुजाओंवाले और शत्रु का मर्दन करने-वाले रामचन्द्र को देखा कि हाथ में धनुष लिये मानों आकाश को छूना चाहते हैं। लक्ष्मण-सहित रामचन्द्र वानरों का भागना, और रावण का झपट-कर आना देखकर ख़ुश हुए और धनुष सुधारकर जेह चढ़ाने लगे। वह महावेगवान् और महाशब्द-वान् धनुष ऐसा शब्द करने लगा मानों पृथ्वी को फोड़ डालेगा। उस समय रावण के बाण से और राघव के धनुष के शब्द से सैकड़ों राक्षस वहाँ गिर पड़े। अब राम-लक्ष्मण की बाणावली के बीच में रावण की ऐसी शोभा हुई जैसे चन्द्र और सूर्य के पास राहु की होती है। पहले लक्ष्मण ने उसके साथ युद्ध करना चाहा और उन्होंने कई बाण छोड़े भी; परन्तु राक्षसराज ने अपने बाणों से उनको रोका। उसने एक बाण से एक बाण को, तीन से तीन को और दस से दसों को काट गिराया। उसने अपने हाथ की सफ़ाई ख़ूब दिखलाई। फिर वह लक्ष्मण का मुक़ाबिला करना छोड़, पर्वत की नाईं अचल खड़े हुए, रामचन्द्र के पास जा पहुँचा। वहाँ क्रोध से लाल-लाल आँखें करके वह महाराज पर बाण बरसाने लगा। श्रीराघव ने रावण की बाणधारा देखकर शीघ्र भल्लाकार बाण हाथ में लिये। उनसे उन्होंने रावण के बड़े चमकीले, भय-ङ्कर और विषधर के तुल्य कराल बाणों को काट दिया। अब दोनों एक-दूसरे पर बाण-वर्षा करते, दाहिने-बायें पैंतड़े बदलते और बाण-वेग से उभड़ते थे। उस समय यम और मृत्यु के तुल्य बड़े कराल-स्वरूप उन दोनों का युद्ध देख सब जीव डरने लगे। लगातार बाणों के छूटने से आकाश की ऐसी दशा हो गई मानों वर्षा ऋतु में बिजलियों के साथ बादल घिर आये हों। उनके बाण बड़े पैने, गीध के पङ्खों से युक्त और बड़े वेगवाले थे। उस बाण-वर्षा से आकाश में अनन्त झरोखे दिखाई देने लगे। सूर्य के मौजूद रहते ही दोनों ने आकाश को अन्धकारमय बना डाला। सूर्य के छिप जाने पर भी उनकी बाण-वर्षा न रुकी। एक दूसरे को मारने की इच्छा से उन दोनों का बड़ा अपूर्व युद्ध हुआ, जैसा कि इन्द्र और वृत्रासुर का हुआ था। वे दोनों बड़े धनुर्द्धर, युद्ध करने में चतुर और अस्त्रविद्या जाननेवालों में श्रेष्ठ थे। वे युद्ध-भूमि में पैंतड़े बदल रहे थे। जिस-जिस मार्ग से वे दोनों घूमते थे उधर-उधर बाणों की तरङ्गें दिखाई पड़ती थीं; मानों वायु के धक्के से दो समुद्रों की लहरें हों। अब रावण ने रामचन्द्र के माथे में बाणों की माला मारी। परन्तु नील कमल के पत्तों की सी उस माला को महाराज ने अपने माथे पर धारण कर लिया। इन बाणों से वे ज़रा भी दुखी न हुए। उन्होंने रौद्रास्त्र से अभिमन्त्रित बाण रावण के ऊपर बड़े क्रोध से चलाये। वे रावण के अभेद्य कवच में जा लगे, पर उनसे वह कुछ भी दुखी न हुआ। फिर उन्होंने परमास्त्र का अभिमन्त्रण कर रावण के

माथे में बाण मारे। पर उसने उनको ऐसा रोका कि वे, पाँच सिर वाले साँपों की नाईं फुफकारते हुए, केवल जमीन को फोड़कर घुस गये। इस तरह रामचन्द्र के अस्त्र को निष्फल कर राक्षस ने क्रोध-पूर्वक असुरास्त्र का प्रयोग किया। उसने सिंहमुख, व्याघ्रमुख, कंकमुख, कोकमुख, गृध्रमुख, बाजमुख, शृगालमुख और हुंडार मुखवाले बाण चलाये। वे मुँह बाये हुए, पाँच मुँहवाले, ओठों को चाटते हुए और बड़े पैने थे। इनके सिवा गर्दभमुख, वराहमुख, कुक्कुरमुख, कुक्कुटमुख, मगरमुख, सर्पमुख और अन्य अन्य मुखवाले बाणों को भी अपने मायाबल से उसने चलाया। तब रामचन्द्र ने पावकास्त्र का प्रयोग किया और आग के समान जलते हुए मुँह-वाले सूर्यमुख, ग्रह और नक्षत्रों के समान रङ्गवाले, लुक्क मुँह के और बिजली के समान जीभवाले बाण छोड़े। इन बाणों ने जाकर आकाश में रावण के बाणों को ध्वस्त कर दिया। राम के अस्त्र से रावण के अस्त्र का नाश होने पर सुग्रीव आदि वीर बानर बड़े प्रसन्न हुए और राघव को घेर कर खड़े हो गये।

दोहा।

दशग्रीव के अस्त्र कहँ, काटि राम बलवीर।
सहित सेन हर्षित भये, सह लक्ष्मण रणधीर॥

---

१०१ ला सर्ग।

रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना।

उस अस्त्र के नष्ट हो जाने पर रावण ने, अत्यन्त क्रुद्ध हो, मय के बनाये हुए रौद्रास्त्र का प्रयोग किया। उसके धनुष से बड़े प्रज्वलित और वज्र के तुल्य

दारुण शूल, गदा और मूसल निकलने लगे। फिर कँटीले मुद्गर, पाश और प्रदीप्त वज्र आदि शस्त्र ऐसे वेग से निकले मानों महाप्रलय की हवा हो। तब रघुनन्दन ने गान्धर्व अस्त्र से उसे काट गिराया। उस अस्त्र के भी नष्ट हो जाने पर रावण ने सौरास्त्र का प्रयोग किया। उस समय उसके धनुष में से बड़े लम्बे और चमकीले चक्र निकले। उस अस्त्र से सम्पूर्ण आकाश प्रदीप्त हो गया। उस समय ऐसा मालूम होता था कि आकाश से कहीं सूर्य और चन्द्रमा तो नहीं गिर रहे हैं। पर इन शस्त्रों को भी राघव ने अपने बाणों से काट डाला। तब रावण ने दस बाणों से राम को सब मर्मस्थलों में मारा। पर इससे रामचन्द्र कुछ भी दुखी न हुए। फिर रघुनन्दन ने भी बहुत बाणों से रावण के मर्म-स्थलों को छेद डाला। इतने में लक्ष्मण ने सात बाण ले क्रोधपूर्वक रावण के, मनुष्य के सिर वाले, झण्डे के कई टुकड़े कर डाले; तथा चमकीले कुण्डल वाले सारथि का सिर काट गिराया और पाँच बाणों से उसके शुण्डाकार धनुष के भी दो टुकड़े कर दिये। इतने में, बड़ी फुरती से कूद कर, विभीषण ने अपनी गदा से उसके आठों घोड़ों को मार गिराया। अब रावण रथ से कूद पड़ा और विभीषण पर बड़ा ही क्रुद्ध हुआ। पर श्रीराघव के पास वह उनका क्या कर सकता था? उसने एक भयानक शक्ति विभीषण पर चलाई, जो जलती हुई बिजली के समान थी। किन्तु लक्ष्मण ने उसे बीचही में तीन बाणों से काट डाला। यह देखकर, बानर एक साथ हर्षनाद करने लगे। सोने की माला से भूषित वह शक्ति, चिनगारियाँ फेकती, जलती हुई ऐसी गिरी जैसे आकाश से बड़ा पुच्छल तारा गिरे। रावण

ने फिर भी दूसरी शक्ति को हाथ में लिया। यह अमोघ और काल को भी असह्य थी हाथ में लेते ही वह बिजली की नाईं चमकने लगी। अब लक्ष्मण ने देखा कि विभीषण के प्राणों का सन्देह आ पहुँचा है, अतः उनको बचाने के लिए वे झट उसके पास पहुँच गये और धनुष पर बाण चढ़ा कर रावण का मारने लगे। उन बाणों की चोट से रावण ऐसा त्रस्त हो गया कि वह शक्ति उसके हाथ की हाथ ही में रह गई। उसकी बिलकुल इच्छा न हुई कि उसे चल वे। फिर थोड़ी देर में उसे होश आया। लक्ष्मण द्वारा रक्षा किये गये अपने भाई को देख वह लक्ष्मण से कहने लगा—ख़ैर, अच्छा हुआ जो तुमने विभीषण को बचा लिया। अब इस शक्ति को तुम्हारे ही ऊपर फेंकता हूँ। यह शक्ति शत्रु का ख़ून पीने वाली है। मेरे भुज-परिघ से चलाई हुई यह शक्ति तुम्हारा हृदय फोड़ कर तुम्हारे प्राण निकाल ले जायगी।

इस तरह कह कर राक्षसराज ने वह शक्ति लक्ष्मण के ऊपर फेंकी। उसमें आठ घंटे घनघना रहे थे और उसे मय नामक दैत्य ने अपनी माया से बनाया था। वह बड़े वेग से लक्ष्मण के ऊपर आ गिरी। उसे गिरते देख रामचन्द्र बोले—"लक्ष्मण के लिए कुशल हो। यह शक्ति निष्फल और कामहीन हो जाय।" वह शक्ति निडर खड़े हुए लक्ष्मण के हृदय में सर्पराज की जीभ की नाईं धँस गई। रावण के वेग से उसने बड़ा ही घाव किया। लक्ष्मण विदीर्ण-हृदय हो ज़मीन पर गिर पड़े। भाई की यह दशा देख श्रीरामचन्द्र बड़े दुखी हुए। कुछ देर तक तो आँखों में आँसू भर कर वे सोचते रहे। फिर युद्ध करने के लिए ऐसे तैयार हुए मानों प्रलयकाल की आग हो। उस समय उन्होंने सोचा कि यह समय दुख करने का नहीं है। क्योंकि सिर पर शत्रु खड़ा है। यही सोच विचार कर वे रावण को मारने के लिए तैयार हुए; पर उनकी दृष्टि विशेष कर लक्ष्मण की ही ओर लगी हुई थी। क्योंकि वे रुधिर से सने और शक्ति के लगने से बाहर निकले सर्प से युक्त पर्वत की नाईं दिखाई देते थे। बलवान् रावण ने ऐसे बल और वेग से उनकी छाती में शक्ति का प्रहार किया था कि वह भीतर धँसी चली गई थी। बड़े बड़े वीर बानर ख़ूब यत्न कर चाहते थे कि उसे निकाल लें, पर निकाल न सकते थे। इसका एक कारण यह भी था कि रावण के बाणों के मारे बानर सुस्त हो गये थे। शक्ति भी ऐसी लगी थी कि लक्ष्मण के पार होकर ज़मीन में धँस गई थी। जब वह किसी के निकाले न निकली तब रामचन्द्र ने क्रोध में भर कर दोनों हाथों से उसे निकाल कर तोड़ डाला।

जब रामचन्द्र शक्ति निकालने में लगे हुए थे तब, मौक़ा पाकर, रावण ने उनके मर्मभेदी सब अङ्गों को बाणों से छेद डाला। पर उनके लिए वे बाण क्या थे? वे उनके प्रहार को कुछ भी न समझ, लक्ष्मण को गले से लगाकर, हनुमान् और सुग्रीव से बोले—"हे बानरश्रेष्ठ! तुम सब लक्ष्मण को घेर कर खड़े रहो। क्योंकि बहुत दिनों में मेरे पराक्रम करने का यह समय आया है। इसे मैं बहुत दिनों से चाहता था। हे बानरो! मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक तुमसे सच सच कहता हूँ कि थोड़े ही समय में तुम लोग बिना राम के, या बिना रावण के इस संसार को देखोगे। दो में से एक, थोड़े ही समय में, मारा जाता है। इस पापात्मा और पापनिश्चय

रावण का वध जरूर होना चाहिए। मैं इसको बहुत दिनों से देखना चाहता था, जैसे वर्षा-काल में चातक मेघ का दर्शन चाहता है। देखो, राज्य का नाश, दण्डक वन में वास, इधर उधर दौड़ना, सीता की धर्षणा और राक्षसों का आना आदि अनेक तरह के घोर दुःख मैंने पाये हैं। इन सबके कारण मुझे नरक से कम कष्ट नहीं हुआ। आज इस दुष्ट को मार कर मैं उन सब क्लेशों के पार हो जाऊँगा। जिसके लिए मैं यह बानरी सेना लाया और जिसके लिए बालि को मार कर सुग्रीव को राज्य-गद्दी पर बैठाया तथा जिसके लिए समुद्र में पुल बाँध कर पार उतरे, वही पापी आज लड़ाई के मैदान में मेरे सामने आया है। अब यह जीता नहीं जा सकता। जिस तरह दृष्टि-विषवाले साँप की नजर पड़ने पर फिर कोई जीता नहीं लौटता तथा जैसे गरुड़ के पास से साँप जीता नहीं बच सकता, उसी तरह रावण जीते जी अब लङ्का में नहीं जा सकता। हे बानरों में श्रेष्ठ! तुम लोग बड़े योद्धा हो। तुम लोग सुखपूर्वक पर्वत के आगे के भागों पर जा बैठो और वहाँ से हम दोनों का युद्ध देखो। आज गन्धर्व, सिद्ध, सर्प और चारणों सहित तीनों लोक संग्राम में मेरा रामत्व देखें। आज मैं वह काम करता हूँ कि जब तक यह संसार रहेगा तब तक चर और अचर सब संसार उसका गान करेंगे।" इतना कह कर उन्होंने रावण को सात बाण मारे। वह भी उन पर बाणों और मूसलों की वर्षा करने लगा, मानो मेघ धारा की वर्षा करता हो। अब राम और रावण के चलाये हुए, परस्पर टक्कर खाते और कटते हुए बाणों का भयङ्कर शब्द हुआ। दोनों के बाण टूट टूट कर छिन्न-भिन्न हो आकाश से आकर जमीन पर गिरते थे। उनकी नोकें जल रही थीं। उनकी प्रत्यञ्चा का शब्द सब को डराने वाला और बड़ा अद्भुत था।

दोहा।

राघव की शरवृष्टि ते, रावण अति भय पाइ।
भाजि चल्यो जिमि वात ते, घनमंडल उड़ि जाइ॥

---

१०२ रा सर्ग।

हनुमान् का ओषधि-पर्वत लाना और लक्ष्मण का आरोग्य होना।

अब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण की ओर फिर दृष्टि की। उनकी दशा देखकर वे सुषेण से बोले—देखो, रावण के पराक्रम से ये लक्ष्मण जमीन पर सोये हुए मेरा शोक बढ़ा रहे हैं। ये मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। ये रुधिर में सने अचेत हो सो रहे हैं। इन्हें देखकर मैं बहुत घबराता हूँ। अब मेरी क्या शक्ति है जो मैं युद्ध करूँ। संग्राम में उत्साह रखनेवाला यह मेरा प्रिय भाई अगर जाता रहा तो मैं जीकर ही क्या करूँगा। फिर सुख से मुझे क्या काम! इस समय मेरा पराक्रम लज्जित सा हो रहा है। मेरे हाथ से धनुष गिरना चाहता है। मेरे बाण शिथिल हो रहे हैं। मेरी दृष्टि आँसुओं के वश में हो रही है। मेरे सब अंग ऐसे ढीले होते जाते हैं जैसे स्वप्नावस्था में होते हैं। मैं बड़ी कठिन चिन्ता में पड़ा हूँ। मुझे मरने की इच्छा होती है।

रावण के बाणों से पीड़ित लक्ष्मण के लिए श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार विलाप करने लगे। लक्ष्मण के मर्म-स्थलों में चोट लगी थी, इससे वे संग्रामभूमि में लोटते और दुःखार्त्त हो कराह रहे थे।

उन्हें देखकर रामचन्द्रजी बड़े दुखी हुए और घबरा गये। वे कहने लगे—हे शूर लक्ष्मण! इस समय मुझे विजय भी अच्छा नहीं लगता। क्योंकि जो चन्द्रमा दिखाई ही नहीं देता वह क्या अच्छा लगेगा? अब मुझे युद्ध से और अपने प्राणों से भी कुछ काम नहीं है; और न अब मैं युद्ध करना चाहता हूँ। क्योंकि जब लक्ष्मण की यह दशा हो गई तो मेरे सब काम व्यर्थ हो गये। वनयात्रा के समय लक्ष्मण जिस तरह मेरे साथ आये थे उसी तरह यममन्दिर में जाते समय मैं भी इनके पीछे पीछे जाऊँगा। देखो, यह मेरा प्यारा भाई—जो सदा मेरे अनुसार काम करता था—छलयोधी राक्षसों के द्वारा इस दशा को पहुँचा। देखो, स्त्रियाँ और बन्धु सब जगह प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु मैं ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ सहोदर भाई मिल सके। अब परम पराक्रमी लक्ष्मण के बिना राज्य से मुझे क्या? मैं पुत्र पर प्यार करनेवाली माता सुमित्रा से क्या कहूँगा? जब वह मुझे उलहना देगी तब मैं कैसे सहूँगा! कौशल्या, कैकेयी, भरत और शत्रुघ्न ये सब मुझसे पूछेंगे कि उसके साथ तुम वन को गये थे; अब उसके बिना तुम कैसे आगये। हे भाइयो! यहीं मर जाना मुझे कल्याणकारी जान पड़ता है। बन्धुओं से निन्दा सुनना ठीक नहीं। हा! मैंने पहले जन्म में ऐसा क्या पाप किया था जिससे मेरा यह धार्मिक भाई मेरे पास ही मारा गया। हा भाई! हा मनुष्यों में श्रेष्ठ! हा शूरों में प्रधान! तुम मुझे अकेला छोड़ कर परलोक में क्यों जाते हो? हे भाई! मैं विलाप कर रहा हूँ, मुझसे क्यों नहीं बोलते? उठो; देखो, मैं कैसा दीन हो रहा हूँ। मेरी ओर देखो। जब मैं शोकार्त्त और प्रमत्त होता, तथा पर्वतों एवं वनों में दुखी होता था तो तुम मुझे समझाते थे।

प्रभु का इस प्रकार विलाप सुनकर सुषेण नामक बानर उनको समझाता हुआ बोला—"हे नरों में श्रेष्ठ! तुम सन्ताप-कारिणी बुद्धि को त्याग दो। अभी लक्ष्मण मरे नहीं हैं। देखो, इनके मुँह पर कुछ विकार नहीं देख पड़ता; और न इनका मुँह काला या कान्तिहीन ही है। इनका मुँह कान्तिमान् और प्रसन्न हो रहा है। कमल के पत्ते के समान इनके हाथ और प्रसन्न आँखें देख पड़ती हैं। हे राजन्! प्राणरहितों के इस तरह के चिह्न नहीं होते। आप दुःख न कीजिए। ये जी रहे हैं। अङ्ग शिथिल हो जाने से ये पड़े हुए हैं; इसकी कुछ चिन्ता नहीं। सोते हुए की नाईं, साँस के साथ, इनका हृदय बार बार काँपता है।" सुषेण यह कह कर पास खड़े हुए हनुमान् से बोले—हे सौम्य! जाम्बवान् ने जिस पर्वत को लाने के लिए तुमसे कहा था उस महोदय के दक्षिण शृङ्ग पर चार तरह की ओषधियाँ हैं—विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी। तुम जल्दी जाओ और उन्हें ले आओ, जिससे कि आरोग्य होकर लक्ष्मण उठ खड़े हों।

सुषेण के मुँह से इतना निकलते ही हनुमान् हवा की तरह उड़े और वहाँ जा पहुँचे। परन्तु ओषधियों को बिना जाने वे कैसे लावें। इसलिए वहाँ खड़े होकर वे सोचने लगे। फिर उन्होंने यही निश्चय किया कि इस शिखर ही को ले चलें। मुझे पक्का अनुमान होता है कि सुषेण ने इसी शिखर का नाम बताया था। यदि बिना लिये चलें और पूछ कर फिर लेने आवें तो समय अधिक लग जायगा।

इससे बुराई होगी और कादरता पाई जायगी। इस तरह सोच विचार कर हनुमान् ने उस पर्वत के शिखर को तीन बार हिलाकर उखाड़ लिया। वह जल भरे हुए काले बादल की नाईं देख पड़ता था और उस पर अनेक तरह के फूले फूले वृक्ष लह-लहा रहे थे। फिर वे झट वहाँ से उड़े और पर्वत के शिखर को रामचन्द्र के पास लाकर रख दिया। अब उन्होंने सुषेण से कहा—"मैं उन ओषधियों को पहचान न सका, इसलिए पर्वत का समूचा शिखर उखाड़ लाया हूँ। इसमें से तुम पहचान कर ओषधि ले लो।" तब सुषेण ने ओषधियों को पहचान कर ले लिया। देवताओं से भी दुष्कर, हनुमान् का, यह काम देखकर बानर बड़े विस्मित हुए। अब सुषेण ने ओषधियाँ कूटकर लक्ष्मण को सुँघाईं। सूँघते ही वे शक्ति-पीड़ा से रहित हो जमीन पर से उठ खड़े हुए। उनको उठते देखकर बानर प्रसन्न हो वाह वाह करने और लक्ष्मण की सराहना करने लगे। तब रामचन्द्र ने 'आओ, आओ' कह कर छोटे भाई को गलेसे लगा लिया और वे आँखों में आँसू भर कर बोले—"हे वीर! मैं बड़े भाग्य से तुमको फिर देख रहा हूँ। मैं तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ समझता हूँ। यदि तुम मर जाते तो मुझे न अपने जीने से, न सीता से और न विजय से कुछ काम था।" भाई के ऐसे वचन सुन खिन्न हुए लक्ष्मण धीरे से बोले—हे सत्यपराक्रमी! पहले वैसी प्रतिज्ञा कर फिर छोटे और पराक्रमहीन मनुष्य की नाईं आप को बात करना उचित नहीं है। क्योंकि सत्यवादी मनुष्य झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते। बड़ाई का यही लक्षण है कि प्रतिज्ञा का पालन किया जाय। हे दोषरहित! मेरे लिए निराश हो जाना आप को उचित नहीं था। आज आप रावण को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। आप के बाणों के मार्ग में आकर अब शत्रु जीता नहीं बच सकता, जैसे कि गरजते हुए तेज़ दाँतोंवाले सिंह के पास से हाथी नहीं बचता। मैं चाहता हूँ कि सूर्य छिपने से पहले ही यह दुष्ट रावण मार लिया जाय।

दोहा।

रावण बध तें जो चहहु, पूर्ण प्रतिज्ञा आज।
अरु यदि चाहहु जानकिहिं, करहु बचन मम राज॥

---

१०३ रा सर्ग।

इन्द्र का रथ भेजना और उस पर चढ़ कर फिर रामचन्द्र का रावण के साथ युद्ध करना।

लक्ष्मण की ये बातें सुनकर राघव ने हाथ में फिर धनुष लिया। वे बड़े भयङ्कर भयङ्कर बाण छोड़ने लगे। उधर रावण भी दूसरे रथ पर चढ़कर, सूर्य पर राहु की नाईं, रामचन्द्र के सामने आकर महावज्र के तुल्य बाणों की ऐसी वर्षा करने लगा जैसे मेघ जल बरसाता है। रामचन्द्र भी प्रदीप्त आग की नाईं बाणों से रावण को मारने लगे। उस समय देवता, गन्धर्व और किन्नर बोले कि यह युद्ध तो ठीक नहीं है। क्योंकि रावण तो रथ पर सवार है और राघव जमीन पर खड़े हैं। यह युद्ध समान नहीं कहा जायगा। यह सुन कर देवराज इन्द्र ने अपने सारथि मातलि से कहा कि तुम मेरा रथ लेकर अभी रामचन्द्र के पास जाओ, और उनको इस पर सवार कराओ। यह देवताओं के बड़े हित का कार्य है। इसे तुम जरूर करो। इन्द्र की आज्ञा

सुनकर सारथि ने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज! मैं अभी जाता हूँ और मैं ही उनका सारथि भी रहूँगा। अब मातलि हरे रङ्ग के घोड़ों से रथ जोतने लगा।

इन्द्र का वह रथ जोता गया, जो सोने से चित्र विचित्र बना हुआ था। वह रथ सैकड़ों झुंझुनियों से भूषित था और तरुण सूर्य की तरह जगमगा रहा था। वह पन्नों के दण्डों से मनोहर था, उसमें सोने के बाँस में ध्वजा फहरा रही थी और उसमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे। वह सोने के अलङ्कारों से शोभायमान था, और सफ़ेद चामरों से मनोहर, सूर्य की नाईं चमकीला तथा सोने की जालियों से ढका हुआ था। उस पर मातलि सारथि सवार होकर स्वर्ग से उतरा और राघव के पास आकर हाथ जोड़ बोला—"हे काकुत्स्थ, महापराक्रमी, श्रीमन, हे शत्रुनिवर्हण! देवराज इन्द्र ने विजय के लिए आप को यह रथ दिया है। यह इन्द्र का बड़ा धनुष, यह अग्नि के तुल्य कवच, सूर्य के प्रकाश के समान ये चमकीले बाण, तथा यह साफ़ और बड़ी तेज़ धारवाली शक्ति है। आप इस रथ पर चढ़िए, मैं सारथि हूँ। जैसे इन्द्र दानवों को जीतते हैं वैसे ही आप रावण को जीतिए।" इस तरह सुनकर श्रीरामचन्द्र ने रथ की प्रदक्षिणा की और प्रणाम करके उस पर चढ़ गये। उस समय राम और रावण का, दो रथों पर चढ़ कर, ऐसा भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ कि जिसे देख कर रोमाञ्च हो जाता था। रामचन्द्रजी रावण के चलाये गान्धर्व को गान्धर्व से और दैवास्त्र को दैव से काटते जाते थे। अब रावण ने महाघोर राक्षसास्त्र का प्रयोग किया। उस समय, उसके धनुष से जो बाण निकलते और रामचन्द्र के ऊपर आते थे वे ठीक महाविषधारी नाग हो जाते थे। वे मुँह से अग्नि-ज्वाला फेंकते और महाभयङ्कर मुँह फैलाये हुए थे। वासुकि सर्पराज के तुल्य उन बाणों से दिशा और विदिशाएँ भर गईं। तब रामचन्द्र ने भी घोर गारुड़ास्त्र का प्रयोग किया। वे गरुड़ाकार सुवर्णपुङ्ख बाण अग्नि के तुल्य प्रदीप्त हो आकाश में घूमने और साँपों पर झपटने लगे। उन्होंने थोड़ी ही देर में सर्परूप बाणों को काट गिराया।

अब अस्त्र के नष्ट होने से रावण क्रुद्ध हो राम पर बाण बरसाने लगा। उसने एक हज़ार बाणों से रामचन्द्र को बींध कर मातलि को भी मारा। एक बाण से इन्द्र की ध्वजा काट कर बहुत से बाणों से इन्द्र के घोड़ों को भी मारा। उसके हाथ की यह सफ़ाई देखकर देवता, दैत्य, गन्धर्व और चारण दुखी हुए। उस समय, रावण के बाणों से राम को पीड़ित देख सिद्ध, महर्षि, बानर, भालू और विभीषण—सब दुखी होने लगे। रामरूपी चन्द्र को रावण-रूप राहु से ग्रसा देख कर अनेक उत्पात होने लगे। चन्द्रमा की प्यारी प्रजापति दैवत रोहिणी पर बुध ने आक्रमण कर लिया। यह प्रजा के लिए अशुभ है। फिर समुद्र की जिन लहरों में से कुछ कुछ धुआँ सा निकलता दिखाई देता था वे ऐसी उमड़ीं मानों सूर्य को छू लेंगी। सूर्य का रङ्ग काला हो गया और किरणें मन्द पड़ गईं। सूर्यवंशियों का नक्षत्र विशाखा है। उसके देवता इन्द्र और अग्नि हैं। गोद में कबन्ध को लिये और धूमकेतु के साथ मिले हुए मङ्गल ग्रह ने उस विशाखा पर आक्रमण कर लिया। उस समय दस मुँह और बीस भुजाओं वाला रावण धनुष लिये ऐसा देख पड़ता था मानों

मैनाक पर्वत हो। उस अवसर पर मायानट श्री-रामचन्द्र ऐसे सुस्त हो गये कि बाण लगाने में भी असमर्थ थे। पर थोड़ी ही देर में महाराज क्रुद्ध हो भौंहें चढ़ाकर अपनी लाल आँखों से राक्षसों को भस्म करते हुए सावधान हो गये। उन्हें ऐसा क्रोध हुआ कि उनका मुँह देखकर सब प्राणी भयभीत हो गये। भूकम्प होने लगा। सिंह और शार्दूलों सहित पर्वत ऐसा थरथराने लगा कि उसके सब वृक्ष हिलने लगे। समुद्र खलबला उठा। बादल बड़े ज़ोर से गरजने लगे। उत्पात समय के जीव बड़े कठोर शब्द से डकराने लगे। उस समय राम को क्रुद्ध, और भयङ्कर उत्पात, देखकर सब प्राणी डर गये। रावण को भी डर लगा। विमानों पर चढ़े हुए देवता, गन्धर्व, बड़े नाग, ऋषि, दानव, दैत्य, गरुड़ तथा और और आकाशचारी जीव राम और रावण का युद्ध देख रहे थे।

वह युद्ध क्या था, महाप्रलय सा मौजूद हो गया था। तरह तरह के भयङ्कर अस्त्र-शस्त्रों से होनेवाले दोनों के युद्ध को देखकर देवता भक्ति-पूर्वक तथा हर्ष से कह रहे थे कि राम का विजय हो। उधर असुर रावण की जय बोल रहे थे। देवता तो बार बार 'जय महाराज, जय महाराज' यही पुकारते थे। इतने में रावण ने क्रोध में भर कर एक बड़ा भारी अस्त्र हाथ में लिया। वह अस्त्र वज्र के तुल्य कठोर था और बड़ा भारी शब्द करता था। वह शत्रुओं का संहारक था। पर्वत के शिखर के समान, अपने लोहे के हिस्सों से वह चित्त और दृष्टि को भयदायक था। धुएँ के समान, उसका आगे का भाग बड़ा तेज़ था; वह प्रलय-समय की अग्निराशि के तुल्य अत्यन्त भयानक, काल को भी असह्य, सब प्राणियों को डरवाने वाला तथा भेदन करने की शक्ति रखने-वाला था। उस समय राक्षसी सेना रावण के चारों ओर आकर इकट्ठी हो गई थी। उस अस्त्र को उठा कर रावण बड़े ज़ोर से गरजा जिससे पृथ्वी, आकाश और दिशा-विदिशाएँ काँप उठीं। प्राणिमात्र डर गये। समुद्र में क्षोभ हो गया। उस आयुध को लिये हुए गरज कर रावण बोला—"हे राम! यह मेरा वज्रसार शूल है। यह तुम्हारे प्राण हरण कर लेगा। जिन राक्षसों को तुमने मारा है उनका बदला मैं अभी चुकाये देता हूँ। हे समर में प्रशंसा पाने-वाले! खड़े रहो। देखो, मैं अभी तुमको मारता हूँ।" इतना कह कर उसने वह शूल फेंक कर राम को मारा। वह शूल हाथ से छूटते ही आठ घण्टों से घनघनाता हुआ, अनेक बिजलियों की नाईं, आकाश में जाकर चमचमाने लगा। उसको नष्ट करने के लिए रामचन्द्र ने बहुत से बाण चलाये; मानो प्रलय की आग का नाश करने के लिए इन्द्र ने वर्षा की हो। पर उनके सब बाणों को शूल ने ऐसे भस्म कर डाला जैसे आग पतिङ्गों को भस्म कर देती है। रामचन्द्र ने सोचा कि शूल ने तो मेरे सब बाणों को भस्म करके चूर चूर कर दिया। तब वे बड़े क्रुद्ध हुए। इन्द्र के रथ पर मातलि सारथि की लाई हुई एक शक्ति रक्खी थी। राघव ने उसे हाथ में उठा लिया। हाथ में लेते ही उसके घण्टों की भारी आवाज़ होने लगी। वह प्रलय-काल के लुक की नाईं चमकने लगी। फिर उन्होंने उसे फेका। उसने जाकर उस शूल को काट गिराया। उसका प्रकाश नष्ट हो गया और वह ज़मीन पर गिर पड़ा। फिर राघव ने अपने बड़े वेगवान बाणों

से रावण के बड़े फुर्तीले घोड़ों को मारा तथा बहुत से बाण उसकी छाती में और तीन बाण उसके माथे में मारे। उनसे उसके सब अङ्ग छिद गये। अङ्गों से रुधिर-धारा बहने लगी। बहुत से छिदे हुए मस्तकों द्वारा वह फूले हुए अशोक वृक्ष की नाईं दिखाई दिया। रुधिर से सींचा हुआ वह रावण बड़ा दुखी हुआ और इस प्रकार अपना पराजय देख कर उसे बड़ा क्रोध हुआ।

---

१०४ था सर्ग।

रावण का अति मूर्च्छित होना।

राम के बाणों की भारी चोट खा कर रावण बड़ा ही क्रुद्ध हुआ। क्रोध से उसकी आँखें जलने लगीं। वह अपना धनुष उठा कर राम पर दौड़ा, और बाणों की धारा से उन्हें ऐसा पूर्ण कर दिया जैसे मेघ तालाब को भरता है। परन्तु महाराज रामचन्द्र महापर्वत की नाईं अचल रहे। वे उन बाणों से ज़रा भी न डिगे। वे अपने बाणों से उसके बाणों को रोकते हुए सूर्य की किरणों की नाईं सहते जाते थे। इतने में रावण ने बड़ी फुर्ती से प्रभु की छाती में एक हज़ार बाण मारे। उनकी मार से प्रभु रुधिर से सन गये। वे जङ्गल में फूले हुए टेसू वृक्ष की नाईं दिखाई देने लगे। तदनन्तर राघव ने भी बड़े कराल बाण निकाल कर रावण पर चलाये। अब दोनों का द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ। उस समय मारे बाणों के ऐसा अँधेरा छा गया कि दोनों में से एक भी दिखाई न देता था। इसके बाद रामचन्द्रजी क्रुद्ध हो रावण से बोले—हे नीच राक्षस! मेरी विवश स्त्री को तू जनस्थान से हर लाया, इसलिए तू पराक्रमी नहीं है। देख, अकेली दीन और जङ्गल में पड़ी हुई बेचारी वैदेही को हर कर तू अपने को शूर मानता है? बेबस स्त्रियों पर हाथ डालना, और परस्त्री पर ज़बरदस्ती करना क्या शूर का काम है? ऐसा निन्दित काम करके भी तू अपने को शूर मानता है? अरे मर्यादा नष्ट करने वाले निर्लज्ज, दुश्चरित्र! अहङ्कार से तू अपने हाथों अपनी मृत्यु को पकड़ कर जानता है कि मैं शूर हूँ। वाह रे शूर, कुवेर के भाई! सेना सहित तू ने सराहने के योग्य और कीर्ति बढ़ानेवाला यह बड़ा भारी काम किया जो दूसरे की स्त्री की चोरी की। शाबाश! उस गर्व से युक्त, निन्दित और अहितकर अपने कर्म का फल इस समय स्वीकार कर। अरे मूर्ख! तू अपने को शूर समझता है। तुझे लज्जा नहीं आती कि चोर की नाईं तू सीता को हर ले गया? अगर यह काम तू वहाँ मेरी उपस्थिति में करता तो मेरे बाणों से मर कर अपने भाई खर को अवश्य देखता। हे निकृष्ट आत्मावाले! इस समय तू मेरी नज़र के सामने आया है। आज तुझे मारे बाणों के मैं यमपुरी पहुँचाये देता हूँ। आज मेरे बाणों से निर्मल कुण्डलों-सहित तेरे सिर कट कट कर रण-स्थल की धूल से लिपटेंगे; मांसाहारी जीव उन्हें खींच कर खायँगे। अरे रावण! जब तुझे मैं ज़मीन पर गिरा दूँगा तब तेरी छाती पर गीध बैठ कर बींधे हुए बाणों की सन्धियों में से निकलते हुए ख़ून को पीवेंगे। आज मेरे बाणों से विदीर्ण होकर जब तू ज़मीन पर गिर जायगा तब तेरी अँतड़ियों को पक्षी इस तरह खींचेंगे जिस तरह गरुड़ साँपों को खींचते हैं।

इस तरह कहते कहते रामचन्द्रजी रावण पर बाण-वर्षा करने लगे। महाराज का बल, पराक्रम

और हर्ष दूना हो गया। उन्हें अस्त्रबल भी याद आ गया और सब अस्त्र प्रकट हो गये। हाथों में बड़ी शीघ्रता पैदा हुई। इन सब अच्छे चिह्नों को देख कर वे और भी अधिक रावण का मथन करने लगे। उस समय वानरों के पत्थर बरसाने से और राम की बाण-वर्षा से रावण बड़ा घबरा गया। शस्त्र चलाने से उसके हाथ रुक गये। न वह शस्त्र चला सकता था, न धनुष खींच सकता था और न मारे घबराहट के कुछ पराक्रम ही दिखलाता था। जो बाण और शस्त्र उसने चलाये थे वे सब उसी के मरण के कारण हुए। इस तरह, रावण के मरने का समय आ पहुँचा। उसके सारथि ने यह दशा देख कर बड़ी फुरती से उसका रथ संग्राम से हटा लिया।

दोहा।

नष्ट पराक्रम अरु पतित, देखि स्वामि कहँ सूत।
ले रथ भाग्यो समर ते, लखि रिपु वीर्य अकूत॥

———

१०५वाँ सर्ग।

रावण का अपने सारथि से कठोर वचन कहना और उसका समझाना।

मृत्यु से प्रेरित रावण मूर्च्छा से सचेत हो, लाल लाल आँखें कर, सारथि से बोला—अरे डरपोक, दुर्बुद्धि, सारथे! क्या तूने मुझे वीर्य-हीन, अशक्त, पौरुषरहित, क्षुद्र, निर्बल, तेजरहित, मायाहीन और अस्त्रोंसे बाहर किया हुआ समझा जो तू ने अपने मन का काम किया? क्यों तू मेरा अनादर कर, और मेरा मतलब न जान कर, शत्रु के पास से मेरा रथ हटा लाया? अरे नीच! बहुत समय के सञ्चित यश, वीर्य, तेज, और शूरता को आज तू ने मिट्टी में मिला दिया। पराक्रमों से व्यवहार करने योग्य, विख्यात पराक्रमी, शत्रु के आगे आज तू ने मुझे क्षुद्र मनुष्य बना दिया, यद्यपि मुझे युद्ध करने का चाव था। हे दुर्मते! मैं जानता हूँ कि तू शत्रु से मिला हुआ है। जो ऐसा न होता तो वहाँ से मेरा रथ तू कभी न हटाता। हितकारी सुहृदों का यह काम नहीं है जैसा आज तू ने मेरे साथ किया। ऐसा काम तो शत्रुओं के साथ करना ठीक है। भला जो किया सो किया, अब मेरा रथ जल्दी लौटा ताकि मेरा शत्रु पास न आ जाय। तू मेरे पास बहुत दिन से रहता है और तुझे मेरे गुणों की भी याद होगी।

इस प्रकार बुद्धिहीन रावण से डपटा हुआ सारथि नम्रता-पूर्वक कहने लगा—"हे प्रभो! न मैं डर गया हूँ; और न मूर्ख हूँ। न शत्रु से मिला हुआ हूँ और न पागल हूँ। न मैं स्नेहरहित हूँ और न आप के सत्कार को ही भूला हूँ। मैंने हित की इच्छा से और आपके यश की रक्षा के लिए, स्नेह और प्रसन्नता-पूर्वक आप का यह काम किया; यद्यपि यह काम अच्छा था पर आपको अप्रिय जान पड़ा। महाराज! इस विषय में आप क्षुद्र और अश्रेष्ठ मनुष्य की नाईं प्रिय और हित में तत्पर मुझे दोष देने के योग्य नहीं। सुनिए, मैंने वहाँ से रथ क्यों हटाया। अब मैं आप की बात का उत्तर देता हूँ। जैसे समुद्र के वेग के सामने नदी का वेग नहीं रहता, वैसे ही मैंने आप का रथ लौटाया है। जब मैंने देखा कि लड़ते लड़ते आप थक गये और पराक्रम करने में आपका जरा भी ध्यान नहीं रहा; तथा रथ को खींचते खींचते आप के घोड़े भी थक कर दीन हो गये—जैसे कि वर्षा के मारे बैल हों, तब मैंने वही

करना ठीक समझा। ऐसे समय में बहुत से अच्छे कारण देख पड़ने चाहिएँ; पर मुझे सब उलटे ही दिखाई दिये; फिर मैं क्या करता? महाराज! सारथि को सब बातों का ख़याल रखना चाहिए। उसे देखते रहना चाहिए कि समय कैसा है। उसे देश, काल, लक्षण, चेष्टा, दीनता, हर्ष, खेद, और योद्धा के बलाबल का ज्ञान भी होना चाहिए। जल, स्थल, भूमि का समभाग और विषम भाग, युद्ध का समय, शत्रु के छिद्रों का निरीक्षण, आगे बढ़ना, पीछे हटना, डट कर खड़े रहना और भाग जाना आदि बातों पर सारथि की दृष्टि सदा रहनी चाहिए। क्योंकि इन बातों पर प्रायः लड़नेवाले की नजर नहीं रहती। केवल सारथि को ही इन पर नजर रखनी चाहिए। इसलिए हे राक्षसेन्द्र! तुम्हारे सुस्ताने और घोड़ों की थकावट को मिटाने के लिए मैंने वह उचित काम किया था। मेरे इस काम को व्यर्थ न समझना चाहिए। मैं स्वामी के स्नेह में ही तत्पर हो कर ऐसा काम कर बैठा। हे शत्रुनाशन! अब जैसी आज्ञा कीजिए, मैं वैसा सावधानी से करूँ।" सारथि का उत्तर सुन कर रावण सन्तुष्ट हुआ। बहुत तरह से उसकी प्रशंसा कर वह युद्ध के लोभ से कहने लगा—हे सूत! मेरा रथ राम के पास ले चल। बिना शत्रु को मारे रावण टलेगा नहीं। इतना कह कर उसने सारथि को इनाम में हाथ का एक आभूषण दिया।

दोहा।

रावण कर यह वचन सुनि, सारथि अति हरषाइ।
छन महँ रघुपति के निकट, ठाढ़ कियो रथ जाइ॥

---

१०६ ठा सर्ग।

अगस्त्य मुनि का आकर रामचन्द्र को आदित्य-हृदय स्तोत्र का उपदेश करना।

युद्ध से थके, चिन्ता में पड़े हुए, श्रीरामचन्द्रजी रावण को समीप देख युद्ध के लिए तैयार थे। इतने में उनके पास भगवान् अगस्त्य मुनि आये। वे देवताओं के साथ युद्ध देखने के लिए आये थे। उन्होंने कहा—"हे महाबाहो, राम! मैं यह सनातन और गुप्त स्तोत्र कहता हूँ। तुम सुनो। हे प्यारे! इसके द्वारा तुम सब शत्रुओं पर विजय पाओगे। इसका नाम आदित्यहृदय है। यह स्तोत्र पवित्र, सर्व-शत्रुनाशक, जय का दाता और नित्य रहनेवाला है। यह अक्षय, परम मङ्गल, सब मङ्गलों का मङ्गल, सब पापों का नाशक, चिन्ता और शोक को दूर करनेवाला, तथा आयुर्बल बढ़ाने में बड़ा उत्तम है। हे राघव! तुम सब भुवनों के ईश्वर सूर्य का आराधन करो, जो किरणोंवाले हैं, जिनका उदय हो चुका है, जिनको देवता और असुर नमस्कार करते हैं तथा जो प्रकाशमान् हैं। ये महाराज सर्व-देवरूप, और तेजस्वी हैं, तथा अपनी किरणों से सब पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। ये अपनी किरणों से देवताओं और असुरों की रक्षा करते हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द और प्रजापति हैं; ये ही इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्र, और वरुण हैं; ये ही पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, प्रजाओं के प्राण, ऋतुकर्त्ता और प्रभाकर हैं।

सूर्य की नामावली।

आदित्य, सविता, सूर्य, खग, पूषा, गभस्ति-

माम्, सुवर्णसदृश, भानु, हिरण्यरेता, दिवाकर, हरिदश्व, सहस्रार्चि, सप्तसप्ति, मरीचिमान्, तिमिरोन्मथन, शम्भु, त्वष्टा, मार्तण्ड, अंशुमान्, हिरण्यगर्भ, शिशिर, तपन, भास्कर, रवि, अग्निगर्भ, अतितिपुत्र, शङ्ख, शिशिरनाशन, व्योमनाथ, तमोभेदी, ऋग्यजुःसामपारग, घनवृष्टि, अपांमित्र, विन्ध्यवीधिप्लवङ्गम, आतपी, मण्डली, मृत्यु, पिङ्गल, सर्वतापन, कवि, विश्व, महातेजा, रक्त, सर्वभवोद्भव, नक्षत्रमहताराधिप, विश्वभावन, तेजों में तेजस्वी।

सूर्य को प्रणाम।

हे द्वादशरूप! तुमको प्रणाम है। हे पूर्वगिरिरूप! तुम०। हे पश्चिमगिरिरूप! तुम०। हे ज्योतिगणों के पति! तुम०। हे दिनाधिपते! तुम०। हे जय! तुम०। हे जयभद्र! तुम०। हे हर्यश्व! तुम०। हे सहस्रांशो! तुम०। हे आदित्य! तुम०। हे उग्र! तुम०। हे वीर! तुम०। हे सारङ्ग! तुम०। हे पद्मप्रबोध! तुम०। हे प्रचण्ड! तुम०। हे ब्रह्मन्! तुम०। हे ईशान! तुम०। हे अच्युत! तुम०। हे ईश! तुम०। हे सूर! तुम०। हे आदित्यवर्चः! तुम०। हे भास्वन्! तुम०। हे सर्वभक्ष! तुम०। हे रौद्रवपुः! तुम०। हे तमोघ्न! तुम०। हे हिमघ्न! तुम०। हे शत्रुघ्न! तुम०। हे अमितात्मन्! तुम०। हे कृतघ्नघ्न! तुम०। हे देव! तुम०। हे ज्योतिष्पते! तुम०। हे तप्तचामीकराभ! तुम०। हे हरे! तुम०। हे विश्वकर्मन्! तुम०। हे तमोभिनिघ्न! तुम०। हे रुचे! तुम०। हे लोकसाक्षिन्! तुमको नमस्कार है।

हे रामचन्द्र! यही प्रभु सब (प्राणिमात्र) का नाश करते, सिरजते और पालते हैं। यही तपते और अपनी किरणों से वर्षा करते हैं। ये सबके सोने पर जागते रहते हैं। ये सब में अन्तर्यामी रूप से स्थिर बैठे रहते हैं। यही अग्निहोत्र और अग्निहोत्रियों के फलरूप हैं। देवयज्ञ और यज्ञों के ये ही फल हैं। लोकों में जितने काम होते हैं उन सब में ये ही बड़े प्रभु हैं। हे राघव! आपत्तियों में, क्लेशों में, वनों में और भयों में इनका कीर्त्तन करनेवाला मनुष्य पीड़ा नहीं पाता। इसलिए तुम एकाग्र हो इन देवदेव और जगत्पति का पूजन करो। इसका तिगुना जप करने से तुम युद्ध में विजय पाओगे। इसी समय तुम रावण को मारोगे।" इस तरह उपदेश करके अगस्त्य मुनि वहाँ से चले गये। अगस्त्य मुनि के कथन से रामचन्द्रजी शोक-रहित हो गये। उन्होंने उसे सावधानी से धारण किया। भगवान् सूर्य की ओर देख कर उन्होंने इस स्तोत्र का जाप किया। वे बड़े प्रसन्न हुए। तीन बार आचमन कर और हाथ में धनुष लेकर वे रावण की ओर देखने लगे। फिर वे हर्षित मन से जय के लिए और सब तरह से रावण के मारने के लिए तैयार हुए।

दोहा।

रवि बोले सुर-मध्यगत, रामहिं लखि हरषाय।
जानि लङ्कपति मृत्यु यहि, हनहु वेगि रघुराय॥

---

१०७ वाँ सर्ग।

राम-रावण के शकुन और अशकुन का वर्णन।

अब रावण का सारथी, सेना को हर्ष देने वाले, रथ को हाँक कर वहाँ से चला। वह रथ गन्धर्व नगर के तुल्य था। उसमें अद्भुत ऊँची पताकाएँ लगी हुई थीं। वह सोने की मालाओं से

भूषित, अच्छे अच्छे घोड़ों से जुता हुआ और लड़ने की चीज़ों से भरा हुआ था। वह पताका और ध्वजाओं की मालाओं से सजा हुआ था। वह आकाश को ग्रास करनेवाला, मानो भूमि को नादित करता था; शत्रु की सेना का नाशक, और अपनी सेना को हर्षदाता था। रामचन्द्रजी ने उस रथ को देखा जो झपटकर चला आता था। उसके दौड़ने का शब्द हो रहा था। उसमें बड़ा झण्डा फहरा रहा था, और काले काले घोड़े जुते हुए थे। बड़े तेज से चमकीला वह ऐसा जान पड़ता था मानों सूर्य के समान चमकता हुआ आकाश का विमान हो। वह साक्षात् मेघ के समान था जिसमें पताका-रूप बिजलियाँ थीं, आयुध-रूप इन्द्र-धनुष था और जो बाण-धारा-रूप जल की धारा बरसाता था। वह वज्र की चोट से फटते हुए पर्वत की नाईं गरज रहा था। उसे देख कर रामचन्द्रजी ने अपने बालचन्द्र के तुल्य धनुष को तैयार किया और मातलि से बोले—हे सारथे! देखो, यह शत्रु का रथ दाहिनी ओर कैसा लपका चला आता है। यह चाहता है कि संग्राम में हमको मारे। इसलिए होशियारी से शत्रु के पास मेरा रथ ले चलो। आज मैं इसका ऐसे विध्वंस करना चाहता हूँ जैसे वायु मेघ का विध्वंस करता है। तुम क्षोभरहित एवं व्याकुलता-हीन हो जाओ और मन तथा दृष्टि को स्थिर कर घोड़ों के रस्सों को अच्छी तरह पकड़ो और नियम-पूर्वक जल्दी रथ चलाओ। यद्यपि तुमको सिखलाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि तुम इन्द्र के सारथि हो, तो भी मैं तुमसे इसलिए कह देना उचित समझता हूँ कि मैं सावधानी से युद्ध करना चाहता हूँ। इसी से तुम्हें याद दिलाता हूँ, सिखलाता नहीं हूँ।

राम की ये बातें सुन कर मातलि ने सन्तोष-पूर्वक प्रसन्न हो रथ हाँका। वह अपने रथ को रावण के रथ की दाहिनी ओर ले गया और पहियों से उड़ी हुई धूल से उसे कम्पित कर दिया। अब रावण क्रोध से लाल आँखें करके राम पर बाण चलाने लगा। रावण की ऐसी ढिठाई देख राघव ने धीरता-पूर्वक क्रोध से इन्द्र का धनुष हाथ में लिया और बड़े बड़े चमकीले बाण चलाना शुरू किया। एक दूसरे को मारने की इच्छा रखनेवाले दोनों आमने सामने खड़े होकर, गर्वित सिंह की नाईं दिखाई देते हुए, भारी युद्ध करने लगे। रावण का नाश चाहनेवाले देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि उस द्वन्द्व युद्ध को देखने के लिए वहाँ इकट्ठे हो गये। वहाँ भयानक रोमाञ्चकारी उत्पात प्रकट हुए। वे रावण के नाश और राघव के अभ्युदय की सूचना कर रहे थे। रावण के रथ पर मेघ रुधिर की वर्षा करने लगे और मण्डल बाँध कर रूखी हवा उसके दाहिनी ओर चलने लगी। जहाँ जहाँ रावण का रथ जाता था उसी उसी ओर आकाश में गीधों का झुण्ड दौड़ता था और जड़हुल के फूल के रंग की सन्ध्या ने लङ्का को घेर लिया। दिन में भी वहाँ की ज़मीन ऐसी मालूम होने लगी मानों जल रही हो। कड़क के साथ बड़े बड़े पुच्छल तारे आकाश से गिरने लगे। वे राक्षसों को चिन्तित करते और रावण के अहित की सूचना करते थे जिधर रावण का रथ था उधर की ज़मीन थरथराने लगी। प्रहार करते राक्षसों के हाथ रुक गये मानों किसी ने पकड़ लिये हों। रावण के आगे, लाल, पीले, सफ़ेद, और काले रंग की सूर्य की किरणें दिखाई दीं मानों पर्वत की धातुएँ हों।

राम-रावण-युद्ध ।

गीधों के साथ अपने मुँहों से अग्नि निकालती हुई सियारिनियाँ रावण के मुँह की ओर देख देख कर बड़े ज़ोर से अमङ्गल शब्द करने लगीं। धूल उड़ाती और रावण की नज़र में चकाचौंध करती सामने की हवा ज़ोर से चलने लगी। राक्षसराज की सेना पर, बिना ही मेघ के, भयङ्कर और असह्य कड़क के साथ चारों ओर से बिजलियाँ गिरने लगीं। सब दिशा और विदिशाओं में अँधेरा छा गया। मारे धूल के आकाश छिप सा गया। भयङ्कर शब्द से चिल्लाती और ज़ोर से लड़ती हुई सैकड़ों मैनाओं का झुण्ड रावण के रथ पर गिर पड़ा। उसके घोड़ों की जाँघों से चिनगारियाँ निकलने लगीं और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। साथ ही वे अग्नि और जल दोनों गिराने लगे। इस तरह बहुत से भयकारी उत्पात रावण के विनाश के लिए और राघव की जय के लिए प्रकट हुए। राम की ओर अच्छे अच्छे विजयसूचक शकुन देख पड़े। इन सब चमत्कारों को देख कर बानरी सेना बहुत ख़ुश हुई और उसे यह निश्चय हो गया कि अब रावण के मरने का समय आ गया। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

दोहा।

मायापति शुभ शकुन लखि, हर्षित भे रण माहिं।
सम्मुख रावण कहँ निरखि, लियौ धनुष कर चाहि॥

---

१०८ वाँ सर्ग

रामचन्द्र और रावण का फिर द्वन्द्व-युद्ध।

उन दोनों वीरों का घमासान युद्ध फिर शुरू हुआ। दोनों की लड़ाई देख राक्षसी और बानरी सेना हाथों में शस्त्र लिये भौचक सी रह गई। शस्त्रों का चलाना रुक गया। उन्हीं दोनों का कौतुक देख दोनों सेनाओं का हृदय व्याकुल हो गया और विस्मय भी हुआ। उस समय न तो बानर राक्षसों को और न राक्षस बानरों को मारते थे। केवल अपने अपने स्वामी की ओर नज़र किये, चित्र-लिखित की तरह, खड़े थे। रामचन्द्र और रावण उन कारणों को देख, निडर होकर, क्रोध में भरे हुए जूझ रहे थे। रामचन्द्र तो जीतने पर, और रावण मरने पर पक्का विचार किये, अपना अपना पराक्रम दिखला रहे थे। रावण ने राघव की ध्वजा को निशाना बना कर बहुत से बाण चलाये परन्तु रथ की शक्ति से वे ध्वजा तक नहीं पहुँचे—ज़मीन पर ही गिर पड़े। यह काम देख कर, उससे बदला लेने के लिए, रामचन्द्र ने भी रावण की ध्वजा पर एक तेज़ बाण चलाया। वह उसकी ध्वजा को फाड़ कर ज़मीन पर जा गिरा। ध्वजा भी फट कर ज़मीन पर गिर गई। यह देख कर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह बाण वर्षा करने लगा और घोड़ों को बाणों से बीधने लगा। पर वे घोड़े ऐसे वैसे न थे। वे दिव्य थे, इसलिए उसकी चोट से न तो वे गिरे और न घबराये। बाणों की चोट उनको ऐसी जान पड़ी मानों कमल की डण्डी शरीर से छू गई हो। बाणों को निष्फल देख राक्षसराज फिर पहले की तरह बाणों की वर्षा करने लगा और गदा, परिघ, चक्र, मूशल, पर्वत के टुकड़े, वृक्ष, शूल, और परश्वधों को चलाने लगा। ये सब शस्त्र माया से बनाये गये थे। इतने पर भी उसे शान्ति न हुई। उत्साह से भर कर वह बड़े भयङ्कर तथा भयङ्कर शब्द करनेवाले हज़ारों बाण छोड़ने लगा। उसने

बाणों की झड़ी लगा दी। रामचन्द्र जी के रथ के सिवा, चारों ओर बानरी सेना पर, मारे बाणों के उसने आकाश भर दिया। उस समय वह पूरा ज़ोर लगा कर यह काम कर रहा था। रावण का इस तरह का वेग देख कर रामचन्द्र भी सैकड़ों हज़ारों बाण छोड़ने लगे। यह देख कर रावण और भी बाणों की वर्षा करने लगा। उसने बाणों से आकाश और पृथ्वी के अन्तर को भर दिया। दोनों योद्धाओं की प्रकाशमान बाण-वृष्टि से बाणों से बना हुआ एक दूसरा ही आकाश दिखाई देने लगा। उस समय दोनों के बाण न निशाने से खाली थे, न भेदन करने में चूकते और न निष्फल होते थे। वे आपस में टकराकर ज़मीन पर गिर जाते थे। दोनों वीर कभी बाईं ओर और कभी दहिनी ओर बाणों को चलाते हुए आकाश को वायुसंचार-रहित (बिना हवा के) कर रहे थे। राक्षस के घोड़ों को रामचन्द्र और उनके घोड़ों को वह—इस प्रकार परस्पर छेदते हुए बदला लेते थे। मुहूर्त भर दोनों का महाघोर युद्ध हुआ। रथ की ध्वजा कट जाने से रावण रामचन्द्रजी पर बहुत ही क्रोध करता रहा।

---

१०६ वाँ सर्ग

रावण के सिरों का काटा जाना और फिर पैदा होना।

राम और रावण का युद्ध देखने के लिए वहाँ जितने दर्शक खड़े थे वे सब आश्चर्य कर रहे थे। अपने अपने रथों पर चढ़े हुए दोनों एक दूसरे पर बड़ा क्रोध करते, एक दूसरे पर झपटते और एक दूसरे का वध चाहते हुए बड़े भयंकर दिखाई देते थे। उन दोनों के सारथि लोग भी मण्डल और पैंतड़े बदलने तथा आगे बढ़ाने में और पीछे हटाने में अपनी चतुरता और सारथि का धर्म दिखला रहे थे। चलने के वेग में तत्पर तथा झपटने और पीछे हटने में चतुर दोनों को दोनों पीड़ित कर रहे थे। उस समय संग्राम में घूमते और बाण-समूहों को फेंकते हुए दोनों के रथ ठीक बरसनेवाले दो बादलों की तरह दिखाई देते थे। दोनों अनेक तरह के पैंतड़े दिखला कर, फिर पास पास खड़े होकर, लड़ने लगे। दोनों के रथ ऐसे सट गये कि धूल से धूल, घोड़ों के मुँह से घोड़ों के मुँह, और पताकाओं से पताकायें मिल गईं। इतने में रामचन्द्रजी ने जलते हुए चार बाण ऐसे छोड़े कि उसके घोड़े वहाँ से हट गये। घोड़ों के हटने से रावण को बड़ा क्रोध हुआ। वह रामचन्द्र को बाणों से ख़ूब बींधने लगा, पर उस प्रहार से महाराज को न कुछ विकार हुआ और न कुछ कष्ट।

फिर रावण ने मातलि के शरीर में बड़े बड़े भयङ्कर बाण मारे, किन्तु वह तो इन्द्र का सारथि था। उस मार से न तो उसे बेहोशी हुई और न कुछ तकलीफ़ हुई। हाँ, अपने सारथि की धर्षणा से राघव को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपने बाणों की वर्षा से शत्रु को विमुख कर दिया। महाराज ने शत्रु के रथ पर बीस, तीस, साठ, सौ और हज़ारों बाण मारे। तब राक्षस भी क्रुद्ध हो महाराज पर गदा और मूसल का प्रहार करने लगा। अब दोनों का तुमुल युद्ध होने लगा। गदा, मूसल और परिघों के शब्दों से और बाणों के पुङ्खों की वायु से सातों समुद्र क्षुब्ध होगये। सागरों के क्षोभ से पातालवासी दानव और हज़ारों नाग बड़े दुखी हुए। सब पृथ्वी काँपने लगी। सूर्य का प्रकाश

कम हो गया। हवा का चलना रुक गया। अब देवता, गन्धर्व, सिद्ध, परमर्षि, किन्नर और नाग बड़ी चिन्ता करने लगे। वे कहने लगे कि गौ-ब्राह्मणों के लिए मंगल हो। सब लोक स्थिर रहें। रावण को रघुपति जीतें। उस समय ऐसा भयङ्कर और रोमाञ्चकारक युद्ध हो रहा था कि गन्धर्व और अप्सराएँ देख कर कहने लगीं कि समुद्र आकाश के तुल्य और आकाश सागर के तुल्य होगया है। राम-रावण का युद्ध इन्हीं दोनों के युद्ध के तुल्य है। इसकी उपमा दूसरे के साथ नहीं दी जा सकती। इतने में रघुवंश की कीर्त्ति बढ़ानेवाले महाबाहु महाराज ने एक बड़ा ही सर्पाकार भयङ्कर बाण अपने धनुष पर चढ़ा कर छोड़ा। उससे, कुण्डलों से प्रज्वलित रावण के सिर कट कर गिर पड़े। उस समय वहाँ तीनों लोकों के प्राणी खड़े थे। उन सबने यह काम देखा। परन्तु थोड़ी ही देर बाद उसके सब सिर वैसेही पैदा हो गये। फिर राघव ने बहुत जल्दी उन्हें भी काट गिराया। फिर भी वे ज्यों के त्यों निकल आये। इसके बाद भी रामचन्द्र ने बड़े पैने पैने बाणों से उन्हें काट डाला। वे फिर भी वैसे के वैसे ही दिखाई देने लगे। इस तरह का चमत्कार सौ बार हुआ परन्तु रावण का अन्त न हुआ। अब शस्त्र चलाने मे बड़े पण्डित और अनेक बाण रखनेवाले रामचन्द्र जी सोचने लगे कि "देखो, जिन बाणों से मैंने मारीच को मारा; जिन बाणों से मैंने खर-दूषण को तथा क्रौंच वन में विराध को और दण्डकारण्य में कबन्ध को मारा था; एवं जिनसे कई एक साखू के वृक्ष और कई एक पर्वत टूट गये तथा बाली मारा गया और समुद्र क्षुब्ध हुआ, वे ही ये मेरे बाण परीक्षा किये हुए हैं। नहीं मालूम, रावण के विषय में ये सुस्त क्यों हो गये? इस समय इनका तेज कहाँ और क्यों चला गया! इसका कारण क्या है?" वे इस तरह सोचते जाते थे तथा राक्षसराज पर और भी बाण चलाते जाते थे। उधर वह भी महाराज पर गदा और मूसलों से प्रहार कर रहा था। अब भी दोनों का बड़ा ही भयंकर युद्ध हो रहा था। वे दोनों केवल संग्राम-भूमि में और एक ही स्थान में खड़े होकर न लड़ते थे; किन्तु कभी आकाश में, कभी जमीन पर, और कभी पर्वत की चोटी पर रथ-सहित उड़ उड़ कर भिड़ते थे। देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, नाग और राक्षस सभी खड़े हो उस युद्ध के कौतुक को देख रहे थे। उन्हें देखते देखते सात रातें बीत गईं, पर युद्ध समाप्त न हुआ। न रात को, न दिन को, न मुहूर्त्त भर और न क्षण भर ही उनका युद्ध रुकता था। वह निरन्तर होता रहता था।

दोहा।

महा तुमुल तेहिं युद्ध महँ, रघुपति जय नहिं देख।
बोल्यो सुरपति-सूत तहँ, रामचन्द्र मुख पेखि॥

---

११० वाँ सर्ग।

रावण का वध।

अब मातलि ने कहा—"हे वीर! आप अनजान की तरह इसे क्यों खेला रहे हैं? इसके ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़िए। देवताओं ने इसके नाश का जो समय बतलाया था वह आज ही है।" मातलि का इतना कथन सुन कर, भूले हुए मनुष्य को बात याद आ जाने की नाईं, महाराज ने याद करके

वह बाण हाथ में लिया जो साँसें छोड़ते हुए साँप के समान था और जिसे भगवान् अगस्त्य ने महाराज को दिया था। अगस्त्य ने यह बाण ब्रह्मा से पाया था। ब्रह्मा ने उस बाण को तीनों लोकों की जय चाहनेवाले इन्द्र के लिए बनाया था। उस बाण के पंखों में हवा थी और फल में अग्नि तथा सूर्य थे। उसका शरीर आकाशमय था तथा भारीपन में वह मेरु और मन्दर के समान था। देखने में वह बड़ा जाज्वल्यमान, अच्छे पुङ्ख से सुशोभित और सुवर्ण-भूषित था। वह सब प्राणियों के तेज से सूर्य के समान बनाया गया था। वह धुएँ-सहित कालाग्नि की नाईं और महाविषधारी साँप की नाईं प्रदीप्त था। वह रथ, हाथी और घोड़ों के समूहों का भेदन करनेवाला, और बहुत जल्दी काम करनेवाला था। वह दरवाज़ो, खाइयों और पर्वतों को तोड़ने वाला, तरह तरह के ख़ूनों में डूबा हुआ और मेदा से भरा हुआ, बड़ा भयङ्कर, वज्र के समान बल रखने-वाला तथा बड़ी आवाज़ देनेवाला था। हव अनेक लड़ाइयों में विजय करानेवाला, सबको डर दिखलाने वाला, भयङ्कर और बड़ी साँसें छोड़नेवाले साँप के समान था। वह युद्ध में कङ्क, गीध, बगले, गीदड़ और राक्षसों को रोज़ भोजन देता था। वह यम रूप, महाभयङ्कर, बड़े बड़े बानरों को आनन्द-दायक, राक्षसों की विपत्ति का कारण और अनेक तरह के गरुड़ के पंखों से सजाया हुआ था। वह सब लोकों के बाणों में सबसे उत्तम, इक्ष्वाकु के वंश के डर का नाशक, शत्रु की कीर्त्ति का हरण-कर्त्ता और अपने को हर्ष देनेवाला था। उस बाण को महराज ने वेदोक्त विधि से अभिमन्त्रित कर अपने धनुष पर चढ़ाया। उसका सन्धान करते ही प्राणिमात्र को डर लगा। पृथ्वी काँपने लगी। राम ने धनुष तान कर उसे छोड़ दिया। इन्द्र के हाथ से छूटे हुए वज्र के तुल्य, रोकने के अयोग्य और मृत्यु के समान वह बाण रावण के हृदय को विदीर्ण कर तथा उसके प्राणों का हरण कर रुधिर में भीगा हुआ ज़मीन में घुस गया। वहाँ से निकल रुधिर के द्वारा शोभा पाता हुआ वह चुपचाप आकर राघव के तरकस में घुस गया।

प्राणरहित रावण के हाथ से बाणों के साथ धनुष ज़मीन पर गिर पड़ा। वह भी, वज्र से मारे हुए वृत्रासुर की नाईं, रथ से ज़मीन पर गिर गया। उसके गिरते ही बाक़ी राक्षस अनाथ और भय-भीत हो चारों ओर भागने लगे। गर्जते तर्जते और हाथों में वृक्ष लिये हुए बानरों ने उनका पीछा किया। वे बेचारे बिना सहारे के हो गये। जायँ कहाँ? इसके सिवा, बानरों ने भी उन्हें ख़ूब तङ्ग किया। अब वे रोते चिल्लाते हुए लङ्का में घुस गये। इसके बाद बानरों का बड़ा भारी हर्षनाद हुआ। प्रभु रामचन्द्र का जय और रावण का वध चारों ओर बानरों के मुँह से सुन पड़ने लगा। आकाश में दुन्दुभियों का शब्द सुनाई देने लगा। अच्छी गन्ध लिये, सुखकारी, हवा चलने लगी। रामचन्द्र के रथ पर आकाश से अच्छे अच्छे फूलों की वर्षा होने लगी। महात्मा तथा देवता वाह वाह करने और प्रभु की स्तुति करने लगे। रौद्र और सब लोक के लिए भयङ्कर रावण के मारे जाने से देवता और चारण बहुत प्रसन्न हुए। उस दुष्ट को मार कर महाराज ने सुग्रीव, अङ्गद और विभीषण को पूर्ण-मनोरथ किया। उस समय देवता प्रसन्न, दिशायें प्रसन्न, आकाश निर्मल, पृथ्वी स्थिर, वायु संचारयुक्त और

सूर्य पहले की तरह प्रभायुक्त होगये। सब काम पहले के समान होने लगे।

दोहा।

श्रीलक्ष्मण कपिराज अरु, विभीषणाङ्गद वीर।
सब मिलि प्रभुहिं प्रशंसहीं, जय रघुपति रणधीर॥
थिर-प्रतिज्ञ रिपु जीति रण, सहित सेन रघुचन्द्र।
राजत भे सुरगणनि महँ, जिमि सुरराज महेन्द्र॥

---

१११ वाँ सर्ग।

विभीषण का विलाप और रामचन्द्र का समझाना।

अब बड़े भाई को प्राणरहित और संग्राम-भूमि में सोया हुआ देखकर विभीषण शोक के वेग से व्याकुल हो विलाप करने और कहने लगे—हे वीर, विख्यात-पराक्रमी, प्रवीण, नीति-चतुर! अच्छे और मनोहर पलँग के सोनेवाले! तुम आज जमीन पर क्यों सो रहे हो? अरे भाई! सोने के बाजूबन्दों से भूषित अपनी भुजाओं को फैलाओ, वे चेष्टारहित हो रही हैं। सूर्य के समान अपने सुन्दर मुकुट को टेढ़ा मेढ़ा कर क्यों सोते हो? हे वीर! मैंने तो पहले ही कहा था, पर काम और मोह में फँसे हुए तुम को अच्छा नहीं लगा था; आखिर वही मेरी बात तुम्हारे सामने आई। अहङ्कार में डूबे हुए न तो प्रहस्त ने, न इन्द्रजित् ने और न और लोगों ने; न कुम्भकर्ण ने, न महारथी अतिकाय ने और न खुद तुम ने मेरा कहना माना; और न आदर से सुना। यह उसी का नतीजा हुआ। हा! शस्त्र धारण करनेवालों में श्रेष्ठ इस वीर के गिरने से आज अच्छी नीतियों का पुल टूट गया। धर्म का झगड़ा मिट गया। सत्त्व का आश्रय नष्ट हो गया। वीरों की गति नष्ट होगई। जमीन पर सूर्य गिर पड़ा। चन्द्रमा अँधेरे में डूब गया। अग्नि की ज्वाला शान्त होगई। उद्योग बिना जड़ के होगया। हा! राक्षससिंह के धूल में सो जाने से अब लङ्का में क्या रह गया! यह तो बिना सत्ता के होगई। हा! राघव-रूप वायु ने इस राक्षसराज महावृक्ष को उखाड़ फेंका। उस वृक्ष के धैर्य तो पत्ते, सहनशीलता फूल, तप दृढ़ता और शूरता जड़ थी। हा! देखो, इक्ष्वाकु-वंश के सिंह से फाड़ा हुआ यह रावण-गन्ध-हस्ती है। तेज ही इस हाथी के दाँत रूप हैं, कुलवंश पीठ की हड्डी और इसका क्रोध तथा प्रसाद (प्रसन्नता) दूसरे अङ्ग एवं सूड़ थी। वही इस युद्ध के मैदान में मरा हुआ सो रहा है। देखो, इस राक्षसरूप अग्नि को रामरूप मेघ ने बुझा दिया। इसका पराक्रम और उत्साह प्रकाशमान् ज्वालाएँ थीं, बल धुआँ था, और इसका महाप्रताप ही आँच थी। देखो, रावणरूप साँड़ महाराज रामरूप व्याघ्र से मारा हुआ पड़ा है; राक्षसगण इसके पूँछ, कन्धा और सींग थे; यह दूसरों को जीतनेवाला, पराक्रम और उत्साह करने में हवा के समान था जिसके कान बड़े तेज और आँखें बड़ी चपल थीं।

शोक से व्याकुल विभीषण इस तरह विलाप करते और हेतुयुक्त (अर्थ भरी) बातें कह रहे थे। उनको देखकर प्रभु बोले—हे विभीषण! यह राक्षस-राज अशक्त होकर नहीं गिरा, किन्तु शङ्कारहित हो दैव-वश से मरा है। क्योंकि इसका पराक्रम बड़ा ही प्रचण्ड और उत्साह भी बड़ा अच्छा था। जो इस तरह क्षत्रिय-धर्म पर आरूढ़ होकर मरते हैं

और जो अपनी वृद्धि चाहते हुए संग्राम में मारे तेजा हैं उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। जिसने इन्द्र-सहित तीनों लोकों को संग्राम में डरा दिया था वह यदि कालधर्म के वश हो गया तो उसके लिए विलाप करना उचित नहीं है। फिर संग्राम में केवल विजय ही होता है, ऐसा तो कोई निश्चय कर ही नहीं सकता। लड़ने पर दों में मे एक बात ही होती है। या तो वह शत्रुओं से मारा जाता है, या शत्रुओं को मारता है। पुराने लोगों ने क्षत्रियों की यही गति निश्चित कर रक्खी है। जो क्षत्रिय संग्राम में मारा जाय वह शोक करने के योग्य नहीं; यह बिल्कुल ठीक है। हे भाई! इसी बात का निश्चय करो और शोक छोड़ कर इसके बाद का जो कर्त्तव्य है, उस पर दृष्टि डालो।

महाराज के पराक्रम-युक्त वचन सुन, शोक-सन्तप्त होकर विभीषण बोले—"हे रामचन्द्र! यह रावण युद्धों में कभी हारा नहीं था। दूसरों की तो बात ही क्या, इन्द्र के साथ देवता भी इसका कुछ न कर सके थे। वह आपके द्वारा ऐसे ध्वस्त हो गया जैसे पानी अपनी मर्यादा के किनारे पर आकर फिर समुद्र में मिल जाता है। हे राघव! इसने माँगनेवालों को बहुत कुछ दिया; अच्छे अच्छे भोग अच्छी तरह भोगे और अपने नौकर-चाकरों का अच्छी तरह पालन-पोषण किया। इसने मित्रों को धन देकर सन्तुष्ट किया, और शत्रुओं से वैर का पूरा बदला लिया। इसने हवन करके अग्नियों को विधिवत् तृप्त किया; बड़ी घोर तपस्या की; सब वेदों को अच्छी तरह पढ़ा लिखा और वैदिक कर्मों में बड़ी शूरता प्रकट की। इसलिए आपके प्रसाद से मैं इसका प्रेत-कृत्य करना चाहता हूँ।" विभीषण के करुण-वचन सुन कर महाराज ने रावण का प्रेत-कृत्य करने की उन्हें आज्ञा दी।

दोहा।

वैर मरण लगि शत्रु तें, सो निवृत्त भा आज।
जस तुम्हार तस मोर यह, करहु अनन्तर काज॥

---

११२ वाँ सर्ग।

राक्षसियों का विलाप।

बेचारी राक्षसियाँ अब तक तो चुपचाप अपने अपने घरों में बैठी हुई थीं। परन्तु जब उन्होंने सुना कि रावण भी मारा गया तब उनसे न रहा गया। यद्यपि उन्हें बहुत मना किया गया तथापि वे अत्यन्त शोक से दीन हो, बाल खोले हुए, संग्राम-भूमि में चली आईं और वहाँ विलाप करती और दुखी होती हुईं धूल में लोटने लगीं। जैसे बछड़ों के मरने से गायें दुखी होती हैं वैसीही उनकी दशा हुई। वे राक्षसों को साथ में लिये, नगरी के उत्तर फाटक से निकल, भयङ्कर संग्राम-भूमि में जाकर पति को ढूँढ़ने और हा आर्यपुत्र! हा नाथ! इत्यादि कह कर पुकारने लगीं। कबन्धों से भरी हुई और रुधिर की कीचड़ से भरपूर जमीन पर जा कर वे गिर पड़ीं। फिर आँखों में आँसू भरे, पति के शोक से व्याकुल, गजपति के मरने से हथिनियों की नाईं, चिल्लाती और ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ पहुँचीं जहाँ बड़े शरीरवाला बड़ा पराक्रमी, कान्तिमान्, और नीले कज्जल की राशि के समान रावण पड़ा था। उसे देखते ही वे उसकी लोथ पर कटी हुई वन की लता के समान गिर पड़ीं। उनमें से कोई तो बड़े आदर से उससे लिपट गई; कोई पैर पकड़ कर और कोई उसके

गले से लिपट कर रोने लगीं। कोई अपनी दोनों बाँहें फेंकती हुई ज़मीन पर लोट रही थीं। कोई उसका मुँह देखकर बेहोश हो गईं। कोई उसकी गोद में अपना सिर रख कर और उसका मुँह देख देख कर रो रही थी। कोई अपने आँसुओं को, कमल पर तुषार के बिन्दु की तरह, उसके मुँह पर टपकाती हुई विलाप करती थीं। वे अपने पति रावण को ज़मीन पर गिरा हुआ देख, अनेक तरह से चिल्लाती और विलाप कर रही थीं। वे कहती जाती थीं कि जिसने इन्द्र को और यम को भयभीत कर दिया; जिसने कुवेर से पुष्पक विमान छीन लिया तथा जिसने गन्धर्व, ऋषि और बड़े बड़े देवताओं को भी संग्रामों में डरा दिया, वह आज लड़ाई के मैदान में मरा हुआ सो रहा है! हा! जो न असुरों, न देवताओं और न साँपों से डरता था, उसको आज मनुष्यों से भय आ पहुँचा। अहो! जो देवताओं, दानवों और राक्षसों से अवध्य था, इनमें से जिसे कोई भी न मार सकता था; वह पैदल मनुष्य से मारा हुआ सो रहा है। देखो, जो देवताओं, यक्षों, और दैत्यों से भी मारे जाने के योग्य न था वह निर्बल मनुष्य की नाईं मनुष्य से मारा गया! इस प्रकार तरह तरह से विलाप करती हुई वे अति दुःख के साथ रो रही थीं। फिर वे दुःखार्त्त हो कहने लगीं—"देखो, रावण ने हितवादी सुहृदों के वचनों और उपदेशों पर कान न दिया और अपने मरने के लिए सीता को हर लाया। हा! इसी कारण इस समय सब राक्षस और हम सब मारी गईं, और तुम ख़ुद भी मारे गये। हे रावण! विभीषण तुम्हारा प्यारा भाई था और तुम्हारे हित की बात कहता था; पर उसे तुमने निकाल दिया। इससे यही जान पड़ता है कि मोह में फँस कर तुम अपना वध ही चाहते थे। यदि यह सीता राम को दे दी जाती तो हम लोगों पर इतनी भारी विपद क्यों आती? इस विपद ने तो जड़ तक उखाड़ फेंकी। इससे तुम्हारा भाई भी ख़ुश होता; राघव भी मित्रपक्ष में हो जाते; हम सब विधवा न होतीं और शत्रु लोग कृतार्थ न होते। वह तो तुमने किया नहीं, किन्तु ज़बरदस्ती से घातकतापूर्वक उसे अपने घर में रक्खा; जिससे राक्षस, हम और तुम भी एक साथ मारे गये। या तुमने कुछ भी नहीं किया, और न इसमें तुम्हारा कोई दोष है; दैव चाहे सो करे। दैव का मारा हुआ प्राणी ही मारा जाता है। यह वानरों का, राक्षसों का और तुम्हारा नाश दैवयोग से ही हुआ। क्योंकि दैवगति जो आ जाती है तो वह न तो अर्थ से, न काम से, न पराक्रम से और न आज्ञा से ही हटाई जा सकती है।

दोहा।

एहि विधि रोवत नारि सब, कुररी इव बिलखाय।
धारा इव आँसू बहत, नैनन ते बहुताय॥

---

११३ वाँ सर्ग।

मन्दोदरी का विलाप और रावण की प्रेत-क्रिया।

इस तरह सब राक्षसियाँ रोती ही थीं कि इतने में रावण की पटरानी मन्दोदरी पति की वह दशा देख बड़ी दीनता से रोने और विलाप करने लगी। वह कहने लगी—"हे महाबाहु, कुवेर के छोटे भाई! तुम तो जब क्रुद्ध होते थे तब तुमसे इन्द्र को भी डर लगता था। तुम्हारे उद्वेग से बड़े बड़े ऋषि,

यशस्वी गन्धर्व और चारण इधर-उधर भाग गये थे। ऐसे होने पर भी तुमको अकेले रामनामी मनुष्य ने हरा दिया! क्या तुमको लज्जा नहीं आती? तुमने तो लक्ष्मी और पराक्रम के द्वारा तीनों लोकों पर आक्रमण कर लिया था। तुम ऐसे दबङ्ग थे, फिर भी एक जङ्गली मनुष्य राम ने तुमको कैसे मार लिया!' तुम तो ऐसी जगह रहते थे जहाँ का पता कोई भी मनुष्य, किसी तरह, नहीं पा सकता था। यही नहीं, किन्तु तुम तो कामरूप भी थे। इसलिए राम के द्वारा तुम्हारा विनाश होना बड़ी असम्भव बात है। मैं तो इस बात का विश्वास न करूँगी कि राम ने संग्राम में कोई भारी काम कर ऐसे विजयी पुरुष को जीत लिया। हाँ, शायद राम का रूप धारण कर ख़ुद यमराज ही आये हों जिन्होंने तुम्हारे विनाश के लिए यह माया फैलाई हो, और तुमको मारा हो। अथवा इन्द्र की ओर से तुम्हारी यह धर्षणा हुई हो। पर यह भी संभव नहीं। क्योंकि इन्द्र की क्या शक्ति है जो तुम्हारी ओर नज़र उठाकर भी देख सके। तुम तो देवताओं के शत्रु, महाबली, महापराक्रमी और बड़े वीर थे। ऊपर की बातों में से कोई भी ठीक नहीं है। किन्तु ये रामचन्द्र महायोगी, परमात्मा, सनातन, आदि-रहित, मध्यरहित, अन्तरहित, बड़े से भी बहुत बड़े, तम से परङ्गत, धाता, शङ्ख-चक्र-गदा-धारी, श्रीवत्स-भूषित, नित्यश्री, अजेय, आदि के आदि, और ध्रुव हैं। ये साक्षात् विष्णु हैं। ये मनुष्य का रूप धारण करके आये हैं। ये सब बानर-रूपधारी देवता हैं। सब लोकों के स्वामी श्रीमान्, इन्हें साथ लेकर, लोकों के हित की इच्छा से यहाँ आये हैं। उन्होंने तुमको परिवार-सहित उच्छिन्न कर डाला। तुम महाबली, महापराक्रमी, महाभयङ्कर और देवताओं के शत्रु थे। तुमने पहले इन्द्रियों को जीता, फिर त्रिभुवन को जीत लिया। उस पुराने वैर को याद करके उन्हीं इन्द्रियों ने अब तुम्हें जीत लिया। जब बहुत राक्षसों के साथ तुम्हारा भाई खर जनस्थान में मारा गया था उसी समय यह निश्चय होगया था कि राम मनुष्य नहीं हैं। फिर, जिसमें देवताओं का भी प्रवेश होना कठिन है, ऐसी इस नगरी में जब हनुमान् बानर ने प्रवेश किया उस समय हम सबको बड़ा दुख हुआ था। इसके सिवा मैंने साफ़ कहा था कि तुम राघव के साथ वैर मत करो। पर उस समय तुमने मेरा कहना न माना। उसी का यह फल हुआ।

"हे राक्षसों में श्रेष्ठ! तुमने ऐश्वर्य, देह और अपने राक्षसों के नाश के लिए अकस्मात् सीता की इच्छा की। हे दुर्मते! अरुन्धती और रोहिणी से भी अधिक माननीय सीता की तुमने धर्षणा की; तुमने यह महा अनुचित काम किया। अहो! पृथिवी से भी अधिक क्षमाशील, लक्ष्मी से भी अधिक सौभाग्यवती, और पति से बहुत ही प्यार करनेवाली सुन्दरी बेचारी दीन सीता को उस वन में से तुम कपट-पूर्वक हर लाये। तुम्हारा यह काम कुल-घातक हुआ। भला इतना करके भी यदि तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जाता, सो वह भी न हुआ। हाँ, उस पतिव्रता की तपरूप आग से तुम भस्म अलबत्त होगये। तुम तो उसकी धर्षणा करते समय ही भस्म होगये होते, पर इन्द्र, अग्नि आदि देवता तुमसे डरते थे। वे तुमको भस्म किस तरह करते! हे प्रिय! समय आने पर कर्त्ता अपने पाप के कर्म का फल अवश्य भोगता है। यह निःसन्देह बात है। धर्म करनेवाला आनन्द पाता है और पापी अमङ्गल।

प्रत्यक्ष देख लो; विभीषण को सुख मिला और तुम्हें ऐसी विपद। अहो! तुम्हारे घर में क्या ऐसी स्त्रियाँ न थीं जो सीता से रूप में अधिक हैं? परन्तु काम के फन्दे में फँस कर तुमने यह बात न सोची! भला तुम्हीं कहो कि क्या मैथिली मुझसे कुल में, रूप में या चतुरता में अधिक थी या मेरे बराबर भी थी? पर मूर्खता के कारण तुमने यह बात भी न सोची। बिना कारण के कोई मरता नहीं। इसलिए सीता तुम्हारे मरने का कारण हुई और उसी अपनी मृत्यु के कारण को तुम दूर से हर लाये। अब वह शोकरहित होकर राम के साथ विहार करेगी। मेरा पुण्य थोड़ा था इसलिए, मैं इस घोर शोक-सागर में पड़ गई। मैंने तुम्हारे साथ कैलास, मन्दर, मेरु, चैत्ररथ वन और देवताओं के सब बागों में विहार किया था। मैं बड़े बढ़िया विमान पर चढ़ी थी। मैं अतुल श्री धारण कर, अनेक तरह की चित्र विचित्र मालाओं और वस्त्रों से भूषित हो तरह तरह के देश देखती हुई विहार करती थी। हे वीर! वही मैं अब तुम्हारे मारे जाने से आज उन कामभोगों से ध्वस्त हो गई। वही मैं अब कोई दूसरी ही हो गई। राजाओं की चञ्चल लक्ष्मी को धिक्कार है। हे राजन! तुम्हारा मुंह सुकुमार था, उसमें अच्छी भौंहें थीं और त्वचा भी अच्छी थी। वह ऊँची नाक से मनोहर, कान्ति, श्री और द्युति में चन्द्रकमल सा था। वह मुख चेहरा सूर्य के समान किरीट-समूहों से उज्ज्वल रहता था और चमकीले कुण्डलों से सजा रहता था। मद्पान-भूमि में मद से उसके नेत्र चञ्चल रहते थे। वह मनोहर मुख तरह तरह की मालायें धारण कर मुस्कुराता हुआ बात चीत किया करता था। यहाँ वह आज शोभा नहीं पाता। क्योंकि वह राम के बाणों से विदीर्ण, रुधिर की धारा से लाल, मेद तथा मज्जा से भरा हुआ और रथ की धूल लगने से रूखा हो रहा है।

"हा! मेरी अवस्था वैधव्यदायिनी दशा को पहुँच गई—मैं विधवा हो गई। मैंने मन्द बुद्धि से इसका विचार तक न किया था। दानवराज तो मेरे पिता, राक्षसराज मेरे पति, और इन्द्र का जीतनेवाला मेरा पुत्र है—ऐसा सोचती हुई मैं बड़े गर्व में रहती थी। मैं अपने मन में यही गर्व रखती थी कि मेरे पति अहङ्कारी शत्रुओं का मथन करनेवाले, क्रूर और विख्यात हैं। वे बड़े बली और पुरुषार्थी होने के कारण सब ओर से निडर हैं। हे राक्षसों में श्रेष्ठ! ऐसे प्रभाववाले होकर भी अकस्मात् तुमको यह भय मनुष्य से किस तरह आगया। हे राक्षसेश्वर! तुम्हारा शरीर चिकने इन्द्रनील की नाईं नीला और ऊँचे पर्वत की तरह बड़ा है। यह कंकन, बाजू-बन्द, पन्ना, मुक्ताहार, और मालाओं से सुशोभित है। सुन्दर विहारों में यह अधिक प्रकाशमान् और युद्धभूमि में आभूषणों की चमक से, बिजलियों से मेघ की नाईं, शोभा पाता था। आज वही अनेक बाणों से बिंधा हुआ पड़ा है; वह छूने और आलि-ङ्गन करने के भी योग्य नहीं। तुम्हारे शरीर में इतने बाण गड़े हुए हैं जिनसे वह साही जीव की तरह दिखाई देता है। तुम्हारे मर्म-स्थानों में ये तीर ऐसे ज़ोर से आकर लगे हैं कि नसों के बन्धन तक कट कर अलग होगये हैं। श्यामरङ्ग का रुधिर से सना हुआ तुम्हारा यह शरीर ज़मीन पर पड़ा हुआ ऐसा दिखाई देता है मानों वज्र के प्रहार से गिरा हुआ पर्वत हो। हा यह स्वप्न है या सच है? तुमको राम ने किस तरह मार डाला? तुम तो मृत्यु की

"हे रावण ! तुम तो बड़े लम्बे और दुर्गम मार्ग में जाते हो। मुझ दुःखार्त्ता को भी अपने साथ क्यों नहीं लिये चलते ? तुम्हारे बिना मैं न रह सकूँगी। मुझ दीना को यहीं छोड़ कर तुम किस लिए जाना चाहते हो ? अरे मुझ दीन बिलपती हुई मन्दभागिनी से तुम क्यों नहीं बोलते ? हे प्रभो ! मैं बिना घूँघट के, नगर के फाटक से निकल कर, यहाँ पैदल चली आई हूँ। क्या ऐसी दशा में आने से तुम मुझ से क्रुद्ध होगये ? इसीसे नहीं बोलते। देखो, ये तुम्हारी सभी स्त्रियाँ लज्जा छोड़ कर और घूँघट हटा कर बाहर निकल आई हैं। इन्हें देख कर तुमको क्रोध क्यों नहीं आता ? तुम्हारी क्रीड़ा में सहायता करनेवाली हम अनाथ होकर गिड़गिड़ा रही हैं। हमें समझाते क्यों नहीं ? या तुम अब हमें बहुत नहीं मानते ? हे राजन् ! तुमने पतिव्रता, धर्मशीला, और बड़ों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाली जिन अनेक कुल-कामिनियों को विधवा कर दिया था, क्या उन्हीं स्त्रियों ने शोक-सन्तप्त होकर तुमको शाप दिया है जिससे तुम शत्रु के वश में पड़ गये ? तुमने जिनकी बुराई की उन्होंने तुम्हें शाप दिया था, सो वही तुम्हारे सामने आ गया। तुम्हारे विषय में लोग इस तरह का प्रायः जो प्रवाद किया करते थे, वह सत्य ही है। क्योंकि पतिव्रताओं के आँसू धरती पर अकस्मात् नहीं गिरते। भला, सब बातें जाने दीजिए; मैं पूछती हूँ कि तुम तो अपने को बड़ा वीर समझते थे और अपने तेज से तुमने लोकों पर आक्रमण भी किया था; फिर 'नारी की चोरी' यह नीच कर्म तुमने क्यों किया ? मृग के बहाने से राम को आश्रम से दूर हटा कर उनकी स्त्री को जो तुम उठा लाये, इससे तुम्हारी कादरता सिद्ध होती है। परन्तु यह तो मुझे याद

भी मृत्यु थे। तुम मृत्यु के वश में कैसे होगये ? हा ! तुमने लोकपालों को जीत लिया था। तुम तीनों लोकों की सम्पत्ति का भोग करते थे। तुमसे तीनों लोक घबड़ाते थे, तुमने लोकपालों को जीत लिया था, और शङ्कर को भी विचलित किया था। तुम अहङ्कारियों का मान भञ्जन करते, पराक्रम का प्रकाश करते और गर्जना से लोकों को डरा देते थे। तुम प्राणियों को विदारण करते, अपने पराक्रम से शत्रुओं के निकट अहङ्कारपूर्ण बातें करते, अपने साथियों और नौकरों की रक्षा करते तथा भयङ्कर काम करनेवालों को मारते थे। तुम दानवेन्द्रों और यक्षों का नाश करते थे। तुमने निवात-कवचों को पराजित किया था और अनेक यज्ञों का लोप कर डाला था। तुम अपने लोगों की रक्षा किया करते, धर्म की व्यवस्था तोड़ते और माया रचते थे। देवता, मनुष्य और असुरों की कन्याओं को तुम हरण करते, शत्रु की स्त्रियों को शोक देते, अपनी सेना का पालन करते और लङ्का द्वीप का भोग करते रहते थे। तुम कठिन काम करते रहते और हम लोगों को इच्छानुसार भोग देते थे। इस प्रकार के रथियों में श्रेष्ठ पति को राम से गिराया हुआ देखकर जो मैं यह शरीर धारण कर रही हूँ सो मैं बड़ी कठोर-हृदया हूँ। अच्छे से अच्छे बिछौनों पर सोनेवाले हे राक्षसेश्वर ! तुम, धूल में लिपटे हुए, ज़मीन पर क्यों सो रहे हो ? लक्ष्मण के हाथ से जब मेरा लड़का इन्द्रजित् मारा गया था तभी मुझे भारी धक्का लगा था। इस समय तुम्हारे मारे जाने से तो मैं मर ही गई। अब तो मैं बन्धुओं से, तुमसे और काम-भोगों से भी रहित होगई। अब मैं अनन्त काल तक शोक में पड़ी रहूँगी।

नहीं पड़ता कि तुमने कभी युद्ध में कादरता दिखलाई हो। मेरा देवर विभीषण भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालों की बातें जाननेवाला तथा सत्यवादी है। उसने मैथिली का हरण देख कुछ सोच कर, और ऊँची साँस लेकर, जो कहा था कि देखो काम और क्रोध से उत्पन्न तथा अकस्मात् प्राप्त हुआ यह दुराचार है— यह मुख्य राक्षसों के विनाश का कारण आ पहुँचा है। सो उसने जड़ तक खोद कर बहा दी। तुमने राक्षस-कुल को अनाथ कर दिया। तुम्हारे विषय में मुझे शोक न करना चाहिए। क्योंकि तुम तो बल और पराक्रम करने में प्रसिद्ध ही थे। पर क्या करूँ, स्त्री-स्वभाव के कारण मेरी बुद्धि दीन हो जाती है। तुम तो अपने सुकृत और दुष्कृत लेकर अपनी गति को पहुँच गये। मैं अपने लिए पछता रही हूँ। तुम्हारे नष्ट हो जाने से दुखी हो रही हूँ।

"हे दशानन! तुमने हितकारी सुहृदों की बात न मानी। तुम्हारे भाइयों ने सब बातें हित ही की कही थीं। देखो, विभीषण ने हेतु और अर्थ मिली हुई जो कल्याण-कारक बातें कोमलता से कही थीं उन्हें तुमने न माना। मारीच, कुम्भकर्ण और मेरे पिता की भी बातों को बहादुरी के मद में डूब कर तुमने न माना। उन्हीं सब बातों के न मानने का यह फल हुआ। हे नीले मेघ के समान, पीले वस्त्र पहने हुए, हे सुन्दराङ्गद! तुम अपने अङ्ग फैला कर और रुधिर से नहाये हुए क्यों सोते हो? घोर निद्रा में सोये हुए मनुष्य की नाईं तुम मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? मैं भी पराक्रमी, चतुर और संग्राम से न भागनेवाले सुमाली की नातिन (धेवती) हूँ। उठो, उठो, क्यों सो रहे हो? यह तो नई धर्षणा है। आज सूर्य की किरणें लङ्का में निडर होकर घुस गईं। देखो, जिस परिघ से तुम शत्रुओं को मारते थे, जो सूर्य के समान प्रदीप्त और इन्द्र के वज्र के समान सदा तुमसे आदर पाता था, जो परिघ संग्राम में बहुतों के प्राण लेता था और जो सोने की जालियों से भूषित था वही यह तुम्हारा परिघ बाणों के मारे हजारों टुकड़े होकर जमीन पर पड़ा है। हा! तुम अपनी प्यारी स्त्री की नाईं रणभूमि से लिपटे पड़े हो और मुझे अप्रिया की नाईं समझ कर मुझसे बोलना भी नहीं चाहते।"

इस तरह विलाप करती और आँखों से अश्रु-धारा बहाती हुई वह मन्दोदरी स्नेह के कारण घबरा कर बेहोश हो गई। उस समय मूर्च्छित हो कर रावण की छाती पर पड़ी हुई मन्दोदरी ऐसी शोभा दे रही थी जैसे सन्ध्याके लाल बादल में बिजली की शोभा होती है। जो दूसरी रानियाँ शोक से अत्यन्त व्याकुल हो रो रही थीं वे उसकी ऐसी दशा देख कर उसे उठा कर कहने लगीं— "हे देवि! क्या तुम नहीं जानतीं कि लोगों की स्थिति अनित्य है। दशा के उलट पलट जाने से राजाओं की लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती।" इस तरह समझाये जाने पर मन्दोदरी बहुत रोती हुई अपने स्तनों को अश्रुधारा से भिगोने लगी।

इतने में श्रीराघव विभीषण से बोले—"हे भाई, अब अपने भाई का संस्कार करो। इन स्त्रियों को समझाओ।" प्रभु की बातें सुन विभीषण कुछ सोच कर नम्रतापूर्वक और धर्मयुक्त हितकारक वचन कहने लगे। उन्होंने कहा—महाराज! धर्म और व्रत से हीन, क्रूर, घातक, मिथ्यावादी, और दूसरे की स्त्री पर बलात्कार करनेवाले इस दुष्ट रावण का संस्कार करना मुझे उचित नहीं। यह था तो मेरा भाई परन्तु

शत्रुरूप था; क्योंकि यह सदा सब का अहित करने में लगा रहता था। बड़ा भाई होने के कारण यद्यपि यह पूज्य है तथापि पूजा पाने के योग्य नहीं। हे रामचन्द्र! इसका भाई होने से लोग मुझे भी बुरा कहेंगे। फिर इसके गुणों को सुन कर शायद अच्छा कहें तो कहें।

विभीषण की बातें सुन कर रघुनन्दन बड़े प्रसन्न हुए। वे बोले—सुनो भाई! तुम्हारे ही प्रताप से मैंने इसे जीता है, इसलिए जो अवश्य कर्त्तव्य और उचित होगा वह मैं तुमसे कहूँगा ही। सुनो, यह रावण चाहे अधर्मी हो या मिथ्यावादी, फिर भी तेजस्वी, बलवान और शूर तो था ही। और यह भी सुना जाता है कि यह इन्द्र आदि देवताओं से कभी नहीं हारा। यह राक्षस महात्मा, बली और लोकों को सतानेवाला था। वैर तो मरने तक रहता है सो वह तो समाप्त हो गया। मेरा मनोरथ भी पूरा हो गया। अब तुम इसका संस्कार करो। अब जैसा यह तुम्हारा है वैसा हमारा भी है। हे महाबाहो! तुम्हारे हाथ से इसका विधिपूर्वक संस्कार होना चाहिए। यह बात मैं धर्मपूर्वक कहता हूँ। अब तुम इसका जल्दी संस्कार करो। इससे तुम्हारी कीर्त्ति होगी।

रामचन्द्रजी के आदेशानुसार विभीषण ने भाई का संस्कार करना आरम्भ किया। वे पहले लङ्का में गये। वहाँ से उन्होंने रावण का अग्निहोत्र बाहर निकलवाया। छकड़े, काष्ठ के पात्र, 'अग्नियाजक, चन्दन, लकड़ी, और और अनेक तरह की लकड़ियाँ, अगुरु, अनेक तरह के गन्धद्रव्य, मणि, मुक्ता, और मूँगे—इन सब चीज़ों को बाहर निकलवा कर फिर थोड़ी देर में ख़ुद राक्षसों को साथ ले वे बाहर निकल आये। फिर उन्होंने माल्यवान् के साथ उसकी क्रिया करना आरम्भ किया। रावण रेशमी वस्त्र पहना कर फिर एक सोने की पालकी में उठा कर लिटा दिया गया। राक्षस-द्विज आँसू बहा रहे थे, अनेक तरह के नगाड़े बजते जाते थे और अच्छे स्तुतिपाठ के साथ चित्र-विचित्र पताकाओं तथा फूलों से सुशोभित पालकी को उठाकर और विभीषण को आगे करके राक्षस लोग लकड़ी साथ ले दक्षिण की ओर गये। वहाँ अध्वर्यु ने अग्निहोत्र की अग्नि को प्रज्वलित किया। अग्नि-गृह के देखनेवाले ब्राह्मण उनके आगे आगे चले। अन्तःपुर की स्त्रियाँ रोती पीटती हुई पीछे पीछे जाती थीं। चलने का अभ्यास न होने से वे बेचारी गिरती पड़ती चली जाती थीं। पालकी ले जानेवालों ने नियत स्थान में ले जाकर उसे रख दिया। फिर उन दुखी लोगों ने चन्दन, पद्मक, और खस की लकड़ियों की वेदोक्त विधि से चिता बनाई। उसपर अच्छी तरह से काले हरिण का चर्म बिछाकर वे राक्षसेन्द्र का पितृमेध करने लगे। चिता की वेदी दक्षिण और पूर्व भाग में रचकर यथोचित स्थान में उस पर उन्होंने आग रक्खी। फिर दही मिले हुए घी से स्रुवा भर कर कन्धे पर, छकड़ा पैरों पर, ऊखल और सब काष्ठ के पात्रों को दोनों जंघाओं के बीच में—अरणि, उत्तरारणि और मूसल को यथोचित स्थान में रक्खा; जैसा कि शास्त्रों में महर्षियों ने लिखा है। इसके बाद वहाँ एक पवित्र पशु मारा गया। उसके रुधिर और मांस के बीच की खाल लेकर और उसे घी से लपेट कर राक्षसों ने राजा के मुँह पर रक्खा। यह सब करने के बाद गन्ध और मालाओं से रावण की लोथ को भूषित कर और तरह तरह के कपड़ों से ढक कर वे, रोते हुए, उस

पर लावा बरसाने लगे। अब विभीषण ने उसे चिता पर रखकर विधिपूर्वक आग दी। फिर ख़ुद नहा कर गीले कपड़े पहने हुए कुशासहित तिल-मिश्रित जलाञ्जलि रावण को दी। अब वे बार बार राक्षसियों को समझा कर कहने लगे—"तुम सब नगर को जाओ।" सब स्त्रियाँ नगर को चली गईं। उनके चले जाने पर राक्षसेन्द्र विभीषण राम के पास आ चुपचाप खड़े हो गये। रामचन्द्र भी शत्रु को मार कर सेना, सुग्रीव और लक्ष्मण सहित बड़े प्रसन्न हुए।

दोहा।

रघुपति त्यागो चाप शर, सुरपति-कवच विशाल।
शत्रुनाश ते रोष तजि, सौम्य भये तेहि काल॥

११४वाँ सर्ग।

विभीषण का अभिषेक और सीता के पास विजय का सन्देश भेजना।

रावण का मारा जाना देख देवता, गन्धर्व और दानव अपने अपने विमानों पर चढ़कर युद्ध की कथा कहते और आनन्दित होते हुए अपने अपने घर को गये। भयङ्कर रावण का मारा जाना, राम का पराक्रम, बानरों का युद्ध, सुग्रीव की मन्त्रणा, हनुमान् और लक्ष्मण का प्रेम तथा पराक्रम, सीता का पातिव्रत्य और हनुमान् की वीरता—इन सब की बड़ाई करते हुए देवता आदि गये। फिर रामचन्द्र ने इन्द्र का दिव्य और प्रदीप्त रथ छोड़ दिया। उन्होंने मातलि से प्रशंसापूर्वक कहा—"अब आप यह रथ ले जाइए।" राम की आज्ञा पाकर वह रथ लेकर आकाश में उड़ गया। उसके चले जाने पर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो सुग्रीव को गले से लगा कर मिले। लक्ष्मण ने महाराज को प्रणाम किया। सब बानर वाह वाह करने लगे। फिर महाराज सेना के ठहरने की जगह जाकर लक्ष्मण से बोले—"हे सौम्य! विभीषण को लङ्का का राजतिलक दो। क्योंकि यह प्रेमी, भक्त, और पूर्वोपकारी है। मेरा यह बड़ा भारी मनोरथ है कि मैं रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त (राजचिह्नों के साथ) देखूँ।" प्रभु की आज्ञा पाते ही लक्ष्मण ने प्रसन्न हो हाथ में सोने के घड़े लिये। उन्हें श्रेष्ठ बानरों को देकर कहा कि समुद्र का जल ले आओ। लक्ष्मण के मुँह से निकलते ही उन्होंने शीघ्र जल लाकर रख दिया। उनमें से एक घड़ा ले विभीषण को सिंहासन पर बैठाया और वहाँ मित्रों को इकट्ठा कर लक्ष्मण ने लङ्का के राज्य का विधिपूर्वक अभिषेक कर दिया। उस समय उसके सब मन्त्री और भक्त बड़े प्रसन्न हुए। देवर्षि, बानर और राक्षस सब प्रसन्न हो रामचन्द्र की स्तुति करने लगे। विभीषण का अभिषेक होने पर रामचन्द्र बहुत ही प्रसन्न हुए। राम के दिये हुए लङ्का के राज्य को पाकर और अपनी प्रजा को समझाकर विभीषण राम के पास आये। नगर के रहनेवाले बहुत प्रसन्न हो दही, अक्षत, लड्डू, लावा और फूल ले विभीषण के पास आये। उन्होंने राक्षसेन्द्र को भेंट दी। विभीषण ने उन मङ्गल रूप भेंट की चीज़ों को महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मण के आगे निवेदन कर दिया। प्रभु ने विभीषण को कृतार्थ और समृद्धार्थ देख उन्हींके सन्तोष के लिए वे चीज़ें ग्रहण कीं। उस समय पास में हाथ जोड़े खड़े हुए हनुमान् को देख कर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे सौम्य! महाराज विभीषण की राय लेकर तुम लङ्का को जाओ, और सीता को मेरे जीतने का सन्देश

तथा लक्ष्मण और सुग्रीव सहित मेरा कुशल एवं रावण का मारा जाना सुनाओ। यह सब सुनकर वैदेही जो कुछ कहे वह तुम मुझसे आकर कहो।

११५वाँ सर्ग

हनुमान् का सीता के पास जाकर प्रभु का सन्देश सुनाना और उनका सन्देश सुन कर राघव के पास आना।

प्रभु रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर राक्षसों से प्रशंसित हनुमान् लङ्का को गये। वहाँ विभीषण की राय लेकर वे वृक्षवाटिका में घुस गये। रीति से वहाँ जाकर वे सीता के पास पहुँचे। एक बार देखने के कारण सीता तो उनको जानती ही थीं। हनुमान ने जाकर देखा कि सीताजी स्नान आदि न करने से मैली कुचैली और डरी हुई, रोहिणी के तुल्य, हैं; वे पेड़ के तले राक्षसियों से घिरी हुई आनन्द-रहित और अप्रसन्न बैठी हैं। उन्हें देखते ही हनुमान् ने पास जाकर शान्तिपूर्वक झुक कर प्रणाम किया। सीताजी ने उनको आते देख याद कर लिया कि ये वही हनुमान् हैं। वे मन में प्रसन्न हो चुपचाप बैठी रहीं।

उस समय सीताजी का प्रसन्न-मुख देख कर हनुमान् संदेशा सुनाने लगे। उन्होंने कहा—"हे सीते! रामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव सकुशल हैं। शत्रु को मार महाराज कृतार्थ हो गये। उन्होंने तुम्हारे पास कुशल-संवाद कहने के लिए मुझे भेजा है। हे देवि! विभीषण की सहायता से प्रभु ने, वानरों को साथ ले, रावण को मार गिराया। लक्ष्मण ने भी महाराज की सहायता की। हे देवि! तुम्हारे पास मैं यह प्रिय संदेशा लेकर आया हूँ। मैं तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। बड़ी .ख़ुशी की बात है कि तुम अब तक जीती हो। अब हमारे विजय की .ख़ुशी मनाओ।" इतना कहकर कपि अपने कृतार्थ अन्तरात्मा से फिर बोले—हे धर्मज्ञे! तुम्हारे ही प्रभाव से राघव ने यह विजय पाया है, इसलिए तुम अब दुःख त्याग कर स्वस्थ हो जाओ। हे सीते! प्रभु ने कहा है कि रावण-रूप शत्रु को मैंने मार डाला और लङ्का को अपने वश में कर लिया। तुम्हारे शत्रु को जीतने के लिए ही मैंने सोना छोड़ दिया और समुद्र में पुल बाँध कर प्रतिज्ञा पूर्ण की। अभी तक तुम रावण के घर में हो, इसलिए घबराओ मत। क्योंकि लङ्का का सब ऐश्वर्य विभीषण के हाथ आ गया। इससे अब तुम निश्चिन्त हो जाओ और समझो कि अपने ही घर में हो। विभीषण हर्षपूर्वक तुम्हारे दर्शन के लिए आना चाहते हैं।

कपि की बातें सुनकर सीता देवी इतनी प्रसन्न हुईं कि कुछ भी न बोल सकीं। उनको कुछ भी उत्तर न देते देख वायुपुत्र फिर कहने लगे—"हे देवि! तुम क्या सोचती हो? मेरी बात का कुछ भी उत्तर नहीं देतीं।" अब दुबारा कहने पर अत्यन्त प्रसन्न हो प्रेम की गद्गद वाणी से जानकी बोलीं—"हे वानरों में श्रेष्ठ! पति के विजय का समाचार सुनकर मैं .ख़ुशी के मारे थोड़ी देर चुप हो गई थी। अब मैं बहुत सोच रही हूँ कि यह मङ्गल-संवाद सुनाने के लिए तुम्हें क्या पारितोषिक दूँ। तुम्हें देने के योग्य मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। मैं पृथ्वी के सब पदार्थों पर दृष्टि डालती हूँ, पर कोई भी चीज़ यह प्रिय समाचार सुनाने के लिए तुमको देने योग्य नहीं सूझती। हिरण्य या सोना, अथवा तरह तरह के रत्न या तीनों लोकों

के राज्य में भी इस विषय की योग्यता नहीं।" यह सुनकर हनुमान्‌जी प्रसन्न हुए; वे हाथ जोड़े बोले—"हे पति के प्रिय और हित में तत्पर! हे पति का विजय चाहनेवाली सीताजी! इस तरह के मनोहर वचन कहना तुम्हीं जानती हो। हे देवि! तुम्हारे ये सारयुक्त, स्निग्ध और प्रेमभरे वचन तरह तरह के रत्नों से ही नहीं बल्कि देवराज्य से भी अधिक हैं। उनके सुनने और उनका मतलब समझ लेने ही से मुझे स्वर्ग का राज्य आदि मिल चुका। क्योंकि मैं शत्रु के मारनेवाले और विजयी श्रीराघव को शान्तचित्त देखता हूँ।" सीताजी फिर मधुर वाणी से कहने लगीं—"हे कपियों में श्रेष्ठ! बहुत लक्षणोंवाले, माधुर्य गुण से भूषित और अष्टांग* बुद्धि से पूर्ण वचन कहना तुम्हारा ही काम है। हे वायु के पुत्र! तुम बड़े धार्मिक और स्तुति करने योग्य हो। बल-वीर्य, शास्त्र, सत्व, पराक्रम, उदारता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, और नम्रता—ये सब गुण तथा इनके सिवा और भी बहुत से गुण तुम्हीं में अच्छे पाये जाते हैं।" यह सुनकर हनुमान्‌जी फिर हाथ जोड़ कर बोले—हे देवि! अगर तुम आज्ञा दो तो मैं इन राक्षसियों को, जो पहले तुमको डाटती डपटती थीं, मारूँ। हा! ये बुरे रूपवाली, बुरे आचरणवाली, क्रूर और टेढ़ी मेढ़ी आँखोंवाली राक्षसियाँ दुखी, पतिव्रता और अशोक वाटिका में बैठी हुई तुमसे क्या क्या न कहती होंगी? मेरे सामने की बात है, एक बार रावण की आज्ञा से इन्होंने कैसी कड़ी कड़ी बातें सुनाई थीं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इन विकराल राक्षसियों को अनेक तरह से मारूँ। तुम मुझको वर दो तो मैं इन्हें घूँसों, थप्पड़ों, भुजाओं और घुटनों से मारना चाहता हूँ। दाँतों से मैं इनके नाक-कान काटना तथा बालों को नोचना और इन्हें पछाड़ कर मारना चाहता हूँ। क्योंकि इन्होंने तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव किया था। मैं इन्हें अनेक तरह की चोटों से मारना चाहता हूँ।

हनुमान् की बातें सुनकर दीना और दीनों पर दया करनेवाली देवी श्रीजानकी कुछ सोच विचार कर कपि से धर्म की बातें कहने लगीं। उन्होंने कहा—"हे बानरों में उत्तम! ये दासियाँ राजा के सहारे रहतीं, दूसरे की आज्ञा से काम करतीं और दूसरे के शासन के अधीन हैं। भला इन पर कौन क्रोध करना चाहेगा? मैं अपने भाग्य के दोषों और पूर्व-कृत कर्मों के द्वारा ये सब दुख पाती और अपना ही किया भोग रही हूँ। हे महाभुज! तुम ऐसी बात मत कहो; क्योंकि यह दैवी गति है। मुझे ऐसी दशा में पड़ कर यही भोगना बदा था—इसी बात पर निश्चय करना चाहिए। मैं दुर्बल और दीनरूप में रावण की दासियों की जो डाँट डपट सहती थी सो अपने मन में यही समझती थी कि ये राजा की आज्ञा से मुझसे ऐसा बर्त्ताव करती हैं। उसके मारे जाने पर अब ये मुझे नहीं धमकातीं, इसलिए यही समझना चाहिए कि उस समय इनका कुछ भी क़सूर न था। हे कपे! पुराण में* एक जगह एक

* सुनने की चाह, सुनना, ग्रहण करना, धारण कर लेना, उसमें तर्क-वितर्क करना, उसका शोधन और ठीक ठीक समझ जाना, और उसमें से मतलब निकाल लेना—ये बुद्धि के आठ अङ्ग हैं।

* किसी जङ्गल में बाघ के डर से एक व्याध वृक्ष पर चढ़ गया; परन्तु उसी वृक्ष पर एक रीछ पहले से ही बैठा हुआ था। पेड़ के नीचे से बाघ ने रीछ से कहा कि हम-तुम

भालू ने व्याघ्र से धर्म की बड़ी अच्छी बात कही है। वह मैं तुम से कहती हूँ; सुनो। दूसरा व्यक्ति और किसी के पाप-कर्मों को ग्रहण नहीं करता। दूसरों के बुरे काम देखकर वैसा ही बर्ताव न करना चाहिए; बल्कि अपने धर्माचरण की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि धर्माचरण करना ही सज्जनों का भूषण है। कोई चाहे पापी हो, या धर्मात्मा हो अथवा मारने के योग्य हो; परन्तु अच्छे मनुष्यों को उस पर दया ही करनी उचित है। क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो। कुछ न कुछ अपराध सभी से बन पड़ता है। कहाँ तक कहा जाय। हमारी समझ में जो जीवहिंसा करके विहार करते हैं, क्रूर हैं, पापाचारी और पाप कर रहे हैं, उनका भी अनिष्ट करना ठीक नहीं।" यह सुनकर वायुपुत्र बोले—"हे देवि! तुम में सब गुण भरे हुए हैं। तुम श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री हो। भला ऐसा क्यों न कहोगी? तुमको ऐसा कहना उचित ही है। अब जो मुझ से कहो वह मैं महाराज से निवेदन कर दूँ।" वैदेही ने कहा—"मैं अपने भक्तवत्सल पति को देखना चाहती हूँ।" यह सुन कर कपि बोले—"हे देवि! लक्ष्मण और मित्रों के साथ, उन चन्द्र सदृश मुखवाले और हतशत्रु श्रीराम को तुम आज ही देखोगी जैसे इन्द्राणी इन्द्र को देखती हैं।" यह कह कर हनुमान्‌जी रामचन्द्रजी के पास जाने के लिए तैयार हुए और चले गये।

सोरठा।

वायुतनय मति-धीर, सीता कर संदेश सब।
कह्यो आइ कपि-वीर, श्रीरघुपति रणबाँकुरहिं॥

एक ही जाति के हैं—जङ्गली जीव हैं। और यह मनुष्य—शिकारी–जैसा हमारा शत्रु है वैसाही तुम्हारा भी है। इसलिए इसे नीचे पटक दो। इसी में हम दोनों का कल्याण है। इस पर रीछ ने कहा कि यह अपने स्थान पर बैठा है। इसे पटकने से पाप होगा। यह कहकर जब वह सो गया तब बाघ ने शिकारी से कहा कि रीछ को पटक कर बेखटके हो जाओ। मैं इसे पाकर चला जाऊँगा। शिकारी ने दग़ा की। ज्योंही उसने रीछ को धक्का दिया त्योंही वह अभ्यासवश दूसरी शाखा के सहारे जा डटा। इस पर बाघ ने रीछ से कहा कि इस दग़ाबाज़ शिकारी को अब भी नीचे गिरा दे। पर रीछ ने उसकी बात न मानी। उसने कहा, यह दग़ाबाज़ और अपराधी भले ही हो, पर मैं इसको तेरे हवाले न करूँगा।

११६ वाँ सर्ग।

महाराज के पास सीता का आना।

अब हनुमान्‌जी अशोक-वाटिका से चल कर रामचन्द्रजी के पास आ गये और उन्हें प्रणाम कर बोले—"हे प्रभो! जिसके लिए यह काम शुरू किया गया और सब कामों का जो फलोदय है, उस शोक-पीड़ित सीता का देखना आपको उचित है। क्योंकि शोक करती और आँसू बहाती हुई मैथिली विजय का संवाद सुन कर आप को देखना चाहती हैं। पुरानी पहचान के कारण उन्होंने मुझ से विश्वास-पूर्वक यही कहा कि 'मैं पति को देखने की इच्छा करती हूँ।' यह कह कर उन्होंने आँखों में आँसू भर लिये।" हनुमान् की बातें सुन कर धर्म-धारियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र-जी कुछ आँखों में आँसू भर कर सोचने लगे; फिर गर्म और लम्बी साँस ले पृथ्वी की ओर देखकर पासही खड़े हुए विभीषण से बोले—"अच्छे अङ्ग-राग से सुशोभित, अच्छे भूषणों से भूषित और सिर से स्नान की हुई सीता को जल्दी ले आओ। देर न करो।" महाराज का वचन सुनते ही विभीषण बहुत जल्दी अन्तःपुर में गये। वहाँ उन्होंने

अपनी स्त्रियों से कहा तथा महाभागा सीता देवी को देख कर उनसे भी हाथ जोड़ वे नम्रता-पूर्वक बोले—"हे वैदेहि! तुम अपने अङ्गों में अच्छा अङ्गराग करो। अच्छे आभूषण पहन कर सवारी पर चढ़ो। तुम्हारे पति तुमको देखना चाहते हैं।" विभीषण की बात सुन कर सीता देवी ने कहा—"हे विभीषण! मैं बिना ही स्नान किये, इसी अवस्था में, प्रभु को देखना चाहती हूँ।" इस पर विभीषण ने कहा—"जैसा तुम्हारे स्वामी ने कहा है वैसा ही तुम को करना चाहिए।" पतिव्रता और पतिभक्ता जानकी ने कहा—बहुत अच्छा।

इसके बाद उन्होंने सिर से स्नान किया, अच्छे भूषणों और अच्छे अच्छे कपड़ों को पहना। इस प्रकार से सुशोभित सीता देवी को बहुत अच्छे कपड़े से लपेटी हुई पालकी में बैठाकर, और रक्षा के लिए बहुत से राक्षस साथ ले, विभीषण उन्हें प्रभु के पास ले आये। पहले से जान कर भी कुछ सोचते हुए राघव के पास जाकर और प्रणाम कर राक्षसराज हर्षपूर्वक बोले—"महाराज! जानकी देवी उपस्थित हैं।" अब श्रीराघव सीता का आना सुन कर बड़े असमंजस में पड़ गये। राक्षस के घर में सीता बहुत दिनों तक रही थीं, इस कारण उस समय उन्हें कुछ क्रोध, कुछ हर्ष और कुछ कुछ दीनता हो गई। सवारी पर चढ़ी हुई सीता को देखकर वे कुछ सोचने लगे। फिर वे कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले—"हे राक्षसाधिप! सदा मेरे विजय की चाहना में तत्पर वैदेही मेरे पास जल्दी आवे।" यह सुनते ही विभीषण ने वहाँ से सब लोगों को बहुत जल्दी हटा दिया। कंचुक और पगड़ियाँ पहने हुए राक्षस हाथ में बेंत लिये और झाँझ बजाते हुए 'हट जाओ, हट जाओ' कहते हुए चारों ओर घूमने लगे। उन लोगों के कहते ही वानरों और भालुओं के झुंड वहाँ से दूर हट गये। उनके हटते समय बड़ा कोलाहल हुआ मानों वायु के वेग से समुद्र का शब्द होता हो। रामचन्द्रजी उन सब का हटाया जाना देख, कुछ क्रोध-पूर्वक विभीषण की ओर देख कर बोले—"बिना मुझ से पूछे इन लोगों को तुम क्यों कष्ट दे रहे हो! यह हुल्लड़ मिटाओ, क्योंकि ये तो सब मेरे स्वजन ही हैं। स्त्रियों के लिए न घर, न परदा, न अटारी, न तिरस्करणी (चिक आदि) और न इस तरह का राजसत्कार आड़ करनेवाला है जैसा कि तुम कर रहे हो। उनका परदा तो एक मात्र पातिव्रत धर्म ही है। विपत्तिकाल, पीड़ा, युद्ध, स्वयंवर, यज्ञ और विवाह में स्त्रियों का दर्शन दूषित नहीं है। ऐसे समयों में उन्हें परदे में रखना जरूरी नहीं। यह सीता विपत्ति और महादुःख में है, इसलिए इसे देखने में कुछ बुराई नहीं है, विशेष कर मेरे पास। इसलिए सीता पालकी छोड़ कर मेरे पास पैदल आवे। ये सब वानर और भालू देखते रहें, कोई चिन्ता नहीं।" महाराज की ये बातें सुन कर विभीषण मन में कुछ चिन्ता करते हुए नम्रतापूर्वक सीता को प्रभु के पास ले आये और खड़ा कर दिया। उस तरह की प्रभु की बातें सुनकर लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् भी बड़े दुःखी हुए। जब महाराज सीता की ओर देखने लगे तब उनकी कठोर चेष्टा देख कर लक्ष्मण आदि ने जाना कि प्रभु सीता पर अप्रसन्न हैं। उस समय सीता देवी लज्जा से अपने ही अङ्गों में मानों घुसी जाती थीं। सीता देवी के पीछे पीछे विभीषण जा रहे थे। सीताजी, लोगों के सामने लज्जा के मारे अपना मुँह ढाँपे, पति के पास पहुँचकर 'आर्य-

पुत्र, आर्यपुत्र' कहती हुई रोने लगीं। वे विस्मय, हर्ष और स्नेह से पति के चन्द्रमुख को देखने लगीं।

दोहा।

सीता मन दुख दूर किय, रामचन्द्र मुख देखि।
निर्मल शशि सम मुख भयो, उदित पूर्ण शशि पेखि॥

११७ वाँ सर्ग।

लोकनिन्दा के डर से श्रीरामचन्द्रजी का कठोर वचन कह कर जानकी को त्यागना।

नम्र होकर सामने खड़ी श्रीसीता देवी को देख कर महाराज अपने मन का अभिप्राय कहने लगे—हे भद्रे! शत्रु को जीत कर मैंने तुझे जीत लिया। पुरुषार्थ के द्वारा जो करना उचित था वह मैंने किया। मैं डाह से छूट गया। अपमान को मैंने धो बहाया। अनादर और शत्रु को एक ही साथ नष्ट कर दिया। आज मेरा पौरुष देखा गया और मेरा श्रम सफल हुआ। आज मैं अपनी प्रतिज्ञा से पार हुआ और स्वतन्त्र हो गया। चञ्चल चित्त-वाले राक्षस रावण ने जो तुझे अकेली पाकर हर लिया था उस दैव-दोष को मैंने जीत लिया। जो मनुष्य अपना अनादर अपने तेज के द्वारा दूर नहीं करता उसका बड़ा पुरुषार्थ किस काम का? ऐसा मनुष्य बड़ा मूर्ख माना जाता है। हनुमान् ने समुद्र लाँघ कर लङ्का को तहस नहस किया। उसके ये काम सफल और स्तुति करने के योग्य हुए। युद्ध में पराक्रम करने और हित की सलाह देनेवाले सेना-सहित सुग्रीव का भी परिश्रम सफल होगया। वीर विभीषण का भी परिश्रम सफल हुआ। वह अपने भाई का साथ छोड़ कर मेरी शरण में आया था।

सीता के नेत्र अभी तक हरिणी की तरह प्रफुल्लित थे। पर राम की इस तरह की बातें सुनकर अब आँखों में आँसू भर आये। उस समय राम-चन्द्रजी हृदयप्रिया सीता को देख तो रहे थे, परन्तु लोकापवाद के डर से उनका हृदय दो टुकड़े हुआ जाता था। निन्दा का विचार करते ही महाराज को ऐसा क्रोध हुआ जैसे कि घी की आहुति पाकर आग जलने लगती है। उस समय महाराज टेढ़ी भौंहें और तिरछी आँखें करके बानरों तथा राक्षसों को सुनाते हुए सीता से बोले—देखो, मनुष्य को अपना अप-मान दूर करने के लिए जो कुछ करना चाहिए वह मैंने रावण को मार कर कर दिया। उस अनादर को मैंने इस तरह जीत लिया जिस तरह भगवान् अगस्त्य ने अपने तपोबल से दक्षिण दिशा को जीत लिया था। वह दिशा प्राणिमात्र के लिए जीतने योग्य न थी। तुमको जान लेना चाहिए कि इन सुहृदों के पराक्रम से मैं संग्राम के परिश्रम से पार हो गया; पर यह सब काम मैंने कुछ तुम्हारे लिए नहीं किया। मैंने केवल अपनी मर्यादा की रक्षा की और चारों ओर से होनेवाली निन्दा को रोका। मैंने अपने विख्यात वंश की अप्रतिष्ठा धो बहाई। तुम अपने चरित्र में—पातिव्रत्य में, स्त्री-धर्म में—सन्देह युक्त पाई जाती हो। तुम यद्यपि मेरे पास खड़ी हो तथापि, आँख के रोगी को दिये की नाईं, मुझे असह्य हो। हे जानकि! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि ये दसों दिशायें तुम्हारे लिए खुली पड़ी हैं। तुम जहाँ चाहो चली जाओ। मुझे तुमसे कुछ काम नहीं। क्योंकि ऐसा कौन कुलीन और तेजस्वी मनुष्य होगा जो दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को, लोभ के कारण, ग्रहण कर लेगा? देखो, रावण ने तुमको अपनी गोद में बैठाया और तुम्हें कुदृष्टि से

देखा। इस कारण, इतने बड़े कुल में उत्पन्न होकर भला मैं अब किस तरह तुम्हें ग्रहण कर लूँ? जिस यश के लिए मैंने तुमको जीता उसका लाभ मुझे होगया। अब तुमसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। अब तुम चाहे जहाँ चली जाओ। हे भद्रे! मैंने यह सब बात तुमको सुना दी। जो दूसरी जगह जाने की तुम्हारी इच्छा न हो तो यहीं लक्ष्मण, अथवा भरत या शत्रुघ्न या सुग्रीव किंवा विभीषण के पास रहो। अभिप्राय यह कि तुमको जिसमें सुख जान पड़े वैसा करो। रावण बड़ा दुष्ट था। वह अपने घर में तुम्हारे दिव्य और मनोरम रूप को देखकर कभी न माना होगा।

दोहा।

पति के ऐसे कटु वचन, सुनि अति काँपी सीय।
जिमि गजेन्द्र की झपट तें, तरु मञ्जरि कमनीय॥

---

११८ वाँ सर्ग।

सीता का अग्नि में प्रवेश करना।

राम के मुँह से क्रोध-भरे कठोर वचन सुनकर सीता बड़ी दुखी हुई। उन्होंने ऐसी अप्रिय बातें कभी न सुनी थीं, सो भी बानरों और राक्षसों के सामने। इसलिए उनका कहना और भी वज्रपात के समान हुआ। रामचन्द्र का कथन सुनते ही सीता तो मारे लज्जा के नीचे को मुँह करके डर गईं। उन्हें ऐसी ग्लानि हुई कि मारे संकोच के मानों वे अपने ही अङ्गों में घुसी जाती थीं। उन वचन-बाणों ने उन्हें अत्यन्त पीड़ित कर दिया था। आँसुओं से भरे हुए अपने मुँह को पोंछती हुई सीता गद्गद वाणी से धीरे धीरे अपने पति से कहने लगीं—हे वीर! आप मुझसे ऐसी अनुचित और कानों को दुख पहुँचानेवाली कठोर बात इस तरह क्यों कहते हैं जैसे कोई क्षुद्र मनुष्य अपनी क्षुद्र स्त्री से कहे। आप जैसा समझते हैं, मैं वैसी नहीं हूँ। मुझ पर विश्वास कीजिए। मैं अपने चरित्र के विषय में शपथ खाकर कहती हूँ। दूसरी स्त्रियों की चाल और व्यवहार देखकर आप जो स्त्री-जाति मात्र पर शङ्का करते हैं, सो ठीक नहीं। इस विचार को आप अपने दिल से निकाल दीजिए। यदि आप कभी मेरी परीक्षा ले चुके हैं तो ऐसा गन्दा ख़याल आपको ज़रूर दूर कर देना चाहिए। विवश होने पर मुझसे दूसरे मनुष्य के अङ्गों का स्पर्श हुआ। उसमें मेरा कुछ भी वश न था। अपराधी केवल दैव है। मेरे अधीन जो मेरा मन है वह तो आपही में लगा रहता है। क्या करूँ, केवल मेरे अङ्ग पराधीन होगये। उसमें मेरा कुछ भी वश न था। हे मानद! इतने दिनों तक मैं आपके साथ रही, फिर भी यदि आपने मुझे न जान पाया तो मैं वृथा मारी गई। यदि आपको छोड़ना ही था तो जब हनुमान् को आपने मेरे पास भेजा था उसी समय मुझे त्याग देते। यदि मैं उस समय त्याग का हाल जान जाती तो इस बानर के सामने ही, वह वचन सुनते ही, अपने प्राण छोड़ देती। ऐसा करने से आपको व्यर्थ इतना कष्ट तो न सहना पड़ता। अपने प्राणों को सन्देह में क्यों डालना पड़ता? इन मित्रों को व्यर्थ क्लेश क्यों देना पड़ता? हे राजसिंह! आपने तो सिर्फ़ क्रोध के वश में होकर ओछे मनुष्य की तरह, केवल सामान्य स्त्री-जाति का धर्म मान लिया। सीता जनक की लड़की है, इस विचार से आपने न तो मेरी पृथ्वी से उत्पत्ति की ओर और न मेरे चरित्र की ओर ही ध्यान दिया। बाल्यावस्था में आपने

मेरा पाणिग्रहण किया, वह भी आपके लिए प्रमाण न हुआ। मेरी भक्ति और मेरे शील को कुछ भी न समझ कर आपने पीठ पीछे डाल दिया।

इस प्रकार कहती और रोती-चिल्लाती, आँसू बहाती तथा गद्गद होकर गिड़गिड़ाती हुई सीता देवी दीन और शोक में पड़े हुए लक्ष्मण से बोली—"हे सौमित्रे! मेरे लिए तुम चिता बना दो। वही इस दुःख की औषध है। मैं मिथ्या अपवाद से मारी गई। अब मुझे जीने का उत्साह नहीं। मेरे गुणों से अप्रसन्न होकर पति ने लोगों के सामने मेरा त्याग कर दिया। इसलिए उचित गति यही है कि मैं आग में प्रवेश करूँ।" गिड़गिड़ाती हुई सीता देवी की ये बातें सुनकर क्रोध में होकर श्री लक्ष्मण रामचन्द्रजी की ओर देखने लगे। उन्होंने उनके आकार से जान लिया कि वे भी ऐसाही चाहते हैं। अतएव लक्ष्मण ने चिता बनाकर तैयार कर दी। उस समय रामचन्द्रजी का कालान्तक यम के तुल्य चेहरा देखकर किसी मित्र की यह हिम्मत न हुई कि महाराज को मनावे या उनसे कुछ कहे। यहाँ तक कि उनकी ओर कोई नजर उठाकर देख भी न सकता था। नीचे की ओर मुँह किये हुए प्रभु की प्रदक्षिणा कर सीता देवी प्रदीप्त आग के सामने गईं। वे देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए बोलीं—"जिस तरह मेरा मन राघव से कभी अलग नहीं होता उसी तरह यह लोकसाक्षी अग्नि चारों ओर से मेरी रक्षा करे। कर्म, वाणी और मन से यदि मैं सर्वधर्मज्ञ राघव को छोड़ दूसरे को न जानती होऊँ तो यह अग्नि मेरी रक्षा करे।" इतना कह और अग्नि की प्रदक्षिणा कर महारानी उस प्रज्वलित अग्नि में बेखटके बैठ गईं। वहाँ बालक, बुड्ढे आदि बहुत से लोग इकट्ठे थे। उन सब ने देखा कि सीता देवी अग्नि में प्रवेश कर गईं। सोने के समान कान्तिवाली और सोने के भूषणों से भूषित वह देवी सबके सामने अग्नि में प्रविष्ट होगईं। सोने की वेदी जैसी सीता देवी को प्राणि-मात्र ने अग्नि में प्रवेश करते देखा। तीनों लोकों ने देखा कि घी की पूर्ण आहुति की नाईं सीता देवी, आग में गिर पड़ीं। अनेक मन्त्रों के द्वारा सुसंस्कृत यज्ञ की वसोर्धारा की नाईं सीता देवी को जब स्त्रियों ने आग में गिरते देखा तब वे सब हाहाकार करने और चिल्लाने लगीं। देवता जिस प्रकार शाप से नरक में गिरें उसी तरह सीता को अग्नि में जाते देवता, गन्धर्व और दानव लोगों ने देखा।

दोहा।

अद्भुत कोलाहल भयो, तेहि छन हाहाकार।
राक्षस कपिकृत लखि तहाँ, सीतहि अग्नि मँझार॥

---

११६ वाँ सर्ग।

देवताओं का आकर रामचन्द्र की स्तुति करना।

अब लोगों की तरह तरह की बातें सुन रामचन्द्र बहुत उदास हो गये। वे आँखों में आँसू भर कर कुछ देर तक चुपचाप कुछ सोचने लगे। इतने ही में राजा कुवेर, पितरों को साथ लिये हुए यम, इन्द्र, वरुण, बैल पर सवार तीन आँखोंवाले श्रीमहादेव, और सब संसार को रचनेवाले ब्रह्मा—ये सब सूर्य के समान विमानों पर चढ़ कर लङ्का में आकर श्रीराघव के पास उपस्थित हुए। उन सब देवताओं को देख मनुष्यशरीरधारी श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़ खड़े हो गये। भूषणों से अलङ्कृत देवता अपनी अपनी भुजा उठाकर बोले—हे राघव! आप सब
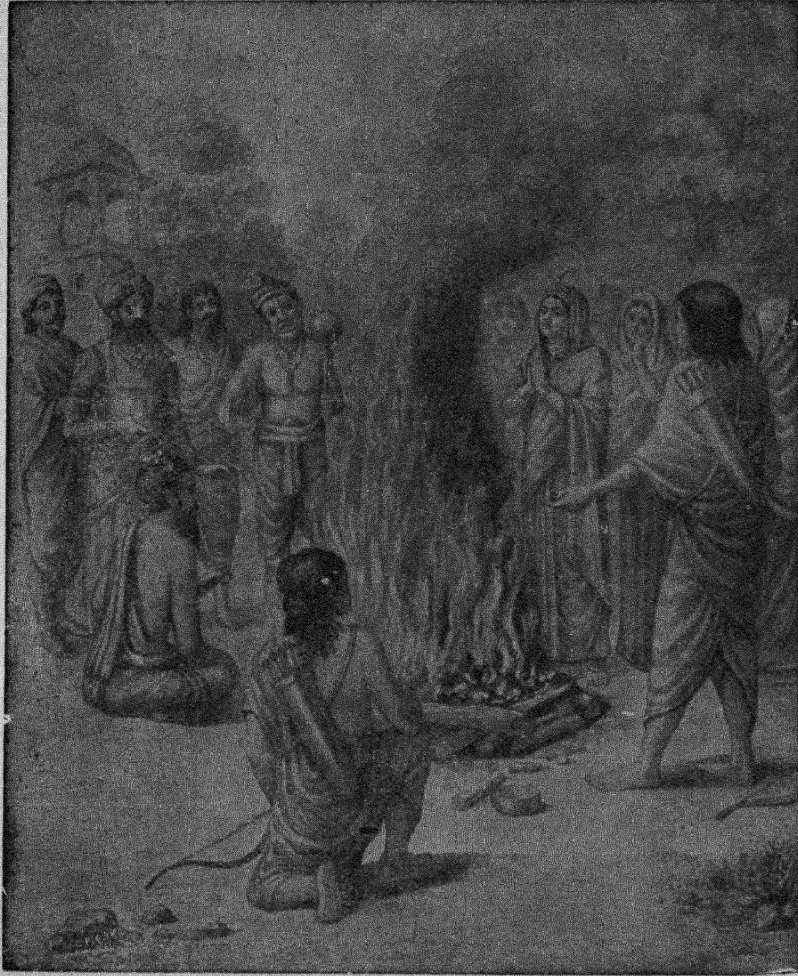
अग्नि-परीक्षा ।

लोकों को रचनेवाले, श्रेष्ठ और ज्ञानियों में शिरोमणि हैं। इतने बड़े सामर्थ्यवान् होकर भी आपने सीता को अग्नि में क्यों जलने दिया ? हे देवताओं में श्रेष्ठ ! क्या आप अपने को नहीं जानते ? आप आठों वसुओं के प्रजापति ऋतधामा नाम वसु हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्त्ता, स्वयं प्रभु, रुद्रों में आठवें रुद्र, और साध्यों में पाँचवें हैं। महाराज ! अश्विनीकुमार आपके कान और चन्द्र तथा सूर्य आपके नेत्र हैं। प्राणियों के आदि और अन्त में आपही देख पड़ते हैं। संसारी मनुष्य की तरह आप वैदेही का त्याग क्यों करते हैं ?

जब लोकपालों ने श्रीराघव से यह कहा तब वे बोले—"मैं तो अपने को राजा दशरथ का पुत्र, मनुष्य ही, मानता हूँ। परन्तु जो मैं हूँ और जहाँ से हूँ वह मुझे आपही बतलाइए।" प्रभु के इतना कह चुकने पर ब्रह्माजी ने कहा—हे सत्यपराक्रमी, मेरी बात सुनो। आप नारायण देव श्रीमान् चक्रधारी प्रभु हैं। आप एक शृंगधारी वराह, भूत तथा भविष्य में होनेवाले शत्रुओं को जीतनेवाले हैं। आप अक्षय (नष्ट न होनेवाले) सत्य ब्रह्म हैं। आप मध्य और अन्त में वर्तमान रहते हैं। आप सब लोकों के परम धर्म रूप, विष्वक्सेन (चारों ओर सेनावाले) चतुर्भुज, शार्ङ्गधन्वा और हृषीकेश हैं। आप पुरुष, पुरुषोत्तम, अजित, खड्गधारी, विष्णु, कृष्ण, और अथाह बली हैं। आप सेनापति, गाँवों के नेता (सर्वश्रेष्ठ) सत्य, बुद्धि, क्षमा, दम (इन्द्रियनिग्रह), सृष्टिकर्ता और संहार-कर्त्ता हैं। आप वामन, मधुसूदन, इन्द्र के कामों को करनेवाले, महेन्द्र, पद्मनाभ और संग्राम के अन्तकारक हैं। अच्छे महर्षि आपको शरणागतवत्सल और शरणरूप कहते हैं। आप सहस्रशृङ्गधारी, वेदों के आत्मा, सौ मस्तकवाले, और वृषभ रूप हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्त्ता और स्वयं प्रभु हैं। आप सिद्धों और साध्यों के आश्रयभूत तथा पूर्व पुरुष हैं। आप यज्ञ, वषट्कार, ओंकार और परात्पर (सबसे आगे) हैं। आपकी उत्पत्ति और लय का हाल कोई नहीं जानता कि आप कौन हैं। आप सब प्राणियों में, ब्राह्मणों में, गायों में, सब दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों और नदियों में दिखाई देते हैं। आप श्रीमान सहस्रचरण (हज़ार पैर वाले), शतमस्तक (सौ सिर वाले) और सहस्रनयन (हज़ार आँखोंवाले) हैं। आप भूतों और पर्वतों-सहित इस पृथ्वी को धारण करते हैं। अन्त में पृथ्वी के जल में आप महासर्परूप देख पड़ते हैं। हे राम ! आप देवता, गन्धर्व और दानवों सहित तीनों लोकों को धारण करते हैं। मैं आपका हृदय, देवी सरस्वती जीभ और देवता आप के रोम (बाल) हैं; आपके अङ्गों में ब्राह्मणों की रचना है। आपका पलक मारना रात और पलक उठाना दिन है। वेद आपके संस्काररूप संसार की प्रवृत्ति और निवृत्ति के जनानेवाले हैं। बिना आपके यह (संसार) कुछ भी नहीं है। सब संसार आपका शरण और आपकी स्थिरता पृथ्वी है। हे श्रीवत्सलक्षण ! आग आपका क्रोध और चन्द्रमा आपका प्रसाद है। पूर्व समय में तीन पैरों से तीनों लोकों पर आक्रमण आप ही ने किया था। आपही ने इन्द्र को राज्य पर बिठाया और बलि को कठोरता-पूर्वक बाँधा। यह सीता देवी भगवती लक्ष्मी और आप विष्णु, कृष्ण तथा प्रजापति देव हैं। रावण को मारने के लिए आपने मनुष्य का शरीर धारण किया। यह हमारा ही

काम था। इसे आपने पूरा कर दिया। हे राम! रावण को आपने मारा। अब प्रसन्न होकर स्वर्ग को पधारिए अर्थात् यथेष्ट अपने परम धाम को भूषित कीजिए। हे देव! आपका वीर्य अमोघ है, और आपका पराक्रम कभी निष्फल नहीं होता। हे रामचन्द्र! आपका दर्शन और आपकी स्तुति अमोघ है। जो मनुष्य आपकी भक्ति करेंगे वे भी अमोघ होंगे। जो प्राणी पुराणपुरुषोत्तम आपके निश्चल भक्त होंगे वे इस लोक में और परलोक में भी अपना मनोरथ पायेंगे। यह ऋषि की कही हुई दिव्य स्तुति प्राचीन इतिहास रूप है। जो लोग इसे पढ़ेंगे उनका पराजय कभी न होगा।

१२०वाँ सर्ग

अग्नि का प्रकट होकर सीता को रामचन्द्र की गोद में देना।

इस तरह पितामह की बातें सुनकर वैदेही को गोद में लिये हुए अग्निदेव अपने रूप से प्रकट हुए। वह चिता इधर उधर से फट गई। सीता देवी, तरुण सूर्य के समान सोने के भूषणों से भूषित, लाल कपड़े पहने, काले और घुँघुराले बालों से शोभित, बहुत साफ़, फूल और आभूषणों से अलंकृत तथा पहला ही रूप धारण किये हुए थीं। उन्हें अग्निदेव ने रामचन्द्र को समर्पण कर दिया। अग्निदेव ने सीता देवी के विषय में कुछ कहना आरम्भ किया। क्योंकि वे लोकसाक्षी हैं। उन्होंने कहा—हे राम! यह तुम्हारी जानकी देवी हैं। इनमें किसी तरह का पाप नहीं। ये वाणी, मन, बुद्धि, और आँखों के द्वारा, धर्मशील आपको छोड़कर दूसरे मनुष्य की ओर नहीं फिरीं। इनका चरित्र सब तरह शुद्ध है। उस समय पराक्रम के अहङ्कारी राक्षस ने इनको अकेली, दीन और तुमसे रहित पाकर हर लिया था। उस समय ये विवश थीं। उसने इनको ले जाकर अन्तःपुर में रक्खा। परन्तु ये बेचारी आपही में मन लगाये रहीं। ये आपही को परायण समझती थीं। उस समय भयङ्कर और क्रूर बुद्धिवाली राक्षसियाँ इन्हें बहुत लोभ दिखलाती और धमकाती थीं। पर इनका चित्त आप ही में लगा हुआ था। राक्षस का तो इन्हें कभी ध्यान भी न आता था। हे राघव! शुद्धहृदया और पाप-रहिता इस देवी को आप ग्रहण कीजिए। मैं आपको आज्ञा देता हूँ कि अब आप इससे कुछ भी न कहें।

अग्निदेव की ये बातें सुनकर रामचन्द्रजी कुछ देर तक ध्यानावस्थित हो गये। फिर उनके नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये। उन्होंने अग्निदेव से कहा—आपने जो कहा वह ठीक है। क्योंकि लोगों के पास सीता पवित्रता के ही योग्य है। पर उस समय मैंने इसे इसलिए ग्रहण न किया कि यदि सीता की शुद्धता दिखलाये बिना मैं इसे ग्रहण कर लेता तो लोग कहते कि 'देखो, बहुत दिनों तक सीता रावण के घर में रही, फिर भी राम ने बिना विचारे उसे ग्रहण कर लिया। देखो, राम बड़े कामी और मूर्ख हैं।' मैं तो जनकपुत्री को अनन्यचित्ता समझता हूँ। वह मुझ ही में अपना मन लगानेवाली है। अग्नि में प्रवेश करते समय मैंने उसे इसी लिए नहीं रोका जिसमें तीनों लोकों को विश्वास हो जाय। मैंने सत्यता का आश्रय लिया। जिस तरह समुद्र अपनी मर्यादा का कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता उसी तरह बड़े नेत्रोंवाली सीता का रावण किसी तरह अनादर नहीं कर सकता

था। क्योंकि इसकी रक्षा इसके तेज से होती है। दुष्ट रावण की क्या सामर्थ्य थी जो इस पर हाथ डालता। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला की नाईं यह उसे प्राप्त करने के अयोग्य थी। यह पतिव्रता सीता रावण के घर में किसी तरह से कादर होने के योग्य भी न थी। क्योंकि यह मुझे छोड़कर दूसरे मनुष्य को नहीं जानती। सूर्य की प्रभा जैसे सूर्य से अभिन्न है वैसेही यह मुझसे अभिन्न है। अब तो यह तीनों लोकों के सामने शुद्ध भी हो चुकी। अब मैं इसको कैसे त्याग सकता हूँ? जिस तरह वीर मनुष्य कीर्ति का त्याग नहीं कर सकता वैसे ही मैं भी इसे त्याग नहीं सकता। आप लोग लोकनाथ हैं। आपने हित की और प्रेम भरी बातें कही हैं, इनका पालन मुझे अवश्य करना चाहिए।

दोहा।

एहि विधि कहि करुणायतन, कृत सिय अङ्गीकार।
प्रभुहिं प्रशंसत देव सब, जय जय श्री श्रुतसार॥

---

१२१ वाँ सर्ग

शिवकृत स्तुति, दशरथ का आना और बहुत प्रसन्न होना।

इस तरह राम का कथन सुनकर श्रीशङ्कर बोले—"हे कमलनयन, महाबाहो, हे महावक्षःस्थल! आपने यह काम बहुत अच्छा किया। यह बहुत ही अच्छा हुआ जो तीनों लोकों के दारुण अन्धकार रूप रावण के भय को आपने मिटा दिया। क्योंकि वह बहुत बढ़ गया था। अब आप अयोध्या जाकर दीन भरत को धीरज बँधाइए। वहाँ जाकर यशस्विनी कौशल्या, कैकेयी और लक्ष्मण की माता सुमित्रा को देखिए। फिर राज्यासन पर बैठकर मित्रों को आनन्द दीजिए; इक्ष्वाकु-कुल के वंश का स्थापन कीजिए; अश्वमेध यज्ञ से देवताओं को तृप्त कर उत्तमोत्तम यश प्राप्त कीजिए और धन से ब्राह्मणों को तृप्त कर अपने स्वर्गधाम की यात्रा कीजिए। देखो, ये तुम्हारे पिता राजा दशरथ विमान पर सवार हैं। ये मनुष्य-लोक में तुम्हारे बड़े थे। ये महायशस्वी तुम्हारे द्वारा तर गये और इन्द्रलोक में पहुँच गये हैं। लक्ष्मण-सहित आप इन को प्रणाम करें।" महादेवजी के कहने पर महाराज ने और लक्ष्मण ने पिता को प्रणाम किया। वे विमान में बैठे थे और अपनी देवलक्ष्मी से देदीप्यमान तथा पवित्र कपड़े धारण किये हुए थे। उस समय विमान पर चढ़े हुए राजा दशरथ प्राणों से भी अधिक प्यारे अपने पुत्र को देख बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने रामचन्द्र को दोनों भुजाओं से उठा लिया। वे उन्हें गोदी में बैठाकर और गले से लगाकर बोले—हे रामचन्द्र! मैं सच सच कहता हूँ कि तुम्हारे बिना मुझे देवश्रेष्ठों के समान यह स्वर्ग भी प्रिय नहीं है। हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! तुम्हारे वनवास के लिए कैकेयी ने जो जो वचन कहे थे वे मेरे हृदय में जमे हुए हैं। परन्तु आज लक्ष्मण-सहित तुमको सकुशल देखकर मैं दुःख से छूट गया। मेरा दुःख उसी प्रकार अलग हो गया जैसे सूर्य कुहिरे से छूट जाता है। जिस तरह अष्टावक्र ने कहोल नामक अपने पिता को तारा था उसी तरह हे सुपुत्र! तुमने मुझे तार दिया। अब मैंने यह बात समझी है कि देवताओं ने रावण के वध के लिए तुमको गूढ़ भाव से रक्खा था। तुम साक्षात्पुरुषोत्तम हो। हे राम! जिस समय तुम वन से लौटकर घर जाओगे और कौशल्या को मालूम

होगा कि तुम शत्रुओं को जीतकर आये हो उस समय तुमको देखकर वह कृतार्थ हो जायगी। वे नगर-निवासी भी कृतार्थ होंगे जो देखेंगे कि तुम वन से लौटकर नगर में आ गये और राज्य पर अभिषिक्त हो गये। हे रामचन्द्र! भरत बड़ा अनुरक्त, बली, पवित्र और धर्माचरण में तत्पर है; उसके साथ तुम्हारा मिलन मैं भी देखना चाहता हूँ। हे सौम्य! तुमने मेरी प्रीति के लिए चौदह वर्ष वन में काटे और सीता तथा लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में निवास किया। अब तुम्हारा वनवास समाप्त हुआ और तुमने प्रतिज्ञा पूरी कर ली। तुमने रावण को मारकर देवताओं को संतुष्ट किया। तुमने यह बड़ा ही अच्छा काम किया। हे शत्रुसूदन! तुमने बड़ी प्रशंसा के योग्य यश पाया। अब तुम भाइयों-सहित राज्यासन पर बैठो और बड़ी आयु प्राप्त करो।

अपने पिता के ये वचन सुनकर रामचन्द्रजी हाथ जोड़ बोले—"हे धर्मज्ञ! कैकेयी और भरत के ऊपर आप प्रसन्न हूजिए। आपने जो कैकेयी से कहा था कि पुत्र के साथ तुझे मैं छोड़ता हूँ; सो वह शाप न उसे स्पर्श करे और न उसके पुत्र को।" राजा ने कहा—"ऐसा ही होगा।" अब लक्ष्मण को गले से लगाकर राजा बोले—"हे धर्मज्ञ! तुम पृथ्वी पर बड़े धर्म, यश, स्वर्ग और उत्तम बड़ाई को प्राप्त होगे। क्योंकि रामचन्द्र तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। हे सुमित्रानन्दन! राम की सेवा करो। क्योंकि ये सदा सब लोगों के हित में ही लगे रहते हैं। देखो, इन्द्र-सहित तीनों लोक, सिद्ध और महर्षि सभी रामचन्द्र की वन्दना और पूजा करते हैं। ये पुरुषोत्तम हैं। ये अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्म और देवों के गुप्त हृदय हैं। इसलिए सीता-सहित इनकी जो तुमने सेवा की सो धर्माचरण और यश-लाभ किया।" लक्ष्मण से इतना कहकर हाथ जोड़े खड़ी हुई सीता से राजा मधुरता-पूर्वक धीरे से बोले—"हे पुत्री! राम ने जो तुम्हारा त्याग किया था उस विषय में तुम अपने मन में कुछ क्रोध न रखना। क्योंकि वे तुम्हारी भलाई ही चाहते हैं। उन्होंने वह काम तुम्हारी शुद्धि के लिए किया था। हे पुत्रि! तुम्हारा चरित्र शुद्ध और दुष्कर है। तुम्हारा ख़ूब यश फैलेगा। पति की सेवा करने के लिए तुम्हें सिखलाऊँ ही क्या; परन्तु मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि तुम्हारे परमदेवता यही हैं।" महाराज दशरथ दोनों पुत्रों और पुत्रवधू को इस तरह समझाकर बिदा हुए और विमान पर चढ़कर इन्द्रलोक को चले गये।

---

१२२ वाँ सर्ग

रामचन्द्र के कहने से मरे और घायल वानरों को इन्द्र का जिलाना एवं आरोग्य करना।

महाराज दशरथ के चले जाने पर देवराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हो माया-मनुष्य श्रीरामचन्द्र से बोले। श्रीराम हाथ जोड़ खड़े थे। इन्द्र ने कहा—"हे राघव, मनुष्यों को हम देवताओं का दर्शन मिलना अमोघ (अप्राप्य) है। तुम्हारे मन में जो इच्छा हो सो कहो।" प्रसन्न हुए इन्द्र की बातें सुनकर महाराज नम्रतापूर्वक बोले—हे देवराज! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मैं जो कहता हूँ उसे सत्य कीजिए। जो वानर मेरे लिए पराक्रम करके मर गये हैं वे सब जी उठें।

मेरे लिए जो पुत्रों और स्त्रियों से अलग हो गये हैं उन्हें मैं प्रसन्न देखना चाहता हूँ । ये सब पराक्रमी तथा शूर हैं, और मृत्यु को कुछ भी नहीं समझते । ये युद्ध में शूरता करते हुए मारे गये हैं । हे पुरन्दर, इन सबको जिला दीजिए । ये सब बड़े वीर थे । इन्होंने मृत्यु की कुछ भी परवा न कर बड़ी बहादुरी की थी । ये आपकी कृपा से मुझसे आ मिलें तो बड़ा अच्छा हो । मैं यही वर माँगता हूँ । हे मानद! पीड़ा से और घावों से रहित, बल तथा पौरुष से सम्पन्न वानरों और भालुओं को मैं देखना चाहता हूँ । मैं यह भी चाहता हूँ कि जहाँ ये वानर रहें वहाँ दुर्भिक्ष में भी मूल, फल और फूल होते रहें; उनके बिना इन्हें कष्ट न मिले । नदियाँ निर्मल प्रवाहों से बहती रहें ।

राघव की बातें सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो बोले— "हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ, प्यारे! तुमने जो वर माँगा वह बड़ा भारी है । पर मैं दो बार कभी नहीं बोला (यानी एक बार मंजूर कर फिर इन्कार नहीं किया), इसलिए ऐसा ही होगा । एक बार मुँह से जो निकल गया सो निकल गया । वह अन्यथा नहीं हो सकता । जिन वानरों और भालुओं के मुँह तथा भुजाएँ कट गई हैं और जिनको राक्षसों ने मार डाला है वे पीड़ा और घावों से रहित और बल तथा पुरुषार्थ से सम्पन्न हो-होकर, सोकर उठे हुए प्राणी की नाईं, उठ खड़े होंगे । वे सब सुहृद, बन्धु, कुटुम्बी और अपने घरवालों के साथ बड़े आनन्द से वहाँ जाकर मिलेंगे । वृक्ष अकाल में भी फूलों और फलों से लदे रहेंगे और नदियाँ जल से भरी रहेंगी।" देवराज के इतना कहते ही सब वानर और भालु उठकर खड़े हो गये । उनके शरीरों में पीड़ा न थी और घाव बिल्कुल दिखाई न देते थे । वे सब ऐसे मालूम होते थे मानों अभी सोकर उठे हैं । वहाँ जितने वानर मौजूद थे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो गया !

देवता लोग रामचन्द्र को सब तरह से परिपूर्णार्थ देखकर प्रसन्न हुए । वे बोले—"हे राजन् ! अब आप अयोध्या को जाइए, इन वानरों को बिदा कर दीजिए; और इस बेचारी, अनुरक्त, यशस्विनी जानकी को समझा दीजिए । आपके बिना शोक तथा व्रत करनेवाले भरत, शत्रुघ्न और सब माताओं को आप वहाँ जाकर देखिए । आप अपना अभिषेक करवाकर नगर-निवासियों को और मन्त्रियों को प्रसन्न कीजिए ।" इतना कहकर श्रीदेवराज इन्द्र, देवताओं को साथ ले, विमान पर चढ़कर स्वर्ग को पधारे और लक्ष्मण-सहित महाराज ने उन देवताओं को प्रणाम कर सेना के टिकाने की आज्ञा दी ।

दोहा ।

प्रभुभुज-पालित सेन सब, अति श्रीसहित विराज ।
जिमि विकास शोभित निशा, सहित निशाकरराज ॥

---

१२३ वाँ सर्ग

स्नान आदि करने के लिए रामचन्द्र से विभीषण की प्रार्थना ।

जब वह रात बीत गई तब सबेरे महाराज के पास विभीषण आये । वे जय कहकर हाथ जोड़े हुए बोले—"हे राघव ! ये शृङ्गार-कारिणी कमलनयनी स्त्रियाँ आई हैं । मैं चाहता हूँ कि ये सब महाराज के अङ्गों को स्नान, अङ्गराग (उबटन), वस्त्र, आभूषण, चन्दन और माला आदि तरह-तरह की चीज़ों

द्वारा सुशोभित करें।" विभीषण की प्रार्थना सुनकर प्रभु ने कहा—"भाई! सुग्रीव आदि वानरों से कहो। ये सब स्नान आदि प्रसाधन करें। मुझे तो कैकेयी के धर्मात्मा पुत्र बिना स्नान, कपड़ा और आभूषण कुछ नहीं सुहाते। क्योंकि वह महाबाहु, सुख भोगने योग्य, सुकुमार और सत्यवक्ता है। मेरे बिना वह कष्ट पा रहा है। हाँ, तुम मेरी यात्रा का विचार करो; जिससे हम अयोध्या नगरी में जल्दी पहुँच सकें। क्योंकि वह मार्ग बड़ा दुर्गम है।" विभीषण ने कहा—"राजन्, मैं उस नगरी में आपको जल्दी पहुँचा दूँगा। सुनिए, मेरे यहाँ एक पुष्पक विमान है। वह सूर्य के समान चमकीला है। मेरा भाई रावण उसे कुवेर से छीन लाया था। मेरे भाई ने संग्राम करके कुवेर को जीत लिया था। वह विमान काम-गामी (जिधर जाने की इच्छा हो उधर ही चलनेवाला) और दिव्य है। वह आपके लिए यत्नपूर्वक रक्षित रक्खा है। उसका आकार मेघ के समान दिखाई देता है। उसके द्वारा आप, बिना ही कष्ट के, अयोध्या में पहुँच जायँगे। हे प्रभो! यदि मैं महाराज के अनुग्रह के योग्य होऊँ, यदि मेरे गुणों को महाराज याद करते हों और यदि मेरे ऊपर महाराज का सौहार्द हो तो आप यहाँ लक्ष्मण और सीता-सहित रहकर सब प्रकार की मेरी सेवा को अङ्गीकार कीजिए। फिर यात्रा का विचार कीजिएगा। मैं तो किङ्कर हूँ। मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ, कुछ आज्ञा नहीं देता।" यह सुनकर महाराज वानरों और राक्षसों को सुनाते हुए बोले—हे वीर! मैं तुम्हारी उस बड़ी सहायता ही से पूजित हो चुका। इससे विशेष अनेक तरह की राय देने और मित्रता से भी तुमने मेरी बड़ी सेवा की। हे राक्षसेश्वर! इस समय मैं तुम्हारा कहना न मानूँगा। क्योंकि भरत को देखने के लिए मेरा मन बड़ी जल्दी कर रहा है। देखो, मुझे लौटाने के लिए वह चित्रकूट तक आया था। वह हाथ जोड़ सिर नवाकर प्रार्थना कर रहा था, परन्तु मैंने उसका कहना न माना। इसलिए उसे, कौशल्या को, सुमित्रा को, और कैकेयी को देखने के लिए तथा गुरु लोगों को, गुह को, मित्रों को, पुरवासियों और देशवासियों को देखने के लिए मेरा मन बड़ी जल्दी कर रहा है। अब मुझे आज्ञा दो। मैं तुमसे सत्कार पा चुका। हे मित्र! बुरा मत मानो। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। मेरी बात मान लो। वह विमान मँगाकर यहाँ खड़ा कर दो। अब मैं कृतकृत्य हो गया। अब मेरा यहाँ रहना किस तरह ठीक हो सकता है।

महाराज की बातें सुनते ही विभीषण ने बहुत जल्दी वह विमान मँगवाया। वह विमान सोने से चित्रविचित्र बना हुआ था, पन्ने से उसकी वेदिका बनी हुई थी, और वह भीतरी कोठरियों से घिरा हुआ था। वह चारों ओर चाँदी से प्रकाशमान् था, सफ़ेद-सफ़ेद पताकाओं और ध्वजाओं से सजा हुआ था, सब का सब काञ्चनमय था और सुवर्णमय अटारियों से सुशोभित था। वह सुवर्णमय कमलों से विचित्र, किङ्किणीजालों से मनोहर, और मुक्ता तथा मणियों से बने हुए झरोखों से देखने के योग्य था। मधुर स्वर से बजनेवाली घण्टियाँ उसमें चारों ओर लगी हुई थीं। वह मेरु की चोटी के समान बड़ा था और विश्वकर्मा की तरह-तरह की कारीगरी को सूचित करता था। वह चाँदी और मोतियों के

बड़े-बड़े महलों से बहुत अच्छा लगता था। उसकी तल-भूमि स्फटिक मणियों से बनी हुई थी, और बैठने के लिए उसमें अच्छे-अच्छे पन्नों के मञ्च विद्यमान थे। उसमें बड़े-बड़े क़ीमती बिछौने बिछे हुए थे। तरह तरह के महाजनों से वह भरा हुआ था। उस पर कोई आक्रमण न कर सकता था और चाल उसकी मन के समान (मनोजव) तेज़ थी। राघव को ऐसा विमान सौंपकर विभीषण खड़े हो गये।

दोहा।

श्रीप्रभु लखि तेहि यान को, अद्भुत कुधर विशाल।
लक्ष्मण अरु सेना सहित, विस्मित भे तेहि काल ॥

---

१२४ वाँ सर्ग

सबको साथ लेकर रामचन्द्र का विमान पर चढ़ना।

विमान को पास खड़ा कर विभीषण हाथ जोड़कर महाराज से बोले कि प्रभो! अब क्या आज्ञा है। उसे सुनकर महाराज कुछ देर तक सोचकर फिर प्रेमपूर्वक बोले—हे विभीषण! इन वानरों ने युद्ध में बड़ा पौरुष दिखलाया है इसलिए इनको तरह-तरह के रत्नों, धनों और कपड़ों से संतुष्ट कीजिए। देखो, यह लङ्का अजित थी; इसे कोई भी जीत न सकता था। इन लोगों ने प्राणों का भय छोड़कर युद्ध से मुँह न मोड़ा और इसे जीत लिया। ये जीतकर कृतार्थ हो गये। इसलिए अब धन और रत्नों के दान से इनके कामों को सफल करो। तुम बड़े कृतज्ञ हो। इससे ऐसा करो जिसमें ये सब हर तरह से प्रसन्न हों। क्योंकि ये तुमको दाता, संग्रह करनेवाला, दयालु और जितेन्द्रिय समझते हैं। इसी से मैं तुमको याद दिलाता हूँ। हे राक्षसराज! जो राजा सेना को दान, मान आदि सत्कार से सन्तुष्ट नहीं करता—सैनिकों को केवल युद्ध में झोंकना ही जानता है—उसको सेना, अप्रसन्न होकर, छोड़ देती है।

प्रभु की आज्ञा से विभीषण ने रत्न और धनों से वानरों के सेना-पतियों को यथोचित सन्तुष्ट किया। वानरों का यथोचित सत्कार देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हुए। फिर लजीली वैदेही को गोद में लेकर धनुर्धारी लक्ष्मण के साथ वे विमान पर चढ़े। उस समय श्रीराघव वानरों से और सुग्रीव तथा विभीषण से आदरपूर्वक बोले—हे वानरों में श्रेष्ठो! तुम लोगों ने मित्र का काम ठीक-ठीक किया। अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाकर अपने इच्छानुसार रहो। हे सुग्रीव! मित्र, स्नेही और हितकारी को जैसा करना उचित है वैसा ही तुमने धर्म से डरकर किया। अब तुम अपनी सेना लेकर किष्किन्धा को जाओ और राज्य का पालन करो। हे विभीषण! मेरे दिये हुए लङ्का के राज्य का तुम अच्छी तरह शासन करो। इन्द्र-सहित देवता भी कभी तुम्हारी ओर टेढ़ी नज़र न कर सकेंगे। मेरी आज्ञा से प्रजा को तुम नीतिमार्ग पर चलाओ। मैं अपने पिता की राजधानी अयोध्या को जाऊँगा। तुम लोगों से मैं आज्ञा ले विदा होता हूँ।

महाराज का यह कथन सुनकर वे सब वानर और विभीषण भी हाथ जोड़कर बोले—"प्रभो! हम लोग भी अयोध्या को चलना चाहते हैं। हम लोग आनन्द-पूर्वक वनों और नगरों में घूमेंगे। आप का राज्याभिषेक देखेंगे और कौशल्या माता को प्रणाम कर फिर हम लोग अपने घर को जल्दी लौट

आवेंगे। इसलिए आप हम सबको भी साथ लेते चलिए।" सबकी यह इच्छा सुनकर महाराज ने प्रसन्न हो कहा—"वाह वाह! इससे अच्छी बात क्या है। यह सुनकर तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं तुम सब मित्रों के साथ नगर में जाकर आनन्द-लाभ करूँगा। हे सुग्रीव! तुम वानरों के साथ आओ और जल्दी विमान पर चढ़ो। हे विभीषण! तुम भी अपने मन्त्रियों सहित इस पर बैठ लो।" प्रभु की आज्ञा पाकर सब वानरों को साथ ले सुग्रीव और अपने मन्त्रियों सहित विभीषण उस विमान पर चढ़ गये। जब सब चढ़ चुके तब प्रभु की आज्ञा पाकर वह कुवेर का परम आसन—पुष्पक विमान—आकाश में उड़ चला। हंसयुक्त और प्रकाशमान उस विमान पर बैठे रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। वे कुवेर की नाईं सुशोभित हुए।

दोहा।

राक्षस-वानर भालु सब. चढ़े यान पर जाइ।
अति प्रशस्त विस्तार कछु, तेहि कर कहि न सिराइ॥

———

१२५ वाँ सर्ग

प्रभु का सीता से सब युद्ध का वृत्तान्त कहना और अयोध्या का दर्शन।

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर वह विमान शब्द करता हुआ उड़कर आकाश में पहुँचा और बड़े ज़ोर से चला। चारों ओर दृष्टि फैलाकर महाराज सीता से बोले—हे सीते! इस लङ्का की ओर नज़र करो। देखो, कैलास-शिखर की नाईं इस त्रिकूट पर्वत के शिखर पर विश्वकर्मा की बनाई हुई यह नगरी कैसी सुन्दर देख पड़ती है। यह संग्राम-भूमि देखो, जहाँ वानरों और राक्षसों के रुधिर तथा मांस की कीचड़ हो रही है। हे बड़े नेत्रोंवाली! देखो, यह वरप्राप्त और महाप्रमाथी राक्षसराज सो रहा है। यह वही श्मशानभूमि है जहाँ रावण का दाह-कर्म हुआ था। मैंने तुम्हारे लिए उस रावण को मारा था। देखो, यहाँ पर कुम्भकर्ण और प्रहस्त मारे गये थे। हनुमान् ने धूम्राक्ष को यहीं मारा था। यहाँ सुषेण ने विद्युन्माली को मारा था। लक्ष्मण ने यहाँ रावण के लड़के इन्द्रजित् का वध किया था। यहाँ अङ्गद ने विकट नामक राक्षस को मारा था। यहीं पर विरूपाक्ष, दुष्प्रेक्ष, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन और बड़े-बड़े बली राक्षस तथा त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक और श्रेष्ठ राक्षस युद्धोन्मत्त एवं मत्त मारे गये। यहीं कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ, तथा वज्रदंष्ट्र और दंष्ट्र आदि बहुत से राक्षस मारे गये। युद्ध में मैंने दुर्द्धर्ष और मकराक्ष को मारा था। अकम्पन, शोणिताक्ष, यूपाक्ष, प्रजंघ, विद्युज्जिह्व, यज्ञशत्रु, सुप्रघ्न, सूर्यशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि बहुत राक्षस यहाँ मारे गये थे। यहाँ पर हज़ारों सपत्नियों के साथ मन्दोदरी विलाप करती थी। हे वरानने! यह समुद्र का किनारा दिखाई देता है, जहाँ हम लोग इस पार आकर ठहरे थे। देखो, तुम्हारे लिए नल के द्वारा यह पुल बँधवाया गया था। हे वैदेहि! उस अक्षोभ्य वरुणालय सागर को देखो, जो अपार गर्जना करता है और शङ्ख तथा शुक्तियों (सीपों) से भरा हुआ है। हे मैथिलि! देखो यह हिरण्यनाभ सुवर्ण पर्वत है। हनुमान् के आराम करने के लिए यह समुद्र से निकला था। यह समुद्र के पेट में देख पड़ता है। यह सेना के

ठहरने का स्थान है। यहीं पर पुल बाँधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर कृपा की थी। यह समुद्र का घाट देखो। यह सेतुबन्ध नाम से प्रसिद्ध और तीनों लोकों से पूजित है। यह पवित्र और महापातकों का नाशक है। यहीं पर ये राक्षसराज विभीषण मुझसे आकर मिले थे। वह देखो, सुग्रीव की नगरी किष्किन्धा है, जिसमें चित्र विचित्र बाग़-बग़ीचे हैं। यहीं मैंने बाली को मारा था।

सीतादेवी किष्किन्धा नगरी को देखकर प्रसन्न हुईं। वे राम से प्रेम-युक्त वचन कहने लगीं कि "हे रघूत्तम! मैं चाहती हूँ कि सुग्रीव की प्यारी तारा आदि स्त्रियों के साथ तथा और और बानर-श्रेष्ठों की स्त्रियों के साथ मैं अयोध्या को चलूँ।" सीता की इच्छा से विमान ठहराया गया। सुग्रीव से रामचन्द्रजी बोले—"हे बानरों में श्रेष्ठ! तुम सब प्रधान वानरों से कह दो कि वे अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले आवें और तुम भी अपनी स्त्रियों को साथ लेकर अयोध्या चलो। हे सुग्रीव! इस काम में जल्दी करो; देर न होने पावे।" प्रभु की आज्ञा पाकर वानरराज दूसरे प्रधान बानरों के साथ अपने अन्तःपुर में गये और तारा से बोले—"हे प्रिये! तुम रामचन्द्र की आज्ञा से और सीता की प्रीति के लिए, दूसरी बानरियों को साथ ले, हमारे साथ जल्दी चलो। हम तुम्हें अयोध्या नगरी और महाराज दशरथ की सब रानियों को दिखा लावेंगे।" सुग्रीव की बात सुन कर सर्वाङ्गसुन्दरी तारा सब बानरों की स्त्रियों को बुलाकर कहने लगी—"सुग्रीव की यह इच्छा है कि मैं तुम सब के साथ अयोध्या को चलूँ। मुझे भी यह ख़ूब पसन्द है। वहाँ हम सब, पुरवासियों और देशवासियों के साथ राम का नगर में प्रवेश और दशरथ की स्त्रियों की विभूति देखेंगी।" तारा की आज्ञा पाकर वे सब अपने अपने भूषणों और वस्त्रों से सज धज कर आ गईं और विमान की प्रदक्षिणा कर सीता के दर्शन की इच्छा से झट विमान पर चढ़ गईं। उन सब को लेकर विमान फिर उड़ने लगा।

विमान जब ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचा तब रामचन्द्र बोले—"हे सीते! यह जो बिजली-सहित मेघ की तरह देख पड़ता है, यह ऋष्यमूक पर्वत है। यह काञ्चन आदि धातुओं से खचित है। मैं सुग्रीव से यहीं मिला था और यहीं मैंने बाली के मारने की प्रतिज्ञा की थी। यह देखो, कमलों के विचित्र वनों से भरी हुई पम्पा देख पड़ती है। यहाँ मैंने दुखी होकर तुम्हारे लिए विलाप किया था। इस पम्पा के किनारे मैंने धर्मचारिणी शबरी को देखा था, और यहाँ मैंने कबन्ध को मारा था। उसकी भुजायें योजन भर की थीं। हे सीते! जनस्थान में यह जो अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त बरगद का पेड़ दिखाई पड़ता है इस पर जटायु रहता था। हे विलासिनि! यहाँ तुम्हारे लिए युद्ध हुआ था। उसमें खर, दूषण और त्रिशिरा मेरे बाणों से मारे गये। तुम्हारे लिए यहाँ पक्षियों में श्रेष्ठ जटायु, रावण के हाथ से, मारा गया था। देखो, वह हम लोगों का आश्रम दिखाई देता है। वह चित्र-पर्णशाला देख पड़ती है। वहीं से तुमको रावण जबरदस्ती हर ले गया था। देखो, यह निर्मल जल वाली गोदावरी नदी दिखाई पड़ती है। केलों के वृक्षों से घिरा हुआ वह अगस्त्य मुनि का आश्रम है। वह महात्मा सुतीक्ष्ण का आश्रम है। यह शरभङ्ग का आश्रम देखो। यहीं इन्द्र दिखाई दिये थे।

ये वे तपस्वी दिखाई दे रहे हैं जिनमें सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी अत्रि मुनि कुलपति हैं। हे सीते! यहीं तुमने उस धर्मचारिणी तपस्विनी को देखा था और इसी जगह मैंने विराध को मारा था। हे सुतनु! यह पर्वतराज चित्रकूट दिखाई देता है। कैकेयी के पुत्र भरत, मुझे मनाने के लिए, यहीं आये थे। देखो, दूर से वह यमुना दिखाई देती है। उसके आस पास विचित्र वन हैं। वह देखो, भरद्वाज का आश्रम दिखाई देने लगा। वह त्रिपथ-गामिनी पवित्र गङ्गा तरह तरह के पक्षियों से सुशोभित और अनेक तरह के फूले हुए वृक्षों से मनोहर देख पड़ती है। आगे देखो, वह शृंगवेरपुर है। यहीं मेरा मित्र गुह रहता है। अब वह मेरे पिता की राजधानी अयोध्या दिखाई देने लगी। तुम यहाँ लौट कर आई हो, उसे प्रणाम करो।" अब वे सब वानर और विभीषण, बड़ी ख़ुशी से, उचक उचक कर अयोध्या नगरी को देखने लगे।

दोहा।

श्वेत हर्म्य-माला-रचित, हय-गज-पूर्ण विशाल।
सुठि कह्या सुरपुरी सम, सकल लख्यो तेहि काल॥

---

१२६ वाँ सर्ग।

रामचन्द्र का भरद्वाज के आश्रम में जाना।

वनवास के चौदह वर्ष बीत जाने पर, पंचमी के दिन, महाराज भरद्वाज के आश्रम में गये। वे मुनि को प्रणाम कर पूछने लगे—"भगवन्! क्या आपने अयोध्या के सुभिक्ष और आरोग्य का समाचार पाया है? प्रजा का पालन भरत अच्छी तरह से तो करते हैं? हमारी सब मातायें जीती हैं न?" रामचन्द्र जी के प्रश्न सुन कर मुनि हर्षित हुए। वे मुसकुरा कर बोले—हे राम! भरत तुम्हारी आज्ञा के वश में होकर, जटा रखाये हुए, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे तुम्हारी खड़ाउँओं की सेवा किया करते हैं। तुम्हारे घर में सब कुशल-मङ्गल है। हे रघुनन्दन! हमने आप को उस समय देखा था कि आप चीर-वस्त्र धारण किये हैं, महावन में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं, स्त्री साथ में है, और आप राज्य से अलग हैं; केवल धर्म में आप का चित्त लगा हुआ है, पैदल चल रहे हैं, सब चीज़ों को त्याग कर पिता के वचन पर आरूढ़ हैं, और सब भोगों से रहित हैं मानों स्वर्ग से च्युत देवता हों। आप की वह दशा देख कर हमारा मन बड़ा करुणा-युक्त हुआ था। हमने सोचा था कि ये कैकेयी के कहने से वन को जाते तो हैं, पर फल-मूल खाकर इतने दिन कैसे बितावेंगे। परन्तु इस समय तुमको कृतार्थ और मित्रों तथा बन्धुओं के साथ देखकर हमको बड़ी ख़ुशी हुई। यह जानकर हमें और भी आनन्द हुआ कि आप शत्रु को जीत आये हैं। हे राघव! हम तुम्हारा सुख और दुख जानते हैं। जब तुम जनस्थान में रहते थे तब तुम ब्राह्मणों के उपकार में दत्तचित्त और तपस्वियों की रक्षा में तत्पर थे। उस समय इस वैदेही को रावण हर ले गया था। मारीच का दर्शन, सीता का अपमान, कबन्ध का दर्शन, पम्पा के किनारे जाना, सुग्रीव से मैत्री, बाली का वध, सीता को खोजना, हनुमान् का पराक्रम, सीता का पता लगने पर नल का पुल बाँधना, वानर-यूथपतियों का लङ्का जलाना; पुत्र, भाई, मन्त्री, सेना और सवारियों-सहित बलगर्वी रावण का मारा जाना, उस देवकंटक के मारे जाने पर देवताओं का आना, और देवताओं के द्वारा तुमको वर

मिलना आदि सब समाचारों को हमने तपोबल से जान लिया था। हमारे शिष्य अयोध्या में जाया आया करते हैं। उनसे हमें वहाँ के समाचार मिलते रहते हैं। हे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ! हम भी तुमको वर देते हैं। आज हमारे सत्कार को स्वीकार करो। कल अयोध्या को जाना।

मुनि के ये वचन सुनकर महाराज ने आदर-पूर्वक उनका सत्कार स्वीकृत किया और उन्होंने यह वर माँगा कि, हे मुने! आप के वरदान से हम यह चाहते हैं कि यहाँ से लेकर अयोध्या तक अकाल में भी वृक्ष फलवान् रहा करें और सब में से मीठा मीठा रस बहने लगे। वे फल अमृत के समान स्वादु और सुगन्धित हों तथा अनेक तरह की चीजें पैदा करें।" राघव के मुँह से निकलते ही इसे मुनि महाराज ने स्वीकार कर लिया। उनके प्रताप से उस मार्ग के सब वृक्ष स्वर्ग के वृक्षों के समान बन गये। जिनमें फल नहीं लगे थे, वे फलवान् होगये; जिनमें फूल नहीं थे, वे फूलने लगे; जो सूखे हुए थे वे हरे हरे पत्तों और डालियों से सुशोभित हो गये और उनसे मीठा रस बहने लगा। वहाँ से लेकर तीन योजन तक चारों ओर यही चमत्कार हो गया।

दोहा।

हर्षित बानर यूथपति, दिव्य फलन कहँ देखि।
खाहिं अघाहिं प्रशंसहीं, स्वर्गीजन इव पेखि॥

---

१२७ वाँ सर्ग।

राघव के कहने से हनुमान् का भरत को संदेश देना।

अब अयोध्या नगरी को देख रामचन्द्रजी कुछ सोच विचार कर बानरों की ओर देखने लगे। फिर हनुमान् से बोले—हे बानरों में श्रेष्ठ! तुम जल्दी अयोध्या में जाकर देखो कि राजभवन के लोग कुशलपूर्वक तो हैं। शृंगवेरपुर में जाकर उस वनवासी गुह से मेरा कुशल-समाचार कहो। जब वह मुझको कुशलपूर्वक, आरोग्य और तापरहित सुनेगा तो बड़ा प्रसन्न होगा। क्योंकि वह मेरा मित्र आत्मा के तुल्य है। वह तुमको अयोध्या का मार्ग और भरत का सब समाचार बतला देगा। फिर तुम भरत के पास जाकर उनको मेरा कुशल-संवाद और स्त्री तथा लक्ष्मण-सहित मेरी कृतकार्यता सुना देना। रावण के द्वारा सीता का हरण, सुग्रीव की मैत्री, बाली का वध, मैथिली की खोज, तुम्हारे द्वारा उसका पता लगना, समुद्र लाँघ कर तुम्हारा पार होना, लङ्का में सीता का पता पाना, मेरा समुद्र-दर्शन, पुल का बाँधना, रावण का मारा जाना; इन्द्र, ब्रह्मा और वरुण का वरदान, महादेव की कृपा से पिता की भेंट और फिर मेरा आना आदि सब हाल भरत से कह देना। और यह भी कहना कि राक्षसराज तथा वानरराज की सहायता से हमने शत्रुओं को जीत कर सर्वोत्तम यश पाया है। मेरे महाबली मित्र भी साथ आये हैं। देखना कि इन बातों को सुनकर भरत की चेष्टा, आकार और कथन किस तरह का होता है। मेरे विषय में इन सब बातों पर ख़ूब ध्यान देना। वहाँ के सब समाचारों पर लक्ष्य करना और भरत की चेष्टाओं पर ख़ूब दृष्टि रखना। उनके मुँह की रङ्गत, दृष्टि और वाणी को ख़ूब पहचानना। क्योंकि इष्ट पदार्थों से अच्छी तरह भरा पूरा तथा हाथी, घोड़ों और रथों से सम्पन्न राज्य किस मनुष्य के मन को नहीं फेर सकता? बहुत दिनों तक राज्य करने से शायद

ख़ुद भरत ही राज्य के लोभी हो जायँ। यदि वेही राज्य चाहें तो चिन्ता ही क्या है। वे उसे ले लें और सारी पृथ्वी पर हुकूमत करें। हे कपे! उनकी बुद्धि और मन के अभिप्राय का पक्का निश्चय करके तुम जल्दी लौट आओ। हमारे दूर पहुँचने से पहले ही तुम आ जाओ।

प्रभु की आज्ञा पाकर वायु-पुत्र मनुष्य का रूप बना कर अयोध्या को बहुत जल्दी चले। उस समय हनुमान् ऐसे वेग से उड़े जैसे वेग से साँप पर गरुड़ झपटता है। वे वायु के मार्ग को लाँघ कर बड़े पक्षियों के उड़ने के मार्ग से गये। गङ्गा-यमुना के सङ्गम को लाँघ कर वे झट शृंगवेरपुर में गुह के पास पहुँच गये। वहाँ वे गुह से प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—"हे गुह! तुम्हारे मित्र सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र ने सीता और लक्ष्मण-सहित तुम्हारे पास कुशल-समाचार भेजा है। आज पञ्चमी की रात को भरद्वाजमुनि के प्रेम से वे आश्रम में रहेंगे और उनकी आज्ञा पाकर वहाँ से कल यहाँ आवेंगे। इसलिए तुम कल उनको देखोगे।" फिर तेजस्वी हनुमान् वहाँ से बहुत जल्दी उड़े; और मार्ग में परशुराम के तीर्थ को, वालुकिनी, वरूथी, और गोमती नदी को, देखते हुए तथा साखू के बड़े भयङ्कर वन को, कई हज़ार प्रजा से पूर्ण बस्तियों और बड़े समृद्ध राज्यों को देखते हुए बड़ी दूर जाकर नन्दिग्राम के पास पहुँचे। कपि ने देखा कि वहाँ तरह तरह के वृक्ष फूले हुए हैं, जो नन्दनवन और चैत्ररथ वन में देख पड़ते हैं। वहाँ के लोगों को उन्होंने स्त्रियों, पुत्रों और पौत्रों के साथ सुन्दर भूषणों से भूषित हो आनन्द करते देखा। फिर अयोध्या से एक कोस पर चीर और कृष्ण मृग-चर्म धारण किये भरत को देखा। दीन और दुबले भरतजी आश्रम में रहते थे; वे भाई के दुःख से पीड़ित, मलिन और फलमूलाहारी थे। वे दान्त, तपस्वी और धर्मचारी थे। वे ऊँची जटाएँ बाँधे और वल्कल-वसन पहने नियमपूर्वक ध्यानावस्थित रहते थे। वे ब्रह्मर्षि के समान तपस्वी थे। राघव की खड़ाऊँओं को आगे रख कर पृथ्वी का शासन करते, और चारों वर्णों की रक्षा में तत्पर थे। दीवान और शुद्ध पुरोहित उनके साथ रहते थे। भरतजी जोगिया कपड़े पहने हुए मुख्य सेनापतियों के साथ थे और वैसा ही वेष रखनेवाले परिजनों से सेवित थे। (आश्रित लोग नहीं चाहते थे कि मुनिवेषधारी राजा की, दूसरे प्रकार की पोशाक पहन कर, सेवा करें।) भरतजी देहधारी धर्म की तरह बड़े धर्मज्ञ थे। उन्हें देखते ही हनुमान् हाथ जोड़ कर बोले—हे देव! आप दिन-रात जिन दण्डकारण्यवासी और चीर जटाधारी के सोच में रहते हैं उन रामचन्द्र ने आपके लिए कुशल-समाचार भेजा है। मैं आपको यही प्रिय समाचार सुनाने के लिए आया हूँ। आप इस दारुण शोक को त्याग दीजिए। थोड़ी ही देर में आप अपने भाई से मिलेंगे। श्रीरामचन्द्रजी रावण को मार और सीता को पाकर समृद्धार्थ हो गये। वे अपने महाबली मित्रों के साथ, लक्ष्मण तथा वैदेही को संग लिये, आ रहे हैं। इन्द्राणी-सहित इन्द्र की नाईं शोभित महाराज अभी आकर आपसे मिलते हैं।

इस तरह कपि के मुँह से सुनते ही भरतजी मारे हर्ष के बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़े। फिर थोड़ी देर में सावधान होकर उन्होंने दम लिया। पहले तो उन्होंने घबराहट से लपक कर कपि को

गले से लगा लिया और अपने आनन्द के आँसुओं से उसके शरीर को सींच दिया। फिर कहने लगे—हे भाई! तुम देवता हो अथवा मनुष्य? तुमने बड़ी दया की जो यहाँ आये। हे सौम्य! इस आनन्द समाचार के सुनाने से मैं तुमको एक लाख गाय, सौ गाँव और सोलह कन्यायें देता हूँ। वे कन्याएँ कुण्डलों से भूषित, अच्छे आचरणवाली, और सोने के रङ्गवाली हैं। उनकी नाक अच्छी है, वे मनोहर जंघाओं से सुशोभित, चन्द्रमुखी, सम्पूर्ण भूषणों से भूषित तथा सम्पन्न और अच्छे कुल की हैं।

दोहा।

रघुपति कर आगमन सुनि, भरत हर्ष भरि पूर।
भइ दर्शन की लालसा, मिट्यो दुःख अति कूर॥

---

१२८ वाँ सर्ग।

हनुमान् का संक्षेप में प्रभु की सब कथा भरत से कहना।

भरत बोले—"अहो! वन में गये बहुत दिन बीत गये। अब मैं अपने नाथ का कीर्त्तन सुनता हूँ। देखो, संसार की यह प्रसिद्ध कहावत बहुत ठीक और कल्याण-दायिनी है कि जीते हुए मनुष्य को सौ वर्ष में भी आनन्द की प्राप्ति होती है। अच्छा, हे कपे! यह तो बतलाओ कि रामचन्द्र का बानरों के साथ सम्बन्ध कैसे हुआ? उनके साथ मेल किस जगह और किस मतलब से हुआ? मुझसे सब हाल ठीक ठीक कहो।" भरतजी के दिये हुए आसन पर हनुमान् बैठ गये और उनके पूछने पर वे प्रभु के वन-सम्बन्धी सब चरित सुनाने लगे—"यह तो आप जानते ही हैं कि आप की माता ने किस तरह वर माँग कर राम को वनवास दिया; पुत्र के शोक से महाराज दशरथ ने किस तरह प्राण त्याग दिया और दूतों ने नाना के घर से आप को किस तरह अयोध्या में पहुँचाया। आप ने यहाँ आकर राज्य नहीं चाहा। सद्धर्म-मार्ग के अनुसार राज्य-समर्पण के लिए आप भाई के पास चित्रकूट गये, परन्तु पिता के वचन पर स्थिर रहने के कारण उन्होंने न माना। उस समय आप उनकी खड़ाऊँ ले कर लौट आये। यहाँ तक का हाल तो आपको मालूम ही है। आप के लौट आने पर जो हाल हुआ उसे सुनो। आप के चले जाने पर उस वन के सब मृग, पक्षी व्याकुल से दिखाई देने लगे। वह वन महापीड़ित सा हो गया। फिर महाराज हाथियों के पैरों से खूँदे हुए और सिंह, व्याघ्र तथा मृगों से भरे हुए बड़े घोर दण्डकारण्य में गये। वहाँ तीनों के पास बड़े ज़ोर से गरजता हुआ विराध राक्षस आ पहुँचा। उसे हाथी की तरह चिल्लाते देख दोनों भाइयों ने उठा लिया और उसकी बाँहें ऊपर को तथा मुँह नीचे को करके गड्ढे में डाल दिया। यह भारी काम करके दोनों भाई शाम को शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में गये। जब शरभङ्ग स्वर्ग को सिधार गये तब महाराज सब मुनियों को प्रणाम कर जन-स्थान में गये। वहाँ राम के पास शूर्पणखा नामक राक्षसी आई। राम ने लक्ष्मण की ओर इशारा किया तो उन्होंने तलवार से उसकी नाक और कान काट लिये। अब उसकी ओर के चौदह हज़ार राक्षस इकट्ठे हो गये। तब अकेले राघव ने, दिन के चौथाई समय में ही, उन सब को नष्ट कर दिया। वे राक्षस बड़े बली, और महापराक्रमी थे। वे तपस्या में विघ्न करते रहते

थे और उसी दण्डकारण्य में रहते थे। रामचन्द्र ने उन सब को मार डाला। खर को मारा और दूषण को उससे भी पहले मारा। त्रिशिरा को सबके बाद मारा। वह राक्षसी इस तरह अपना अपमान देख रावण के पास जाकर रोने लगी। तब रावण का सेवक मारीच नामक राक्षस रत्नमय मृग बन कर सीता को लुभाने लगा। सीता ने प्रभु से कहा—"हे प्रभो! इस मृग को पकड़िए। यह हमारे आश्रम को सुशोभित करेगा।" इसलिए रामचन्द्रजी धनुष लेकर हरिण के पीछे दौड़े। वे उसे बाण से मारने लगे। इतने ही मे, रामचन्द्र के कुछ दूर जाने पर और वहाँ से लक्ष्मण के भी चले जाने पर, रावण वहाँ आया और आश्रम में घुस कर सीता को हर कर इस तरह ले जाने लगा जैसे आकाश में क्रूर ग्रह रोहिणी को हरता है। जटायु नामक गीध सीता को छुड़ाने के लिए गया पर उसको उसने मार गिराया। सीता को ले जाते हुए रावण को बड़े बड़े पर्वताकार बानरों ने देखा और बड़ा आश्चर्य किया। सीता को लिये हुए रावण बड़ी जल्दी चला जा रहा था। पुष्पक विमान पर चढ़ा हुआ वह बहुत जल्दी लंका में पहुँच गया। वहाँ सुवर्णभूषित एक बड़े राजभवन में मैथिली को ले जाकर समझाने और लुभाने लगा। परन्तु श्रीजानकी ने उसके सब वचनों को और उसे भी तृणवत् समझा। इसके बाद रावण ने उनको अशोक-वाटिका में बैठा दिया।

"अब इधर जब राघव मृग को मार कर लौटे और पिता दशरथ के बड़े प्यारे गृध्र को मरा हुआ देखा तब वे और लक्ष्मण सीता को ढूँढ़ने लगे। गोदावरी नदी के किनारे फूले हुए वनों में ढूँढ़ते ढूढ़ते कबन्ध नामक राक्षस मिला। उसके कहने से महाराज ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और सुग्रीव से मिले। वहाँ दोनों की मैत्री हो गई। सुग्रीव को उसके भाई बाली ने घर से निकाल दिया था। जब प्रभु और बानरराज में परस्पर बातें करते करते बड़ा प्रेम हो गया, तब रामचन्द्रजी ने उसे अपने बाहुबल से फिर राज्य दिला दिया। प्रभु ने विशालरूप महाबली बाली को मार कर सुग्रीव को सब बानरों का राजा बना दिया। सुग्रीव ने महारानी के खोजने की प्रतिज्ञा की और दश करोड़ बानर इधर उधर भेजे। उनमें से हम लोग विन्ध्याचल पर्वत पर ढूँढ़ने के लिए गये। ढूँढ़ते ढूँढ़ते बहुत समय बीत गया; पर सीता देवी का पता न लगा। उस समय हम सबको बड़ा शोक हुआ। फिर वहाँ गृध्रराज के भाई सम्पाती ने हम लोगों को बतलाया कि सीता रावण के घर में है। तब मैंने अपने दुःखित संगियों का दुःख दूर करने के लिए सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघा और लङ्का में जाकर अशोक वाटिका में सीता को देखा। वे वहाँ पीतकौशेय वस्त्र पहने, मलिन, आनन्द-रहित और दृढ़व्रत किये रहती थीं। मैं उनके पास गया और सब हाल ठीक ठीक पूछ कर उन्हें मैंने पहचान के लिए राम की दी हुई अँगूठी दी। फिर उनकी दी हुई मणि लेकर मैं, कृतार्थ हो, समुद्र के इस पार चला आया। वह मणि मैंने श्रीराघव को अर्पण कर दी। रामचन्द्रजी ने सीता का समाचार पाकर अपने जीवन की आशा समझी। यदि कोई रोगी मरण-अवस्था को पहुँच गया हो और उस दशा में उसे अमृत पीने को मिल जाय तो उस समय उसकी जैसी दशा हो, वही दशा उस समय राम की हुई। फिर प्रभु ने लङ्का का नाश करने के

लिए ऐसा प्रबन्ध किया जैसे प्रलय के समय में सब लोगों के नाश के लिए अग्नि तैयार होती है। उन्होंने नल के द्वारा समुद्र में पुल बँधवाया। उसी पुल के द्वारा बानरी सेना समुद्र के पार उतरी। फिर लङ्का में पहुँच कर नील ने प्रहस्त को, राघव ने कुम्भकर्ण को, लक्ष्मण ने रावण के पुत्र को, और खुद राम ने रावण को मारा। इसके बाद इन्द्र, यम, वरुण, महेश्वर, ब्रह्मा और दशरथ, ये सब आ कर प्रभु से मिले और वर दिया। ऋषि और देवर्षि लोग भी वहाँ आये और सब ने श्रीराघव को वर दिया। वर पाकर महाराज प्रीतिपूर्वक बानरों के साथ पुष्पक विमान पर चढ़ कर किष्किन्धा में आये। वहाँ से चल कर गङ्गा के किनारे मुनि के आश्रम में आगये। अब कल, पुष्य नक्षत्र के योग में, विघ्नबाधा-रहित रामचन्द्र को आप यहाँ देखेंगे।"

दोहा।

वायु-तनय के वचन सुनि, हर्ष न हृदय समात।
हाथ जोरि बोले भरत, भयो कृतारथ तात॥

---

१२६ वाँ सर्ग।

भरतमिलाप।

कपि की बातें सुन कर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि पवित्र रहने वाले मनुष्य नगर के देवताओं का शृङ्गार करें तथा मुख्य मुख्य स्थानों को सजावें। उन्हें सुगन्ध-मालाओं से भूषित करें और तरह तरह के बाजे वहाँ तैयार रक्खें। जो सूत पुरानी कथायें जानते तथा स्तुति करने और पुराणों में चतुर हैं और जो वैतालिक सबेरे गा बजा कर राजाओं को जगाते हैं वे रामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिए नगर से बाहर चलें। तरह तरह के बाजे बजाने में चतुर बजन्त्री लोग, वेश्याएँ, राज-माताएँ, मन्त्री लोग, सैनिक, सेनासमूह, स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, प्रधान वैश्य, मुखिया और कुटुम्बी—इन सब से कह दो कि रामचन्द्रजी का चन्द्रमुख देखने के लिए चलें। भरत की आज्ञा पाते ही शत्रुघ्न ने हज़ारों नौकरों को आज्ञा दी—ऊँची-नीची, और टेढ़ी-मेढ़ी जगह को सम कर दो और नन्दिग्राम से आगे की ज़मीन को ठंडे जल से सींच दो।

आज्ञा होते ही सब लोग ज़मीन पर फूल और लावा बिछाने लगे। पताकाओं से गलियाँ सजाई जाने लगीं। सबेरा होते ही फूलों और मोतियों की मालाओं से तथा सोने-चाँदी से मकानों की शोभा की जाने लगी। सब राजमार्गों में बिना ही धक्के के लोग पंक्ति बाँध बाँध कर भर गये। अब राजा की आज्ञा से बड़े प्रसन्न धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र, ये मन्त्री ध्वजाओं से अलंकृत और हज़ारों मस्त हाथियों को साथ लेकर निकले। इनके सिवा और लोग भी सोने के हौदोंवाली गम्भीर-गामिनी हथिनियों को सजा कर ले चले। बड़े बड़े महारथी लोग घोड़े और रथ सजा कर ले गये। हज़ारों घोड़ों पर सवार हो और अपने अपने हाथों में शक्ति, ऋष्टि, पाश, ध्वजा और पताकायें लिये हुए वीर लोग चले। उनके साथ हज़ारों पैदल मनुष्य थे। महाराज दशरथ की सब रानियाँ कौशल्या और सुमित्रा को आगे करके सवारियों पर चढ़कर चलीं। इसके बाद भरतजी मुख्य ब्राह्मणों, प्रधान वैश्यों और नगर-वासी मुख्य महाजनों को साथ ले और हाथ में माला तथा

मोदक (लड्डू) लिये मन्त्रियों से घिरे हुए आश्रम से चले। भरतजी के साथ शङ्ख और तुरहियाँ बजती जाती थीं; और बन्दीगण स्तुति पढ़ते जाते थे। भरतजी उपवास के कारण कृश और दीन थे। वे चीर और काला मृग-चर्म पहने थे। भाई का आगमन सुनकर वे बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने रामचन्द्रजी की खड़ाऊँओं को सिर पर रख लिया। सफ़ेद मालाओं से शोभित सफ़ेद छाता और राजा के योग्य सोने की मूँठवाले सफ़ेद चँवर साथ में लिये। मन्त्रियों को साथ ले वे अगवानी करने के लिए चले। उस समय घोड़ों की टापों के शब्दों से, रथों की गड़गड़ाहट से और शङ्ख तथा दुन्दुभी की ध्वनि से पृथ्वी काँप गई। हाथियों की चिग्घारों और शङ्खों तथा दुन्दुभियों के शब्दों से कोलाहल मचाते हुए अयोध्या के सब लोग नन्दिग्राम में पहुँच गये। जब तक यहाँ सब साज बाज इकट्ठा हुआ तब तक वायुपुत्र हनुमान्जी भरत का सब समाचार रामचन्द्रजी को सुना कर फिर भरजी के पास आ गये। उनको देख कर भरतजी ने कहा—"क्यों भाई! बानरों के चित्त बड़े चञ्चल होते हैं। कहीं तुम अपनी स्वाभाविक चञ्चलता से तो यह खबर मुझे सुनाने नहीं आये हो? क्योंकि मैं अभी तक न श्रीरामचन्द्रजी को देखता हूँ और न उन कामरूप बानरों को ही।" यह सुनकर कपि बोले—महाराज! सुनिए। भरद्वाज मुनि ने महाराज का सत्कार किया है। उनकी कृपा से मार्ग के सब वृक्ष सदा फल देनेवाले, फूले हुए, मधुर रस बहाने वाले और मस्त भौंरों से गुञ्जायमान हो रहे हैं। वहीं खाने पीने में देर हुई है। मुनि को इस तरह का सामर्थ्य इन्द्र के वरदान से प्राप्त है। आप चिन्ता न कीजिए। यह लीजिए, प्रसन्न हुए बानरों का शब्द सुनाई देने लगा। मैं समझता हूँ, वह बानरी सेना गोमती नदी के पार उतर रही है। अब आप सालूवन की ओर दृष्टि कीजिए। देखिए, कैसी धूल उठ रही है। मैं समझता हूँ कि बानर उस वन में वृक्षों को हिला रहे हैं। वह देखिए, आकाश में चन्द्र के समान विमान दिखाई देता है। इस सुन्दर पुष्पक विमान को ब्रह्मा ने अपने मन से रचा था। महाराज ने रावण को मार कर इसे पाया है। देखिए, यह दोपहर के सूर्य की तरह चमक रहा है। इस पर रामचन्द्रजी सवार हैं। कुवेर की कृपा से यह मन की तरह जल्दी उड़ता है। इस पर राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव और विभीषण सवार हैं।

इस तरह सुनते और 'रामचन्द्र' शब्द कानों में पड़ते ही स्त्री, बालक, युवा और वृद्धों का ऐसा आनन्द शब्द हुआ कि सम्पूर्ण आकाश भर गया। सब लोग रथों, हाथियों और घोड़ों से उतर उतर कर ज़मीन पर खड़े हो गये। वे सब विमान पर श्री राघव को ऐसे देखने लगे जैसे कोई चन्द्रमा को देखता है। भरतजी विमान की ओर मुँह किये, हाथ जोड़े, आनन्द से स्वागत-पूर्वक अर्घ्य और पाद्यार्घ्य से रामचन्द्रजी की पूजा करने लगे। उस समय विमान पर बड़े नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्र ऐसे मालूम होते थे मानों देवराज इन्द्र हों। विमान पर बैठे हुए अपने भाई को देख कर भरतजी ने बड़ी नम्रता से ऐसे प्रणाम किया जैसे कोई मेरु पर स्थित सूर्य को प्रणाम करता है। इसके बाद राम की आज्ञा से वह हंस-भूषित विमान ज़मीन पर उतर पड़ा। फिर प्रभु ने भरत को उस पर बैठा लिया। तब भरत ने प्रभु को फिर प्रणाम किया। उस समय
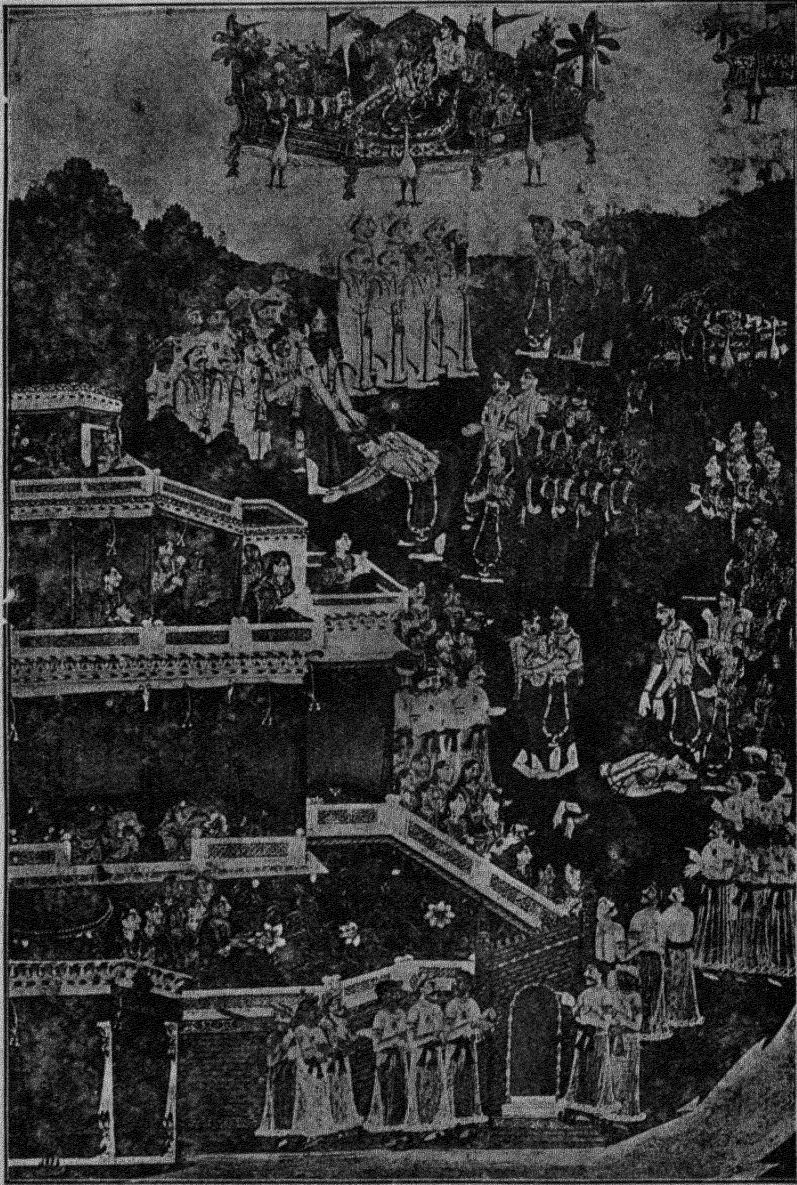
राम-प्रत्यागमन !

रामचन्द्र ने बहुत दिन के बाद मिलनेवाले भरत को गोद में उठा कर गले से लगा लिया। फिर भरत ने अपना नाम सुनाकर लक्ष्मण और वैदेही को प्रणाम किया। इसके बाद भरतजी सुग्रीव, जाम्बवान, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनस इन सबको गले से लगाकर मिले। ये सब बानर कामरूपी तो थे ही। अतः उस समय मनुष्य-रूप धारण कर वे बड़े हर्ष से भरत का कुशल-समाचार पूछने लगे। फिर भरतजी सुग्रीव को गले से लगाकर बोले—"हे सुग्रीव! हम चार भाइयों के तुम पाँचवें भाई हो। क्योंकि सौहृद से मित्र होता है और अपकार शत्रु का लक्षण है।" इसके बाद भरतजी विभीषण से बोले—"हे भाई! बड़े आनन्द की बात है कि तुम्हारी सहायता से इतना बड़ा दुष्कर काम किया गया।" अब शत्रुघ्न ने दोनों भाइयों को प्रणाम कर सीता के चरण छुए।

रामचन्द्रजी ने वर्णहीन और शोककर्षित माता कौशल्या के चरणों को प्रणाम किया और उनके मन को हर्षित किया। तदनन्तर सुमित्रा और कैकेयी को प्रणाम कर प्रभु और और माताओं तथा पुरोहित को प्रणाम करने के लिए गये। अब सब नगरवासी हाथ जोड़ कर श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"हे कौशल्यानन्दवर्धन, हे महाबाहो रामचन्द्र! आपका स्वागत हो।" उस समय नगरवासियों की अञ्जलियाँ फूले हुए कमलों की भाँति दिखाई पड़ती थीं। जब नगरवासियों के अभिवादन को रामचन्द्रजी ग्रहण कर चुके तब भरतजी ने अपने दोनों हाथों से महाराज की खड़ाऊँओं को उनके चरणों में पहना दिया और हाथ जोड़ कर कहा—"यह राज्य, जो आपने इतने दिनों तक मेरे पास धरोहर रक्खा था वह मैं आपके अधीन करता हूँ। आज मेरा जन्म कृतार्थ और मनोरथ पूरा हुआ। क्योंकि आज मैं आप को अयोध्या में लौट आया देखता हूँ। अब आप कोश, भाण्डार, घर और सेना को देखिए। आपके तेज से मैंने सब दस गुना कर रक्खा है।" भ्रातृवत्सल भरत की ये बातें सुनकर बानरों की और विभीषण की आँखों से आँसू बहने लगे। फिर श्रीरामचन्द्रजी भरत को गोद में ले सेना-सहित विमान पर चढ़ कर भरत के आश्रम को चले। वहाँ पहुँच कर महाराज विमान से उतर पड़े। वे विमान से बोले—"मेरी आज्ञा है कि तुम कुवेर के पास चले जाओ। तुम उन्हीं की सवारी में रहो।" राम की आज्ञा पाते ही वह विमान उत्तर दिशा की ओर कुवेर की राजधानी में चला गया। जिस पुष्पक विमान को राक्षस जीत कर लाया था वह रामचन्द्र जी की आज्ञा से कुवेर को फिर मिल गया। इसके बाद महाराज ने अपने मित्र पुरोहित के चरणों में प्रणाम किया तथा उनको एक आसन पर बैठा कर आप भी पास ही दूसरे आसन पर बैठ गये, मानों वृहस्पति के साथ इन्द्र बैठे हों।

---

१३० वाँ सर्ग।

रामराज्याभिषेक।

अब भरतजी हाथ जोड़ कर रामचन्द्रजी से बोले—महाराज! मेरी माता ने वरदान में पाया हुआ राज्य मुझे सौंपा था। अब वही राज्य मैं फिर आप को वैसेही देता हूँ जिस तरह आपने मुझे दिया था।

जिस तरह अकेले ही ढोने में समर्थ महाबली बैल के भार को छोटी घोड़ी नहीं ढो सकती उसी तरह मैं इस राज्य के भार को सम्हालने में उत्साह-हीन हो रहा हूँ। जिस तरह जल के वेग से टूटे हुए पुल का बाँध बाँधना कठिन है उसी तरह चारों ओर से खुले हुए राज्य-रूप छिद्र को रोक रखना मेरे लिए बड़ा कठिन है। हे वीर! आपकी गति का अनुसरण करना तो बड़ा ही कठिन है। इसका मैं वैसा ही उत्साह नहीं कर सकता जिस तरह घोड़े की चाल का गदहा और हंस की गति का कौआ अनुसरण नहीं कर सकता। जैसे घर की फुलवाड़ी में कोई वृक्ष लगाया जावे और वह समय पाकर ख़ूब ऊँचा तथा शाखा-प्रशाखाओं से युक्त तो हो जावे पर फूल लग कर झड़ पड़ें, फल न लगें, तो जिस काम के लिए वह लगाया गया था वह काम तो हुआ ही नहीं। यह मैंने एक दृष्टान्त के तौर पर कहा है। इसका मतलब आप समझ सकते हैं। इसलिए हे नरेन्द्र! आप सेवकों पर शासन कीजिए। यह संसार आप को अभिषिक्त और दोपहर के सूर्य की नाईं तपता हुआ देखे। नगाड़ों पर डंका पड़ने के शब्द काञ्ची तथा नूपुरों की झनकारों और मधुर गाने के शब्दों के साथ आप जागिए और सोइए। जब तक सूर्य-मण्डल घूमता रहे और यह पृथ्वी स्थिर रहे, तब तक आप इस जगत् के स्वामी बन कर रहिए।

महाराज ने उनका कहना मानकर सब स्वीकार किया और अच्छे आसन पर बैठ गये। फिर शत्रुघ्न के कहने से बड़े चतुर, कोमल तथा हलके हाथों वाले और जल्दी बाल बनानेवाले नाई रामचन्द्र के समीप बैठ गये। पहिले भरतजीने स्नान किया फिर लक्ष्मण ने, उनके बाद वानरेन्द्र सुग्रीव ने फिर राक्षसराज विभीषण ने स्नान किया। सब से पीछे रामचन्द्र ने अपनी जटायें साफ़ कराके स्नान किया। वे चित्र-विचित्र माला पहने, सुगन्ध द्रव्य लगाये और बड़े क़ीमती कपड़ों से भूषित हो कान्ति से प्रज्वलित हुए। जो भूषण और अलंकार बाक़ी रह गये थे सो शत्रुघ्न ने ठीक करवा दिये। महाराज का, लक्ष्मण का और सीता के अंगों का विशेष अलंकार महाराज दशरथ की सब रानियों ने किया। फिर वानरियों का प्रसाधन (विशेष अलंकार) महारानी कौशल्या ने बड़े हर्ष-पूर्वक अपने हाथों से किया। इसके बाद शत्रुघ्न की आज्ञा से सुमन्त्र एक मनोहर रथ सजा कर ले आये। सूर्य और अग्नि के तुल्य उस अच्छे रथ पर महाबाहु रामचन्द्रजी सवार हुए। नहा धोकर अच्छे कपड़े पहने हुए और कुण्डलों से भूषित सुग्रीव तथा हनुमान्, एवं सब भूषणों से भूषित मनोहर कुण्डल पहने हुए सुग्रीव की स्त्रियाँ और सीताजी बड़ी उत्कण्ठा से नगर देखने के लिए चलीं। इधर अयोध्या में राजा दशरथ के मन्त्री लोग पुरोहित के साथ विचार करने लगे और अशोक, विजय तथा सिद्धार्थ, तीनों रामचन्द्रजी की वृद्धि (अभिषेक) के लिए और नगर की श्रीवृद्धि के लिए आपस में सलाह करने लगे। सब की यही राय हुई कि मङ्गलपूर्वक रामचन्द्र के अभिषेक के लिए सब चीज़ें इकट्ठी की जायँ। इस तरह विचार करके वहाँ से सब रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए निकले।

इन्द्र की नाईं रथ पर सवार होकर महाराज नगर देखने के लिए चले। भरत ने उस रथ के घोड़ों की रास पकड़ी, और शत्रुघ्न ने छाता लिया; एक

राम-तिलक ।

चमर लक्ष्मण और दूसरा चमर राक्षस-राज विभीषण महाराज के सिर पर डुलाते जाते थे। उस समय आकाश में ऋषियों का समूह, देवता और मरुद्गण राम की स्तुति कर रहे थे। उनकी बड़ी मधुर ध्वनि सुनाई देती थी। शत्रुञ्जय नामक पर्वताकार गजेन्द्र पर सुग्रीव सवार थे। बाक़ी बानर मनुष्य का रूप बना, नौ हज़ार हाथियों पर सवार थे। सब भूषणों से भूषित वे बड़े अच्छे लगते थे। अटारियों की मालाओं से सुशोभित उस नगरी में महाराज रामचन्द्र जी शङ्ख और तुरही के शब्दों सहित गये। नगर-वासी खड़े हो हो कर उनकी छबि देखने लगे। वे उनका जयजयकार मनाते और महाराज से अनुमोदन (प्रणाम आदि) पाते हुए पीछे पीछे चलने लगे। उस समय मन्त्री, ब्राह्मण और प्रजा से घिरे हुए महाराज ऐसे शोभते थे जैसे नक्षत्रों से वेष्टित चन्द्रमा शोभता है। महाराज के आगे आगे नगाड़े बजते, ताल और स्वस्तिक नामक बाजे बजते जाते थे और हर्ष से अच्छे अच्छे मङ्गल-पाठ सुनाते हुए गवैये चले जाते थे। अक्षत, सोना, गाय और कन्या लिये ब्राह्मण और लड्डू हाथ में लिये अनेक मनुष्य प्रभु के आगे आगे जा रहे थे। इसके बाद श्रीरघुनन्दन ने मन्त्रियों से सुग्रीव की मैत्री का, हनुमान् के प्रभाव का और बानरों के पुरुषार्थ का वर्णन किया। उसे सुन कर अयोध्यावासी बड़े चकित हुए कि इस तरह की राक्षसी सेना पर बानरों ने ऐसा पराक्रम किया! अब महाराज हृष्ट पुष्ट मनुष्यों से भरी हुई अयोध्यापुरी में गये। पुरवासियों के घर पताकाओं से सजाये हुए थे। अब महाराज इक्ष्वाकुवंशवालों के द्वारा सदा से सेवित, अपने पिता के महल में पहुँचे। पहले तो राघवजी पिता के महल में सुग्रीव आदि को लिवा गये। फिर कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी को प्रणाम कर भरत से मधुरता-पूर्वक कहने लगे—"हे भरत! वह मेरा भवन सब से श्रेष्ठ है। उसमें अशोक बाटिका लगी हुई है। और वह मोती तथा पन्ने आदि से खचित और बहुत बड़ा है। वहाँ सुग्रीव को ठहराओ!" महाराज के इतना कहते ही भरतजी सुग्रीव का हाथ पकड कर उस भवन में ले गये। फिर शत्रुघ्न की आज्ञा से नौकर लोग तेल के दीपक, पलँग और बिछौने लेकर वहाँ पहुँचे। भरत ने सुग्रीव से कहा कि श्रीरामचन्द्र के अभिषेक के लिए दूतों को आज्ञा दीजिए। तब सुग्रीव ने कपि वीरों को बहुत जल्दी आज्ञा दी कि, इन चारों घड़ों को चारों समुद्रों के जल से भर कर कल सबेरे यहाँ ले आओ।

राजा की आज्ञा पाकर जाम्बवान्, हनुमान, वेगदर्शी और ऋषभ ये चारों घड़ों को लेकर गरुड़ की तरह आकाश-मार्ग से उड़ कर गये; और झटपट समुद्र का जल भर लाये और राजधानी अयोध्या में रख कर बैठ गये। इसके बाद और और बानर भी पाँच सौ नदियों का जल घड़ों में भर लाये। सुषेण पूर्व समुद्र से सर्व-रत्नभूषित कलश भर लाये। ऋषभ दक्षिण सागर से लाल चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित चीज़ों से सुगन्धित सुवर्ण घट को; गवय पश्चिम समुद्र से और उत्तर समुद्र से हनुमान् जलपूर्ण घड़ा भर लाये। अब मन्त्रियों के साथ शत्रुघ्न ने उन घड़ों को देखकर पुरोहित और सुहृदों से रामचन्द्रजी के अभिषेक के लिए निवेदन किया। तदनन्तर वृद्ध वशिष्ठ मुनि ने ब्राह्मणों को साथ ले कर सीता-सहित रामचन्द्र को रत्नों से बनी हुई चौकी पर बैठाया। जिस प्रकार आठों वसुओं ने

इन्द्र का अभिषेक किया था उसी तरह उस समय वशिष्ठ, विजय, जाबलि, काश्यप, कात्यायन, गौतम और वामदेव, ये सब मिल कर महाराज का अभिषेक करने लगे। अभिषेक इस क्रम से हुआ कि पहले तो ऋत्विक् ब्राह्मणों ने, फिर षोडश कन्याओं ने, सब मन्त्रियों और योद्धाओं ने, तदनन्तर नगर के रहनेवाले बड़े बड़े व्यापारियों ने बड़े हर्ष से महाराज का अभिषेक किया। इसके बाद सब ओषधियों के रसों से आकाशचारी देवताओं ने, फिर चारों लोकपालों ने, तदनन्तर इकट्ठे होकर सब देवों ने महाराज को स्नान करवाया। ब्रह्मा ने रत्नों से भूषित एक किरीट बनाया था। उसको महाराज मनु ने और उनके पश्चात् उनके वंश के सब राजाओं ने शुभमुहूर्त्त में धारण किया था। वह सोने का था। वह बड़े मूल्यवान् पदार्थों से खचित और तरह तरह के रत्नों से अलंकृत था। उस सभा में तरह तरह के रत्नों से बने हुए सिंहासन पर श्रीरघुनन्दन को बैठाकर वशिष्ठजी ने वह मुकुट महाराज के मस्तक पर रख दिया। इसके बाद ऋत्विजों ने श्रीरघुपति को अनेक तरह के भूषण पहनाये। महाराज के सिर पर शत्रुघ्न ने सफ़ेद छाता लगाया। एक सफ़ेद चँवर सुग्रीव ने और दूसरा चन्द्रप्रकाश चँवर विभीषण ने लिया। अब इन्द्र की आज्ञा से वायु ने बड़े देदीप्यमान तथा सौ कमलों से बनी हुई काञ्चनी माला ला कर रामचन्द्र को अर्पण की। उन्होंने सब रत्नों और मणियों से शोभायमान एक हार भी महाराज को दिया। उस आनन्द के उत्सव में देवता और गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सरायें नाचने लगीं। उस समय पृथ्वी अन्न से परिपूर्ण, वृक्ष फलों से लदे हुए और फूल गन्धयुक्त देख पड़ते थे। एक लाख घोड़े, एक लाख नई ब्यानी हुई गायें और सौ बैल महाराज ने ब्राह्मणों को दिये। फिर तीस करोड़ सोने के मुद्रा, तरह तरह के भूषण, और अनेक प्रकार के मूल्यवान् कपड़े ब्राह्मणों को दिये। इसके बाद सूर्य की किरणों की नाईं चमकीली, सोने की बनी हुई, और मणियों से खचित दिव्य माला रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को दी। पन्ने से खचित और चंद्रमा के समान प्रकाशमान् बिजायठ अङ्गद को दिये। अच्छे से अच्छा मणियोंवाला मुक्ताहार महाराज ने श्री जानकीजी को दिया। सीता देवी को दो निर्मल और दिव्य वस्त्र और मिले। इसके बाद महारानी अपने कण्ठ का हार उतार कर सब बानरों की तथा पति की ओर बार बार देखने लगीं। तब प्रभु ने उन के अभिप्राय को समझ कर कहा—"हे भामिनि! तुम जिस पर प्रसन्न हो उसे यह दे दो।" तब वैदेही ने वह हार उन हनुमान् को दे दिया, जिनमें तेज, धैर्य, यश, चातुर्य, सामर्थ्य, नम्रता, नीति, बुद्धि, पौरुष और विक्रम, सदा निवास करते हैं। चन्द्रमा की किरणों से चमकते हुए सफ़ेद मेघों के द्वारा जैसे पर्वत शोभित होता है उसी तरह हनुमान्‌जी उस समय उस हार से सुशोभित हुए। वहाँ जितने वृद्ध बानर और सेनापति थे उन सबका वस्त्रों और भूषणों से यथोचित सत्कार किया गया। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान् तथा और और भी जो ख़ास ख़ास बानर थे उन सब के मनोरथों को सरल कर्मचारी श्रीरामचन्द्रजी ने पूर्ण कर दिया। उन्हें बहुत से रत्नों के द्वारा सन्तुष्ट कर दिया। फिर वे सब अपने अपने घर जाने के लिए तैयार हुए। तदनन्तर प्रभु ने द्विविद, मयन्द और नील को भी

इच्छानुसार कृतार्थ किया। इस तरह श्रीराज-राजेश्वर महाराज का राज्याभिषेक देखकर बानरों ने किष्किन्धा का रास्ता लिया। श्रीराम से आदर पा कर सुग्रीव भी वहीं को पधारे। कुल और धन की प्राप्ति से प्रसन्न होकर विभीषण भी अपने साथी राक्षसों को संग लेकर लंका को गये और वहाँ निष्कण्टक राज्य करने लगे। श्रीरघुकुल के चन्द्रमा राम बड़े आनन्द से अपने राज्य पर आरूढ़ हुए और लक्ष्मण से कहने लगे—"हे धर्मज्ञ! आओ, तुम मेरे साथ इस पृथ्वी का शासन करो, जिस के अधिष्ठाता हमारे पूर्वज राजा लोग होते आये हैं। जिस तरह हमारे पितरों ने अपने बड़ों के पास यौवराज्य स्वीकार किया था उसी तरह युवराज होकर तुम भी राजकाज करने में सहायता करो।" श्रीराम ने सौमित्रि से बहुत बहुत कहा परन्तु उन्होंने यह काम स्वीकार न किया। तब महाराज ने भरत को यौवराज्य पर बैठाया। राज्य पाने के बाद राघव ने पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजिमेध तथा और और भी अनेक तरह के यज्ञ अनेक बार किये। राज्य के दस हज़ार वर्ष के समय में महाराज ने दस अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें अच्छे अच्छे घोड़े और बहुत सी दक्षिणायें दीं।

इस तरह आजानुबाहु (घुटनों तक लम्बी भुजाओंवाले) और विशालवक्षा (बड़ी छातीवाले) श्रीरामचन्द्रजी राज्य का शासन करने लगे। उन्होंने अनेक तरह के यज्ञों से देवताओं को सन्तुष्ट किया। प्रभु के राज्य में न विधवाओं का विलाप सुनने में आया, न साँप से किसी ने भय पाया, और न कोई व्याधि से पीड़ित देख पड़ा। चोर तो राज्य में थे ही नहीं, अनर्थ के पास तक कोई न फटका और वृद्धों को बालकों की प्रेत-क्रिया नहीं करनी पड़ी। सब लोग आनन्दित, धर्म में तत्पर और रामचन्द्र के दर्शन में उत्साहित रहते थे। परस्पर कभी किसी का अनिष्ट नहीं करते थे। उस राज्य में हज़ार वर्ष से कम किसी की उम्र न देख पड़ी। लोग हज़ार हज़ार पुत्र वाले (अर्थात् ख़ूब सन्तान वाले) होते और रोग-शोक-रहित देख पड़ते थे। उस समय के वृक्ष सदा फल मूल और फूलों से लदे रहते थे। मेघ समय पर वर्षा करता और हवा अत्यन्त सुख देनेवाली चलती थी। सब लोग अपने अपने काम करते और अपने ही कामों से सन्तुष्ट रहते थे। सब प्रजा धर्म में तत्पर और झूठ से दूर रहती थी, सब अच्छे चिह्न रखती और धर्म के काम में उत्साही रहती थी। इस तरह महाराज रामचन्द्रजी ने सुख-पूर्वक दस हज़ार वर्ष तक राज्य किया।

भगवान् वाल्मीकि मुनि ने इस आदि काव्य का वर्णन अपने मुँह से किया है। यह धर्म का, यश का, आयुर्बल का और राजाओं को विजय का देनेवाला है। जो मनुष्य इसे सुनते हैं वे पाप से छूट जाते हैं। जो पुत्र की इच्छा करता है उसे पुत्र और जो धन की इच्छा करता है उसे धन मिल जाता है। रामाभिषेक सुनने से राजा भूमण्डल को जीत कर शत्रुओं पर अधिष्ठाता होता है। जिस तरह राम से कौशल्या, लक्ष्मण से सुमित्रा और भरत से कैकेयी जीवत्पुत्रा थीं उसी तरह इस काव्य के सुनने से स्त्रियाँ जीवत्पुत्रा होती हैं। उनके पुत्र जीते रहते हैं। उन्हें बड़ी आयु मिलती है। राम के विजय-काव्य को जो श्रद्धा से, क्रोधरहित होकर, सुनते हैं वे बड़ी बड़ी कठिनाइयों को पार कर लेते हैं; उनके

ऊपर चाहे जैसी विपद आ जाय तो भी छाया की नाईं, बिना कष्ट दिये, उन पर से वह निकल जाती है। यदि कोई परदेश में हो तो वह फिर आकर अपने बन्धु-बान्धवों से मिलता है और उनके साथ आनन्द करता है। श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से इसके सुननेवाले मनोवाञ्छित वर पाते हैं और उनसे देवता प्रसन्न रहते हैं। जिनके घर में विघ्न करनेवाले देवता होते हैं वे भी इसके सुनने से शान्त हो जाते हैं। राजा सुने तो विजयी हो, प्रजा सुने तो कुशली हो, और स्त्री यदि रजोधर्म के बाद शुद्ध होकर सुने तो उत्तम पुत्र जने। इस प्राचीन इतिहास को पूजने और पढ़ने से मनुष्य सब पापों से छूट कर बड़ी आयु पाता है। क्षत्रिय लोग इस इतिहास को नम्रता और प्रणामपूर्वक ब्राह्मणों के मुँह से सुनें तो इसके द्वारा उन्हें ऐश्वर्य और पुत्र का लाभ होगा। सम्पूर्ण रामायण के सुनने और पढ़नेवालों पर रामचन्द्रजी सदा सन्तुष्ट होते हैं। उनके सन्तुष्ट होने से बड़ा लाभ है क्योंकि वे सनातन, विष्णु, आदिदेव, हरि और साक्षात् नारायण हैं। हे मनुष्यो ! इस प्राचीन इतिहास को अच्छी तरह श्रद्धापूर्वक वर्णन करो जिससे तुम्हारा मङ्गल हो और विष्णु का बल बढ़े। इसके ग्रहण और श्रवण से देवगण सन्तुष्ट होते और पितर आनन्दित होते हैं। रामचन्द्र की इस संहिता को जो लोग लिखते हैं वे स्वर्ग पाते हैं। जो इसे सुनता है उसे कुटुम्ब की प्राप्ति होती है, उसके यहाँ धन-धान्य बढ़ता है; उसे उत्कृष्ट तरुणी और उत्तम सुख प्राप्त होता है। इस भूतल पर उसकी अर्थसिद्धि होती है। इसलिए हे भाइयो ! आयुष्यकारी, आरोग्यकारी, यशदायक, सुबुद्धिदायक, मङ्गलरूप, वीर्यकारक और भाइयों से प्रीति करनेवाले इस आख्यान को समृद्धि चाहनेवाले सज्जन अवश्य श्रवण करें।

छप्पय।

उद्यत विमल प्रताप रजनिचर-यूथ-तापकर।
लोकोत्तर तूणीर दिव्य सायक सुचाप कर ॥
देव विप्र गोपाल भक्त हित चाहत सब विधि।
भाव परीक्षक नाथ महाकरुणा-वारानिधि ॥
भूभार-हरण हित विविध तनु धरत करत लीला सुभग।
तेहि नमत नम्र गोपाल नित, छाँड़ि सकल जंजाल मग ॥

तदनुचरणधर्मा तत्प्रसत्यर्थकर्मा,
तदनुवदनशर्मा चैष गोपालशर्मा।
प्रणतशरणमाद्यं वेदवादैर्निगाद्यं,
मनुजतनुमनीशं नौति रामाख्यमीशम् ॥
अद्भुतरौद्रभयानककरुणवीभत्सका रसाः पञ्च।
वीरस्याङ्गानि बुधैर्लक्ष्यन्तां युद्धकाण्डेऽत्र ॥
अद्भुतो युद्धकाण्डोऽयं दृश्यो गोपालशर्मणा।
श्रमेणानूदितो भूयात्तुष्ट्यै रामजगत्पतेः* ॥

* यह युद्धकाण्ड बड़ा अद्भुत और देखने योग्य है। पं० गोपाल शर्मा ने बड़े परिश्रम से इसका हिन्दी-अनुवाद किया है। यह जगत्पति रामचन्द्रजी को सन्तुष्ट करनेवाला हो।

श्रीरामचन्द्राय नमः।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण।

(हिन्दीभाषानुवाद)
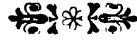
उत्तरकाण्ड।

भाषान्तरकार-कृत मङ्गलाचरण।

श्लोकः

श्रीमच्चन्द्रनिभा विभाति विमला कीर्तिस्तु यस्य प्रभो-
येर्यो लोकान् सुखिनो व्यधात् खलु वधाद्रक्षोरस्य देवद्विषः;
पित्र्यं राज्यमुपास्य यश्चिरतरं कालं स्वधिष्ण्यं परम्
प्रागात्स प्रणतार्तिनाशनपरो रामोऽस्तु नः श्रेयसे॥ १॥

षट्पद-छन्दः

जय जय सीतानाथ निजेच्छातस्तनुधारिन्।
नट इव रचयसि चरितमहो मानवानुकारिन्॥
प्रणतप्रिय प्रीयसे शुद्धभक्त्या भक्तानाम्।
क्षमसे सकलागांसि तवाङ्घ्र्योरनुरक्तानाम्॥
गोपाल एष शिरसा नमति विदितहृदय जगतां हरे।
तापं त्रिविधं हर हर विभो सर्वमस्ति भवतः करे॥ २॥

पहला सर्ग।

राक्षसों के मारने के लिए ऋषियों का आकर रामचन्द्र का अनुमोदन करना।

अब रामचन्द्र के राज्य पाने पर सब मुनि लोग राक्षसों के मारने के विषय में अनुमोदन करने आये। कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कण्व—ये सब ऋषि पूर्व दिशा से आये। स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख और विमुख—ये अगस्त्य को आगे करके दक्षिण दिशा की ओर से आये। नृषङ्गु, कवषी, धौम्य और कौषेय ये शिष्यों-सहित पश्चिम दिशा से आये। वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि उत्तर दिशा से महाराज रामचन्द्र के राजभवन के द्वार पर आकर उपस्थित हुए। ये सब अग्नि के समान तेजस्वी, वेदवेदाङ्ग-पारग और अनेक शास्त्रों में कुशल थे। इनमें से भगवान् अगस्त्य द्वारपाल से बोले—महाराज रामचन्द्र से निवेदन करो कि ऋषि लोग द्वार पर खड़े हैं। वह द्वारपाल नीति और स्वामी की चेष्टा पहचानने में चतुर था, चालचलन का अच्छा था, बहुत होशियार और धैर्यवान् था। अगस्त्य मुनि के कहने पर वह पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य प्रकाशमान् श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर बोला कि राजन्! अगस्त्य मुनि-सहित अनेक ऋषि आये हैं। यह सुनते ही महाराज ने कहा—उनको यहाँ आनन्दपूर्वक लिवा लाओ। द्वारपाल ने ऋषियों से कहा—महाराज! आप लोग सुख-पूर्वक भीतर जाइए। अनुमति पाकर ऋषि लोग राजमन्दिर में चले गये। मुनियों को अपने पास आते देख कर महाराज हाथ जोड़े उठ कर खड़े हो गये। उन्होंने अर्घ्य, पाद्यार्घ्य और गोप्रदान से उनका पूजन किया। उनके बैठने के लिए महाराज ने सोने के बने हुए विचित्र, बड़े अच्छे, कुशास्तरण वाले और मृगचर्मों से भूषित आसन दिये। उन पर ऋषि लोग यथोचित बैठ गये। वे कहने लगे—"हे महाबाहो! हम सब तरह कुशल-पूर्वक हैं। क्योंकि हम तुमको कुशल-पूर्वक और शत्रु को मार कर आया हुआ देखते हैं। यह बड़े आनन्द की बात है। हे राजन्! यह बड़ी बात हुई जो आपने लोगों के रुलानेवाले रावण को मारा। हे रामचन्द्र! आपके लिए ऐसा कर देना कुछ बड़ी बात न थी। क्योंकि आप तो धनुष लेकर तीनों लोकों का विजय कर सकते हैं। आपने केवल उसी को नष्ट नहीं किया किन्तु उसके पुत्र पौत्र आदि को भी नष्ट कर दिया। अहोभाग्य है जो हम लोग आपको सीता, लक्ष्मण तथा दूसरे भाइयों के साथ विजयी देखते हैं। यह बड़ा काम हुआ जो प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर और अकम्पन आदि राक्षस मारे गये। कुम्भकर्ण इतना बड़ा था कि तौल में उससे अधिक इस जगत् में कोई नहीं पाया जाता। सो वह भी मारा गया। त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, और नरान्तक—ये सभी राक्षस बड़े बली थे। इनको आपने युद्ध के मैदान में गिरा दिया। राक्षसाधिप रावण को तो देवता भी न मार सकते थे। उससे द्वन्द्व-युद्ध कर आपने विजय पाई। रावण का पराजय करना इतना कठिन न था जितना कि इन्द्रजित् को मारना कठिन था। पर आप के द्वारा वह भी मारा गया। काल के समान दौड़ने वाले उससे बच कर आप विजयी हुए। हे राम! उस इन्द्रजित् का वध सुन कर हम लोग बड़े प्रसन्न हुए। क्योंकि

वह बड़ा मायावी था और किसी से भी मारे जाने योग्य न था। उसका मारा जाना हम लोगों के लिए बड़ा आश्चर्य-कारक हुआ। हे काकुत्स्थ, हे अमित्र-कर्षण! हम ऋषियों को यह अभय-दक्षिणा देकर आप जो समृद्ध देख पड़ते हैं इससे बढ़कर दूसरा आनन्द क्या हो सकता है? यह सुनकर महाराज हाथ जोड़कर कहने लगे—महाराज! कुम्भकर्ण और रावण, दोनों महावीरों को छोड़कर आप लोग इन्द्रजित् की प्रशंसा क्यों करते हैं? इसके सिवा महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त, दुर्द्धर्ष, देवान्तक और नरान्तक क्या बड़े बली न थे? इन्हें छोड़कर आप इन्द्रजित् की ही प्रशंसा क्यों करते हैं? अतिकाय, त्रिशिरा और धूम्राक्ष, इन महावीरों की आपने कुछ भी प्रशंसा नहीं की जैसी कि मेघनाद की कर रहे हैं। हे ऋषियो! इन्द्रजित् का प्रभाव, बल और पराक्रम कैसा था? किस कारण वह रावण से भी बढ़कर था? यदि यह बात मेरे सुनने योग्य हो और गोप्य न हो तो कृपा-पूर्वक मुझे सुनाइए। यह मेरी आज्ञा नहीं, किन्तु प्रार्थना है। उसने इन्द्र को भी किस तरह जीत लिया था और किस तरह वर पाया था? पुत्र ऐसा बलवान् कैसे हुआ और उसका पिता वैसा क्यों न था?

दोहा।

पुत्र अधिक भा पिता तें, किमि जीत्यौ सुरराज।
केहि विधि वर पायो परम, सकल कहहु मुनिराज॥

———

दूसरा सर्ग

अगस्त्य का रावण आदि की उत्पत्ति वर्णन करने के लिए पहले विश्रवा मुनि की उत्पत्ति बतलाना।

महाराज रामचन्द्र के प्रश्न सुनकर अगस्त्य मुनि बोले—"हे रामचन्द्र! उस कारण को सुनिए जिससे इन्द्रजित् का तेज और बल बढ़ा हुआ था; वह शत्रुओं को तो मारता था पर उनसे स्वयं मारा नहीं जा सकता था। आपको पहले रावण के कुल, जन्म और उसकी वरदान-प्राप्ति का वृत्त बतलाता हूँ।

पहले सत्ययुग में, ब्रह्मा के पुलस्त्य नामक ब्रह्मर्षि पैदा हुए। वे साक्षात् ब्रह्मा ही के समान थे। उनके धर्म और शील आदि गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। केवल इसी से समझ लेना चाहिए कि वे प्रजापति के पुत्र थे। इसी कारण वे सब देवों के और सब लोकों के बड़े प्रिय थे। वे उज्ज्वल गुणों से बड़े बुद्धिमान् थे। तपस्या करने की इच्छा से वे, मेरु पर्वत के पास, तृणबिन्दु के आश्रम में जाकर रहने लगे। वहाँ वे जितेन्द्रिय होकर तपःस्वाध्याय में लग गये। कुछ दिनों में वहाँ ऋषियों, नागों और राजर्षियों की कन्याएँ आ-आकर उनके काम में विघ्न करने लगीं। उन कन्याओं के साथ अप्सराएँ भी मिल गईं। सब इकट्ठी होकर वहाँ क्रीड़ा करने लगीं। एक तो वहाँ का वन बड़ा रमणीय था; दूसरे वह सब ऋतुओं में सेवन करने के योग्य था। इसलिए वे रोज़ वहाँ आतीं और खेला करती थीं; जहाँ पुलस्त्य मुनि तपस्या करते थे वहीं आकर वे गाती-बजाती और नाचती थीं। इस कारण तप में विघ्न होता था। विघ्न होते देख एक दिन ऋषि क्रुद्ध होकर

बोले—"जो लड़की मेरी दृष्टि के सामने आवेगी वह गर्भवती हो जायगी।" ऋषि के मुँह से यह निकलते ही शाप के मारे सब कन्याएँ डर गईं, पर राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या उसे न सुन पाई। इसलिए वह पहले की तरह वहाँ जाकर निर्भय हो खेलने लगी। परन्तु वहाँ उसने और किसी दूसरी सखी को न देखा। उस समय प्रजापति के पुत्र महातेजस्वी पुलस्त्य मुनि स्वाध्याय कर रहे थे। वह वेद की ध्वनि उसके कान में पड़ी। उस तपोधन का दर्शन होते ही वह पाण्डु वर्ण (पीले रङ्ग की) हो गई। उसके शरीर में गर्भ का चिह्न दिखाई देने लगा। अपने इस दोष को देखकर उसे बड़ी घबराहट हुई। वह कहने लगी, मुझे यह क्या हो गया!

मन में सोचती-सोचती वह अपने घर लौट गई। उसे देखकर तृणबिन्दु ने कहा—"तेरी यह दशा कैसी हो गई? तेरे शरीर का रङ्ग अनुचित क्यों हो गया?" वह कन्या दीन होकर कहने लगी—"पिताजी! मैं नहीं जानती कि किस कारण से मेरा स्वरूप ऐसा हो गया। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि महर्षि पुलस्त्य के आश्रम में मैं अपनी सखियों को ढूँढ़ने गई थी। वहाँ मैंने किसी भी सखी को नहीं पाया। जब मैंने अपना ऐसा बदला हुआ रूप देखा तब डर के मारे यहाँ भाग आई।" कन्या की बातें सुनकर राजर्षि तृणबिन्दु ने तपोबल से ध्यान करके देखा तो वह ऋषि का काम जान पड़ा। उन्होंने जान लिया कि उनके शाप से ही कन्या की यह दशा हो गई। अब तृणबिन्दु उस कन्या को साथ ले मुनि के पास गये और उनसे बोले—"भगवन्! अपने गुणों से भूषित आप ही आई हुई मेरी इस कन्या को आप ग्रहण कीजिए। मैं भिक्षा देता हूँ, आप तपस्या में लगे रहते हैं, इसलिए आपकी इन्द्रियाँ थक जाती होंगी। यह आपकी सेवा-टहल सदा करेगी।" यह सुनकर मुनि ने उसे स्वीकार कर लिया। तृणबिन्दु कन्या देकर अपने आश्रम को लौट गये। वह कन्या वहीं रहकर अपने गुणों से पति को सन्तुष्ट करती थी। उसके शील और चरित्र से प्रसन्न होकर मुनि बोले—"हे सुश्रोणि! मैं तेरे गुणों से प्रसन्न हुआ, इसलिए मैं आज तुझे अपने तुल्य पुत्र देता हूँ। वह दोनों वंशों को बढ़ावेगा और पौलस्त्य कहलावेगा। तूने मेरे वेद के शब्द सुनकर गर्भधारण किया है इसलिए उस पुत्र का नाम विश्रवा होगा।" यह सुनकर वह देवी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने थोड़े ही दिन के बाद विश्रवा नामक पुत्र पैदा किया। यह विश्रवा तीनों लोकों में विख्यात, यशस्वी, और बड़े धर्मात्मा हुए।

दोहा।

समदर्शी श्रुतिपारगत, व्रताचार रतिधाम।
पिता तुल्य तप महँ निरत, भये विश्रवा नाम॥

तीसरा सर्ग

कुबेर की उत्पत्ति की कथा।

पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा थोड़े ही दिनों में पिता के तुल्य तपस्या करने लगे। ये मुनि सत्यवान्, शीलवान्, दान्त, स्वाध्याय में तत्पर, पवित्र, सब भोगों से अलग, और धर्माचार में निरत पिता ही के समान देख पड़ते थे। इनका यह चमत्कार देखकर भरद्वाज मुनि ने अपनी कन्या देववर्णिनी का ब्याह इनके साथ कर दिया। सन्तान की इच्छा

से ये उसका मङ्गल चाहने लगे। उन्होंने अपनी स्त्री से ब्राह्मण के गुणोंवाला वीर और बड़ा अद्भुत एक पुत्र पैदा किया। उसके उत्पन्न होने से ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए। वे इनकी कल्याणकारिणी बुद्धि देखकर बोले—"यह आपका लड़का धनाध्यक्ष होगा।" फिर ब्रह्मा ने देवर्षियों के साथ इसका नाम-करण किया। उन्होंने कहा—"यह पुत्र विश्रवा से उत्पन्न हुआ है और यह है भी उन्हीं के समान, इसलिए यह 'वैश्रवण' नाम से प्रसिद्ध होगा।" अब वे वैश्रवण, उस तपोवन में, आहुति दिये हुए अग्नि के समान बढ़ने लगे। वे बड़े तेजस्वी हुए। उनका विचार तपस्या करने का हुआ। क्योंकि तप ही परम गति है। यह सोचकर बड़े उग्र नियमों के साथ वे हज़ार वर्ष तक तपस्या करते रहे। हज़ार वर्ष बीत जाने पर उन्होंने जलाहार, वाताहार और केवल उपवास आदि विधियाँ कीं। उनके हज़ार वर्ष ऐसे बीत गये मानों एक वर्ष बीता हो। पितामह उनके तप से प्रसन्न हुए। वे इन्द्र के साथ सब देवताओं को लेकर इनके आश्रम में आये और बोले—"हे वत्स! मैं तुम्हारे इस काम से सन्तुष्ट हुआ। अब तुम वर माँगो।" वैश्रवण ने कहा—"भगवन्! मैं लोकपाल होना चाहता हूँ। मेरे अधिकार में सब कोष रहे।" ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं चौथे लोकपाल की रचना ही चाहता था। वह तुम्हीं होना चाहते हो तो बहुत अच्छी बात है। हे धर्मज्ञ! तुम निधियों के स्वामी हो। इन्द्र, वरुण और यम इन तीनों में तुम चौथे धनाध्यक्ष हुए। अपनी सवारी के लिए तुम यह पुष्पक विमान लो। यह सूर्य के समान चमकीला है। अब तुम देवताओं के समान हो। हम जाते हैं। तुम्हारा मङ्गल हो। हे तात! तुमको ये दो वर देकर हम कृतकृत्य हुए।" यह कहकर ब्रह्मा उन देवताओं को साथ ले वहाँ से चले गये।

उन सबके चले जाने पर धनेश अपने पिता से हाथ जोड़कर बोले—"भगवन्! पितामह से मैंने इष्ट वर तो पा लिया, पर मेरे रहने के लिए पितामह ने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। इसलिए अब आप ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए जहाँ मेरे रहने से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचे।" पुत्र की बात सुनकर विश्रवा मुनि बोले—"दक्षिण समुद्र के किनारे एक त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके आगे के हिस्से में इन्द्र की नगरी के समान रमणीय लङ्का नामक पुरी है। विश्वकर्मा ने उसको राक्षसों के रहने के लिए बनाया था। वहीं तुम रहो। वह पुरी सोने के प्राकार, परिखा, यन्त्र और शस्त्रों से भरपूर है। वह सोने और पन्नों के भूषणों से भूषित है। वहाँ राक्षस रहते थे, पर विष्णु के डर से सब छोड़ भागे। वे सब नीचे रसातल में जा बसे। अब वह सुनसान, बिना स्वामी के, पड़ी हुई है। हे पुत्र! तुम वहाँ जाकर सुखपूर्वक रहो। वहाँ तुम्हारा रहना निर्दोष होगा। वहाँ रहने से किसी तरह का झगड़ा न होगा। वहाँ कोई बाधा देनेवाला नहीं है।" यह सुनकर धनाध्यक्ष ने जाकर उस पुरी को बसाया। हज़ारों यक्ष लोग वहाँ जाकर हर्षपूर्वक रहने लगे। वैश्रवण के शासन से थोड़े ही दिनों में वह नगरी भरपूर हो गई। चारों ओर समुद्र से घिरी हुई उस पुरी में विश्रवा मुनि के पुत्र बड़े प्रसन्न होकर रहने लगे। वैश्रवण कभी-कभी पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने माता-पिता को देखने के लिए वहाँ आया करते थे। देवों और गन्धर्वों

की स्तुति सुनते, अप्सराओं के नाच से अपने घरों की शोभा बढ़ाते और किरणों से सूर्य की नाईं प्रकाश करते हुए वे वैश्रवण पिता के पास आने-जाने लगे।

चौथा सर्ग

आदि-सृष्टि से राक्षसों की उत्पत्ति की कथा का आरम्भ।

अगस्त्य मुनि से यह कथा सुनकर रामचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ कि लङ्का में पहले भी राक्षस रहते थे। यह कैसी बात है। रामचन्द्र सिर हिलाकर और मुसकराते हुए बार-बार महर्षि की ओर देखकर बोले—"भगवन्! इस लङ्का में पहले भी राक्षसों की बस्ती थी; यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि हमने तो यही सुना है कि पुलस्त्य ही के वंश से राक्षस पैदा हुए हैं। इस समय आपने दूसरे से भी उनकी उत्पत्ति का वर्णन किया। क्या वे लोग रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट, और रावण के पुत्रों से भी अधिक बलवान् थे? हे ब्रह्मन्! इन सबका मूल पुरुष कौनसा महाबली राक्षस था? विष्णु ने किस अपराध से उन्हें किस तरह मार भगाया? हे ब्रह्मर्षे! आप सब विस्तार-पूर्वक कहिए। जिस तरह सूर्य अँधेरे को दूर करता है उसी तरह सब हाल बताकर आप मेरा सन्देह दूर कीजिए।" राघव की ये बातें सुनकर अगस्त्य मुनि चकित होकर बोले—हे राम! ब्रह्मा जब कमल से पैदा हुए तब उन्होंने सबसे पहले जल रचा। जल की रक्षा के लिए अनेक प्राणियों को उत्पन्न किया। वे सब जीव बड़ी नम्रता से ब्रह्मा के पास खड़े होकर बोले कि, हम क्या करें? उस समय वे सब भूख और प्यास के मारे बड़े दुखी हो रहे थे। ब्रह्मा ने हँसकर उनसे कहा—'तुम सब इसकी रक्षा करो।' ब्रह्मा की यह आज्ञा सुनकर उन भूखों और बिना भूखों (प्यासों) में से कुछ ने तो कहा कि 'रक्षामः'—हम रक्षा करते हैं और बहुत से बोल उठे कि 'यक्षामः'—हम उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं। उनका इस तरह कहना सुनकर ब्रह्मा बोले, जिन्होंने 'रक्षामः' कहा है वे राक्षस होवें और जिन्होंने 'यक्षामः' कहा है वे यक्ष हों।

उनमें हेति और प्रहेति नामक दो भाई मधु-कैटभ के समान थे। वे दोनों ही राक्षसों के राजा हुए। प्रहेति धार्मिक था, इसलिए वह तो तपोवन में चला गया। पर हेति ने अपने विवाह के लिए बड़ा प्रयत्न किया। 'भया' नामक काल की बहन थी। वह बड़ी भयङ्कर थी। उसी से वह अपना ब्याह कर लाया। उस भया से प्रदीप्त सूर्य के समान चमकीला विद्युत्केश नामक एक लड़का पैदा हुआ। वह ऐसा बढ़ा जैसा पानी में कमल बढ़ता है। जब वह जवान हुआ तब उसका पिता उसके विवाह के लिए यत्न करने लगा। सन्ध्या के एक पुत्री थी। उसका नाम सालकटङ्कटा था। वह प्रभाव में सन्ध्या के ही समान थी। उसी लड़की को वह अपने लड़के के लिए ले आया। उस समय सन्ध्या ने भी सोचा कि अन्त में यह लड़की किसी न किसी को देनी तो पड़ेगी ही, इसलिए इसी को दे दें तो अच्छा है। अब विद्युत्केश उसके साथ आनन्दपूर्वक इस तरह विहार करने लगा जिस तरह इन्द्राणी के साथ इन्द्र विहार करते हैं। हे रामचन्द्र! कुछ दिनों बाद वह सन्ध्या की लड़की, सालकटङ्कटा, विद्युत्केश से इस तरह गर्भवती हो गई

जैसे समुद्र से मेघ-घटाएँ गर्भ-धारण करती हैं। उस राक्षसी ने मेघ-गर्भ के समान एक लड़का मन्दराचल पर जाकर इस तरह पैदा किया, जिस तरह गङ्गा ने अग्नि-सम्भव गर्भ को त्यागा था। उस लड़के को वहीं—पर्वत पर—छोड़कर वह सन्ध्या की लड़की, रति की इच्छा से, फिर पति के पास आकर विहार करने लगी। शरद ऋतु के सूर्य की नाईं दीप्तिमान् वह लड़का मेघ की गर्जना के तुल्य शब्द से धीरे-धीरे रोता और हाथ की मूँठी मुँह में दिये हुए वहाँ पड़ा था। उस समय बैल पर सवार पार्वती और भगवान् शिव वायुमार्ग से कहीं जा रहे थे। जब उस लड़के के रोने का शब्द उनके कान में पड़ा तब वे वहाँ गये। उन्होंने देखा कि राक्षस का लड़का पड़ा हुआ रो रहा है। उसे देखकर पार्वती को बड़ी दया आई। उन्होंने शिवजी से कहा—"इस पर दयादृष्टि करनी चाहिए।" तब त्रिपुरारि महाराज ने, उसी समय, उस लड़के को उसकी माता के समान उम्र दे दी। क्योंकि वे तो सनातन और अव्यय (नष्ट न होनेवाले) देव हैं, उनकी प्रसन्नता से कोई चीज़ दुर्लभ नहीं है। उसे अमर बनाकर, पार्वती की प्रसन्नता के लिए, उन्होंने उसे एक आकाशगामी नगर भी दे दिया। इसके बाद पार्वती ने राक्षसों को वर दिया कि 'जिस समय राक्षसी गर्भवती हो उसी समय वह बालक जने और वह बालक उसी समय माता के समान उम्रवाला हो जाय।' हे रामचन्द्र ! अब सुकेश नामक राक्षस का वह लड़का प्रभु के वरदान से बड़ा गर्वित हो गया। वह उस नगर को और लक्ष्मी को पाकर उस नगर-विमान में बैठा-बैठा, इन्द्र की नाईं, चारों ओर घूमने लगा।

पाँचवाँ सर्ग

सुकेश के वंश का विस्तार।

अब सुकेश को धार्मिक और वर पाया हुआ देखकर विश्वावसु गन्धर्व की जोड़ के कान्तिमान् ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी कन्या देववती ब्याह दी। वह दूसरी लक्ष्मी के समान, तीनों लोकों में प्रसिद्ध और रूप-यौवन से सम्पन्न थी। सुकेश को लड़की दे करके मानों उसने राक्षसों के लिए लक्ष्मी समर्पण कर दी। देववती ऐसे पति को पाकर, धन पाने से निर्धन मनुष्य की नाईं, बड़ी सन्तुष्ट हुई। राक्षस भी उसे पाकर ऐसा शोभित हुआ जैसे अञ्जन नामक दिग्गज से उत्पन्न हुआ हाथी हथिनी को पाकर शोभा पाता है। हे राघव ! सुकेश के तीन लड़के हुए। वे यज्ञ के गार्हपत्य आदि तीन अग्नियों के समान थे। माल्यवान्, सुमाली और माली, उन तीनों के नाम थे। वे तीनों त्रिनेत्र शिव के तुल्य प्रभाववान्, और व्यग्रता-रहित तीनों लोकों की तरह थे। वे तीनों अग्नियों के समान, तीन मंत्रों की भाँति, बड़े उग्र तीन घोर महारोगों के समान थे। वे तीन इस तरह बढ़ने लगे जैसे लापरवाही करने से रोग बढ़ते हैं। कुछ दिनों में वे तीनों पिता की वर-प्राप्ति और तपोबल से ऐश्वर्य का लाभ देखकर तपस्या करने के लिए मेरु पर्वत पर गये। वे महा घोर नियमों का पालन कर सब प्राणियों को भय देनेवाली तपस्या करने लगे। वे सत्य-पालन, सरलता और सम दृष्टि का नियम करके ऐसा कठिन तप करने लगे जो पृथ्वी पर दुर्लभ था। ऐसा कठिन तप करके वे तीनों लोकों को सन्ताप देने लगे। इसके बाद चतुर्मुख ब्रह्मा विमान पर

चढ़कर वहाँ आये और बोले कि वर माँगो। यह सुनकर और इन्द्र-सहित देवगणों तथा ब्रह्मा को अपने पास आया देखकर वे तीनों हाथ जोड़कर वृक्षों की नाईं थरथर काँपते हुए बोले—"हे देव ! यदि हमारी तपस्या से प्रसन्न होकर आप वर देना चाहते हैं तो हम तीनों को मुँहमाँगा वर दीजिए। हम तीनों अजेय, शत्रु के मारनेवाले, चिरञ्जीवी एवं सामर्थ्यवान् हों और हममें परस्पर मेल बना रहे।" यह प्रार्थना सुनकर ब्राह्मणों पर दया रखनेवाले श्रीब्रह्मदेव 'ऐसा ही होगा' कहकर सत्यलोक को चले गये।

अब वर पाने से वे निर्भय होकर देवता और दैत्यों को कष्ट देने लगे। उनसे कष्ट पाकर बेचारे देवता, महर्षि और चारण, अनाथ की तरह, शरण ढूँढ़ने लगे। पर कहीं भी शरण न पाया। जैसे नरक के प्राणियों को कहीं शरण नहीं मिलता वैसी ही उनकी भी दशा हुई। हे रघुवर! अब उन तीनों ने श्रेष्ठ शिल्पकार विश्वकर्मा से कहा कि—"पराक्रमी, तेजस्वी और बली देवताओं के मन के अनुसार घर तुम्हीं बनाते हो। इसलिए हे महामते ! हमारे लिए तुम चाहे हिमालय पर या मेरु पर अथवा मन्दराचल पर मकान बना दो। हमारे लिए शिव के घर के समान मकान बनाना।" यह सुनकर विश्वकर्मा ने उन्हें अमरावती के समान निवास-स्थान बतलाया। उन्होंने कहा कि दक्षिण समुद्र के किनारे त्रिकूटाचल पर्वत है। वहीं एक दूसरा सुबेल नामक पर्वत भी है। इन दोनों के बीच का शिखर बड़ा ऊँचा, मेघ के समान, दिखाई देता है। मैंने इन्द्र की आज्ञा से लङ्का नामक नगरी बनाई है। वहाँ पक्षी भी नहीं पहुँच सकते, क्योंकि चारों ओर से वह मानों टाँकी से छीली हुई है। वह तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी है। वह सोने के प्राकारों से घिरी हुई और सोने के तोरणों से भूषित है। वहाँ जाकर तुम सब निवास करो, जैसे अमरावती में देवता रहते हैं। जब तुम लङ्का के क़िले में रहोगे तब बहुत से राक्षस तुम्हारे पास इकट्ठे हो जायँगे। वहाँ तुम सदा शत्रुओं के डर से अलग रहोगे। यह सुनकर वे तीनों, हज़ारों सेवकों को साथ लेकर, वहाँ जा बसे। मज़बूत प्राकारोंवाली और सैकड़ों अच्छे-अच्छे घरों से भूषित उस नगरी में वे आनन्द-पूर्वक रहने लगे। हे राघव! उस समय एक नर्मदा नामक गन्धर्वी थी। उसके तीन कन्याएँ थीं। वे कान्ति में ह्री, श्री और कीर्त्ति के तुल्य थीं। गन्धर्वी ने अपनी उन तीनों कन्याओं का विवाह ज्येष्ठ-क्रम से उन तीनों के साथ कर दिया। यह विवाह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ। जैसे अप्सराओं के साथ देवता विहार करते हैं वैसेही वे तीनों अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ विहार करने लगे। कुछ दिनों में माल्यवान् के—सुन्दरी नामक स्त्री से—वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात लड़के तथा अनला नामक एक रूपवती लड़की पैदा हुई। सुमाली की स्त्री केतुमती का मुख चन्द्रमा के समान था। वह उसको प्राणप्यारी थी। उससे सुमाली ने प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस और भासकर्ण—ये दस लड़के और राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी तथा कुम्भीनसी ये चार लड़कियाँ पैदा कीं। माली की स्त्री का नाम वसुदा था। वह कमलनयनी और दक्ष की लड़की के समान थी। उसमें उसने अनल, अनिल, हर और

सम्पाति—ये चार लड़के पैदा किये। यही चारों विभीषण के मन्त्री थे। राक्षसों में श्रेष्ठ उन तीनों राक्षसों का परिवार अब बहुत बड़ा हो गया। सैकड़ों पुत्रों के साथ वे तीनों ही राक्षस देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षों को कष्ट देने लगे।

दोहा।

वायु-तुल्य गति समर महँ, मृत्यु सदृश ये तीन।
सहित सेन घूमत फिरहिं, करत धर्म मख छीन॥

———

छठा सर्ग

उन तीनों राक्षसों की पीड़ा से देवताओं का उद्योग और युद्ध।

उन राक्षसों से सताये जाने पर देवता और ऋषि लोग देवदेव श्रीशङ्कर के शरण में गये। वे शिव इस जगत् के रचनेवाले, अन्त करनेवाले तथा सब लोगों के आधार हैं। वे अज, अव्यक्त-रूप, आराधनीय और परमगुरु हैं। उनके पास जाकर सब देवता हाथ जोड़े गिड़गिड़ाते हुए बोले--"हे प्रजाध्यक्ष भगवन्! सुकेश राक्षस के लड़के, ब्रह्मा के वरदान से, बड़े दुराधर्ष हो रहे हैं। वे प्रजा को शत्रु के समान पीड़ा पहुँचा रहे हैं। हमारे घर और आश्रमों को उन्होंने जङ्गल कर डाला। स्वर्ग से देवताओं को निकालकर वहाँ वे, देवताओं की नाईं, क्रीड़ा करते हैं। माली, सुमाली, और माल्यवान् कहते हैं कि 'मैं विष्णु हूँ, मैं रुद्र हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं इन्द्र हूँ, मैं यम हूँ, मैं वरुण हूँ, मैं चन्द्र और सूर्य भी हूँ;' अहङ्कारपूर्वक यह कहते हुए, युद्ध के गर्व से, वे हमको कष्ट देते हैं। एक वे ही ऐसा नहीं करते, किन्तु उनके अग्रगामी राक्षस भी वैसा ही करते हैं। हे देव! हम सब भय-पीड़ित हो रहे हैं। आप अभय दीजिए। अपना भयङ्कर रूप धारण करके उन देव-कंटकों को मारिए।" उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव, सुकेश का पक्ष लेकर, बोले—"हे देवताओ! मैं तो उनको न मारूँगा। क्योंकि वे असुर मेरे मारने योग्य नहीं हैं। हाँ, मैं तुमको उपाय बताये देता हूँ कि उनको कौन मारेगा। हे महर्षियो! आप लोग इसी तरह विष्णु की शरण जाइए। वे ही उनको मारेंगे।" यह सुनकर उन्होंने जय शब्द से शिव का अनुमोदन किया। फिर वे सब विष्णु के पास गये और शङ्ख-चक्र-धारी देव को प्रणाम कर घबड़ाहट से बोले—महाराज! सुकेश के लड़के अग्नि के तुल्य प्रतापी हो रहे हैं। उन्होंने वरदान के बल से हमारे स्थान छीन लिये। हे प्रभो! त्रिकूटाचल पर्वत पर एक बड़ी मज़बूत लङ्का नगरी है। वहाँ वे सब रहते और हमें दुःख देने में तत्पर रहते हैं। हे मधुसूदन! हमारे हित के लिए आप उनको मारिए। हम सब आपकी शरण आये हैं। हमारी गति आपही हैं। आप अपने चक्र से उनके कमल ऐसे मुखों को काटकर यम को अर्पण कर दीजिए। आपके सिवा, इस भय से अभय करनेवाला कोई दूसरा नहीं। वे राक्षस लड़ने में बड़े मज़बूत और अहङ्कार में भरे हुए हैं। परिवार-सहित उनको ऐसे नष्ट कीजिए जैसे सूर्य अँधेरे का लेश भी नहीं छोड़ता।

देवताओं की बातें सुनकर शत्रुओं को भय देने-वाले देवदेव श्रीजनार्दन उन्हें अभय देकर बोले—"शिव के वर से गर्वित सुकेश राक्षस को मैं जानता हूँ। मैं उसके लड़कों को भी जानता हूँ, जिनमें माल्य-वान् जेठा है। मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले उन राक्षसाधमों को मैं मारूँगा। तुम सब शोक-रहित

हो जाओ।" विष्णु का वचन सुनकर वे सब हर्षित हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये। देवताओं के इस उद्योग का समाचार पाकर माल्यवान् अपने दोनों भाइयों से कहने लगा कि देवता और ऋषि हमारा वध कराने की इच्छा से शिव के पास जाकर कहते थे—"हे देव! सुकेश के लड़के वरदान पाकर बड़े अहङ्कारी हो गये हैं। हम लोगों को पग-पग पर सता रहे हैं। उनकी धर्षणा से हम लोग अपने घरों में नहीं रह पाते। आप अपने हुंकार से, हमारे हित के लिए, उन्हें भस्म कर दीजिए।" परन्तु शिवजी ने अपना सिर और हाथ हिलाकर कहा - "हे देवताओ! हम सुकेश के लड़कों को नहीं मार सकते। हम तुमको इसके विषय में राय देते और मारनेवाले को बताये देते हैं। तुम चक्र-गदा-धारी श्रीनारायण की शरण में जाओ।" इस पर वे सब विष्णु के धाम में गये और वही बात कहने लगे। तब नारायण ने उनसे कहा है कि "मैं उनको अवश्य मारूँगा। तुम निर्भय हो जाओ।" इसलिए हे राक्षसों में श्रेष्ठो! इस विषय में जो उचित हो वह विचार करना चाहिए, क्योंकि हरि ने हमारे मारने की प्रतिज्ञा की है। नारायण हिरण्यकशिपु के लिए तथा देवताओं के और-और वैरियों के लिए भी मृत्यु-रूप हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। नमुचि, कालनेमि, संह्लाद, बहुमायी, राधेय, बड़ा धार्म्मिक लोकपाल, दोनों यमलार्जुन, शुम्भ और निशुम्भ, ये सब तथा इनके सिवा और-और राक्षस तथा दैत्य भी नारायण के हाथ से मारे गये हैं। ये सब बड़े शूरवीर और महाबली थे, जिनका कभी पराजय नहीं हुआ था। सब बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले, मायावी, सब अस्त्रों के जाननेवाले और शत्रुओं को भय-दाता थे परन्तु नारायण के द्वारा सब मारे गये। यही नहीं, किन्तु इस तरह के सैकड़ों और हज़ारों को उन्होंने मार गिराया। इसलिए इस विषय में उचित कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। यदि नारायण हमको मारना चाहते हैं तो उनको जीतना कठिन है।

यह सब सुनकर सुमाली और माली माल्यवान् से इस तरह कहने लगे मानो इन्द्र से अश्विनीकुमार कहते हों। उन्होंने कहा—भाई! हमने स्वाध्याय किया, दान दिया, यज्ञ किये, ऐश्वर्य का परिपालन किया और बाधा-रहित आयुर्बल पाया; हमने अच्छे धर्म-मार्ग की स्थापना की, अक्षोभ्य देव-समुद्र को शस्त्रों से क्षोभित किया और बड़े-बड़े शत्रुओं को जीता। क्या अब हमको मृत्यु का भय होगा? देखो, नारायण, रुद्र, इन्द्र और यम ये सभी हमारा सामना करने से डरते हैं। विष्णु के द्वेष का तो कोई कारण नहीं दिखाई देता परन्तु हम समझते हैं कि देवताओं के ही उभाड़ने से उनका मन फिर गया है। इसलिए हम लोग आज ही उन्हीं देवताओं को मारने का उद्योग करें तो ठीक हो। क्योंकि यह बुराई उन्हीं की ओर से हुई है।

सब राक्षसों ने इस तरह विचारकर साथ में सेना ले डङ्का और बाजे बजाते हुए युद्ध के लिए चढ़ाई कर दी। जैसे जम्भ और वृत्र आदि ने सेना सजाई थी उसी तरह उन्होंने अपनी सेना सजाकर तैयार की। बड़े शरीरवाले और महाबली राक्षस लोग रथों, हाथियों, हाथियों के समान बड़े-बड़े घोड़ों, गदहों, और बैलों पर चढ़कर; तथा ऊँटों, सुइसों, साँपों, मगरों, कछुओं, और मछलियों पर सवार होकर; एवं गरुड़ के समान पक्षियों, सिंहों, व्याघ्रों, सुअरों,

सुमरों और चमरमृगों पर चढ़ चढ़ कर लंका को छोड़—बड़े बल के अहङ्कार से—देवलोक को चलने लगे। लंका का परिवर्तन देख वहाँ रहनेवाले देवता भय के मारे उदास हो गये। इसलिए जिस समय और जिस मार्ग से राक्षस चढ़ाई करके गये उसी समय और उसी मार्ग से वे भी वहाँ से निकल भागे। उस समय धरती से और आकाश से बड़े बड़े भयंकर उत्पात पैदा हुए जो काल से प्रेरित नाश के सूचक थे। बादलों से हड्डियाँ और गर्म गर्म ख़ून बरसने लगा; समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ कर बड़ी बड़ी लहरें लेने लगे और पर्वत काँपने लगे। भयंकर रूपवाली सियारिनियाँ मेघ की गर्जना की भाँति अट्टहास कर अति भयंकर चिल्लाने लगीं; बड़े भयंकर भूतगण क्रम से इकट्ठे हो गये; गीधों का झुंड मुँह से अग्नि की ज्वाला फेंकता हुआ, काल की नाईं, राक्षसी सेना के ऊपर घूमने लगा। कबूतर, हंस और मैनाएँ बड़े उद्वेग से भाग गईं; कौए काँव काँव करने लगे और एक तरह के बिलाव आदि प्रकट हुए। ये अपशकुन के चिह्न थे। इन सब उत्पातों को देख कर भी उन्होंने इनकी ज़रा भी परवा नहीं की। मृत्यु के फन्दे में फँसे हुए राक्षस आगे बढ़ते ही जाते थे। तीनों भाई सेना के आगे आगे जा रहे थे। वे सब निशाचर माल्यवान् पर्वत के समान उस माल्यवान् का ही अनुसरण करते जाते थे, जैसे ब्रह्मा का अनुसरण देवता करते हैं। इस तरह मेघ की नाईं गरजती हुई वह राक्षसी सेना, जीतने की इच्छा से, माली के वश में होकर देवलोक मे पहुँची। उधर नारायण प्रभु ने, अपने दूत के द्वारा, राक्षसों का उद्योग पहले ही से सुन लिया था। अतएव उन्होंने भी युद्ध की इच्छा की। वे आयुधों और तरकस से सज कर गरुड़ पर सवार हुए। उन्होंने हज़ार सूर्य के समान चमकीला, दिव्य कवच धारण किया। बाणों से भरे हुए दो तरकस लिये। उनका कटिसूत्र भूषण से भूषित था। विमल खड्ग, शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष तथा और और भी अच्छे शस्त्र लेकर वे राक्षसों के नाश के लिए देवलोक में पहुँचे। गरुड़ की पीठ पर पीताम्बर पहने हुए श्यामवर्ण भगवान् ऐसे शोभा देते थे जैसे सुमेरु पर्वत की चोटी पर बिजली-सहित मेघ हों। असुर सेना के शत्रु भगवान् विष्णु चक्र, खड्ग, शार्ङ्ग और शंख हाथ में लिये झट वहाँ जा पहुँचे। सिद्ध, देवर्षि, महानाग, गन्धर्व और यक्ष उनकी स्तुति कर रहे थे। गरुड़ के पंखों की हवा से राक्षसी सेना की पताकाएँ फट गईं, हाथ के हथियार इधर-उधर गिर गये और राक्षस ऐसे हिल उठे जैसे नीलवर्ण पर्वत का शृङ्ग हिल उठा हो।

दोहा।

रुधिर मांस लेपित सुशित, प्रलयानल सम तूल।
शस्त्रनि ते मारन लगे, विष्णुहिं सब अघमूल॥

सातवाँ सर्ग।

युद्ध और माली का मारा जाना।

अब मेघ के तुल्य वे सब राक्षस अस्त्ररूप जल से नारायणरूप पर्वत पर वर्षा करने लगे। जिस तरह खेतों पर टिड्डियाँ, आग में मच्छड़, शहद के घड़े पर डाँस, और समुद्र में मगर गिरते हैं उसी तरह राक्षसों के द्वारा छूटे हुए वायु और मन के तुल्य वेगवाले तथा वज्र के तुल्य कठोर बाण विष्णु के शरीर पर आकर ऐसे गिरने लगे जैसे प्रलय-समय

में प्राणी आकर घुसते हैं। रथों, हाथियों और घोड़ों पर से तथा आकाश से उन पर्वताकार राक्षसों ने बाणों, शक्तियों, ऋष्टियों, और तोमरों की वर्षा से विष्णु को ढक दिया। उन्होंने उन्हें ऐसा श्वास-रहित सा कर दिया जैसे प्राणायाम करते समय ब्राह्मण साँस नहीं लेता। भगवान् विष्णु उन राक्षसों के प्रहारों को इस तरह सहते जाते थे जैसे मछलियों के वेग को समुद्र सहता है। अपने शार्ङ्ग धनुष से अब वे बाण चलाने लगे। जिस तरह हवा बादलों को उड़ा देती है उसी तरह वज्र के तुल्य बाणों से भगवान् ने सैकड़ों हज़ारों राक्षसों को काट कर और छिन्न भिन्न कर अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उसका शब्द तीनों लोकों में भर गया। उस शब्द ने तीनों लोकों को दुखी सा कर डाला। उस शङ्ख-राज के शब्द से राक्षस ऐसे डर गये जैसे सिंह से मत्त हाथी भयभीत हो जाते हैं। उस समय राक्षसों के घोड़े वहाँ खड़े न रह सके। सब हाथी मद-रहित हो गये और उस शब्द के मारे वीर लोग रथों से ज़मीन पर गिये। शार्ङ्ग धनुष से छूटे हुए, वज्र के समान, बाण राक्षसों के शरीर को विदीर्ण कर ज़मीन में घुस गये। इस तरह नारायण के बाणों से छिन्न भिन्न होकर सब राक्षस, वज्र के मारे हुए पर्वतों की तरह, ज़मीन पर लोट गये। राक्षसों के शरीरों में चक्र लगने से घाव हो गये थे। उन घावों से ऐसा रुधिर बहने लगा मानों पर्वतों से गेरू की धारा बहती हो। शङ्खराज का शब्द, शार्ङ्ग धनुष की टंकार और विष्णु के सिंहनाद एवं हुङ्कार ने मिल कर राक्षसों के शब्दों को दबा दिया! विष्णु भगवान् राक्षसों की गर्दनों को, बाणों को, धनुषों को, रथों को, पताकाओं को, और तरकसों को अपने तेज़ बाणों से काटते जाते थे। जिस तरह सूर्यमण्डल से किरणें, सागर से जलतरंग, पर्वत से नाग, और मेघ से जलधारायें निकलती हैं उसी तरह विष्णु के धनुष से सैकड़ों हज़ारों बाण बड़ी शीघ्रता से निकलने लगे। जिस प्रकार शरभ से सिंह, सिंह से हाथी, और हाथी से व्याघ्र भागते हैं; जिस तरह व्याघ्र से चीता, चीते से कुत्ता, कुत्ते से बिल्ली, बिल्ली से साँप और साँप से चूहे भागते हैं उसी तरह श्रीविष्णु के आगे से वे राक्षस भागने लगे। उन्होंने बहुतों को तो खदेड़ दिया और बहुतों को मार गिराया। इस तरह भगवान् मधुसूदन ने हज़ारों राक्षसों को मार कर अपना शङ्ख बजाया। एक तो नारायण के बाणों की चोट खाकर वे भयभीत हो ही रहे थे, अब शङ्ख के शब्द से बड़े विह्वल होकर वे लङ्का की ओर मुँह फेर कर भागने लगे। अब सुमाली अपनी सेना को भागती देख कर विष्णु पर बाण चलाने लगा। उसने मारे बाणों के हरि को ऐसा ढक दिया जैसे कुहरा सूर्य को ढक लेता है। सुमाली का पराक्रम देख कर राक्षसों को फिर धीरज बँधा। सुमाली को अपने बल का बड़ा गर्व था, इससे वह राक्षस बड़ा शब्द करता तथा राक्षसों को पुनर्जीवन देता हुआ अपने भूषण फेंक कर, सूँड़ झटकारते हुए हाथी की नाईं, ऐसे ज़ोर से गरजा मानों बिजली सहित बादल गरजा हो। तब विष्णु ने उसके सारथि का कुण्डलों से झलझलाता हुआ सिर काट गिराया। बिना सारथि के उसके घोड़े इच्छानुसार रथ लेकर इधर उधर ऐसे घूमने लगे जैसे धैर्यहीन मनुष्य की इन्द्रियाँ यथेष्ट बिचरा करती हैं।

सुमाली की ऐसी दशा देख, माली धनुष लेकर दौड़ा। उसके चलाये हुए सुवर्णभूषित बाण विष्णु

के शरीर में ऐसे घुसते थे मानों क्रौंचाचल में पक्षी घुसते हों। यद्यपि उसने हज़ारों बाण मारे तथापि विष्णु कुछ भी पीड़ित न हुए, जैसे जितेन्द्रिय मनुष्य मन की चिन्ताओं से पीड़ित नहीं होता। अब विष्णु भगवान् ने भी, धनुष की टंकार कर, बहुत से बाण संधान करके माली पर चलाये। वे बाण वज्र और बिजली के समान चमचमाते थे। उन बाणों ने राक्षस का ख़ून ऐसे पी लिया जैसे नाग अमृत का रस पीवे। विष्णु भगवान् ने माली को विमुख कर उसके मुकुट, ध्वजा, धनुष और घोड़ों को भी काट फेका। अब वह राक्षस हाथ में गदा लेकर रथ से ऐसा कूदा जैसे पर्वत को चोटी से सिंह उछले। उसने गरुड़ के सिर में गदा की ऐसी मार मारी जैसे इन्द्र वज्र से पर्वत को मारे और जिस तरह मृत्यु ने शिव को मारा था। गदा की उस भारी चोट को खाकर गरुड़ वहाँ न ठहर सके। उन्होंने विष्णु भगवान् को पराङ्मुख कर दिया। मारे पीड़ा के गरुड़ व्याकुल हो गये। यह देख कर राक्षसों ने बड़ा हर्षनाद किया। उनकी गर्जना सुनकर देव को क्रोध आ गया। उन्होंने गरुड़ पर तिरछे हो, पीछे को मुँह कर, एक चक्र चलाया। वह चक्र सूर्यमण्डल की नाईं चमकीला था। उसने अपने प्रकाश से आकाश को प्रकाशित कर दिया। उसने कालचक्र की भाँति झट पहुँच कर माली का सिर काट ही तो डाला। राक्षसेन्द्र का वह भयंकर बड़ा सिर रुधिर फेंकता हुआ ज़मीन पर ऐसा गिरा जैसे पूर्व समय में राहु का सिर गिरा था। उसे देख कर देवता 'धन्य है भगवन्! धन्य है' कह कर बड़ा सिंहनाद करने लगे। माली का इस तरह नाश देख कर वे दोनों भाई लङ्का को भाग गये। कुछ देर में गरुड़ की चोट की भी वह पीड़ा घट गई। वे भी क्रोध कर अपने पंखों की हवा से राक्षसों को भगाने लगे। बहुतेरे राक्षसों के सिर चक्र के प्रहार से कट गये; बहुतों की जंघायें गदा से चूर होगईं; अनेकों की गर्दनें लाङ्गल शस्त्र से कट गईं; बहुतों के सिर मूसलों से छिन्न भिन्न होगये; बहुत से तलवार से खंड खंड होगये; और अनेक बाणों से छेदे गये। राक्षस लोग कट कर प्राणरहित हो आकाश से समुद्र के जल में जा गिरे। इस तरह भगवान् विष्णु ने वज्र के समान अपने बाणों से राक्षसों को ध्वस्त कर दिया। उन राक्षसों के सिर के बाल खुल कर छितरा गये थे। जिस तरह महामेघ से वज्रपात होता है उसी तरह भगवान् ने राक्षसों को मारा। लड़ते लड़ते जो राक्षस मरने से बच गये उनकी बड़ी दुर्दशा हुई। किन्हीं की छाती टूट फूट गई, कितनों के हाथों से शस्त्र छूट गये, बहुतों के वेश बिगड़ गये; अनेकों की अँतड़ियाँ निकल पड़ीं और कितनों ही की आँखें मारे घबराहट के नाचने लगीं। इस तरह वह सेना पागल की नाईं दिखाई देने लगी। प्राचीन सिंह श्रीविष्णु भगवान् से मर्दन किये गये हाथी रूप राक्षसों का घोर शब्द, हाथियों का चिंघाड़ना और वेग एकही समय पैदा हुआ। हवा से भगाये हुए काले बादलों की नाईं वे राक्षस लंका की ओर भाग गये। वे राक्षसेन्द्र रास्ते में पर्वतों की नाईं गिर रहे थे जिनके सिर चक्र की चोट से कट गये थे, जिनके अङ्ग गदा के प्रहार से चूर्ण हो गये थे और तलवार के प्रहार से जिनके दो टुकड़े किये गये थे। मणि, हार और कुण्डलों से सुशोभित वे विशाल राक्षस, बड़े बड़े नीले पर्वतों की नाईं, ध्वस्त होकर गिरते हुए देख पड़ते थे।

आठवाँ सर्ग ।

माल्यवान् का भी पराजित होकर लंका में भाग जाना और वहाँ से भागकर पाताल में रहना ।

राक्षस भागे हुए लङ्का को जा रहे थे और विष्णु उन्हें पीछे से मारते थे। जब वे सब लङ्का की हद तक पहुँच गये तब विष्णु को देखकर माल्यवान् समुद्र की नाईं फिर लौटा और क्रोध के मारे लाल लाल आँखें किये, सिर हिलाता हुआ, विष्णु के पास आकर बोला—"हे नारायण ! तुम पुराने क्षत्रियों का धर्म नहीं जानते। क्योंकि युद्ध से लौटे हुए और डरे हुए हम लोगों को तुम, अज्ञान की नाईं, मार रहे हो। हे सुरेश्वर ! युद्ध से लौटे हुए को जो मारता है वह पाप करता है। उसे पुण्यात्मा लोगों का स्वर्ग नहीं मिलता। हे शङ्ख-चक्र-गदाधर ! यदि तुम्हारी युद्ध करने ही की इच्छा है तो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। मुझ पर अपना बल दिखलाओ।" इस पर विष्णु बोले—"देखो, तुम लोगों ने देवताओं को बहुत सताया था। मैंने उनसे प्रतिज्ञा कर दी है कि 'मैं राक्षसों का नाश करूँगा। तुम लोग निडर रहो।' मैं अब उसी प्रतिज्ञा का पालन कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे सदा प्राणों से भी देवताओं का प्रिय कार्य करना उचित है। इससे मैं तुम लोगों को जरूर मारूँगा। चाहे तुम लोग रसातल में जाकर छिप रहो फिर भी न छोड़ूँगा।" यह सुनकर माल्यवान् ने विष्णु की छाती में शक्ति से प्रहार किया। घण्टाओं से घनघनाती हुई वह श्रीहरि की छाती में ऐसी शोभित हुई जैसे मेघमण्डल में बिजली शोभा पाती है। भगवान् ने उसे अपनी छाती से निकाल कर माल्यवान् को उसी से मारा। भगवान् के हाथ से छूटी हुई वह शक्ति राक्षस पर ऐसी लपकी मानो एक बड़ा पुच्छलतारा कज्जलगिरि पर झपट कर आया हो। वह उसके पास पहुँचकर, अनेक हारों से भूषित, उसकी छाती पर ऐसी गिरी जैसे पर्वत की चोटी पर वज्र गिरता है। उस प्रहार से उसका कवच फट गया। उसे बेहोशी हो गई। पर थोड़ीही देर में सचेत हो वह फिर अचल की नाईं खड़ा हो गया। बहुत काँटोंवाला लोहे का एक शूल हाथ में लेकर उसने हरि की छाती में मारा। फिर ऊपर से एक मुक्का भी जमाया। यह काम करके वह चार हाथ पीछे को हट गया। उसका ऐसा साहस देखकर आकाश में 'वाह वाह' का बड़ा शब्द सुन पड़ा। इसके बाद समर में मत्त और प्रहार से गर्वित माल्यवान् ने गरुड़ को भी मारा। तब तो गरुड़ बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने पङ्खों की हवा से राक्षस को इस तरह दूर हटा दिया जैसे हवा सूखे पत्तों के ढेर को सहज में उड़ा देती है। गरुड़ के पङ्खों की हवा से भगाये हुए अपने बड़े भाई को देखकर सुमाली अपनी सेना लेकर लङ्का में चला गया। फिर माल्यवान् भी हार मान कर सेना-सहित लङ्का को लौट गया। उस समय वह बहुत लज्जित हुआ।

हे रामचन्द्र ! इस तरह हरि ने संग्राम में राक्षसों को कई बार मारा और उनके प्रधान प्रधान राक्षसों का नाश किया। जब वे भगवान् का सामना न कर सके तब अपनी अपनी स्त्रियाँ लेकर पाताल में चले गये। लङ्का को खाली कर दिया। 'सालकटंकट' वंश के वे राक्षस बड़े पराक्रमी थे। वे पाताल में सुमाली राक्षस के आश्रय में रहने लगे। अपने

जिनको मारा है वे सब तो पुलस्त्य के वंश के थे। सुमाली, माल्यवान् और माली तथा जो इनके अगुवा थे वे सब रावण से अधिक बलवान् थे। हे रामचन्द्र! देवशत्रु, कंटक-तुल्य, राक्षसों को नारायण के सिवा दूसरा कोई मारनेवाला नहीं। इसलिए आप नारायण, देव, चतुर्बाहु, सनातन, अजय्य, अव्यय और साक्षात् प्रभु हैं। राक्षसों को मारने के लिए आपने अवतार लिया है। जब जब धर्म की व्यवस्था नष्ट होती है, तब तब प्रजा की रक्षा के लिए और चोरों को मारने के लिए आप शरणागतवत्सलता से जन्म लेते हैं। हे भूपते! मैंने आप को राक्षसों की उत्पत्ति कह सुनाई, अब रावण के जन्म आदि का हाल कहता हूँ।

दोहा।

सकुल सुमाली रजनिचर, रह्यो रसातल जाइ।
बहुत समय विहरत तहाँ, गयौ विष्णु भय पाइ॥

नवाँ सर्ग।

रावण आदि का जन्म।

कुछ दिन बीतने पर वह सुमाली नामक राक्षस रसातल से निकल कर इस मनुष्य-लोक में सब जगह घूमने लगा। नीले बादलों के समान उसका श्याम वर्ण था। वह तपाये हुए सोने के कुण्डल पहने था और पद्मरहित लक्ष्मी के समान अपनी कुँवारी बेटी को साथ लिये था। इस तरह पृथ्वी पर घूमते घूमते उस राक्षसनाथ ने पुष्पक विमान पर बैठे हुए कुबेरजी को देखा। पुलस्त्यजी के पुत्र विभु धनेश्वर कुबेरजी उस समय, अपने पिता के दर्शनों के लिए, पुष्पक विमान पर चढ़े जा रहे थे। देवता के समान और अग्नि की नाईं उन्हें जाते देखकर राक्षस मर्त्य-लोक से विस्मय-सहित पाताल को चला गया। वहाँ जाकर वह अपने मन में सोचने लगा कि मैं कौन सा उपाय करूँ जिससे मेरा कल्याण हो और हम लोग बढ़ें। यह सोच विचार कर वह अपनी लड़की केकसी से बोला—हे पुत्रि! अब तुम्हारे विवाह का समय आ गया। तुम्हारी यौवनावस्था बीतती जाती है। मना करने के डर से, कोई विवाहार्थी तुमको माँगने के लिए अपना मुँह नहीं खोलता। तुम्हारे लिये हम सब धर्म-बुद्धि से बँध रहे हैं। तुम सब गुणों से सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी के तुल्य हो। मानी लोगों के लिए कन्या बड़े दुःख का कारण होती है। क्योंकि पहले से कोई नहीं जान सकता कि कन्या का विवाह कैसे वर से होगा। माता पिता के कुल को और जिससे ब्याही जाती है उसके कुल को कन्या संशय में डाले रहती है। इसलिए, अब तू ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा मुनि को स्वयं जाकर वर ले। हे पुत्रि! जैसा वह धनेश्वर है वैसे ही सूर्य के समान तेरे पुत्र होंगे।

पिता के ये वचन सुनकर और पिता का गौरव मान कर वह कन्या विश्रवा मुनि के आश्रम में गई। उस समय चतुर्थ अग्नि के तुल्य वे तेजस्वी मुनि अग्निहोत्र कर रहे थे। केकसी ने प्रदोष समय के दारुण समय का कुछ भी विचार न किया। वह ऋषि के सामने जाकर खड़ी हो गई और अपने पैरों को देखती हुई अँगूठे के आगे के हिस्से से ज़मीन खोदने लगी। इतने में मुनि की दृष्टि उस पर अचानक पड़ गई। सुश्रोणी, चन्द्रमुखी और अपने तेज से प्रकाशमान् उस युवती को देखकर मुनि बोले—"हे भद्रे! तू किसकी लड़की है? तू यहाँ कहाँ से आई

है? किसके लिए, क्या काम है? मुझे यह सब ठीक ठीक बतला दे।" यह सुनकर वह कन्या हाथ जोड़ कर बोली—"हे मुने! आप अपने प्रभाव से मेरा मतलब समझ सकते हैं। हे ब्रह्मर्षे! मेरा नाम केकसी है। मैं अपने पिता की आज्ञा से यहाँ आई हूँ। जो और मेरा मतलब है, उसे आपही समझ लीजिए।" तब मुनि ने ध्यान लगा करके उसके मन की बात जान ली। उन्होंने कहा—"हे मत्त-गजेन्द्रगामिनि! मैंने तेरे मन की बात जान ली। तू मुझसे पुत्र की अभिलाषा रखती है। परन्तु इस दारुण समय में तू मेरे पास आई, इसलिए तू जैसे पुत्र जनेगी उन्हें मैं बतलाता हूँ। तू ऐसे पुत्र पैदा करेगी जो बड़े क्रूर कर्म करेंगे, उन बड़े भयानक राक्षसों की सूरत भी भयानक ही होगी और वे भयानक बन्धुओं पर ही प्रीति रक्खेंगे।" यह सुनकर वह फिर प्रणाम करके बोली—"भगवन्! आप ऐसे ब्रह्मवादी के द्वारा मैं ऐसे दुराचारी पुत्र नहीं चाहती। मुझ पर कृपा कीजिए।" इस पर वे श्रेष्ठ ऋषि केकसी से इस तरह बोले जैसे पूर्णचन्द्र रोहिणी से बोलते हैं। उन्होंने कहा—हे वरानने! अच्छा, तेरा पिछला पुत्र मेरे वंश के योग्य धर्मात्मा होगा।

हे रामचन्द्र! कुछ समय बीतने पर केकसी के एक राक्षस पुत्र पैदा हुआ। वह बड़ा डरावना और भयानक था। उसके दस सिर थे। उसके दाँत बड़े-बड़े, आकार कज्जल के पर्वत के समान, लाल ओठ और बीस भुजाएँ थीं। उसका मुँह बड़ा और सिर के बाल चमकीले थे। उसके जन्म के समय गिदड़ियाँ ज्वाला उगलती और मांसाहारी जीव उलटी प्रदक्षिणा करते हुए मँडराने लगे। बड़ी रूखी आवाज से गरजते हुए बादल रुधिर की वर्षा करने लगे। सूर्य की प्रभा मन्द हो गई। आकाश से बड़े बड़े पुच्छल तारे जमीन पर गिरने लगे। भूकम्प हुआ और रूखी हवा चलने लगी। समुद्र खलबला गया। ब्रह्मदेव के तुल्य उसके पिता ने कहा कि 'यह लड़का दस सिरवाला पैदा हुआ है इसलिए इसका नाम दशग्रीव रक्खा जाना चाहिए।' उसके बाद उस राक्षसी के महाबली कुम्भकर्ण पैदा हुआ। उसके परिमाण से अधिक परिमाण वाला कोई प्राणी इस जगत् में नहीं पाया जाता। कुम्भकर्ण के बाद भयङ्कर मुँहवाली सूर्पणखा नामक एक लड़की पैदा हुई। उसके बाद केकसी के विभीषण नामक धर्मात्मा पुत्र पैदा हुआ। उसके जन्म के समय फूलों की वर्षा हुई। आकाश में देवताओं की दुन्दुभियाँ बजीं और 'साधु साधु' की आवाज सुनाई दी।

अब लोकों को चिन्तित करनेवाले रावण और कुम्भकर्ण उसी जंगल में धीरे धीरे बढ़ने लगे। कुम्भ-कर्ण प्रमत्त होकर धर्मवत्सल महर्षियों को पकड़ पकड़ कर खाता और इच्छानुसार घूमा करता था। परंतु उसे भोजन से सन्तोष कभी न होता था। विभीषण सदा धर्म पर आरूढ़, स्वाध्याय और नियताहार में तत्पर रहता तथा जितेन्द्रियतापूर्वक अपना समय बिताता था। कुछ समय बाद एक दिन पुष्पक विमान पर चढ़कर धनेश्वर पिता के दर्शनों के लिए आये। उस समय अपने तेज से प्रज्वलित कुवेर को देखकर केकसी राक्षसी रावण से कहने लगी—"हे पुत्र! अपने भाई वैश्रवण को देखो, तेज से कैसे प्रज्वलित हैं। एक तुम भी उनके भाई हो। देखो कितना फ़र्क़ है। हे दशग्रीव! ऐसा उपाय करो जिससे तुम भी वैश्रवण के तुल्य हो जाओ।" माता की इस बात से रावण को बड़ा डाह हुआ।

उसने प्रतिज्ञा की—"हे मातः! मैं तुमसे सच कहता हूँ, मैं भी अपने पराक्रम से वैश्रवण के तुल्य या उनसे भी अधिक हो जाऊँगा। इसलिए तुम अपने हृदय का सन्ताप छोड़ दो।" अब उसी क्रोध के कारण वह, छोटे भाइयों को साथ ले, दुष्कर कर्म करने की इच्छा से तपस्या के लिए तैयार हुआ। उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि मैं तपस्या करके अपना मनोरथ प्राप्त करूँगा। इसलिए वह गोकर्ण के आश्रम में गया।

दोहा।

अनुज-सहित गोकर्ण महँ, दशमुख अति तप कीन्ह।
भे प्रसन्न ब्रह्मा तबहिं, मन वाञ्छित वर दीन्ह॥

———

दसवाँ सर्ग

रावण आदि तीनों भाइयों की तपस्या और ब्रह्मा से वर-प्राप्ति।

रामचन्द्र ने कहा—"हे मुने! उन महाबली तीनों भाइयों ने कैसी तपस्या की, सो बतलाइए।" यह सुनकर अगस्त्य मुनि बोले—हे राघव! वे तीनों भाई गोकर्ण में जाकर तपस्या करने लगे। कुम्भकर्ण धर्ममार्ग पर स्थिर हो गर्मी में पञ्चाग्नि का सेवन करता, वर्षाऋतु में वीरासन बैठ कर जल की धारा सहता और जाड़े में जल में ठहरता था। इस तरह तपस्या करते करते दस हज़ार वर्ष बीत गये। धर्मात्मा विभीषण नित्य धर्म में तत्पर और पवित्र हो पाँच हज़ार वर्ष तक एक पैर से जमीन पर खड़ा रहा। जब उसका अनुष्ठान समाप्त हुआ तब अप्सरायें नाचने लगीं। फूलों की वर्षा हुई और देवता स्तुति करने लगे। इसके बाद वह पाँच हज़ार वर्ष तक सूर्य की ओर एक दृष्टि से देखता रहा। इस तरह विभीषण के भी, नन्दन वन के विहार-सुख की नाईं, दस हज़ार वर्ष बीत गये। दशग्रीव दस हज़ार वर्ष तक निराहार रहा। जब एक हज़ार वर्ष बीतते थे तब वह अपना एक सिर काट कर अग्नि में हवन कर देता था। इस तरह, नौ हज़ार वर्ष में उसके नौ सिरों का अग्नि में होम हो गया। दसवें हज़ार वर्ष में, जब वह अपना दसवाँ सिर काटने को तैयार हुआ तब, वहाँ ब्रह्माजी आये। वे देवताओं को साथ लिये वहाँ बड़ी प्रसन्नता से आकर बोले—"हे दशग्रीव, मैं प्रसन्न हूँ। तुम जल्दी वर माँगो। कहो, मैं तुम्हारा कौनसा मनोरथ पूरा करूँ? तुम्हारा परिश्रम वृथा नहीं हो सकता।" तब दशग्रीव बहुत प्रसन्न हो, पितामह को प्रणाम कर, गद्गद वाणी से बोला—"भगवन्! प्राणियों को मरने से अधिक दूसरा डर नहीं है। क्योंकि मृत्यु के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है, इसलिए मैं अमरत्व चाहता हूँ।" इतना सुन कर ब्रह्मा ने कहा—"पूरा पूरा अमरत्व तो तुम्हारे लिए हो नहीं सकता। तुम और दूसरा वर माँगो।" ब्रह्मा की ये बातें सुन रावण हाथ जोड़ कर बोला—"हे प्रजाध्यक्ष! गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवता—इनसे मैं अवध्य हो जाऊँ। इन में से मुझे कोई भी मार न सके। इनके सिवा दूसरे प्राणियों का मुझे डर या चिन्ता नहीं है। मनुष्य आदि प्राणियों को तो मैं तिनके के समान समझता हूँ।" यह सुन कर ब्रह्मा ने कहा—"अच्छा ऐसा ही होगा।" यह कह कर वे फिर बोले—"देखो, मैं प्रसन्न हूँ, इसलिए अपनी ओर से भी मैं तुझे वर देता हूँ। वह यह कि तूने जितने सिर अग्नि में

डाले हैं वे तुझे फिर ज्यों के त्यों पहले की तरह मिलेंगे। एक और भी दुर्लभ वर मैं तुझे देता हूँ। जिस समय तू जैसा रूप चाहेगा वैसा ही पावेगा।" इस तरह का वर देते ही रावण के सिर पहले की तरह जहाँ के तहाँ हो गये।

हे रामचन्द्र! फिर विभीषण के पास आकर ब्रह्मा बोले—"हे प्यारे धर्मात्मन्! मैं तुम्हारी धर्म-बुद्धि से प्रसन्न हूँ इसलिए वर माँगो।" यह सुन विभीषण हाथ जोड़ कर बोले—"भगवन्! यदि सब लोगों के गुरु आप मुझ पर स्वयं ही सन्तुष्ट हुए हैं तो मैं कृतार्थ और सब गुणों से परिपूर्ण हो गया, जिस तरह चन्द्रमा किरणों से परिपूर्ण होता है। यदि आप वर माँगने के लिए कहते हैं तो सुनिए। बड़ी विपद् पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म में ही स्थिर रहे और बिना ही सिखलाये मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना सीख जाऊँ। भगवन्! जिन जिन आश्रमों में मेरी जैसी जैसी बुद्धि हो वह सब धर्म-संयुक्त ही हो। मैं उन आश्रमों के धर्म का पालन करूँ। यही सबसे अच्छा वर है। यही मैं चाहता हूँ। क्योंकि धर्म-बुद्धिवालों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।" यह सुन कर प्रसन्नचित्त ब्रह्मा फिर बोले—"हे वत्स! धर्मिष्ठ तो तुम हो ही। इसके सिवा तुम जैसा होना चाहते हो वैसे ही हो जाओगे। राक्षस-कुल में उत्पन्न होने पर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म की ओर नहीं है इसलिए मैं तुमको अमरत्व होने का भी वर देता हूँ।" इतना कह कर जब ब्रह्मा कुम्भकर्ण को वर देने के लिए तैयार हुए तब देवता लोग हाथ जोड़ कर कहने लगे—"हे पितामह! आप कुम्भकर्ण को वर न दीजिए। आप जानते ही हैं कि यह दुष्ट बिना वर पाये ही लोगों को भय दे रहा है। नन्दन वन में सात अप्सराओं को और इन्द्र के दश अनुचरों को यह भक्षण कर चुका है। ऋषियों और मनुष्यों की तो गिनती ही नहीं, न मालूम इसने कितने खा डाले! अब अगर यह वर पा जावेगा तो तीनों लोकों को खा डालेगा। इसलिए वर के बहाने इसे मोहित कर दीजिए जिससे लोकों का कल्याण हो और इसका भी मान बना रहे।" यह सुनकर ब्रह्मा ने सरस्वती का स्मरण किया। भगवती सरस्वती देवी आकर पास खड़ी हो गईं। वे हाथ जोड़ कर बोलीं—"भगवन्! क्या आज्ञा है।" ब्रह्मा बोले—"तुम इस राक्षस के मुँह में प्रवेश करो। और जो मैं चाहता हूँ वह इसके मुँह से कहला दो। ब्रह्मा की आज्ञा पाकर सरस्वती उसके मुँह में घुस गईं। अब ब्रह्मा ने कुम्भकर्ण से कहा—"हे महाबाहो! तुम जो वर चाहते हो वह मांग लो।" कुम्भकर्ण ने कहा—"हे देवदेव! मैं अनेक वर्षों तक सोया करूँ यही चाहता हूँ।" ब्रह्मा—"तथास्तु—ऐसा ही होगा" कह कर देवताओं को साथ ले अपने लोक को चले गये। फिर सरस्वती ने भी उसे छोड़ दिया। ब्रह्मा आदि देवताओं के चले जाने पर जब सरस्वती ने उसे छोड़ दिया तब वह दुष्टात्मा सचेत हुआ। वह मन में दुखी होकर सोचने लगा कि मेरे मुँह से ऐसा वचन कैसे निकल गया। मैं समझता हूँ कि देवताओं ने मुझे मोहित कर दिया था। इस तरह वर पाकर वे सब लसोड़े के जङ्गल में जाकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

——

ग्यारहवाँ सर्ग।

लंका से कुवेर को निकाल कर तीनों भाइयों का वहाँ रहना।

अब रावण आदि तीनों भाइयों को वर प्राप्त हो जाने पर सुमाली निर्भय हो गया। वह अपने अनुचरों को साथ ले रसातल से निकला। मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर ये सुमाली के सचिव थे। वह अपने सचिवों के साथ रावण के पास आया और उसको गले से लगा कर बोला —"हे प्यारे! बड़े आनन्द की बात है कि यह मनोरथ सिद्ध हुआ, तुमने त्रिभुवन-नाथ से उत्तम वर पा लिया। जिस कारण से हम सब लङ्का छोड़ कर रसातल में जा बसे थे वह विष्णु का भय अब नहीं रहा। उनके डर से हम लोग अनेक बार दुखी होकर अपना घर छोड़ भागे और रसातल में घुस गये। यह लङ्का हम लोगों की है। अब उसमें तुम्हारे भाई धनाधिप रहते हैं। यदि हो सके तो साम, दान या युद्ध से उसको अपना कर लो। लङ्का को अपने क़ाबू में कर लेने पर तुम्हीं इसके स्वामी रहोगे। क्योंकि तुमने डूबे हुए राक्षस-वंश का उद्धार किया है, इसलिए तुम हम लोगों के प्रभु हो।" यह सुनकर रावण ने कहा—"धनाध्यक्ष हमारे गुरु (बड़े) हैं। वे गुरु के समान माननीय हैं। इसलिए आप को ऐसा कहना उचित नहीं।" रावण ने मातामह (नाना) को इस तरह समझा दिया तब वह चुप हो गया। कुछ समय बाद रावण से प्रहस्त प्रेमपूर्वक कहने लगा—हे महाबाहो, दशग्रीव! तुमको ऐसा न कहना चाहिए। शूरों के लिए भाईपने की ज़रूरत नहीं। सुनो. एक दृष्टान्त

मैं सुनाता हूँ;—अदिति और दिति दोनों बहनें बड़ी सुन्दर और एक दूसरे की हित करनेवाली थीं। इन दोनों का विवाह कश्यप प्रजापति के साथ हुआ था। उनमें अदिति ने त्रिभुवन के स्वामी देवताओं को उत्पन्न किया और दिति ने दैत्यों को। हे वीर! पहले यह सब पृथ्वी दैत्यों ही की थी। पीछे से विष्णु ने, दैत्यों को मार कर, त्रैलोक्य को देवताओं के वश में कर दिया। इस लिए सोच देखो कि कुछ आप ही नये सिरे से ऐसा उलट पुलट करने वाले नहीं हैं। सुर और असुर तो सदा से ऐसा ही करते आये हैं। इसलिए मैं जो कहता हूँ वह आप कीजिए।

यह सब सुन कर दशमुख रावण मुहूर्त्त भर सोचता रहा, फिर खुश होकर राज़ी हो गया। वह उसी दिन, उन्हीं राक्षसों को साथ लेकर, ख़ुश होता हुआ लंका के पास वन में गया। वहाँ से प्रहस्त को दूत बनाकर कुवेर के पास भेजा। उसने कहा—"हे प्रहस्त, तुम कुवेर के पास जाओ और उससे समझाकर कहो कि हे सौम्य, हे राजन्! यह लङ्कापुरी राक्षसों की है। इस समय इस में आप ही रहते हैं। किन्तु यह उचित नहीं। यदि आप इसे आज हमको दे दें तो आप हमारे साथ बड़ी प्रीति का काम करेंगे। ऐसा करने से धर्म का भी पालन होगा।" सब समझ कर प्रहस्त वहाँ गया और उसने दशग्रीव का सँदेशा कह सुनाया। उसने कहा—"हे सुव्रत! मुझे तुम्हारे भाई दशग्रीव ने भेजा है। उसने यह सँदेशा कहा है कि हे बड़ी आँखोंवाले! इस लङ्कापुरी को बड़े पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसों ने बसाया था और वही इसमें रहते थे। इसलिए यह

हमारी है, इसे अब आप हमको दे दो। हम साम-रूप से आप से प्रार्थना करते हैं।" इस पर कुबेर ने कहा कि यह नगरी सूनी पड़ी थी। इसमें कोई भी राक्षस नहीं रहता था। ख़ाली देखकर पिता ने मुझे यह रहने के लिए दी है। मैंने दान मान आदि देकर नाना प्रकार के लोगों को यहाँ बसाया है। इसको अनेक प्रकार से सजाया है। तुम जाकर दशग्रीव से कहना कि यह पुरी और राज्य आदि जो कुछ मेरा है वह आपका भी है। इसलिए हे महाबाहो! अगर तुम चाहो तो अकंटक राज्य का भी भोग करो। क्योंकि यह राज्य और धन आदि ऐश्वर्य हमारा तुम्हारा जुदा नहीं है।"

इतना कहकर धनाध्यक्ष वहाँ से अपने पिता के पास गये और उन्होंने प्रणाम करके कहा—"हे तात, दशग्रीव ने मेरे पास एक दूत भेजा था। उसने उस से कहलाया है कि 'लङ्का मुझको दे दो। क्योंकि पहले इसमें राक्षस ही रहते थे।' बतलाइए अब मैं क्या करूँ?" यह सुनकर ब्रह्मर्षि विश्रवा बोले—"हे पुत्र, मैं जो कहता हूँ सो सुनो। दशग्रीव ने यह बात मुझसे भी कही थी। परन्तु मैंने उस मूर्ख को ख़ूब फटकार दिया। क्रोध-पूर्वक मैंने बार बार उस से यह भी कहा था कि तू नष्ट हो जायगा। हे पुत्र! तुम कल्याणकारी और धर्म की बात सुनो। वह तो वर पाने से बड़ा पागल हो रहा है। वह नहीं जानता कि मान्य और अमान्य किसको कहते हैं। मेरे शाप से उसका स्वभाव बड़ा बुरा हो गया है। अब तुम कैलास पर जाकर रहो। वहीं नगरी बसाओ—लङ्का को छोड़ दो। कैलास पर सब नदियों से उत्तम मन्दाकिनी नदी बहती है। उसके जल में सूर्य के समान चमकीले सुन्दर कमल फूल रहे हैं। कुईं, सफ़ेद कमल तथा और और भी तरह तरह के सुगन्धित फूलों से वह स्थान बड़ा मनोहर है। वहाँ देवता, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर विहार किया करते हैं। वे सदा उस भूमि का सेवन करते हैं। हे धनद! इस दुष्ट राक्षस से वैर करना ठीक नहीं क्योंकि तुम जानते ही हो कि इसने कैसा बढ़िया वर पाया है।

पिता की इस आज्ञा को मान कर स्त्री, पुत्र, अमात्य, धन और वाहन साथ ले धनेश पिता के बतलाये हुए स्थान पर जाकर बस गये। उधर प्रहस्त ने भी ख़ुश होकर धनाध्यक्ष का सब हाल रावण से कहा। उसने कह दिया कि "कुबेर लङ्का छोड़ कर चले गये। अब वह ख़ाली पड़ी है। आप वहाँ चलिए और हम लोगों के साथ अपने धर्म का पालन कीजिए।" यह सुनकर दशग्रीव अपने भाई, सेना और अनुचर साथ लेकर लङ्का को चला गया। कुबेर ने लङ्का के राजमार्ग अलग अलग बहुत अच्छी तरह से बनवाये थे। जब उन्होंने उसे छोड़ दिया तब वहाँ रावण आनन्द-पूर्वक रहने लगा, मानों स्वर्ग में इन्द्र रहते हों। राक्षसों से राज्य का टीका पाकर रावण उस नगरी को बसाने लगा। थोड़े ही दिनों में, काले काले बादलों के समान, राक्षस उस नगरी में भर गये।

दोहा।

धनदहु शुचि कैलाश पर, भूषित भवन निकाय।
शोभित अमरावति सरिस, नगरी दियो बसाय॥

———

बारहवाँ सर्ग।

रावण आदि का विवाह।

अभिषेक हो जाने पर दशानन ने अपनी बहन के विवाह के लिए सोच विचार किया। फिर कालकेय-वंशी दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व से शूर्पणखा का विवाह कर दिया। वह ख़ुद मृगया करता हुआ जङ्गलों में घूमने लगा। एक दिन वहाँ एक कन्या को साथ लिये दिति का बेटा मय नामक दैत्य दिखाई दिया। उसे देखकर रावण ने पूछा—"मनुष्य-रहित और तरह तरह के जङ्गली जीवों से भरे हुए इस वन में आप अकेले क्यों घूम रहे हैं? आप कौन हैं? और इस मृगनयनी को साथ क्यों लिये हुए हैं?" उसने कहा—"हेमा नामक एक अप्सरा है। शायद आपने उसका नाम सुना हो। उसको देवताओं ने मुझे दे दिया था। मैं उस अप्सरा में एक हज़ार वर्ष तक आसक्त रहा। फिर वह देवताओं के किसी काम के लिए मेरे पास से तेरह वर्ष के लिए चली गई। जब तेरह वर्ष बीत गये तब चौदहवें साल में मैंने माया के बल से एक नगर बनाया। वह सुवर्णमय नगर हीरों और पन्नों की पच्चीकारी से बना हुआ था। उस स्त्री के वियोग से मैं दीन और दुखी होकर, अपने बनाये हुए, उसी नगर में रहने लगा। उसी नगर से यह लड़की लेकर आया हूँ। हे राजन्! यह लड़की उसी अप्सरा से पैदा हुई है। मैं इसके लिए पति ढूँढ़ रहा हूँ। प्रायः सभी मानी पुरुषों के लिए कन्यायें दुःख-रूपा होती हैं। क्योंकि वे मातृकुल और पितृकुल, दोनों को सन्देह में डाले रहती हैं। हे भद्र! हेमा स्त्री से मेरे दो लड़के भी हुए थे। वे मौजूद हैं। एक का नाम है मायावी और दूसरे का नाम दुंदुभि। मेरा यही हाल है। मैंने अपना सब हाल आपको सुना दिया। अब बतलाओ कि तुम कौन हो?" यह सुन कर दशानन बोला—"मैं पुलस्त्य मुनि के लड़के का लड़का हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। मेरे पिता विश्रवा महर्षि हैं। ये ब्रह्मा की तीसरी पुश्त में हैं।" ये वचन सुन कर मय ने समझा कि यह महर्षि का लड़का है। अतएव वह उसको अपनी लड़की देने के लिए तैयार हो गया। दशग्रीव से उसका पाणिग्रहण करवा कर हँसता हुआ वह कहने लगा—"राजन्! यह मेरी लड़की हेमा अप्सरा के पेट से पैदा हुई है। इसका नाम मन्दोदरी है। आप इसे पत्नीरूप से ग्रहण कीजिए।" रावण ने उसे स्वीकार कर और वहीं पर अग्नि प्रज्वलित करके मन्दोदरी का पाणिग्रहण कर लिया। हे रामचन्द्र! यद्यपि मय दैत्य यह जानता था कि रावण को ऋषि ने शाप दिया है तथापि उसको ब्रह्मा के कुल का समझकर अपनी कन्या ब्याह दी। मय ने तपस्या करके एक अमोघ, बड़ी अद्भुत और बड़ी शक्ति पाई थी। वह शक्ति उसने रावण को दे दी। उसने उसी शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया था।

अपना विवाह करके रावण ने दोनों छोटे भाइयों के ब्याह का भी विचार किया। उसने वैरोचन दैत्य की दौहित्री अर्थात् बलि की लड़की की लड़की कुम्भकर्ण के लिए ला दी। उसका नाम वज्रज्वाला था। और गन्धर्व-राज शैलूष की लड़की विभीषण के लिए ला दी। वह धर्मज्ञा थी। नाम उसका सरमा था। सरमा मानस सरोवर के किनारे पैदा हुई थी। वर्षा ऋतु में जब सरोवर का पानी

बढ़ने लगा तब सरमा की माता ने प्रेमपूर्वक चिल्ला कर कहा—"सरो मा वर्धत—अर्थात् हे सर! तू मत बढ़।" इसी कारण उस लड़की का नाम सरमा पड़ गया। हे रामचन्द्र! इस तरह वे राक्षस ब्याह कर अपनी स्त्रियों के साथ विहार करने लगे, जैसे नन्दन वन में गन्धर्व विहार करते हैं। मन्दोदरी के मेघनाद नामक पुत्र हुआ जिसको आप लोग इन्द्रजित् कहते हैं। माता के गर्भ से निकलते ही उसने मेघ के समान गर्जना की जिससे सम्पूर्ण लंका जड़ की तरह हो गई। उसीसे उसके पिता ने उसका नाम मेघनाद रक्खा। हे रामचन्द्र! वह लड़का रावण के अन्तःपुर में बढ़ा। अच्छी स्त्रियों ने उसका पालन-पोषण किया। लकड़ी से ढकी हुई अग्नि की नाईं वह बढ़ गया।

दोहा।

हर्ष देत पितु मातु कहँ, बढ़यो पुत्र घननाद।
जाके छल बल समर ते, पायो जगत विषाद॥

तेरहवाँ सर्ग।

रावण के पास कुबेर का दूत भेजना और दूत का मारा जाना।

अब ब्रह्मा की दी हुई नींद ने कुम्भकर्ण को घेरना आरम्भ किया। उसने उसे ऐसा घेरा मानों वह रूप धारण कर आई हो। उस समय कुम्भकर्ण ने रावण से कहा—"राजन्, मुझे नींद सता रही है। मेरे लिए मकान बनवा दीजिए।" रावण ने विश्वकर्मा के तुल्य राजों (शिल्पियों) को मकान बनाने के लिए आज्ञा दी। राजा की आज्ञा से उन्होंने एक योजन चौड़ा और दो योजन लम्बा बड़ा सुन्दर घर बना कर तैयार कर दिया। उसमें स्फटिक और सोने के खम्भे लगे थे; पन्नों की सीढ़ियाँ और हाथीदाँत के तोरण थे जिनमें बराबर घुँघरू बँधे हुए थे। उसमें हीरों तथा स्फटिकों के चौतरे बने थे। वह मकान बड़ा मनोहर और सब के लिए सुख देने वाला तथा सब ऋतुओं में रहने लायक़ ऐसा था मानों मेरु की कन्दरा हो। वह मकान बन कर तैयार होगया कुम्भकर्ण उसमें कई हज़ार वर्ष तक पड़ा सोता रहा। बीच में वह एक बार भी न जागा। कुम्भकर्ण के सोने के समय में, रावण निरंकुश (निडर) हो कर देवता, ऋषि, यक्ष और गन्धर्वों को मारता फिरता था। अच्छे अच्छे बाग़-बग़ीचों और देवताओं की नन्दन आदि वाटिकाओं को वह उजाड़ कर फेंक देता था। उस समय वह रावण नदी के किनारे को हाथी की नाईं, वृक्षों को वायु की नाईं और पर्वतों को वज्र की नाईं ध्वंस करता फिरता था।

धनेश्वर ने रावण के सब चरित्र सुन कर अपने कुल की चाल और रीति का स्मरण कर, अपना अच्छा भाईपन दिखलाने के लिए, रावण के पास अपना दूत भेजा। दूत पहले विभीषण से मिला। विभीषण ने उससे आने का कारण पूछा; उन्होंने उसका आदर भी किया और धनाधिप के कुटुम्बी लोगों का भी कुशल-मङ्गल पूछा। फिर उसे राजसभा में ले जा कर रावण को दिखलाया। तेज से प्रदीप्त राजा को देख कर दूत ने 'जय महाराज' कहा। दूत कुछ देर तक तो चुप रहा, फिर थोड़ी ही देर में, सब हाल कहने के लिए, वह तैयार हुआ। उसने कहा—"राजन्! आपके भाई कुबेर ने चरित्र और कुल के विषय में जो उचित बात कही

है उसे आप सुन लीजिए। आपने अब तक जो कुछ किया वह बहुत हो चुका। अब आगे के लिए बस करो। आगे से अच्छे कामों का संग्रह करो—अच्छे काम करके अपना चरित्र सुधारो और धर्म के कामों में यथाशक्ति अपना मन लगाओ। हे भाई! मैंने नन्दन वन को उजड़ा हुआ देखा है, ऋषियों के वध का समाचार पाया है और यह भी सुना है कि आपके विपक्ष में देवता उद्योग कर रहे हैं। हे राक्षसराज! यद्यपि तुमने कई बार मेरा निराकरण किया है तथापि अपराध करनेवाले बालक की बन्धुगणों को रक्षा ही करनी चाहिए। मैं तो हिमालय पर धर्म का आचरण करने के लिए आया था। वहाँ रुद्रसम्बन्धी व्रत को नियमपूर्वक ग्रहण कर और इन्द्रियों को वश में करके अपने काम में लगा हुआ था। यहाँ मैंने पार्वती के साथ शिवजी का दर्शन पाया। दैवयोग से देवी ने मेरे दहिने नेत्र का नाश कर दिया। उस नेत्र से मैंने केवल यही देखना चाहा था कि 'यह कौन हैं'। इतना ही मेरा अपराध है, और कोई अपराध मैंने नहीं किया। यह इसलिए हुआ कि रुद्राणी वहाँ अनुपम रूप बना कर रहती हैं। उन देवी के दिव्य प्रभाव से मेरी बाईं आँख जाती रही। धूल से नष्ट प्रकाश की तरह होकर वह पीली पड़ गई। इसके बाद मैं उसी पर्वत के एक विस्तीर्ण स्थान में, आठ सौ वर्ष तक, मौन महाव्रत धारण किये बैठा रहा। जब मेरा नियम समाप्त हो गया तब भगवान् महेश्वर ने प्रसन्न होकर कहा कि हे धर्मज्ञ! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हुआ। हे धनाधिप! मैंने भी यही व्रत किया था और उसी को तुमने भी निबाहा। हम दोनों के सिवा तीसरे मनुष्य का सामर्थ्य नहीं जो इस व्रत को कर सके। इस दुष्कर व्रत का प्रचार पहले मैंने ही किया था, इसलिए हे धनाधिप! आज से तुम मेरे साथ मैत्री करो। तपस्या के द्वारा तुमने मुझको जीत लिया। अब तुम मेरे मित्र हो गये। देवी ने अपने प्रभाव से तुम्हारी बाईं आँख जो जला दी और उनका रूप देखने के कारण जो वह पीली हो गई इसलिए तुम्हारा एकाक्षि पिङ्गली नाम सदा प्रसिद्ध रहेगा। मैंने इस तरह शिव के साथ मैत्री की और उनसे अपने घर पर आने के लिए आज्ञा भी प्राप्त की। घर आने पर मैंने तुम्हारी करतूत की ख़बर पाई। अब तुम कुल के दूषण मत बने रहो। अधर्मियों का साथ छोड़ दो; बुरे काम करना त्याग दो। क्योंकि ऋषि और देवता लोग तुम्हारे मारने का उपाय सोच रहे हैं।"

यह सुन कर दशानन ग़ुस्से में भर गया। उसकी आँखें लाल हो गईं। वह हाथों और दाँतों को पीसता हुआ बोला—"हे दूत! तू जो कुछ कह रहा है वह मैं समझ गया। अब न तू बचता है और न वह भाई, जिसने तुझे भेजा है। धनरक्षक ने जो कुछ कहा है उसमें मेरी भलाई की कोई बात नहीं है। वह मूर्ख मुझको शिव की मैत्री सुनाता है। जो तूने कहा है उसे मैं क्षमा नहीं कर सकता। हे दूत! अब तक मैंने उसे जो क्षमा किया, उसका एक कारण है। वह यह कि वह मेरा बड़ा भाई है। अब तक मैं उसका मारना अनुचित समझ कर चुप रहा। परन्तु इस समय उसकी बातें सुन कर मैंने अपने मन में यही ठान लिया है कि अपने बाहुबल से मैं तीनों लोकों को जीतूँगा। और एक मात्र उसी के कारण चारों लोकपालों को मार कर इसी समय यमपुरी को भेज दूँगा।" इतना कह कर

रावण ने तलवार उठाई और दूत को मार डाला। उस दुष्ट ने दूत को मार कर उसी समय राक्षसों को भक्षण करने के लिए उसकी लाश दे दी।

दोहा।

परम मङ्गलाचार करि, होइ सो रथ आरूढ़।
तीन लोक जीतन चल्यो, तामस प्रकृति विमूढ़॥

——

चौदहवाँ सर्ग।

रावण का पहले कुबेर को जीतना।

अब रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण और धूम्राक्ष इन छः मन्त्रियों के साथ ले, क्रोध में भर कर, लोकों को जलाता हुआ सा नगर, नदी, पर्वत, वन और उपवनों को लाँघ कर मुहूर्त्त भर में कैलास पर्वत पर जा पहुँचा। जब यक्षों ने सुना कि रावण अपने मंत्रियों को साथ लेकर युद्ध करने की इच्छा से चढ़ाई करके आया है तब वे ऐसे डर गये कि उसके सामने खड़े होने तक का उनमें सामर्थ्य न रहा। इसे कुबेर का भाई जान कर उन्होंने धनाधिप से उसका मतलब कह सुनाया। उस समय, सुनतेही, कुबेर ने युद्ध करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही सेना में ऐसी खलबली मच गई मानों समुद्र का क्षोभ हुआ हो। उस समय ऐसा जान पड़ा मानो पर्वत थरथरा उठा। फिर यक्षों और राक्षसों का बड़ा ही घोर युद्ध हुआ। उसमें राक्षस के मंत्री बहुत पीड़ित हुए। जब रावण को अपनी सेना का पीड़ित होना मालूम हुआ तब वह क्रोध में भर कर हर्षनाद करता हुआ दौड़ा। रावण के मंत्री हज़ार हज़ार यक्षों से लड़ने लगे। थोड़ी देर में गदा, मूसल, तलवार, शक्ति और तोमरों की मार खाता हुआ वह रावण यक्षों की सेना में घुस पड़ा। चारों ओर से बिना साँस की नाईं यक्ष लोग घेर कर उसको मारने लगे। मेघ की धारा की तरह वह चारों ओर से घेर लिया गया। वह ख़ूब मारा गया तो भी शस्त्रों की चोट उसे पीड़ित न करती थी। उस समय उसकी ऐसी दशा हो रही थी जैसे वर्षा से पर्वतों की होती है। तेज़ हवा चलने से जैसे सूखे तिनके और लकड़ी आदि चीज़ों को आग जला डालती है उसी तरह अब वह रावण काल-दण्ड के समान गदा लेकर यक्षों का नाश करने लगा। मारते मारते उसने यक्षों को भस्म कर दिया। रावण के मंत्री महोदर और शुक आदि ने इतने यक्षों को मारा कि वे बहुत थोड़े रह गये। जैसे तेज़ हवा बादलों को उड़ा देती है उसी तरह उसने यक्षों को मार भगाया। उनमें कुछ तो शस्त्रों के प्रहारों से कटकुट गये, बहुत से ज़मीन पर गिर गये और बहुत से मारे क्रोध के दाँतों से ओठ चबाने लगे। लड़ते लड़ते वे ऐसे थक गये कि एक दूसरे के शरीर में लिपटने लगे। उनके शस्त्र ज़मीन पर गिर पड़े। वे चोट खा खा कर ऐसे पीड़ित हुए जैसे जल की टक्कर से नदी के किनारे। बहुत से यक्ष पृथ्वी पर दौड़ रहे थे, बहुत से युद्ध कर रहे थे और बहुत से शत्रुओं के द्वारा निहत होकर स्वर्ग जा रहे थे। वहाँ पहुँच कर वे भी युद्ध देख रहे थे। इससे युद्ध देखनेवाले ऋषियों को आकाश में ठहरने के लिए, भीड़ के मारे, जगह नहीं मिलती थी। कुबेर ने अपने यक्षों का सर्वनाश होता देखकर और भी बहुत से यक्षों को लड़ने के लिए भेजा। राजा ने संयोधकण्टक नामक यक्ष को बहुत बड़ी सेना और

अनेक वाहनों के साथ भेजा। वह बड़ा बली था। सेना में पहुँचतेही उसने एक चक्र के द्वारा मारीच को ऐसा मारा कि वह पर्वत पर से ज़मीन पर ऐसा जा पड़ा जैसे पुण्य के क्षीण हो जाने पर आकाश से ग्रह गिरता है। थोड़ी देर में सचेत होकर उसने यक्ष से फिर युद्ध करना आरम्भ किया। यक्ष उसके प्रहार से भग्न हो गया और वहाँ से भाग गया। इसके बाद रावण सोने से चित्रविचित्र बने, और पत्ते तथा चाँदी से सजे हुए—डेउढ़ी की मर्यादा रूप—तोरण के भीतर घुसने लगा। हे राजन् रामचन्द्र! उस समय द्वार की रक्षा करने के लिए सूर्यभानु तैनात था। उसने रावण को रोका। पर वह क्यों मानता? वह रोकता ही जाता था और रावण भीतर घुसता ही जाता था। जब द्वारपाल ने देखा कि यह इस तरह नहीं मानता तब वह द्वार का तोरण उखाड़ कर उससे रावण को पीटने लगा। उस समय तोरण की चोट खाने से रुधिर बहाता हुआ रावण ऐसा देख पड़ता था मानों गेरू बहाने वाला पर्वत हो। यद्यपि पर्वत के शिखर के आकार के तोरण से वह पीटा गया था तथापि ब्रह्मा के वरदान से वह धरती पर न गिरा। उसी तोरण से उसने भी यक्ष पर प्रहार किया। उसके प्रहार से वह यक्ष ऐसा चूर चूर हो गया कि उसका चिह्न तक कहीं दिखाई न दिया। राक्षस की इस तरह की बहादुरी देखकर यक्ष लोग थक कर, मुँह का रंग बदले, शस्त्र छोड़ छोड़ कर डर के मारे भाग गये और नदी तथा गुफाओं में जा छिपे।

———

पन्द्रहवाँ सर्ग ।

रावण का कुवेर को जीतकर पुष्पक विमान छीन लेना ।

अपनी सेना के यक्षों को डरा हुआ देख कर कुवेर ने मणिभद्र नामक महायक्ष से कहा—"हे यक्षेन्द्र! तुम इस दुष्ट और पापी रावण को मारो और वीर यक्षों की रक्षा करो।" यह आज्ञा सुन कर वह महादुर्जय यक्ष, चार हज़ार यक्षों को साथ लेकर, रावण से लड़ने के लिए गया। उसके साथी यक्ष गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर, और मुद्गरों से मारते हुए राक्षसों पर दौड़ पड़े। उन्होंने बड़ा ही घोर युद्ध करना आरम्भ किया। बाज़ की तरह मंडलाकार जल्दी जल्दी पैंतड़े बदलते हुए "बहुत अच्छा दे, नहीं चाहता दे आदि" वीर भाषण कर वे लड़ने लगे। देवता, गन्धर्व और ब्रह्मर्षि उस तुमुल युद्ध को देख कर बड़ा आश्चर्य करने लगे। प्रहस्त ने हज़ार यक्षों को और महोदर ने भी एक हज़ार को मार गिराया। मारीच ने दो हज़ार यक्षों को निमेषमात्र में नष्ट कर दिया। हे पुरुषव्याघ्र! कहाँ तो सीधे मार्ग का बेचारे यक्षों का युद्ध और कहाँ मायावी राक्षसों का! माया का सहारा लेने ही के कारण राक्षस यक्षों से युद्ध में प्रबल थे। कुछ देर में धूम्राक्ष ने मणिभद्र की छाती में एक मूसल मारा, पर वह उस चोट से काँपा तक नहीं प्रत्युत उसने भी धूम्राक्ष के सिर पर गदा का प्रहार किया। उस प्रहार से वह मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर गया। रुधिर से लथपथ हुए उसकी ऐसी दशा देख कर रावण यक्ष पर दौड़ा। रावण को दौड़ कर आता देख कर यक्ष ने तीन शक्तियों से उस पर प्रहार

किया। उस प्रहार को सहकर रावण ने मणिभद्र के मुकुट पर प्रहार किया। उस वार से उसका मुकुट नीचे गिर गया। उस समय से वह यक्ष 'पार्श्वमौलि' कहलाने लगा। जब वह महाबली यक्ष युद्ध से पराङ्मुख हो गया तब उस पर्वत पर राक्षसों का महानाद हुआ।

इसके बाद कुवेर भी गदा लिये दूर से दिखाई दिये। उनके साथ खज़ाने की रक्षा करनेवाले शुक्र और प्रौष्ठपद दोनों मंत्री भी थे। पद्म और शङ्ख ये दोनों खजाने के देवता भी कुवेर के साथ थे। अब धनाध्यक्ष वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ, शाप के कारण आँखों में शील न रखनेवाले, अपने भाई रावण को देखा। पितामह के कुल के लोगों को जो कहना या जिस तरह बोलना उचित था उसी तरह उन्होंने कहा—"हे दुर्मते! मेरी मना की हुई बात तू नहीं मानता। इसका फल पाकर जब तू नरक में जायगा तब पीछे तुझे सूझेगा। जो मनुष्य अनजान होकर विष पी लेता है वह परिणाम में उसका फल समझता है। तुम्हारे किसी भी धर्मयुक्त काम से देवता प्रसन्न नहीं हैं। इसी से तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। इस समय तुझे हित-अहित का कुछ भी विचार नहीं है। जो मनुष्य माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अनादर करता है। वह जब प्रेतराज के वश में जाता है तब उसका फल पाता है। इस अनित्य शरीर से जो तपस्या नहीं करता वह मूर्ख मरने पर, अपनी गति पाकर, पछताता है। किसी भी दुर्बुद्धि मनुष्य को आपही आप मति नहीं उपजती। वह जैसा काम करता है वैसाही फल पाता है। सब लोग अपने ही पुण्य कर्मों से धन, रूप, बल, पुत्र, सम्पत्ति और शूरता प्राप्त करते हैं। तू नरकगामी है। क्योंकि तेरी बुद्धि ही ऐसी है। इसलिए मैं तुझसे अधिक बातचीत न करूँगा। बुद्धिमानों की राय है कि मूर्ख मनुष्य के साथ अधिक बातचीत न की जाय।" यह कहकर कुवेर ने मारीच आदि उसके मंत्रियों पर ऐसा प्रहार किया कि वे सब वहाँ से भाग गये। रावण के सिर में भी एक गदा मारी पर वह वहाँ से न हटा। फिर वे दोनों एक दूसरे पर चोटें करने लगे। लड़ते लड़ते उन दोनों में से एक भी न घबड़ाता था और न थकता ही था। कुछ देर बाद कुवेर ने रावण पर आग्नेयास्त्र छोड़ा, तब उसने उसे वारुणास्त्र से रोका। फिर राक्षसराज ने राक्षसी माया फैलाई और कुवेर के विनाश के लिए उसने एक लाख रूप धारण किये। वह उस समय व्याघ्र, सुअर, मेघ, पर्वत, सागर, वृक्ष, यक्ष और दैत्य के रूपों में दिखाई देने लगा। उस समय उसके इस तरह के अनेक रूप दिखाई देते थे। किन्तु उसका असली रूप दिखाई न पड़ता था। अब दशानन ने महाअस्त्र से गदा का अभिमन्त्रण कर धनद के मस्तक पर प्रहार किया। उस चोट से वे विह्वल हो गये और ख़ून की धारा बहाते हुए जड़-कटे अशोक वृक्ष की नाईं ज़मीन पर धम से गिर गये। तब पद्म आदि निधियों ने उनको उठाकर नन्दन वन में पहुँचाया और सचेत किया। इस तरह रावण ने धनद को जीत कर बड़ी ख़ुशी मनाई। फिर उसने जय के चिह्न-स्वरूप कुवेर के पुष्पक विमान को छीन लिया। उस विमान में सोने के खंभे लगे हुए थे। वह वैदूर्यमणि के तोरणों से सुशोभित था। मोतियों के जाल से वह ढँका हुआ था। सब काल में फल देनेवाले वृक्षों से वह युक्त था, मन की सी उसकी चाल थी।

वह इच्छानुसार जानेवाला, कामरूपी पक्षी की तरह उड़नेवाला, मणि और सोने की सीढ़ियों से शोभायमान था। वह काञ्चन की बैठकों से मनोहर, देवताओं की सवारी के योग्य, नाश-रहित, सदा मन और दृष्टि को सुखदाता था। वह बड़ी अद्भुत कारीगरी से बनाया गया था। उसे ख़ुद ब्रह्मा ने बनवाया था। वह सब तरह के मनोरथ पूरा करनेवाला और अनुपम था। वह न ठंडा था न गरम। वह सब ऋतुओं में सुख देनेवाला था। उस पर सवार होकर मूर्ख रावण ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि अब मैंने तीनों लोक जीत लिये। वह इस तरह वैश्रवण देव को जीत कर कैलास पर्वत से उतर कर नीचे आया।

दोहा।

एहि विधि धनदहि जीति सो, मुकुट हार कमनीय।
चढ़ि विमान शोभ्यो मनों, यज्ञानल रमणीय॥

सोलहवाँ सर्ग।

दशानन का कैलास उठाना और 'रावण' नाम पाना।

हे रामचन्द्र! इस तरह अपने भाई कुवेर को जीत कर वह दुष्ट स्वामि-कार्तिक के उत्पत्तिस्थान, सोने की सरहरी के जङ्गल, में घुस गया। वहाँ वह देखने लगा कि यह सोने की सरहरी का जंगल बड़ा अद्भुत और किरणों से वेष्टित सूर्य के समान चमकीला क्यों है? इस तरह पर्वत पर चढ़ा हुआ वह देख ही रहा था कि इतने में पुष्पक विमान चलते चलते रुक गया। अब तो वह बड़ा चकित हुआ। वह सोचने लगा कि यह विमान कामगामी होने पर भी इस समय नहीं चलता—इसका क्या कारण है। वह अपने मंत्रियों के साथ विचार करने और कहने लगा कि यह विमान पहले तो मेरी इच्छा के अनुसार चलता था पर अब नहीं चलता। इसका क्या कारण है? मेरी समझ में यह पर्वत के ऊपर रहनेवाले किसी का काम है। इतने में मारीच ने कहा—"बिना किसी कारण के तो इसका चलना बन्द हो ही नहीं सकता। शायद यह बात हो कि यह कुवेर के सिवा दूसरे को न ले जा सकता हो। इसी कारण से रुक गया हो।" इस तरह परस्पर बातचीत हो ही रही थी कि इतने में नन्दीश्वर प्रकट हुए। उनका विकराल, कृष्णपिंगल वर्ण था, और छोटा डील था। वे विकट, मूँड़ मुँड़ाये थे, और छोटी छोटी उनकी भुजाएँ थीं। वे सदाशिव की सेवा में सदा लगे रहते थे। रावण के पास आकर उन्होंने कहा—"हे दशानन! तू यहाँ से चला जा। इस पर्वत पर श्रीभगवान् शंकर क्रीड़ा कर रहे हैं। गरुड़, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस आदि कोई भी प्राणी इस पर्वत पर नहीं जा सकता। किसी में यह सामर्थ्य नहीं है जो इस पर चढ़ सके। इसलिए तुम अपना विमान लेकर लौट जाओ।" इतना सुनते ही क्रोध के मारे रावण आग-बबूला हो गया। वह अपने कुण्डलों को हिलाता हुआ लाल लाल आँखें करके पुष्पक विमान से उतर कर कहने लगा—"वह शंकर कौन है?" फिर वह आकाश-मार्ग से पर्वत पर उतर पड़ा। वह वहाँ क्या देखने लगा कि एक बड़ा प्रज्वलित शूल हाथ में लिये नन्दीश्वर शिव ही के पास खड़े हैं। वानर के समान नन्दीश्वर का मुँह देख रावण ठट्ठा मार कर ऐसा हँसा मानों

पानीवाला बादल गरजा हो। साक्षात् शिव की दूसरी मूर्त्ति नन्दीश्वर जी उसका हँसना देखकर बड़े क्रुद्ध हुए और बोले—"रे दशानन! तू मेरे बानर रूप का अनादर कर वज्राघात के समान हँसा है इसलिए मेरे समान पराक्रमी, मेरे तुल्य रूप और तेज रखनेवाले बानर तेरे कुल का नाश करने के लिए उत्पन्न होंगे। वे मन के तुल्य वेगवान्, युद्ध करने में उन्मत्त, महाबली और पर्वताकार होंगे। तेरे प्रबल अहंकार को और बड़प्पन को वे ही दूर करेंगे। वे न केवल तेरा ही किन्तु तेरे मन्त्रियों और पुत्रों का भी मान ध्वंस करेंगे। मैं तो तुझे इसी समय मार सकता हूँ पर मारना नहीं चाहता। क्योंकि तू अपने बुरे कर्मों से पहले ही मर चुका है। मरे हुए को क्या मारना?" ये वचन नन्दीश्वर के मुँह से निकलते ही आकाश में दुन्दुभि के शब्द होने लगे और फूलों की वर्षा हुई।

नन्दीश्वर की बातों का कुछ भी विचार न कर के क्रोध में भरा हुआ रावण बोला—हे रुद्र! तुम्हारे जिस पर्वत के कारण मेरे पुष्पक का चलना बन्द हुआ है उसी को मैं उखाड़ फेंकता हूँ। शिव किस प्रभाव से रोज़ राजा की नाईं क्रीड़ा किया करते हैं। जिस बात को जानना चाहिए उसे वे नहीं जानते। उन्हें जानना चाहिए कि भय का स्थान आ गया है। हे रामचन्द्र! इस तरह कह कर दशानन अपनी भुजाओं को पर्वत के नीचे घुसेड़ने और उसे उठा कर तौलने लगा। यह काम उसने बहुत जल्दी किया। उसके उठाने से पर्वत हिलने डोलने लगा और इससे शिव के सब गण काँपने लगे। पार्वती भी चकित होकर शिव के शरीर से चिपट गईं। तब तो देवों के देव भगवान् श्रीहर ने उस पर्वत को, खेल के समान, एक पैर के अँगूठे से दबा दिया। उसके दबने से पर्वत के नीचे खम्भों के समान जो रावण की भुजायें लगी थीं वे पिचने लगीं। यह चमत्कार देख कर रावण के मन्त्री चकित हो गये। तब क्रोध से और भुजाओं के दबने से रावण ने ऐसा भयङ्कर शब्द किया जिससे तीनों लोक काँप उठे। उसके मन्त्रियों ने तो महाप्रलय के वज्रों की रगड़ की नाईं उसको समझा। इन्द्र आदि देवता अपने मार्ग से विचलित हो गये। समुद्र खलबला उठे और पर्वत हिल गये। यक्ष, विद्याधर और सिद्ध लोग कहने लगे कि हैं यह क्या है! उसके अमात्यों ने कहा कि "हे दशानन! तुम उमापति नीलकण्ठ महादेव को सन्तुष्ट करो। बिना उनके तुम्हारे लिए दूसरी शरण हमको नहीं देख पड़ती। तुम नम्र होकर स्तुति करते हुए उन्हीं की शरण में जाओ। शंकर कृपालु हैं। जो वे सन्तुष्ट हो जायँगे तो तुम पर प्रसन्न होंगे।" मन्त्रियों की बातें सुनकर वह प्रणाम करके सामवेद के स्तोत्रों से शिव की स्तुति करने लगा। इस प्रकार जब रोते रोते एक हज़ार वर्ष बीत गये तब भगवान् शिव रावण से सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उस दाब से उसकी भुजायें छुड़ा दीं। फिर वे उससे कहने लगे—"हे दशानन वीर! मैं तेरे सामर्थ्य से प्रसन्न हुआ। हे राजन्! पर्वत की दाब में फँसकर जो तुमने बड़ा नाद किया और जिससे तीनों लोक डर गये इस कारण आज से तुम्हारा नाम 'रावण' हुआ। देवता, मनुष्य, यक्ष और जो पृथिवी पर हैं वे सब तुमको 'रावण' कहेंगे। क्योंकि तुमने लोगों को रुलाया है। हे पौलस्त्य! अब तुम जिस मार्ग से जाना चाहते हो उससे चले जाओ। मैं तुमको आज्ञा

देता हूँ। हे राक्षसाधिप! अब तुम इच्छानुसार जाओ।" यह सुनकर रावण ने कहा—"हे महादेव! जो आप प्रसन्न हुए हैं तो मैं जो वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिए। हे प्रभो! बड़े बली देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक और नाग आदि से मैं अवध्य हूँ। इनमें से मुझे कोई भी मार नहीं सकता। मनुष्यों को तो मैं कुछ समझता ही नहीं। क्योंकि मैं उन्हें बहुत निर्बल समझता हूँ। हे त्रिपुरान्तक! मैंने ब्रह्मा से बड़ी उम्र भी पाई है। आप अब मुझे बाक़ी आयुर्बल और एक बढ़िया शस्त्र दीजिए।" यह सुन कर शिव ने एक बड़ी चमकीली 'चन्द्रहास' नामक तलवार उसको दी। बाक़ी आयुर्बल भी उसे दिया। शिव ने उसे ऐसा पुष्प भी दिया जो शाप आदि से या दुष्कर्म से नष्ट न हो। उन्होंने कहा—"इस शस्त्र का कभी अनादर न करना, नहीं तो यह फिर मेरे ही पास चला आवेगा।" इस तरह महेश्वर से अपना 'रावण' नाम पाकर और उनको प्रणाम कर वह पुष्पक विमान पर चढ़ गया। हे रामचन्द्र! इसके बाद वह पृथ्वी पर घूम कर क्षत्रियों को सताने लगा। कितने ही बेचारे तेजस्वी, शूरवीर और युद्ध में दुर्मद क्षत्रिय उसकी आज्ञा न मान कर सपरिवार विनष्ट हो गये। बाक़ी जो चतुर और समझदार राजा थे वे रावण को दुर्जय जान कर बोले—भाई! तुमने मुझे जीत लिया।

दोहा।

बर-बल-गर्वित रजनिचर, भ्रमत फिरत महि माँहि।
मायाछल अतिशय प्रबल, जीति सके को ताहि?

———

सत्रहवाँ सर्ग।

रावण को वेदवती का शाप।

हे रामचन्द्र! वह महाबाहु राक्षस इस तरह घूमता फिरता हिमाचल के वन में जाकर घूमने लगा। वहाँ उसने एक कन्या देखी। वह काले मृग का चर्म और जटा धारण किये, ऋषियों के तुल्य आचरण करती थी और देवता की तरह देदीप्यमान थी। उस रूप-सम्पन्न और महा-व्रत करनेवाली कन्या को देख कर रावण काम-मोह से व्याकुल होकर हँसता हुआ पूछने लगा—हे भद्रे! यह तुम क्या कर रही हो? ये सब काम तो तुम्हारे यौवन के विरुद्ध हैं। तुम्हारे इस रूप के लिए ये सब काम अनुचित हैं। हे भीरु! तुम्हारा यह रूप तो मनुष्यों को कामोन्मत्त करनेवाला है। इसलिए यह योग्य नहीं कि तुम तपस्या करो। तुम्हारे लिए यही निर्णय ठीक है। भला यह तो बताओ कि तुम किसकी लड़की हो और तप क्यों कर रही हो? तुम्हारा पति कौन है? मैं समझता हूँ कि जो तुम्हारा पति होगा वह मनुष्य इस संसार में बड़ा ही पुण्यवान् है। हे वरानने! मुझे तुम सब बात बतलाओ। इतना बड़ा परिश्रम तुम किस लिए करती हो?

रक्षसराज की ये बातें सुनकर तपस्विनी कन्या, ऋषि की भाँति, रावण का सत्कार कर बोली—हे दशानन! बड़े तेजस्वी और ब्रह्मर्षि कुशध्वज मेरे पिता थे। वे बृहस्पति के पुत्र थे। बुद्धि में भी वे बृहस्पति के समान थे। वे प्रतिदिन वेद-पाठ करते थे। मैं उन्हीं महात्मा की वाणीरूप कन्या हूँ। मेरा नाम वेदवती है। कुछ दिन बाद देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पिता के पास जाकर मेरा

विवाह चाहने लगे। परन्तु हे राक्षसेश्वर ! उन्होंने मुझे उनको न दिया। मैं इसका कारण बतलाती हूँ, सुनो। मेरे पिता चाहते थे कि जामाता विष्णु हों। इसलिए वे मेरा विवाह दूसरे के साथ करना नहीं चाहते थे। इतने में एक शम्भु नामक दैत्यों के राजा ने मेरे पिता की ये सब बातें सुनीं। क्रुद्ध होकर उसने, रात में सोते हुए, मेरे पिता को मार डाला। मेरी बेचारी माता दीन होकर पति के साथ ही जल गई। उसके बाद मैंने सोचा कि नारायण के विषय में, मैं अपने पिता का मनोरथ सत्य करूँ। यह सोच कर मैं हृदय से वही काम कर रही हूँ। मैं प्रतिज्ञापूर्वक महातप कर रही हूँ। मैंने अपने मन में यही दृढ़ निश्चय कर लिया है कि नारायण पुरुषोत्तम के सिवा दूसरा मेरा पति न हो। इसी से मैं यह घोर नियम करके तप कर रही हूँ। हे राजन्! मैंने तुमको जान लिया कि तुम पौलस्त्य कुलवाले के पुत्र हो। तपोबल से मैं सब कुछ जान सकती हूँ। मैं तप के बल से तीनों लोकों की बातें जान लेती हूँ।

यह सुनकर कामबाण से पीड़ित रावण विमान पर से उतर कर कहने लगा—हे सुश्रोणि ! तू गर्वीली है। ऐसी बातें करने से और अपने में इस तरह की बुद्धि रखने से तू गर्विणी है। हे मृग-नयनि ! पुण्यों का बटोरना वृद्धों को शोभा देता है। तू तो सब गुणवाली है। तुझे ऐसा कहना नहीं फबता। तू त्रैलोक्य-सुन्दरी है। तेरा यौवन बीता जा रहा है। हे भद्रे ! मैं लङ्कापति हूँ। मेरा नाम दशानन है। तू मेरी स्त्री बन जा। तू यथेष्ट सुखों का भोग कर। वह विष्णु कौन है, जिसका तूने वर्णन किया। जिसको तू चाह रही है वह कोई क्यों न हो पर वीर्य, तप, भोग और बल में मेरे तुल्य कभी नहीं हो सकता।

रावण की ये बातें सुनकर वह बोली—"नहीं नहीं, ऐसा तुम न कहो। तुम्हारे सिवा दूसरा ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो त्रैलोक्य के स्वामी और सब लोकों से नमस्कृत श्रीविष्णु का अनादर करेगा ?" इतना सुनकर रावण वेदवती के पास गया। उसने उसके सिर के बालों पर हाथ लगाया। इतने में वेदवती ने क्रुद्ध होकर हाथ से अपने बाल काट डाले। क्योंकि उस समय उसका हाथ तलवाररूप हो गया था। वह उस समय क्रोध के मारे ऐसी जलने सी लगी मानों राक्षस को जला देना चाहती हो। वह आग जला कर जल्दी उसमें कूदने को तैयार हो रावण से बोली—"हे नीच ! तूने मेरी धर्षणा की है इससे मैं अब जीना नहीं चाहती। ले, मैं अब अग्नि में प्रवेश करती हूँ। हे पापी ! इस धर्षणा के लिए मैं तुझे मारने को फिर जन्म लूँगी। क्योंकि पापी मनुष्य को स्त्री मार नहीं सकती। यदि मैं तुझे शाप दूँ तो तपस्या की हानि होगी। यदि मैंने कुछ सुकृत किया हो या दान दिया हो या हवन किया हो तो मैं किसी धर्मात्मा मनुष्य के घर में अयोनिजा जन्म लूँगी।" इतना कह कर वह धधकती हुई अग्नि में प्रविष्ट होगई। उसी समय आकाश से फूलों की वर्षा हुई। हे राम-चन्द्र ! वही वेदवती जनकराज के घर में अयोनिजा सीता रूप से उत्पन्न हुई जो आपकी स्त्री है। और हे महाबाहो ! आप सनातन विष्णु हैं। इसने पहले तो उसको क्रोध से मारा ही था; पीछे से तुम्हारे पराक्रम का सहारा लेकर उसका बिलकुल नाश कर दिया। आपके जैसा पराक्रम मनुष्य में नहीं

पाया जाता। हे रामचन्द्र! इसी तरह यह महाभागा मर्त्यलोक में खेत जोतने के समय फाल से कटी हुई जमीन से फिर निकलेगी जैसे वेदी से अग्निशिखा प्रज्वलित होकर ऊपर उठती है।

दोहा।

सतयुग की सोइ वेदवति, जनमि जनक-गृह आय।
जेहि मार्‌यो रावण प्रबल, सह कुटम्ब समुदाय॥

अठारहवाँ सर्ग।

रावण का राजा मरुत्त को जीतना।

वेदवती के आग में जल जाने पर रावण उसी पुष्पक विमान पर चढ़कर चारों ओर घूमने लगा। घूमते घूमते वह उशीरबीज नामक देश में पहुँचा। वहाँ देवताओं के साथ यज्ञ करते हुए राजा मरुत्त को उसने देखा। बृहस्पति के भाई बड़े धर्मज्ञ संवर्त्त नामक ब्रह्मर्षि देवताओं को साथ लेकर वह यज्ञ करा रहे थे। वरदान के कारण दुर्जय रावण को देख कर वे देवता डर गये और पक्षी बन गये। उन में से इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट, वरुण तथा और दूसरे देवता हंस एवं पक्षी बन गये। इसी तरह वे सब देवता किसी न किसी पक्षी का रूप धारण कर छिप गये। हे राम! उस समय यज्ञशाला में अपवित्र कुत्ते की नाईं रावण घुस गया और वहाँ जाकर राजा से बोला—"या तो हमारे साथ युद्ध करो या मुझसे हार मानो।" यह सुन कर मरुत्त ने कहा—भाई! आप हैं कौन? इतना पूछते ही जोर से हँस कर उस ने कहा—"हे राजन्! मैं तुम्हारे सीधेपन से प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम धनद के छोटे भाई मुझ रावण को नहीं जानते। तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा ऐसा कौन होगा जो मेरे बल को न जानता हो। जिसने अपने भाई को हरा कर यह विमान छीन लिया, उस रावण को कौन नहीं जानता?" मरुत्त ने कहा—आप धन्य हैं, जिन्होंने अपने बड़े भाई को रण में जीत लिया। भाई! तुम्हारे ऐसा, सराहना करने के योग्य, तो तीनों लोकों में कोई न होगा। जो काम अधर्मपूर्वक किया जाता है वह प्रशंसा के योग्य नहीं होता। लोक-निन्दित बुरा काम करके, भाई के जीत लेने से तुम डींग मार रहे हो। तुमने पहले केवल धर्म का ऐसा कौन सा काम किया है जिससे तुमने वर पाया। जैसा तुम स्वयं कह रहे हो, ऐसा तो मैंने तुम्हारे विषय में कुछ भी नहीं सुना। हे मूर्ख! खड़ा रह। अब तू मेरे पास से जीता नहीं लौट सकता। आज मैं तुझे बाणों के द्वारा यमपुरी भेजे देता हूँ।

इतना कह कर राजा मरुत्त धनुष और बाण लेकर बड़े क्रोध से लड़ने के लिए चलने लगे। परन्तु महर्षि संवर्त्त राजा का मार्ग रोक कर खड़े हो गये। वे राजा से स्नेहपूर्वक बोले—यदि तुम मेरी बात सुनो तो मैं कहता हूँ कि इस समय तुमको युद्ध करना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि यह महेश्वर-सम्बन्धी यज्ञ समाप्त न होगा तो कुल को भस्म कर देगा। भला कहो तो सही, कहीं दीक्षित मनुष्य ने युद्ध या क्रोध किया है? जीतने में सदा संशय ही रहता है, फिर यह राक्षस बड़ा दुर्जय है।

अपने गुरु की बात मान कर वह मरुत्त राजा युद्ध करने से रुक गया और धनुर्बाण फेंक कर यज्ञ करने में लग गया। इसके बाद उसको हारा हुआ समझ कर शुक ने चारों ओर खबर फैला दी कि 'मरुत्त रावण से हार गया' और फिर उसने हर्ष-

नाद किया। यज्ञ में आये हुए ऋषियों को खाकर और उनके लोहू को पीकर तृप्त हो रावण फिर पृथ्वी-मण्डल में घूमने लगा। रावण के चले जाने पर इन्द्र आदि देवताओं ने फिर अपना अपना शरीर धारण कर पशु-पक्षियों से कहा। इन्द्र ने मोर से कहा—"हे धर्मज्ञ! मैं तुमसे प्रसन्न हो गया। तुमको साँप से डर न होगा। ये मेरी हज़ार आँखें तेरी पूँछ पर रहेंगी। जब मैं वर्षा किया करूँगा तब तू बड़ा प्रसन्न हुआ करेगा।" हे नराधिप! इन्द्र ने इस तरह मोर को वरदान दिया। इससे पहले मोरों की पूँछ निरे नीले रङ्ग की होती थी। इन्द्र से वर पाकर सब मोर वहाँ से चले गये। अब धर्मराज ने कौए से कहा। कौआ उस समय प्राग्वंश नामक यज्ञशाला में बैठा था। उन्होंने कहा—"हे पक्षी! मैं प्रसन्न होकर तुझे वर देता हूँ। जिस तरह मैं और और प्राणियों को तरह तरह के रोगों से पीड़ित करता हूँ उस तरह के रोगों का तुझ पर कभी असर न होगा—तू रोगों से कभी सताया न जायगा। तुझे मृत्यु से डर न होगा। जब तक तुझे कोई न मारेगा तब तक तू जीता रहेगा। जितने मनुष्य मेरे लोक में रहेंगे और भूख से पीड़ित होंगे वे सब तेरे तृप्त रहने से बन्धुओं-सहित तृप्त हो जायँगे।" अब गंगा के जल में विहार करनेवाले हंस से वरुण देवता ने कहा—"हे हंस! तेरा रङ्ग मनोहर, सुन्दर और चन्द्रमण्डल के समान बढ़िया होगा। मेरा शरीर जल है, उसे पाकर तेरी अत्यन्त सुन्दर मूर्त्ति हो जायगी। तू बड़ा आनन्द पावेगा। यही मेरी प्रीति का लक्षण होगा।" हे राम! पहले हंस का रंग सब सफ़ेद नहीं था। उनके पंखों के किनारे चारों ओर से काले थे। उनका पेट घास की तरह हरा और चिकना था। अब पर्वत पर बैठे हुए गिरगिट से वैश्रवण बोले—"हे कृकलास! मैं प्रसन्न होकर तेरे शरीर का रङ्ग सोने के तुल्य किये देता हूँ। तेरा मस्तक भी वैसे ही रङ्ग का हो जायगा और सदा बना रहेगा। इस तरह तेरा सब रङ्ग काञ्चनमय हो जायगा।" वे देवता इस प्रकार उनको वर देकर, यज्ञ समाप्त होने पर, राजा के साथ अपने अपने घर चले गये।

उन्नीसवाँ सर्ग।

अनरण्य राजा का रावण को शाप देना।

अब मरुत्त को जीत कर रावण आगे बढ़ा और बहुत से नगरों में घूमने फिरने लगा। महेन्द्र और वरुण के समान बड़े बड़े राजाओं से वह कहता फिरता था कि, "या तो मुझ से युद्ध करो या हार मानो। इन दो बातों में से जब एक बात स्वीकार कर लोगे तब तुम्हारा छुटकारा होगा—अन्यथा नहीं।" उसकी बातें सुन कर निडर, धर्मात्मा और महाबली राजा लोग आपस में संमति करके रावण से बोले—"भाई! हम सब ने तुमसे हार मानी।" वे जानते थे कि रावण को वरदान का बड़ा बल है। दुष्कन्त, सुरथ, गाधि और गय—इन सब राजाओं ने हार मान ली। इसके बाद रावण अयोध्या नगरी में गया। उस समय वहाँ अनरण्य नामक राजा राज्य करता था। रावण ने वहाँ जाकर उस इन्द्र के तुल्य बली राजा से कहा—"या तो मुझ से लड़ो या कह दो कि हार गया। यही मेरी आज्ञा है।" यह सुनकर अनरण्य राजा क्रुद्ध होकर बोले—हे राक्षसराज! ठहर, मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करता हूँ। तुम भी सावधान हो जाओ और मैं भी तैयार होता हूँ।

इतना कह कर राजा ने पहले सेना भेजी। रावण का आना सुनकर राजा ने सेना को पहले ही से तैयार कर रक्खा था। उस सेना में दस हज़ार हाथी, एक लाख घोड़े तथा हज़ारों रथ और पैदल सेना थी। अब दोनों की सेनाओं का युद्ध होने लगा। परन्तु राजा की सेना राक्षसी सेना से लड़ कर ऐसे नष्ट हो गई जैसे अग्नि में डाली हुई होम की सामग्री भस्म हो जाती है। यद्यपि सेना बहुत देर तक लड़ती रही पर अन्त में, अग्नि में गिरे हुए पतङ्गों की तरह, बिल्कुल नष्ट होगई। जब राजा ने अपनी सब सेना नष्ट होते देखी तब वे ख़ुद इन्द्र-धनुष के तुल्य अपने धनुष को टङ्कार कर रावण का सामना करने के लिए आये। राजा ने मारीच, शुक, सारण और प्रहस्त, रावण के इन चारों मंत्रियों, को मार भगाया। वे चारों ऐसे भाग गये जैसे सिंह के डर से मृग भाग जाते हैं। फिर उन्होंने आठ सौ बाण रावण के मारे। पर वह तो बड़ा बली था। उनसे उसे कुछ भी न हुआ। उनसे उसके शरीर में कहीं घाव तक न हुआ। मूसलधार वर्षा होने से जिस प्रकार पर्वत का कुछ नहीं बिगड़ता उसी तरह रावण को वे बाण कुछ भी न जान पड़े। इतने में क्रुद्ध होकर रावण ने राजा के सिर पर एक थपेड़ा मारा। उस चोट से राजा विह्वल होकर काँपता हुआ रथ से धरती पर ऐसे गिर पड़ा मानों बिजली का मारा हुआ साखू का वृक्ष गिरा हो। तब रावण हँस कर कहने लगा—"हे राजन्! भला मेरे साथ युद्ध करके तुमने क्या फल पाया? त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे द्वन्द्व युद्ध करे। मैं समझता हूँ कि तू अपने सुख-भोग में लवलीन था; इसीसे तूने मेरे बलका हाल नहीं सुना।" इस तरह सुनकर मन्दप्राण राजा ने कहा—"तुम्हारी क्या सामर्थ्य है, हाँ काल बड़ा दुरतिक्रम है। इसको कोई नहीं लाँघ सकता। हे राक्षस! अपनी आप प्रशंसा करनेवाले तूने मुझे नहीं जीता किन्तु काल ने ही मुझे विपद्ग्रस्त किया है। तू तो उसमें केवल निमित्त है। अब तो मैं मर रहा हूँ, इससे इस समय मैं कर ही क्या सकता हूँ? मैं तुझसे युद्ध में विमुख नहीं हुआ—लड़ाई से मैंने मुँह नहीं मोड़ा। मैं सम्मुख युद्ध में निहत हुआ हूँ। पर तू ने मुझसे अनादर के वचन कहे हैं इसलिए मैं कहता हूँ कि, "यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, तपस्या की हो, और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन किया हो तो मेरा यह कथन सच होगा। महात्मा इक्ष्वाकु के कुल में दशरथ के पुत्र रामचन्द्र पैदा होंगे। वे तेरे प्राणों का हरण करेंगे।" अनरण्य के मुँह से ये वचन निकलते ही बादलों के शब्द के समान दुन्दुभि का शब्द सुनाई दिया और आकाश से फूलों की वर्षा हुई। हे रामचन्द्र! इस तरह कह कर राजा तो स्वर्गलोक को गये और रावण वहाँ से चलता हुआ।

बीसवाँ सर्ग।

यमराज से युद्ध करने के लिए रावण को नारद का उपदेश देना।

मनुष्यों को भयभीत करते और घूमते हुए रावण को वन में नारद मुनि मिले। उनको प्रणाम कर उसने कुशल-प्रश्न किया। मेघ की पीठ (आकाश) पर बिराजे हुए नारद मुनि पुष्पक विमान पर सवार रावण से बोले—हे राक्षसाधिप, विश्रवा के पुत्र

खड़े रहो। मैं तुम्हारे मन्त्रियों के और तुम्हारे बड़े पराक्रम से बड़ा प्रसन्न हूँ। पहले विष्णु ने दैत्यों का नाश करके मुझे प्रसन्न किया था। अब तुम गन्धर्वों और नागों के साथ युद्ध करके उन्हें अपमानित करोगे, इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। इस समय मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। वह तुम्हारे सुनने के योग्य है। हे तात! चित्त को सावधान करके मेरी बात सुनो। तुम देवताओं से अवध्य हो। कोई देवता तुमको मार नहीं सकता। फिर तुम संसारी जीवों को क्यों मार रहे हो? तुम केवल देवताओं से ही अवध्य नहीं हो किन्तु दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, और राक्षस भी तुमको मार नहीं सकते। फिर यह उचित नहीं है कि तुम मनुष्यों को कष्ट दो। मनुष्य तो मृत्यु के पञ्जे में फँसे ही हुए हैं, अतः ये तो स्वभाव से ही मरणशील हैं। ये बेचारे अपने कल्याणकारी विषयों में मूख हैं, और बड़े बड़े व्यसनों से जकड़े हुए हैं। ये सैकड़ों जरा (बुढ़ापे) और व्याधियों से घिरे रहते हैं। भला ऐसे मनुष्यों को कौन कष्ट देगा? देखो, ये सब अनिष्ट सम्बन्धों से निरन्तर पीड़ित रहते हैं। भला ऐसा कौन समझदार मनुष्य होगा जो इन पर शस्त्र उठावेगा? हे रावण! भूख, प्यास और बुढ़ापे इत्यादि से दैव के द्वारा निहत होकर मनुष्य क्षीण होते रहते हैं तथा शोक विषाद से सदा कातर बने रहते हैं। तुम इन्हें वृथा नष्ट न करना। हे महाबाहु राक्षसेश्वर! मूर्ख और तरह तरह के कर्म करनेवाले मनुष्य-लोक को देखो। इन्हें अपने सुख-दुःख आदि का भोग-काल भी ज्ञात नहीं। कहीं तो प्रसन्न होकर बहुत से लोग नाच और गान कराते हैं और कहीं दूसरे मनुष्य दुखी होकर मुँह पर आँसू बहाते हुए रो रहे हैं। माता, पिता, पुत्र, स्त्री, और बन्धुओं के स्नेह से ये लोग मोहित होकर ध्वस्त हो रहे हैं; इस कारण उनको अपना क्लेश नहीं जान पड़ता। अतः मोह में फँस कर ख़ुद बरबाद होनेवाले मर्त्य-लोक को कष्ट देकर तुम क्या करोगे? तुम जीत तो चुके ही हो। अब इनका पीछा छोड़ो। संसार के सब जीव यमपुरी में ज़रूर जायँगे। इसलिए तुम सीधे यमपुर पर चढ़ाई करो। उसके जीत लेने पर सब जीता हुआ ही समझो।

नारदजी की ये बातें सुन कर रावण ने हँस कर कहा—"हे देवर्षे! हे गन्धर्वलोक में विहार करने-वाले, हे समर-दर्शन-प्रिय! अब मैं विजय के लिए रसातल जाने को तैयार हूँ। फिर तीनों लोकों को जीत कर नागों और देवताओं को वश में करूँगा। इसके बाद अमृत के लिए समुद्र का मथन करूँगा।" नारद बोले—"यदि तुम रसातल को जाना चाहते हो तो दूसरे रास्ते से क्यों जाते हो? यह दुर्गम मार्ग यमराज के नगर को सीधा जाता है। इसी मार्ग से जाओ।" यह सुन कर शरद ऋतु के बादल की नाईं वह बड़े ज़ोर से हँसा। वह कहने लगा—"अच्छा, यह काम भी मेरा पूरा हो जायगा। हे महाब्रह्मन्! तो अब मैं यम ही को मारने के लिए दक्षिण दिशा के मार्ग से जाता हूँ। भगवन्! मैंने क्रोधपूर्वक संग्राम की इच्छा से प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालों को जीतूँगा। लो, अब मैं यमपुरी को जाता हूँ। वहाँ मैं प्राणियों के कष्ट देनेवाले यम को मारूँगा।" यह कह और मुनि को प्रणाम कर वह दक्षिण दिशा की ओर चला। फिर नारदजी मुहूर्त्त भर ध्यान कर सोचने लगे

कि जो आयुष्य के क्षीण होने पर इन्द्र-सहित तीनों लोकों को धर्म-पूर्वक कष्ट देता है वह काल किस तरह जीता जा सकेगा! जो प्राणियों के दान और कर्म के साक्षी हैं, और जो जलती हुई दूसरी आग की नाईं हैं तथा जिससे सचेत हो लोग सांसारिक काम करते हैं और जिसके डर के मारे तीनों लोक भागते फिरते हैं उसके पास यह राक्षसराज ख़ुद ही कैसे जायगा। जो संसार के धाता-विधाता, जो पुण्य और पाप के फलदाता तथा शासन-कर्ता हैं; एवं जिसने तीनों लोक जीत लिये हैं उस यमराज को यह कैसे जीत सकेगा? भला देखें, उसके लिए वह क्या करता है।

दोहा।

यह कौतुक देखन सपदि, जैहौं यमपुर धाम।
यम अरु राक्षस कर समर, देखिहौं घोर ललाम॥

इक्कीसवाँ सर्ग।

रावण और यम का युद्ध।

यह सोच विचार कर नारदजी, सब हाल सुनाने के लिए, जल्दी जल्दी यम के यहाँ गये। वहाँ पहुँच कर वे क्या देखते हैं कि यमराज अग्नि को साक्षी कर प्राणियों का यथोचित न्याय कर रहे हैं। देवर्षि को आते देख कर यमराज उनको धर्म-पूर्वक अर्घ्य दे और आसन पर बैठा कर कहने लगे—"कहिए महर्षे! कुशल तो है? धर्म में किसी तरह की बाधा तो नहीं है? हे देव-गन्धर्व-सेवित! आपके आने का कारण क्या है?" यह सुन कर नारद बोले कि कारण को सुनिए, और यत्न कीजिए—

"दशानन राक्षस आपको पराक्रम से अपने वश में करने के लिए आ रहा है। इसी कारण मैं यहाँ जल्दी आया हूँ कि कालदण्ड के प्रहार करने वाले आपका इस समय क्या होता है।" इतने ही में सूर्य के समान प्रकाश करता हुआ रावण का विमान दूर से आता हुआ दिखाई दिया। वह अपने विमान के प्रकाश से वहाँ का अँधेरा मिटाता हुआ बिलकुल समीप आ गया। वहाँ पहुँच कर उसने प्राणियों को अपने अपने पुण्यों और पापों को भोगते हुए देखा। उसने वहाँ यमराज के सेना वालों को और अनुचरों को भी देखा। रूखी प्रकृति के, बड़े उग्र, घोर और भयानक यम-किङ्कर वहाँ प्राणियों को पीड़ा दे रहे थे। वे प्राणी बड़े ज़ोर से रोते तथा चिल्लाते थे। उन्हें तरह तरह के छोटे छोटे कीड़े और ख़ूँख़ार कुत्ते काट रहे थे। वे सब ऐसा भयानक विलाप कर रहे थे कि कानों से सुना भी नहीं जाता था। जिस वैतरणी नदी में जल की जगह केवल रुधिर ही रुधिर है उसमें बहुत से लोग तैराये जाते थे और तपी हुई बालू पर बार बार घसीटे जाते थे। बहुत से पापी असिपत्र (तलवार रूप पत्तोंवाले) वन से कटवाये जा रहे थे। वे रौरव में, क्षार नदी में गिरते और छुरों की धारों पर कटते तथा पीड़ा पा रहे थे। प्यासे और भूखे होकर वे 'पानी पानी' माँग रहे थे। मुर्दे के समान, दुबले, दीन, बाल खोले, मैल और कीचड़ से सने हुए रूखे और दौड़ते हुए उन लोगों का रंग ही बदल गया था। रावण ने वहाँ इस तरह के सैकड़ों हज़ारों प्राणियों को देखा। ऐसे पुण्य करनेवाले पुण्यात्मा प्राणियों को भी रावण ने वहाँ देखा जो सुन्दर भवनों में गाने और बजाने के शब्दों से आनन्द कर रहे थे। गाय का दान करनेवाले गोरस को, अन्नदाता अन्न

को, और घर देने वाले घर पाकर अपने अपने कामों के फल भोग रहे थे। बहुत से धर्मात्मा लोग सोना, मणि, मुक्ता, और स्त्रियों को पाकर विहार करते और अपने तेज से प्रकाशमान हो रहे थे। रावण ने वहाँ पहुँच कर, उन पापियों को जबरदस्ती छुड़ा दिया जो अपने बुरे कर्मों से काटे और मारे जा रहे थे। रावण के द्वारा रिहाई पाकर उस समय थोड़ी देर तक उन प्राणियों ने अतर्कित और अचिन्तित सुख पाया।

रावण की ऐसी जबरदस्ती, और प्रेतों को छूटा हुआ देख कर प्रेताधिकारी यमदूत क्रोध करके रावण पर दौड़े। धर्मराज के योधा बड़े शूरवीर थे। जब वे रावण पर दौड़े तो चारों दिशायें हलहला शब्द से भर गईं। सैकड़ों और हज़ारों शूर प्रास, परिघ, शूल, मूसल, शक्ति और तोमरों से पुष्पक पर वर्षा करने लगे। वे यमदूत विमान के आसनों, अटारियों, वेदियों, और तोरणों को तोड़ने-फोड़ने लगे। पर वह विमान मामूली नहीं था, उसमें एक तरह से देवांश था। इसलिए वह इतनी चोट खाकर भी ब्रह्मा के तेजोबल से ज्यों का त्यों बना रहा। यमराज की सेना अनगिनत थी। उनके साथ रावण के वीर वृक्षों, पर्वतों, और सैकड़ों अटारियों को तोड़ तोड़ कर लड़ रहे थे। रावण स्वयं भी लड़ रहा था। लड़ते लड़ते रावण के सचिवों को अनेक शस्त्र लगे और वे रुधिर से नहा गये तो भी उन्होंने लड़ना न छोड़ा। वे स्वामी के लिए बड़ी बहादुरी से बराबर लड़ते ही रहे। उस समय दोनों ओर के वीर बड़ा भारी युद्ध कर रहे थे। कुछ देर में यम के सब योद्धा राक्षस-वीरों को छोड़ कर रावण पर ही पिल पड़े। वे उस पर शूल बरसाने लगे। उस समय पुष्पक पर बैठे हुए रावण पर उन सबने ऐसे प्रहार किये कि वह बिल्कुल जर्जर होकर रुधिर से नहा उठा। वह फूले हुए अशोक वृक्ष की तरह दिखाई देने लगा। रावण भी शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर और बाणों को चलाता था; एवं पत्थरों और वृक्षों को अस्त्र के बल से चलाता था। वह भयंकर वर्षा यम की सेना पर गिर कर फिर ज़मीन पर गिर पड़ती थी। वे उसके प्रहारों और अस्त्रों को नष्ट करके लाखों मिल कर अकेले रावण को मारने लगे, मानों पर्वत को घेर कर बादल बरसते हों। भिन्दिपालों और शूरों से वे उसे ऐसा मार रहे थे कि उसे साँस तक न लेने देते थे। उन प्रहारों से उसका कवच टूट गया और वह रुधिर से लदफद हो गया। अब वह पुष्पक छोड़ कर ज़मीन पर खड़ा हो गया। वह धनुर्बाण लेकर चौकन्ना हो, काल की नाईं, युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसने दूतों से—"खड़े रहो, खड़े रहो" कह कर, पशुपतास्त्र के प्रयोग से बाण को अभिमंत्रित किया और प्रत्यञ्चा को कान तक खींच कर बाण छोड़ा। जैसे शिव ने त्रिपुरासुर पर बाण छोड़ा था वैसे ही रावण ने भी उन लोगों पर चलाया। उस समय उस बाण का रूप धुएँ-सहित ज्वालामंडल की नाईं हो गया। वह रूप ऐसा था जैसे ग्रीष्मकाल में वन की आग का रूप आरम्भ में होता है। ज्वालाओं की मालायें धारण किये वह बाण रास्ते के तिनकों और वृक्षों को जलाता हुआ यम की सेना में जा पहुँचा। उस अस्त्र के तेज से सब वीर भस्म होकर इन्द्र की ध्वजा की तरह समर में गिर पड़े।

दोहा।

दशकन्धर तेहि काल महँ, देखि शत्रु बल-हानि।
सचिव सहित गर्जेउ विकट, महाबली अभिमानि॥

बाईसवाँ सर्ग।

रावण से यमराज का युद्ध और ब्रह्मा के वचन से अन्तर्द्धान होना।

रावण का घोर नाद सुन कर भगवान् यमराज ने समझा कि रावण का जय और मेरी सेना का नाश हुआ। योधाओं के मारे जाने से यम ने लाल आँखें कर, क्रोध-पूर्वक, सारथि को आज्ञा दी कि मेरा रथ ले आओ। सारथि बहुत जल्दी रथ ले आया। यमराज उस पर सवार हुए। प्रास और मुद्गर हाथ में लेकर त्रिलोकी का नाश करनेवाला मृत्यु उनके आगे हुआ। और यम का दिव्य शस्त्र मूर्त्तिमान् काल-दण्ड यम के पास खड़ा हुआ। यह दण्ड तेज से आग की नाईं सदा प्रकाशमान रहता है। उस समय तीनों लोक हिल गये और देवता लोग काँपने लगे। क्योंकि जो सब लोकों को भय देनेवाला है वही क्रुद्ध होगया तो न जाने अब क्या होगा। इसके बाद सारथि ने रथ चलाया। उसका शब्द बड़ा ही भयङ्कर था। वह थोड़ी ही देर में रणभूमि में जा पहुँचा। जिस विकराल रथ के साथ साक्षात् मृत्यु ही था उसको देखकर रावण के सचिव बहुत ही जल्द भाग गये। क्योंकि उन बेचारों में थोड़ा ही साहस था। वे डर के मारे अचेत से होकर बोले—"हम यहाँ युद्ध करने के लिए समर्थ नहीं हैं।" यह कह कर वे इधर उधर भाग गये। परन्तु रावण उस भयङ्कर रथ को देखकर न तो घबराया और न डरा। अब यमराज शक्ति और तोमरों से रावण के मर्मों को विदीर्ण करने लगे। इधर रावण भी अच्छी तरह सज कर यमराज के रथ पर ऐसे बाण-वर्षा करने लगा मानों मेघ जल-वर्षा करता हो। यमराज ने रावण की छाती पर सैकड़ों शक्तियों के प्रहार किये। वह उनका बदला लेने के लिए असमर्थ हो गया। अतः उन प्रहारों से राक्षस कुछ कुछ पीड़ित हुआ। इस तरह उन दोनों का सात दिन-रात तक युद्ध होता रहा। यम ने मारे शस्त्रों के उसे विमुख और संज्ञाहीन कर दिया। जीतने की इच्छा से दोनों ऐसी बहादुरी से लड़ रहे थे कि युद्ध से एक भी मुँह न मोड़ता था। दोनों का बड़ा ही घोर युद्ध हुआ। इतने में देवता, गन्धर्व, सिद्ध और बड़े बड़े ऋषि लोग ब्रह्मा को आगे करके वहाँ आकर इकट्ठे हुए। उस समय राक्षसराज और प्रेतराज का ऐसा युद्ध हो रहा था मानों प्रलय-काल आ पहुँचा हो। राक्षसेन्द्र इन्द्र के धनुष के तुल्य टंकार वाले धनुष को फैला कर मारे बाणों के आकाश को निरवकाश कर रहा था। उसने मृत्यु को चार बाण, सारथि को सात और यमराज को, मर्म स्थानों में, एक लाख बाण बड़ी जल्दी मारे। उस समय प्रहार के मारे क्रुद्ध हुए यमराज के मुँह से श्वास के साथ बड़ी ज्वाला-सहित धुआँ युक्त क्रोधाग्नि पैदा हुई। देवता और दानव के पास यह आश्चर्य देखकर मृत्यु और काल बड़े ख़ुश हुए और युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। मृत्यु ने क्रुद्ध होकर कहा—"हे भगवन् यम! मुझे आज्ञा दीजिए, मैं इस पापी रावण को अभी मारे डालता हूँ। अभी यह राक्षस नष्ट हो जायगा। क्योंकि स्वभाव से मेरी यही मर्यादा है। देखिए हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसंदी, धूमकेतु, बलि, दैत्यों का महाराज शम्भु, वृत्र, बाण; बड़े बड़े शास्त्रज्ञ, राजर्षि, गन्धर्व, नाग, ऋषि, पन्नग, दैत्य, यक्ष, अप्सरायें और युग के अन्त में समुद्र-सहित पृथिवी, पर्वत आदि सब

को मैंने नष्ट कर दिया। बहुत से बलवान् मेरी दृष्टि के सामने पड़कर नष्ट हो गये। इस राक्षस की तो बात ही क्या है। इसलिए हे धर्मज्ञ! जल्दी मुझे छोड़िए, जिससे मैं इसे मार गिराऊँ। कोई कैसा ही बलवान् क्यों न हो, पर मैंने देखा कि वह चट-पट मारा। भगवन्! यह मेरा बल नहीं है किन्तु स्वाभाविक मर्यादा है। मेरा देखा हुआ मुहूर्त भर भी नहीं जी सकता।" यह सुनकर धर्मराज बोले—तुम ठहरो, मैं इसे मारता हूँ।

अब सूर्य के पुत्र भगवान् यमराज ने क्रोध में भर कर, लाल आँखें करके, अमोघ कालदण्ड हाथ में लिया। उसके पास अग्नि और वज्र के समान बड़े बड़े कालपाश और मूर्तिमान् मुद्गर सदा रहते हैं। जिसे देखते ही प्राणियों के प्राण निकल जाते हैं वह यदि किसी को पाश से छुए अथवा दण्ड से गिरावे तो फिर क्या कहना है। अब वह ज्वालाओं से लपेटा हुआ और दूर ही से मानों राक्षस को जलाता हुआ दण्ड बलवान् यमराज के छूते ही फड़क उठा। इसके बाद यमराज को हाथ में काल-दण्ड लिये देख कर रणभूमि से सभी भाग गये और देवता भी क्षुब्ध हो गये। उस समय यमराज प्रहार करना ही चाहते थे कि साक्षात् ब्रह्मा यमराज के पास आकर बोले—"हे महाबाहु, अमित-पराक्रमी, सूर्यपुत्र! तुम इस दण्ड से निशाचर को मत मारो। हे देवों में श्रेष्ठ! मैंने इसको वर दिया है। तुम्हारे लिए यह योग्य नहीं कि मेरे वचन को झूठा कर दो; क्योंकि जो मुझे झूठा करता है—चाहे वह देवता हो या मनुष्य—वह त्रिलोकी को झूठा कर चुका। इसमें सन्देह नहीं है। यह कालदण्ड रौद्ररूप और तीनों लोकों को भय देनेवाला है। जब क्रोध में भर कर यह चलाया जाता है तब प्रजा का संहार ही करता है। प्रिय और अप्रिय—दोनों इसके लिए बराबर हैं। मैंने इसे इसी तरह का बनाया है। यह सदा अमोघ और सब को मारनेवाला है। इसलिए हे सौम्य! तुम इसे रावण के सिर पर न चलाओ। क्योंकि इसकी चोट खाकर कोई भी प्राणी मुहूर्त भर भी जी नहीं सकता। शायद इसकी चोट खा कर यह न मरा, या मर ही गया, तो दोनों तरह से मैं झूठा सिद्ध हो जाऊँगा। इसलिए तुम यह प्रहार न करो और मुझे सच्चा सिद्ध करो। अगर तुम लोकों पर प्रसन्नता की दृष्टि रखते हो तो ऐसा ही करो।" ये वचन सुन कर यमराज बोले—"महा-राज! लो, मैंने यह दण्ड खींच लिया। अब नहीं चलाऊँगा। क्योंकि आप हमारे प्रभु हैं। परन्तु संग्राम के लिए अब मैं क्या करूँ? क्योंकि यह तो वर के बल से मारे जाने के योग्य ही न ठहरा। अब मैं इसके पास से अदृश्य होता हूँ।" यह कह कर रथ-सहित यमराज वहीं अन्तर्धान हो गये। इस तरह यमराज को जीत और अपना नाम सुना कर रावण उसी पुष्पक पर चढ़ कर यमपुरी से चल दिया।

दोहा।

ब्रह्मादिक देवन सहित, मोद सहित यमराज।
गये स्वर्ग महँ नारदहुँ, हर्षयुक्त मुनिराज॥

तेईसवाँ सर्ग।

रावण का रसातल में जाकर नाग और वरुण आदि को जीतना।

यम को जीत कर रावण ने नगरी के बाहर आकर अपने सहायकों को देखा। रुधिर से लदफद

और प्रहारों के मारे छिन्न भिन्न रावण को देखकर वे सब सचिव बड़ा आश्चर्य करने लगे और 'जय जय महाराज' कहकर वे सब पुष्पक पर चढ़ गये। फिर रावण ने उन सब को समझाया। इसके बाद वह समुद्र में घुसकर रसातल में गया। वहाँ दैत्य और साँप रहते हैं। उस रसातल की रक्षा वरुण करते हैं। वासुकि नाग की भोगवती नगरी में आकर उसने नागों को जीत कर अपने वश में कर लिया। फिर वह रावण मणिमयी पुरी में गया। वहाँ वरदानप्राप्त निवात-कवच (अभेद्य कवचवाले) एक तरह के दैत्य रहते हैं। वहाँ पहुँच कर रावण ने उनको युद्ध करने के लिए ललकारा। वे दैत्य भी बड़े पराक्रमी, बली और तरह तरह के आयुध चलाते थे। युद्ध का नाम सुनते ही वे बड़े प्रसन्न हुए। शूल, त्रिशूल, वज्र, पटा, तलवार और फरसा आदि ले लेकर वे युद्ध करने लगे। दैत्यों और राक्षसों को युद्ध करते करते एक वर्ष बीत गया। परन्तु न रावण हारा और न दैत्य। तब वहाँ भी ब्रह्माजी ने आकर युद्ध रोका। उन्होंने कहा—"हे निवात-कवच लोगों! इस रावण को न देवता जीत सकते हैं और न दानव; और तुमको भी कोई मार नहीं सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों की मैत्री हो जाय। मित्रों की चीजें आपस में एक ही होती हैं—जो तुम्हारा है वह उनका भी है और जो उनका है वह तुम्हारा भी है।" यह सुन कर रावण ने अग्नि को साक्षी कर उनसे मैत्री कर ली। उन्होंने भी रावण का यथोचित सत्कार किया। राक्षसराज वहाँ एक वर्ष तक रहा और अपने नगर से भी अधिक प्रीतिपूर्वक और आदर भाव से रहा। उनसे उसने सौ तरह की माया भी सीखी।

फिर वह वरुण का नगर ढूँढ़ता हुआ रसातल में घूमता फिरा। घूमते घूमते उसने अश्म नामक नगर पाया। वहाँ कालकेय नामक असुर रहते थे। वे बड़े बलवान् थे। उनको रावण ने युद्ध में मार गिराया। उसी युद्ध में शूर्पणखा के पति, बड़े बली, विद्युज्जिह्व को उसने तलवार से काट डाला क्योंकि वह रावण के सचिवों को खाने के लिए तैयार हो गया था। उसको मार कर फिर उसने क्षणमात्र में चार सौ दैत्यों को मार गिराया। तदनन्तर सफ़ेद बादल और कैलास के समान चमकीला वरुण का भवन राक्षसराज ने देखा। वहीं अपने स्तनों से दूध बहाती हुई सुरभि नामक गाय भी देख पड़ी। उसके दूध की धारा से क्षीरोद नामक सागर बन गया। वह सुरभि महा वृषभेन्द्र की माता है और उसके दूध (क्षीरसागर) से शीतल किरणोंवाला चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है। उसी समुद्र के सहारे फेन पीनेवाले महर्षि जीते हैं। उसी से अमृत उत्पन्न हुआ और स्वधाभोजियों—पितृगणों—की स्वधा भी उत्पन्न हुई। उसको लोग सुरभि कहकर बुलाते हैं। उस अद्भुत गाय की प्रदक्षिणा कर रावण ने वरुण का उत्तम भवन देखा। वरुण का महल बहुत तरह की सेनाओं से रक्षित था। महल बड़ा भयङ्कर, सैकड़ों धाराओं से सुशोभित, शरद ऋतु के बादल की तरह सफ़ेद और सदा हर्षयुक्त रहता था। वहाँ पहुँचते ही रावण ने सेनापतियों को मारा। उन्होंने भी रावण पर प्रहार किया। फिर रावण ने योधाओं से कहा—"तुम वरुण के पास जाकर कहो कि युद्धार्थी रावण आ पहुँचा, इसलिए तुम या तो युद्ध करो या हाथ जोड़ कर हार मानो। ऐसा करने से तुमको किसी तरह का भय न रहेगा।" इतने मे

वरुण के पुत्र और पौत्र, बड़े क्रोध में भरे हुए, युद्ध के लिए निकले। उनके साथ गौ और पुष्कर—ये दो सेनापति भी थे। वे लोग बड़े गुणी थे। अपनी सेना साथ लिये, कामगामी और उदय हुए सूर्य के समान रथों पर चढ़ कर, वे सब युद्ध के लिए दौड़े।

वरुण के लड़कों का रावण के साथ बड़ा घोर और रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ। रावण के मंत्रियों ने थोड़े ही समय में वारुणी सेना को मार गिराया। वरुण के पुत्रों ने अपनी सेना का नाश और अपने को भी बाणों से बहुत पीड़ित देखा तथा रावण को पुष्पक पर चढ़ा हुआ और अपने को ज़मीन पर से लड़ते देखा। इसलिए वे सब रथों-सहित आकाश में उड़ गये। वहाँ से वे युद्ध करने लगे। अब बराबर जगह पाकर, देवासुर-संग्राम की नाईं, उन दोनों का घोर आकाश-युद्ध प्रारम्भ हुआ। वरुण की सेनावालों ने अग्नि के समान ऐसे बाण चलाये कि रावण संग्राम से विमुख हो गया। रावण को विमुख देख कर वे बड़ा हर्षनाद करने लगे। अपने राजा का अपमान देख कर महोदर बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह मृत्यु का भय छोड़ उन पर गदा लेकर दौड़ा। उसने उनके घोड़ों को गदा से ऐसा मारा कि वे सब मर कर ज़मीन पर गिर गये। उसने योद्धाओं पर भी प्रहार किया। उन्हें बिना रथ के देख वह बड़े ज़ोर से गरजा। उस बड़े प्रहार से रथ, सारथि और घोड़े सब चकनाचूर होकर ज़मीन पर गिर गये। वरुण के लड़के बिना रथ के रह गये तो भी वे अपने प्रभाव से आकाश ही में ठहरे रहे, वहाँ से गिरे नहीं। फिर वे अपने धनुष चढ़ा कर महोदर को मारे बाणों के विदीर्ण करके रावण को घेर कर खड़े हो गये और वज्र के तुल्य बाणों से उसे क्रोध-पूर्वक ऐसे छेदने लगे जैसे मेघ बूँदों से पर्वत को छेदते हैं। अब रावण भी कालाग्नि की नाईं क्रुद्ध होकर उनके मर्म-स्थलों में बाण मारने लगा। वह तरह तरह के मूसलों, सैकड़ों भालों, पटाओं, शक्तियों और बड़ी बड़ी तोपों का प्रहार उन पर करने लगा। वे बेचारे बिना रथ के थे, इसलिए उन प्रहारों से ऐसे पीड़ित हुए जैसे साठ वर्ष के हाथी दलदल में पड़ कर दुःखी होते हैं। महाबली रावण उन सब को पीड़ित और विह्वल देख कर बड़े हर्ष से, मेघ की तरह, गरजा। वे सबके सब रण से विमुख हो कर ज़मीन पर गिर पड़े। नौकरों ने बहुत जल्दी उन को उठा कर घर पहुँचाया। इसके बाद रावण ने उनसे कहा कि मेरा सँदेशा वरुण से जाकर कहो। यह सुन कर वरुण का प्रहास नामक मंत्री बोला—हे राक्षसाधिप! महाराज वरुण ब्रह्मलोक में गाना सुनने के लिए गये हैं। तुम किस को ललकारते हो? जब राजा है ही नहीं तब तुम व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो? जो कुमार मौजूद थे उनको तो तुमने हरा ही दिया। यह सुन कर रावण अपने नाम की विजय-घोषणा कर और हर्षनाद सुना कर वरुण के भवन से चला गया। वह जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से लौट कर लङ्का की तरफ़ आकाश-मार्ग से पुष्पक विमान ले गया।

(यहाँ से आगे पाँच सर्ग प्रक्षिप्त हैं। ये किसी किसी पुस्तक में पाये जाते हैं।)

चौबीसवाँ सर्ग।

रावण का बलि के यहाँ जाना और द्वार पर भगवान् का दर्शन पाना।

अब वे सब युद्धोन्मत्त होकर फिर उसी अश्म नगर में घूमने लगे। रावण ने वहाँ एक बड़ा प्रकाशमान घर देखा। उसके तोरण पन्नों से बने थे और उन पर मोतियों की मालाएँ लटक रही थीं। उसमें सोने के बड़े बड़े खम्भे थे और वह अच्छी अच्छी वेदिकाओं से सुशोभित था। उसमें हीरे और स्फटिक की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, किंकिणी का जाल गुथा हुआ और अनेक तरह के आसन शोभा दे रहे थे। वहाँ ऐसी शोभा हो रही थी मानों इन्द्र का राजभवन हो। उसे देखकर रावण बोला—"मेरुमन्दर के तुल्य बड़ा यह किसका घर दिखाई पड़ता है? हे प्रहस्त! जाकर देखो तो कि यह उत्तम मन्दिर किसका है।" रावण की आज्ञा से प्रहस्त उस घर में भीतर चला गया। वहाँ उसे कोई भी दिखाई नहीं दिया। फिर दूसरी ड्योढ़ी पर वह गया। वहाँ भी कोई न मिला। इस तरह वह सात ड्योढ़ी लाँघ गया। सातवीं ड्योढ़ी पर उसको अग्नि देख पड़ी। फिर एक पुरुष भी दिखाई दिया। वह प्रहस्त को देखते ही हँस पड़ा। उस पुरुष के हँसते ही प्रहस्त के रोंगटे खड़े हो गये। वह पुरुष उस ज्वाला के बीच में खड़ा, सोने की माला पहने, और सूर्य की नाईं कष्ट से देखने योग्य था। जिस तरह सूर्य की ओर मनुष्य दृष्टि करके नहीं देख सकता इसी तरह उस पुरुष की ओर देखने में कष्ट होता था। मानों वह दूसरा यमराज ही था। उसे देखते ही प्रहस्त घबड़ा कर वहाँ से जल्दी भागा। बाहर निकल कर उसने वहाँ का सब हाल रावण से कह दिया। हे रामचन्द्र! यह समाचार सुनकर रावण पुष्पक पर से उतर कर जैसे ही उस घर में जाने को तैयार हुआ वैसे ही शरीरधारी, शिर पर चन्द्रमा धारण किये, एक भयङ्कर पुरुष उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी जीभ ज्वालारूप थी, लाल आँखें, सुन्दर दाँत, लाल बिम्बोष्ठ, मनोहर रूप, भयङ्कर नाक, शंख की सी गर्दन, बड़ी ठोढ़ी, घनी दाढ़ी मूँछों से सुशोभित, और बड़े बड़े दाँत थे। उसका आकार सब तरह से रोमहर्षण था। वह पुरुष हाथ में लोहे का मूसल लिये द्वार रोके खड़ा था। उसे देखते ही रावण के रोयें खड़े हो गये, उसका हृदय काँपने लगा और शरीर थरथराने लगा। इस तरह के अमंगल चिह्नों को देख कर रावण खड़ा खड़ा कुछ सोच ही रहा था कि इतने में वह पुरुष ही कहने लगा—"हे राक्षस! तू क्या सोच रहा है, मन को सावधान करके बतला। हे वीर! मैं युद्ध द्वारा तेरा सत्कार करूँगा। क्या तू बलि के साथ लड़ना चाहता है या तेरा दूसरा विचार है?" उसके मुँह से ये बातें निकलते ही रावण के रोंगटे फिर खड़े हो गये। कुछ देर में धैर्य धर कर रावण ने कहा—"हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! मैं यह पूछता हूँ कि इस घर में कौन है? मुझे बतला दो। मैं उसी के साथ युद्ध करूँगा अथवा बतलाओ, तुम्हारी क्या राय है?" यह सुन कर वह पुरुष बोला—"इस घर में दानवराज बलि रहते हैं। वे बड़े उदार, शूर, सच्चे पराक्रमी, वीर, और अनेक गुणों से भूषित हैं। वे हाथ में पाश लिये यमराज की नाईं शत्रु के लिए भयङ्कर, बालसूर्य के तुल्य तेजस्वी, समर में मुँह न मोड़नेवाले, अमर्षी,

दुर्जय और जीतनेवाले, बलवान् हैं; वे गुणों के समुद्र, प्रिय बोलते हैं, वे दाता हैं, तथा गुरु और ब्राह्मणों पर प्रीति रखते हैं। वे प्रिय समय की प्रतीक्षा करते हैं। वे महासत्व, सत्यभाषी, प्रियदर्शन, चतुर और सब गुणों से भरे पूरे हैं; वे वेदपाठ करने में तत्पर रहते हैं। वे पैदल ही चलते हैं फिर भी वायु के समान चलते हैं। वे अग्नि के समान प्रज्वलित और सूर्य के तुल्य ताप देते हैं। वे देवताओं, प्राणियों, पक्षियों और साँपों से बिलकुल नहीं डरते। वे भय को जानते ही नहीं। हे रावण! क्या तुम उन्हीं दानव-राज बलि के साथ लड़ना चाहते हो? यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जल्दी भीतर जाकर उनके साथ युद्ध करो।"

यह सुनकर रावण घर में घुस गया। अग्नि के समान बलि रावण को देखते ही हँस पड़े। सूर्य की तरह देखने के अयोग्य राजा बलि रावण को पकड़ कर और गोद में बैठा कर बोले—"हे बड़ी भुजाओंवाले दशानन! मैं तुम्हारा कौन सा काम करूँ। तुम यहाँ क्यों आये हो?" रावण ने कहा—"मैंने सुना है कि तुमको विष्णु ने बाँध रक्खा है। मैं तुमको बन्धन से छुड़ा सकता हूँ।" बलि हँस कर फिर बोले—सुनो, जो तुम पूछते हो उसका मैं उत्तर देता हूँ। यह श्यामवर्ण पुरुष सदा मेरे द्वार पर ही खड़ा रहता है। पहले जो समस्त दानवेन्द्र थे और अन्यान्य महाबलशाली व्यक्ति थे उनको इसने अपने बल से वश में कर लिया। इसी ने मुझे भी बाँध रक्खा है। क्या कहा जाय, यह बड़ा दुरतिक्रम है। दुःख से भी उसके पार जाना कठिन है। ऐसा कौन पुरुष है जो इस पर आक्रमण कर सके? हे रावण! द्वार पर खड़ा होनेवाला यही पुरुष सब प्राणियों का संहार करनेवाला, कर्त्ता, शासक, पालक और सब लोकों का ईश्वर (स्वामी) है। इसको न तू जानता है और न मैं। यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों का प्रभु है। यही कलि, सब प्राणियों का संहारक काल, तीनों लोकों का हरण करनेवाला और सिरजनेवाला भी है। हे राक्षसाधिप! यह स्थावर और जङ्गम—चर और अचर—का संहार करनेवाला और उन्हें फिर सिरजनेवाला है। यह अनादि और अनन्त सृष्टि इसी के वश में है। यज्ञ, दान, और हवन आदि का फल देनेवाला, धारण करनेवाला और रक्षक यही है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तीनों लोकों में ऐसा प्राणी कहीं नहीं है। हे पौलस्त्य! मेरा और तेरा तथा हमारे और तुम्हारे पूर्वपुरुषों का यही नियन्ता है। जिस तरह पशु की गर्दन में पड़ी हुई डोरी को पकड़ कर मनुष्य खींचता और उसे अपने वश में रखता है उसी तरह यह सब को अपने वश में रखता है। हे रावण! वृत्र, दनु, शुक, शम्भु, निशुम्भ, शुम्भ, कालनेमि, प्रह्लादि, कूटि, वैरोचन, मृदु, यमलार्जुन, कंस, और कैटभ मधु—ये सब सूर्य की नाईं तपते, चन्द्र की भाँति प्रकाश करते, वायु की तरह बहते और मेघ की तरह बरसते थे। इन सब ने सैकड़ों यज्ञ किये और बड़ी बड़ी तपस्याएँ कीं। ये सब बड़े महात्मा और योगी थे। इन्होंने बड़े बड़े ऐश्वर्य पाकर अनेक तरह के भोग भोगे। इन्होंने दान दिये, यज्ञ किये, अध्ययन किया और प्रजा का पालन किया। ये अपने पक्षवालों का पालन करते और शत्रुओं को मारते थे। समर में इनके तुल्य देवता आदि प्राणियों में कोई नहीं देख पड़ता था। हे राक्षसाधिप! ये सब शूर वीर, कुटुम्बी, सब शास्त्रों के पारदर्शी, सब विद्याओं के जानकार और संग्रामों में पीठ न दिखाते

थे। हे राघव! इन सब ने देवताओं पर राज्य किया और हजारों बार युद्ध में देवताओं को हराया। देवताओं का अहित करने में ये सब सदा तत्पर रहते थे और अपने पक्ष का पालन करते थे। सदा प्रमाद में दिन बिताते और अपने अपने काम में लगे रहते थे। ये सब बाल-सूर्य के तुल्य तेजस्वी थे।

हे लङ्काधिपते! अब द्वार पर स्थित पुरुष का हाल सुनो—ये भगवान् विष्णु हैं, जो कोई देवताओं का अपमान करता है उसके नाश के उपाय को ये जानते हैं। ये ऐसे किसी को उत्पन्न कर देते हैं कि जो उपद्रव करनेवाले का नाश ही कर देता है। ये तो अधिष्ठाता के अधिष्ठाता ही बने रहते हैं। जो ये बाहर खड़े हैं इन्होंने, इस तरह, उन दानवेन्द्रों का नाश कर दिया जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। हे राक्षस! वे सब समर में तो दुराधर्ष थे और ऐसा कभी सुनने में नहीं आया कि उन्होंने कहीं भी हार खाई हो। इस पुरुष ने उन्हें भी यमपुरी को पहुँचा दिया। इतना कह कर वे रावण से फिर बोले—"हे राक्षसाधिप! जो यह प्रदीप्त अग्नि की नाईं चमकता हुआ चक्र दिखाई देता है इसे उठा कर मेरे पास ले आओ। तब मैं अपने बन्धन से छूटने के विषय में कारण बतलाऊँगा। मैं जो कह रहा हूँ, उस काम को तुम जल्दी करो। यह सुन कर हँसता हुआ रावण चक्र के पास गया। हे रघुनन्दन! उसने अपने बल के घमण्ड से लीला-पूर्वक उस कुण्डल को उठाना चाहा परन्तु उठाने की कौन कहे वह उसे जरा हिला भी न सका। तब तो लज्जित होकर उसने उसको बड़े प्रयत्न और बल से उठाया। परन्तु उठाते ही वह बेहोश होकर जमीन पर ऐसा गिरा मानों जड़ से कटा हुआ साखू का वृक्ष हो। उसके मुँह से रुधिर की ऐसी धारा बही कि वह नहा उठा। यह चमत्कार देखकर, पुष्पक पर चढ़े हुए, उसके सचिवों ने बड़ा हाहाकार मचाया। फिर क्षण भर में वह सचेत होगया पर लज्जा के मारे उसका मुँह ऊपर को न उठा। उस समय बलि उससे बोले—"हे महाबली राक्षस! देखो, तुम जिस कुण्डल को उठाने गये थे वह मेरे पूर्वपुरुष के एक कान का कुण्डल है। दूसरे कान का कुण्डल, जब वे युद्ध कर रहे थे तब, पर्वत के शिखर पर गिरा था। और उसी समय सिर का मुकुट वेदिका के पास जमीन पर गिर पड़ा था। हे रावण! ये हिरण्यकशिपु मेरे प्रपितामह (परदादा) थे। उनके लिए काल, मृत्यु, और व्याधि कोई भी घातक नहीं था। न दिन में, न रात में और न दोनों सन्ध्याओं में उनका मरण था। न सूखी चीज से, न गीली चीज से और न किसी शस्त्र से उनकी मृत्यु थी। ब्रह्मा से इन्होंने ऐसा ही वर पाया था। उन्होंने अपने पुत्र प्रह्लाद से बड़ा झगड़ा किया। पर भगवान् भक्तवत्सल अपने भक्त का अप-मान न सह सके। वे नृसिंह के रूप में प्रकट हुए। वह रूप ऐसा भयङ्कर था कि उसके प्रकट होते ही चारों ओर खलबली मच गई। वह रूप महात्मा प्रह्लाद के लिए उत्पन्न हुआ था। फिर नृसिंह ने अपनी दोनों भुजाओं से हिरण्यकशिपु को उठाकर नखों से फाड़ कर मार ही डाला। हे रावण! वही निरञ्जन वासुदेव द्वार पर खड़े हैं। मैं उन देवाधिदेव के विषय में जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम परम भाव से, मन लगा कर, सुनो तो समझ में आ जाय। हजार इन्द्रों को, दस हजार देवों को और सैकड़ों ऋषियों को जिन्होंने हजारों वर्षों तक अपने वश में कर रक्खा था वे ही द्वार पर खड़े हैं।

सब हाल सुनकर रावण ने कहा—"हे राजन्! मैंने प्रेतराज कृतान्त को मृत्यु के साथ देखा है। उनके हाथ में महाज्वाला-युक्त पाश है; उनके बड़े बड़े बाल हैं, वे भयङ्कर, बड़े बड़े दाँतोंवाले हैं और बिजली की तरह जीभ लपलपाते हैं। उनके रोएँ साँप और बिच्छू हैं; उनकी आँखें लाल हैं और भयङ्कर वेग है। वे सब प्राणियों के लिए भयङ्कर और सूर्य की नाईं देखने के अयोग्य हैं। वे समरों से मुँह नहीं फेरते, और पापियों के शासनकर्त्ता हैं। ऐसे यमराज को मैंने, युद्ध करके, जीत लिया है। वहाँ मुझे ज़रा भी डर नहीं लगा। परन्तु इस पुरुष को मैं नहीं जानता। आप बतलाइए, यह कौन है।" यह सुन कर विरोचन के पुत्र बलि बोले—"हे रावण! ये त्रिलोकी की रक्षा करनेवाले साक्षात् नारायण प्रभु हैं। ये अनन्त, कपिल, जिष्णु, और महाद्युति नरसिंह हैं। ये क्रतुधामा अर्थात् यज्ञपुरुष, महा-तेजस्वी, और भयानक पाशहस्त हैं। ये बारह आदित्यों के समान तेजस्वी, पुराण और पुरुषोत्तम हैं। इनकी कान्ति नीले मेघ की सी है। ये ज्वालाओं से परिवृत, योगी, सुरनाथ, उत्तमदेव, और भक्त-जन-प्रिय हैं। यही लोकों का पालन-पोषण करते, रचते और काल बनकर संहार करते हैं। हे रावण! यही यज्ञ और यज्ञभोक्ता हैं; यही चक्रायुधधारी, सर्व-देवमय, सर्वजीवमय, सर्वलोकमय और सर्वज्ञान-मय हैं। हे वीर! यही सर्वरूपी, महारूपी, बलदेव, वीरों के मारनेवाले, वीरचक्षु, त्रिलोकी के गुरु और अव्यय हैं। जितने मुनिगण मोक्ष पाने की इच्छा करते हैं वे सब इन्हीं का ध्यान करते हैं। जो लोग इनको जानते हैं वे पापों से लिप्त नहीं होते। जो इनका स्मरण, श्रवण और पूजन करते हैं वे अपने मनोरथों को पाते हैं।" यह सुन कर रावण क्रोध में भर गया और लाल आँखें करके अपना शस्त्र सुधारने लगा। मुशलधारी प्रभु ने मन में सोचा कि इस समय इस पापात्मा को मैं क्या मारूँ। यह सोच कर और ब्रह्मा का हित विचार कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

दोहा।

नहिं देख्यो जब द्वार पर, पुरुषहिं निशिचरराज।
हर्षनाद करि तहाँ तें, निकर्यो सहित समाज॥

——

पच्चीसवाँ सर्ग।

रावण का सूर्य-लोक में जाना।

अब लंकेश कुछ सोच विचार कर सूर्य-लोक को चला। बीच में मेरु के शृङ्ग पर रात भर रह कर सबेरे सूर्य के घोड़े के समान फुर्तीले पुष्पक पर सवार होकर, विचित्र गति से, आकाश में विहार करता हुआ सूर्य-मण्डल में पहुँचा। वहाँ पर उसने हज़ार किरणों से उज्वल और सर्वतेजोमय श्रीसूर्य भगवान् को देखा। वे हाथों में सोने के कंकण पहने, रत्न-वस्त्रों को धारण किये, मनोहर कुण्डल पहने और गले में निष्क (भूषण) धारण किये शोभायमान थे। लाल चन्दन और लाल माला से सूर्य भगवान् बड़े सुशोभित हो रहे थे। उच्चैःश्रव जाति के घोड़ों से जुते हुए रथ पर सवार, आदि-अन्त-मध्य से रहित, लोक के साक्षी और जगत् के पति श्री आदिदेव को देख और उनके तेजोबल से पीड़ा पाकर रावण प्रहस्त से बोला—"हे मन्त्रिन्! तुम सूर्य के पास जाकर मेरी आज्ञा सुना दो कि रावण युद्ध के लिए आया है। उसके साथ युद्ध कीजिए,

या हार मानिए। इन दो बातों में से एक बात जल्दी कह दीजिए।" यह सुनकर प्रहस्त उनके पास गया और उनके पिङ्गल तथा दण्डी नामक द्वारपालों से मिला। उनसे रावण का संदेश कह कर वह चुपचाप वहीं खड़ा होगया। क्योंकि सूर्य की किरणों के ताप के मारे उसका चित्त तो ठिकाने था ही नहीं, जिससे वह कुछ अधिक कह सके। अब दण्डी ने सूर्य के पास जाकर रावण का संदेशा कह सुनाया। उसका हाल सुनकर श्रीदेवदेव बोले—"हे दण्डिन्! तुम जाकर या तो उसे युद्ध में जीतो, या कह दो कि मैं हार गया। जैसा चाहो वैसा उसके साथ व्यवहार करो।" थोड़ी देर में दण्डी ने सूर्य का उत्तर लंकेश्वर को सुना दिया।

दोहा।

सुनतहिँ रावण मुदित भा, जय-डंका बजवाय।
चढ़ि पुष्पक पर सह सचिव, चल्यौ सुगाल बजाय॥

छब्बीसवाँ सर्ग।

रावण का चन्द्रलोक में जाना और वहाँ मान्धाता से युद्ध करना।

अब रावण कुछ सोच विचार कर और मेरु के शिखर पर एक रात बिता कर सबेरे सोमलोक में गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि दिव्य माला तथा गन्ध से भूषित, और मुख्य मुख्य अप्सराओं से सेव्यमान एक पुरुष रथ पर चढ़ा चला जाता है। जब वह रति से थक जाता था तब अप्सराएँ उसको गोद में लेकर चूमती थीं। फिर वह जाग जाता था। उस पुरुष को देख कर रावण बहुत विस्मित हुआ। थोड़ी ही देर में वहाँ एक ऋषि दिखाई पड़े। रावण ने उनसे कहा—"हे देवर्षे! आप अच्छी तरह से हैं न? आपने अच्छे समय पर दर्शन दिये। आप बतलाइए कि अप्सराओं से सेवित, रथ पर चढ़ा हुआ, यह निर्लज्ज मनुष्य की तरह कौन चला जाता है। यह आये हुए भय की ओर दृष्टि ही नहीं करता।" यह सुनकर पर्वत ऋषि बोले—हे प्यारे महामते! सुनो। इस पुरुष ने लोकों को जीता और ब्रह्मा को भी सन्तुष्ट किया है। अब यह मोक्ष के लिए सुखमय उत्तम स्थान को जा रहा है। हे राक्षसाधिप! जैसे तुमने तपस्या करके लोकों को जीता है उसी तरह यह पुण्यात्मा यज्ञ में सोम का पान कर अपनी गति को प्राप्त कर रहा है। हे राक्षसों में श्रेष्ठ! तुम तो शूर और सत्यपराक्रमी हो। तुमको ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि बलवान् ऐसे धर्मनिष्ठों पर क्रोध नहीं करते।

इसके बाद रावण ने फिर एक दूसरे रथ पर चढ़े, बड़े विशाल, पराक्रमी और शरीर से जाज्वल्यमान एक पुरुष को देखा। वह रथ गीत और बाजों के शब्दों से सुशोभित चला जाता था। उसे देखकर रावण ने मुनि से फिर पूछा—"हे देवर्षे! यह अत्यन्त सुशोभित, प्रकाशमान कौन है जो गाते तथा नाचते हुए किन्नरों के साथ बैठा चला जाता है?" यह सुन कर पर्वत ऋषि ने कहा—"यह शूर और योद्धा है, रण में इसने कभी पीठ नहीं दिखाई है। यह चतुर समर में लड़ता लड़ता प्रहारों से बहुत जीर्ण हो, बहुतों को मार कर, शत्रु के हाथ से मारा गया। इसने स्वामी के लिए अपने प्राण दिये हैं। अब यह इन्द्र का अतिथि हुआ। शायद यह वहीं जाता हो इसीसे यह नरश्रेष्ठ गाने-बजानेवाले मनुष्यों के साथ जाता है। इसके बाद फिर

एक दूसरे मनुष्य को उसी के समान जाता देख रावण ने पूछा—हे ऋषे! सूर्य के समान यह कौन चला जाता है? पर्वत मुनि बोले—हे राक्षसेश्वर! यह जो सोने के रथ पर चढ़ा अप्सराओं के साथ पूर्णचन्द्र के समान मुँहवाला चला जाता है, इसने सोने का दान किया है। इसी से यह विचित्र कपड़े और आभूषणों से भूषित हो शीघ्रगामी विमान पर चढ़ा हुआ चला जाता है। रावण ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ! इतने राजा चले जाते हैं, इनमें से ऐसा भी कोई राजा है जो प्रार्थना करने से मेरे साथ युद्ध करे? आप मेरे धर्म के पिता हैं। युद्ध करनेवाला राजा मुझे बतला दीजिए। पर्वत बोले—महाराज! ये सब राजा स्वर्ग चाहनेवाले हैं, युद्धार्थी नहीं। हाँ, एक राजा है जो सप्तद्वीप का स्वामी है, उसका नाम मान्धाता है। वह तुमसे युद्ध करेगा। यह सुनते ही राक्षसराज बोला—मुझे बतला दीजिए, वह राजा कहाँ है? मैं वहीं जाऊँगा। ऋषि ने कहा—हे राजन्! वह युवनाश्व का पुत्र मान्धाता सातों द्वीपों को अपने वश में करके यहाँ आवेगा। तब तक तुम ठहरे रहो। यह कहते ही अयोध्याधिपति वह मान्धाता राजा दिखाई पड़ा। देवराज के रथ के तुल्य प्रकाशमान् सोने के विचित्र रथ पर चढ़ा हुआ वह रूप से जाज्वल्यमान, दिव्य गन्ध से सुगन्धित और भूषित था। उसे देखते ही रावण कहने लगा—"मुझ को युद्ध दो।" यह सुन कर राजा हँसता हुआ बोला—हे राक्षस! अगर तुम जीना नहीं चाहते तो मेरे साथ युद्ध करो। रावण ने कहा—"जो रावण वरुण, कुवेर और यम तक से भी युद्ध में पीड़ित नहीं हुआ वह तुझ मनुष्य से क्या डरेगा? यह कह कर और क्रोध में भर कर उसने, युद्ध करने में दुर्मद, अपने मन्त्रियों को युद्ध करने की आज्ञा दी। उसके मंत्री युद्ध करने में बड़े चतुर थे। वे मान्धाता के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। उस बलवान् राजा मान्धाता ने भी प्रहस्त, शुक और सारण पर पैने पैने कङ्कपत्र बाण बरसाने शुरू किये। महोदर, विरूपाक्ष और अकम्पन को भी उसने बाणों से छेदा। राजा पर प्रहस्त बड़ी बाण-वर्षा करने लगा। परन्तु राजा ने बीचही में उन तीरों को काट गिराया। भुशुण्डी, भल्ल, भिन्दिपाल और तोमरों के प्रहार से राक्षसों को राजा ऐसा भस्म करने लगा जैसे तिनकों के ढेर को आग भस्म करती है। फिर उसने प्रहस्त को पाँच बाणों से छेदा और बड़े वेगवान् तोमरों से उसकी ऐसी दशा कर दी जैसे स्वामिकार्त्तिक ने क्रौंचाचल की की थी। थोड़ी देर में उसने यम के तुल्य भयङ्कर मुद्गर घुमा कर रावण के रथ पर फेका। वज्र के तुल्य वह मुद्गर उसके रथ पर जा गिरा। उस प्रहार से, इन्द्र के झंडे की तरह, रावण रथ पर से नीचे गिर पड़ा। उस समय राजा मान्धाता ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पूर्ण चन्द्रमा का स्पर्श कर समुद्र का जल उछलने लगता है। रावण के गिर जाने से उसकी सेना के लोग हाहाकार करते हुए अचेत रावण को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। बहुत देर बाद रावण को होश हुआ। सचेत होकर वह भी राजा मान्धाता पर बड़े प्रहार करने और उसे पीड़ित करने लगा। उसके प्रहारों से राजा भी मूर्च्छित हो गया। राजा के बेहोश होते ही राक्षस सिंहनाद करके गरजने लगे। क्षण भर में वह अयोध्या का राजा सचेत हो गया और क्या देखता है कि राक्षस लोग रावण की स्तुति कर रहे हैं। तब तो उसे बड़ा क्रोध आया। वह बाण-वर्षा से राक्षसी सेना को ध्वस्त करने

लगा। उस समय उसके धनुष की टंकार से और बाणों के निनाद से रावण की सेना, वायु के वेग से समुद्र की तरह, खलबला उठी। उस समय मनुष्यों और राक्षसों का महा घोर युद्ध आरम्भ हुआ। नरराज और राक्षसराज आपस में धनुष और तलवार लिये वीरासन बाँधकर बाणों की बहुत बड़ी वर्षा करने लगे। उस समय प्रहारों के मारे दोनों ही छिन्न भिन्न दिखाई देने लगे। रावण ने रौद्रास्त्र का प्रयोग किया और मान्धाता ने आग्नेयास्त्र से उसे रोक दिया। फिर राक्षस ने गान्धर्व अस्त्र चलाया, उसको राजा ने वारुण अस्त्र से रोका। सब प्राणियों को भय देनेवाले ब्रह्मास्त्र को मान्धाता ने चलाया और तीनों लोकों के भयदाता घोररूप पाशुपत को रावण ने चलाया। पाशुपत अस्त्र को रावण ने तपोबल के द्वारा शिव से पाया था। इन अस्त्रों का चलाना देखकर स्थावर और जंगम भयभीत हो गये तथा तीनों लोक थरथराने लगे। देवता काँप उठे और नाग भाग कर पाताल में घुस गये। पुलस्त्य और गालव ऋषियों ने योगबल से इस अनर्थ को जान लिया। वे दोनों संग्राम-भूमि में आये। उन्होंने दोनों को युद्ध करने से रोक दिया। उन्होंने रावण को बहुत धिक्कार भी दिया। तब वे दोनों युद्ध त्याग कर परस्पर मित्र हो गये।

दोहा।

देखि दोउन की प्रीति भलि, हर्षित दोउ मुनिराय।
चले सु निज निज आश्रमन्हि, छिन महँ पहुँचे जाय॥

——

सत्ताईसवाँ सर्ग।

रावण का चन्द्रलोक में जाना।

अब दोनों ऋषियों के चले जाने पर रावण दश हज़ार योजन की दूरी पर, पहले वायुमण्डल के ऊपर, गया जहाँ सब गुणों वाले हंस पक्षी सदा रहते हैं। वह वायुमण्डल भी दश हज़ार योजन गिना जाता है जहाँ ब्राह्म, आग्नेय और पक्षज ये तीन तरह के मेघ सदा रहते हैं। उसके ऊपर तीसरा वायुमार्ग है। वहाँ बड़े मनस्वी सिद्ध और चारण रहते हैं। वह भी दस हज़ार योजन है। वहाँ पहुँच कर फिर रावण उसके ऊपर भी गया जहाँ से चौथा वायुमार्ग कहा जाता है। वहाँ सदा भूत और विनायक लोग रहते हैं। वहाँ से भी राक्षसराज पाँचवें वायुमार्ग पर गया। वह भी उतनी ही दूर है। वहाँ नदियों में श्रेष्ठ श्रीगङ्गा जी और कुमुद आदि नाग (हाथी) रहते हैं। ये बड़े बड़े गजेन्द्र अपने मुँह से जल के कण उड़ाते हुए गङ्गा के जल में क्रीड़ा करते और पवित्र जल बरसाते हैं। वह जल सूर्य की किरणों से छूट कर, वायु से (ठण्डा हो) हिमरूप होकर, ऊपर से गिरता है। रावण वहीं जा पहुँचा फिर वह छठे वायुमार्ग पर गया। वह भी उतने ही योजन दूर है। वहाँ अपने कुटुम्बियों और बान्धवों के साथ गरुड़ रहते हैं। इसके बाद रावण उससे भी ऊपर, दस हज़ार योजन, सातवें वायुमार्ग पर गया। वहाँ ऋषि रहते हैं। फिर वह उतनी ही दूर आठवें वायुमार्ग में गया। वहाँ आदित्य-मार्ग में आकाश-गङ्गा के नाम से गङ्गा प्रसिद्ध रहती है। वह वायु के वेग से आकाश ही में बहती है। उसका महावेग और महाशब्द है। उसके ऊपर, अस्सी हज़ार योजन की दूरी पर, नक्षत्रों-सहित

चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमण्डल से सैकड़ों हज़ारों किरणें निकल कर लोकों को प्रकाशित करती तथा सुख देती हैं। श्रीचन्द्रदेव रावण को देखते ही अपनी शीताग्नि से उसे भस्म करने लगे। परन्तु उसके मन्त्री उस ठंढ को न सह सके। रावण से 'जय-महाराज' कह कर प्रहस्त ने कहा—राजन्! हम लोग तो मारे ठंढ के ऐंठे जाते हैं। इसलिए हम यहाँ नहीं ठहर सकते, हम यहाँ से लौटे जाते हैं। क्योंकि चन्द्रमा की किरणों से हम राक्षसों को भारी डर लगा है। हे राजेन्द्र! इस चन्द्रमा का शीताग्नि से जलाने का स्वभाव ही है। यह सुन कर रावण क्रोध में भर गया और धनुष फैलाकर चन्द्रमा को बाणों से पीड़ित करने लगा। वहाँ तत्काल ब्रह्मा आये और बोले—"हे दशानन, हे महाबाहु, हे विश्रवा के पुत्र! तुम यहाँ से जल्दी चले जाओ। चन्द्रमा को पीड़ा मत दो। क्योंकि ये महाद्युति (बड़े प्रकाश करने वाले) द्विजराज चन्द्र सदा लोकों के हित करने ही में लगे रहते हैं। मैं तुमको एक मन्त्र दूँगा। वह प्राणों के सङ्कट में स्मरण करने के योग्य है। उस मन्त्र का जो स्मरण करते हैं उनको मृत्यु का डर नहीं रहता।" ब्रह्मा के ये वचन सुन वह हाथ जोड़ कर बोला—"हे देव, हे लोकनाथ, हे महाव्रत! यदि आप सन्तुष्ट हैं और मुझे मन्त्र देना चाहते हैं तो दीजिए। उसका जप करके मैं सब देवों, असुरों, दानवों और पक्षियों से, आपकी कृपा से, अजेय हो जाऊँगा।" ब्रह्माजी ने कहा—जब प्राणों के नाश का डर हो तब इस मन्त्र को जपना चाहिए, सदा नहीं। तुम इसका जप करो। जप माला को हाथ में लेकर तुम इसे जपोगे तो ज़रूर अजेय होगे। अगर न जपोगे तो तुम्हारी कार्य-सिद्धि न होगी। हे राक्षसों में श्रेष्ठ! सुनो, मैं तुमको ऐसा मन्त्र बतलाता हूँ जिसके पढ़ने से तुम समर में जय पाओगे। वह मन्त्र यह है—

हे देवदेवेश! हे सुरासुर-नमस्कृत, हे भूत-भव्य, हे महादेव, हे हरिपिङ्गल-लोचन! तुमको नमस्कार हो। तुम बालक हो, वृद्ध हो, और व्याघ्र-चर्म धारण करते हो। हे देव! तुम पूजनीय हो, त्रिलोकी के प्रभु हो, और ईश्वर हो। हे हर, हे हरिताक्ष, हे युग के अंत में भस्म करनेवाले अग्नि, हे बलदेव, तुम गणेश, लोकशम्भु, लोकपाल, महाभुज, और महाभाग हो। हे देव! तुम महाशूली, महादंष्ट्र, महेश्वर, काल, बलरूपी नीलग्रीव, महोदर और देवों का अन्त देखनेवाले हो। हे देव! तुम तपस्या के पारगामी, पशुपति, अव्यय, शूलपाणि, वृषकेतु, नेता, गोप्ता, हर, हरि, जटी, मुण्डी, शिखंडी, और लकुटी हो। हे देव! तुम महायशस्वी, भूतेश्वर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सर्वभावन, व्यापक, सर्वहारी और सिरजनहार हो। हे देव! तुम अव्ययगुरु, कमण्डलुधर, पिनाकी, धूर्जटि, माननीय, ओंकार, वरिष्ठ, ज्येष्ठसामग, मृत्युमृत्यु, भूत, पारियात्र, और सुव्रत हो। हे देव! तुम ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वीणा-पणव-तूणधारी, अमर, दर्शनीय, बालसूर्यसदृश, श्मशान-वासी, भगवान् उमापति और अनिन्दित हो। हे देव! तुम भग के नेत्र-नाशक, पूषा के दाँत तोड़नेवाले, ज्वरहर्त्ता, पाशहस्त, प्रलय और काल हो। हे देव! तुम उल्कामुख, अग्निकेतु, मुनि, दीप्त, विशाम्पति, उन्मादी, वेपनकर, चतुर्थ लोकसत्तम, वामन, वामदेव, प्राकप्रदक्षिण वामन, भिक्षु, भिक्षुरूपी, त्रिजटी और कुटिल हो। हे देव! तुम इन्द्र, हस्त-

रोधी, वसुरोधी, ऋतु, ऋतुकर, काल, मधु, मधु-लोचन, वानस्पत्य, वाजसन, नित्य, और आश्रम-पूजित हो। हे देव! तुम जगद्धाता, कर्त्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, विरूपाक्ष, त्रिधर्मा, भूत-भावन, त्रिनेत्र, बहुरूप, अयुतसूर्य-कान्ति, देवदेव और अतिदेव हो। हे देव! तुम चन्द्राङ्कित, जटाधर, नर्त्तक, लासक, पूर्णचन्द्रमुख, ब्रह्मण्य, शरण्य, सर्वजीवमय, सर्वतूर्यनिनादी; सर्वबन्धुविमोचक और मोहन हो। हे देव! तुम बन्धन, सदानिधनोत्तम, पुष्पदन्त, विभाग, मुख्य, सर्वहर, हरिश्मश्रु, धनुर्धारी, भीम और भीमपराक्रमी हो।

दोहा।

अष्टोत्तरशत नाम यह, अति पवित्र अघहारि।
शत्रु-विनाशन शरणप्रद, शुचि होइ जपहु सुरारि॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग।

रावण को श्रीकपिलदेव का दर्शन होना।

हे रामचन्द्र! इस तरह रावण को वर देकर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये। रावण ने ब्रह्मा से दूसरा वर पाकर अपनी पुरी का मार्ग लिया। कुछ समय बीत जाने पर फिर मंत्रियों को साथ ले उसने पश्चिम समुद्र की यात्रा की। वहाँ एक द्वीप में उसको अग्नि के तुल्य एक पुरुष दिखाई दिया। वह बड़ा दीप्तिमान्, सोने के तुल्य कान्ति-मान्, अकेला और भयङ्कर आकारवाला था; वह युगान्त की अग्नि के तुल्य प्रकाश करता था। वह देवों का भी देव, ग्रहों में सूर्य के तुल्य, शरभ जाति के मृगों में सिंह की नाईं, हाथियों में ऐरा-वत के तुल्य, पर्वतों में मेरु के सदृश और वृक्षों में पारिजात के समान विराजमान था। उस पुरुष को देखकर रावण कहने लगा—"तुम मुझसे युद्ध करो।" उस समय रावण की दृष्टि ग्रहमाला के तुल्य व्याकुल हो गई और उसके दाँतों के पीसने का ऐसा शब्द हुआ जैसे पत्थरों की रगड़ से होता है। मन्त्रियों के साथ रावण बड़े ज़ोर से गरजा। अनेक तरह की गर्जनाओं से गरजता हुआ वह राक्षसराज उस लम्बे लम्बे हाथोंवाले, भया-नक, बड़े भयङ्कर दाँतोंवाले, विकटाकार और शङ्ख की सी गर्दनवाले उस पुरुष को शूल, शक्ति, ऋष्टि और पटाओं से मारने लगा। उस पुरुष की छाती चौड़ी, मेंढक का सा पेट, और सिंह का सा मुँह था। वह कैलास पर्वत की चोटी के समान बड़ा, कमल के समान उसके पैरों के तलवे, लाल तालु, लाल हाथ और बड़ा शब्द था। उसका शरीर बड़ा था, वेग में वह मन और वायु के तुल्य था। वह तरकस बाँधे था, घंटे में चामर लटकाये था, चारों ओर ज्वाला फेंकता और किङ्किणी-जाल को बजा रहा था। वह गर्दन में लटकती हुई सोने के कमलों की माला से ऋग्वेद की भाँति शोभायमान, कमलों की माला से विभूषित, और सोने के पर्वत की नाईं बड़ा था। उस द्युति-सम्पन्न पुरुष को वह अनेक शस्त्रों से मारने लगा। छोटे व्याघ्र के प्रहार से जैसे सिंह, बैल की झपट से जैसे हाथी, दिग्गजों के द्वारा जैसे सुमेरु और नदियों के वेगों से जैसे समुद्र नहीं काँपता वैसे ही वह पुरुष रावण के प्रहार से कुछ भी कंपित न हुआ। किन्तु उसने रावण से कहा—"हे मूर्ख! ठहर जा। तेरे युद्ध की श्रद्धा का मैं अभी नाश करता हूँ।" सब लोक के लिए भयङ्कर जैसा रावण का वेग था वैसे ही हज़ारों वेग

उस पुरुष में थे। इसके सिवा जगत् की सिद्धि के मूल कारण धर्म और तप दोनों ही उसकी जंघाओं का सहारा लिये थे; काम उसकी इन्द्रिय में आश्रय करता था, विश्वेदेवा उसके कटि भाग में, वायु पेडू और पार्श्व (कुक्षि) का अवलम्बन करते और शरीर के बीच में आठों वसु रहते थे। उस के उदर में समुद्र, पार्श्व आदि भागों में दिशायें और जोड़ों में मारुत था। पीठ के हिस्से में रुद्र तथा पितर, और हृदय में पितामह रहते थे। गोदान, भूमिदान, और सुवर्णदान जिसकी बग़ल के बाल थे; हिमवान्, हेमकूट, मन्दर और मेरु जिसकी हड्डियाँ थीं; जिसके हस्त वज्रमय और शरीर में आकाश था; जिसकी गर्दन में सन्ध्या और मेघ थे, जिसकी भुजायें धाता, विधाता, और विद्याधर आदि थे; शेष, वासुकि, विशालाक्ष, इरावत, कम्बल, अश्वतर, कर्कोटक, धनञ्जय, तक्षक और उपतक्षक—ये सब बड़े बड़े विषधर नाग जिसके नख थे; अग्नि जिसका मुख; रुद्र जिसके स्कन्धभाग; पक्ष, मास, संवत्सर और ऋतु ये सब जिसके दाँत थे, अन्धकारयुक्त अमावास्या जिसकी नाक और शरीर के छिद्रों में वायु रहती थी। वीणा हाथ में लिये भगवती सरस्वती देवी जिसके कण्ठ में विराजती थीं, दोनों कानों में अश्विनीकुमार थे, चन्द्र तथा सूर्य जिसके दोनों नेत्र थे, वेदाङ्ग और यज्ञ जिसकी आँख की पुतलियाँ थीं, तेज और तप जिसके सुन्दर वचन थे—उस पुरुष ने वज्र के तुल्य रावण का प्रहार सह कर लीला-पूर्वक रावण को हाथ से पकड़ कर दबा दिया। उसकी दाब पाते ही रावण मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। जब उसने जान लिया कि रावण मूर्च्छित हो गया तब उसने राक्षसों को भी भगा दिया। फिर वह स्वयं पर्वत की कन्दरा के समान मार्ग से पाताल में घुस गया। थोड़ी देर बाद सचेत होकर रावण अपने मंत्रियों को बुलाकर पूछने लगा कि वह पुरुष कहाँ गया। उन्होंने कहा—वह दानवों और देवताओं का अहङ्कार-नाशक पुरुष इसी जगह घुस गया। यह सुन कर रावण भी उसी बिल में घुस गया। उस के भीतर भी एक द्वार था। रावण उसमें निडर होकर चला गया। भीतर पहुँच कर रावण ने वहाँ ऐसे पुरुषों को देखा जो कज्जल के पर्वत के आकारवाले, बाजूबन्दों से भूषित, शूर, रक्तमाला पहने और लाल चन्दन से शोभायमान, श्रेष्ठ और सोने के तथा रत्नों के समूह से प्रकाशमान थे। रावण ने वहाँ और भी देखा कि इसी प्रकार के, नित्य उत्सव करनेवाले, निडर और पवित्र अग्नि के समान प्रकाशमान, तीन करोड़ महात्मा नाच रहे हैं। यह सब तमाशा रावण ने द्वारही से देखा। फिर वह निडर हो कर उन लोगों के बीच में चला गया। रावण ने बाहर जैसे पुरुष को देखा था वैसेही रङ्ग, वेश, रूप, पराक्रमवाले तथा वैसे ही चार भुजाओं वाले वहाँ सब उसको देख पड़े। उनको देखतेही रावण के रोमाञ्च हो गया। परन्तु ब्रह्मा के वरदान के बल से वहाँ से वह जल्दी निकल आया नहीं तो मर ही जाता। इतने पर भी रावण ने वहाँ ढिठाई की। उसने देखा कि वह पुरुष बड़े क़ीमती सफ़ेद घर में और सफ़ेद ही बिछौने पर सो रहा है। उसके ऊपर चारों ओर से ओढ़ने के समान अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही हैं; और उसके पास दिव्य कपड़े पहने, दिव्य माला धारण किये, और चन्दन लगाये त्रैलोक्य की भूषण-स्वरूप

बड़ा प्रकाशमान् कमल हाथ में लिये महापतिव्रता श्री लक्ष्मी देवी हाथ में चँवर लिये बैठी सेवा कर रही हैं। दुष्ट रावण वहाँ जाते ही वैसी सुन्दरी और मनोहर हँसनेवाली स्त्री को देखकर मोहित हो गया। हाथ बढ़ा कर उसने उसे लेना चाहा। उस समय भगवती सिंहासन पर बैठी थीं। रावण वहाँ अकेला था तो भी वैसी ढिठाई करने से रुकता न था। जब उस पुरुष ने जाना कि रावण ऐसा काम करने पर उतारू है तब उसने अपने शरीर पर के अग्निपट को हटा दिया। रावण को देखकर वह बड़े ज़ोर से हँसने लगा। उस समय उस तेज से रावण अत्यन्त भस्म होने लगा और कटे हुए वृक्ष की नाईं ज़मीन पर गिर पड़ा। जब राक्षसराज ज़मीन पर गिर पड़ा तब वह पुरुष कहने लगा—"हे राक्षसों में श्रेष्ठ! उठो; इस समय तुम्हारी मृत्यु नहीं है। क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा के वर को मानना अवश्य है, इसी लिए तू जीता हुआ बचा है। हे रावण! तू यहाँ से बेखटके चला जा। इस समय तेरा मरण नहीं है।" क्षण भर में रावण को होश आया। परन्तु उस समय वह बहुत डर गया था। उस पुरुष के मुँह से वह वचन निकलते ही वह देव-कंटक ज़मीन पर से उठा और मारे डर के रोमाञ्चित हो उस महाप्रकाशमान् पुरुष से बोला—"आप बड़े शूरवीर और प्रलयाग्नि के तुल्य कौन हैं? हे देव! आप कहाँ से आगये? यह सुन कर मेघ के समान गम्भीर वाणी से उस पुरुष ने हँस कर कहा—यह बात पूछ कर तू क्या करेगा? अब बहुत दिन नहीं हैं, तू मेरे हाथों से मारे जाने योग्य है।" रावण ने हाथ जोड़ कर कहा—इस समय मैं केवल प्रजापति के वचन से नहीं मरा, उन्हीं के प्रताप से जीता रहा। तीनों कालों में ऐसा पुरुष न हुआ और न होगा जो ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन कर सके। और की तो बात ही क्या, देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं। उसका कोई परिहार नहीं है और उपाय भी दुर्बल है। त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं दीखता जो मेरे वर को वृथा कर दे। हे सुरों में श्रेष्ठ! मैं अमर हूँ, इसलिए यह भय मुझ में प्रविष्ट नहीं हुआ परन्तु अब मेरी यही प्रार्थना है कि अगर मेरी मृत्यु हो तो आप ही के हाथ से हो, दूसरे के हाथ से न हो। क्योंकि आप के हाथ से मेरा मरण होगा तो यश और स्तुति के योग्य होगा। इसके बाद रावण ने उस पुरुष के शरीर में सम्पूर्ण चराचर जगत् को देखा। आदित्य, वायु, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, रुद्र, पितर, यम, कुबेर, समुद्र, पर्वत, नदी, वेद, विद्या, तीनों अग्नि, ग्रह, तारागण, आकाश, सिद्ध, गन्धर्व, चारण, वेद के जानने वाले, महर्षिगण, गरुड़, नाग और अन्य देवता तथा दैत्य, राक्षस ये सब सूक्ष्म रूप से उस पुरुष के शरीर में दिखाई दिये।

यह अद्भुत वृत्तान्त सुन कर श्रीरघुनन्दन अगस्त्य मुनि से पूछने लगे—"हे भगवन्! वह द्वीप में रहनेवाला पुरुष कौन है? वे तीन करोड़ पुरुष कौन हैं? वह सोया हुआ पुरुष कौन था जो दैत्य और दानवों के मद को दूर करने का सामर्थ्य रखता था?" अगस्त्य मुनि ने उत्तर दिया—"हे सनातन देवदेव! मैं कहता हूँ, सुनिए। वे द्वीप पर रहनेवाले पुरुष कपिलदेव कहलाते हैं। वहाँ जो नाचते थे वे सब तुल्य तेज प्रभाव वाले उसी पुरुष के समान थे। हे राघव! क्रोध-पूर्वक उस पुरुष ने रावण को नहीं देखा नहीं तो वह पापी उसी समय

भस्म हो जाता। परन्तु जब वह ज़मीन पर गिर पड़ा और पसीज उठा तब उस पुरुष ने रावण को बहुत कठोर वचन सुनाये। उन वचनों से उसने उसके मन का भेदन कर दिया, जैसे चुग़लख़ोर गुप्त बात को भी खोल देता है। रावण बहुत देर बाद सचेत हो कर अपने सचिवों के पास गया।

दोहा।

पाइ धर्षणा इतनिहूँ, नेकु न दुष्ट लजात।
जल पाये सन गाँठि जिमि, अधिक अधिक कठिनात॥

उनतीसवाँ सर्ग।

रावण का बहुत सी परस्त्रियों को हरण करना

अब वह दुष्ट रावण प्रसन्न हो वहाँ से लौटा और मार्ग में राजर्षियों, देवताओं और दानवों की कन्याओं को हरता हुआ चला। वह दुष्ट जिस जिस सुन्दरी कन्या या स्त्री को मार्ग में देखता था उस उस के बन्धुजनों को मार कर उसे हरण कर अपने विमान पर बैठा लेता था। इस तरह नाग, राक्षस, दैत्य, मनुष्य, यक्ष, और दानवों की बहुत सी कन्याओं को उसने अपने विमान पर बैठा लिया। वे बेचारी अपने दुःख के आँसू बहा रही थीं। वे सब शोकार्त होकर, एक ही साथ, शोकाग्नि और भय से उपजे हुए आँसू बहाने लगीं। ये आँसू आग की लौ की भाँति उष्ण थे। परमसुन्दरी स्त्रियों से वह विमान ऐसा भर गया जैसे नदियों से समुद्र पूर्ण हो जाता है। वे सब डर और शोक के मारे अमङ्गल-कारक आँसू बहा बहा कर उस विमान को भर रही थीं। विमान पर बैठी नागों, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवों की सैकड़ों कन्यायें रोने लगीं। इनके लम्बे लम्बे केश, मनोहर अङ्ग और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुँह थे; इनके स्थूल स्तन, और पतली कटि थी; स्थूल नितम्बोंवाली ये सब बड़ी सुन्दरी थीं और सोने की सी इनकी कान्ति थी। ये सब बड़ी घबराहट से शोक, दुःख और भय के मारे डर रही थीं। इनके निःश्वास-वायु से वह विमान ऐसा प्रज्वलित दिखाई देता था मानों उसमें अग्निहोत्र हो रहा हो। दुष्ट रावण के वश में पड़ी हुई उन कामिनियों के मुख म्लान और नेत्र शोकाकुल हो गये। सिंह के वश में पड़ी हुई मृगी की भाँति वे पीड़ित थीं। उनमें से कोई तो यह सोचती थीं कि कहीं यह दुष्ट हमको खा तो न डालेगा; कोई कोई दुःखार्त होकर यह कहती थीं कि शायद यह हम को मार डाले। अपने माता पिता, पति और भाइयों का स्मरण करके दुःख और शोक में भरी सब विलाप कर रही थीं। कोई कहती थी कि हा! मेरे बिना मेरे पुत्र की क्या दशा होगी। कोई कहती कि मेरा भाई और मेरी माता शोक-सागर में डूब रही होगी। हा! मैं उस पति के बिना क्या करूँगी? अतः हे मृत्यो! मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू मुझ दुःखभागिनी को ले चल। हा! पूर्वजन्म में हम लोगों ने ऐसा क्या पाप कर्म किया था जिस कारण हम सब ऐसी दुःखित हो शोकसागर में पड़ी हैं। हम सब को अपने दुख का अन्त अब दिखाई नहीं देता। अहो! इस मनुष्य-लोक को धिक्कार है। इसके ऐसा दूसरा अधम लोक नहीं कि जहाँ हमारे दुर्बल पतियों को इस बलवान् रावण ने बात कहते मार गिराया जैसे सूर्य उदय होते ही अन्धकार को नष्ट कर देता है।

आह! यह राक्षस बड़ा ही बलवान् है। यह मारने के उपाय करता हुआ घूमता है। आश्चर्य है कि यह अपने दुराचार से घृणा नहीं करता। यह जैसा दुरात्मा है, इसमें पराक्रम भी वैसा ही है। दूसरों की स्त्रियों पर हाथ डालना अनुचित कर्म है। यह राक्षसाधम जो परस्त्री में प्रीति रखता और उन्हीं के साथ रमण भी करना चाहता है तो यह परस्त्री ही के कारण मारा भी जायगा।

पतिव्रता स्त्रियों के मुँह से ऐसे वचन निकलते ही आकाश में दुन्दुभियों के शब्द हुए और फूलों की वर्षा हुई। स्त्रियों के शाप से वह रावण पराक्रम-रहित, प्रभाहीन और उदास हो गया। वह उन स्त्रियों का विलाप सुनता हुआ अपने सचिवों के साथ लंका में जा पहुँचा। इस बीच में रावण की बहन कामरूपिणी शूर्पणखा आकर रावण के पास गिर पड़ी। रावण ने उसे उठाया। समझा बुझा कर वह उससे पूछने लगा—हे भद्रे! यह क्या बात है? तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो? यह सुन कर वह रोती हुई, आँखें लाल किये, बोली—"हे राजन्! तुमने अपने बल के कारण मुझे विधवा बना डाला। भाईरूप तुम मेरे शत्रु हो। तुमने चौदह हज़ार कालकेय दैत्यों के मारने के समय मेरे पति को भी मार डाला। वह मेरा प्राणों से भी अधिक प्रिय था। तुमने उसे क्या मारा मानों मुझे ही मार डाला। अब तुम्हारे लिए मुझे विधवापन भोगना पड़ा। अरे! तुमको उचित था कि संग्राम में जामाता की रक्षा करते; पर तुमने तो उसको स्वयं मार डाला। इतने पर भी तुम लज्जित नहीं होते।" इस तरह रोती और विलाप करती हुई अपनी बहन की बात सुन कर रावण उसे समझाने लगा—हे वत्से! अब तो रोना व्यर्थ है। तुम किसी तरह भयभीत मत हो। मैं दान मान और प्रसाद से तुझे सन्तुष्ट करूँगा। मैं उस युद्ध के समय पागल हो रहा था, अपने और पराये को मैं पहचानता न था। जय की इच्छा से लगातार बाण चला रहा था। भला मैं किस तरह जान सकता था कि उस समय तेरा पति कहाँ है। इसी से वह मारा गया। हे बहन! अब तो जो हुआ सो हुआ। अब जो तेरे हित की बात होगी वही मैं करूँगा। अब तू अपने भाई ऐश्वर्यवान् खर के पास जाकर रह। वह चौदह हज़ार राक्षसों का स्वामी होगा और युद्धयात्रा तथा दान में सब तरह वही अधिकारी होगा। वह खर तेरी मौसी का लड़का है। वह सदा तेरी आज्ञा का पालन करेगा। अब वह दण्डकारण्य की रक्षा के लिए जायगा। दूषण उसका सेनापति होगा। वह शूर तेरा कहना मानेगा। वह कामरूपी राक्षसों का मालिक होगा। इतना कह कर चौदह हज़ार राक्षसों की सेना उसके अधिकार में दे दी। वह सेना-सहित दण्डकारण्य में जा कर निष्कण्टक राज्य करने लगा।

दोहा।

दण्डक वन महँ आइ ते, बसे निसाचर झारि।
शूर्पणखा कहँ संग लेइ, मनुजादन देवारि॥

तीसवाँ सर्ग।

स्वर्गविजय के लिए रावण की तैयारियाँ।

इस तरह खर को सेना दे और शूर्पणखा को समझा कर रावण स्वस्थ हुआ। इसके बाद वह राक्षसराज अपने अनुचरों को साथ लेकर निकु-

म्भिला नामक एक स्थान में गया। यह लंका का एक उत्तम उपवन था। सैकड़ों यज्ञ के स्तम्भों और नाना प्रकार की यज्ञ की शालाओं से सुशोभित उस स्थान को उसने यज्ञ से सुशोभित देखा। इसके बाद काले हिरन के चर्म को पहने; कमण्डलु, शिखा, और ध्वजा को धारण किये, भयंकर रूप-धारी अपने पुत्र मेघनाद को उसने देखा। उसने झट उसको भुजाओं से पकड़ कर गले से लगा कर कहा—हे पुत्र! तुम यह क्या कर रहे हो? सब हाल ठीक ठीक कहो। पर उसकी बात सुन कर वह कुछ भी न बोला। क्योंकि यज्ञ की दीक्षा के समय मौन रहने का नियम है। परन्तु उसके पुरोहित बड़े तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ शुक्र ने कहा—"हे लंकेश्वर! मैं आप को सब हाल सुनाता हूँ। आपके पुत्र ने विस्तारपूर्वक सात यज्ञ किये। अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, और वैष्णव; इन छः के बाद जब माहेश्वर याग हुआ—जो पुरुषों को दुर्लभ है—तब तुम्हारे पुत्र ने साक्षात् शिव से दुर्लभ वरदान प्राप्त किये। उसने इच्छानुसार गमन करनेवाला, दिव्य और स्थिर आकाशचारी एक रथ पाया है और तामसी नामक माया का भी लाभ किया है जिसके द्वारा अन्धकार फैल जाता है। हे राक्षसेश्वर! इस माया से देवों और असुरों का सामर्थ्य नहीं है कि उस मायावाले की गति को पहचान सकें। इसके सिवा अक्षय बाणों से पूर्ण दो तरकस, दुर्जय धनुष, और ऐसा बड़ा बली शस्त्र, तुम्हारे पुत्र ने पाया है जो संग्राम में शत्रु का नाश करता है। आज यज्ञ की समाप्ति होने पर, हम दोनों आप को देखना चाहते थे।" यह सुन कर रावण ने कहा—"यह तो अच्छा नहीं हुआ। इन्द्र आदि मेरे शत्रुओं की तुमने बड़े ठाट से पूजा की। भला, जो किया सो अच्छा ही किया। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इससे पुण्य होगा। आओ, अब अपने घर चलें।" इस तरह कह कर और विभीषण को भी साथ ले वह उन स्त्रियों के विमान के पास गया। वे सब सुलक्षणा रत्नस्वरूपा स्त्रियाँ—देव, दानव, और राक्षसों की कन्यायें—आँखों से आँसू बहा रही थीं। उनको विमान से नीचे उतार लिया।

उस समय धर्मात्मा विभीषण रावण की इस बुद्धि को देख कर बोला—हे राजन्! तुम यह जानते हो कि यश, अर्थ और कुल के नाशक आ-चरणों से पाप लगता है; फिर भी तुम प्राणियों को सताने के लिए केवल अपने मन के अनुसार व्यव-हार करते हो। तुमने, इन स्त्रियों के बन्धुजनों को नीचा दिखा कर, इन को हर लिया। उसी तरह मधु ने तुम को नीचा दिखा कर तुम्हारी कुम्भीनसी नामक बहन को हर लिया। रावण ने कहा—मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो। वह मधु कौन है जिसका नाम तुम लेते हो? इतनी बात सुन कर विभीषण को बड़ा क्रोध आया। वह बोला—तुमने यह जो पाप किया, उसका फल प्राप्त हुआ। हमारे मातामह (नाना) सुमाली के बड़े भाई माल्यवान् वृद्ध और प्राज्ञ निशाचर हैं। वे हमारी माता के पिता के बड़े भाई हैं। वे हमारे मान्य हैं। उनकी लड़की की लड़की कुम्भीनसी—अर्थात् हमारी मौसी, अनला की पुत्री—धर्मरीत्या हमारी बहन हुई। हे राजन्! उसको महाबली मधु नामक राक्षस हर ले गया। उस समय तुम्हारा पुत्र यज्ञ करने में लगा हुआ था और मैं जलशयन

कुम्भीनसी ।

तपस्या में प्रवृत्त था। कुम्भकर्ण की निद्रा तो प्रसिद्ध ही है। इसी बीच में वह मधु घात लगाये हुए था। उसने देखा कि इस समय सब लोग अपने अपने कामों में लगे हुए हैं, राज्य में कोई बड़ा बली नहीं है, तब सूनी नगरी देखकर वह भीतर घुस गया और आपके संमत अच्छे अच्छे मंत्रियों को मार कर और घुड़क कर आपके अन्तःपुर में रक्षित उसे हर ले गया। उसकी इस उजड्डता को सुन कर भी मैंने क्षमा कर दिया—उसे मारा नहीं। मैंने सोचा कि अन्ततोगत्वा कन्या तो किसी न किसी को दी ही जाती—भाई लोग उसे किसी को देंगे ही, इसलिए यह ले गया तो ले जाने दो। सो तुम्हारी दुष्ट बुद्धि के पाप का फल तुम को इसी लोक में मिल गया। इसे आप याद रखिएगा।

यह बात सुन कर रावण अपने उस कर्म से ऐसा संतप्त हुआ जैसे पानी के गर्म होने से समुद्र की दशा होती है। फिर वह मारे क्रोध के लाल आँखें कर के बोला—"मेरा रथ तैयार करो। मेरे शूर लोग भी युद्ध के लिए तैयार हों। मेरा भाई कुम्भकर्ण और मुख्य मुख्य राक्षस तरह तरह के शस्त्र लेकर सवारियों पर सवार हों। आज मैं उस मधु को, जो रावण से भी नहीं डरता, मार कर युद्ध के लिए देवलोक में जाऊँगा।" उसकी आज्ञा पाकर तरह तरह के शस्त्रों से चमचमाती हुई एक हज़ार चार अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिए निकल पड़ी। उसमें इन्द्रजित् सेना की रक्षा करता हुआ आगे आगे गया। बीच में रावण और सब के पीछे कुम्भकर्ण हुआ। धर्मात्मा विभीषण धर्माचरणपूर्वक लंका ही में रह गया। बाक़ी सब राक्षस मधुपुरी की ओर चल दिये। वे ऊँट, घोड़े, सूँस और बड़े बड़े साँपों पर सवार होकर चल दिये। उस समय की भीड़ का वर्णन करना कठिन है। ऐसी भीड़ हुई कि आकाश भी ढक गया। देवताओं से वैर रखनेवाले सैकड़ों दैत्य रावण को चढ़ाई करते देख कर मार्ग में आप भी पीछे पीछे हो लिये। अब रावण मधु के नगर में पहुँच गया। परन्तु उसने मधु को वहाँ न देखा। वहाँ केवल अपनी बहन कुम्भीनसी को पाया। वह भाई को देखते ही उसके पैरों पर गिर पड़ी। क्योंकि वह रावण से डरती थी। उस समय उसको प्रणाम करते देख कर रावण ने कहा कि उठ और भय न कर। उसने उसे उठाया और कहा कि मैं तेरे हित की क्या बात करूँ? उसने कहा—"हे राजन्! अगर तुम मुझसे प्रसन्न हुए हो तो मेरे पति को न मारो। कुलीन स्त्रियों के लिए इस तरह का दूसरा डर नहीं है। आपने जो वचन दिया है उसे सत्य कीजिए। मैं प्रार्थना कर रही हूँ, मेरी ओर दृष्टि कीजिए। आपने अभी अपने मुँह से कहा है कि 'डरो मत'।" रावण उसकी बात सुन प्रसन्न हो कर बोला—"जल्दी बतला, तेरा पति कहाँ है? मैं उसके साथ जय के लिए स्वर्गलोक को जाऊँगा। तेरी करुणा और सौहार्द से मैंने उसको छोड़ दिया।" यह सुन कर उसने अपने सोते हुए पति को जगा कर कहा—"देखो, यह मेरा भाई रावण आया है। यह सुरलोक जीतने के लिए जाता है और तुम्हारी सहायता चाहता है। इसलिए हे राक्षस! तुम इसकी सहायता के लिए जाओ। यही नहीं, किन्तु अपने बन्धुओं को भी अपने साथ लेते जाओ। स्नेही का प्रयोजन सिद्ध करना ही चाहिए।" यह सुन कर मधु ने युद्ध में जाना स्वीकार

किया। फिर उठ कर उसने रावण को देखा और यथोचित न्यायानुसार धर्मपूर्वक उसका सत्कार किया। अतिथि-सत्कार पाकर रावण एक रात वहीं ठहरा। दूसरे दिन उसने सुरपुर की यात्रा की और कैलास पर पहुँचकर वहाँ अपनी सेना टिकाई।

——

इकतीसवाँ सर्ग।

रावण को नलकूबर का शाप।

सायंकाल में राक्षसपति ने अपनी सेना वहाँ टिका दी। चन्द्रोदय होने पर सब सेनावाले सो गये। रावण तो बड़ा पराक्रमी था, उसे नींद कहाँ? इसलिए वह उस पर्वत की चोटी पर लेटा हुआ, अनेक तरह के वृक्षों को और उस पर्वत पर चन्द्रोदय के कारण अनेक शोभाओं को देख रहा था। अच्छे प्रकाशमान कर्णिकार के वन, कदम्ब, मौलसिरी, मन्दाकिनी का जल, फूले हुए कमलों का वन, चम्पा, अशोक, नागकेसर, मन्दार, आम, गुलाब, लोध, प्रियंगु, अर्जुन, केवड़ा, तगर, नारियल, चिरौंजी, कटहर इन वृक्षों से तथा और और वृक्षों से वह सुशोभित हो रहा था। उस वन के बीच में, काम से व्याकुल और मधुर कण्ठवाले किन्नरगण मिल कर साथ साथ मन को प्रफुल्लित करनेवाले गीत गा रहे थे। मस्त विद्याधर लोग मद से लाल आँखें किये अपनी स्त्रियों के साथ विहार करते और आनन्द मना रहे थे। कुवेर के घर में जो अप्सरायें गा रही थीं उनकी बड़ी रसीली मधुर ध्वनि, घण्टे के शब्द की नाईं, सुन पड़ती थी। जब हवा चलती थी तब वृक्षों से झड़ झड़ कर फूलों की वर्षा होती थी जिससे संपूर्ण पर्वत सुगन्धित हो रहा था। वे फूल वसन्त ऋतु के फूलों की नाईं सुगन्धि दे रहे थे। फूलों के पराग सहित मकरन्द के गन्ध से अच्छी भाँति पूर्ण हो, रावण के काम को प्रदीप्त करती हुई, त्रिविध वायु चलने लगी। उस समय संगीत सुन कर और फूलों की बढ़ती होने से एवं वायु की शीतलता तथा पर्वत की शोभा से महावीर्यवान् राक्षसराज रावण कामदेव के वश में होकर बार बार लम्बी लम्बी साँसें लेता हुआ चन्द्रमा को देखने लगा।

इतने में सम्पूर्ण भूषणों से भूषित, सब अप्सराओं में श्रेष्ठ, चन्द्रमुखी रम्भा अप्सरा देख पड़ी। उसके सब अङ्गों में चन्दन लग रहा था। उसके बालों में कल्पवृक्ष के फूल गुँथ रहे थे। वह अच्छे उत्सव के लिए जल्दी जा रही थी। उसके नेत्र मनोहर और कुछ कठोर थे। मेखला से भूषित उसके पीन नितम्ब रति के आश्रयस्वरूप थे। छहों ऋतुओं में पैदा हुए फूलों से बने हुए तरह तरह के गहने पहने रम्भा कान्ति, श्री, और कीर्ति में दूसरी लक्ष्मी के समान प्रकाश पा रही थी। वह पानी से भरे बादल की नाईं नीला कपड़ा पहने थी। उसका मुँह चन्द्रमा के समान और भौंहें सुन्दर धनुष के समान तनी हुई थीं। उसकी जङ्घायें हाथी की सूँड़ के समान और हाथ पत्तों से भी अधिक कोमल थे। इस तरह सज धज के साथ रम्भा सेना के बीच में होकर जा रही थी कि उसको रावण ने देख लिया। रावण काम के वशीभूत तो था ही। उठकर उसने तुरन्त उसका हाथ पकड़ लिया। यद्यपि वह उस समय बहुत लज्जित हो रही थी तो भी रावण कुछ कुछ हँसता हुआ उससे बोला—हे वरारोहे!

तुम कहाँ जाती हो? तुम्हारी क्या इच्छा है? यह समय किसके अभ्युदय का है जो तुम्हारा उपभोग करेगा? हे प्रिये! आज कौन व्यक्ति कमल की सी सुवास वाले तुम्हारे मुख का अमृत पीकर परितृप्त होगा? ये तुम्हारे दोनों स्तन—जो सोने के घड़े के तुल्य मोटे, सुन्दर और मिले हुए हैं—किस पुरुष की छाती का स्पर्श करेंगे? हे भामिनि! सुवर्ण चक्र के समान, सुवर्ण की तागड़ी से भूषित, मोटी और स्वर्ग के तुल्य सुख देनेवाली तुम्हारी इन जाँघों पर कौन पुरुष चढ़ेगा? हे सुन्दरि! बतलाओ तो सही कि इस जगत् में मुझसे बड़ा पुरुष कौन है? इन्द्र, विष्णु अथवा अश्विनीकुमार कोई भी हमारे समान नहीं है। तू मुझको छोड़कर दूसरे के पास जाना चाहती है, यह बात ठीक नहीं है। आओ, इसी पर्वत की शिला पर आराम करो। हे बड़े नितम्बोंवाली! तीनों लोकों में मुझे छोड़ दूसरा प्रभु नहीं है। देखो, मैं दशानन स्वामी का भी स्वामी और तीनों लोकों का विधाता हूँ, फिर भी नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। इसलिए हे सुन्दरि! मेरी बात मान लो।

रावण की बातें सुनकर वह बेचारी काँपती हुई हाथ जोड़ कर बोली—"राक्षसराज! कृपा करो। ऐसी बात कहना तुम्हारे लिए अनुचित है। क्योंकि तुम हमारे श्वशुर हो। यदि दूसरा कोई मेरा अपमान करे तो तुमको चाहिए कि मुझे बचाओ; न कि तुम स्वयं ही मुझसे इस तरह कहो। मैं धर्म से तुम्हारे पुत्र की स्त्री हूँ।" रावण को देखने ही से रम्भा रोमाञ्चित हो गई थी। वह इतना कह कर नीचे को मुँह कर खड़ी रही। तब रावण ने रम्भा से कहा—"हे सुन्दरि! अगर तू मेरे पुत्र की स्त्री होती तो मेरी पुत्रवधू हो सकती थी।" यह सुनकर रम्भा ने उत्तर दिया—हे राक्षसों में श्रेष्ठ! धर्म से मैं तुम्हारे पुत्र की स्त्री हूँ। सुनो—तुम्हारे भाई कुबेर का पुत्र नलकूबर है। वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध और कुबेर को प्राणों से भी अधिक प्यारा है। वह धर्मपालन में ब्राह्मण, बल में क्षत्रिय, क्रोध में अग्नि और क्षमा में पृथ्वी के तुल्य है। उस लोकपाल के पुत्र के संकेत से मैं जा रही हूँ। ये मेरे अलङ्कार उसी के लिए हैं। जैसा भाव वह मुझ पर रखता है मैं भी वैसा ही भाव उस पर रखती हूँ। हे शत्रुनाशन! उस सत्यता के लिए तुमको उचित है कि मुझे छोड़ दो। क्योंकि वह धर्मात्मा उत्कण्ठा से मेरी प्रतीक्षा करता होगा। इसलिए आप इस विषय में विघ्न न कीजिए। मुझे छोड़ दीजिए। हे राक्षसाधिप! महात्मा लोग जिस मार्ग से गमन करते हैं उसी मार्ग का अनुसरण आप भी कीजिए। आप हमारे मान्य हैं, आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए।

रम्भा की बातें सुनकर रावण ने बड़ी नम्रता से कहा—"जो तुमने कहा कि मैं तुम्हारी पुत्रवधू हूँ, सो ठीक नहीं। क्योंकि वह नियम मनुष्य की पत्नियों के लिए है। इस बात को देवता लोग भी मानते हैं। सनातन से यही बात निश्चित है। अप्सराओं का पति कहाँ? वे एक की होकर नहीं रह सकतीं।" यह कह कर रावण ने रम्भा को पर्वत की शिला पर लिटा दिया। वह काम से व्याकुल और अन्धा तो था ही, इसलिए वह उसके साथ भोग करने लगा। कुछ देर बाद जब वह उससे छूटी तब उसकी माला और भूषण सब तितर बितर हो गये। गजेन्द्र के विहार से मथित

नदी की भाँति वह व्याकुल हो गई। उसके सिर के बाल बिखर गये। वृक्ष के पत्ते की तरह उसके हाथ काँपने लगे। हवा से झकोरी हुई फूलों की लता की नाईं काँपती, लजाती और डरी हुई रम्भा नलकूबर के पास जाकर हाथ जोड़े पैरों पर गिर पड़ी। उसकी ऐसी दशा देख कर नलकूबर बोले—"हे भद्रे! यह क्या बात है? तू मेरे पैरों पर क्यों गिर पड़ी?" तब वह बड़ी बड़ी साँसें लेती हुई, काँपती और हाथ जोड़े सब हाल कहने लगी कि—"हे देव! रावण सेना के साथ स्वर्ग को जाने के लिए तैयार है। वह कैलास पर मौजूद है। उसी ने सब रात बिता दी। भगवन्! जब मैं आपके पास आती थी तब उसने मुझे देखा। उसने पूछा कि तू कौन है, तब मैं ने उससे सब कुछ निवेदन किया; परन्तु वह तो कामान्ध हो रहा था। मेरी बात क्यों सुनता! मैंने बहुत प्रार्थना भी की कि मैं तेरी पुत्रवधू हूँ। इतने पर भी उसने एक न मानी। सब बातें सुनी अनसुनी करके उसने मेरी यह दशा कर दी। इसलिए हे सुव्रत! आप मेरे अपराध को क्षमा करें। क्योंकि पुरुष और स्त्री का बल समान नहीं हो सकता।" यह सुन कर कुबेर के पुत्र नलकूबर ने ध्यान लगाकर उसकी धर्षणा का सब वृत्तान्त जान लिया। क्षण भर में वह सब हाल जान गये। क्रोध के मारे उन्होंने लाल आँखें करके हाथ में जल लिया। फिर सब इन्द्रियाँ छू कर रावण को शाप देने लगे। वे बोले—"हे भद्रे! तेरी इच्छा के बिना उसने तेरे साथ बलात्कार किया है। इसलिए फिर वह दूसरी स्त्री पर इस तरह हाथ न डाल सकेगा। यदि फिर वह किसी अकामा स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करेगा तो उसके सिर के सात टुकड़े होकर चूर हो जायँगे।" उसके मुँह से इस तरह जलती हुई आग के समान शाप निकलते ही देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने और फूलों की वर्षा होने लगी। ब्रह्मा आदि देवता, लोक की सब गति और राक्षस की मृत्यु जान कर बड़े आनन्दित हुए। जब से रावण ने वह भयङ्कर शाप सुना तब से उसने अकामा स्त्रियों पर बलात्कार करना छोड़ दिया। जिन पतिव्रताओं को वह हर ले गया था उन्होंने जब वह शाप सुना तब वे भी बड़ी प्रसन्न हुईं।

बत्तीसवाँ सर्ग।

देवताओं और राक्षसों का युद्ध।

अब कैलास लाँघ कर रावण स्वर्गलोक में पहुँचा। चारों ओर से घिर कर राक्षसी सेना भी जब वहाँ पहुँची तो ऐसा कोलाहल हुआ जैसे मथन-समय में समुद्र का शब्द होता था। रावण का आना सुनकर इन्द्र का आसन डगमगाया और सब देवता इकट्ठे हो आये। उनसे इन्द्र ने कहा—"हे आदित्य! हे वसु! हे रुद्र! हे साध्य! हे मरुद्गण! तुम लोग इस दुष्ट रावण के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ।" यह सुनते ही वे सब कवच पहन कर युद्ध के लिए तैयार हो गये। बेचारे इन्द्र, रावण के भय से, डर कर दीन हो विष्णु के पास गये और बोले—"हे विष्णो! इस रावण राक्षस के विषय में मुझे क्या करना चाहिए? हाय! यह अतिबलवान् राक्षस युद्ध के लिए आ रहा है। यह केवल वरदान के बल से ही बली हो रहा है। दूसरा कोई कारण नहीं है। साक्षात् ब्रह्मा ने जो कह

दिया है वह सत्य ही करना चाहिए। इसलिए हे भगवन्! जैसे नमुचि, वृत्र, बलि, नरक और शम्बर—इन सबों को मैंने तुम्हारी अपार सहायता पाकर भस्म कर दिया, वैसा ही कोई उपाय इस समय भी कीजिए। क्योंकि हे मधुसूदन! इस चर अचर त्रिलोकी में तुम्हारे सिवा न दूसरी गति और न दूसरा उत्तम उपाय है। आप श्रीमान्, नारायण, पद्मनाभ और सनातन हैं। आप ही ने इन लोकों का स्थापन किया है और आप ही ने मुझे देवराज बना दिया है। आप ही ने यह जगत् रचा है और युग का नाश होने पर सब आप ही में लीन होते हैं। हे देवों के देव! आप मुझे ठीक ठीक बतलाइए कि खड्ग और चक्र लेकर क्या आप रावण से लड़ेंगे?" नारायण बोले—तुम डरो मत, सुनो। इस दुष्ट रावण को न देवता जीत सकते हैं और न दैत्य। न कोई और इसे मार सकता है। वरदान के कारण अभी यह दुरात्मा दुर्जय है। इस समय तो यह सब तरह से पराक्रम करेगा। पुत्र के साथ यह राक्षस बड़ा कर्म करेगा। मुझ से जो तुम ने युद्ध करने के लिए कहा, सो मैं युद्ध न करूँगा। क्योंकि शत्रु को बिना मारे विष्णु संग्राम से नहीं लौटते। पर वरदान के बल से अभी यह होना कठिन ही है। वह अभी मारा नहीं जा सकता। हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राक्षस की मृत्यु का कारण मैं ही हूँगा। मैं ही इसे परिवार सहित मारकर देवताओं को हर्षित करूँगा। परन्तु समय आने पर, इस समय नहीं। इसलिए हे देवराज! जो बात ठीक थी वह मैंने तुमसे कह दी। तुम जाओ और निडर होकर, देवताओं को साथ लेकर, युद्ध करो।

अब देवों की ओर से रुद्र, आदित्य, वसु, मरुत् और अश्विनीकुमार ये सब तैयार होकर राक्षसों के सामने निकले। इतने में सबेरा होते ही रावण की सेना का बड़ा ही कोलाहल सुनाई दिया। वे बड़े पराक्रमी राक्षस जागे और परस्पर देखने लगे। प्रसन्न होकर वे युद्ध के लिए तैयार हुए। इसके बाद राक्षसों की भारी सेना को देखकर देवताओं की सेना में बड़ी गड़बड़ी मची। अन्त में विविध अस्त्रधारी देवता, दैत्य और राक्षसों का, बड़े शोर के साथ भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। रावण के वीर सचिव भी युद्ध करने के लिए तैयार हुए। मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण, संह्लाद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्लादी, विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक इन सब को साथ ले रावण का मातामह (नाना) सुमाली देवों की सेना में घुस गया। वह तरह तरह के तेज शस्त्रों से ऐसे ध्वंस करने लगा मानों हवा मेघों का नाश करती हो। उसके प्रहार न सहकर देवों की सेना भागने लगी मानों सिंह की चपेट से हिरन भागते हों। इतने में सावित्र नाम से प्रसिद्ध अष्टम वसु अपनी सेना लेकर संग्राम में आये। त्वष्टा और पूषा ये दोनों आदित्य भी निडर होकर राक्षसी सेना में घुस गये। इन सबका बड़ा घोर युद्ध आरम्भ हुआ। राक्षस देवों को अनेक शस्त्रों से मारने लगे और देवता भी अपने तरह तरह के प्रहारों से उनको मारने लगे। इतने में सुमाली नामक राक्षस अपने शस्त्रों को ले देव-सेना में घुस गया। जिस तरह हवा बादलों को उड़ा देती है

उसी तरह वह देव-सेना को विध्वंस करने लगा। देवता बाणों की पीड़ा और दारुण प्रासों की चोट खाकर वहाँ ठहर नहीं सकते थे। अब सुमाली की मार से सेना को विचलित देख अष्टम वसु सावित्र ने उसका सामना किया। उन दोनों का बड़ा युद्ध होने लगा। वसु ने क्षण भर में उसके सर्प रथ को चूर चूर कर डाला। जब रथ टूट फूट गया तब वसु ने उसको मारने के लिए अपनी गदा उठाई। प्रज्व-लित और कालदंड के तुल्य वह गदा उसने सुमाली के सिर में मारी। उसका ऐसा प्रहार हुआ जैसे इन्द्र का मारा हुआ वज्र पर्वत पर गिरे। उस प्रहार से सुमाली की न हड्डी देख पड़ी, न सिर और न मांस वहाँ देख पड़ा। गदा ने उसका बिलकुल ढेर कर दिया। उसका मरना देखकर सब राक्षस चिल्लाकर भाग गये और वहाँ कोई भी न ठहर सका।

तेंतीसवाँ सर्ग।

मेघनाद और जयन्त आदि महावीरों का युद्ध।

अब सुमाली का नाश और अपनी सेना का भागना देख कर तथा देवताओं से पीड़ा पाना आदि जानकर रावण का पुत्र मेघनाद बड़ा क्रुद्ध हो कर दौड़ा। भागती हुई राक्षसी सेना को समझा कर वह देव-सेना में ऐसे घुस पड़ा जैसे जंगल में अग्नि घुसती है। अनेक तरह के शस्त्रों को धारण किये उस मेघनाद को देखते ही देवता भागे। उसके सामने कोई खड़ा भी न रह सका। देव-सेना को भागती देख कर इन्द्र बोले—हे देवताओ! डरो मत, भागो मत; लौट आओ। देखो, यह मेरा पुत्र युद्ध के लिए जाता है। इसके बाद जयन्त बड़े विलक्षण रथ पर चढ़ कर संग्राम-भूमि में आये। वे देवगण इन्द्र के पुत्र को घेर कर मेघनाद पर प्रहार करने लगे। अब फिर देवों और राक्षसों का तथा जयन्त और मेघनाद का योग्य युद्ध होने लगा। इतने में मेघनाद ने जयन्त के सारथि गोमुख के बहुत से सुवर्ण-भूषित बाण मारे। उसी तरह जयन्त ने भी उसके सारथि को और उसको भी बाणों से छेदा। तब तो रावण का पुत्र क्रुद्ध हो आँखें फैला कर जयन्त के ऊपर बड़ी बाण-वर्षा करने लगा। वह हज़ारों पैने पैने आयुध देव-सेना पर चलाने लगा। शतघ्नी (तोप), मूसल, प्रास, गदा, तलवार, पर-श्वध और बड़े बड़े पर्वत के टुकड़ों से भी वह प्रहार करने लगा। ऐसा करने से लोगों को पीड़ा पहुँ-चने लगी और मेघनाद की माया से चारों ओर अन्धकार छा गया। जयन्त के चारों ओर की सेना बाणों से पीड़ित हो गई। उस समय दोनों सेनाओं की ऐसी दशा हो गई कि आपस का ज्ञान तक न रहा कि यह वीर किसकी ओर का है। न राक्षस देवता को और न देवता राक्षस को पहचानते थे। युद्ध का सब काम गड़बड़ हो गया। यहाँ तक कि देवता देवता को और राक्षस राक्षसों को मार रहे थे। उनमें से बहुत से भागने लगे। उस घोर अन्ध-कार में कुछ सूझता ही न था। इतने में इन्द्र का श्वशुर पुलोमा नामक दैत्यराज, अपने दौहित्र को लेकर, सागर में घुस गया। यह पुलोमा शची इन्द्राणी का पिता था। जब देवताओं ने वहाँ जयन्त को न देखा तो वे बड़े दुखी होकर भागने लगे। रावण के पुत्र मेघनाद ने उनको भगा दिया और बड़ी घोर गर्जना की। इन्द्र ने अपने पुत्र को वहाँ

न देख कर मातलि से कहा—मेरा रथ लाओ। इन्द्र की आज्ञा पाते ही सारथि ने दिव्य रथ ला कर उपस्थित कर दिया। वह बड़ा भयंकर और बड़ी जल्दी चलनेवाला था। उसमें बिजली सहित मेघ लगे हुए थे और आगे के भाग में वायु से चलाई हुई बिजली बड़े जोर से शब्द करती जाती थी। उस समय गन्धर्व लोग तरह तरह के बाजे बजाते और अप्सरायें रथ के आगे नृत्य करती जाती थीं। रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुद्गण सब तरह तरह के आयुध लेकर देवराज इन्द्र को घेरे हुए चले। इन लोगों के वहाँ से निकलते ही सूखी हवा चलने लगी, सूर्य प्रभा-हीन हो गया और आकाश से उल्कापात होने लगा। उधर दशानन भी विश्वकर्मा के बनाये हुए दिव्य रथ पर सवार हुआ। उस रथ में बड़े भारी भारी और रोमाञ्चकारी साँप लिपटे हुए थे। उनके साँस लेने से संग्रामभूमि में वह प्रकाशमान हो गया। दैत्य और राक्षस उस रथ को घेरे हुए गये। वह इन्द्र के पास गया। पुत्र को युद्ध से रोक दिया इससे वह युद्धभूमि से अलग जा बैठा।

अब फिर देवों और राक्षसों का तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। मेघों की तरह शस्त्रों की वर्षा होने लगी। दुष्ट कुम्भकर्ण बहुत से शस्त्र लिये हुए था। पर उसको यह न जान पड़ता था कि मैं किससे युद्ध करूँ; और वह यह भी न जान सका कि विपक्षी कौन है। इसलिए जिसे समीप पा जाता उसे ही वह दाँतों से, पैरों से, भुजाओं से, शक्तियों से, तोमरों से और मुद्गरों से—जो चीज़ हाथ लगी उसी से—मारने लगा। वह भयानक रुद्रों से जा भिड़ा। रुद्रों के शस्त्रों के मारे उसका प्रत्येक अंग विदीर्ण हो गया। अब राक्षसों की सेना मरुद्गणों से लड़ी और उनके प्रहारों से घबरा कर भागने लगी। उनमें से बहुत से कटकर ज़मीन पर लोट गये, कितने ही तो अपनी सवारियों पर गिर कर उन्हीं पर लिपट गये। कुछ लोग रथों, हाथियों, गदहों और बहुत से ऊँटों, साँपों, घोड़ों, सूँसों, सुअरों और पिशाच मुँह वाले घोड़ों से लिपटे हुए अर्द्धमूर्च्छितावस्था में थे। देवताओं के शस्त्रों की चोट से राक्षस मरने लगे। उस समय राक्षसों का संग्राम माया-रचित की नाईं दिखाई देता था। उनमें से बहुत तो मारे गये और बहुत से संग्रामभूमि में सो गये। उनके ख़ून की वहाँ एक नदी बहने लगी। वहाँ कौए और गीध इकट्ठे थे। उसमें शस्त्र ग्राह की तरह देख पड़ते थे। जब रावण ने देखा कि देवताओं ने हमारी सब सेना मार डाली तब वह देवसेना रूप सागर में घुसा और देवों को मारता मारता इन्द्र के पास पहुँचा। उसको देखते ही इन्द्र ने अपना धनुष फैलाया। उस धनुष के शब्द से दसों दिशायें भर गईं। उन्होंने अग्नि और सूर्य की नाईं चमकीले बाण रावण पर चलाये। उसी तरह रावण ने भी इन्द्र पर बाण-वर्षा की।

दोहा।

राक्षसपति अरु देवपति, करत युद्ध अति घोर।
अन्धकार चहुँ दिस भयो, दिसत न को केहि ओर

चौंतीसवाँ सर्ग।

मेघनाद का इन्द्र को पकड़ कर लंका में ले जाना।

उस घोर अन्धकार में देवता और राक्षस परस्पर युद्ध कर रहे थे। इन्द्र, रावण और मेघनाद तीनों उस

अन्धकार में सावधान रहे। जब रावण ने देखा कि मेरी सेना तो क्षण मात्र में मारी गई तब वह बड़ा कुपित होकर गरजा और सारथि से बोला—"मेरा रथ इस देवसेना के इस किनारे से उस किनारे तक ले चलो। अभी मैं अपने पराक्रम से अनेक शस्त्रों की वर्षा करके देवताओं को यमपुरी में पहुँचाता हूँ। मैं इन्द्र को मारूँगा। कुबेर, वरुण और यम, इन सबको नष्ट करके स्वयं सबसे ऊपर होकर रहूँगा। तुम कुछ दुख मत करो। जल्दी रथ चलाओ और वहाँ तक पहुँचाओ। इस समय जहाँ हम हैं, यह नन्दन वन है। तुम उदय पर्वत तक मेरा रथ ले चलो।" यह सुन कर सारथि ने शत्रुओं के बीच में से ही रथ चलाया। रावण का वह दृढ़ निश्चय सुनकर इन्द्र ने देवताओं से कहा—"हे देवताओ! देखो, मुझे इस समय जो अच्छा जान पड़ता है वह मैं कहता हूँ। वह यह कि इस राक्षस को जीता हुआ ही पकड़ लो। क्योंकि यह बड़े वेगवान रथ पर चढ़ा हुआ, हवा की तरह, बीच से इस तरह जा रहा है मानों पर्व के समय महा तरङ्गधारी समुद्र हो। यह वरदान के कारण मारा जा ही नहीं सकता, इसलिए जल्दी तैयार हो जाओ, इसे पकड़ लें। देखो, यह कैसा निडर हो कर चला जाता है। जिस तरह बलि के बाँधने से मैं त्रिलोकी का भोग करता हूँ उसी तरह त्रिलोक की रक्षा के लिए इसको भी पकड़ कर बाँधना चाहता हूँ।" इसके बाद रावण का सामना छोड़ इन्द्र दूसरी जगह जाकर राक्षसों से युद्ध करने लगे। उत्तर की ओर से रावण बे रोक टोक सेना में घुस गया और दक्षिण ओर से इन्द्र चले। रावण सौ योजन तक घुसता ही चला गया। उसने मारे बाणों के देवताओं की सेना को विदीर्ण कर डाला। अपनी सेना का नाश देख कर इन्द्र सावधानी से रावण को घेर कर उधर से लौटाते हुए आप भी लौटे। इतने में दानवों और राक्षसों ने बड़ा हाहाकार किया। वे सब 'हा हम सब मारे गये' कहकर ज़ोर से चिल्लाने लगे। क्योंकि उन लोगों ने देखा कि इन्द्र के हाथ से रावण पकड़ा गया।

अब, बड़े क्रोध में भर कर मेघनाद रथ पर सवार हो उस सेना में घुस पड़ा। सेना में घुसते ही उसने वही माया फैलाई जो शिव से पाई थी। पहले वह सेना पर दौड़ा और फिर सब देवों को छोड़ इन्द्र पर झपटा। परन्तु देवराज ने शत्रु के पुत्र को नहीं देख पाया। कवच-रहित महा पराक्रमी मेघनाद देवों से मारे जाने पर भी कुछ न डरा। मातलि को बाण मार कर फिर वह इन्द्र पर भी बाण बरसाने लगा। तब इन्द्र ने रथ और सारथि को छोड़ दिया। ऐरावत हाथी पर चढ़कर वे स्वयं रावण के पुत्र को खोजने लगे। परन्तु वह तो माया के बल से आकाश में छिपा हुआ था। वह मिल कैसे सकता था? वह इन्द्र को भी अपनी माया से लपेट कर बाण-वृष्टि करता हुआ दौड़ा। जब उसने जाना कि इन्द्र थक गये तब माया से इन्द्र को बाँध कर अपनी सेना में ले आया। इन्द्र की ऐसी दशा देख कर देवता लोग सोचने लगे कि अब क्या होगा। तमाशा तो यह था कि वह इन्द्र को बाँध कर तो ले गया पर आप अदृश्य ही रहा। उसे किसी ने न देख पाया। अब देवता लोग क्रोध करके रावण को संग्राम से विमुख कर उस पर बाण-वर्षा करने लगे। आदित्य और वसुओं की चपेट में पड़ कर राक्षस रावण ऐसा ध्वस्त हो गया कि युद्ध करने लायक़ न रह गया। तब मेघनाद पिता को दुखी और प्रहारों

से जर्जरीभूत देख कर उसके पास आया और छिपा हुआ ही बोला—"हे तात ! आओ, अब चलें। संग्राम छोड़ दो। हमारी जीत हो गई। अब आप स्वस्थ और दुखरहित हो जाइए। देखिए, यह सुरसेना का और त्रिलोकी का स्वामी महेन्द्र है। दैवबल से यह पकड़ लिया गया। अब आप तीनों लोकों का यथेष्ट भोग कीजिए। इस शत्रु को बन्दी-गृह में डाल दीजिए। अब आप का श्रम करना और युद्ध करना निष्फल है। अब देवता लोगों ने लड़ाई बन्द कर दी। वे मेघनाद का वह वचन सुन कर, बिना इन्द्र के, लौट गये। पराक्रमी राक्षसराज ने कहा—"हे पुत्र! अति बलवान् के समान पराक्रम करके तूने मेरे कुल और वंश का गौरव बढ़ाया है। आज तू ने इस सुरराज को और देवताओं को भी जीत लिया। अब तुम इन्द्र को रथ पर चढ़ा कर, अपनी सेना को साथ ले, लङ्का को चलो। मैं भी तेरे पीछे पीछे अपने सचिवों को साथ ले हर्ष-पूर्वक आता हूँ।

दोहा।

सेनसहित घननाद तब, रथ चढ़ाइ सुरराज।
आइ लङ्क महँ सैनिकन्हि, बिदा कियो सहसाज॥

——

पैंतीसवाँ सर्ग।

ब्रह्मा का इन्द्र को छुड़वा देना और अहल्या की कथा।

इस तरह जब इन्द्र पकड़े जाकर लंका में लाये गये तब ब्रह्मा को आगे करके सब देवता लङ्का में पहुँचे। वहाँ आकाश में ठहर कर ब्रह्मा शान्तिपूर्वक बोले—"हे पुत्र रावण! मैं तेरे लड़के के संग्राम से संतुष्ट हूँ। उसके पराक्रम की बड़ाई क्या की जाय। वह तुम्हारे समान क्या तुम से भी अधिक बहादुर है। तुम ने अपने तेज से तीनों लोकों को जीता और अपनी प्रतिज्ञा सफल की। इसलिए मैं तुमसे और तुम्हारे पुत्र से प्रसन्न हूँ। हे रावण! यह तेरा अत्यन्त बली और वीर्यवान् पुत्र संसार में 'इंद्रजित' नाम से पुकारा जायगा। यह बलवान् और दुर्जय होगा। इसकी सहायता से तुमने देवताओं को भी अपने वश में कर लिया। हे महाबाहो! अब तुम इन्द्र को छोड़ दो। बतलाओ, इनको छोड़ने के बदले में तुमको देवता लोग क्या दें। भगवान् ब्रह्मदेव के वचन सुन कर इन्द्रजित् बोला—"हे देव! जो आप इन्द्र को छुडाना चाहते हैं तो मुझे अमरत्व दीजिए।" ब्रह्मा ने कहा—"हे मेघनाद! पृथ्वी पर कोई भी प्राणी—पक्षी, चौपाये और बड़े बड़े पराक्रमी प्राणी तक—बिलकुल अमर नहीं हैं।" यह सुन कर फिर मेघनाद बोला—"अच्छा, जो सिद्धि मैं चाहता हूँ वह दीजिए। जब मैं शत्रु को विजय करने के लिए निकलूँ और उस समय अग्नि का पूजन कर होम द्रव्य की आहुति दूँ तो उस अग्नि में से मेरे लिए घोड़ों सहित रथ निकले; और उस रथ पर जब तक मैं सवार रहूँ तब तक अमर रहूँ। यही मेरे लिए वर हो। यदि मैं उस जप, होम की समाप्ति के बिना युद्ध करूँ तो मेरा नाश हो जावे। हे देव! सब लोग तप के द्वारा अमरता चाहते हैं; परन्तु मैं तो अपने पराक्रम के द्वारा अमरत्व चाहता हूँ।" पितामह ने कहा—"हे इन्द्रजित्!—एवमस्तु—ऐसा ही हो।" तब उसने इन्द्र को छोड़ दिया। देवता लोग भी स्वर्ग को चले गये।

हे रामचन्द्र! उस समय इन्द्र छूटे तो सही, पर

दीन हो एवं देवत्व की कान्ति से रहित और चिन्ता में मग्न हो कुछ सोचने लगे। इन्द्र की यह दशा देख कर ब्रह्मा बोले—"हे शतक्रतो! सोचते क्या हो? अपने किये हुए पाप का स्मरण करो। पहले पहल मैंने कुछ प्रजा संकल्प से बनाई थी। उसका एक ही सा रङ्ग था, एक ही भाषा और एक ही सा रूप था। क्या रूप में और क्या लक्षण में कोई भेद न था। फिर एकाग्र मन होकर मैं उन प्रजाओं के सम्बन्ध में सोचने लगा। और सोच विचार कर उन में कुछ विशेषता दिखलाने के लिए मैंने एक स्वतन्त्र स्त्री बनाई। उस स्त्री के अङ्ग मैंने प्रजाओं के अच्छे अच्छे अङ्गों के भागों को लेकर बनाये। उस स्त्री का नाम मैंने अहल्या रक्खा। 'हल' कहते हैं कुरूपता को; उस कुरूपता 'हल' से जो पैदा हो उसको 'हल्य' कहते हैं। जिसमें 'हल्य' नहीं—कुरूप नहीं—उसे अहल्या कहते हैं। अहल्या—सर्वाङ्ग-सुन्दरी। जब मैं उसे बना चुका तब इस बात की चिन्ता हुई कि यह किसकी होगी। परन्तु तुम अपने मन में सोचते थे कि मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ; इसलिए यह मेरी ही स्त्री होती तो अच्छा था पर मैंने, धरोहर की नाईं, उस स्त्री को गौतम मुनि के अधीन कर दिया। वह बहुत वर्षों तक मुनि के पास रही। फिर मुनि ने मुझे फेर दी। परन्तु जब मैंने उस महामुनि की बड़ी स्थिरता और तप-सिद्धि देखी तब मैंने उस स्त्री को फिर उन्हीं के अधीन कर दिया और कह दिया कि तुम इसको अपनी स्त्री बनाओ। तब वे उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। इस तरह अहल्या को गौतम की सहधर्मिणी बना देने से देवता लोग उसको पाने से निराश हो गये। परन्तु तुम काम के वशीभूत होकर क्रुद्ध हुए और ऋषि के आश्रम में जाकर तुमने अग्निशिखा के तुल्य उस स्त्री को देखा। काम-पीड़ित और क्रोधवश होकर तुमने उसका सतीत्व हरण किया। उस समय ऋषि ने तुमको आश्रम में देख लिया। तब उन्होंने तुमको शाप दिया कि 'हे देवराज! तुमने अपना रूप बदल कर मेरी स्त्री का सतीत्व भ्रष्ट किया और कुछ भी भय न किया, इस कारण तुम संग्राम में शत्रु के हाथ में पड़ोगे; और हे दुर्बुद्धे! तुमने यह एक अनुचित रीति चलाई। अब से यह मनुष्यों में भी हुआ करेगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य यह पाप करेगा उसके आधे पाप के भागी तुम होगे और आधे का कर्त्ता होगा। देवराज्य पर सदा तुम न रह पाओगे। यह बात तुम्हारे ही लिए नहीं, किन्तु जो जो इन्द्र होगा वही अस्थिर होगा। मेरा शाप इन्द्र मात्र के लिए है।' मुनि ने इस तरह तुम से कहा था। फिर वे अपनी स्त्री को भी धिक्कार देते हुए बोले—'हे दुराचारिणि! तू भी मेरे आश्रम से निकल जा, मेरे आश्रम में अपना मुँह मत दिखला। तेरी काया कुरूप हो जाय। ऐसा रूप और यौवन पाकर भी तेरा चित्त इतना चञ्चल है। अब से तू ही एक ऐसी रूपवती न रहेगी किन्तु औरों को भी तेरा जैसा रूप मिलेगा।' एक इन्द्र के विपरीत कर्म करने के कारण प्रायः मनुष्यों की स्त्रियाँ भी रूपवती होने लगीं। शाप सुनकर मुनि को मनाने के लिए अहल्या बोली—'हे मुने! इन्द्र ने तुम्हारा रूप धर कर मुझको धोखा दिया। मैंने नहीं जान पाया कि यह इन्द्र है। मैंने कुछ जानबूझ कर यह पाप नहीं किया, इसलिए आप मुझे क्षमा कर प्रसन्न हूजिए।' ऋषि ने कहा—'अच्छा, इक्ष्वाकुवंश में महातेजस्वी और महारथ कोई महापुरुष उत्पन्न होंगे। उनका

नाम 'राम' प्रसिद्ध होगा। वे वन में भी आवेंगे। ब्राह्मणों के कार्य के लिए साक्षात् विष्णु मनुष्य का अवतार लेंगे। उस समय जब तू उनका दर्शन करेगी, तब पवित्र हो जावेगी। इस पाप कर्म से पवित्र करने के लिए वे ही समर्थ हैं। जब तू उनका अतिथि-सत्कार करेगी तब मेरे पास आवेगी और मेरे साथ रहेगी।' यह कह कर वे मुनि अपने आश्रम में चले आये और उस ब्रह्मवादी की पत्नी अहल्या महान् तपश्चर्या करने लगी। उसी मुनि के शाप से तुम्हारी यह दशा हुई। इसलिए तुम अपने उस दुष्कर्म का स्मरण करो। उसी कारण से तुमको शत्रु ने पकड़ लिया था। अब तुम वैष्णव यज्ञ करो। उस यज्ञ से पवित्र होकर स्वर्ग को जाओगे। तुम्हारा लड़का इस संग्राम में मारा नहीं गया। उसे तुम्हारे श्वशुर समुद्र में ले गये हैं।" यह सुन कर इन्द्र ने वैष्णव यज्ञ किया। फिर पवित्र हो, स्वर्ग में जाकर वे राज्यासन पर बैठे। हे रघुनन्दन! इस तरह का बल उस इन्द्रजित् में था। दूसरे प्राणी की तो बात ही क्या, उसने देवराज इन्द्र को भी जीत लिया था। अगस्त्य मुनि की बातें सुन कर रामचन्द्र और लक्ष्मण आश्चर्य करने लगे। बानर और राक्षस भी बड़े चकित हुए। उस समय रामचन्द्र के पास बैठे हुए विभीषण बोले—देखो, इस प्राचीन वृत्तान्त का आज मुझे स्मरण हुआ। यह सचमुच आश्चर्यकारक है।

दोहा।

एहि विधि रावण लोक कर, कंटक भा रघुबीर।
जिन जीत्यो संग्राम महँ, शक्रहु कहँ रणधीर॥

छत्तीसवाँ सर्ग।

सहस्रार्जुन के नगर में रावण का जाना।

अब श्री रामचन्द्र हाथ जोड़ कर अगस्त्य मुनि से विस्मय-पूर्वक बोले—"हे भगवन्! यह क्रूर राक्षस जिन दिनों पृथ्वी पर घूम रहा था, उन दिनों क्या यह पृथ्वी वीर मनुष्यों से खाली थी? क्या कोई राजा या और कोई ऐसा पुरुष न था जो रावण को दबा सकता? क्या उस समय सभी महीपालों का तेज और बल नष्ट हो चुका था, या उनमें बहादुरी न रह गई थी? क्या वे शस्त्रविद्या न जानते थे जिससे रावण से हार गये?" यह सुन कर मुनि हँसते हुए बोले, मानों ब्रह्मा शिव से कहते हों। उन्होंने कहा—"हे राजन्! सुनिए। इस तरह जब वह लोगों को पीड़ा देता हुआ पृथ्वी पर घूम रहा था तब वह घूमता घूमता माहिष्मती नगरी में पहुँचा। वह नगरी स्वर्ग की नगरी के तुल्य थी और उसमें अग्निदेव सदा रहते थे। वहाँ का राजा अर्जुन भी अग्नि के प्रभाव से उसी के तुल्य था। वहाँ अग्नि सदा शरकुंड में जलती रहती थी। जिस दिन यह वहाँ पहुँचा उसी दिन वह राजा स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जलक्रीड़ा करने गया था। रावण वहाँ जाकर राजा के मंत्रियों से पूछने लगा—'राजा अर्जुन कहाँ है? जल्दी बतलाओ। मैं रावण हूँ, उसके साथ युद्ध करूँगा। पहले तुम जाकर राजा को मेरे आने की ख़बर दो।' यह सुन कर वे लोग बोले-'राजा राजधानी में नहीं है।' यह हाल सुन कर रावण हिमालय के समान विन्ध्य पर्वत पर गया। वहाँ जाकर उसने वह पर्वत देखा जो आकाश का स्पर्श करता और मानों पृथ्वी

को फोड़ कर निकला है। वह हज़ारों शृङ्गों से सुशोभित था और सिंह आदि अनेक जन्तु उसकी कन्दराओं में रहते थे। उसमें सफ़ेद रङ्ग के सैकड़ों जल-प्रपात गिर रहे थे। इससे प्रतीत होता था मानों पर्वत अट्टहास कर रहा हो। देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर लोग उस पर स्त्रियों को लेकर विहार कर रहे थे। इसी कारण वह बड़ा ऊँचा पर्वत स्वर्ग की नाईं शोभा दे रहा था। स्फटिक के समान निर्मल जल से भरी हुई नदियों से वह मनोहर था; इससे वह पर्वत फणधारी चंचल जिह्वा वाले शेषनाग की सी शोभा पा रहा था। वह इतना ऊँचा था मानों उड़ कर आकश को छूना चाहता हो। उस पर्वत को देख कर रावण नर्मदा नदी पर गया। वह पवित्र नदी स्वच्छ पर्वतों पर बहती और पश्चिम समुद्र में जाती थी। उसके जल में भैंसे, सृमर, सिंह, शार्दूल, भालू और गजेन्द्र आदि जीव, सूर्य के ताप से तप्त होकर, स्नान करते थे। चक्रवाक, कारंडव, हंस, जल-कुक्कुट और सारस पक्षी उसे घेर कर सदा मस्त हो शब्द करते थे। मनमोहिनी नर्मदा ने मानों सुन्दरी कामिनी की कान्ति धारण कर ली थी। फूले फूले वृक्ष उसके भूषण, चक्रवाक उसके स्तन, बड़ा लम्बा चौड़ा किनारा उसके नितम्ब और हंसों की पंक्ति उसकी मेखला थी। फूलों का पराग उसका अङ्ग-राग, जल का फेन शुभ्र वस्त्र, स्नान-सुख उसका स्पर्श-सुख और फूले फूले कमल ही उसके शुभ्र नेत्र थे। अब वहाँ रावण पुष्पक पर से उतरा और उसमें उसने स्नान किया। वह मुनियों से सेवित नर्मदा के किनारे पर अपने सचिवों के साथ बैठ गया। शोभा देख कर आनन्दित हो उसने, गङ्गा की भाँति, नर्मदा की प्रशंसा की। वह शुक और सारण से बोला—"यह सूर्य अपनी हज़ारों किरणों से इस संसार को कांचन-मय कर इस समय, तीक्ष्ण ताप देता हुआ, आकाश के बीच में आ गया। देखो यह सूर्य मुझे यहाँ बैठा हुआ जान कर चन्द्रमा की नाईं ठंढी किरणों से मुझे छू रहा है। मेरे डर से यह वायु भी नर्मदा के जल से शीतल और सुगन्धयुक्त हो थकावट को दूर कर रही है; और बड़ी सावधानी से चल रही है। मगर-मच्छ और पक्षियों से युक्त यह मनोहर नर्मदा, तरङ्गें उठने पर भी, डरी हुई अङ्गना के समान है। इन्द्र के तुल्य पराक्रमी बड़े बड़े शूर-वीर राजाओं के शस्त्रों की आप लोगों ने चोटें खाई हैं। और इससे चन्दन के रस की नाईं तुम लोगों के शरीरों में रुधिर लिपटा हुआ है। इसलिए आप लोग इस नदी में नहा डालें—जिस तरह सार्वभौम आदि गजेन्द्र गंगा में नहाते हैं। इसमें स्नान करने से तुम्हारे सब पाप छूट जायँगे। शरद् ऋतु के चन्द्रमा की नाईं प्रकाशमान् इस किनारे पर मैं भी फूलों से शिवजी का पूजन करूँगा।" रावण की बात सुन कर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष ये सब नदी में घुस गये। उन राक्षस रूप गजेन्द्रों से शोभित होकर वह नदी ऐसी खलबला उठी जैसे वामन, अञ्जन और पद्म आदि दिग्गजों से गंगा खलबला उठती है। अब राक्षस लोग स्नान करके नदी में से निकले और रावण को पूजा करने के लिए फूल इकट्ठे करने लगे। राक्षसों ने नर्मदा के सफ़ेद बादलों के समान किनारे पर, ज़रासी देर में, फूलों का पर्वताकार ढेर लगा दिया। जब फूल इकट्ठे होगये तब रावण फिर नदी में स्नान करने के लिए उतरा। वहाँ स्नान और जप करके वह

नदी के बाहर आया। उसने गीला कपड़ा त्याग दिया और सफ़ेद कपड़ा पहन लिया। फिर वह पूजा के स्थान का निश्चय करने के लिए हाथ जोड़ कर किनारे की ओर चला। उसके पीछे पीछे सब राक्षस भी चल दिये। उस समय वे राक्षस मूर्त्तिमान् पर्वत की नाईं दिखाई देते थे। जहाँ जहाँ रावण जाता था वहाँ वहाँ वह सोने का शिवलिङ्ग पहुँचाया जाता था। अब रावण बालू की वेदी पर उस लिङ्ग को स्थापन कर गन्ध और फूलों से पूजने लगा।

दोहा।

भक्तन के आरति-हरण बरदानी त्रिपुरारि।
पूजि निशाचर प्रेम ते नाचत हाथ पसारि॥

सैंतीसवाँ सर्ग।

सहस्रार्जुन के हाथ से रावण का बाँधा जाना।

नर्मदा के दूसरे किनारे पर, जहाँ रावण शिव का पूजन कर रहा था वहाँ से थोड़ी ही दूर पर, माहिष्मती नगरी का राजा महाविजयी अर्जुन स्त्रियों सहित जलक्रीड़ा कर रहा था। उन रानियों के बीच में राजा की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे हथिनियों के बीच में महागजेन्द्र की होती है। उस राजा ने अपनी हज़ार भुजाओं का बल जानने के लिए नर्मदा का वेग रोका। वेग रुकने से दोनों किनारों के ऊपर तक पानी पहुँच गया और धार भी पलट गई। वर्षा की भाँति बढ़ने पर मत्स्य, नक्र, मगर, फूल और कुश आदि प्रवाह में बहने लगे। उस समय ऐसा मालूम हुआ मानों सावन भादों की नदी बढ़ आई हो। अर्जुन ने जो यह जल प्रवाह किया था उसमें रावण की पूजा के लिए एकत्रित किये हुए पुष्प बहने लगे। रावण अभी पूजा पूरी भी न कर पाया था कि बीच में ही उठ कर—पूजा-पद्धति को भङ्ग कर—वह नर्मदा की ओर ऐसे देखने लगा जैसे कोई प्रतिकूल आचरण करनेवाली अपनी स्त्री की ओर देखे। चारों ओर नज़र फैलाकर क्या देखा कि सागर के वेग के समान जल का वेग पश्चिम ओर से पूर्व दिशा में बढ़ रहा है। इसके बाद थोड़ी ही देर में नदी फिर ज्यों की त्यों हो गई और सब पक्षी बेखटके हो गये। तब रावण ने मुँह से कुछ भी न कह कर, दहिने हाथ की अँगुली से, शुक और सारण को नदी के वेग का भेद जानने के लिए इशारा किया। अब वे दोनों भाई पश्चिम की ओर आकाश में उड़े। दो कोस पर जाकर उन्होंने देखा कि एक पुरुष स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा है। उन्होंने देखा कि वह पुरुष बड़े साखू के वृक्ष की नाईं बड़ा है, जल में उसके बाल छितराये हुए हैं, उसकी आँखें मद से लाल हैं, मदिरा-पान से मत्त है और हज़ार भुजाओं से नदी को ऐसे रोकता है मानों पृथिवी को धारण करनेवाला पर्वत हो। हज़ारों सुन्दरी बालाएँ उसको इस तरह घेरे हैं जैसे हज़ारों मतवाली हथिनियाँ गजराज को घेरे हों। यह अद्भुत दृश्य देखकर वे दोनों वहाँ से लौटे और रावण से सब समाचार कहने लगे। उन्होंने कहा—"हे राजन्! एक महावीर पुरुष जलक्रीड़ा कर रहा है। उसी के रोकने से नदी में बाँध सा बँध जाता है और ऐसा वेग उत्पन्न होता है।" यह सुनकर रावण बोला—वही अर्जुन है। फिर वह उसी की ओर चला। क्योंकि उसे युद्ध की बड़ी लालसा थी। जब रावण युद्ध के लिए जाने लगा तब धूल मिली हुई कठोर हवा

बड़े जोर से चलने लगी और बड़ी गर्जना के साथ बादल रुधिर की बूँदें बरसाने लगे। महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारण को साथ लिये रावण वहाँ गया जहाँ राजा अर्जुन जलक्रीड़ा कर रहा था। वहाँ वह बहुत जल्दी जा पहुँचा। उसने देखा कि स्त्रियों से घिरा हुआ राजा जल-विहार में लवलीन हो रहा है। उसे देखते ही क्रोध से लाल आँखें करके वह गम्भीर वाणी से, राजा के मंत्रियों से, बोला—"हे मन्त्री लोगो! तुम हैहय-राज से जल्दी जाकर कहो कि युद्ध की इच्छा से रावण आया है।" यह सुन कर वे लोग अपने शस्त्र लेकर खड़े हो गये और बोले—"वाह रे रावण! वाह! युद्ध के लिए तुमने अच्छा समय ढूँढ़ा है। कहाँ तो राजा मस्त होकर स्त्रियों के साथ विहार में लगे हुए हैं और कहाँ तुम युद्ध करना चाहते हो! आज के दिन क्षमा करो। रात मे टिक जाओ। कल अर्जुन से मिलना; और जो युद्ध करने की तुम्हारी इच्छा बहुत ही प्रबल हो तो हमारे साथ लड़ो। हम लोगों को मार कर फिर अर्जुन के साथ लड़ना।" यह सुनते ही रावण के मन्त्रियों ने उनमें से बहुतों को तो मार डाला और बहुतों को खा लिया। क्योंकि वे सब भूखे थे। उस समय नर्मदा के किनारे पर दोनों के मन्त्रियों का बड़ा ही 'हलहला' शब्द हुआ। अर्जुन के दल के योद्धा दौड़ कर सैकड़ों बाण, तोमर, प्रास, त्रिशूल, वज्र और कर्पण शस्त्रों के द्वारा रावण को और उसके मन्त्रियों को मारने लगे। उस समय अर्जुन के योद्धाओं का ऐसा कठोर गर्जन हुआ जैसा नक्र, मत्स्य, और मगर सहित समुद्र का होता है। जब रावण के मन्त्री प्रहस्त, शुक और सारण प्रभृति क्रुद्ध होकर कार्त्तवीर्य की सेना को मारने लगे तब दूतों ने जाकर रावण का वह कर्म अर्जुन से कहा। दूत लोग भय के मारे घबरा गये थे। राजा ने उन लोगों से कहा कि डरो मत, कोई चिन्ता नहीं। फिर उसने स्त्रियों को जल से इस तरह बाहर कर दिया जैसे अञ्जन नामक दिग्गज अपनी हथिनियों को गंगा से बाहर कर दे। वह क्रुद्ध हो लाल आँखें करके अर्जुन-रूप अग्नि, प्रलयकाल की अग्नि की भाँति, भभक उठा। सोने के बाजूबन्दों से शोभायमान वह अर्जुन गदा लेकर राक्षसों पर ऐसा झपटा जैसे सूर्य अन्धकार पर दौड़ता है। गदा घुमाता हुआ, गरुड़ की नाईं, बड़ी जल्दी वह राक्षसों के पास आगया। राजा को झपटता हुआ देखकर, हाथ में मूसल लिये, प्रहस्त बीच ही में सामने खड़ा हो गया। वह लोहबद्ध मूसल उसने राजा के ऊपर चलाया। फिर उसने काल के समान बड़ा नाद भी किया। हाथ से छूटते ही उस मूसल के अग्रभाग से, अशोक के फूल की नाईं, अग्नि भभक उठी मानों अर्जुन को जला देगी। परन्तु मूसल को अपनी ओर आता देख कर राजा ने सहज ही, गदा के पैंतड़े से, उसे व्यर्थ कर दिया और पाँच सौ हाथ ऊँची अपनी गदा घुमा कर प्रहस्त के मारी। उस प्रहार से प्रहस्त तो ऐसा लोट गया जैसे वज्र की चोट से पर्वत चूर हो जाता है। प्रहस्त की ऐसी दशा देख कर मारीच, शुक, और सारण संग्राम से भागने लगे। प्रहस्त का गिरना और मन्त्रियों का भागना देख कर अर्जुन पर रावण दौड़ा।

अब हज़ार भुजावाले से बीस भुजावाले का, उस समय, बड़ा ही भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। दो

प्रक्षुब्ध महासागरों, चलते फिरते हुए दो पर्वतों और दो तेजस्वी सूर्यों की तरह, भस्म करनेवाली दो अग्नियों, दो मस्त साँड़ों, दो बलवान् सिंहों तथा साक्षात् रुद्र और काल के सदृश रावण एवं अर्जुन गदा लेकर, दो मेघों की भाँति गरजते गरजते, हथिनी के लिए दो उद्दण्ड गजेन्द्रों की नाईं भयानक युद्ध करने लगे। जैसे पर्वत वज्र के प्रहार सहते हैं उसी तरह वे दोनों परस्पर गदा की चोट सह रहे थे। जैसे बिजली की कड़क की प्रतिध्वनि होती है उसी तरह उन दोनों की गदा के शब्द की प्रतिध्वनियों से दिशायें गरज रही थीं। जब अर्जुन रावण की छाती पर गदा का प्रहार करते थे तब आकाश सोने की कान्ति से जगमगा उठता था। उस समय ऐसा मालूम होता था मानों बिजली चमचमा उठी हो। और जब रावण अर्जुन की छाती में मारता था तब पर्वत पर उल्कापात की नाईं उसकी गदा चमक उठती थी। इस युद्ध में न अर्जुन को थकावट मालूम होती थी और न रावण को। दोनों का एक सा युद्ध हो रहा था। प्राचीन काल में जैसा बलि और इन्द्र का युद्ध हुआ था वैसा ही यह था। परस्पर सींगों से दो बैल और दाँतों से दो हाथी जिस प्रकार प्रहार करते हैं उसी तरह वे दोनों प्रहार करते थे। इतने ही में अर्जुन ने पूरा जोर लगा कर रावण के वक्षःस्थल में गदा मारी। पर वरदान के बल से उसकी छाती तो बच गई किन्तु दो टुकड़े होकर गदा जमीन पर गिर पड़ी और वह दुर्बल सी जान पड़ी। परन्तु रावण को उसकी ऐसी भारी चोट लगी कि वह धनुष भर पीछे हट गया और मारे पीड़ा के रोने और चिल्लाने लगा। जब अर्जुन ने देखा कि रावण चोट के मारे विह्वल हो रहा है तब झट लपक कर उसे ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ साँप को पकड़ता है। राजा ने अपनी हज़ार भुजाओं से उसे ऐसे बाँध लिया जैसे नारायण ने बलि को बाँधा था। यह चमत्कार देख सिद्ध, चारण और देवता 'वाह! वाह!' कह कर राजा के सिर पर फूलों की वर्षा करने लगे। जैसे व्याघ्र हिरण को और सिंह गजेन्द्र को पकड़ लेता है उसी तरह रावण को पकड़ कर अर्जुन, बादलों की नाईं, बार बार गरजने लगा। अब प्रहस्त की बेहोशी दूर हुई। उसने देखा कि रावण बँध गया। तब वह बड़े क्रोध से हैहयराज पर दौड़ा और कई राक्षस भी अर्जुन के पीछे पीछे दौड़े। उस समय वह ऐसा दृश्य हुआ मानों पानी लेने के लिए समुद्र में बादल दौड़ते हों। वे सब दौड़ते और 'छोड़, छोड़' चिल्लाते हुए मूसल और शूल चलाते जाते थे। पर अर्जुन ने उनके शस्त्रों को अपने पास पहुँचने तक न दिया किन्तु खेल की भाँति उनके शस्त्रों को बीच ही में पकड़ लिया। फिर अर्जुन ने उनको अच्छे और भयानक आयुधों से ऐसा मार भगाया जैसे बादलों को हवा उड़ा देती है। वह उनको अच्छी तरह डराकर और भगाकर, अपने मित्रों को साथ लिये और रावण को पकड़े हुए नगर में घुस गया। उस समय ब्राह्मण और नगरवासी लोग राजा पर अक्षत और फूलों की वर्षा करने लगे। राजा अर्जुन रावण को लिए अपनी नगरी में इस तरह जा विराजे जिस तरह बलि को पकड़ कर इन्द्र अमरावती में घुसते हों।

दोहा।

दससीसहिं लघु कीट जिमि पकरे हैहय भूप।
कारागृह में डारि दिय महा भयङ्कर रूप॥

अड़तीसवाँ सर्ग।

पुलस्त्य मुनि का आकर रावण को छुड़ाना।

अर्जुन ने रावण को क्या पकड़ा मानों वायु को बाँध लिया। स्वर्ग में बातचीत करते हुए देवताओं के मुँह से यह बात पुलस्त्य मुनि ने सुनी। सुनते ही, पुत्र के स्नेह के मारे, उनसे न रहा गया। वे काँप उठे और झट माहिष्मती पुरी में अर्जुन के देखने के लिए, वायु-मार्ग के द्वारा, पहुँच गये। अमरावती के तुल्य और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरी हुई उस पुरी के भीतर वे घुस गये मानों ब्रह्मा अमरावती में गये हों, या पैरों से चलकर दर्शनीय रूप श्री सूर्य नारायण आये हों। उनको वहाँ देखकर राजा के नौकरों ने राजा से निवेदन किया। राजा ने जब पुलस्त्य का नाम सुना तब वह हाथ जोड़कर उनकी अगवानी के लिए गया। राजा के पुरोहित अर्ध्य और मधुपर्क की सामग्री लेकर राजा से आगे बढ़ गये मानों इन्द्र के आगे बृहस्पति गये हों। सूर्य के समान प्रकाशमान ऋषि को अर्जुन ने बड़े आदर से प्रणाम किया। मधुपर्क, गौ, पाद्य और अर्ध्य निवेदन कर बड़े हर्ष में भर कर गद्गद वाणी से राजा बोले—"हे महर्षे, द्विजेन्द्र! मैंने आज आपका अलभ्य दर्शन पाया इसलिए मेरी यह माहिष्मती नगरी अमरावती के तुल्य हो गई। हे देव! आज मेरी कुशल हुई, आज मेरे व्रत का साफल्य, आज मेरे जन्म का साफल्य, और आज मेरा तप सफल हुआ। क्योंकि आज मैं देवताओं के भी वन्दनीय आप के इन चरणों को देख रहा हूँ। हे ब्रह्मन्! यह राज्य, ये पुत्र, ये स्त्रियाँ और हम लोग आपके किंकर हैं। आप का जो काम हो उसके लिए हमें आज्ञा कीजिये।" यह सुन कर पुलस्त्य मुनि ने धर्म, अग्नियों और पुत्रों का कुशल-मङ्गल पूछा। फिर वे बोले—"हे नरेन्द्र, हे कमलनयन, हे चन्द्रमुख! तुम्हारा बल अतुल है। तुमने दशानन को भी जीत लिया। अहो! जिसके डर से सागर और वायु भी चुपचाप आज्ञा पाने के लिए तैयार रहते हैं, हे राजन्! तुमने मेरे उसी रणदुर्जय पौत्र को रण में बाँध लिया। उसका यश पीकर तुमने अपना नाम ख़ूब प्रसिद्ध किया। हे वत्स! अब मैं तुम से यही माँगता हूँ कि रावण को छोड़ दो।" ऋषि का कथन सिर माथे धर कर और कुछ भी उत्तर न देकर राजा ने ख़ुशी से रावण को छोड़ दिया। और अच्छे अच्छे कपड़ों तथा आभूषणों और मालाओं से उसका सत्कार किया। अग्नि के सामने उसने हिंसा-रहित हो उससे मित्रता कर ली। फिर पुलस्त्य महर्षि को प्रणाम कर अर्जुन अपने राजभवन में चला गया। इसके बाद पुलस्त्य ने भी रावण को बिदा किया। यद्यपि रावण और अर्जुन की मित्रता हो गई, दोनों गले से गला लगा कर मिले, और राजा ने उसका यथायोग्य सत्कार भी किया तथापि हार जाने के कारण रावण लजाता हुआ लङ्का को गया। महर्षि भी दशानन को छुड़ाकर ब्रह्मलोक को पधारे। हे रामचन्द्र! इस तरह रावण ने कार्त्तवीर्य से हार खाई और पुलस्त्य के कहने से छुटकारा पाया। इस तरह एक से एक बली इस संसार में पड़े हैं। यदि कोई अपना कल्याण चाहे तो शत्रु का अनादर न करे।

दोहा।

एहि विधि हैहयराज ते मैत्री करि सचुपाय।
रावण खल मारत फिरत नृपतिन्ह कहँ हरषाय॥

उनतालीसवाँ सर्ग।

रावण का बाली से अपमानित होना।

अब रावण अर्जुन से छुटकारा पाकर और हार कर, कुछ भी पश्चात्ताप न करके, निर्लज्जता-पूर्वक पृथ्वीमण्डल में घूमने फिरने लगा। जहाँ कहीं वह अधिक बलवान् मनुष्य या राक्षस का पता पाता वहीं दौड़ कर जाता और उसे युद्ध के लिए ललकारता था। एक दिन वह किष्किन्धा नगरी में गया। वहाँ उसने सुवर्ण-मालाधारी बाली से युद्ध करना चाहा। इसको देख कर तारा के पिता तार नामक बानर ने कहा—हे राक्षसेन्द्र! बाली तो कहीं बाहर गया है जो कि तुम से युद्ध कर सकता है। यहाँ और कोई ऐसा बानर नहीं है जो तुम्हारे सामने खड़ा होने का सामर्थ्य रखता हो। बाली चारों समुद्रों के किनारे जाकर संध्योपासन करके कुछ देर में आवेगा। इसलिए तुम यहीं ठहरो। शङ्ख के समान सफ़ेद यह हड्डियों की ढेरी देखो। ये उनकी हड्डियाँ हैं जो पहले बानरराज से युद्ध करने की इच्छा से आये थे। हे रावण राक्षस! अगर तुम ने अमृत रस पिया हो तो बाली के साथ युद्ध करो। परन्तु यह समझ लेना कि इस युद्ध में तुम्हारे जीवन का अन्त हो जावेगा। हे विश्रवा के पुत्र! आज तुम इस विचित्र संसार को देख लो। थोड़ी देर ठहरो, फिर तुम्हारा जीवन दुर्लभ है। जो तुम बहुत जल्दी मरना ही चाहते हो तो दक्षिण समुद्र पर जाओ। उसके किनारे पर बाली से तुम्हारी भेंट होगी, जो एक अग्नि की नाईं भभकता है।

'तार' की ये बातें सुन कर और उसको घुड़क कर रावण विमान पर चढ़ दक्षिण समुद्र की ओर गया। वहाँ पहुँच कर उसने, सोने के पर्वत के समान तथा दोपहर के सूर्य के समान प्रकाशित मुखवाले और संध्योपासन में लगे हुए बाली को देखा। बाली को देखते ही रावण चुपचाप विमान से उतर पड़ा और उसे पकड़ने की इच्छा से ऐसे धीरे धीरे उसकी ओर चला जिससे पैरों की आवाज़ न हो। परन्तु बाली ने रावण को अचानक देख लिया। उसका बुरा मतलब जानकर भी बाली बिलकुल नहीं घबराया। जैसे खरगोश को देखकर सिंह और साँप को देखकर गरुड़ कुछ भी नहीं समझता, वैसे ही बाली भी अपने सामने रावण की कुछ भी परवा न करता था। वह बानरराज अपने मन में यही सोच रहा था कि 'यह राक्षस मुझे पकड़ने आ रहा है, सो मेरे पास आया नहीं कि मैंने इसे अपनी काँख में दबा लिया। इसे लेकर मैं तीन समुद्रों पर जाऊँगा ताकि लोग देखेंगे कि शत्रु मेरी बग़ल में दबा हुआ है। कहीं इसकी जंघायें, कहीं हाथ और कपड़े लटकेंगे। इसकी ऐसी दशा हो जायगी जैसी गरुड़ के पकड़े हुए साँप की होती है।' इस तरह मन में ठान बाली चुप हो वेदमन्त्रों का जाप करता हुआ, पर्वत की नाईं निश्चल हो, वहीं खड़ा रहा। उस समय एक दूसरे को पकड़ने की कामना से वे दोनों प्रयत्न करते हुए अपने अपने बल का अहङ्कार कर रहे थे। पैरों की आहट पाकर जब बाली ने समझा कि वह लपेट में आ गया तब तो, पीछे को मुँह किये ही, झपट कर उसने रावण को इस तरह पकड़ लिया जिस तरह गरुड़ साँप को पकड़ता है। अब वह पकड़ने के लिए आये हुए रावण को काँख में दाब कर बड़े

ज़ोर से आकाश में उड़ गया। उस समय रावण ऐसा दब गया कि उसका कुछ वश ही न चलता था। तब बाली उसे दबाने और नाख़ूनों से नोचने खसोटने लगा। उसको लिये हुए वह ऐसा उड़ गया जैसे हवा मेघ को उड़ा ले जाती है। जब राक्षसों ने रावण की ऐसी दशा देखी तब वे उसे छुड़ाने के लिए बड़े वेग से दौड़े। बाली आगे आगे जा रहा था और राक्षस उसके पीछे दौड़ रहे थे। उस समय उसकी ऐसी शोभा हो रही थी मानों सूर्य के पीछे मेघ दौड़ रहे हों। राक्षस बहुत कोशिश करते थे कि हम बाली के पास पहुँच जायँ, पर उस की भुजाओं और जंघाओं के वेग से वे बेचारे थक कर बीचही में रह गये—उसके पास तक न पहुँच सके। बाली का वेग ऐसा था कि बड़े बड़े पर्वत भी उसके पीछे दौड़ते तो भी उसे न पा सकते, फिर भला जिसका शरीर मांस और रुधिर का बना हुआ है और जो जीना चाहता है, मरने से डरता है, उसका सामर्थ्य कहाँ तक हो सकता है? दशानन को काँख में दबाये दबाये बाली ने, क्रम से, सब सागरों पर जाकर सन्ध्यावन्दन किया। उसका वेग पक्षी के भी सामर्थ्य से बाहर था। रास्ते में आकाशचारी प्राणी उसकी प्रशंसा कर रहे थे। अब वह पश्चिम समुद्र के किनारे पर गया। वहाँ स्नान, सन्ध्या और जप करके रावण को लिये हुए वह उत्तर सागर पर पहुँचा। आश्चर्य की बात है कि शत्रु को बग़ल में दबाये वह बानरराज कई हज़ार योजन, वायु की या मन की तरह, चला गया। उत्तर समुद्र के किनारे सन्ध्योपासन कर फिर उसी तरह वह दशानन को लिये हुए पूर्व समुद्र पर गया। वहाँ भी सन्ध्योपासन कर फिर अपनी नगरी किष्किन्धा में रावण को लिये हुए आ पहुँचा। रावण को लिये लिये वह चारों समुद्रों पर गया और उसने सन्ध्योपासन किया इसलिए अब वह थक गया। किष्किन्धा में पहुँच कर वह उपवन में उतर पड़ा। वहाँ रावण को बग़ल से अलग करके कुछ हँसता हुआ वह बार बार उससे पूछने लगा कि तुम कहाँ से आये? बग़ल में दबे दबे रावण भी थक गया था। उसकी आँखें चञ्चल हो रही थीं। वह कहने लगा—"हे इन्द्र के तुल्य बानरेन्द्र! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ। मैं युद्ध की इच्छा से यहाँ आया था। सो तुम्हारे हाथ से पकड़ा गया। हे बानरराज! तुम्हारा बल, पराक्रम और गाम्भीर्य आश्चर्य करने योग्य है। तुमने मुझे पशु की नाईं पकड़ कर चारों समुद्रों में घुमा डाला। मैं तो ऐसा कोई वीर नहीं देखता जो, बिना श्रम के, मुझे बग़ल में दाबे इतनी जल्दी चारों समुद्रों में घूम आवे। हे वीर! तुम धन्य हो। हे बानरसिंह! मन, वायु और गरुड़, इन्हीं तीन प्राणियों की ऐसी गति हो सकती है। आज ऐसे सामर्थ्य वाले तुम चौथे देख पड़े। हे हरिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारा बल देखा। अब मैं अग्नि को साक्षी करके तुम्हारे साथ मैत्री करना चाहता हूँ। हे हरीश्वर! स्त्री, पुत्र, पुर, राष्ट्र, भोग और आच्छादन आदि सब कुछ हमारा और तुम्हारा एक ही होगा। जो हमारा है सो तुम्हारा भी होगा और जो तुम्हारा है वह मेरा भी होगा।" इस तरह विचार कर दोनों ने अग्नि जला कर मित्रता कर ली। वे दोनों गले से गला लगा कर मिले। आपस में हाथ से हाथ मिलाया। फिर दोनों किष्किन्धा में गये। रावण वहाँ सुग्रीव की भाँति एक महीने तक रहा फिर त्रैलोक्य का उच्छेद करने की इच्छा रखनेवाले

रावण के मंत्री वहाँ आकर उस को लिवा ले गये। प्रभो रामचन्द्र! इस तरह का पुराना हाल है। बाली से रावण ने पीड़ित होकर पीछे अग्नि के सामने उसे भाई बनाया। इस तरह का बलवान् बाली भी तुम्हारी बाणाग्नि से ऐसा भस्म हो गया जैसे अग्नि से पतंग जलता है।

चालीसवाँ सर्ग।

श्री हनुमान् की जन्मकथा।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र जी हाथ जोड़ कर अगस्त्य मुनि से फिर बोले—हे भगवन्! बाली और रावण का अतुल बल था। परन्तु मेरी समझ में हनुमान् के तुल्य ये दोनों नहीं थे। शौर्य, चातुर्य, बल, धैर्य, पाण्डित्य, नीति, शीघ्रता, विक्रम और प्रभाव, ये सब गुण हनुमान् में हैं। देखिए, सीता को ढूँढ़ते समय जब बानरी सेना समुद्र के किनारे दुःख पा रही थी तब यह वीर उन्हें समझा कर सौ योजन समुद्र को लाँघ गया। इसने वहाँ लंका पुरी की धर्षणा कर रावण का अन्तःपुर देखा; और सीता को देख कर उन्हें आदर-पूर्वक दिलासा दिया। और तो क्या, अकेले हनुमान् ने सेना के आगे चलनेवाले मंत्रियों के पुत्रों को, नौकरों को और स्वयं रावण के पुत्र को भी मार डाला। इसके बाद ब्रह्मास्त्र के बन्धन से छूट कर बातचीत में रावण का निरादर किया और आग लगा कर लंका को भस्म किया। हनुमान् ने युद्ध में जो कर्म किये उन्हें न यम, न इन्द्र, न विष्णु और न कुबेर ही कर सकते हैं। मैंने इसी की भुजाओं के पराक्रम से लंका, सीता, लक्ष्मण, जय, राज्य, मित्र और बान्धवों को पाया है। हे भगवन्! बानरराज का मित्र हनुमान् जो मेरा सहायक न होता तो जानकी का पता चलना भी कठिन था। मैं आपसे एक बात पूछता हूँ कि जब सुग्रीव और बाली में वैर हो गया तब हनुमान् ने अपने पराक्रम से बाली को, घास को अग्नि की तरह, भस्म क्यों नहीं कर डाला? मुझे यह जान पड़ता है कि उस समय हनुमान् को अपने बल का पता भी न रहा होगा, नहीं तो अपने प्राणप्रिय मित्र सुग्रीव के इतने क्लेश को देख कर ये चुपचाप न रह जाते। इसलिए हे भगवन्! ये सब बातें विस्तार-पूर्वक कह कर मुझे सुनाइए।

यह सुन कर हनुमान् के सामने ही अगस्त्य मुनि बोले—"हे रघूत्तम! हनुमान् के विषय में जैसा आप कहते हैं वैसा ही है। इनकी गति, बुद्धि और बल जैसा आप कहते हैं वैसा ही है। इनके बराबर ये गुण किसी में नहीं हैं। परन्तु मुनियों ने इन को ऐसा भारी शाप दिया है जिससे इनको अपने बल का ज्ञान नहीं रहता। हे रघुनन्दन! इन्होंने बचपन में ऐसे ऐसे दुष्कर काम किये हैं जिनका वर्णन भी मैं नहीं कर सकता। पर वे काम इन्होंने बाल्यबुद्धि से किये थे। अच्छा, यदि आप इनके विषय में सुनना ही चाहते हैं तो मैं कहता हूँ; सुनिए।

"सूर्य के वरदान से सुमेरु नामक पर्वत सोने का है। वहाँ हनुमान् के पिता केसरी राज्य करते हैं। उनकी इष्टभार्या अञ्जना नामक थी। उस अञ्जना में वायु ने, धान की बाली की नोक के समान वर्ण वाले, इस पुत्र को उत्पन्न किया। एक बार इसकी माता फलों के लिए वन में गई। उस समय माता के न रहने से, भूख के मारे, यह बड़ा दुखी हुआ।

यह उस समय, शरवण में स्वामिकार्त्तिक की भाँति, रोने लगा। इतने में गुड़हल के फूल की नाईं सूर्य निकल आया। हनुमान् ने जाना कि यह कोई फल है। इसलिए लोभ के मारे यह उसी की ओर उड़ा। उस समय सूर्य को पकड़ने की इच्छा से यह मूर्त्तिमान् बाल-सूर्य बीच आकाश में पहुँचा। उस समय देवता, दानव, और यक्षों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे कि ऐसा वेग न वायु में, न गरुड़ में और न मन में है जैसे वेग से यह वायुपुत्र उड़ा चला जाता है। यदि बचपन में ही इसकी ऐसी गति और पराक्रम है तो न मालूम युवावस्था में कैसा होगा। अपने बालक के पीछे पीछे, पुत्रस्नेह के कारण, वायु भी चला जाता था। वह सूर्य के दाह से पुत्र को बचाने के लिए हिमराशि से ठण्डा होकर पीछे चल रहा था। अब यह बालक आकाश में कई हज़ार योजन चला गया। कुछ तो वायु का बल था और कुछ बचपन की उमङ्ग थी; इस कारण यह सूर्य के पास पहुँच गया। उस समय सूर्यदेव ने सोचा कि एक तो अभी यह बालक है, इसे कुछ भी ज्ञान नहीं; दूसरे यह आगे बहुत से काम करेगा; इस तरह सोच कर उन्होंने इसे भस्म नहीं किया। जिस दिन उड़ कर यह सूर्य के पास गया उसी दिन राहुग्रास अर्थात् सूर्य-ग्रहण था। जब इसने जाकर सूर्य के रथ पर उसको पकड़ लिया तब वह बेचारा राहु डर कर वहाँ से हट गया। वह इन्द्रासन पर जा कर कुपित हो इन्द्र से बोला—"हे इन्द्र! तुमने मेरी भूख मिटाने के लिए चन्द्र और सूर्य को मुझे दिया था। फिर इस समय उनको दूसरे के अधीन क्यों कर दिया? देखिए, आज मेरा पर्वकाल था। इससे मैं सूर्य को पकड़ने के लिए ज्योंही वहाँ पहुँचा त्योंही एक दूसरे राहु ने आकर सूर्य को पकड़ लिया।" यह सुनते ही इन्द्र घबरा कर, सुवर्ण की माला पहने हुए, आसन से उठे और कैलास की चोटी के समान ऊँचे, चार दाँतों वाले, मद बहाते, सजे सजाये, सोने के घण्टे घनघनाते हुए गजेन्द्र पर चढ़े; और राहु को आगे करके वहाँ पहुँचे जहाँ हनुमान् तथा सूर्य थे। परन्तु इन्द्र से पहले ही राहु वहाँ पहुँच गया। हनुमान् ने राहु को देख कर समझा कि यह भी एक फल है। इसलिए वे सूर्य को छोड़ कर इसकी तरफ़ बढ़े। ये थे तो बालक ही, परन्तु पर्वत की चोटी की नाईं बड़े दिखाई पड़ते थे। जब राहु ने समझा कि यह तो मेरे ही ऊपर दौड़ा तब वह बेचारा मारे डर के भागने लगा और चिल्लाने लगा कि 'हे इन्द्र! मुझे बचाओ।' इन्द्र ने कहा—"डरो मत। मैं इसे मारता हूँ।" इधर ये इस तरह बोल ही रहे थे कि इतने में हनुमान् ऐरावत हाथी को ही बड़ा सा फल समझ कर उसकी ओर लपके। जब हनुमान् लपक कर इन्द्र आदि के ऊपर पहुँचे उस समय उनका रूप क्षण भर में कालानल की भाँति भीषण देख पड़ा। उसे दौड़ते देखकर इन्द्र ने साधारण रीति से, क्रोध-पूर्वक, धीरे से एक वज्र मार दिया। उस वज्र की चोट से हनुमान् पर्वत पर गिर पड़े और उनकी बाईं ठोढ़ी कुछ टूट गई। इनको गिरते और विह्वल होते देख कर वायु इन्द्र पर क्रुद्ध हुए। इससे उन्होंने प्रजा के अहित पर मन लगाया। वायु ने लोगों की देहों के भीतर अपना प्रचार रोक दिया और अपने पुत्र हनुमान् को गोद में ले वह चुपचाप गुफा में जा बैठा। वर्षा को रोक कर जिस तरह इन्द्र सब प्राणियों को पीड़ित करते हैं, उसी तरह अब

विष्ठा और मूत्रस्थान की हवा को रोक कर वायु देवता प्रजा को सताने लगे। वायु के प्रकोप से प्राणी ऊपर को साँस नहीं ले सकते थे और सन्धियों के फूटने से वे लकड़ी की तरह अकड़ गये। वायु के कोप से न कहीं स्वाध्याय होता था, न कहीं वषट्-कार और न कहीं क्रिया देख पड़ती थी। सब लोक धर्म-रहित और नरकयातना के भोग में पड़े हुए से देख पड़ते थे। देवता, गन्धर्व, दैत्य और मनुष्य, आदि हाहाकार करते और दुःख से छूटना चाहते थे। वे सब दौड़ते दौड़ते श्री ब्रह्मदेव के पास गये। महोदर रोग से पीड़ित रोगी की भाँति सभी, पेट फुलाये, हाथ जोड़ कर उनसे बोले—"हे भगवन्! आपने चार तरह के जीव बनाये हैं, और जीवनो-पाय-स्वरूप हमको आप वायुदान करते रहते हैं। वह पवन हमारा प्राणेश्वर होकर भी, पर्दे में स्त्री की तरह, रुक कर हमको इस तरह दुःख क्यों दे रहा है। हे दुःखनिवारक! हम सब वायु के मारे बड़े दुखी होकर आपकी शरण आये हैं। हमें बचाइए।" यह सुन कर ब्रह्मा ने कहा—"इसका एक कारण है जिससे वायु क्रुद्ध होकर रुक गया। यह बात सुनने के योग्य है। आज इन्द्र ने केवल राहु के कहने से वायु के पुत्र को मारा है। इसी कारण वह क्रुद्ध हुआ है। यद्यपि वायु शरीर-रहित है तो भी वह शरीरों में घूमता फिरता और सबका पालन करता है। यह शरीर जब वायु-रहित हो जाता है तब काष्ठ के तुल्य हो जाता है। इसलिए वायु ही प्राण, वायु ही सुख और सब जगद्रूप है। जब वायु त्याग कर देता है तब जगत् सुख नहीं पा सकता। देखो, उसने आज ही छोड़ दिया तो लोगों की क्या दशा होगई! बिना श्वास के सब काष्ठ और दीवार के

४०

समान हो गये। इसलिए चलो, इसी समय हम उसके पास चलें। उसको अप्रसन्न करके कहीं हम सब लोग नष्ट न हो जायँ।" इतना कह कर प्रजापति—सब प्रजा और देवता, गन्धर्व, भुजंग तथा गुह्यकों को साथ लेकर—वहाँ गये जहाँ इन्द्र के मारे हुए अपने पुत्र को लिये वायु बैठा था।

दोहा।

रविहुतभुक् सु सुवर्ण छवि सुतहिं गोद महँ देखि।
देव सहित चतुराननहिं लागी दया विसेखि॥

इकतालीसवाँ सर्ग।

हनुमान् को देवताओं का वर देना।

पुत्रशोक से पीड़ित वायुदेव पितामह को देखते ही, पुत्र को लिये हुए, उठकर खड़े हो गये। उठने के वेग से उनके कानों के कुण्डल, मुकुट की माला और सोने के सब भूषण झलमला उठे। फिर तीन बार प्रणाम करके वे उनके चरणों में गिर पड़े। उस समय बड़े आभूषणों से भूषित हाथ से ब्रह्मा ने उनको उठाया और उस बालक के शरीर पर भी उन्होंने हाथ फेरा। ब्रह्मा का हाथ लगते ही वह बालक, जल से सींचे हुए धान की नाईं, जीवित हो गया। अपने पुत्र को जीवित देखकर वायुदेव उसी क्षण प्रसन्न हो सब प्राणियों में संचार करने लगे। ठण्डी हवा से बचकर अम्बुज सहित कमलिनी जिस प्रकार प्रसन्न होती है उसी प्रकार सब प्राणी वायुरोध से छूट कर हर्षित और प्रसन्न हुए। इसके बाद यश, वीर्य, ऐश्वर्य, श्री, ज्ञान और वैराग्य से भूषित त्रिमूर्त्तिधारी त्रैलोक्य धाम और देवों के पूज्य श्री ब्रह्मदेव—पवन की प्रसन्नता के लिए—देवताओं

से बोले—हे इन्द्र! हे अग्ने! हे वरुण! हे महेश्वर! हे धनेश्वर! यद्यपि तुम सब ज्ञानवान् हो तो भी जो मैं हित की बात कहता हूँ उसे सुनो। देखो, यह बालक तुम्हारा काम करेगा इसलिए, इसके पिता को सन्तुष्ट करने को, तुम सब वरदान दो।

तब पहले इन्द्र प्रसन्नमुख हो कमलों की माला देकर बोले—मेरे वज्र से इस लड़के की ठोढ़ी टेढ़ी हो गई है, इसलिए आज से इसका नाम 'हनुमान्' हो गया। अब मेरे वज्र से इसका कभी घात न होगा। फिर सूर्यनारायण बोले—इसको मैं अपने तेज की सौवीं कला देता हूँ। इसमें जब शास्त्रों के पढ़ने की शक्ति होगी तब मैं इसको शास्त्र पढ़ाऊँगा जिससे यह वाग्मी होगा। वरुण बोले—मेरे पाश और जल से भी दस लाख वर्ष तक इस की मृत्यु न होगी। यमराज ने कहा—मेरे दण्ड से इसका बाल भी बाँका न होगा और न कोई रोग इसे पीड़ा देगा। फिर कुबेर बोले—मैं सन्तुष्ट होकर इसे वर देता हूँ कि संग्राम में इसे दुःख न होगा और मेरी गदा की चोट भी इसे न लगेगी। श्रीशङ्कर ने भी कहा—मेरे त्रिशूल और पाशुपतास्त्र से यह न मारा जायगा। विश्वकर्मा बोले—मेरे बनाये जो अच्छे अच्छे शस्त्र हैं उनसे इसका कोई भी अङ्गभङ्ग न होगा। यह चिरंजीवी होगा। फिर ब्रह्मा ने कहा—यह बालक दीर्घायु, महात्मा और सब ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा। इस तरह जगत् के गुरु चतुर्मुख ब्रह्मा देवों के वरों को सुनकर हर्षित हो वायु से बोले—हे वायो! यह तुम्हारा पुत्र मारुति शत्रुओं को भय देनेवाला और मित्रों को अभय करनेवाला तथा अजेय, कामरूप, कामचारी, कामगामी, अव्याहत गतिवाला, बानरों में श्रेष्ठ तथा कीर्तिमान् होगा। यह संग्राम में रावण के नाश के लिए राम के हितकारक रोमांचकारी काम करेगा। इतना कह कर वायु से बिदा हो, और देवों को साथ लेकर, ब्रह्मा अपने लोक को सिधारे।

अब वायुदेव अपने पुत्र को लेकर घर आये और अञ्जना को वरदानों का सब हाल सुना कर उन्होंने अपना मार्ग लिया। हे रामचन्द्र! यह हनुमान् वरदान पाकर उनके बल से और स्वाभाविक वेग से ऐसा भरपूर हुआ जैसे पानी से समुद्र भरा रहता है। यह निडर हो, ऋषियों के आश्रमों में जा जाकर, उपद्रव करने लगा। कहीं यज्ञ के पात्रों—स्रुग्भांडों—को, अग्निहोत्र की अग्नि को और पहनने की छालों को तोडता फोड़ता और छिन्न भिन्न कर देता था। बेचारे ऋषि शान्त स्वभाव के थे, करते ही क्या। इसे तो शम्भु ने ब्रह्मदण्डों से अवध्य कर ही दिया था। इसलिए वे लोग, इस बात को जानकर, इसके अपराध सहते थे। फिर केशरी और वायु ने इसे ऐसे काम करने से रोका भी तो भी यह मर्यादा का उल्लङ्घन ही करता गया। तब भृगु और अंगिरा के वंशवाले महर्षि इसके अपराध न सह कर साधारण क्रोध से शाप के वचन बोले कि 'हे बानर! जिस बल के भरोसे तू हम लोगों को सताता है वह बल तुझे बहुत दिन बाद याद होगा। वह तब याद आवेगा जब कोई तुझे उसकी याद दिलावेगा और तेरी कीर्ति का वर्णन करेगा। उस समय तेरा बल बढ़ेगा।" ऋषियों के वचन के सामर्थ्य से हनुमान् का तेज और पराक्रम हीन हो गया। इसलिए ये साधारण बानरों की तरह उन आश्रमों में घूमने लगे। इनका सब उपद्रव करना छूट गया। बाली और सुग्रीव का

पिता ऋक्षरजा नामक बानर तेज में सूर्य के सदृश था। वह सब बानरों पर राज्य करता था। बहुत काल तक राज्यशासन कर जब वह मरा तब मंत्रियों ने बाली को राजा और सुग्रीव को युवराज बनाया। बचपन से ही इनकी सुग्रीव के साथ ऐसी मैत्री थी जैसे अग्नि के साथ वायु की। ये शाप के कारण अपना बल नहीं जानते थे। हे रामचन्द्र! जब बाली और सुग्रीव में वैर हुआ तब बाली सुग्रीव को बहुत दौड़ाता, घुमाता, और बहुत ही व्याकुल करता था। ये देखते रहते थे परन्तु बल का स्मरण न होने से इनका कुछ भी वश नहीं चलता था। संग्राम के समय सुग्रीव के साथ रह कर भी, हाथी से रुँधे हुए सिंह की नाईं, ये युद्ध नहीं कर सकते थे। हे राघव! पराक्रम, उत्साह, मति, प्रताप, सुशीलता, माधुर्य, नीति और अनीति का ज्ञान, गम्भीरता, चतुराई, वीर्य, और धीरता इन गुणों में हनुमान् से बढ़ कर कोई इस लोक में नहीं है। ये व्याकरण पढ़ने की इच्छा से सूर्य के पास गये और उदयगिरि से अस्ताचल तक पिछले पैरसे चले और व्याकरण पढ़ा। सूत्र, वृत्ति, वार्त्तिक और संग्रह पढ़ कर इन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली। अन्यान्य शास्त्रों में, विद्यावत्ता में और पूर्वोत्तर मीमांसामूलक वेदार्थ का निर्णय करने में इनकी जोड़ का कोई नहीं है। ये हनुमान् समस्त विद्याओं और तपोविधान में सुर-गुरु बृहस्पति के प्रतियोगी हैं; ये प्रलय के समय रसातल में प्रवेश करने के लिए उद्यत सागर की भाँति हैं; और ये समस्त संसार को भस्म करने के लिए उद्यत अग्नि की तरह तथा प्रजा का क्षय करनेवाले यम की तरह हैं। भला इन हनुमान् का सामना कौन कर सकता है? इनके समान और भी बड़े बड़े बानरों को—अर्थात् सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय, नल और रम्भ को—तुम्हारे लिए देवताओं ने उत्पन्न किया और गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, और ज्योतिमुख को तथा भालुओं को भी उत्पन्न किया है।

अगस्त्य की ये बातें सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को, तथा बानरों और राक्षसों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर अगस्त्य महर्षि बोले—"अब तो सब हाल तुमने सुना। हे राघव! हमने तुमको देखा और बातचीत भी की। अब हम सब जाते हैं।" यह सुन, हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक प्रणाम कर महाराज बोले—"आप के दर्शन मिलने से मेरे ऊपर देवता संतुष्ट हुए तथा पितृगण और प्रपितामहगण भी तृप्त हुए। परन्तु मेरी एक प्रार्थना है। उसे आप लोग मेरे लिए स्वीकार कीजिए। मैंने पुरवासियों और देशवासियों को अपने अपने कामों में लगा दिया है। आप सत्पुरुषों की कृपा से मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। आप लोग महावीर्यवान् और मेरे हितैषी हैं। इसलिए आप लोग कृपा करके मेरे इस यज्ञ में नित्य सदस्य हूजिए। तपोबल से आप लोगों में कोई पाप नहीं रहा, इसलिए आपके सहारे मैं पितर लोगों की कृपा का पात्र बनूँ और अपने मन को आनन्दित करूँ। उस समय आप लोग मिल कर नित्य यहाँ पधारिएगा।" यह सुन कर अगस्त्य आदि ऋषि लोग 'एवमस्तु' कह कर अपने अपने आश्रमों को सिधारे। उनके चले जाने पर श्रीरघुनन्दन ऋषि की वे बातें याद कर आश्चर्य करने लगे। इसके बाद दिन डूबने पर बानरों को बिदा कर प्रभु सन्ध्योपासन करने लगे।

दोहा।

सन्ध्या करि रघुवीरवर रात्रि समय पहिचानि।
अन्त:पुरहिं प्रवेश किय रूप-तेज बलखानि॥

———

[यहाँ से पाँच सर्ग प्रक्षिप्त हैं।]

बयालीसवाँ सर्ग।

बाली और सुग्रीव की उत्पत्ति की कथा।

इस तरह सब हाल सुन कर अगस्त्य से रामचन्द्र बोले—"हे ब्रह्मन्! बाली और सुग्रीव के पिता का नाम तो अपने ऋक्षरजा बतलाया; कृपया बतलाइये कि इनकी माता का नाम क्या था और वह कहाँ की रहनेवाली थी? और यह भी बतलाइये कि इनके 'बाली' और 'सुग्रीव' नाम क्यों रक्खे गये। यह सब समझाकर मुझे बतलाइए।" अगस्त्यजी बोले—हे रामचन्द्र! यह कथा सुनिए। मैंने यह कथा नारद मुनि से सुनी थी। एक दिन घूमते घामते नारद मुनि मेरे घर पर आये। मैंने उनका विधि-पूर्वक पूजन किया। जब वे सुख से बैठे तब मैंने उनसे यह कथा पूछी थी। वे कहने लगे—हे महर्षि! सुमेरु पर्वत के बीच शिखर पर ब्रह्मा की सभा सौ योजन के फैलाव में बनी हुई है। उस सभा में श्रीब्रह्मदेव सदा बैठा करते हैं। एक दिन वे योगाभ्यास कर रहे थे कि उनकी आँखों से जल बहने लगा। उसे उन्होंने हाथ से पोंछकर जमीन पर फेंक दिया। उससे एक बानर पैदा हुआ। तब ब्रह्मा ने उससे समझाकर कहा "हे बानरश्रेष्ठ! देखो इस पर्वत पर देवता रहते हैं। इस पर मूलफल भी बहुत से मिलते हैं। उन्हें तुम खाया करो और मेरे पास रहा करो। कुछ समय तक तुम यहीं ठहरो। फिर तुम्हारा कल्याण होगा।" यह सुनकर बानर हाथ जोड़ कर बोला—हे देव! आप जैसी आज्ञा करते हैं मैं वैसा ही करूँगा। मैं आपकी आज्ञा में रहूँगा। इस तरह ब्रह्मदेव से कह कर वह बानर प्रसन्नतापूर्वक उसी पर्वत के वृक्षों के जङ्गलों में जा कर फलफूल और मधु को ढूँढ़ ढूँढ़ कर खाता था। अब उसका शरीर प्रति दिन बढ़ने और बलवान् होने लगा। दिन भर तो वह वन में घूमता रहता था और शाम होते ही अच्छे अच्छे फूल फल ले कर ब्रह्मा के पास आ जाता था। वह फल फूल आदि सब चीज़ें देवदेव के चरणों पर रख देता था। इस तरह समय बिताते उसे बहुत समय बीत गया। एक दिन उस ऋक्षरजा बानर को प्यास लगी। वह मेरु के उत्तर शिखर पर गया। वहाँ से उसने तरह तरह के पक्षियों के शब्दों से गुञ्जायमान और स्वच्छ पानी से भरा हुआ एक तालाब देखा। तब वह प्रसन्नतापूर्वक अपनी गर्दन के बाल हिला कर उसके किनारे पर चला गया। उस समय दैव-वश उसे पानी में अपनी परछाईं देख पड़ी। उसे देख कर वह सोचने लगा कि इस पानी में यह कोई मेरा शत्रु बानर रहता है। यह क्रुद्ध सा होकर मुझे कुछ समझता नहीं। मेरी समझ में इस दुष्ट और मूर्ख का यही निवास-स्थान है। यह मन में विचार कर, अपने स्वभाव की चपलता के कारण, वह उछल कर पानी में घुस पड़ा और फिर वहाँ से कूद कर ऊपर आया। हे रामचन्द्र! उसी क्षण वह बानर से बानरी बन गया। वह बानरी बड़ी सुन्दर लावण्यवती थी। मोटी मोटी तो उसकी जङ्घाएँ और सुन्दर भौंहें थीं; काले घुँघराले बाल, और मनोहर हँसमुख चेहरा था।

स्तन ख़ूब पुष्ट थे! वह रूपवती बड़ी अच्छी मालूम होती थी। उस तालाब के किनारे वह ऐसी देख पड़ती थी मानों सीधी लम्बी लता हो। सब के चित्त को मथन करनेवाली वह त्रैलोक्य-सुन्दरी स्त्री ऐसी देख पड़ती थी जैसी कमलरहित लक्ष्मी और निर्मल चन्द्रप्रभा हो। कहाँ तक कहा जाय, उसमें साक्षात् लक्ष्मी या पार्वती की उपमा झलकती थी। वह अपने प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करती हुई किनारे पर खड़ी थी। इतने में ब्रह्मा के चरणों की उपासना करके देवराज इन्द्र उसी मार्ग से लौट रहे थे। उसी बीच में घूमते हुए श्रीसूर्यदेव की दृष्टि भी उस स्त्री पर जा पड़ी। ये दोनों ही देवता उस स्त्री को देखते ही काम के वश में होगये। इन दोनों देवताओं के सब अङ्ग, सर्प की भाँति, क्षुब्ध हो गये। उस स्त्री का अद्भुत रूप देखते ही इन दोनों देवताओं का धैर्य जाता रहा। इन्द्र तो उस स्त्री तक पहुँचते पहुँचते रास्ते ही में स्खलित हो गये। इनका तेज उस स्त्री के बालों पर जा गिरा। परन्तु वह देवराज का वीर्य अमोघ था। निष्फल कैसे हो सकता था? उससे जो बालक उत्पन्न हुआ उसका नाम बाली रक्खा गया। सूर्य का रेतस् भी उस सुन्दरी की गर्दन पर गिरा था। उस समय ये दोनों देवता उस स्त्री से बोलने तक न पाये। दूर से ही उन दोनों का काम दूर हो गया। गर्दन (ग्रीवा) पर गिरे हुए वीर्य से जो लड़का पैदा हुआ उसका नाम सुग्रीव रक्खा गया। इस तरह वे दोनों दो पुत्रों को उत्पन्न कर निवृत्त हो गये। फिर इन्द्र ने बाली को एक सुवर्णमयी माला देकर स्वर्ग का मार्ग लिया। वह माला नष्ट न होनेवाली और अनेक गुणों से पूर्ण थी। सूर्यदेव अपने पुत्र के कामों और उद्योगों में हनुमान् को अग्रगन्ता कर आकाश में चले गये। अब रात बीत गई और सबेरा हो गया। वह स्त्री भी ज्यों की त्यों बानर रूप हो गई। बाली और सुग्रीव पिङ्गलनयन, बानरश्रेष्ठ, बली और कामरूपी थे। उन दोनों पुत्रों को ऋक्षरजा ने अमृत के तुल्य मधु लाकर पिलाया और फिर उन्हें साथ लेकर वह ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने उसको उन दोनों बच्चों के साथ देख कर बहुत समझाया। फिर देवदूत को आज्ञा दी कि तुम ऋक्षरजा को साथ लेकर परम सुन्दर किष्किन्धा नगरी में जाओ। वह अनेक गुणों से सम्पन्न बढ़िया नगरी इस ऋक्षरजा के योग्य है। वहाँ बहुत से बानर रहते हैं, उसमें और भी कामरूपी बानर वास करते हैं। वह बहुत रत्नों से भरी पुरी और दुर्गम है; उसमें चारों वर्ण रहते हैं। वह परम पवित्र और व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। मेरी आज्ञा से उसे विश्वकर्मा ने बनाया था। वह बड़ी दिव्य है। वहाँ तुम पुत्रों सहित ऋक्षरजा को स्थापित करो। तुम यूथपति बानरों तथा और और साधारण बानरों को इकट्ठा कर उन सब को आदर देना और सभा करके इन्हें सिंहासन पर बैठा कर राजतिलक कर देना। इनको देखती ही वे बानर इनके वश में हो अनुचर हो जायँगे। ब्रह्मा की आज्ञा पा कर ऋक्षरजा को साथ ले वह दूत किष्किन्धा को गया और गुफा में घुस कर पितामह के आज्ञानुसार उनका राजतिलक कर दिया। राजतिलक पाकर, तथा राजमुकुट पहन कर और अनेक भूषणों से भूषित हो ऋक्षरजा प्रसन्न हुआ। वह सब बानरों को यथोचित कामों में नियुक्त कर राजकाज करने लगा। हे श्रीराघव! बाली और सुग्रीव का जो पिता था

वही माता भी था। हे रघुवंशमणे! इस कथा को जो सुनता और सुनाता है उसके सब काम हर्षवर्धक और सिद्ध होते हैं।

दोहा।

कपि अरु निशिचर वंश कर, एहि विधि भा विस्तार।
बरनि कही सो कथा मैं, श्रीरघुनाथ उदार।

——

तेंतालोसवाँ सर्ग।

सनत्कुमार और रावण का संवाद।

यह पुराण की कथा सुनकर भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए। वे बोले—"हे ऋषे! आपकी कृपा से मैंने यह पवित्र कथा सुनी। इसे सुन कर मुझे बाली तथा सुग्रीव की उत्पत्ति के विषय में बड़ाही आश्चर्य हुआ। जब वे दोनों सुरेन्द्र ही के पुत्र हैं तो उन्हें इतना बली और पराक्रमी होना ही चाहिए। इसमें आश्चर्य ही क्या है।" यह सुन कर कुम्भयोनि अगस्त्य बोले—हाँ महाराज! यह ऐसा ही हाल है। मैं और भी कुछ प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ; उसे सुनिए। जिस काम के लिए रावण ने सीता का हरण किया था, मैं उसी का वर्णन करता हूँ।—

एक समय की बात है कि राक्षसाधिप रावण ब्रह्मा के पुत्र, तेज से सूर्य के समान प्रकाशमान् और बड़े सत्यवादी श्रीसनत्कुमार से हाथ जोड़ प्रणाम कर बड़ी नम्रता से बोला—"हे भगवन्! इस लोक में सब देवताओं में बड़ा बली और श्रेष्ठ कौन है जिसके सहारे देवता लोग अपने शत्रु को जीतते हैं? ब्राह्मण लोग प्रति दिन किसकी पूजा और योगी लोग प्रति दिन किस का ध्यान करते हैं? हे तपोधन! यह सब हाल विस्तार-पूर्वक मुझे बतलाइए।" रावण की यह बात सुनकर और ध्यान-दृष्टि से उसके मन की बात को जान कर ऋषि बोले—"हे वत्स! जो इस सब जगत् का स्वामी है उसकी उत्पत्ति हम नहीं जानते। सुर और असुर जिसकी नित्य पूजा करते हैं वह नारायण प्रभु है। उसकी नाभि से ब्रह्मदेव की उत्पत्ति हुई है। वे संसार के पति हैं। उन्होंने इस स्थावर और जंगम संसार को रचा है। उनके आश्रय से देवता यज्ञ में अमृतपान करते और आदर पाते हैं तथा उन्हीं प्रभु की सेवा में तत्पर रहते हैं। वेदों, पुराणों और पञ्चरात्रों के अनुसार योगी उनका ध्यान करते और यज्ञों के द्वारा उनको सन्तुष्ट करते हैं। जो दैत्य, दानव और राक्षस हैं तथा जो देवों से द्वेष रखते हैं उन सबको प्रभु संग्राम में हरा देते हैं और उनके द्वारा वे पूजे भी जाते हैं।" महर्षि का यह कथन सुनकर रावण प्रणत होकर मुनि से फिर बोला—"हे गुरो! जो दैत्य, दानव और राक्षस प्रभु के हाथ से मारे जाते हैं वे कौन सी गति पाते हैं?" मुनि ने कहा—"जो देवताओं के द्वारा मारे जाते हैं वे स्वर्गगामी होते हैं। परन्तु जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब वहाँ से अलग होकर पहले जन्म में इकट्ठे किये हुए सुखदुःख के द्वारा उत्पन्न होते और मरते हैं। परन्तु हे राजन्! वे चक्रधारी जनार्दन जिन जिन को मारते हैं वे सब उन्हीं के लोक में जाते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि उनका क्रोध भी वरदान के ही तुल्य है।

दोहा।

लंकापति ऋषि वचन सुन, मन महँ अति हर्षान।
देखिहौं कब संग्राम महँ, प्रभु कहँ इति ललचान॥

चवालीसवाँ सर्ग।

ऋषि का रावण को रामजन्म का समय बतलाना।

वह दुरात्मा रावण इस तरह सोच ही रहा था कि ऋषि फिर बोले—हे महाबाहो! तुम्हारे मन में जो इच्छा है वह संग्राम में अवश्य पूरी होगी। तुम सुखी रहो। कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। यह सुन कर वह बोला—उनके लक्षण क्या हैं, सो आप कहिए। मुनि ने कहा—हे रावण! सुनो, मैं सब कहता हूँ।

वे सर्वव्यापी, सूक्ष्म, अव्यक्त और सनातन हैं। उन्होंने इस चराचर जगत् को संपूर्ण रूप से व्याप्त कर रक्खा है। वे भूमि में, पाताल में, पर्वतों में, वनों में, सब स्थावरों में, नदियों में और नगरों में विद्यमान हैं। ओंकार, सत्य, सावित्री, पृथ्वी, और पर्वतधारी वे ही हैं। वे अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं। दिन, रात, दोनों सन्ध्याएँ, सूर्य, चन्द्र, यम, काल, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, और जल वे ही हैं। वे ही प्रकाश करते हुए ज्वालारूप शोभा को प्राप्त होते हैं। वे लोकों को बनाते, संहार करते और शासन करते हैं। वे ही क्रीड़ा करनेवाले, अव्यय (नाशरहित), लोकनाथ, विष्णु, पुराण और संसार के एकमात्र नाश-कर्ता हैं। विशेष क्या कहा जाय, वे चर और अचर तीनों लोकों में व्यापक हैं। हे दशानन! उनका स्वरूप नील कमल के समान श्याम है। कमल की पीली केसर के समान वस्त्र से वे ऐसे शोभित होते हैं जैसे वर्षा ऋतु में बिजली के साथ पानी भरे हुए बादल सुहावने लगते हैं। इस तरह वे मेघ के समान श्याम, कमललोचन, छाती में श्रीवत्स चिह्न से भूषित, चन्द्रतुल्य आनन्द-कारक हैं। मेघ में बिजली की भाँति उनके शरीर में विद्यमान संग्रामरूपिणी श्री उनकी देह को सदा ढके रहती है। देवता, असुर और नाग, किसी की सामर्थ्य नहीं जो उनके दर्शन कर सके। परन्तु जिसके ऊपर वे कृपा करते हैं वही उन्हें देख सकता है। हे तात! न यज्ञफलों के द्वारा, न तपों के द्वारा, न संयमों के द्वारा, न दानों के द्वारा, और न होम के द्वारा ही कोई उन्हें देख सकता है। वे लोग ही उनको देख सकते हैं जो उनके भक्त हैं; जिनके प्राण और चित्त उन्हीं में लगे रहते हैं—वही जिनके गतिरूप हैं और ज्ञान से जिनके सब पाप भस्म हो गये हैं। यदि तुम उनको देखना चाहते हो तो जो हम कहते हैं उसे सुनो। सत्ययुग के बीत जाने पर त्रेतायुग में देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिए वे राजा रूप होकर अवतार लेंगे। इक्ष्वाकुवंश में एक राजा दशरथ होंगे। बड़े तेजस्वी श्रीरामचन्द्र उनके पुत्र होंगे। वे बड़े बुद्धिमान्, महाबली, महापराक्रमी, महाबाहु, महासत्त्व और क्षमा में पृथिवी के समान होंगे। जैसे सूर्य की ओर कोई नहीं देख सकता वैसे ही शत्रुगण उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सकेंगे। इस तरह वे नारायण प्रभु रामरूप होकर अवतार लेंगे। उनकी स्त्री, जो श्रीलक्ष्मी हैं वे, सीता नाम से पृथिवी पर जन्म ले कर जनक की पुत्री कहलावेंगी। वे रूप में अनुपम, सब लक्षणों से युक्त, राम की ऐसी अनुगामिनी होंगी जैसी मनुष्य की छाया और चन्द्रमा की प्रभा होती है। वे श्रीसीता देवी शील, आचार और गुणों से परिपूर्ण होंगी। वे पतिव्रता, धैर्य-सम्पन्न, और सूर्य की किरणों की नाईं सीता और राम की मानों एक

मूर्ति होंगी। हे रावण! जिस तरह वे सनातन, अव्यय और देवों के देव अवतार लेंगे वह सब मैंने तुमसे कह दिया। हे राघव! ये सब बातें सुन कर वह महाबाहु और प्रतापवान् राक्षसराज तुम्हारे साथ विरोध करने के विषय में सोचने लगा। और सनत्कुमार की बातों पर बार बार ध्यान देता हुआ बड़ा प्रसन्न होकर युद्ध के लिए इधर उधर घूमने लगा। यह कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर प्रसन्न हुए।

दोहा।

श्रीराघव अति हर्षयुत, सुनि पुराण मुनिगाथ।
पूछत भे मुनि सन अपर, कहहु कथा मुनिनाथ॥

पैंतालोसवाँ सर्ग।

कथा सुनने का फल।

इसके बाद फिर अगस्त्य मुनि रामचन्द्रजी से बोले; मानों ब्रह्मा शिव से कहते हों। उन्होंने कहा–हे राघव! इसी कारण से रावण ने जानकी का हरण किया। यह कथा नारद मुनि ने सुमेरु पर्वत पर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महात्मा ऋषियों के सामने कही थी। इसके सिवा और भी शेष कथा उन्होंने सुनाई। हे राजेन्द्र! यह कथा बड़े बड़े पापों का नाश करती है। इसको सुनकर ऋषि लोग बड़े हर्ष से बोले कि जो इस कथा को सुनते और सुनाते हैं वे पुत्र पौत्रों सहित स्वर्गलोक में पूजित होते हैं।

दोहा।

अति पवित्र इतिहास यह, नारद कहेउ बुझाइ।
सो प्रसंग मैं कहउँ अब, सुनहु राम रघुराइ॥

छियालोसवाँ सर्ग।

रावण का श्वेत द्वीप में जाना।

इसके बाद राक्षसों को साथ ले वह रावण पृथ्वी पर घूमने लगा और दैत्य, दानव तथा राक्षसों में जिसको अधिक बलवान् सुनता उसीको युद्ध के लिए ललकारता था। एक दिन श्रीनारद ब्रह्मलोक से लौट कर आकाश में चले आते थे। रावण ने उनको देखा और पास जा प्रणाम करके कहा—"हे महर्षे! आपने घूमते घूमते इस ब्रह्माण्ड को कई बार देखा होगा। सो आप मुझे बतलाइए कि किस लोक के मनुष्य बड़े बली हैं। मैं उनके साथ युद्ध करना चाहता हूँ।" रावण की बात सुनकर नारद ने कुछ देर विचार करके कहा—"हे राजन्! क्षीर समुद्र के पास एक द्वीप है। वहाँ के प्राणी चन्द्र के तुल्य चमकीले, महाबली; और डील डौल में बड़े लम्बे चौड़े हैं। वे बड़े पराक्रमी, मेघ के समान घोर शब्द करनेवाले और बड़े परिवारवाले हैं। वे बड़े धैर्यवान होते हैं और उनकी भुजाएँ बड़ी बड़ी, परिघ के समान, होती हैं। हे राक्षसाधिप! ऐसे प्राणियों को मैंने श्वेत द्वीप में देखा है। जैसे बल-वीर्यवालों को तुम चाहते हो वैसे ही लोग वहाँ रहते हैं।" रावण ने कहा—"हे नारद! वहाँ इस तरह के लोग ऐसे बलवान् क्यों होते हैं? और उनको रहने के लिए वहाँ जगह क्योंकर मिल गई? हे देवर्षे! यह सब हाल ठीक ठीक समझा कर मुझे बतलाइये। क्योंकि आपने तो सब हाल देखा ही है। आपके लिए वह सब हस्तामलक के समान है।" मुनि बोले—"जो लोग अनन्यमन होकर नारायण में लवलीन रहते हैं—

उन्हीं की आराधना में तत्पर रहते हैं—जो उन्हीं के भक्त हैं अथवा उन्हीं के शार्ङ्ग धनुष से जो लोग मारे जाते हैं, वे ही वहाँ रहने पाते हैं। क्योंकि उनके हाथ से जो मारा जाता है वह स्वर्ग में वास करता है। यज्ञ, जप, संयम, और मुख्य मुख्य दान करने से भी वह लोक नहीं मिल सकता।" यह सुनकर रावण विस्मित हो अपने मन में यही सोचता था कि मैं उन देवों के देव के साथ युद्ध करूँगा। ऐसा सोच विचार कर वह राक्षस रावण मुनि से विदा हो श्वेत द्वीप की ओर गया। यह आश्चर्य देखने के लिए मुनि भी वहीं गये। क्योंकि वे भी बड़े कौतुकी और लड़ाई देखने के बड़े प्रेमी थे।

अब रावण राक्षसों को साथ लिए बड़ा सिंहनाद करता और अपने शब्द से दसों दिशाओं को फाड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। मुनिराज भी चलते चलते वहीं जा पहुँचे। रावण का पुष्पक विमान वहाँ पहुँच तो गया परन्तु वहाँ हवा ऐसे ज़ोर से चल रही थी कि वह विमान मारे झटके के ठहर नहीं सकता था। जैसे वायु के वेग से बादल उड़ जाते हैं उसी तरह वह भी उड़ा जाता था। उसके मंत्री राक्षस उस दुर्दर्श द्वीप के समीप पहुँच कर राक्षसराज से डरते हुए बोले—"हे राक्षसेन्द्र! त्रास के कारण हम तो मूढ़ और अचेत हो गये। यहाँ तक कि हम लोग यहाँ किसी तरह ठहर नहीं सकते। युद्ध की तो बात ही दूर है।" यह सुनकर रावण ने उस पुष्पक विमान को और उन राक्षसों को छोड़ दिया। तब वह विमान राक्षसों को लिये हुए उस द्वीप से बाहर चला गया। फिर महा भयंकर रूप बनाकर रावण उस द्वीप में अकेला ही घुसा। वहाँ घुसते ही बहुत सी स्त्रियों ने उसे देखा। उस झुंड में से एक स्त्री ने हँसकर रावण को हाथ से पकड़ कर पूछा—"तू यहाँ क्यों आया, तेरा यहाँ क्या काम है? तू कौन है, किस का लड़का है और तुझे किसने भेजा है?" इस तरह सुनकर वह क्रुद्ध हो बोला—"मैं विश्रवा मुनि का पुत्र हूँ। मेरा नाम रावण है। मैं युद्ध के लिए यहाँ आया हूँ परन्तु मैं यहाँ किसी को नहीं देखता।" उस दुष्ट की ये बातें सुनकर वे सब स्त्रियाँ मधुर स्वर से हँसने लगीं। फिर उनमें से एक स्त्री बड़ी क्रुद्ध हो रावण को छोटे लड़के के समान पकड़ कर सखियों के बीच में घुमाने और दूसरी सखी को बुलाकर कहने लगी कि देखो, मैंने एक कीड़ा पकड़ा है। देखो यह कीड़ा कैसा अद्भुत है। इसके दस तो मुँह हैं और बीस भुजाएँ हैं इसका रङ्ग काजल की ढेरी के तुल्य कैसा सुन्दर है। अब उसके हाथ से रावण को दूसरी स्त्री ने ले लिया। वह भी घुमाने लगी। इसी तरह एक तीसरी स्त्री ने भी किया। इस तरह वे सब स्त्रियाँ हाथों हाथ उस को लेने देने और घुमाने लगीं। तब तो रावण बड़ा चकित हुआ। कटकटा कर उसने बड़े क्रोध से एक स्त्री के हाथ में काट खाया। तब उस स्त्री ने झट उसको छोड़ दिया। वह पीड़ा के मारे अपना हाथ झाड़ने लगी। इतने में एक स्त्री रावण को पकड़ कर आकाश में उड़ गई। परन्तु रावण ने क्रुद्ध हो अपने नाख़ूनों से उस स्त्री को भी बहुत नोच डाला। तब तो उस स्त्री ने झटका देकर उसको ऐसा फेंका कि वह समुद्र में धड़ाम से जा पड़ा। जैसे वज्र से टूटा हुआ पर्वत का शिखर गिरता है वही दशा रावण की हुई। वह मारे भय के व्याकुल तो था ही, अब और भी अधिक डर गया। हे राम-

चन्द्र! इस तरह उस राक्षसराज को श्वेत द्वीप वाली स्त्रियों ने ख़ूब छकाया। उस समय नारद मुनि रावण की धर्षणा और दुर्दशा देखकर बड़े विस्मित और प्रसन्न होकर नाचने लगे। हे राघव! यह वृत्तान्त जानकर ही, आपके हाथ से मरण की इच्छा से, उसने सीता का हरण किया। हे रघुनन्दन! आप शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, शार्ङ्गधन्वा श्रीनारायण हैं। आप सब देवताओं से पूजित हैं। आप श्रीवत्सांकित, हृषीकेश, सर्वदेव-पूजित पद्मनाभ, महायोगी और भक्तों के अभयदाता हैं। आप रावण के मारने के लिए मनुष्य के शरीर में आये हैं। क्या आप अपने को नारायण नहीं समझते? हे महाभाग! मोह न कीजिए। अपने को आप ही स्मरण कीजिए। ब्रह्मा ने अपने मुँह से कहा है कि आप गुप्त से भी गुप्त हैं। हे राघव! आप त्रिगुण-स्वरूप, त्रिवेदी, त्रिधामा (स्वर्ग-मृत्यु और पाताल) हैं। भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालों में भी आपके काम होते रहते हैं। आप त्रैविद्य और देवशत्रुओं का मर्दन करने वाले हैं। आप प्राचीन समय में तीन पैरों से तीनों लोकों का आक्रमण कर बलि को बाँधने के लिए, इन्द्र के छोटे भाई हो, अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। आप सनातन विष्णु हैं। लोकों पर कृपा करने के लिए आपने मनुष्य का रूप धारण किया है। हे सुरों में श्रेष्ठ! आपने पापी रावण को कुटुम्ब और परिवार के साथ मार कर देवताओं का काम सिद्ध कर दिया। हे सुरेश्वर! सब देवता और तपोधन ऋषि लोग प्रसन्न हुए और आपकी कृपा से सब जगत् को शान्ति मिली। ये सीता महाभागा आप ही के लिए पृथ्वी से निकली थीं। ये साक्षात् लक्ष्मी हैं। देवों का काम साधने के लिए ये जनक की पुत्री कहलाईं। हे प्रभो! रावण ने माता की नाईं ले जाकर इनको लंका में रक्खा था। हे बड़े यशवाले रामचन्द्र! यह सब कथा मैंने आपको सुना दी। दीर्घजीवी देवर्षि नारद ने मुझे यह कथा सुनाई थी। श्रीसनत्कुमार ने जैसे सब रावण से कहा था वैसा ही उसने किया। हे रघुवीर! इस कथा को जो श्राद्ध में, ब्राह्मण-भोजन के समय, सुनाते हैं उनका दिया हुआ अन्न पितरों के लिए अक्षयरूप होकर पहुँचता है।

यह कथा सुनकर भाइयों सहित रामचन्द्र जी बड़े विस्मित हुए। बानरों सहित सुग्रीव, राक्षसों सहित विभीषण और मंत्रियों सहित आये हुए राजा लोग तथा अन्यान्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग भी बड़े चकित हुए और ख़ूब प्रसन्न हुए। वे सब रामचन्द्र की ओर देखने लगे। इसके बाद श्रीअगस्त्य मुनि बोले—हे रघुवर! आपने हम को देखा और हमारा आदर-सत्कार किया। अब हम लोग जाते हैं।

दोहा।

निज निज आश्रम कहँ चले, ऋषिवर प्रभु रुख पाइ।
रामचन्द्र राजत तहाँ, सहित बन्धु हरषाइ॥

———

सैंतालीसवाँ सर्ग।

रामचन्द्र की सभा का कुछ वर्णन

श्रीप्रभु के अभिषेक की यह पहली ही रात थी जो पुरवासियों का हर्ष बढ़ानेवाली हुई। कुछ रात बाक़ी रहते राजा को जगानेवाले बन्दीगण राजभवन में आ उपस्थित हुए। किन्नरों की तरह सिखलाये हुए वे सुरीले कंठवाले गायक यथोचित

रीति से महाराज को जगाने लगे। वे गाने लगे—"हे वीर ! हे सौम्य ! हे कौशल्या का आनन्द बढ़ाने वाले ! अब जागिए। हे नराधिप ! आपके सोते रहने से सारा संसार सोता पड़ा है। आपका पराक्रम विष्णु के तुल्य और रूप अश्विनीकुमार के समान है। आपकी बुद्धि बृहस्पति के समान और प्रजा-पालन में आप प्रजापति के तुल्य हैं। आप में क्षमा पृथ्वी के तुल्य, तेज सूर्य की भाँति, वेग वायु की नाईं, गाम्भीर्य समुद्र के तुल्य, अचलता शिव के तुल्य, और सौम्यता चन्द्र के सदृश है। हे नराधिप ! आप के समान न तो राजा हुए हैं और न होंगे। आप दुर्द्धर्ष, धर्मपरायण और प्रजा के हितकारी हैं। हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! आप को कीर्ति और लक्ष्मी त्याग नहीं करती। हे काकुत्स्थ ! आप में लक्ष्मी और धर्म दोनों सदा स्थिर रहते हैं।" वन्दीगण इस तरह कह कर, अनेक तरह की स्तुतियों से महाराज को जगाते थे और सूत लोग भी अच्छी अच्छी स्तुतियों से महाराज का कीर्ति-गान कर रहे थे। इन्हें सुनकर श्रीरामचन्द्रजी जागे और अपने सफ़ेद बिस्तर को छोड़कर ऐसे उठ बैठे मानों शेष पर से नारायण उठे हों। उस समय बहुत से नौकर नम्रता-पूर्वक हाथ जोड़े खड़े थे और हजारों स्वच्छ पात्रों में जल लिये खड़े हो गये। महाराज ने जल से अपने कृत्य किये और पवित्र होकर अग्नि में हवन किया। फिर वे उस पवित्र देवालय में गये जहाँ सब इक्ष्वाकुवंशी लोग जाया करते थे। वहाँ देवता, पितर और ब्राह्मणों का यथोचित पूजन कर वे साथवालों को लिये हुए बाहर की शाला में गये। वहाँ महात्मा मंत्री लोग और वशिष्ठ आदि अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरोहित लोग तथा अनेक देशों के स्वामी बड़े बड़े क्षत्रिय श्रीप्रभु के पास आकर इस तरह उपस्थित हुए मानों इन्द्र के पास देवगण आये हों। भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न भी रामचन्द्र की सेवा करने में ऐसे तत्पर हुए जैसे (ऋग्, यजुः और साम, ये) तीनों वेद यज्ञ में उपस्थित रहते हैं। हर्षित और प्रसन्न-मुँह नौकर लोग हाथ जोड़े महाराज की सेवा करने लगे और सुग्रीव आदि कामरूपी और महापराक्रमी बीस बानर महाराज के पास आ बैठे। फिर चार राक्षसों के साथ श्रीविभीषण भी वहीं आ बैठे जैसे कुवेर के पास गुह्यक लोग हों। इसके बाद वेदमार्ग पर चलनेवाले वृद्ध और कुलीन मनुष्य आये। वे राजा को प्रणाम कर यथोचित स्थान पर बैठ गये। उस समय श्रीमान् ऋषियों, महापराक्रमी राजाओं, बानरों और राक्षसों के बीच में बैठे हुए श्रीरघुवीर की ऐसी शोभा हुई जैसे ऋषियों के द्वारा इन्द्र की होती है। यही क्यों, उस समय उनकी छवि उससे भी अधिक देख पड़ती थी।

दोहा।

बहु पुराण के ज्ञानिवर, मधुर कथा श्रुतिसार।
कहन लगे शुचि धर्मयुत, पावन विविध प्रकार॥

अड़तालीसवाँ सर्ग।

महाराज का राजाओं का बिदा करना।

श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल का शासन करने और पुरवासियों तथा देशवासियों का प्रबन्ध करने लगे। थोड़े दिनों बाद रामचन्द्रजी मिथिलाधिपति राजा जनक से हाथ जोड़ कर कहने लगे—"महाराज ! आप सब तरह मेरे गति-

रूप हैं और मैं आपही का पाला हुआ हूँ। आप ही के उग्र तेज से मैंने रावण को मारा। हे राजन्! मिथिला देशवालों और इक्ष्वाकु-कुलवालों की, इस सम्बन्ध के द्वारा, बड़ी ही प्रीति है। अब आप अपनी राजधानी में पधारिये। रत्नों को लेकर भरत, सहायता के लिए, आपके पीछे पीछे जायँगे।" ये प्रीति के वाक्य सुनकर राजा जनक बोले—"बहुत अच्छा, हे राजन्! मै आपके दर्शन से तथा आप की नीति से बड़ा प्रसन्न हुआ। मेरे लिए जो रत्न सञ्चित हैं वे सब मैं अपनी दोनों कन्याओं को दिये जाता हूँ।" यह कहकर जनक जी अपने देश मिथिला की ओर चले। तब रामचन्द्र केकय देश के राजा, अपने मामा, से हाथ जोड़ कर बोले—"हे मामा! यह समस्त राज्य, मैं, भरत और लक्ष्मण, ये सब आपके वश में हैं। सब तरह से आप हमारे उपकार-कर्ता हैं। राजा वृद्ध हैं। वे आप के लिए सन्ताप करते होंगे। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप लक्ष्मण को साथ ले और तरह तरह के ये रत्न लेकर अपने देश के लिए यात्रा करें।" महाराज के वचन सुन कर युधाजित जाने के लिए स्वीकार कर बोले—"हे रामचन्द्र! यह धन और ये रत्न आप ही के पास अक्षय होकर रहें।" इतना कह उन्होंने प्रदक्षिणा की और जाने के लिए तैयार हुए। रामचन्द्रजी तो पहले ही प्रदक्षिणा कर चुके थे। उनके साथ श्रीलक्ष्मण इस तरह गये जैसे वृत्रासुर के मारे जाने पर इन्द्र के साथ श्रीविष्णु गये थे। इनको बिदा करके रामचन्द्रजी समान आयु के काशी के राजा प्रतर्दन को गले से लगा कर बोले—"हे राजन्! आपने प्रीति और सौहृद दिखलाया। भरत के साथ उद्योग भी किया। अब आप रमणीय, सुरक्षित और मनोहर तोरणों से सुशोभित वाराणसी नगरी को पधारिए।" इतना कह कर महाराज आसन से उठे और उनसे मिल कर उन को बिदा किया। राजा प्रतर्दन काशी को चले गये। इस तरह उनको बिदा कर फिर श्रीरामचन्द्र, वहाँ इकट्ठे हुए, तीन सौ राजाओं से हँसकर मीठी वाणी से बोले—"हे राजा लोगो! आप की प्रीति बड़ी स्थिर और तेज से रक्षित है। आपने हम पर ख़ूब प्रेम प्रकट किया है। आपकी धर्म-परता, सदा सत्य व्यवहार, आप के अनुभव और तेज से वह दुरात्मा, दुर्बुद्धि और राक्षसों में नीच रावण मारा गया। उसके मारने में मैं तो केवल हेतुमात्र हूँ। वह तो आप लोगों के ही तेज से मारा गया है। सिर्फ़ वही नहीं, किन्तु उसके पुत्र, मन्त्री और बान्धव भी आप लोगों की कृपा से समूल नष्ट हुए। जानकी के हरण का समाचार पाकर भरत आप लोगों को यहाँ ले आये। सो आप लोग तभी से काम में लगे हुए हैं। यहाँ आप लोगों का बहुत समय बीत गया, इसलिए मैं चाहता हूँ कि अब आप लोग अपनी अपनी राजधानी को पधारें।" वे सब हर्षपूर्वक बोले—"हे रामचन्द्र! बड़े आनन्द की बात है कि आप विजयी हुए और राज्य भी प्रतिष्ठापूर्वक स्थिर बना रहा; सीता मिल गईं और शत्रु का भी नाश होगया। हे राजन्! यह हमारा परम मनोरथ सिद्ध हुआ। हम लोग आप को विजयी और शत्रुविहीन देख रहे हैं, यही हमारी इच्छा थी और इसी में हमें आनन्द है। आप जो हम लोगों की प्रशंसा कर रहे हैं, सो यह आपके स्वभाव के अनुकूल है; वर्ना हम लोग हैं ही किस लायक़। अब हम लोग आपकी प्रशंसा किस तरह करें। क्योंकि

आपकी भाँति बढ़िया ढङ्ग से बड़ाई करना ते हमें आता ही नहीं। अब हम आपकी आज्ञा ले बिदा होते हैं। आप तो हमारे अन्तःकरणों ही में सदा वास करते हैं। अब हम लोग बहुत प्रसन्न होकर अपने अपने कामों में लगेंगे। महाराज! हम लोगों में आप की सदा प्रीति बनी रहे।" इस तरह हाथ जोड़ और बड़े प्रसन्न हो राजा लोग यात्रा के लिए तैयार हुए और रामचन्द्र ने भी उनका यथोचित सत्कार किया।

उनचासवाँ सर्ग।

बानरों और राक्षसों को महाराज का भेंट देना।

वे महात्मा राजा लोग हज़ारों हाथी और घोड़ों के झुंडों से पृथिवी को कँपाते हुए चारों दिशाओं में अपने अपने स्थान की ओर चले गये। भरत की आज्ञा से कई अक्षौहिणी सेना लेकर बहुत से राजा लोग प्रसन्नता-पूर्वक श्रीरामचन्द्र की सहायता के लिए अयोध्या में छावनी डाले पड़े थे। वे लोग बल के अभिमान से परस्पर कहने लगे कि हम लोग राम के शत्रु रावण को समर में सामने न देख पाये। रावण के मारे जाने पर भरतजी ने हम लोगों को व्यर्थ ही इकट्ठा किया। अगर पहले हम लोग यह हाल पाते तो शीघ्र ही राक्षसों को मार गिराते। और राम के तथा लक्ष्मण के बाहुवीर्य से रक्षित होकर, निर्द्वन्द्व होकर, सुख से समुद्र के पार युद्ध करते। इस प्रकार तरह तरह की हज़ारों बातें कहते और हर्ष में भरे हुए वे राजा लोग अपनी अपनी मुख्य राजधानियों में सकुशल पहुँच गये। उनके राज्य सब तरह सम्पन्न, धनधान्य से पूर्ण और रत्नों से भरे पूरे थे। उन लोगों ने अनेक तरह के रत्न श्रीरघुनन्दन की भेंट के लिए दिये। उनमें से अनेक राजाओं ने घोड़े, वाहन, तरह तरह के रत्न, मस्त हाथी, उत्तम चन्दन, काष्ठ, अच्छे अच्छे भूषण, मणि, मुक्ता, मूँगे, रूपवाली दासियाँ, विचित्र दुशाले और अनेक तरह के रथ आदि अनेक प्रकार की चीज़ें भेजवाईं। उपहार की सामग्री लेकर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न फिर अपनी पुरी में लौट आये। उन्होंने वे चीज़ें महाराज के पास रख दीं। रामचन्द्र ने वे चीज़ें बड़ा उपकार करनेवाले सुग्रीव को, विभीषण को तथा और और लोगों को दे डालीं। अर्थात् जिनकी सहायता से महाराज ने विजय पाई थी उन राक्षसों और बानरों को भी वे चीज़ें महाराज ने दीं। राक्षसों और बानरों ने उन रत्नों को पाकर अपने अपने मस्तकों और भुजाओं में धारण कर लिया। इसके बाद प्रभु ने हनुमान् और अंगद को गोद में ले कर उनकी भुजाओं में बाजूबन्द पहनाये और सुग्रीव से कहा—"हे सुग्रीव! देखो, यह अंगद आपका सुपुत्र और यह वायुपुत्र आपका मन्त्री है। देखो, ये दोनों अच्छी राय देने में तत्पर और मेरा हित करने में सदा दत्तचित्त रहते हैं। इसलिए ये अनेक तरह के सत्कार पाने योग्य हैं। इसमें मुख्यता आपही की है।" इतना कहकर श्रीरामचन्द्र ने अपने शरीर से भूषण उतार कर उन दोनों को पहना दिये। फिर महाराज ने नील, नल, केसरी, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, गवाक्ष, धूम्र, बलीमुख, प्रजङ्घ, सन्नाद, दरीमुख, दधिमुख और इन्द्रजानु—इन सेनापतियों की ओर प्रेमदृष्टि से देखा और अत्यन्त मधुर वाणी से बोले—"आप लोग मेरे मित्र,

परम उपकारी अंग और भाई हैं। हे जङ्गल के रहने वाले बानरो! तुमने हमको बड़े दुःख से छुड़ाया। राजा सुग्रीव धन्य हैं जिनके आप लोग मित्र हैं।" इस तरह कह कर उनको यथोचित भूषण पहनाये और बहुत से उत्तम वस्त्रों से उनको भूषित किया। फिर उनके गलेसे गला लगा कर वे मिले। वे लोग सुगन्धित मधु पीते और स्वादिष्ठ मूलफल खाते हुए रहने लगे। इस प्रकार उन्हें कुछ अधिक एक महीना होगया परन्तु रामचन्द्र पर भक्ति होने के कारण उन्हें वह एक मूहूर्त्त सा जान पड़ा। रामचन्द्र भी उन कामरूपी बानरों, राक्षसों और रीछों के साथ अनेक तरह के विहार करते थे। इस तरह रहते रहते उनको शिशिर ऋतु का दूसरा महीना भी बीत गया।

दोहा।

एहि विधि विहरत मास दुइ, बीति गये सुख माँह।
श्री रघुपति की भक्ति महँ, नित नव उपजति चाह॥

पचासवाँ सर्ग

बानरों, भालुओं और राक्षसों का विदा होना।

इस तरह वे सब आनन्दपूर्वक वहाँ रहते थे कि इतने में एक दिन महाराज ने सुग्रीव ने कहा—"हे सौम्य! अब तुम किष्किन्धा में मन्त्रियों के साथ जाकर निष्कण्टक राज्य करो। वहाँ अंगद को प्रीति-पूर्वक कृपादृष्टि से देखना। हनुमान्, नल, अपने ससुर सुषेण, तार, कुमुद, नील, शतबलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, ऋक्षराज जाम्बवान्, गन्धमादन, ऋषभ, सुपाटल, केसरी, शरभ, शुम्भ और शङ्खचूड़ को सदा प्रीति की दृष्टि से देखना। इनको कभी उदास न करना। क्योंकि युद्ध में इन लोगों ने मेरे साथ प्राण होम कर काम किया है।" इतना कह और सुग्रीव को गले से लगा कर फिर रामचन्द्रजी विभीषण से बोले—"हे राक्षसाधिप! तुम धर्मज्ञ और मेरे प्यारे हो। अब जाओ, धर्मानुसार लङ्का का शासन करो। नगर, राक्षसों और भाई कुवेर के विषय में धर्म-बुद्धि रखना। अधर्म की ओर कभी दृष्टि न करना। बुद्धिमान् राजा अवश्य ही पृथ्वी पर राज्य भोगते हैं। हे राजन्! मेरा और सुग्रीव का नित्य स्मरण करते रहना और प्रीति-बुद्धि रखना। अब आनन्द-पूर्वक यात्रा करो।" रामचन्द्र के ये वचन सुन कर भालू, बानर और राक्षस वाह वाह करते हुए महाराज की सराहना करने लगे। उन्होंने कहा—"हे महाबाहो! आपकी बुद्धि, अद्भुत वीर्य पराक्रम, और बड़ी मधुरता ठीक स्वयंभू के समान देख पड़ती है।" इस तरह वे कह ही रहे थे कि इतने में हनुमान् प्रणाम कर बोले—"राजन्! मेरा स्नेह सदा आपके ऊपर बना रहे और मेरी भक्ति नियम से आपके ऊपर स्थिर रहे तथा मेरा मन अन्यत्र न जाने पावे। हे रघुनन्दन! जब तक आपकी यह कथा इस संसार में रहे तब तक मेरे प्राण शरीर को न त्यागें और आपका यह पवित्र चरित तथा यह कथा अप्सरायें गाकर मुझे सुनाया करें। हे प्रभो! जब मैं आपके चरितामृत को सुनूँगा तब अपनी उत्कंठा इस तरह दूर कर दूँगा जैसे हवा मेघघटा को उड़ा देती है।" हनुमान् की प्रेमभरी बातें सुन कर महाराज ने आसन से उठ करके उनको अपने गले से लगा लिया। वे बड़े स्नेह से बोले—हे कपिश्रेष्ठ! तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा, इसमें कुछ

सन्देह नहीं है। जब तक मेरी कथा का प्रचार रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति बनी रहेगी और तुम्हारे शरीर में प्राण स्थिर रहेंगे। जब तक लोग रहेंगे तब तक मेरी कथा बनी रहेगी। हे कपे! तुम्हारे किये हुए एक एक उपकार के बदले मैं प्राण देकर भी उऋण नहीं हो सकता। तुम्हारे किये हुए जो उपकार बच रहेंगे उनके लिए मैं ऋणी बना रहूँगा। अथवा हे कपे! जो तुम्हारे किये हुए उपकार हैं वे मेरे अङ्गों में जीर्ण होवें। क्योंकि मनुष्य आपत्तियों में प्रत्युपकारों का पात्र होता है अर्थात् उसी समय उसके प्रत्युपकार देखे जाते हैं। यह कह कर महाराज ने अपने गले से चन्द्रमा के समान चमकीला और हरे मणियों से सुशोभित हार उतार कर कपि को पहना दिया। उस हार से वायुपुत्र की ऐसी शोभा हुई जैसे शिखर पर उदय हुए चन्द्रमा से सुमेरु पर्वत सुशोभित होता है। इस प्रकार रामचन्द्र की बातें सुनकर वे सब बानर उठ उठ कर उनको प्रणाम कर अपने अपने घर जाने लगे। महाराज के गले से भिड़ कर सुग्रीव और विभीषण ने भेट की। उस समय सब की आँखें आँसुओं से भर गईं और सबकी गद्गद वाणी हो गई। बड़े दुःख से महाराज को छोड़ वे सब अपने अपने घर को गये। घर जाते समय उन लोगों को ऐसी पीड़ा जान पड़ी जैसे प्राणी को प्राण त्यागते समय जान पड़ती है।

दोहा।

राक्षस कपि अरु भालु सब, करि करि प्रभुहिं प्रणाम।
अश्रुपूर्ण गवने मनहुँ, निकले तजि निज धाम॥

---

५१ वाँ सर्ग।

पुष्पक विमान का रामचन्द्र के पास फिर आना और कुछ राज्य का वर्णन।

इस तरह बानरों आदि को बिदा कर महाराज भाइयों के साथ आनन्द-पूर्वक राज्य करने लगे। एक दिन तीसरे पहर के समय भाइयों सहित राघव ने आकाश से यह मधुर वाणी सुनी—"हे सौम्य रामचन्द्र! आप प्रसन्न दृष्टि से मेरी ओर देखिए। मैं पुष्पक नामक विमान कुवेर के भवन से आया हूँ। हे प्रभो! मैं आपकी आज्ञा पाकर कुवेर के पास गया था। उन्होंने मुझसे कहा है कि रावण को मार कर श्रीरामचन्द्र ने तुमको भी जीत लिया है। कुटुम्ब सहित रावण के मारे जाने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। परम पराक्रमी राघव ने जब तुझे जीत लिया है तब तू उन्हीं के पास जा और उन्हीं की सवारी का काम दे। मैं तुझे यही आज्ञा देता हूँ। यही मेरा सर्वोत्कृष्ट मनोरथ है। तू उन्हीं की सेवा में तत्पर रह। तू सब तरह की चिन्ता छोड़कर उन्हीं के पास चला जा।" 'हे प्रभो! कुवेर की आज्ञा पाकर मैं आपके पास आया हूँ। आप मुझे शंकारहित हो ग्रहण कीजिए। मेरी धर्षणा करने में कोई प्राणी समर्थ नहीं है। मैं आपके आज्ञानुसार प्रभाव से गमनागमन करूँगा।' विमान का यह कथन सुनकर महाराज ने पुष्पक को कहा—"हे विमानों में श्रेष्ठ! तुम्हारा स्वागत हो। यदि ऐसी बात है तो बहुत अच्छा है, कुवेर के प्रेमानुसार ही मुझे बर्त्तना चाहिए जिससे चरित्र में दोष न लगे।" यह कह कर लावा, फूल, धूप, आदि सुगन्धित चीजों से पुष्पक की पूजा कर रघुनन्दन बोले—"हे

पुष्पक! अब तुम जहाँ चाहो वहाँ चले जाओ। परन्तु जब मैं तुम्हारा स्मरण करूँ तब यहीं आ जाना। आकाश में तुम्हारा जाना मङ्गल-पूर्वक हो। किस तरह का तुम को दुःख न हो और ठोकर न लगे। इच्छानुसार जहाँ चाहो घूमो।" यह सुनकर पुष्पक चला गया। उसके अन्तर्द्धान होते ही हाथ जोड़ कर भरत प्रभु से बोले—हे वीर! आपके राज्य-शासन-काल में बहुत सी बोलियाँ उन अद्भुत प्राणियों की सुन पड़ती हैं जो मनुष्य नहीं हैं; क्योंकि आप साक्षात् देवरूप हैं। प्रजा में कोई रोगी नहीं देख पड़ता। आपको राज्य करते कुछ ही महीने हुए हैं। हे राघव! जीर्णशीर्ण जीव भी नहीं मरते। स्त्रियों के निरोगता से प्रसव होता है। मनुष्यों के शरीर हृष्ट-पुष्ट देख पड़ते हैं। पुरवासियों में बड़ा हर्ष देख पड़ता है। मेघ अमृत के समान जल की वर्षा, समय पर, करते हैं। हवा अच्छे स्पर्शवाली, सुखदायी और मङ्गल रूप चलती है। नगर और राज्य के रहनेवाले लोग यही कहते हैं कि इस तरह का राजा हमारे लिए बहुत दिन तक स्थिर रहे।

दोहा।

सत्य प्रिय एहि विधि वचन, सुनि रघुवीर उदार।
महाहर्ष ते पूर्ण भे, सकल भुवन कर्त्तार

---

५२ वाँ सर्ग।

अशोक वाटिका की विभूति का वर्णन।

पुष्पक को बिदा कर रघुपति अशोक वाटिका में विहार करने के लिए गये। चन्दन, अगुरु, आम, तुङ्ग, एक तरह की नागकेसर, लालचन्दन, और देवदारु के वन उसके चारों ओर लगे हुए थे; इससे उस वाटिका की बड़ी शोभा थी। चम्पा, (काला) अगर, नागकेसर, महुआ, कटहर, साखू, और बिना धुएँ की आग की तरह पारिजात—ये वृक्ष भी वहाँ लगे हुए थे। इनसे वह बड़ी मनोहर मालूम होती थी। वह वाटिका लोध, कदम्ब, अर्जुन, नाग, छितिउन, वासन्ती लता, मन्दार और केले के वृक्षों से घिरी हुई तथा प्रियंगु, कदम्ब, मौलसिरी, जामुन, अनार, और कचनार के पेड़ों से अलंकृत थी। ये सब वृक्ष सदा फूलते और रमणीय फल देते थे। ये मनोरम, दिव्य गन्ध और रसों से पूर्ण थे। ये वृक्ष नये अंकुर और पत्तों से मनोहर थे। वृक्ष लगाने में चतुर मालियों ने इन दिव्य वृक्षों को बड़े अच्छे ढङ्ग से लगाया था। इन वृक्षों के सुन्दर पत्ते और फूल लहलहा रहे थे। उन पर मस्त भौरों के झुंड के झुंड गुंजार रहे थे। उस वाटिका में आम के वृक्ष के अलङ्काररूप कोयल, भृङ्गराज तथा और और रङ्गबिरङ्गे पक्षी शोभा दे रहे थे। उन वृक्षों में से कितने ही सुवर्णवर्ण, कितने ही अग्नि की ज्वाला के समान और बहुत से नीलाञ्जन के समान देख पड़ते थे। अत्यन्त सुगन्धित फूल और तरह तरह के फूलों के गुच्छे मन को हरण किये लेते थे। वहाँ तरह तरह की बावलियाँ थीं जिनमें उत्तम जल भरा हुआ था। उनमें माणिक्य की सीढ़ियाँ और भीतरी तह स्फटिक की बनी हुई थी। उनमें फूले फूले कमल और कुईं के जाल सुशोभित हो रहे थे। वहाँ चक्रवाक, पपीहा, शुक, हंस और सारस शब्द कर रहे थे। उनके किनारे पर फूलों से लदे हुए चित्र-विचित्र वृक्ष झूम रहे थे। उनके प्राकार चित्र विचित्र और अद्भुत पत्थरों के बने हुए थे। उनके चारों ओर छोटी छोटी घास ऐसी लग रही थी मानों

पत्रों का फ़र्श बिछा हो। वहाँ के वृक्ष मानों ईर्ष्या से, एक दूसरे से अधिक फूलों से लद रहे थे। हवा के झोंके से उनके जो फूल नीचे पत्थरों पर बिछ जाते थे उनकी ऐसी छबि देख पड़ती थी जैसे तारागणों से आकाश की देख पड़ती है। जैसे इन्द्र का नन्दन और ब्रह्मा का बनाया हुआ कुवेर का चैत्ररथ वन शोभित देख पड़ता है वैसी ही शोभा श्रीराघव के उस अशोक वन की हो रही थी। अनेक आसनों और लतागृहों से पूर्ण उस वाटिका में महाराज पधारे और एक बड़े सुन्दर फूलों से भूषित कुश के कोमल आसन पर बैठ गये। वहाँ सीता को पास बैठा कर उन्होंने अपने हाथ से मैरेय नामक पवित्र मद्य उन्हें पिलाई मानो इन्द्र इन्द्राणी को पिलाते हों। वहाँ पर अच्छे सुस्वादु मांस और अनेक तरह के फल, रामचन्द्रजी के भोजन के लिए, दासों ने लाकर रख दिये। उस समय नाचने और गाने में बड़ी चतुर रूपवती अप्सराएँ, किन्नरियों के साथ,—मद्यपान से कुछ मस्त होकर—महाराज के सामने नाचने लगीं। रामचन्द्रजी ने उन सब सजी सजाई मनोरमा रमणियों को सन्तुष्ट किया। उस समय श्रीप्रभु सीता सहित विराजमान होकर ऐसी शोभा पा रहे थे मानों अरुन्धती के साथ वशिष्ठजी विराजे हों। रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर देवकन्या तुल्य सीता को देवताओं के समान प्रतिदिन सन्तुष्ट करने लगे। इस तरह विहार करते करते बहुत समय बीत गया। भोग में सुख देनेवाली शिशिर ऋतु भी बीत गई। विविध भोग करते हुए रामचन्द्र और जानकी को दश हज़ार वर्ष हो गये। रामचन्द्रजी पूर्वाह्न (दोपहर) तक सब धर्म-कार्य कर दिन का शेष भाग बिताने के लिए अन्तःपुर में गये। सीता देवी ने भी दिन के पहले आधे भाग में सब देवकार्य कर फिर कौशल्यादि की पूजा की। वे सब सासुओं में एकसा भाव रखती थीं। इसके बाद वे तरह तरह के कपड़े और भूषण पहन कर रामचन्द्र के पास आईं मानों इन्द्र के पास इन्द्राणी गई हों। रामचन्द्रजी उन्हें सगर्भा देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

एक दिन महाराज वैदेही से बोले—"हे देवि! तुम में गर्भ के चिह्न देख पड़ते हैं। हे वरारोहे! तुम क्या चाहती हो? तुम जो कहो मैं तुम्हारे उसी मनोरथ को सिद्ध कर दूँ।" तब सीताजी कुछ हँसती हुई बोलीं—"हे राघव! मैं पवित्र तपोवनों को देखना चाहती हूँ। गङ्गा-तट पर निवास करनेवाले, उग्रतेजस्वी, और फल मूलाहारी ऋषियों की मैं चरण-सेवा किया चाहती हूँ। यदि मैं वहाँ एक रात भी रह सकूँ तो मेरा चित्त भर जाय।" रामचन्द्रजी बोले—"हे वैदेहि! तुम निश्चिन्त रहो। तुमको मैं कल ही तपोवन में भेजूँगा।" यह कह श्रीरामचन्द्रजी अपने मित्रों के साथ राजभवन की शाला में चले गये।

---

५३ वाँ सर्ग।

महाराज का सीता के विषय में लोकापवाद का समाचार पाना।

अब वहाँ पर महाराज के पास ऐसे मनुष्य आ बैठे जो अनेक तरह की कथाओं के कहने में चतुर और हँसने हँसाने में बड़े दक्ष थे। विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्र, और सुमागध—ये लोग अनेक तरह की हास्य

कथाएँ कह रहे थे। किसी की बात के बीच में ही महाराज बोल उठे—"हे भद्र! आज कल नगर और राज्य में कौन सी चर्चा फैल रही है? पुरवासी और देशवासी लोग मेरे, सीता के, तथा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के विषय में क्या कहते हैं? मेरी माता कैकयी के विषय में उन लोगों की क्या राय है? क्योंकि अविचारशील राजा की बस्ती में ही नहीं किन्तु वन में भी निन्दा होने लगती है।" यह सुनकर भद्र हाथ जोड़ कर बोला—"महाराज! पुरवासी लोग महाराज की प्रशंसा ही करते हैं। और दशानन के वध की चर्चा विशेषकर पुरवासियों के मुँह से सुन पड़ती है।" फिर राघव बोले—"ऐसा नहीं, वे लोग जो जो कहते हों वे सब बातें कह सुनाओ, अर्थात् उनके मुँह से जो कुछ बुरी या भली निकलती हो वह सब कहो। उन सब बातों को सुनकर मैं अच्छा ही काम करूँगा—बुरा काम छोड़ दूँगा। हे भद्र! तुम निडर होकर कहो। मनमें किसी बात की चिन्ता न करो।" यह सुनकर उसने कहा—"अच्छा महाराज! अब मैं कहता हूँ, सुनिए। बैठक, हाट बाज़ार, गली, वन और उपवन में यही बात फैल रही है कि श्रीराघव ने बड़ा दुष्कर काम किया कि समुद्र में पुल बाँध दिया। ऐसी बात आज तक पुराने लोगों ने कभी कान से सुनी तक नहीं कि किसी ने समुद्र में पुल बाँधा हो। मनुष्य की तो बात ही क्या, देवता तथा दैत्य भी ऐसा कठिन काम नहीं कर सकते। सेना और वाहनों सहित रावण का मारना भी बड़ा कठिन काम था सो महाराज ने वह भी किया। वानरों, भालुओं और राक्षसों को अपने वश में कर लिया। यह भी बड़ा अद्भुत काम किया। परन्तु रावण को मार कर और क्रोध को वहीं शान्त कर वे सीता को फिर अपने घर ले आये। जिस सीता को रावण अपनी गोद में उठा कर ले गया और जिसे अशोक वाटिका में रक्खा तथा जो इतने दिनों तक राक्षसों के वश में पड़ी रही उसी सीता के सम्भोग का सुख श्रीराघव के हृदय में कैसा उत्कृष्ट प्रकाशित होता है। इन सब बातों का विचार करके महाराज को कुछ भी घृणा क्यों नहीं होती! हे भाइयो! अब हम लोगों को भी अपनी अपनी स्त्रियों के विषय में ऐसी बात सहनी पड़ेगी। क्योंकि राजा के अनुसार प्रजा व्यवहार करती है। महाराज! प्रजा के लोग बहुधा इसी तरह की बातें कहते हैं।" यह सुनकर महाराज अपने मित्रों की ओर देखकर दुखी मनुष्य की तरह बोले—"क्यों, प्रजा के लोग मुझे ऐसा क्यों कहते हैं!" यह सुनकर वहाँ जितने मनुष्य बैठे थे वे हाथ जोड़ और पृथ्वी तक सिर नवा कर, दीन-रूप हो, श्रीराघव से बोले—हाँ, पृथ्वीनाथ! यह बात ऐसी ही है, इसमें सन्देह नहीं।

दोहा।

एहि विधि सब के वचन सुनि, रघुपति मन महँ दीन।
सभासदन्हि गृह गमन कर, तेहि छन अनुमति दीन॥

——

५४ वाँ सर्ग।

माया-मनुष्य की भाँति प्रभु का दुख करना।

सब को बिदा कर, अपनी बुद्धि में कुछ निश्चय करके, पास ही खड़े हुए द्वारपाल से महाराज बोले—"जाओ, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को जल्दी बुला लाओ।" यह आज्ञा सुनते ही द्वारपाल हाथ जोड़ कर और सिर झुकाकर पहले लक्ष्मण के भवन

पर गया। बिना रोकटोक के भीतर जाकर वह प्रणामपूर्वक राजा की आज्ञा सुनाने लगा। उसने कहा—"हे सौमित्रे! महाराज आप को देखना चाहते हैं इसलिए जल्दी चलिए।" यह आज्ञा पाकर लक्ष्मण रथ पर चढ़ राजभवन की ओर चल दिये। लक्ष्मण को जाता देख फिर वह द्वारपाल भरत के घर गया। उनको भी प्रणाम कर उसने महाराज की आज्ञा सुनाई। सुनते ही जल्दी उठ कर भरत पैदल ही चल पड़े। भरत को रवाना करने के बाद द्वारपाल ने शत्रुघ्न के घर में जाकर नम्रता-पूर्वक राजा का संदेशा सुनाया। सुनते ही वे भी हाथ जोड़े घर से चल दिये। यहाँ द्वारपाल ने उन तीनों के आने की सूचना महाराज को दी। महाराज अब तक चिन्ता के मारे व्याकुल हो नीचे को मुँह किये दीन चित्त से सोच रहे थे। कुमारों का आगमन सुन द्वारपाल से बोले—"तुम उनको मेरे पास जल्दी लिवा लाओ। वे ही मेरे जीवन के आधार हैं और वे ही मेरे प्राणप्रिय हैं।" यह सुनते ही द्वारपाल उन तीनों को लिवा लाया। राजा की आज्ञा पाकर उन्होंने नम्रता-पूर्वक हाथ जोड़ कर राजा के भवन में प्रवेश किया। उन लोगों ने रामचन्द्र का मुँह, ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा के तुल्य और अस्त होते हुए सूर्य की भाँति म्लान देखा। आँसुओं से भरी हुई आँखें और शोभा-रहित कमल की नाईं प्रभु का मुँह देख कर उन्होंने चरणों पर सिर झुका कर उनको प्रणाम किया। वे हाथ जोड़े खड़े हो गये। उस समय रामचन्द्र जी ने आँखों से आँसू पोंछ कर दोनों भुजाओं से सब को गले से लगा लिया। उन्होंने कहा कि आसन पर बैठो। तुम लोग मेरे सर्वस्व हो और तुम्हीं जीवन हो। तुम्हारे ही सम्पादित राज्य का मैं पालन करता हूँ। तुम लोग शास्त्रों में पारंगत और बड़े चतुर हो। तुम लोगों की बुद्धि अच्छी है इसलिए तुम लोग मिल कर मेरी बात का विचार करो।

दोहा।

एहि विधि प्रभु के वचन सुनि, दीन तीनहूँ वीर।
अति व्याकुल सोचन लगे, का कहिहहिं रघुवीर॥

---

५५ वाँ सर्ग।

लक्ष्मण को सीता के त्याग की आज्ञा देना।

श्रीरामचन्द्र सूखे मुँह से बोले—"हे भाइयो! तुम्हारा मंगल हो। मेरी बात को सावधान चित्त से सुनो। मैं इस समय वह बात कहना चाहता हूँ जो पुरवासी लोग सीता के विषय में कह रहे हैं। पुरवासियों और देशवासियों में, मेरे विषय में ऐसा भयानक अपवाद फैल रहा है जो मेरे मर्मों को विदीर्ण किये डालता है। देखो मैं महात्मा इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ और सीता भी महात्मा जनक के वंश की है। हे सौम्य लक्ष्मण! तुम जानते ही हो कि दण्डक वन से जानकी को रावण उठा ले गया था सो उस दुष्ट का तो मैंने सर्वनाश कर ही दिया। वहाँ मेरा विचार यह हुआ था कि राक्षस के घर में रही हुई सीता को फिर अपने नगर को कैसे ले चलें। पर तुम्हारे सामने की बात है कि मेरे विश्वास के लिए सीता ने अग्नि में प्रवेश किया था। अग्नि ने सीता को दोष-रहित ठहराया और वायु ने भी वही बात कही। देवताओं और ऋषियों के सामने चन्द्र और सूर्य ने भी यही कहा कि जानकी पाप-रहित है। ऐसी शुद्ध-चरित्रा

सीता को लङ्का में देवता और गन्धर्वों के सामने इन्द्र ने मेरे हाथ में सौंपा था। मेरा अन्तरात्मा भी यही कहता है कि सीता शुद्ध है। इसी से मैं उसे अयोध्या को ले भी आया था। परन्तु अब पुर-वासियों और देशवासियों का यह बड़ा अपवाद मेरे हृदय में चुभ रहा है। लोक में जिसकी अकीर्ति होती है वह अधम लोकों में गिरता है। और लोक में जब तक अपयश बना रहता है तब तक वह मनुष्य उसी अधम लोक में पड़ा रहता है। हे भाइयो! देवता लोग अकीर्ति को बुरा बतलाते हैं। लोकों में कीर्ति की ही पूजा होती है। महात्मा लोग सब तरह से कीर्ति के लिए उपाय करते रहते हैं। इस अपवाद के डर से मैं अपना प्राण तक दे सकता हूँ और तुम लोगों को भी त्याग सकता हूँ। फिर जानकी की तो बात ही क्या है। तुम्हीं देखो, इस समय मैं अकीर्ति के शोक-सागर में डूब रहा हूँ। मैं किसी प्राणी में इससे अधिक दुख नहीं देखता। हे सौमित्रे! कल सबेरे सुमंत्र से रथ जुतवा कर और उस पर सीता को चढ़ाकर हमारे देश से बाहर छोड़ आओ। गंगा के उस पार महर्षि वाल्मीकि का दिव्य आश्रम है। वहाँ तमसा नदी बहती है। वहीं निर्जन देश में इसको छोड़ कर मेरे पास चले आना। इतना मेरा कहना करो। तुम इस विषय में मुझसे कुछ भी न कहना। हे सौमित्रे! तुम अब जाओ और इस विषय में कुछ भी दूसरा विचार न करो। यदि इस बात से मुझे रोकोगे तो मैं बहुत अप्रसन्न हूँगा। हे भाइयो! मैं तुमको अपने पैरों और प्राणों की शपथ दिलवाता हूँ कि इस विषय में किसी प्रकार की विनती मुझ से न करना। जो मेरे अभीष्ट में हानि पहुँचायेगा वह सब दिन के लिए मेरा अहितकारी बन जायगा। यदि तुम लोग मेरी आज्ञा मानते हो तो मेरा कहना मानो। सीता को यहाँ से ले जाओ और मेरी आज्ञा पूरी करो। इससे पहले सीता ने एक बार मुझ से कहा भी था कि मैं गंगा किनारे के मुनियों के आश्रमों को देखना चाहती हूँ। इसलिए, ऐसा करने से उसका भी मनोरथ पूरा हो जायगा।" यह कहते कहते रामचन्द्र के नेत्रों में आँसू भर आये। वे सब को बिदा कर आप भी अपने भवन में जाकर सो रहे।

दोहा।

सबहि बिदा करि शीलनिधि, जाय कियो विश्राम।
शोकाकुल इव मनुज तनु मायापति श्रीराम॥

---

५६ वाँ सर्ग।

लक्ष्मण का सीता को रथ पर बैठा कर ले जाना।

अब रात के बीत जाने पर दीन और शुष्क मुँह हो लक्ष्मण सुमंत्र से बोले—"हे सारथे! जल्दी चलने वाले घोड़ों को रथ में जोतो। उस पर सीता के बैठने के योग्य आसन बिछाओ। क्योंकि राजा की आज्ञा से सीता को पवित्र कर्म करनेवाले ऋषियों के आश्रम में पहुँचाना है।" यह आज्ञा पाकर सुमंत्र ने रथ तैयार किया। लक्ष्मण के पास रथ खड़ा कर उसने कहा—"हे प्रभो! रथ तैयार है। जो काम हो कीजिए।" यह सुनकर लक्ष्मण राजभवन में गये और सीता से बोले—"हे वैदेहि! तुमने महाराज से गंगा किनारे के ऋषियों के आश्रमों में जाने के लिए

कहा था। इसलिए राजा की आज्ञा से मैं तुमको वहाँ ले चलता हूँ।" यह सुनकर वैदेही बड़ी प्रसन्न हो चलने को तैयार होगईं। वे मुनि पत्नियों को देने के लिए अपने साथ अच्छे अच्छे कपड़े, और तरह तरह के धन लेकर रथ पर सवार होगईं। सुमंत्र ने रथ चला दिया। उस समय सीता लक्ष्मण से बोलीं—"हे रघुनन्दन! मैं इस यात्रा में बहुत अशुभ देख रही हूँ। देखो, मेरी दहिनी आँख फड़क रही है और मेरा शरीर काँप रहा है। हे सौमित्रे! मुझे अपना हृदय अस्वस्थ मनुष्य की भाँति जान पड़ता है। मुझे बड़ी उत्कण्ठा और अधैर्य सता रहा है। मैं इस पृथ्वी को सुख-विहीन देख रही हूँ। तुम्हारे बड़े भाई का मङ्गल हो। विशेष कर मेरी सासुओं का कल्याण हो। नगर और देश में प्राणियों का कुशल हो। इतना कह कर सीता हाथ जोड़ कर देवताओं से प्रार्थना करने लगी। तब लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले—"हे देवि! सब मङ्गल है। उस समय लक्ष्मण का हृदय तो सूखता जाता था, परन्तु ऊपर से वे अपने को प्रसन्न मनुष्य की भाँति दिखला रहे थे। अब चल कर गोमती नदी के किनारे वाले आश्रम में रात बिताई। सबेरे लक्ष्मण ने सूत से कहा—"रथ जोतो। आज भागीरथी के जल को मैं, शिव की नाईं, शिर पर धारण करूँगा। यह आज्ञा पाकर सुमंत्र ने घोड़े टहला कर रथ में जोत दिये। और महारानी से हाथ जोड़ कर कहा—आइए, रथ पर चढ़िए। जानकी और लक्ष्मण दोनों सवार हुए। सुमंत्र ने रथ हाँक दिया। दोपहर के समय रथ भागीरथी के किनारे पहुँचा। गंगा को देख लक्ष्मण से न रहा गया। वे दीन होकर ज़ोर से रोने लगे। लक्ष्मण की वैसी दशा देख कर सीता देवी बोलीं—"हे लक्ष्मण! तुम क्यों रोते हो? भला सुनो तो, बहुत दिन से मेरी प्रबल इच्छा थी कि गंगा के दर्शन करूँ। इसलिए यह समय मेरे हर्ष का है। तुम रोकर मुझे क्यों दुख दे रहे हो? तुम सदा रामचन्द्र के पास रहते हो, क्या इसी से दो दिन का अन्तर पड़ने से तुमको शोक हो रहा है? हे लक्ष्मण! वे मेरे भी प्राणों से अधिक प्यारे हैं। परन्तु मैं तो इस तरह शोक नहीं करती। तुम ऐसी मूढ़ता न करो। मुझे गंगा के पार ले चलो, वहाँ तपस्वियों का दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण आदि सत्कार की चीज़ें देकर प्रणाम करूँ। वहाँ एक रात रह कर फिर हम सब अयोध्या को लौट चलेंगे। मेरा मन भी उन कमलनयन, सिंहोरस्क कृशोदर श्रीरामचन्द्र को देखने के लिए जल्दी कर रहा है।" वैदेही की ये बातें सुन कर लक्ष्मण ने अपनी आँखें पोंछीं और मल्लाहों को बुलवाया। वे आये और हाथ जोड़ कर बोले—"महाराज! नाव तैयार है, बैठिए।"

दोहा।

कैवर्तन के वचन सुनि, लक्ष्मण परम सुजान।
सीतहिं प्रथम चढ़ाइ पुनि, आपु चढ़े जलयान॥

---

५७ वाँ सर्ग।

लक्ष्मण का सीता को रामचन्द्र के परित्याग का संदेशा सुनाना।

इस तरह लक्ष्मण ने नाव पर चढ़ कर सुमंत्र से कहा—"तुम रथ ले कर इसी पार रहो" और मल्लाह से कहा कि नाव चलाओ। जब नाव उस

पार पहुँच गई तब उतर कर लक्ष्मण आँखों में आँसू भर कर हाथ जोड़े सीता से बोले—"हे देवि! ऐसे बुद्धिमान् महाराज ने इस निन्दित कर्म में लगा कर मुझे लोक में निन्दनीय कर डाला। यह काम मेरे हृदय मे कंटक रूप हो कर चुभ रहा है। ऐसा काम करने की अपेक्षा यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो बहुत अच्छा था। अच्छा होता जो मैं ऐसे लोक-निन्दित काम में न फाँसा जाता। हे शोभने! तुम प्रसन्न रहो। मुझे दोष न देना।" यह कह कर लक्ष्मण हाथ जोड़े हुए ज़मीन पर गिर पड़े। उस समय रोते और अपना मरण चाहते हुए लक्ष्मण को देख कर सीता को बड़ा उद्वेग हुआ। वे बोलीं—"हे लक्ष्मण! यह क्या बात है। कुछ मेरी समझ में नहीं आता। मुझे ठीक ठीक बतलाओ। मैं तुम को स्वस्थ नहीं देखती। राजा कुशलपूर्वक तो हैं न? तुमको राजा की शपथ है, बतलाओ तुमको सन्ताप होने का कारण क्या है? ठीक ठीक कहो। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ।" इस तरह शपथपूर्वक पूछने पर लक्ष्मण बड़े दीन हो और नीचे को मुँह किये किये रुँधे हुए गले से बोले—हे जनकनन्दिनि! महाराज ने तुम्हारे विषय में बड़ा भयानक अपवाद सुना था। उससे वे बड़े दुखी हुए और मुझे सब हाल सुना कर राजभवन में चले गये। हे देवि! वे सब बातें आप के सामने कहने के योग्य नहीं हैं। राजा ने उनको अपने ही मन में छिपा कर रक्खा है। उसी तरह मैं भी वह अपवाद प्रकट करना नहीं चाहता। मैंने उसे सुना अनसुना कर दिया है। मुख्य बात यह है कि राजा ने आपका त्याग कर दिया है। मेरी दृष्टि में आप शुद्ध हैं, मैं आपको दोषी नहीं बताता। राजा भी ऐसा ही समझते हैं। परन्तु वे क्या करें? पुरवासियों के अपवाद से डरते हैं। आप दूसरी बात न समझें। त्याग करने का यही कारण है। गर्भावस्था में तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करना आवश्यक है, इसी बहाने से तुमको यहाँ आश्रम के समीप छोड़ जाने की आज्ञा राजा ने दी है। आप दुख न करना। हे शुभे! इस गंगा के किनारे ब्रह्मर्षियों का तपोवन बड़ा पवित्र और रमणीय है। यहीं श्रीवाल्मीकि मुनि रहते हैं। वे मेरे पिता राजा दशरथ के मित्र हैं। तुम उन्हीं के चरणों की छाया में रह कर उपवास में तत्पर हो, सावधानी से रहो। आप पतिव्रता हैं। हृदय में सदा रामचन्द्र का ध्यान करती रहना। इससे आपका परम कल्याण होगा।

दोहा।

परम दुःख ते वचन यह, कह्यौ लखन सिय पाहिं।
श्रीरघुपति त्यागो तुम्हें, प्रजाप्रेम प्रिय जाहिं॥

---

५८ वाँ सर्ग।

सीता का विलाप और रामचन्द्र के लिए कुछ सँदेशा कहना और लक्ष्मण का लौटना।

लक्ष्मण के मुख से ये दारुण बातें सुन कर जानकी बड़ी दुखी होकर ज़मीन पर गिर पड़ीं। वे क्षण भर अचेत रहकर उठीं और आँखों में आँसू भर कर दीन वाणी से बोलीं—"हे लक्ष्मण! ब्रह्मा ने मेरा शरीर दुःख भोगने के लिए ही बनाया है। देखो, मेरे दुःखों की यह मूर्ति ही देख पड़ती है। मैंने पूर्व जन्म में क्या पाप किया था, और किसका स्त्री से वियोग करवाया था, जिससे शुद्धचरित्रा और पतिव्रता होने पर भी मैं पति से अलग की गई। राम के चरणों की सेवा करने की अभिलाषा से मैंने

पहले भी आश्रम में वास किया था पर अब मैं उनसे अलग आश्रम में कैसे रहूँगी। अब अपने दुःख मैं किससे कहूँगी? मुनियों के सामने अपना कौनसा असत्कर्म बतलाऊँगी कि जिसके कारण महात्मा राघव ने मेरा परित्याग किया! मैं इस गंगाजल में अपने प्राण भी तो नहीं त्याग सकती क्योंकि जो मैं ऐसा करू तो मेरे पति का राजवंश नष्ट हो जाय। हे सौमित्रे! तुम उनकी आज्ञा के अनुसार काम करो। मुझ दुःखभागिनी को यहाँ छोड़ जाओ। अब जो मैं कहती हूँ उसे सुनो। मेरी ओर से हाथ जोड़ कर और चरणों पर माथा झुका कर मेरी सब सासुओं से और फिर महाराज से कुशल पूछना। राजा से यह भी कह देना कि तुम तो ठीक जानते हो कि सीता सर्वथा शुद्ध है और सदा भक्ति में तत्पर होकर तुम्हारे हित ही का काम करती थी। हे वीर! तुमने अपवाद के डर से मेरा त्याग किया है। यदि मुझे त्यागने से आपका अपवाद नष्ट हो जाय तो मुझे स्वीकार है। क्योंकि आप ही मेरे लिए परमगति हैं। उनसे यह भी कहना कि भाइयों के समान पुरवासियों के साथ व्यवहार करना उचित है। यही आपका धर्म है। इसीसे आप उत्तम से उत्तम तीर्थ पावेंगे। धर्म के द्वारा पुरवासियों के साथ व्यवहार करना ही आप का धर्म है। यह भी कह देना कि हे नरश्रेष्ठ! मैं अपने शरीर के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं करती, इसलिए जिस तरह पुरवासियों का अपवाद छूटे वैसा ही आप कीजिए। पति नारी का देवता, बन्धु और गुरु भी है। इस-लिए स्त्री को उचित है कि प्राण देकर भी पति का इष्ट-कार्य करे। हे लक्ष्मण! मेरा यह सँदेशा महाराज को सुना देना। देखलो, मैं इस समय गर्भवती हूँ।"

इस तरह सीता देवी के वचन सुन कर लक्ष्मण बड़े दुखी हो ज़मीन पर सिर रख कर और प्रणाम करके कुछ बोल न सके। वे सीता की प्रदक्षिणा कर ज़ोर से रोने लगे। फिर थोड़ी देर सोच कर बोले—"हे शोभने! तुम मुझसे यह क्या कहती हो। आज तक मैंने तुम्हारे चरणों के सिवा रूप तक को नहीं देखा। अब मैं राम से पृथक् तुमको इस वन में किस तरह देखू।" इतना कह और फिर प्रणाम कर लक्ष्मण नाव पर चढ़ कर मल्लाह से बोले—"नाव को उस पार ले चलो।" उस पार चले जाने पर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे जल्दी रथ पर चढ़ गये, पर बार बार पीछे की ओर फिर फिर कर अनाथ की तरह सीता को देखते थे कि वह बेचारी उस पार छटपटा रही है। जब सीता ने देखा कि रथ दूर निकल गया तब वे और भी अधिक शोक-सन्तप्त हो गईं।

दोहा।

रथ चढ़ि तुरतहिं लखन तब, गमन राम पहँ कीन।
अति दुख व्याकुल सीय तहँ, रोवत वन महँ दीन॥

---

५६ वाँ सर्ग।

सीता का वाल्मीकि मुनि के आश्रम में जाना।

वहाँ बहुत से मुनियों के बालक खेल रहे थे। उन्होंने सीता को रोते देखा। वे तुरन्त दौड़ कर वाल्मीकि मुनि के पास गये और उनके चरण छू कर सीता के रोने का हाल कहने लगे। उन्होंने कहा—"भगवन्! जिसको हमने कभी नहीं देखा, ऐसी किसी महात्मा की स्त्री रो रही है, रूप में वह लक्ष्मी के तुल्य है। हे महर्षे! आप चल कर

उसे नदी के किनारे देखिए। वह तो ऐसी मालूम होती है मानों स्वर्ग से कोई देवी जमीन पर आ पड़ी हो। यद्यपि वह दुःख और शोक के अयोग्य है, फिर भी वह बड़े शोक से व्याकुल है और अनाथ की नाईं अकेली बड़े ज़ोर से चिल्ला रही है। हम तो उसको मनुष्य की स्त्री नहीं कह सकते। आप चलकर उसका सत्कार कीजिए। वह आप के आश्रम के पास ही है। वह बेचारी पतिव्रता शरण में आई है। वह रक्षक चाहती है। आप उसकी रक्षा कीजिए।" उन लड़कों की बातें सुन कर और अपनी बुद्धि से निश्चय कर वे तप के द्वारा ज्ञान-रूपी आँखों से देखनेवाले मुनि मैथिली की ओर चले। उनके साथ साथ शिष्य लोग भी गये। हाथ में अर्घ्य लिये ऋषि थोड़ी ही दूर पर गंगा किनारे जानकी के पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि रामचन्द्र की स्त्री श्रीजनक-दुलारी शोक के मारे बड़ी दुखी हो रही हैं। वाल्मीकि मुनि पास जाकर अपने तेज से महारानी को प्रसन्न करते हुए मधुर वाणी से बोले—"तू दशरथ की पुत्रवधू, रामचन्द्र की प्यारी पटरानी और जनक की पुत्री है। हे पतिव्रते! तेरा स्वागत हो। जब तुम यहाँ आने के लिए तैयार हुई थीं उसी समय मैंने अपनी धर्म समाधि से सब हाल जान लिया था। हमने हृदय में तुम्हारा सब हाल जान लिया। त्रैलोक्य भर की घटनाओं को हम जानते हैं। हे सीते! मैं तपरूपी नेत्रों से तुम्हें पापरहित जानता हूँ। तुम अब निश्चिन्त हो जाओ। आज से तुम्हारा सब भार मेरे ऊपर है। मेरे आश्रम के पास ही बहुत सी तापसी तप किया करती हैं। हे वत्से! वे सब अपनी पुत्री की नाईं तुम्हारा पालन करेंगी। अब यह अर्घ्य लो और मन से सावधान होकर सन्ताप रहित हो जाओ। जिस तरह तुम अपने घर में रहती थीं उसी तरह यहाँ रहो। दुःख छोड़ दो।"

मुनि के ये अद्भुत वचन सुन उनके चरणों की वन्दना कर जानकी ने उनकी बात मान ली। जब मुनि वहाँ से चलने लगे तब सीता भी हाथ जोड़ कर पीछे हो ली। मुनियों की स्त्रियाँ वाल्मीकि जी के पीछे सीता को आती देख आगे बढ़ कर बोलीं—"हे मुनियों में श्रेष्ठ! तुम्हारा स्वागत हो। हम लोगों ने बहुत दिन बाद आपका दर्शन पाया। हम सब आपको प्रणाम करती हैं। आप की जो आज्ञा हो वह हम करें।" मुनि ने कहा—"देखो, यह सीता यहाँ आई हैं। यह राजा रामचन्द्र की स्त्री, राजा दशरथ की पुत्रवधू, और जनक की पुत्री हैं। यह पतिव्रता और पाप-रहित हैं। इन्हें पति ने छोड़ दिया है। अब मैं इनका पालन करूँगा। आप लोग बड़े प्रेम से और मेरे कहने का गौरव मान कर प्रतिष्ठा-पूर्वक इनकी रक्षा करो।" इस तरह मुनि बार बार वैदेही को उन तापसियों को सौंप शिष्यों के साथ अपने आश्रम में चले गये।

---

६० वाँ सर्ग।

सीता के लिए लक्ष्मण का खेद करना और सुमन्त्र का समझाना।

अब सीता को आश्रम में जाती देख कर लक्ष्मण को बड़ा दुख हुआ। वे सुमन्त्र से कहने लगे—"हे सारथे! सीता के सन्ताप का रामचन्द्र को कैसा दुःख होगा। इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है कि उन्हें अपनी शुद्धचरित्रा स्त्री

सीता-परित्याग ।

को छोड़ देना पड़ा। हे सारथे! यह वैदेही का वियोग राजा को दुर्भाग्य से हुआ है, यह मैं निश्चय जानता हूँ। क्योंकि दैव का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। देखो, जो क्रोध से देवता, गन्धर्व, दैत्य और राक्षस आदि को मार सकते हैं वे रामचन्द्र इस समय दैव की उपासना करते हैं। वे पहले पिता के कहने से चौदह वर्ष निर्जन वन में रहे और दुख भोगा किये। परन्तु उससे भी अधिक यह सीता का त्याग-रूप दुख है। हे सुमन्त्र! न्यायविहीन बात कहनेवाले पुरवासियों के कहने से ऐसा यश का नाशक कर्म करना कौनसा धर्म-संग्रह है? मुझे तो यह कर्म घातक समझ पड़ता है।" इस तरह की लक्ष्मण की अनेक बातें सुन कर सुमन्त्र बोले—"हे सौमित्रे! तुम मैथिली के लिए दुख न करो। ब्राह्मणों ने, तुम्हारे पिता के सामने, इस बात का विचार कर निश्चय किया था कि रामचन्द्र प्रायः दुःखभागी और सुख से रहित होंगे। उनका अपने प्रिय लोगों से जल्दी वियोग होगा। बहुत दिन बीत जाने पर राजा तुमको, भरत को तथा शत्रुघ्न को भी छोड़ देंगे। हे सौमित्रे! यह बात तुम किसी से न कहना। यह तुम भरत और शत्रुघ्न तक से न कहना। महाराज दशरथ ने दुर्वासा मुनि से पूछा था कि इन लोगों की कैसी गुजरेगी तब बड़े बड़े लोगों के तथा मेरे और वशिष्ठ मुनि के सामने यह बात ऋषि ने राजा से कही थी। ऋषि की बात सुन कर महाराज ने कहा था कि हे सूत! तुम यह बात किसी से न कहना। इसीसे, उनके मना कर देने से आज तक मैंने वह बात किसी से नहीं कही। क्योंकि इतने बड़े राजा की बात मैं किस तरह न मानता? तुम्हारे सामने भी मुझे कहना उचित न था। परन्तु यदि तुम सुनना चाहते हो तो मैं कहता हूँ। परन्तु तुम भरत या शत्रुघ्न के सामने यह बात न कहना। और न दुःख ही करना।"

सुनि सुमन्त्र के वचन अति, अद्भुत भावि विचारि।
पूछत लक्ष्मण सारथे, कहहु ठीक निरधारि॥

६१वाँ सर्ग।

सुमन्त्र का दुर्वासा ऋषि की कही हुई बात का विस्तार-पूर्वक वर्णन करना।

लक्ष्मण की श्रद्धा देख कर सुमन्त्र कहने लगे—"हे सौमित्रे! पहले समय में अत्रि के पुत्र दुर्वासा वर्षा के चार महीने भर वशिष्ठ के पवित्र आश्रम में जाकर रहे। उसी बीच में तुम्हारे पिता भी वशिष्ठ को देखने के लिए उस आश्रम में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वशिष्ठ के बाईं ओर, तेज से सूर्य की नाईं प्रकाशमान, दुर्वासा मुनि बैठे हुए हैं। महाराज ने दोनों मुनियों को प्रणाम किया। उन दोनों ने भी राजा का स्वागत किया और आसन, पाद्य, फल और मूलों से अतिथि-सत्कार किया। अतिथि-सत्कार पाकर राजा उन लोगों के पास बैठ गये। दोपहर के समय अनेक तरह की मधुर कथाएँ होने लगीं। एक कथा के प्रसंग में राजा हाथ जोड़ कर अत्रि के पुत्र दुर्वासा मुनि से बोले—"भगवन्! मेरा वंश कब तक रहेगा? मेरे राम का आयुर्बल कितना तथा बाक़ी लड़कों का भी कितना होगा? रामचन्द्र के लड़कों का भी जीवन कितना होगा? मेरे वंश का विस्तार किस तरह होगा?" राजा दशरथ की ये बातें सुन कर मुनि ने कहा—हे राजन्! पुराना हाल सुनो—

देवासुर संग्राम में जब देवताओं ने दैत्यों पर आक्रमण किया तब वे भृगु की स्त्री की शरण में गये। उस समय उसने उनको अभयदान दिया और अपने पास ठहरा लिया। तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर अपने चक्र से भृगु की स्त्री का सिर काट लिया। विष्णु का यह कर्म देख कर भृगु मुनि क्रुद्ध होकर बोले— "जब कि तूने मेरी निर्दोष स्त्री का वध किया है इसलिए हे जनार्दन! तू मनुष्य-लोक में अवतार पावेगा। जिस तरह तूने मुझे स्त्री-रहित कर दिया है, उसी तरह बहुत वर्षों तक तुझे भी स्त्री का वियोग सहना पड़ेगा। इस तरह मुनि ने शाप तो दे दिया; परन्तु पीछे से वे इस काम से मन में बड़े दुखी हुए। उनका बड़ी भक्ति से पूजन कर वे उनकी तपस्या करने लगे। कुछ समय के बाद भक्तवत्सल श्रीविष्णु प्रसन्न हुए और लोक के हित के कारण उन्होंने उस शाप को भी स्वीकार कर लिया। हे राजन्! इस तरह भगवान् विष्णु भृगु के शाप से मनुष्य-लोक में आये और आपके पुत्र हुए तथा उनका नाम राम हुआ। वे भृगु के शाप का फल पावेंगे और बहुत समय तक अयोध्या के राजा होंगे। उनके अनुचर सुखी और समृद्ध होंगे। ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य कर फिर वे ब्रह्मलोक में चले जायगे। वे बहुत भारी और बड़ी दक्षिणाओं वाले अश्वमेध यज्ञ करेंगे। उन्हें कोई जीत नहीं सकेगा। वे कई बार बहुत से राजवंशों का स्थापन करेंगे। उनसे सीता में दो पु होंगे।" हे लक्ष्मण! इस तरह मुनि ने राजा के वंश का सब हाल कह सुनाया। फिर वे चुप हो गये। इसके बाद राजा दोनों मुनियों को प्रणाम कर अपनी राजधानी में लौट आये। हे लक्ष्मण! इस तरह मैंने मुनि का वचन सुन कर अपने मन में ही गुप्त रक्खा। वह ऋषि का वचन अन्यथा न होगा। मुनि ने एक बात और भी कही थी। वह यह कि रामचन्द्र सीता के दोनों पुत्रों को अयोध्या में ही राज्य-तिलक देंगे; और कहीं नहीं। इसलिए आप सीता या रामचन्द्र के विषय में कुछ दुख न कीजिए। अपना मन दृढ़ कीजिए क्योंकि होनहार टल नहीं सकती। इस तरह सुमंत्र की अद्भुत बातें सुन कर लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए और 'साधु साधु' कहने लगे।

दोहा।

दोउन के संवाद महँ, भये अस्तमित भान।
केशिनि नगरी महँ भयो, सारग मध्य टिकान॥

---

६२ वाँ सर्ग

लक्ष्मण का राजा को सीता के त्याग का समाचार सुनाना।

अब लक्ष्मण केशिनी नगरी * में रात बिता कर सबेरा होते ही रथ जुतवा कर अयोध्या को रवाना हुए। वे दोपहर को अयोध्या में पहुँच गये। उस समय लक्ष्मण बड़े दीन और दुर्बल हो गये थे। वे मन में यही सोचते थे कि रामचन्द्र के चरणों के पास जाकर मैं कौनसा सँदेसा सुनाऊँगा। इस तरह सोचते सोचते वे राजभवन में पहुँच गये। रथ से उतर कर, नीचे मुँह किये, वे बेरोक टोक भीतर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि महाराज अच्छे आसन पर, दीनमुख किये, आँखों में आँसू भरे बैठे हैं। लक्ष्मण, दीनतापूर्वक चरणों में प्रणाम कर, हाथ जोड़े हुए बोले—"महाराज के आज्ञा-

* कोई कोई इसे नदी लिखते हैं।

नुसार, गंगा के किनारे वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास, शुभाचार-सम्पन्न सीता को छोड़ कर मैं आपके चरणों की सेवा में आ गया। हे पुरुष-व्याघ्र! अब आप शोक छोड़ दीजिए। क्योंकि काल की गति ऐसी ही है। आप जैसे मनस्वी और बुद्धिमान् शोक के वश में नहीं होते। जितने ऊँचे पदार्थ होते हैं वे अन्त में गिरते ही हैं। और सञ्चित का नाश होता ही है। संयोग का अन्त वियोग ही है। जीवन का अन्त मरण ही है। इसलिए एक न एक दिन पुत्रों, कलत्रों, और मित्रों से तथा धन से वियोग होना ही है। हे राघव! आप स्वयं अपने को समझाने और अपने मन से ही मन को धीरज देने के लिए समर्थ हैं। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! आप जैसे महानुभाव ऐसे कामों में मोह नहीं किया करते। अब यदि आप ऐसी दीनता दिखलावेंगे तो फिर नया अपवाद मिलेगा। जिस अपवाद के डर से आपने सीता का त्याग किया वही अपवाद फिर नगर भर में फैल जायगा। (अर्थात् लोग कहने लगेंगे कि पराये घर में रही हुई स्त्री को छोड़ कर अब उसी के लिए रंज मनाते रहते हैं।) इसलिए हे पुरुषशार्दूल! धीरज धरिए और ऐसी दुर्बल बुद्धि का परित्याग कीजिए। आप सन्ताप न कीजिए।"

लक्ष्मण की बातें सुनकर महाराज बड़ी प्रीति-पूर्वक बोले—हे मनुष्यों में श्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम ठीक कहते हो। हे वीर! तुम्हारे कहने से मैंने सन्तोष कर लिया। अब मेरा सन्ताप जाता रहा।

---

६३ वाँ सर्ग।

राज्यकार्य के प्रसंग से राजा नृग की कथा।

लक्ष्मण के वचन सुनकर प्रसन्न हो महाराज ने कहा—"इन दिनों तुम्हारे ऐसे महा बुद्धिमान् और मनोनुसारी भाई का मिलना बहुत दुर्लभ है। अब मेरे हृदय की बात सुनो और उसे करो। आज चार दिन हो गये, मैंने पुरवासियों का कुछ भी काम नहीं किया। इससे मेरे मन में इस बात का भार हो रहा है। तुम कार्यार्थी लोगों को तथा पुरोहित को और मंत्रियों को बुलाओ और मेरे पास भेजो। क्योंकि जो राजा रोज नगरवासियों का काम नहीं करता वह ऐसे भयानक नरक में डाला जाता है जहाँ वायु की भी गति नहीं। सुना जाता है कि प्राचीन समय में नृग नामक राजा था। वह बड़ा यशस्वी, ब्राह्मणों का भक्त, सत्यवादी और पवित्र था। एक बार पुष्कर क्षेत्र में उसने ब्राह्मणों को बछड़ों-सहित सोने से सजा कर एक करोड़ गौएँ दान कर दीं। उनमें एक गाय अपने बछड़े-सहित ऐसी भी दे दी गई जो राजा की न थी। उसका स्वामी एक अग्निहोत्री, दरिद्र और उञ्छजीवी (जो खेत कट जाने के बाद उसमें से दाना दाना बीन कर अपना निर्वाह करते हैं उनको उञ्छजीवी कहते हैं) ब्राह्मण था। यह गाय झुण्ड के साथ चली आई थी। जिसकी गाय खो गई थी वह ब्राह्मण भूख प्यास से पीड़ित हो उसको इधर उधर खोजने लगा। वह अनेक वर्षों तक सब राज्यों में उसे खोजता फिरा, पर गाय का कहीं पता न चला। खोजते खोजते वह हरिद्वार के पास कनखल में पहुँचा। वहाँ उसने एक ब्राह्मण के घर में अपनी गाय को

नीरोग देखा। उसके साथ उसका वह बछड़ा भी था जो अब बड़ा हो गया था। उस ब्राह्मण ने उस गाय का नाम शबला रक्खा था। उसी नाम से उसने वहाँ 'हे शबले! आओ' कह कर उसे बुलाया। उसने उसकी आवाज़ सुन ली। भूखे और अग्नि के तुल्य उस ब्राह्मण की आवाज पहचान कर वह उसके पीछे पीछे चल खड़ी हुई। उस गाय को जिसने इन दिनों पाल रक्खा था वह भी उसके पीछे पीछे चलने लगा और कहने लगा कि यह गाय तो मेरी है। तब उस ब्राह्मण ने कहा—"नहीं, यह गाय मेरी है। राजा नृग ने मुझे यह दी थी।" अब दोनों ब्राह्मणों का परस्पर विवाद होने लगा। वे झगड़ा बखेड़ा करते हुए राजा नृग की राजधानी में गये। द्वार तक तो वे पहुँच गये पर भीतर न जा सके। और न राजा से मिल ही सके। बहुत दिन तक वे राजा से मिलने की आशा में वहीं पड़े रहे। जब भेंट न हुई तब दोनों क्रुद्ध होकर बोले "हे राजन्! तू कामवालों को दर्शन नहीं देता इसलिए तू गिर-गिट होकर ऐसी जगह रहेगा जिससे तुझे कोई न देख सकेगा। तू हज़ारों और सैकड़ों वर्षों तक गड्ढे में गिरगिट होकर पड़ा रहेगा। जब भगवान् विष्णु मनुष्य के शरीर में, वासुदेव नाम से, यदुकुल में अवतार लेंगे तब वे तुझे शाप से छुड़ावेंगे। उसी समय तेरा उद्धार होगा। कलि के आरम्भ में भूमि का भार उतारने के लिए महावीर नर और नारायण अवतार लेंगे।"

शाप देकर वे दोनों शान्त हुए। फिर उस वृद्ध और दुर्बल गाय को उन्होंने किसी ब्राह्मण को दे डाला। इस तरह वह राजा ब्राह्मणों के शाप से गिरगिट की योनि में पड़ा पड़ा शाप का फल भोग रहा है। हे लक्ष्मण! कार्यार्थियों का कलह राजा के दोष को सिद्ध करता है। इसलिए जितने कार्यार्थी हों उन्हें मेरे पास भेजो। अच्छे काम का फल राजा को अवश्य मिलता है।

दोहा।

वेगि जाइ आनहु तिनहिं, मम समीप लघु भाइ।
जेहि बिधि राज-प्रमाद तें, प्रजा काज न नसाइ॥

---

६४ वाँ सर्ग।

राजा नृग की कुछ और कथा।

रामचन्द्रजी के वचन सुन कर लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले—"हे काकुत्स्थ! ऐसे छोटे अपराध के लिए ब्राह्मणों ने राजा को यमदण्ड की भाँति कठोर शाप दिया। हे श्रेष्ठ पुरुष, कृपा कर बतलाइए कि शाप की बात सुनकर राजा ने उन क्रुद्ध हुए दोनों ब्राह्मणों से क्या कहा?" रामचन्द्र ने कहा—"राजा ने कुछ भी नहीं कहा। जब वे ब्राह्मण चले गये तब नृग ने मंत्रियों को, मुखियों को और पुरोहित को बुलाकर बड़े दुःख के साथ कहा कि 'हे भाइयो! नारद और पर्वत, दोनों ऋषि मुझे बड़े भय की बात—ब्राह्मणों के शाप देने की बात—सुना कर बड़े वेग से ब्रह्मलोक को चले गये। अब इस वसु नामक कुमार को राजतिलक देकर मैं उस शाप को काटूँ तो अच्छा है। कारीगर लोग एक बहुत अच्छा सुखदायक गड्ढा खोदें। उसी में रह कर मैं ब्राह्मणों के दिये हुए शाप को भोगूँगा। मेरे लिए तीन बिल बनाये जायँ। एक वर्षा के लिए, दूसरा शीतकाल के लिए और तीसरा गरमी के लिए। वे बिल तीनों ऋतुओं को आराम से बिताने

के योग्य हों। वहाँ फूल फलवाले, तथा छायावाले घने घने वृक्ष लगाये जायँ। उन गड्ढों के चारों ओर रमणीय भूमि बना दी जाय। वहीं मैं शाप के समय तक सुखपूर्वक रहूँगा। चारों ओर दो कोस तक सुगन्धित फूल वाले वृक्ष लगा दिये जायँ।' इस तरह सब बातें बता कर और अपने लड़के को राजगद्दी पर बिठा कर राजा बोले—'हे पुत्र! तुम सदा धर्म में तत्पर रहो। क्षात्रधर्म से प्रजा का पालन करो। देखो तुम्हारे सामने ही मुझे ब्राह्मणों ने शाप दिया। अपराध भी मुझसे साधारण ही हुआ था। हे नरश्रेष्ठ! तुम मेरे लिए सन्ताप मत करो। दैव ही मालिक है। उसी ने मुझे इस दशा को पहुँचाया है। हे पुत्र! जो होने वाला होता है वह अवश्य होता है। जहाँ जाना बदा है वहाँ प्राणी अवश्य जाता है। चाहे सुख हो या दुख, जो भोगना बदा है वह टलता नहीं। पूर्व जन्म के किये हुए कर्म ही इसके कारण हैं। इसलिए हे वत्स! दुःख न करो।' इस तरह अपने पुत्र को समझा बुझा कर राजा उस गड्ढे में चला गया।"

---

६५ वाँ सर्ग।

महाराज का निमि की कथा कहना।

इतनी कथा सुनाकर रामचन्द्र बोले—हे लक्ष्मण! मैंने यह नृग के शाप का समाचार तुमको सुनाया। यदि तुम और भी सुनना चाहते हो तो मैं दूसरी कथा कहता हूँ। उसे सुनो। लक्ष्मण ने कहा—हे राजन्! ये कथायें बड़ी आश्चर्य-कारक हैं। इनके सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती। लक्ष्मण की इच्छा जानकर महाराज ने एक दूसरी कथा छेड़ दी। उन्होंने कहा—

हे लक्ष्मण! इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र धर्मात्मा राजा निमि हुए। राजा ने गौतम मुनि के आश्रम के पास देवपुर के समान सुन्दर एक वैजयंत नामक नगर बसाया। वहीं पर वह रहने लगा। नगर बसा लेने के बाद उनका विचार हुआ कि पिता को प्रसन्न रखने के लिए मैं दीर्घसत्र (बहुत दिन में समाप्त होने वाले) यज्ञ से देवताओं का पूजन करूँ। इस तरह विचार कर अपने पिता, मनु के पुत्र, इक्ष्वाकु नामक राजा से पूछ कर उसने यज्ञ के लिए पहले वशिष्ठ को वरण किया। फिर उसने अत्रि, अंगिरा, और भृगु को भी वरण किया। उस समय वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे राजन्! तुमसे पहले मेरा वरण इन्द्र राजा कर चुके हैं। जब तक मैं उनका यज्ञ पूरा करा कर आऊँ तब तक तुम प्रतीक्षा करो। यह कह कर वशिष्ठ के इन्द्रलोक को चले जाने पर गौतम मुनि ने वशिष्ठ का कृत्य अपने सिर ले लिया। यज्ञ के मुख्य अधिकारी गौतम ही बन गये। उधर वशिष्ठ जाकर इन्द्र का यज्ञ कराने लगे। इधर महाराज निमि ने भी सब ब्राह्मणों को इकट्ठा कर, हिमवान् के पास ही, अपने नगर के समीप यज्ञ में पाँच हजार वर्ष के लिए दीक्षा ली। इन्द्र का यज्ञ समाप्त हो जाने पर महर्षि वशिष्ठ निमि के यहाँ आये। जब उन्होंने देखा कि मेरी जगह पर गौतम काम कर रहे हैं तब वे बड़े क्रुद्ध हुए। परन्तु राजा के दर्शन के लिए वे वहाँ थोड़ी देर ठहर गये। दैववश उसी दिन राजा को नींद सता रही थी—वे नींद के कारण अचेत से हो रहे थे। पर मुनि ने इन बातों की ओर दृष्टि न की। राजा से भेट न होने के कारण

वे क्रुद्ध होकर बोले—"हे राजन्! तूने मेरे आने की बाट न जोही और दूसरे का वरण कर मेरा अपमान किया, इसलिए तेरा शरीर चेतनाहीन हो जायगा।" इतने में राजा जाग गये। वे वशिष्ठ मुनि के दिये हुए श्राप को सुन कर क्रुद्ध हो बोले—"हे ऋषे! अनजान में सोते हुए मुझ पर तुमने क्रुद्ध हो कर, यमदण्ड की भाँति, शापाग्नि फेंकी है, इसलिए तुम भी विदेह हो जाओगे।"

दोहा।

भये परस्पर शाप तें, दोऊ देह विहीन।
तनु विघातहूँ ते न कछु, भयो प्रभाव मलीन॥

---

६६ वाँ सर्ग।

राजा निमि और वशिष्ठ की कथा।

ऐसी कथा सुन, लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले—महाराज! फिर वे दोनों देह-संयुक्त, शरीरधारी, कैसे हुए? रामचन्द्र ने कहा—हे लक्ष्मण! इस तरह परस्पर श्राप के कारण देहहीन होकर वे दोनों वायु-रूप हो गये। उनमें से वशिष्ठ देह-प्राप्ति की इच्छा से अपने पिता ब्रह्मा के पास गये और हाथ जोड़ कर बोले कि 'भगवन्, देवदेव, महादेव, हे अण्डज! मैं तो निमि के श्राप से देहरहित हो गया हूँ। देह न रहने से बड़ा ही दुःख है। क्योंकि देह से ही सब काम हो सकते हैं—देहरहित मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता इसलिए आप मेरी दूसरी देह के लिए कृपा कीजिए। वशिष्ठ की बातें सुनकर पितामह बोले—"तुम जाकर मित्रावरुण के तेज अर्थात् वीर्य में प्रवेश करो। वहाँ भी तुम अयोनिज ही उत्पन्न होगे। महा धर्म से युक्त होकर फिर मेरे वंश में आओगे।' पिता की यह आज्ञा पाकर उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की। उनको प्रणाम कर वशिष्ठ जल्दी से वरुण के घर गये। उस समय मित्रदेवता भी वरुण सहित देवताओं के पूज्य होकर वरुण का राज्य कर रहे थे। इतने में अकस्मात् उर्वशी नामक अप्सरा सखियों के साथ वहाँ आ गई। वहाँ उस रूपवती को क्रीड़ा करते देख कर वरुण ने चाहा कि उसके साथ संभोग करें। परन्तु उसने हाथ जोड़ कर कहा कि 'हे सुरेश्वर! मित्रदेवता ने मुझे पहले से ही कह रखा है, मित्रदेवता के साथ मेरी प्रतिज्ञा पहले ही हो चुकी है।' यह सुनकर काम से पीड़ित वरुण ने कहा—'अच्छा, जो तू मेरे साथ संगम नहीं चाहती तो मैं अपना तेज इस देवनिर्मित घड़े में छोड़ दूँगा। तेरे लिए ऐसा कर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।' लोक-नाथ वरुण की यह बात सुनकर उर्वशी प्रसन्न हो बोली—'बहुत अच्छा, ऐसा ही कीजिए। यद्यपि मेरी देह इस समय वरुण के अधीन है परन्तु मेरा हृदय आपही में है। विशेष करके मेरे मन का भाव आपही के लिए है।' उर्वशी की ये बातें सुन कर वरुण ने अद्भुत और प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान् अपना वीर्य उस घड़े में डाल दिया। उर्वशी वहाँ से मित्रदेवता के पास चली गई। मित्र उसे देखते ही क्रुद्ध हो बोले—अरी दुष्टाचारिणि! तू पहले मुझे स्वीकार कर कहाँ खिसक गई थी? तू ने दूसरा पति क्यों किया? इस पाप के कारण तू मेरे क्रोध से शापित होकर कुछ समय तक मनुष्य-लोक में जाकर रहेगी। हे दुर्बुद्धिनि! बुध के पुत्र राजर्षि काशिराज पुरुरवा के पास तू चली जा। वही तेरा पति होगा।

इस तरह शाप पाकर वह उर्वशी प्रतिष्ठान

नामक नगर में बुध के पुत्र महाराज पुरुरवा के पास चली गई। उससे अप्सरा के गर्भ में आयु नामक पुत्र हुआ जो श्रीमान् और महाबली था। इसी आयु के पुत्र राजा नहुष हुए जो इन्द्र के समान तेजस्वी थे। जब इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर को मारा और आप थक गये तब इन्हीं महाराज नहुष ने इन्द्र के राज्यासन को एक लाख वर्ष तक सँभाला और शासन किया।

दोहा।

मित्रशाप ते उर्वशी, आई भूतल माहिं।
शाप अन्त लों सेइ नृप, गई इन्द्र के पाहिं॥

---

६७ वाँ सर्ग।

राजा और ऋषि की शेष कथा का वर्णन।

ऐसी अद्भुत कथा सुन कर लक्ष्मण ने फिर पूछा—"महाराज! फिर उन दोनों ने देह कैसे पाई?" रामचन्द्र ने कहा—"हे सौमित्रे! वह कुम्भ (घडा) जो मित्रावरुण के तेज से पूर्ण था उसमें से दो तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हुए। पहले तो उसमें से अगस्त्य महर्षि निकले और निकलते ही मित्र से कहने लगे कि मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ। इतना कह कर वे वहाँ से चले गये। हे लक्ष्मण! यह तेज वही था जो उर्वशी के लिए कुम्भ में रक्खा गया था; पर था वरुण-सम्बन्धी। इससे वशिष्ठ उत्पन्न हुए। वे मित्रावरुण के पुत्र कहलाये। यही वशिष्ठ इक्ष्वाकु-वंशवालों के देव कहलाते हैं। जिस समय ये उस घड़े से बाहर हुए उसी क्षण हमारे कुल के हित के लिए इक्ष्वाकु से पुरोहित माने गये। हे सौम्य! यह मैंने वशिष्ठ की देह-प्राप्ति की बात कही। अब निमि की सुनो।

ऋषि लोग महाराज निमि को विदेह देख कर उसी शरीर से दीक्षा पूरी कराने लगे। वे उस देह की गन्ध, फूल, और कपड़ों के द्वारा अनेक तरह से रक्षा करने लगे। फिर यज्ञ के समाप्त होने पर भृगु मुनि ने कहा कि हे पार्थिव! मैं तुम्हारे इस शरीर में चेतना ला दूँगा; क्योंकि मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ। देवता लोग भी प्रसन्न होकर बोले कि हे राजन्! तुम वर माँगो। यह तुम्हारा चेत कहाँ रक्खा जाय? इस तरह देवताओं का वचन सुन कर निमि के चेत ने कहा कि मैं सब प्राणियों के नेत्रों पर रहना चाहता हूँ। यह प्रार्थना सुनकर देवताओं ने कहा कि बहुत अच्छा। तुम वायुरूप होकर प्राणियों के नेत्रों पर विचरोगे। हे पृथ्वीपते! तुम्हारे विचरने से प्राणियों के नेत्र विश्राम के लिये बार-बार ढकेंगे। इतना कहकर सब देवता चले गये। इस के बाद महात्मा ऋषि लोग निमि की देह लाकर पुत्र के लिए उसी देह को अरणी बना कर मंत्रपूर्वक होम के द्वारा मथन करने लगे। मथन करने से एक महातपस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। मथन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण उसका नाम मिथि और जनन से अर्थात् ऋषि लोगों के द्वारा प्रकट किये जाने से उसी का नाम जनक भी हुआ। विदेह से अर्थात् मृत शरीर से निकला इसलिए वैदेह हुआ। इस तरह विदेहराज जनक की पहली उत्पत्ति मैंने कही। उनके वंश के राजा लोग मैथिल कहलाये।

दोहा।

यहि विधि दोउन को कह्यौं, चित्र शाप विस्तार।
पुनि जेहि विधि द्विज तनु लह्यौ, अरु विदेह परिवार

६८ वाँ सर्ग।

ययाति की कथा।

इस तरह अद्भुत कथा सुनकर फिर लक्ष्मण बोले—"यह विदेहाधिपति का हाल और वशिष्ठ मुनि की कथा बड़ी अद्भुत है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि राजा निमि तो क्षत्रिय, शूर, और विशेष करके यज्ञ में दीक्षित थे। तो उन्होंने महर्षि को क्षमा क्यों नहीं किया?" महाराज रामचन्द्र बोले—हे वीर! सब मनुष्यों में क्षमा नहीं देख पड़ती। क्रोध बड़ा दुःसह होता है। देखो, ययाति राजा ने सत्व गुण का अवलम्ब कर क्रोध को उभड़ने नहीं दिया। सुनो, मैं उनकी कथा कहता हूँ—

ययाति राजा नहुष का पुत्र था। वह प्रजा का पालन करने में और उनकी वृद्धि करने में सदा तत्पर रहता था। उसके दो स्त्रियाँ थीं। वे पृथ्वी-मण्डल भर में परम सुन्दरी और अनुपम थीं। उनमें से एक तो वृषपर्वा नामक दैत्य की कन्या थी। उसका नाम शर्मिष्ठा था। वह राजा को बड़ी प्यारी थी। दूसरी शुक्राचार्य की बेटी थी जिसका नाम देवयानी था। यह राजा को उतनी प्यारी न थी। शर्मिष्ठा के पुत्र का नाम पुरु और देवयानी के पुत्र का नाम यदु था। इन दोनों में से पुरु पर राजा की बड़ी प्रीति थी। एक तो वह गुणवान् था, दूसरे प्यारी रानी का कुँवर था। एक दिन दुःखित होकर यदु ने अपनी माता देवयानी से कहा कि हे माता! तू ऐसे सामर्थ्यवान् देवता भार्गव के कुल में उत्पन्न होकर भी ऐसा मानसिक दुःख और ऐसा अनादर सहती है। इससे हे देवि! आओ हम तुम दोनों अग्नि में प्रवेश करें। फिर दैत्य की पुत्री के साथ राजा बहुत दिन तक बेखटके विहार करते रहें। यदि तुम को ऐसा कष्ट सहना हो तो तुम सहती रहो। मुझे आज्ञा दो, मैं तो न सहूँगा। मैं अपना प्राण त्याग करूँगा। इस तरह रोते हुए पुत्र की बातें सुनकर देवयानी क्रुद्ध होकर, ध्यान द्वारा, अपने पिता का स्मरण करने लगी। स्मरण करते ही शुक्र महाराज आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि पुत्री दुःखित, हर्षरहित और अचेत हो रही है। तब पिता बोले—'हे पुत्रि! तेरी यह क्या दशा है?' इस तरह जब उन्होंने कई बार पूछा तब देवयानी क्रुद्ध होकर बोली—'हे मुनिश्रेष्ठ! मैं अग्नि में प्रवेश कर या तीक्ष्ण विष खाकर अथवा जल में डूब कर अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी। अब जीती न रह सकूँगी। तुम नहीं जानते कि मैं बड़ी दुःखित हूँ और अनादर पा रही हूँ। हे ब्रह्मन्! वृक्ष के अनादर से—कटने कुटने से—उसके सहारे रहनेवाले फूलों और फलों का छेदन होता है। मेरा क्या अनादर हुआ, यह अनादर आप का हुआ है। देखिए, यह ययाति राजर्षि मेरा बहुत ही अनादर करता और उत्तम नहीं समझता।' पुत्री के ये दुःख भरे वचन सुनते ही मुनि क्रोध में भर गये। वे ययाति को शाप देने लगे। उन्होंने कहा कि 'तूने मेरा अनादर किया है, इसलिए तुझे बुढ़ापा आ घेरेगा। तू शिथिल हो जायगा।' इस तरह शाप दे कर और देवयानी को समझा करके शुक्र महाराज अपने घर को चले गये।

---

६९ वाँ सर्ग।

ययाति की कथा।

जब राजा ने शुक्राचार्य को क्रुद्ध हुआ सुना तो वे उसी समय दुखी हो गये। बुढ़ापे से घिर कर राजा ने अपने पुत्र यदु से कहा—'हे पुत्र यदो! तू धर्मज्ञ है, इसलिए तू मेरा यह बुढ़ापा ले ले। अपनी जवानी मुझे दे दे तो मैं आनन्द से विहार करूँ। क्योंकि अभी तक मेरा मन विषयों से भरा नहीं है। मैं विषयों का भोग कर फिर तुम को जवानी लौटा कर अपना बुढ़ापा तुम से ले लूँगा।' पिता की ये बातें सुनकर यदु ने कहा—"तुम्हारा प्रिय पुत्र पुरु है। वही तुम्हारा बुढ़ापा ले। मैं तो सब चीजों से और पास रहने से भी अलग रक्खा गया हूँ। तुम्हारा बुढ़ापा वह ले जिसके साथ तुम भोजन करते हो।' यदु के ये तिरस्कार के वचन सुनकर राजा पुरु से बोला—'हे पुत्र! तुम मेरा बुढ़ापा ले लो।' यह सुनते ही पुरु हाथ जोड़ कर बोला—'मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ। मैं आप की आज्ञा मानने के लिए तैयार हूँ।" यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपना बुढ़ापा उसको दे दिया और स्वयं उसका यौवन लेकर सुखविलास करने लगा। उसने हज़ारों वर्षों तक पृथ्वी का शासन करते हुए खूब यज्ञ-याग किये। बहुत दिन बाद राजा पुरु से बोला कि 'मेरा बुढ़ापा मुझे दे दो और मुझसे अपनी जवानी ले लो। तुम्हारे पास मैंने धरोहर की भाँति बुढ़ापा रख दिया था। अब मैं उसे लिये लेता हूँ। तुम दुख न करो। हे महाबाहो! तुमने मेरी आज्ञा मान ली, इससे मैं तुमसे प्रसन्न हो गया। अब मैं तुमको राज्याभिषेक दूँगा।' पुरु से इतना कहकर राजा ने देवयानी के पुत्र यदु से कहा—'रे यदो! तू मुझसे क्षत्रिय रूप दुःसह राक्षस उत्पन्न हुआ। क्योंकि तू मेरी आज्ञा नहीं मानता। आज्ञा न मानने के कारण तू कभी राजा न हो पावेगा। मैं तेरा पिता और गुरु हूँ। फिर भी तूने मेरा अपमान किया, इसलिए तू राक्षसों और दारुण यातुधानों को पैदा करेगा। हे दुर्मते! तू इस सोमवंश में न रह सकेगा। तेरा वंश भी तेरे जैसा ही दुष्टचरित्र वाला होगा।' उसे ऐसा शाप दे और पुरु को राज्यासन दे राजा स्वयं आश्रमवासी हो गया। इसके बाद बहुत समय बीत जाने पर राजा स्वर्गवासी हो गया। पुरु बड़ा धर्मात्मा होकर काशिराज्य प्रतिष्ठानपुर में रहकर राज्यशासन करने लगा। क्रौंच वन के महादुर्गपुर में यदु से हज़ारों यातुधान पैदा हुए। यदु सोमवंश से बहिष्कृत हो गया।

हे सौमित्रे! इस तरह शुक्र का शाप ययाति ने तो अपने क्षत्रिय धर्म से चुपचाप स्वीकार कर लिया; पर निमि से क्षमा न की गई। यह सब पहली कथा मैंने तुमको सुना दी। हमको उचित है कि हम कार्यार्थियों को देखें। ऐसा न हो कि लापरवाही करने से नृग की तरह हम को भी दोषी बनकर उसका फल भोगना पड़े।

दोहा।

कथा कहत इमि रात्रि के, बीति गये सब याम।
अरुण बसन धारण कियो, पूर्वदिशाद्भुत बाम॥

—

[यहाँ से आगे तीन सर्ग प्रक्षिप्त हैं ।]

७० वाँ सर्ग ।

महाराज का व्यवहारासन पर बैठना और एक कुत्ते के व्यवहार का देखना ।

अब सबेरे सब पौर्वाह्णिक कर्म करके महाराज धर्मासन पर बैठ कर राजधर्मों को देखने लगे । वहाँ ब्राह्मण, महाजन, पुरोहित वशिष्ठ और कश्यप ऋषि, व्यवहारज्ञ मन्त्रीगण, धर्मपाठक, नीतिज्ञ, और सभासद सामन्त राजा लोग महाराज की सेवा में तत्पर बैठे हुए थे । उस सभा की ऐसी शोभा हो रही थी जैसी इन्द्र, यम, और वरुण की सभा शोभा पाती है । अब महाराज ने लक्ष्मण से कहा—हे महाबाहो ! तुम जाओ और कार्यार्थियों की देखभाल करो । आज्ञा पाकर लक्ष्मण द्वार पर गये और कार्यार्थियों को पुकारने लगे । परन्तु वहाँ एक भी न बोला कि मेरा कुछ काम है । क्योंकि महाराज के राज्य में आधि और व्याधि किसी को ज़रा भी न सताती थीं । समस्त पृथ्वी अन्न और ओषधियों से भरपूर थी । न बालक, न युवा और न बीच की अवस्थावाला कोई मरता था । क्योंकि महाराज का धर्मशासन ऐसा था कि किसी प्रकार की बाधा प्रजा को पीड़ा नहीं पहुँचा सकती थी । इस तरह के धर्मराज्य में कार्यार्थी कहाँ से दिखाई दें । लक्ष्मण ने इधर उधर ढूँढ़ा पर वैसा अर्थी कोई न मिला, तब वे सभा में आये । हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा कि द्वार पर कोई भी अर्थी नहीं है । फिर रामचन्द्र जी प्रसन्न होकर बोले—"हे लक्ष्मण ! तुम फिर जाओ और कार्य के चाहने वालों को देखो । राजनीति का भली भाँति प्रयोग होने से अधर्म कहीं ठहर नहीं सकता, इसलिए सब राजभय से परस्पर रक्षा करते हैं । देखो राजधर्म, मेरे हाथ से छूटे हुए बाणों की नाईं, प्रजा की रक्षा करते हैं; तो भी तुम उनकी देख-भाल में तत्पर रहो । यह सुन कर लक्ष्मण फिर द्वार पर गये । वहाँ जाकर क्या देखा कि एक कुत्ता खड़ा हुआ लक्ष्मण की ओर देख रहा है और बार बार चिल्लाता तथा रोता है । तब लक्ष्मण बोले—"हे महाभाग ! तुम्हारा क्या काम है ? तुम निडर हो कर हम से कहो ।" उसने कहा—"सब प्राणियों के शरणदाता, अक्लिष्ट कर्म-कर्ता और अभय देने-वाले श्रीरामचन्द्र से मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।" उसकी यह बात सुन कर प्रभु से कहने के लिए लक्ष्मण भीतर गये । प्रभु को उस बात का सँदेशा देकर फिर बाहर आये और कुत्ते से बोले—"तुम को जो कुछ कहना हो वह राजा से कहो ।" कुत्ते ने कहा—"महाराज ! देवमन्दिर, राज्यमन्दिर और ब्राह्मणमन्दिर में अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वायु रहते हैं । हम अधम योनि में पैदा हुए हैं, इसलिए राजा के मन्दिर में नहीं जा सकते । क्योंकि राजा शरीर-धारी धर्म है । श्रीराघव तो सत्यवादी, रणसमर्थ, सब प्राणियों के हित में तत्पर, षाड्गुण्य पद के जाननेवाले, नीति के बनानेवाले, सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हैं । वे ही चन्द्र, वे ही मृत्यु, वेही यम, वे ही कुवेर, और वे ही अग्नि, इन्द्र, सूर्य तथा वरुण हैं । इसलिए हे सौमित्रे ! आप यह हाल उनसे कह दें । वे प्रजापालक हैं । उनकी आज्ञा पाये बिना मैं भीतर नहीं जाना चाहता ।" यह सुन कर लक्ष्मण कृपा-पूर्वक फिर भीतर गये । वहाँ महाराज से बोले—"हे कौशल्यानन्दन ! मेरी प्रार्थना सुनिए जो मैं आप की आज्ञाविषयक कहता हूँ । एक कुत्ता किसी काम

के लिए द्वार पर खड़ा है।" महाराज ने कहा—कार्यार्थी कोई भी हो उसे जल्दी मेरे पास ले आओ।

दोहा।

आनहिं आनहु शीघ्र तुम, अब विलम्ब केहि काज।
कार्यार्थी विमुख न फिरें, होइहि नतरु अकाज॥

———

७१ वाँ सर्ग।

कुत्ते के लिए विचार करना।

प्रभु की आज्ञा सुन कर लक्ष्मण ने उस कुत्ते को लाकर महाराज के पास खड़ा कर दिया। राघव उसे देख कर बोले—"हे सारमेय! तुझे जो कहना हो वह कह; कोई भय न कर।" उस कुत्ते का सिर फटा हुआ था। वह रामचन्द्र की ओर देख कर बोला—"महाराज! राजाही सब प्राणियों का स्वामी और शासनकर्ता है। सब लोगों के सोने के समय राजा ही जागता रहता है। वह इस तरह प्रजा का पालन करता है। अच्छी नीति के द्वारा धर्म की रक्षा करता है। यदि राजा पालन न करे तो प्रजा जल्दी ही नष्ट हो जाय। इसलिए राजाही कर्त्ता, रक्षक, और जगत् का पिता है। वही काल, वही युग और वही सब जगत् है। धारण करने से धर्म है और धर्म ही से प्रजाओं का नियमबन्धन है। वह तीनों लोकों को धारण करता, दुष्टों का निग्रह करता और सज्जनों का अनुराग उत्पन्न करता है, इसलिए वह धर्म कहलाता है। हे राजन्! धर्म ही सब से बढ़ कर है और परलोक में वही फल देने-वाला है। महाराज! मैं समझता हूँ कि इस धर्म से मनुष्य को कोई बात दुर्लभ नहीं है। दान, दया, सज्जनों का सत्कार और व्यवहार में मृदुता—यही इस लोक में और परलोक में भी धर्म है। हे सुव्रत! आप तो प्रमाणों के भी प्रमाण हैं। आपका धर्म तो विदित और सज्जनों से आचरित है। आप धर्मों के घर और गुणों के समुद्र हैं। मैंने जो ये बातें कहीं वे अज्ञान के कारण कहीं। इसलिए मैं प्रणाम-पूर्वक विनय करता हूँ कि आप क्रोध न करें। इस तरह उसकी बातें सुन कर रामचन्द्र बोले—"कहो तुम्हारा काम क्या है? जल्दी कहो मैं अभी उसे पूरा करूँगा।" कुत्ते ने कहा—राजन्! धर्म से राज्य का लाभ होता है और धर्म से ही उसका पालन होता है। धर्म ही से वह शरणागतवत्सल होता है। राजा सब भयों को दूर करता है। यह सब समझ कर मेरा जो काम है वह सुनिए।

"सर्वार्थसिद्ध नामक भिक्षुक एक ब्राह्मण के घर में रहता है। उसने बिना कारण, बिनाही अपराध किये मेरा सिर फोड़ डाला है।" यह सुनते ही महाराज ने द्वारपाल को आज्ञा दी कि "उस भिक्षु को मेरे पास ले आओ।" तब वह उस सर्वार्थसिद्ध पण्डित को ले आया। वह आकर महाराज से कहने लगा—"प्रभो! मेरा क्या काम है?" राघव ने कहा—"तुमने इस कुत्ते को मारा है। तुम्हारा इसने क्या अपराध किया था, जो लाठी से तुमने इसे मारा? हे भिक्षो! सुनो। क्रोध प्राणहारी शत्रु है। क्रोध ही मित्र के समान प्रियभाषी वैरी है। क्रोध बड़ी ही तेज़ तलवार है। क्रोध सब का सार खींच लेता है। देखो, तप, यज्ञ, और दान—इन सब को क्रोध हर लेता है। इस-लिए क्रोध को छोड़ देना चाहिए। देखो, ये इन्द्रियाँ बड़ी दुष्ट हैं। बड़े दुष्ट घोड़ों की नाईं ये इधर उधर दौड़ा करती हैं। प्राणी को चाहिए कि सारथि की

तरह, धीरता से उनको रोके। यथेष्ट विषयों की ओर न दौड़ने दे। मन, कर्म, वाणी और नेत्रों से लोगों का कल्याण करता रहे। द्वेष बुद्धि को छोड़ दे। ऐसा करने से कर्मबन्धन से वह बद्ध न होगा। देखो, तेज़ तलवार, पैर से कुचला हुआ साँप, और नित्य क्रोध करने वाला शत्रु तक वैसा अपकार नहीं कर सकता जैसा अपकार दुराचार से बिगड़ा हुआ आत्मा करता है। शास्त्रों को पढ़कर जिसने नम्रता और सुशीलता सीखी हो, यदि वह उसके बल से अपनी प्रकृति को छिपाना चाहे तो प्रकृति छिप नहीं सकती। क्योंकि शास्त्राध्ययन प्रकृति को बदल नहीं सकता। वह काम पड़ने के समय प्रकट हो जाती है। कार्य आ पड़ने पर वह ध्रुव प्रकृति निश्चय स्पष्ट देख पड़ती है।" यह सुन कर भिक्षु ने कहा—"राजन्! मैंने इसे मारा है, इसमें सन्देह नहीं। सुनिए, मैं इसका कारण कहता हूँ। मैं भिक्षा के लिए घूम रहा था और भिक्षा का समय निकल गया था। यह गली के बीच में बैठा था। मैंने इस से कई बार कहा कि हट जा। यह वहाँ से उठ कर अपने इच्छानुसार चल कर फिर गली के अन्त में विषम जगह में खड़ा हो गया। मुझे भूख तो सता ही रही थी। क्रोध के मारे मैं इसे मार बैठा। महाराज! अब मुझ अपराधी को जो दण्ड उचित हो वह दीजिए। क्योंकि आप से दण्ड पाकर फिर मुझे नरक का भय न रहेगा।" यह सुन कर रामचन्द्रजी ने सभासदों से पूछा कि क्या करना चाहिए—इसके लिए क्या दण्ड है? क्योंकि शास्त्रानुसार दण्ड देने से प्रजा की रक्षा होती है। उस समय उस सभा में भृगु, अंगिरा, कुत्स आदि बड़े बड़े ऋषि; भगवान् वशिष्ठ, कश्यप, मुख्य मुख्य धर्मपाठक; मन्त्रि गण और बड़े बड़े महाजन लोग, तथा और और भी पण्डित लोग वहाँ बैठे थे। वे कहने लगे—"महाराज! दण्डों के द्वारा ब्राह्मण अवध्य है, वह मारने के योग्य नहीं है। शास्त्रकारों ने ऐसा ही माना है।" इस तरह तो राजधर्माधिकारियों ने कहा और मुनि लोगों ने कहा—"महाराज! आप केवल भूमण्डल ही के नहीं किन्तु तीनों लोकों के राजा और शासनकर्त्ता हैं। क्योंकि आप सनातन साक्षात् विष्णु हैं।" इस तरह वे लोग कह रहे थे कि वह कुत्ता कहने लगा—"राजन्! आप यदि प्रसन्न हैं और मुझे वर देना ठीक समझें तो मेरा मनोरथ सिद्ध कीजिए। क्योंकि आपने पहले ही प्रतिज्ञा वचन कहा था कि मैं तेरे लिए क्या करूँ। अब यही मेरा मनोरथ है कि इस भिक्षु को कालञ्जर देश का (कुलपति) महन्त या चौधरी बना दीजिए।" यह सुनते ही महाराज ने उसको महन्त बनने का अभिषेक कर दिया। वह ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। हाथी पर चढ़ाकर राजा की ओर से उसकी प्रतिष्ठा की गई। यह आश्चर्य-कारक काम देख कर रामचन्द्र के मन्त्री लोग कुछ मुसकरा कर बोले—"महाराज! इसको तो दण्ड के बदले यह वर दिया गया।" यह सुन कर महाराज ने कहा—"तुम लोग इस बात का तत्त्व नहीं जानते। इसका कारण कुत्ता ही जानता है।" यह कह कर महाराज ने उस से उसका कारण पूछा। तब उसने कहा—"राजन्! सुनिए। मैं पूर्वजन्म में उसी जगह का चौधरी (कुलपति) था। मेरा यह काम था कि मैं देवता और ब्राह्मणों के सत्कार के विषय में दासी और दासों का पालन करता और विभाग के अनु-

सार उचित अन्न दे कर उनका पोषण करता था। मैं उन्हीं की भलाई में लगा रह कर देवताओं की चीज़ों की रक्षा करता था। उसी में से बचे हुए अन्न से मैं भी अपना पेट भरता था। महाराज! मैं नम्रता, सुशीलता और सब प्राणियों का हित करने में तत्पर रहने पर भी इस घोर और अधम गति के प्राप्त हुआ हूँ। फिर यह ब्राह्मण—जो क्रोधी, धर्मरहित, अहितकारी, हिंसक, रूखा बोलनेवाला, निठुर, मूर्ख और अधर्म करने में लगा हुआ है—यह सात पीढ़ी मातृकुल और सात पीढ़ी पितृकुल के नरक में ले जायगा। प्रभो! कैसी भी विपत्ति की दशा हो तो भी (कुलपति का काम) चौधरीपन न करे। हे पृथ्वीनाथ! जिसको पुत्र, पशु और बन्धुओं सहित नरक में गिराना चाहे उसको देवताओं, गायों और ब्राह्मणों का अधिष्ठाता (चौधरी) बनावे। हे सर्वज्ञ! ब्राह्मण, देवता, स्त्री, और बच्चों को जो धन दे दिया गया है उस धन को जो फिर छीन लेता है वह अपने इष्ट पदार्थों सहित नष्ट हो जाता है। हे राघव! ब्राह्मण और देवता का धन बहुत ही जल्दी प्राणी को अवीचि नामक नरक में डालता है। मैं कहाँ तक कहूँ, जो लोग मन से भी ऐसा काम करते हैं वे नराधम भी उत्तरोत्तर एक नरक से निकाल कर दूसरे में डाले जाते हैं।" यह सुन कर राघव की आँखें प्रसन्न मालूम होने लगीं। कुत्ता जहाँ से आया था वहाँ चला गया। पहले समय में वह कुत्ता उत्तम जाति का था। परन्तु इस जन्म में वह केवल निकृष्ट जाति में पैदा होने से दूषित था। वह वहाँ से गया और काशी में जा कर शरीर-त्याग के लिए अन्नजल का त्याग कर व्रत करने लगा।

दोहा।

जानि बूझि सर्वज्ञ प्रभु, सुनत लोक व्यवहार।
मायानट धरि मनुज तनु, करत सुचरित उदार॥

——

७२ वाँ सर्ग।

महाराज के पास गीध और उल्लू की नालिश।

वहीं एक वन था। वह बड़ा रमणीय और वृक्षों से सुशोभित था। उस वन में नदी के तीरों पर कोयलें कूकती थीं; सिंह व्याघ्र आदि भरे पड़े थे और पर्वत पर तरह तरह के पक्षी थे। बहुत दिन से उसमें एक गीध और उलूक रहता था। एक दिन गीध के मन में कुछ पाप समा गया। वह उलूक के घर जाकर कहने लगा कि "यह तो मेरा घर है।" यह कह कर वह उस के साथ झगड़ा करने लगा और बोला—"कमललोचन श्रीराघव सब के राजा हैं। चलो, हम तुम उन के पास चलें। वे जिसका यह मकान बतला देंगे उसी का हो जायगा।" यह निश्चय करके क्रोध में भरे हुए वे दोनों रामचन्द्र के पास आये। वे झगड़ा करने के कारण घबड़ाये हुए थे। दोनों ने आकर महाराज के चरण छुए। पहले गीध बोला—"हे भगवन् राजन्! मेरी समझ में आप देवता और असुर दोनों के प्रधान हैं। वशिष्ठ और शुक्र दोनों से अधिक आप प्राणियों के पूर्वापर को जानते हैं; कान्ति में आप चन्द्र, सूर्य की नाईं दुर्निरीक्ष्य हैं; गुरुता में आप हिमवान् पर्वत और गम्भीरता में समुद्र हैं। प्रभाव में आप लोकपाल के तुल्य, क्षमा में पृथ्वी के समान, और शीघ्रता में वायु

के तुल्य हैं। आप सबके गुरु, सर्वसम्पन्न और कीर्तियुक्त हैं। आप क्रोध न करनेवाले, दुर्जय, जीतनेवाले और सब अस्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। हे नरश्रेष्ठ! मेरी प्रार्थना सुनिए। पहले मैंने अपने बाहुबल से घर बनाया था। अब यह उलूक उसे लेना चाहता है। राजन्! इस कष्ट से आप मुझे बचाइए।" जब गीध कह चुका तब उलूक बोला—

"हे राजन्! चन्द्रमा, इन्द्र, सूर्य, कुवेर और यम इन देवताओं से राजा की उत्पत्ति है। परन्तु उसमें थोड़ासा मनुष्यत्व भी रहता है। आप तो सर्वमय साक्षात् नारायण देव हैं। हे प्रभो! आप में सौम्यभाव दिखाई पड़ता है, इसलिए आप सोमांश हैं। आप का व्यवहार सब में समरूप से है। हे प्रजानाथ! आप क्रोध में, दण्ड में, दान में, पाप और भय के दूर करने में, दाता, हर्त्ता, और रक्षक हैं। इसलिए आप हमारे इन्द्र हैं। महाराज! आप सब प्राणियों के अधृष्य और तेज में अग्नि के तुल्य हैं। आप सदा लोकों पर तपते हैं, इसलिए आप सूर्य के तुल्य हैं। आप साक्षात् कुवेर के तुल्य, अथवा उनसे भी अधिक हैं। क्योंकि लक्ष्मी सदा कुवेर के तुल्य आपकी आश्रिता है। धनद का काम करने से आप हमारे धनद हैं। हे राघव! आप स्थावर और जंगमात्मक प्राणियों में समरूप हैं; शत्रु और मित्र में आप की दृष्टि एकसी रहती है; आप सब को एक नज़र से देखते हैं। आप नित्य धर्मानुसार शासन और क्रमपूर्वक व्यवहार करते हैं। हे राम! आप जिस पर क्रोध करते हैं उस पर मानों मृत्यु दौड़ती है। इसी से आप महा पराक्रमशाली यमराज कहे जाते हैं। आप का मनुष्यभाव कृपालुता से पूर्ण है। प्राणियों पर आप बड़ी क्षमा रखते हैं। इसलिए आप दयालु राजा हैं। हे भगवन्! दुर्बल और अनाथ के लिए राजा ही बल रूप, बिना आँख वाले के लिए राजा ही आँख रूप तथा जिसकी कोई गति नहीं उस को राजा ही गति रूप होता है। आप हमारे नाथ हैं इसलिए हमारा निवेदन श्रवण कीजिए। मेरी प्रार्थना है कि यह गीध मेरे घर में घुस कर मुझे सताता है। आप देवताओं और मनुष्यों के शासक हैं।"

दोनों की बातें सुन कर महाराज ने अपने सचिवों को बुलाया। धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राष्ट्रवर्द्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमंत्र—ये आठ रामचन्द्र के और महाराज दशरथ के भी दीवान थे। ये सभी नीति जाननेवाले, महात्मा, सब शास्त्रों के ज्ञाता, बुद्धिमान्, कुलीन और नीति में तथा विचार करने में बड़े निपुण थे। इन सब को बुलाकर और आप पुष्पक नामक राज्यासन से उतर कर दोनों के विवाद के विषय में पूछने लगे। पहले गीध से पूछा—कितने वर्ष से वह तुम्हारा घर है। इस का ठीक ठीक हाल हमको बतलाओ। जो तुम ठीक ठीक जानते हो वही कहो। गीध ने कहा— महाराज! सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए लोगों से जब यह पृथ्वी चारों ओर भर गई तभी से यह मेरा घर है। इसके बाद उलूक से भी वही बात पूछी गई। उसने भी कहा—"महाराज! जिस समय यह पृथ्वी वृक्षों से भर गई थी उसी समय से यह मेरा घर है।" दोनों का कथन सुन कर रामचन्द्रजी ने सभासदों से कहा—"देखो, उस सभा को सभा न कहना चाहिए जिसमें वृद्ध लोग न हों और वे वृद्ध लोग वृद्ध नहीं हैं जो धर्मानुसार बात न कहें। वह धर्म भी धर्म नहीं है जिसमें

सत्य न हो और छल से मिला हुआ सत्य सत्य नहीं है। जो सभासद जानबूझ कर चुपचाप ध्यान लगाये बैठे रहते हैं और ठीक ठीक बात नहीं कहते वे सब झूठे हैं। काम से या क्रोध से अथवा भय से जो जानबूझ कर भी प्रश्नों का उत्तर नहीं देते वे हज़ार वर्ष तक वरुण के पाशों का दण्ड अपने ऊपर लेते हैं। एक वर्ष पूरा होने पर उनका एक पाश छूटता है। इसलिए यदि उत्तर ठीक ठीक समझ में आ गया हो तो सत्य सत्य बोलना चाहिए। यह सुन कर मन्त्री लोग बोले—"महाराज! इन दोनों में से उलूक की बात ठीक मालूम होती है, गीध की नहीं। इसमें आप प्रमाण रूप हैं। क्योंकि राजा सबके ऊपर परमगति रूप है। सब प्रजा का मूल राजा ही है। राजा ही सनातन धर्म है। जिन मनुष्यों का शासन राजा करता है वे दुर्गति नहीं पाते।" रामचन्द्र बोले—सुनो। अब मैं पुराणों की बात कहता हूँ।

देखो, आरम्भ में चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों सहित आकाश, पर्वत और महावनों के सहित यह पृथ्वी, चर और अचर सहित ये तीनों लोक महा समुद्र के जल में डूबे हुए एक राशिभूत मेरु के समान थे। लक्ष्मी और यह सब भगवान् विष्णु के उदरमें था। इस सब को लिये हुए वे समुद्र में वर्षों तक सोते रहे। इनके सोने पर, चारों ओर से जल के सोतों को रुका हुआ देख कर, महायोगी ब्रह्मा विष्णु के गर्भ में घुस गये। फिर विष्णु की नाभि से सुवर्ण-भूषित एक कमल पैदा हुआ। उसमें से योग बल से ब्रह्मा निकले। उन्होंने पृथ्वी, वायु, पर्वत और वृक्ष एवं मनुष्य, साँप, जरायुज और अण्डजों को तपस्या करके रच दिया। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ उत्पन्न हुए। ये दोनों दानव बड़े बहादुर, घोर रूप और बड़े दुर्लंघ्य थे। वहाँ ब्रह्मा को देखकर वे बड़े क्रुद्ध हुए। वे उनको खाने के लिए दौड़े। उस समय उनको देखकर ब्रह्मा बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे। विष्णु ने इनका शब्द सुन लिया और उठ कर अपने चक्र से उन दोनों को मार डाला। उन दोनों की चरबी से यह सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई। फिर विष्णु ने इसको शुद्ध कर वृक्षों और वनस्पतियों से भर दिया। फिर इसमें तरह तरह के अन्न उत्पन्न हुए। यह पृथ्वी मेद (चरबी) के गन्ध से भर गई थी इसी से इसका नाम मेदिनि रखा गया। इसलिए मेरी समझ में वह घर गीध का नहीं हो सकता। वह उलूक का ही है। अतएव गीध को सज़ा देनी चाहिए। क्योंकि यह पापी दूसरे का घर छीनना चाहता है। यह उलूक को सताता है। यह बड़ा धृष्ट है। इस तरह रामचन्द्रजी आज्ञा दे ही रहे थे कि यह आकाशवाणी हुई—"हे रामचन्द्र! इस गीध को मत मारो। यह तो तपोबल से पहले ही भस्म हो चुका है। सुनिए, यह गीध पहले ब्रह्मदत्त नामक शूर, सत्यव्रत, और पवित्र राजा था। इसको कालगौतम ऋषि ने शाप से दग्ध कर दिया था। इसका कारण यह था कि एक दिन महर्षि इस राजा के घर आये। उन्होंने कहा कि कुछ अधिक सौ वर्ष तक मैं आपके यहाँ भोजन करूँगा। ब्रह्मदत्त ने यह बात स्वीकार कर ली। फिर पाद्यअर्घ्य से मुनि का सत्कार कर उसने उनके लिए भोजन तैयार कराया। उस भोजन में मांस था। उस मांस को देखकर मुनि कुपित हुए। उन्होंने राजा को बड़ा भयङ्कर शाप दिया कि तुम गीध हो जाओगे। उस समय राजा कहने लगा

कि हे महाव्रत! मुझसे यह बिना जाने हो गया है। मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिए। शाप का अन्त कीजिए। मुनि ने वह बात समझ कर राजा से कहा कि हे राजन्! इक्ष्वाकुवंश में महायशस्वी राम नामक राजा होंगे। उनके छूने से तुम शाप से छूट जाओगे।" यह आकाश-वाणी सुन कर रामचन्द्र ने उसका स्पर्श किया। छूते ही वह गीध का रूप त्याग कर दिव्य गंध लगाये हुए दिव्यरूपधारी हो गया। फिर वह रामचन्द्र से बोला—"हे धर्मज्ञ, राघव! आपके छूने से मैं घोर नरक से छूट गया। आपने मेरे शाप का अन्त कर दिया।"

दोहा।

गृध्र रूप ते दिव्य वपु, लहि करि प्रभुहि प्रणाम।
चढ़ि विमान हर्षित हृदय, गयो इन्द्र-पुर धाम॥

---

७३ वाँ सर्ग।

लवणासुर के वध के लिए ऋषि लोगों का आना।

इस प्रकार रामचन्द्र और लक्ष्मण प्रजापालन करने लगे। अब वसन्त काल की रात आ पहुँची, जो न ठंडी थी और न गरम। एक दिन प्रातःकाल महाराज स्नान और संध्योपासन आदि सवेरे के कृत्य करके, पुरवासियों के कामों को देखने के लिए धर्मासन पर आ बैठे। उस समय सुमन्त्र ने आकर उनसे कहा—"हे राजन्! तपस्वी लोग द्वार पर रुके हुए खड़े हैं। भार्गव और च्यवन ऋषि उनके आगे हैं। वे आपका दर्शन जल्दी करना चाहते हैं। हे नरव्याघ्र! वे सब ऋषि यमुना-किनारे के रहने वाले हैं।" महाराज ने कहा—"अच्छा, भार्गव आदि सब ब्राह्मणों को यहाँ लिवा लाओ।" प्रभु की आज्ञा पाकर मन्त्री ने उन तेजस्वी ब्राह्मणों को महाराज के सामने पहुँचा दिया। अपने तेज से प्रकाशमान् सौ से अधिक ब्राह्मणों ने राजभवन में प्रवेश किया। वे सब तीर्थों के जलों से भरे हुए कलश और तरह तरह के फल फूल प्रभु के आगे भेंट में रखने और मधुर वचन बोलने लगे। उन भेंटों को लेकर महाराज प्रसन्न हुए और बोले—"हे ऋषियो! आप लोग इन आसनों पर बैठ जाइए। यह सुन कर वे सब, सोने के बने हुए और मुनियों के बैठने के मनोहर वृषि नामक आसनों पर बैठ गये। फिर रामचन्द्रजी हाथ जोड़ कर बोले—"आप लोगों के आने का क्या कारण है? बतलाइए मैं आपका क्या हितकारी काम करूँ, मैं तो आप लोगों का आज्ञाकारी हूँ। जो काम हो सो करूँ। मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि यह सम्पूर्ण राज्य और हृदय में ठहरा हुआ मेरा जीवन भी सब कुछ ब्राह्मणों के ही लिए है।" ब्रह्मण्यदेव रामचन्द्र की यह बात सुन कर चारों ओर से ऋषि लोग वाह वाह करने और कहने लगे—हे नरश्रेष्ठ! भूमण्डल में यह बात आप ही में पाई जाती है, दूसरे में नहीं। क्योंकि बहुत से राजा काम की अधिकता देख कर उत्तर भी नहीं दे सके; प्रतिज्ञा की कौन कहे। आपने तो ब्राह्मणों के गौरव से, कारण जाने बिना ही प्रतिज्ञा कर दी। इसलिए हम लोगों को भरोसा हुआ कि आप हमारा काम अवश्य करेंगे। आप ऋषियों को बड़े डर से जरूर छुड़ावेंगे।

---

७४ वाँ सर्ग।

लवणासुर का वृत्तान्त।

फिर रामचन्द्र बोले—"हे ऋषियो! कहिए, आप का क्या काम है? आप का भय अभी दूर हो।" भार्गव मुनि बोले—हे राजन्! देश का तथा हमारे भय का जो मूल कारण है उसे सुनिए। सतयुग में बड़ा बुद्धिमान् मधु नामक दैत्य हुआ। वह किसी दैत्य की लोला नामक स्त्री का बड़ा लड़का था। वह बड़ा ब्राह्मणभक्त, रक्षक और स्थिर बुद्धि का था। इसीसे बड़े उदार देवताओं से उसकी अतुल प्रीति थी। वह बड़ा शूर और धर्मनिष्ठ था इसलिए भगवान् रुद्र ने बड़े आदर से उसे एक अद्भुत वरदान दिया। अपने शूल में से एक शूल उत्पन्न कर बड़ी प्रसन्नता से उसे देकर उन्होंने यह बात कही कि 'हे मधो! तुमने अतुल धर्म किया है! इससे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। इस कारण मैं बड़ी प्रीति से तुझे यह शस्त्र देता हूँ। हे महासुर! जब तक तुम देवों और ब्राह्मणों से वैर न करोगे तब तक यह तुम्हारे पास रहेगा अन्यथा तुम्हारे पास से नष्ट हो जायगा। जो तुम से युद्ध करने को तैयार होगा उसे यह शूल भस्म कर फिर तुम्हारे हाथ में चला आवेगा।' इस तरह रुद्र से वरदान पाकर वह दैत्य महादेव को प्रणाम कर कहने लगा कि 'भगवन्! मैं चाहता हूँ कि यह अनुपम शूल मेरे वंश में सदा बना रहे। आप देवों के देव हैं। इतना और वर दीजिए।' यह उसका कथन सुन कर सर्वभूतपति शिवजी बोले—'यह बात न होगी। परन्तु मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, इसलिए तुम्हारी बात को मैं व्यर्थ न करूँगा। तुम्हारे एक पुत्र के

लिए भी यह शूल बना रहेगा। जब तक यह शूल तुम्हारे पुत्र के हाथ में रहेगा तब तक वह किसी से न मारा जायगा।' ऐसा अद्भुत वर पाकर मधु ने बहुत प्रकाशमान् अपना घर बनवाया। उसकी स्त्री कुम्भीनसी उसे बड़ी प्यारी थी। वह विश्वावसु से अनला में उत्पन्न हुई थी। उसका पुत्र लवण नामक हुआ। वह बड़ा कठोर था। वह लड़कपन से ही दुष्ट था और पाप कर्म ही किया करता था। ऐसे दुराचारी पुत्र को देख कर मधु बहुत ही कुपित हुआ, पर पुत्र से कहा कुछ भी नहीं; केवल शोक करता रहा। फिर कुछ दिन बाद वह इस लोक को छोड़ कर समुद्र में घुस गया। परन्तु जाने से पहले मधु ने अपने पुत्र को शूल देकर वर का सब हाल सुना दिया था। अब वह लवण शूल के प्रभाव से और अपने दुराचारी स्वभाव से तीनों लोकों को, और विशेष कर तपस्वियों को, सता रहा है। हे काकुत्स्थ! इस तरह का वह लवणासुर है और उसके शूल का ऐसा प्रभाव है। यह सब हाल सुन कर आप जैसा चाहें वैसा करें। क्योंकि आप ही हमारे परम आश्रय हैं। इससे पहले ऋषि लोग बहुत से राजाओं की शरण में हो आये परन्तु रक्षक किसी को न पाया। हमारी रक्षा करने के लिए कोई भी तैयार न हुआ। जब हम लोगों ने सुना कि परिवार सहित रावण मारा गया तब हम को आशा हुई कि रामचन्द्र हमारा भय दूर करेंगे। इसलिए अब आप से यही प्रार्थना है कि लवणासुर के भय से हमको बचाइए।

---

७५ वाँ सर्ग।

लवणासुर के मारने के लिए शत्रुघ्न की प्रतिज्ञा।

इस तरह ऋषि लोगों की प्रार्थना सुनकर महाराज हाथ जोड़ कर बोले—"वह असुर क्या खाता है, कैसा आचरण करता है और कहाँ रहता है?" ऋषियों ने कहा—"वह प्राणिमात्र को और विशेषकर तपस्वियों को खाता है। उसका आचरण बड़ा भयानक है, और वह मधुवन में रहता है। वह रोज़ कई हज़ार सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और मनुष्यों को मार मार कर खाता है; और भी बहुत से जंगली जीवों को मार मार कर खाया करता है। जैसे संहार के समय मृत्यु मुँह फाड़ कर जीवों को भक्षण करती है वैसी ही दशा उसकी है।" इस तरह उसका सब हाल सुनकर महाराज बोले—मैं उसे जरूर मरवाऊँगा। आप लोग डरिए नहीं।

इस तरह प्रतिज्ञा कर के रामचन्द्रजी अपने भाइयों से बोले—"भाई लवणासुर को कौन मारेगा? वह किसके हिस्से में किया जावे? भरत के या शत्रुघ्न के?" यह सुन कर भरत जी बोले—"मैं उसे मारूँगा। वह मेरे हिस्से में किया जावे।" इस प्रकार धैर्य और शौर्ययुक्त भरत के वचन सुन कर शत्रुघ्न सोने के सिंहासन से उतर पड़े और महाराज को प्रणाम कर बोले—"हे प्रभो! भरतजी अपना काम कर चुके हैं। क्योंकि जब आप वनवास में थे तब इन्होंने अयोध्या की रक्षा की थी। इन्होंने आपके आने के विषय में सन्तप्त हो अनेक दुःख भोगे। देखिए, ये नन्दिग्राम में कष्टदायक स्थान पर सोये; फल-मूल का इन्होंने भोजन और जटा-चीर धारण किया। ये इस तरह के दुःख सह चुके हैं। इनका सेवक मैं तैयार हूँ, अब ये और कष्ट न उठावें।" रामचन्द्रजी ने कहा—बहुत अच्छा। अब तुम हमारे कहने पर चलो। सुनो, तुमको मैं मधु के नगर का राजा बनाऊँगा। यदि तुम भरत को यहाँ रखना चाहते हो तो उन्हें यहीं रहने दो। देखो, तुम शूर हो, विद्वान् हो और नगर बसाने में समर्थ हो। इसलिए यमुना के किनारे नगर और सुन्दर देश बसाओ। क्योंकि जो किसी राजा को उखाड़ कर उसके प्रदेश में राज्य का प्रबन्ध नहीं करता वह नरक में जाता है। इसलिए तुम उस मधु के पुत्र पापी लवणासुर को मार कर धर्मानुसार राज्य का पालन करो। यदि मेरा कहना मानते हो तो ऐसा ही करो। हे शूर! मेरा कथन सुन कर कुछ उत्तर न देना। क्योंकि छोटे को अपने बड़े भाई की आज्ञा अवश्य माननी चाहिए। वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों के हाथ से अभिषेक कराओ।

---

७६ वाँ सर्ग।

शत्रुघ्न को रामचन्द्र का समझाना।

रामचन्द्र की यह आज्ञा सुन कर शत्रुघ्न बड़े लज्जित हुए और धीरे धीरे बोले—"हे काकुत्स्थ! मैं तो इस बात में अधर्म समझता हूँ। क्योंकि बड़े भाइयों के रहते हुए छोटा भाई अभिषेक के योग्य किस तरह हो सकता है? परन्तु हे पुरुषर्षभ! आपकी आज्ञा का उल्लङ्घन कौन कर सकता है? उसे कौन टाल सकता है? इसलिए उसका पालन अवश्य ही करना पड़ेगा। आपसे मैंने शिक्षा सुनी और वेदों से भी यही बात पाई जाती है। इसलिए

मैं कुछ भी उत्तर न दूँगा। देखो, भरत प्रतिज्ञा कर चुके थे। इसी बीच मैं बोल उठा कि लवण को मैं मारूँगा। उस घोर दुर्वचन का मुझे यह दुर्गतिरूप फल मिला। परन्तु बड़े भाई के कथन का उत्तर न देना चाहिए। क्योंकि उत्तर देने में अधर्म होता है और परलोक बिगड़ता है। ऐसा न हो कि उत्तर देने से मैं दूसरे दण्ड का भी भागी हो जाऊँ। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए। परन्तु राज्याभिषेक कराने में मुझे जो कुछ अधर्म होगा उससे मुझे बचाइएगा।" इस तरह शत्रुघ्न की स्वीकृति के वचन सुन कर भरत और लक्ष्मण से महाराज बोले—"जाओ, अभिषेक की सामग्री ले आओ। मैं इसी समय इनका अभिषेक कराऊँगा। मेरी आज्ञा से पुरोहित को, बड़े बड़े आदमियों को, ऋत्विजों और मंत्रियों को बुला लाओ।" आज्ञा पाते ही पुरोहित को आगे करके अभिषेक का सब सामान लेकर राजा और ब्राह्मण राजभवन में आये। अब शत्रुघ्न का अभिषेक होने लगा। इससे रामचन्द्र को और पुरवासियों को ख़ूब आनन्द हुआ। अभिषेक हो जाने पर शत्रुघ्न सूर्य की नाईं शोभा पाने लगे। जैसे इन्द्र आदि देवताओं के अभिषेक करने पर स्कन्द की शोभा हुई थी उसी तरह वे सुशोभित हुए। पुरवासी लोग और बहुश्रुत ब्राह्मण लोग बड़े प्रसन्न हुए। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा और और राजस्त्रियाँ सब मङ्गलाचार करने लगीं। शत्रुघ्न का अभिषेक होने से यमुना के किनारे रहनेवाले ऋषियों ने यह निश्चय कर लिया कि अब लवणासुर मारा गया। इसके बाद अभिषेक पाये हुए शत्रुघ्न को गोद में उठाकर उनका तेज बढ़ाते हुए रामचन्द्र मधुर वाणी से बोले—यह बाण अमोघ और दिव्य है। यह शत्रु के नगर को जीत लेता है। हे सौम्य! इससे तुम लवण को मारोगे। यह बाण विष्णु ने बनाया है। जब वे प्रलय के समुद्र में सोते थे और उनको देवता तथा दैत्य आदि कोई प्राणी नहीं देख सकता था उस समय उस देवदेव ने मधु और कैटभ तथा सब राक्षसों के नाश के लिए यह बाण बनाया था। इसी से उन दोनों दुष्टों को मार कर तीनों लोक बसाये थे। हे शत्रुघ्न! रावण को मारने के समय मैंने यह बाण नहीं चलाया। क्योंकि इसके चलाने से बहुत से प्राणियों का सत्यानाश हो जाता। शिव ने मधु को जो शूल दिया था उसे वह लवण घर में रख कर दिशाओं में आहार लेने के लिए जाता है। उस शूल की वह रोज़ पूजा किया करता है। जब कोई युद्ध की इच्छा से उसे ललकारता है तब वह उस शूल से उसको भस्म कर डालता है। इसलिए हे पुरुषशार्दूल! जब वह नगर के बाहर गया हो तब तुम नगर-द्वार को रोक लेना और उसे भीतर न घुसने देना; किन्तु उसी अवस्था में उसको युद्ध के लिए ललकारना। ऐसा करोगे तो वह मारा जायगा। क्योंकि इस दशा में वह उस शूल को न पा सकेगा। अन्यथा वह अवध्य ही है। जैसा मैंने बतलाया वैसा उपाय करोगे तो उसका विनाश अवश्य होगा। यह सब हाल मैंने तुमको सुना दिया और शूल का परिहार भी बतला दिया। क्योंकि भगवान् शिव के सब काम दुर्लङ्घ्य हैं, उनका कोई उल्लङ्घन कठिनता से कर सकता है।

——

७७ वाँ सर्ग।

शत्रुघ्न की यात्रा।

अब रामचन्द्रजी प्रशंसा करके शत्रुघ्न से फिर बोले—ये चार हज़ार घोड़े, दो हज़ार रथ, सौ हाथी, नगर के बीच की दूकानें (जिनमें अनेक तरह की बेचने और ख़रीदने की चीजें भरी हुई हैं), तथा नट और नर्त्तक ये सब तुम्हारे साथ जायँगे। तुम अपने साथ दस लाख सोने की अशर्फ़ियाँ लेते जाओ। धन और सवारी से पूर्ण होकर तुम यात्रा करो। हृष्ट पुष्ट बहुत सी सेना को संग ले लो और बातचीत करके सेना के लोगों को प्रसन्न रक्खो। हे शत्रुघ्न! तुम ऐसा प्रबन्ध रखना जिसमें सैनिकों को आहार आदि भरपूर मिले और उन्हें तकलीफ़ न हो। क्योंकि जहाँ धन, कुल-वधू, और बान्धव भी स्थिर नहीं रहते हैं वहाँ अच्छी तरह प्रसन्न किये हुए नौकर ही रहते हैं। इसलिए सेना को प्रसन्न रखना। अनुरक्त मनुष्यों की सेना को किसी जगह ठहरा कर तुम अकेले हाथ में धनुष लेकर मधु के वन में चले जाना, जिससे उसे पता ही न लगे कि यह युद्ध के लिए आता है। इसी तरह उसका मरण होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। यदि पहले ही उसने जान लिया कि यह मुझसे युद्ध करने आता है तो फिर वह देखते देखते मार लेता है। तुम गरमी के अन्त में और वर्षा के आरम्भ में उसको मारना। वही उसके नाश का समय है। अब महर्षियों को आगे करके तुम्हारी सेना यात्रा करे, जिससे कुछ गरमी रहते ही गंगा के पार हो जाय। नदी के किनारे सब सेना को ठहरा कर तुम धनुष लेकर जल्दी चले जाना।

रामचन्द्र की सब बातें सुन कर शत्रुघ्न ने सेना के प्रधान प्रधान लोगों को बुलाया और उनसे कहा—"देखो, तुम्हारे ठहरने के अमुक अमुक पड़ाव नियत किये गये हैं। तुम लोग वहीं ठहरना; और इस बात पर ध्यान दिये रहना कि किसी की हानि न हो।" इस तरह उनको आज्ञा देकर बिदा किया। शत्रुघ्न ने कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी को प्रणाम किया। फिर रामचन्द्र की प्रदक्षिणा की और भरत तथा लक्ष्मण को हाथ जोड़ कर और पुरोहित श्रीवशिष्ठ महाराज को अभिवादन कर रामचन्द्र से आज्ञा माँगी। इसके पश्चात् फिर प्रदक्षिणा करके शत्रुघ्न ने प्रस्थान किया।

दोहा।

गज रथ संकुल सेन कहँ, प्रथमहिं दियो चलाय।
पीछे शर धनु कर गहे, चले आपु हरषाय॥

---

७८ वाँ सर्ग।

शत्रुघ्न का वाल्मीकि के आश्रम में जाकर टिकना।

सेना को रवाना करके शत्रुघ्न महीने भर अयोध्या में रहे। फिर वहाँ से वे अकेले गये और बीच में दो दिन ठहर कर तीसरे दिन वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ वाल्मीकि मुनि को प्रणाम कर हाथ जोड़ कर के बोले—"हे भगवन्! मैं महा-राज के एक काम के लिए आया हूँ। आज यहीं ठहरना चाहता हूँ। कल भयावनी पश्चिम की ओर चला जाऊँगा।" यह सुन कर महर्षि बोले—"हे बड़े यशस्वी! तुम्हारा स्वागत हो। यह रघुवंशियों के कुल का आश्रम है। इसे अपना ही समझो।

आसन, पाद्य, और अर्घ्य आदि जो मैं देता हूँ उसे निःशङ्क होकर ग्रहण करो।" इस तरह मुनि का कथन सुनकर और उनका आतिथ्य पाकर शत्रुघ्न ने फल मूल आदि का भोजन किया। फिर तृप्त होकर वे पूछने लगे—"भगवन्! इस आश्रम के पास, पूर्व की ओर, यह यज्ञ की विभूति अर्थात् यज्ञसूचक स्तम्भ आदि देख पड़ते हैं। बतलाइए, ये किसके हैं?" मुनि ने कहा—हे शत्रुघ्न! तुम्हारे कुल में एक राजा सौदास हुए थे। उनके पुत्र वीर्यसह बड़े धार्मिक और वीर्यवान् थे। राजा सौदास बचपन से ही शिकार किया करते थे। एक दिन की बात है कि वन में घूमते घूमते राजा ने दो राक्षसों को देखा। वे दोनों भयङ्कर व्याघ्र का रूप धारण किये कई हज़ार मृगों को खाये जाते थे, फिर भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी। धीरे धीरे वह वन बिना मृगों का हो आया। वन की यह दशा देख राजा को क्रोध हो गया। उन्होंने बाण से एक राक्षस को मार डाला। उसे मार कर राजा सौदास क्रोध और अमर्ष से रहित हो उस मरे हुए राक्षस की ओर देखने लगे। तब राजा को देखते हुए जान कर वह दूसरा राक्षस बहुत दुखी होकर उनसे कहने लगा—'हे पापी! तूने, बिना ही अपराध के, मेरे साथी को मारा है इसलिए मैं तुझ से बदला ले लूँगा।' यह कह कर वह राक्षस वहीं छिप गया। कुछ समय बाद उस राजा का पुत्र वीर्यसह राजगद्दी पर बैठा। इसी आश्रम के पास उसने अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञ की रक्षा करने में वशिष्ठ मुनि तत्पर थे। वह यज्ञ बड़ी धूमधाम से कई वर्ष तक बड़ी समृद्धि के साथ, देवयज्ञ के समान, होता रहा। अब वही राक्षस, जो मरने से बच गया था, पहले वैर की याद करके वशिष्ठ का रूप बना कर राजा के पास आया और कहने लगा—'आज इस यज्ञ की समाप्ति में मुझे मांस-सहित भोजन कराओ।' उस कपटी की यह बात सुन कर और उसके कपट को न परख कर राजा ने अपने चतुर रसोइये को आज्ञा दी—'आज मांस-सहित हविष्यान्न जल्दी तैयार करो। वह गुरु को खिलाओ जिससे वे सन्तुष्ट हों।' राजा की विलक्षण आज्ञा सुन कर रसोइया घबड़ा गया। परन्तु क्या करे, मालिक की आज्ञा किस तरह टाल सकता था। इधर वही राक्षस एक रसोइये का रूप बना कर पाकशाला में घुस गया और अन्न के साथ मनुष्य का मांस पका कर राजा के पास जा कहने लगा—'हे राजन्! देखिए, मैंने बहुत स्वादिष्ठ हविष्यान्न और मांस तैयार कर रक्खा है।' तब राजा ने अपनी स्त्री मदयन्ती के साथ वशिष्ठ को और उनकी पत्नी को बुला कर वह अन्न निवेदन कर दिया। वशिष्ठ जब भोजन करने बैठे तब उनको मालूम हुआ कि यह मनुष्य का मांस है; तब तो मुनि बड़े क्रुद्ध हो उस वीर्यसह से बोले—'हे राजन्! जिस कारण तू मुझे ऐसा भोजन देना चाहता है इसलिए यही भोजन तेरा होगा। इस में कुछ भी सन्देह नहीं।' अब राजा ने भी क्रुद्ध हो हाथ में जल लेकर वशिष्ठ को शाप देना चाहा परन्तु रानी ने उसे रोक कर कहा—राजन्! ये वशिष्ठ ऋषि हमारे प्रभु हैं। इसलिए तुम इनको शाप नहीं दे सकते। ये हमारे देवतुल्य पुरोहित हैं।

रानी की बात मान कर राजा ने वह क्रोधमय और तेजोबल-संयुक्त जल अपने ही पैरों पर डाल लिया। उसके गिरने से राजा के दोनों पैर काले

होगये। उस समय से वह राजा 'कल्माषपाद' नाम से प्रसिद्ध होगया। इसके बाद राजा बार बार हाथ जोड़ कर मुनि से प्रार्थना करने लगे और कहने लगे कि मैंने तो आप की ही आज्ञा से यह रसोई तैयार कराई थी। तब वह सब कर्म राक्षस का किया हुआ जान कर ऋषि बोले—हे राजन्! देखो क्रोध के कारण मेरे मुँह से जो निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। परन्तु मैं तुम को वर देता हूँ कि बारह वर्ष में इस शाप का अन्त हो जायगा। जब तुम शाप से छूट जाओगे तब बीती हुई बातों का तुमको स्मरण न रहेगा। इस तरह उस राजा ने शाप का फल भोग कर फिर राज्य पाया और प्रजा का यथोचित पालन किया। हे राघव! उसी कल्माषपाद का यह यज्ञ-स्थान है।

दोहा।

सुनि सुकथा सौदास कर, मुनि कहँ सीस नवाय।
पर्णकुटी महँ शत्रुहन, शयन कियो हरषाय॥

———

७९ वाँ सर्ग।

लव और कुश के जन्म की कथा।

जिस रात को शत्रुघ्न पर्णकुटी में रहे थे उसी रात को सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए। आधी रात के समय मुनियों के पुत्रों ने आकर वाल्मीकि मुनि को यह शुभ समाचार सुनाया—"भगवन्! राजपत्नी के दो पुत्र उत्पन्न हुए। हे महातेजस्वी! अब आप उन दोनों की भूतविनाशिनी रक्षा कीजिए जिसमें भूतप्रेत उनको सता न सकें।" यह सुन कर महर्षि वहाँ गये जहाँ वे दोनों बालचन्द्र के समान राज-पुत्र थे। वहाँ जाकर वे भूतघ्नी और रक्षो-विनाशिनी रक्षा करने लगे। मुनि ने कुश के आगे के भाग से तथा नीचे के भाग (लव) से उन दोनों की रक्षा मुनियों की वृद्धा स्त्रियों से कराई। इसलिए यथाक्रम 'कुश' और 'लव' उन दोनों के नाम हुए। उन पवित्र बुड्ढी तापसियों ने मुनि के हाथ से रक्षा लेकर यथोचित विधान कर दिया। फिर उन्हीं वृद्धाओं ने गोत्र का और रामचन्द्र के नाम का कीर्तन किया। उसी समय यह समाचार पाकर शत्रुघ्न सीता देवी की पर्णशाला में गये। वहाँ जाकर वे बोले—हे मातः! यह बड़े ही आनन्द की बात हुई।

इस तरह बड़े आनन्द से शत्रुघ्न की वह सावन महीने की रात बहुत जल्दी बीत गई। प्रातःकाल होते ही सबेरे के सब काम करके और मुनि को प्रणाम कर वे पश्चिम की ओर चले गये। रास्ते में सात दिन बिता कर वे यमुना के किनारे पहुँच गये। वहाँ उन पुण्यकीर्ति मुनियों के आश्रम में ठहरे और वहीं रह कर च्यवन आदि महर्षियों की बड़ी अच्छी अच्छी कथायें सुनने लगे।

——

८० वाँ सर्ग।

लवण की कुछ प्राचीन कथा।

अब रात के समय भृगुनन्दन च्यवन से शत्रुघ्न, लवण के बल के विषय में, पूछने लगे। वे बोले—"हे मुने! उसके शूल का कैसा प्रभाव है? उस शूल से युद्ध में कितने लोग मारे गये?" च्यवन मुनि ने कहा—हे रघुनन्दन! इस शूल से असंख्य काम हुए हैं। परन्तु इक्ष्वाकु के कुल के विषय में जो हुआ है उसको सुनो। पूर्व समय में अयोध्या का राजा, युवनाश्व का पुत्र, मान्धाता नामक हुआ।

त्रिलोकी में वह महाबली, शूरता के लिए, प्रसिद्ध था। उसने सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल को अपने वश में करके स्वर्ग-लोक जीतने के लिए उद्योग किया। यह बात सुन कर इन्द्र को और देवों को भी बड़ा भय हुआ। उस समय राजा इस बात की प्रतिज्ञा कर स्वर्ग पर चढ़ा कि इन्द्र का आधा आसन और आधा राज्य ले लूँगा और यह नियम करा लूँगा कि देवता लोग मुझे प्रणाम करें। यह निश्चय कर उसने चढ़ाई कर दी, परन्तु इन्द्र इसका यह मतलब जान कर धीरे से इससे बोले—"हे पुरुषों में श्रेष्ठ! अभी तक आप संपूर्ण पृथ्वी के राजा नहीं हो पाये। सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में किये बिना देवराज्य की इच्छा किस तरह करते हो? हे वीर! पहले सब पृथ्वी अपने वश में कर लो तब अपनी सेना, नौकर और वाहनों सहित देवराज्य करो।" यह सुन कर राजा मान्धाता ने कहा—"हे इन्द्र! पृथ्वीमण्डल में मेरी आज्ञा के विरुद्ध कोई कौनसा काम करता है?" सुरेन्द्र बोले—"देखो, मधु का पुत्र लवण तुम्हारे वश में नहीं है।" यह अप्रिय वचन सुनते ही मान्धाता ने लज्जित होकर नीचे को मुँह कर लिया। कुछ भी उत्तर न देकर राजा, इन्द्र से बिदा हो, फिर भूमण्डल पर आ गया। मन में तो क्रोध भरा ही था, झट सेना लेकर लवणासुर पर चढ़ाई कर दी। राजा ने पहले उसके पास अपना दूत भेजा। वह दूत वहाँ जाकर बहुत से अप्रिय वचन बोलने लगा। लवण तो मनुष्यों को खानेवाला था। वह भला दूत की कठोर बातें क्यों सहता? उसने दूत को उठा कर भक्षण कर लिया। जब दूत के लौटने में देर हो गई तब राजा ने मारे क्रोध के बाणों के द्वारा चारों ओर से उस राक्षस को पीड़ित कर दिया। तब राक्षस ने शिव का दिया हुआ शूल हाथ में लिया और उसे सेना सहित राजा के नाश के लिए चला दिया। वह शूल वहाँ से चल कर नौकर, सेना और वाहनों सहित राजा को भस्म कर फिर वहीं दैत्य के हाथ में आ गया। हे राजन्! इस तरह वह बड़ा राजा मारा गया। हे सौम्य! उसके शूल का बल बड़ा ही अनुपम है। कल सवेरे तुम उस शूलरहित को मारोगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तुम्हारा विजय अवश्य होगा। ऐसा होने से लोकों का कल्याण हो जायगा। हे राघव! उसके शूल का जो कुछ बल था वह मैंने सुना दिया। मान्धाता का विनाश तो धोखे में अति साहस से हो गया। सबेरे जब वह, बिना ही शूल लिये, मांस के लिए जायगा तब तुम तैयार रहना।

दोहा।

होत प्रात तुम मारि हौ, लवणहि संसय नाहिं।
चिर पीड़ित मुनिगणन कर, होइहिं भल एहि माँहिं॥

---

८१ वाँ सर्ग।

लवण का युद्ध।

इस तरह बातचीत करते करते रात बीत गई। सवेरा हुआ। सबेरा होते ही वह राक्षस अपने आहार के लिए नगर के बाहर गया। इसी बीच में शत्रुघ्न यमुना नदी के पार हो, हाथ में धनुष ले, मधुपुर के फाटक पर जा कर तैयार हो खड़े हो गये। दोपहर के समय वह क्रूरकर्मा राक्षस कई हजार प्राणियों का भार लिये हुए आ पहुँचा। उसने देखा कि आयुध लिये हुए शत्रुघ्न द्वार पर डटे हैं। तब राक्षस बोला—"इस आयुध से तू

क्या करेगा? हे नरों में नीच! मैंने ऐसे हज़ारों आयुधधारियों को खा डाला। आज तुम्हारा भी काल आगया। आज मेरा आहार कुछ कम था, सो पूर्ण हो जावेगा। हे पुरुषाधम, दुर्मते! मेरा पूर्ण आहार रूप तू मेरे मुँह में स्वयं आकर कैसे घुसा?" जब वह इस तरह बकने और बार बार हँसने लगा तब मारे क्रोध के शत्रुघ्न की आँखों से आँसू बहने लगे। उनके सब शरीर में से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वे बोले—"हे दुर्बुद्धे! मैं तेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। मैं राजा दशरथ का लड़का और राम का भाई हूँ। मेरा नाम शत्रुघ्न है। मैं तुझ को मारने की इच्छा से आया हूँ। इसलिए तू मेरे साथ युद्ध कर, मैं द्वन्द्व युद्ध चाहता हूँ। तू सब प्राणियों का शत्रु है। मैं भी शत्रुघ्न (शत्रुघ्न को मारनेवाला) हूँ। अब तू मेरे हाथ से जीता न बचेगा।" यह सुन कर राक्षस हँसता हुआ बोला—"अच्छी बात है। तू बड़े भाग्य से आया है। देख, मेरे मामा रावण को राम ने केवल स्त्री के लिए मार डाला। रावण के कुल के नाश को मैंने किसी तरह सह लिया। ध्यान दिया भी था पर अनादर सह कर तुमको क्षमा कर दिया और तुम्हारे वंश के बहुत से भूत, वर्तमान और भविष्य पुरुषाधमों को मैंने तिनके के समान समझ कर हराया और मार गिराया। तुम लोगों को, अनादर से, मैं कुछ भी नहीं समझता था। अब यदि तुम युद्ध चाहते हो तो मैं युद्ध करूँगा। परन्तु थोड़ी देर ठहरो। मैं अपना शस्त्र उठा लाऊँ तब तक तुम ठहरे रहो। मैं जिस तरह के आयुध से तुम्हें मारना चाहता हूँ उसे सजाकर ले आऊँ।" रघुनन्दन बोले—अब तू मेरे हाथ से जीता हुआ कहाँ जायगा? चतुर मनुष्य स्वयं आये हुए शत्रु को नहीं छोड़ते। जो लोग शत्रु को मौक़ा देते हैं वे मूर्ख कहलाते हैं। वे शत्रु के हाथ से मारे जाते हैं। इसलिए तू इस जीवलोक को अच्छी तरह देख ले। तू तीनों लोकों का तथा श्रीराघव का भी शत्रु है। अतएव इसी समय मारे बाणों के तुझे यमराज की नगरी को भेजे देता हूँ।

---

८२ वाँ सर्ग।

लवणासुर का मारा जाना।

इस तरह शत्रुघ्न की बातें सुनकर उसने बड़ा क्रोध किया और कहा—"खड़े रहो, खड़े रहो।" मारे क्रोध के वह हाथ से हाथ और दाँत से दाँत रगड़ने तथा बार बार ललकारने लगा। तब शत्रुघ्न उससे बोले—"जिस तरह तूने औरों को जीत लिया है वैसा शत्रुघ्न को न समझना। जब तूने और और नरपतियों को मारा था तब मैं नहीं उपजा था। आज मैं तुझे मृत्यु के वश में करता हूँ। हे पापी! जैसे देवताओं ने रावण को मरा हुआ देखा था उसी तरह आज ब्राह्मण और विद्वान् ऋषि लोग तुझे मरा हुआ देखेंगे। जब तू मेरे बाण से भस्म होकर ज़मीन पर गिर पड़ेगा तब नगर में और देश में मंगल होगा। आज मेरी भुजाओं से छूटा हुआ बाण तेरे हृदय में ऐसे घुसेगा जिस तरह कमल में सूर्य की किरण घुसती है।" उस बाण का मुँह वज्र के समान है, यह सुनकर लवण बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने एक वृक्ष उखाड़ कर शत्रुघ्न पर फेंका परन्तु उन्होंने उसे सौ टुकड़े कर डाले। अपने उस प्रहार को निष्फल देख कर वह शत्रुघ्न पर बहुत से वृक्षों की वर्षा करने लगा। परन्तु

शत्रुघ्न तीन तीन और चार चार पैने पैने बाणों से उन वृक्षों को काट काट कर गिराने और राक्षस पर बाण-वर्षा करने लगे। परन्तु उनके बाणों से उसे कुछ भी पीड़ा न पहुँची। फिर उसने हँसकर एक वृक्ष शत्रुघ्न के सिर में ऐसा मारा कि वे अचेत हो कर ज़मीन पर गिर पड़े। उनके गिरते ही ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं में हाहाकार मच गया। शत्रुघ्न की मूर्च्छा का मौक़ा पा कर भी वह राक्षस अपने घर में न गया। क्योंकि वह अनादरपूर्वक अपने मन में यही समझता था कि यह शत्रुघ्न क्या चीज़ है! इसे तो मैंने मार लिया। शत्रुघ्न को मरा हुआ समझ कर वह शूल लेने भी न गया। वह अपने भक्ष्य जन्तुओं को घर ले जाने के लिए समेटने लगा। परन्तु ज़रा सी देर में शत्रुघ्न को चेत हो आया। वे अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल कर फिर उसी द्वार पर खड़े होगये। ऋषि लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने वही अमोघ दिव्य बाण अपने धनुष पर चढ़ाया जिसे देख कर सब प्राणी डर गये। वह बाण अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। उसका मुँह वज्र के तुल्य था और वेग भी वज्र का सा ही था। वह मेरु और मन्दर के तुल्य भारी था, और सब पर्वों में झुका हुआ था। वह किसी जगह पराजित नहीं हुआ था। वह रुधिर-रूप चन्दन से लीपा हुआ था; उसमें अच्छे अच्छे पंख लगे हुए थे। वह दानवेन्द्र, अचलेन्द्र और दैत्यों के लिए दारुण, तथा प्रलय की कालाग्नि के तुल्य प्रदीप्त था। उसे देखते ही देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, अप्सरा आदि सब संसार के प्राणी व्याकुल होकर ब्रह्मा के पास गये। वहाँ जाकर वे इस विपत्ति का हाल कहने लगे। ब्रह्मा ने कहा—"हे देवताओ! तुम्हारे अभय होने के लिए शत्रुघ्न लवणासुर से युद्ध कर रहे हैं। उस को मारने के लिए उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया है। उसीके तेज से तुम सब लोग मूढ़ से बन रहे हो। हे देवताओ! लोक के कर्त्ता, देवों के देव श्रीविष्णु का यह तेजोमय बाण है। उसीको देख कर तुम लोग डर रहे हो। मधु-कैटभ दैत्यों को मारने के लिए प्रभु ने इस बाण की रचना की थी। इस बाण को केवल वे ही जानते हैं। यह बाण-रूप उनका पहला शरीर है। तुम लोग जा कर देखो, वह लवणासुर उस बाण से मारा जाता है।" इस तरह ब्रह्मा के कहने पर वे सब वहाँ आये जहाँ दोनों का युद्ध हो रहा था। उन्होंने शत्रुघ्न के हाथ में कालाग्नि के तुल्य वही भभकता हुआ बाण देखा। जब शत्रुघ्न ने देखा कि देवताओं से आकाश भर गया है तब सिंहनाद करके उन्होंने लवण की ओर देख कर उसे ललकारा और कान तक प्रत्यञ्चा खींच कर वह बाण उसकी छाती में मारा। वह बाण उस राक्षस की छाती को विदीर्ण करता हुआ रसातल में घुस गया और वहाँ से निकल कर शत्रुघ्न के तरकस में आगया। उस प्रहार से लवणासुर ऐसा गिरा जैसे वज्र की चोट खाकर पर्वत गिरता है। उसी समय देवताओं के देखते देखते वह शूल भगवान् शिव के पास चला गया। इस तरह शत्रुघ्न एक ही बाण से तीनों लोकों का भय दूर कर सूर्य की भाँति प्रकाशमान हुए।

दोहा।

देखि वीर्य शत्रुघ्न को, देव नाग मुनि सर्व।
जय जय करि अस्तुति करहिं, पूरण हर्ष अखर्व॥

——

८३ वाँ सर्ग।

पुरी बसाना।

अब लवण के मारे जाने पर इन्द्र, अग्नि आदि देवता आकर शत्रुघ्न से मधुर वाणी से बोले—"हे वत्स! बड़ा आनन्द हुआ जो लवण मारा गया और तुम्हारा विजय हुआ। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! वरदान माँगो। देखो, हम सब लोग वर देने वाले तुम्हारे विजय की इच्छा से आये हैं। हम लोगों का दर्शन अमोघ है।" देवताओं के वचन सुन कर शत्रुघ्न हाथ जोड़ कर बोले—"हे देवताओ! यदि वर देना चाहते हो तो मेरे लिए इस समय यही वर उत्तम है कि यह मधुपुरी जल्दी देवनिर्मित रमणीय बस जाय। यह राजधानी के योग्य होजाय।" देवताओं ने कहा—"ऐसा ही होगा। बहुत अच्छी तरह शूर सेना के साथ यह पुरी बस जायगी।" यह कहकर वे लोग स्वर्ग को चले गये। शत्रुघ्न ने पहले अपनी सेना दूर छोड़ दी थी। वे अब उसे वहाँ ले आये। शत्रुघ्न की आज्ञा पाते ही वह सब सेना वहाँ आकर इकट्ठी हो गई। सावन के महीने में उन्होंने वह पुरी बसाना आरम्भ किया। बारहवें वर्ष में वह पुरी अच्छी तरह बस गई। वह देश शूरसेन नाम से विख्यात हुआ। निर्भय होकर लोग वहाँ रहने लगे। वहाँ खेतों में फ़सल लहरा रही थी, समय पर वर्षा होती थी और निरोगी वीर मनुष्य वहाँ देख पड़ने लगे। यह पुरी यमुना के किनारे अर्द्धचन्द्राकार बसी हुई सुन्दर सुन्दर घरों, चौतरों, बाज़ारों, और चारों वर्णों तथा तरह तरह के व्यापारों से सुशोभित हो गई। पहले लवण ने जिन विशाल सुधाधवलित घरों को चित्रकला से सजवाया था उनको शत्रुघ्न ने ठीक करवा कर सौन्दर्य-सम्पन्न कर दिया। उस पुरी में स्थान स्थान पर बग़ीचे, वाटिकायें और विहार करने के स्थान थे। देवताओं और मनुष्यों से वह अत्यन्त सुशोभित देख पड़ती थी। वह नगरी दिव्यरूपा थी। वह अनेक तरह की व्यापार करने की चीज़ों से ऐसी भर गई कि अनेक देशों के व्यापारी भी उसमें व्यापार करने के लोभ से आने लगे। इस तरह सब प्रकार से समृद्ध उस पुरी को देख कर शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि यह बारहवाँ वर्ष है। अब जाकर रामचन्द्र के चरणों को देखना चाहिए।

दोहा।

महापराक्रम शत्रुहन, एहि विधि नगर बसाय।
रामचरण के दरश लगि, भयो मनहि व्यवसाय॥

——

८४ वाँ सर्ग।

शत्रुघ्न की अयोध्या की यात्रा।

थोड़े से मनुष्य साथ लेकर शत्रुघ्न अयोध्या को चले। उनके साथ बहुत से मन्त्री आदि भी जाने लगे परन्तु उन्होंने उन सब को लौटा दिया। उत्तम घुड़सवार और केवल सौ रथ उन्होंने साथ लिये। मार्ग में सात आठ जगह ठहर कर वे वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पहुँच गये। वहीं पर वे ठहरे। मुनि को प्रणाम कर तथा उनके हाथ से अर्घ्य, पाद्यार्घ्य आदि सत्कार की चीज़ें पाकर वे सुखपूर्वक वहाँ ठहर गये। मुनि अनेक तरह की मधुर कथायें कहने लगे। वे लवण के मारे जाने के विषय में बोले—"तुमने बड़ा ही कठिन काम किया

जो लवणासुर को मारा। हे महाबाहो! इस लवण ने सेना-सहित बहुत से राजाओं को मार गिराया था। तुमने तो उसे लीलापूर्वक मार दिया। तुम्हारे तेज से संसार का भय जाता रहा। देखो, रावण का मारा जाना बड़े यत्न से हुआ था। परन्तु तुमने जो यह बड़ा काम किया इसमें कुछ भी यत्न नहीं करना पड़ा। ऐसा करने से देवताओं का बड़ा प्रिय काम हो गया। तुमने सब प्राणियों और सब संसार का प्यारा काम किया। हे राघव! इस युद्ध के समय मैं इन्द्र की सभा में बैठा था। उसी समय मैंने सब युद्ध देखा था। मेरे हृदय में भी बड़ी ही प्रीति उत्पन्न हुई है इसलिए मैं तुम्हारा सिर सूँघूँगा। प्रेम की यही रीति सबसे बढ़कर है।" यह कह कर मुनि ने शत्रुघ्न का सिर सूँघा। फिर उन्होंने शत्रुघ्न का तथा उनके साथियों का अतिथिसत्कार किया। भोजन कर चुकने पर शत्रुघ्न ने दूर से रामचन्द्र के चरित का मधुर संगीत सुना। रामचन्द्र पहले जो जो कार्य कर चुके थे उन्हींका गीतों में वर्णन था। वीणा की लय से कण्ठ मिलाकर यह रामचरित गाया जा रहा था; हृदय, कण्ठ और सिर से—मन्द्र, मध्य, तार से—निकले स्वरों में धीमी मध्यम और ऊँची तान में गाया जा रहा था। उसकी छन्द-रचना संस्कृत में थी तथा छन्द, व्याकरण और सङ्गीत-शास्त्र के लक्षणों से वह युक्त था। राम के सम्बन्ध की जैसी जैसी बातें हुई थीं ठीक वही वही बातें उन गीतों में सुनकर शत्रुघ्न भौंचक होगये। उनकी आँखों में आँसू भर आये। वे थोड़ी देर के लिए अचेत से हो गये। वे बार बार नीचे ऊपर को श्वास छोड़ने लगे। जो बात बीत चुकी थी वह गीत के सुनने से नई सी जान पड़ती थी। उन गीतों को सुन कर शत्रुघ्न के साथी नीचे को मुँह करके दीन से हो गये और 'आश्चर्य' 'आश्चर्य' कहने लगे। सेनावाले लोग आपस में कहने लगे कि "देखो, यह क्या है? हम सब कहाँ हैं? हम लोग यह स्वप्न तो नहीं देखते हैं? बड़ा आश्चर्य है। पहले हमने जो बात देखी थी वही बात इस आश्रम में सुन पड़ती है।" इस तरह परस्पर कह कर वे सब शत्रुघ्न के पास गये। उन्होंने उनसे भी वही बात कही। उन्होंने कहा—"हे नरश्रेष्ठ! आप यह बात मुनि से पूछिए।" यह सुनकर शत्रुघ्न बोले—"हे सेना के लोगो! ऐसी बात मुनि से पूछना हमारे लिए उचित नहीं है। क्योंकि मुनि के आश्रम में ऐसी ऐसी आश्चर्य की अनेक बातें हुआ ही करती हैं। अपने कौतूहल के कारण हम उनकी खोज क्यों करें और मुनि को क्यों कष्ट दें।" इस तरह उनको समझा कर शत्रुघ्न मुनि को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान को चले गये।

दोहा।

गीत श्रवण करि शत्रुहन, पर्णकुटी में जाय।
किय निवास रघुवीर के, चरित सुनत सुख पाय॥

---

८५ वाँ सर्ग।

राम का दर्शन कर शत्रुघ्न का फिर वहाँ से लौटना।

अब शत्रुघ्न जाकर अपने बिस्तरे पर लेट गये। उन अनेक अर्थों वाले, रामचन्द्र-सम्बन्धी, गीतों के विषयों को स्मरण करते करते उनको नींद न आई। वह मधुर गान वीणा की लय के साथ होरहा था। वहीं से उसे सुनते सुनते शत्रुघ्न की वह रात बहुत

जल्दी बीत गई। सबेरा होने पर प्रातःकालीन सब कृत्य करके वे हाथ जोड़ कर मुनि से बोले—"हे भगवन्! अब मैं श्रीरामचन्द्र के दर्शन करना चाहता हूँ। इसलिए आप इन महाव्रतधारी मुनियों के साथ मुझे आज्ञा दीजिए।" यह सुन कर मुनि ने शत्रुघ्न को गले से लगा कर बिदा किया। वे मुनि को प्रणाम कर जल्दी से रथ पर सवार हो अयोध्या को चल दिये। क्योंकि उनको महाराज के दर्शनों की बड़ी उत्कण्ठा थी। वे वहाँ से रवाना होकर जल्दी अयोध्या में पहुँच गये। वहाँ पहुँचते ही वे उस राजभवन में गये जहाँ रामचन्द्रजी विराजमान थे। वहाँ रामजी मन्त्रियों के बीच में बैठे हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों देवताओं के बीच में इन्द्र हों। महाराज को प्रणाम कर शत्रुघ्न हाथ जोड़ कर बोले—मैंने महाराज के आज्ञानुसार सब काम कर दिया। लवण को मार कर उसकी पुरी बसा दी। बारह वर्ष हो गये। हे प्रभो! मैं आप के बिना वहाँ नहीं रह सकता। इसलिए हे काकुत्स्थ! अब मेरे ऊपर कृपा कीजिए। जैसे बालक बिना माता के नहीं रह सकता उसी तरह आप के बिना मैं अकेला वहाँ नहीं रह सकता।

शत्रुघ्न की बातें सुनकर रामचन्द्रजी ने उनको गले से लगा लिया और कहा—"हे वत्स! दुख न करो, क्योंकि ऐसा करना क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध है। देखो, राजा लोग परदेश में खेद नहीं करते किन्तु धर्म से प्रजा का पालन करते हैं। कभी कभी मौक़ा मिलने पर तुम मुझे देखने के लिए यहाँ अयोध्या में आ जाया करो और मिल मिलाकर फिर चले जाया करो। इसमें सन्देह नहीं कि तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हो परन्तु राज्य का पालन करना भी तो आवश्यक है। इसलिए अब तुम सात दिन तक मेरे साथ रहो। इसके बाद अपने नौकरों और वाहनों को साथ ले फिर मधुपुरी में चले जाना।" इस प्रकार धर्मयुक्त और मनोनुसारी रामचन्द्र के वचन सुनकर शत्रुघ्न बोले—"महाराज! बहुत अच्छा।" सात दिन रह कर फिर वे जाने के लिए तैयार हुए। रामचन्द्रजी से, भरत से और लक्ष्मण से बिदा हो कर वे रथ पर सवार हो गये।

दोहा।

भरत लखन दोउ दूर लगि, गये पियादेहि पाय।
शत्रुहनहिं अति प्रेम ते, फिरे सपदि पहुँचाय॥

---

८६ वाँ सर्ग।

मृतक पुत्र को लेकर किसी ब्राह्मण का राजद्वार पर आना।

शत्रुघ्न को बिदा कर रामचन्द्रजी आनन्दपूर्वक धर्म से राज करने लगे। कुछ दिन बाद वहीं का रहनेवाला एक बुड्ढा ब्राह्मण मृतक बालक को लिए हुए राजद्वार पर आया। वह बड़े दुःख के साथ 'हा पुत्र! हा पुत्र!' चिल्लाता और रोता हुआ अनेक तरह से विलाप करने लगा। वह कह रहा था—"मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पाप किया था जो आज अपने पुत्र को मरा हुआ देख रहा हूँ। हाय! इस लड़के ने जवानी न देख पाई। यह अकाल में ही मृत्यु का ग्रास हो गया। यह सब मुझे दुःख देने के लिए हुआ है। इसलिए हे पुत्र! अब थोड़े ही दिन बाद, तेरे शोक में, मैं और तेरी माता दोनों मर जायँगे। मुझे याद नहीं कि मैंने कभी झूठ बोला हो, या किसी प्राणी की हिंसा

की हो। कभी कोई पाप किया हो, सो भी खबर नहीं; फिर न जाने किस बुरे काम से यह बालक, पिता की मरणक्रिया किये बिना ही, यमलोक में चला गया। ऐसा मैंने न पहले देखा और न सुना था। ऐसी बड़ी भयानक बात रामचन्द्र के राज्य में देख पड़ती है कि अकाल में बालक की मृत्यु आ पहुँची। इससे जान पड़ता है कि रामचन्द्र का कोई बड़ा दुष्कर्म है जिससे बालकों को मृत्यु घेरती है। क्योंकि और और देशों में ऐसी बुरी विपत्ति नहीं देख पड़ती। हे राजन्! इस मृत बालक को जिलाइए, नहीं तो मैं स्त्री-सहित अनाथ की तरह मर जाऊँगा। तब आप को ब्रह्महत्या लगेगी। हे राजन्! उस दशा में आप भाइयों-सहित बड़ी उम्र पावेंगे। यह घोर विपत्ति इसी कारण हुई जो हम आपके वश में रहे। आपके राज्य में रहने से हम काल के पञ्जे में फँस गये। हमें थोड़ा भी सुख नहीं है। अब इक्ष्वाकुवंशवालों का यह राज्य, राम के राजा होने से, अनाथ हो गया। राम के ही राजत्व में बालक की मृत्यु हुई। राज-दोष से ही प्रजा पर विपत्ति आती है। क्योंकि जब राजा विधिपूर्वक प्रजा का पालन नहीं करते, जब राजा दुराचारी होता है, तब लोग कुसमय में मरते हैं; या शहरों और देशों में जब लोग ठीक आचरण नहीं करते और राजा उनको ठीक रास्ते पर नहीं लाता तब प्रजा की रक्षा नहीं होती, किन्तु कालकृत भय उत्पन्न होता है। इसलिए मैं तो इस में राजदोष ही समझता हूँ। क्योंकि दूसरी तरह इस बालक की मृत्यु नहीं हो सकती।" इस प्रकार अनेक तरह की बातें कह कर वह ब्राह्मण राजा को दोष और उलहना देता हुआ उस लड़के को बार बार गले से लगाता था।

८७ वाँ सर्ग।

उस लड़के की मृत्यु के विषय में ऋषियों के साथ महाराज का विचार।

उस ब्राह्मण का दुःख और शोक-युक्त विलाप सुन कर रामचन्द्रजी ने मंत्रियों को तथा वशिष्ठ, वामदेव और बड़े बड़े आदमियों को सभा में बुलवाया। वशिष्ठ के साथ आठ ब्राह्मण सभा में आये। वे बोले—"महाराज का कल्याण हो।" फिर मार्कंडेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम, और नारद ये सब आसनों पर बैठाये गये। महाराज ने इन महर्षियों को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और मंत्रियों तथा बड़े बड़े आदमियों की यथोचित प्रतिष्ठा की। जब वे सब बैठ गये तब रामचन्द्रजी ने उसी ब्राह्मण की चर्चा छेड़ी। वह बात सुनकर और राजा को दुखी देख कर पहले नारद बोले—हे राजन्! सुनिए, कुसमय में इस लड़के का नाश क्यों हुआ है। इस विषय में पहले मेरा निवेदन सुन लीजिए फिर जो कर्त्तव्य हो वह कीजिएगा।

पहले सत्ययुग में ब्राह्मण ही तपस्वी होते थे, और कोई दूसरा वर्ण तप नहीं करता था। उस युग में ब्राह्मणों की प्रधानता थी, तपस्या का दौरदौरा था और अविद्या दूर रहती थी। इसलिए सत्ययुग में मौत को जगह न थी और लोग दीर्घदर्शी होते थे। सत्ययुग के बाद त्रेता युग प्रारम्भ हुआ। उसमें क्षत्रिय लोग तपोबल से युक्त हुए। उस समय भी वे ही महात्मा लोग देख पड़ते थे जो पूर्व जन्म में तप और वीर्य में अधिक थे। जो ब्राह्मण समुदाय पहले हुआ और क्षत्रियों का जो समुदाय

पीछे हुआ उनमें उस समय एक सा वीर्य-बल देख पड़ता था। इस समय के लोगों ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों में विशेषता और अधिकता न देख कर, सब लोगों की सम्मति से, चारों वर्णों को नियत किया। इसी त्रेता युग में अधर्म ने पृथ्वी पर एक पैर स्थापन किया। इस अधर्म के द्वारा तेज मन्द हो गया। हे राजन्! पहले के लोगों का जो रजोगुण-सम्बन्धी मल था, वही अनृत अर्थात् कृषिकर्म रूप व्यापार हुआ। इससे पहले मनुष्य बिना जोते बोये ही खाया करते थे। अब त्रेता युग में मनुष्यों की आयु परिमित होगई जो सत्ययुग में अपरिमित थी। जब पाप ने अपना एक पैर रक्खा तब लोग सत्यधर्म में तत्पर हो, अधर्म से बचने के लिए, अच्छे काम करने लगे। सत्ययुग में तो सत्यधर्म में उनकी तत्परता स्वभाव ही से थी। अब त्रेतायुग में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही तपस्या करने लगे। बाक़ी दो वर्णों के मनुष्य इन लोगों की सेवा में लग गये। वैश्य और शूद्र सेवा ही किया करते थे। चारों वर्णों का जो धर्म था उसी में वे सब लगे रहते थे। शूद्र का यही काम था कि वह तीनों वर्णों की सेवा करे। इस बीच में जब पिछले दो वर्णों ने अधर्म और असत्य का व्यवहार करना आरम्भ किया तब पहले दोनों वर्ण घट गये और अधर्म ने दूसरा पैर रख दिया। उस युग का नाम द्वापर हुआ। द्वापर में अधर्म और असत्य दोनों बढ़ने लगे। तीसरा वर्ण भी तपस्या करने लगा। क्रम-पूर्वक तीनों वर्ण तपस्वी हुए। तीनों युगों में तीनों वर्णों का धर्म ठीक ठीक रहा। शूद्र इन तीनों से अलग रहा। परन्तु कलियुग में शूद्र भी तपस्या करता है। द्वापर तक तो शूद्र इस बात को अधर्म ही मानते थे पर कलि में इसका विचार ही न रहेगा। क्योंकि वह युग ही अधर्ममय है। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे राज्य में कहीं शूद्र महा-घोर तपस्या कर रहा है। इसी कारण यह बालक मरा है। क्योंकि जिस राजा के राज्य में कोई दुर्बुद्धि मनुष्य अधर्म या अकार्य करता है तो वहाँ दरिद्र फैलता है और वह राजा नरक में जाता है। राजा यदि धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करे तो वह प्रजा के अध्ययन, तप और सुकर्म का छठा भाग पाता है। जब वह छठा भाग लेता है तब प्रजा का पालन उचित रीति से क्यों न करेगा? इसलिए हे राजशार्दूल! आप अपने राज्य में इस बात की खोज कीजिए। जहाँ पाप-कर्म देख पड़े उसकी शान्ति का उपाय कीजिए। हे नरश्रेष्ठ! ऐसा करने से धर्म की वृद्धि और मनुष्यों की आयु बढ़ेगी और यह बालक भी जी उठेगा।

---

८८ वाँ सर्ग।

रामचन्द्रजी का शूद्र तपस्वी को ढूँढ़ना और उसका मारना।

रामचन्द्रजी नारद के उन अमृतमय वचनों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वे लक्ष्मण से बोले—"हे सौम्य! तुम जाकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ को समझाकर मृत बालक को तैल में रखवा दो। तरह तरह की सुगन्धित चीज़ों से और सुगन्धित तेलों से उस मृत देह की ऐसी रक्षा की जाय जिससे वह नष्ट न होने पावे। इस काम को ऐसी सावधानी से करो जिससे किसी तरह की विपत्ति उस पर न आने पावे। न बाल ही गिरने पावें और न जोड़ ही ढीले पड़ने

पावें।" इतना कह कर रामचन्द्रजी ने पुष्पक विमान का स्मरण किया। याद करते ही वह आकर रामचन्द्र के पास खड़ा हो गया और बोला—"हे प्रभो! मैं आपका किंकर और वशङ्गत आ गया।" पुष्पक विमान को आया जान महाराज ऋषियों को प्रणाम कर विदा हुए। धनुष, तरकस और उत्तम तलवार लेकर वे उस पर सवार हो गये। लक्ष्मण और भरत को नगर की रक्षा के लिए नियत कर आप पश्चिम दिशा को गये। वहाँ वे उस शूद्र को ढूँढ़ने लगे। वहाँ उसे न पाकर वे उत्तर दिशा की ओर गये। वहाँ भी वे किसी को न देखकर फिर पूर्व दिशा में ढूँढ़ने लगे। परन्तु वहाँ भी कुछ पाप न देख पड़ा। तब वे दक्षिण की ओर गये। वहाँ विन्ध्यगिरि के एक भाग में शैवल नामक पर्वत पर एक बड़ा तालाब देखा। वहीं एक तपस्वी को तपस्या करते हुए पाया। वह नीचे की ओर मुँह किये लटक रहा था। रामचन्द्र उसके पास जाकर बोले—हे सुव्रत! तुम धन्य हो। भला यह तो बताओ कि तुम्हारी उत्पत्ति किस योनि में हुई है। मैं यह कुतूहल से पूछ रहा हूँ। मैं राजा दशरथ का पुत्र राम हूँ। तुम क्या चाहते हो? तुम्हारा अभीष्ट क्या है; क्या तुम स्वर्ग चाहते हो? या किसी दूसरे वर की अभिलाषा से ऐसी तपस्या कर रहे हो जो दूसरे के लिए कठिन है। यह मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ। सच सच कहो कि तुम ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, अथवा वैश्य हो या शूद्र? मुझे ठीक ठीक बताकर सत्यवादी बनो।

दोहा।

एहि विधि प्रभु के वचन सुनि, सो मुनिराज सुजान।
नीचे ही मुख ते कह्यो, निज जाती परिमान॥

---

८९ वाँ सर्ग।

महाराज का उस मुनि को मार डालना।

रामचन्द्रजी के पूछने पर वह मुनि नीचे को ही मुँह किये बोला—"हे रामचन्द्र! मैं शूद्र हूँ। शूद्र वंश से मेरा जन्म है। इसी शरीर सहित स्वर्ग जाने की कामना से मैं ऐसी उग्र तपस्या कर रहा हूँ। हे प्रभो! मैं देवलोक की प्राप्ति की इच्छा से झूठ नहीं बोलता। मुझे आप शूद्र समझिए। मेरा नाम शम्बूक है।" यह सुनते ही महाराज ने झट मियान में से तेज़ तलवार निकाली और उसका सिर काट लिया। उसका सिर कटते ही इन्द्र और अग्नि आदि देवता बार बार वाह वाह कह कर रामचन्द्र की प्रशंसा करने लगे। प्रभु के ऊपर चारों ओर से बड़े दिव्य फूलों की वर्षा होने लगी। प्रसन्न होकर देवता बोले--"हे सत्य पराक्रमी राघव! आपने देवताओं का यह बड़ा भारी काम किया। अब जो वर चाहिये सो लीजिए। आपकी कृपा से यह शूद्र जाति का मनुष्य हमारे स्वर्ग में नहीं आने पाया। यह बड़ा ही काम हुआ।" यह सुन कर हाथ जोड़े रामचन्द्रजी इन्द्र से बोले—"हे देवेन्द्र! ब्राह्मण का वह मरा हुआ लड़का जी उठे। यही वरदान चाहिए। यदि आप लोग वर देना चाहते हैं तो यही दीजिए। हे देवगण! मेरे ही दोष से ब्राह्मण का वह एक मात्र लड़का अकाल में मर गया है। मैं ब्राह्मण से प्रतिज्ञा कर आया हूँ कि तेरे बालक को जिला दूँगा। इसलिए आप लोग ऐसा कीजिए जिससे मैं मिथ्यावादी न होऊँ।" देवता लोग प्रीति-पूर्वक बोले—"हे राघव! अब आप लौट जाइए। वह लड़का तो उसी समय जी उठा जिस

समय उस शूद्र का सिर काटा गया था। लड़के को उसके घरवालों और भाई-बन्दों ने ले लिया। वह उसी क्षण जी गया था जिस क्षण में शूद्र का सिर कट कर जमीन पर गिरा था। हे रामचन्द्र! आपका मंगल हो। अब हम लोग अगस्त्य ऋषि के आश्रम को जायँगे। क्योंकि उस ब्रह्मर्षि की व्रत-दीक्षा समाप्त हुई है। उनको जल में शयन करते करते आज बारह वर्ष बीत गये। हम लोग वहाँ जाकर उनका अभिनन्दन करेंगे। आप भी वहाँ चले चलिए।" यह सुनकर महाराज ने वहाँ जाना स्वीकार कर लिया और विमान पर सवार हो गये। आगे आगे देवताओं के विमान चले और पीछे पीछे रामचन्द्र गये। वे सब मुनि के आश्रम में पहुँच गये। मुनि ने देवताओं को देखकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया। देवता लोग उनकी पूजा लेकर स्वर्ग को सिधारे। फिर महाराज ने विमान से उतर कर मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने बड़ी प्रसन्नता से उनका सत्कार किया। इसके बाद अगस्त्य मुनि बोले—"हे मनुष्यों में श्रेष्ठ रघुनन्दन! आपका स्वागत हो। बड़े आनन्द की बात है जो आप आगये। हे रामचन्द्र! आप अपने उत्तम गुणों से हमारे बड़े प्यारे अतिथि, पूजनीय और हृदयवासी हैं। देवताओं ने आपके आने की खबर हमको पहले ही दे दी थी। आपने अपने धर्म से प्रिय बालक को जिला दिया। हे राघव! आज की रात आप मेरे आश्रम में रहिए। आप श्रीमान् नारायण और जगदाधार हैं। आप सब जीवों के प्रभु और सनातन पुरुष हैं। कल सवेरे पुष्पक पर चढ़ कर अपनी नगरी को चले जाइएगा। हे रामचन्द्र! इस आभरण को विश्वकर्मा ने बनाया था। यह अपने तेज से प्रकाशित और दिव्य है; इसे आप ग्रहण कीजिए। इसे आप ले लें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। पाई हुई वस्तु का दान बड़ा फल देनेवाला होता है। इस भूषण को धारण करने योग्य आप ही हैं। आपको तो बड़े बड़े फल देने का सामर्थ्य है। आप तो इन्द्र-सहित सब देवों को भी तार सकते हैं। इसलिए मैं यह आभरण विधिपूर्वक आपको दे रहा हूँ। इसे ले लीजिए।" यह सुन कर रामचन्द्र बोले—हे भगवन्! यह प्रतिग्रह (दान लेना) ब्राह्मणों के लिए है। क्षत्रिय किस तरह प्रतिग्रह ले सकता है? क्योंकि प्रतिग्रह केवल ब्राह्मणों ही के लिए है। वह क्षत्रिय के लिए सर्वथा निन्दित है। ब्राह्मण का दिया हुआ तो क्षत्रिय के लिए और भी निन्दित है।

मुनि ने कहा—"हे राजन्! सुनिए। पहले सत्ययुग था। वह साक्षात् ब्रह्मयुग कहलाता है। उसमें प्रजा बिना ही राजा के थी। उस समय कोई राजा न था। देवताओं के राजा इन्द्र थे। उस समय प्रजा देवों के देव ब्रह्माजी के पास गई और उनसे कहा कि 'आप ने देवों का राजा तो इन्द्र को बना दिया परन्तु हे लोकेश! हमारा कोई राजा नहीं है, हमारे लिए भी एक राजा कर दीजिये जिसकी पूजा कर हम लोग पापरहित हो सुख से रहें। हम बिना राजा के नहीं रह सकते। यह हमारा निश्चय है।' उस समय ब्रह्मा ने इन्द्र आदि लोकपालों को बुलाकर कहा—'तुम लोग अपने अपने अंशों में से कुछ कुछ भाग दो।' ब्रह्मा की आज्ञा से देवों ने अपने अपने तेज में से कुछ कुछ भाग दे दिया। इसके बाद एक बार ब्रह्मा ने छींका। उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका नाम क्षुप रक्खा गया। ब्रह्मा ने उसे देवांशों से मिलाकर प्रजा का

राजा बना दिया। उन देवांशों में से राजा इन्द्र के भाग से आज्ञा देता; वरुण के भाग से शरीर को पुष्ट करता; कुबेर के भाग से प्रजा को धन देता और यम के भाग से प्रजा का शासन करता है। इसलिए आप इन्द्र के भाग से यह आभूषण लीजिए और मुझे मुक्त कीजिए।" यह हाल सुनकर रामचंद्र ने सूर्य की भाँति चमकते हुए उस विचित्र आभूषण को ले लिया। फिर उन्होंने पूछा—"हे भगवन्! यह दिव्य आभूषण आपके पास कहाँ से आया? किसने लाकर आपको यह दिया है? अचरज से मैं आप से यह पूछ रहा हूँ। क्योंकि आप तो विचित्रताओं की खान ही हैं।" रामचन्द्र के पूछने पर मुनि ने कहा—अच्छा, त्रेतायुग का वृत्तान्त सुनिए।

———

६० वाँ सर्ग।

उस आभूषण की प्राप्ति की विस्तृत कथा।

हे रामचन्द्र! पहले त्रेतायुग में एक बड़ा वन था। चारों ओर, सौ योजन तक उसमें पक्षी या जङ्गली जीव कोई न रहता था। मैं उसी में तपस्या करने लगा। मैंने चाहा कि इस वन के ओर छोर का पता लूँ कि यह कितना बड़ा है; परन्तु पता न पाया। हे राघव! उस में फल और मूल बड़े स्वादु थे और अनेक तरह के जङ्गल देख पड़ते थे। उसमें एक तालाब बड़ा रमणीय था। विस्तार उसका चार कोस का था। देखने में वह बड़ा ही सुन्दर मालूम हुआ। उसमें हंस, चक्रवाक और कारण्डव पक्षी सुशोभित थे। कमल और कुमुद के फूल खिल रहे थे, सेवार दिखलाई भी न देती थी। वह बहुत ही आश्चर्ययुक्त था। उसका जल भी बहुत मीठा था। उसीके पास एक बड़ा अद्भुत प्राचीन, पवित्र आश्रम था। परन्तु उसमें एक भी तपस्वी न दिखाई देता था। हे रामचन्द्र! गरमी के समय मैं एक रात को वहीं टिक रहा। सबेरे उस तालाब के किनारे गया तो मैंने उसमें पुष्ट, निर्मल और शोभायुक्त एक मुर्दा देखा। थोड़ी देर तक तो मैं सोचता रहा कि यह क्या है। इसी बीच में क्या देखता हूँ कि ऊपर से एक विमान उतरा। वह रथ बहुत बड़ा, हंस-युक्त और मन की तरह जल्दी चलता था। उस पर एक स्वर्गीय मनुष्य देखने में आया। उसके साथ हज़ारों अप्सरायें थीं जो अच्छे अच्छे आभूषण पहने थीं। उनमें से कोई गाती थी, कोई मृदङ्ग-वीणा और ढोलक बजाती थी, अनेक नाचतीं और कोई चन्द्रमा के समान सफ़ेद सोने के डण्डवाले बड़े क़ीमती चमर डुलाती थीं। उन सुन्दरी अप्सराओं के नेत्र कमल के समान सुन्दर थे। अब वह मनुष्य अपना सिंहासन छोड़ कर उस विमान से नीचे उतरा मानों सूर्य देव सुमेरु का शिखर छोड़ कर उतरे हों। मैं उस समय उसीका सब वृत्त देख रहा था। मैंने देखा कि उसने उतर कर उस मुर्दे के शरीर का सुपुष्ट मांस यथेष्ट भक्षण किया। जब खा पीकर तृप्त हो गया तब उसने तालाब पर हाथ मुँह धोया और फिर वह अपने विमान पर चढ़ने लगा। उस समय मुझ से न रहा गया। मैं उस दिव्य पुरुष से पूछने लगा—'आप कौन हैं? आप देवसदृश रूप पाकर भी ऐसा, निन्दित आहार क्यों करते हैं? आप इसे क्यों खाते हैं? मुझे सब हाल बताइए। हे देवसत्तम! ऐसा कोई न होगा जो ऐसा उत्तम शरीर पाकर ऐसा वीभत्स (घिनौना) आहार

करेगा। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है। हे सौम्य! मैं सब हाल सुनना चाहता हूँ।'

दोहा।

एहि बिधि मेरो वचन सुनि, सो नर देवसरूप।
सत्यप्रिय मंजुल बचन, बोल्यौ रघुवर भूप॥

———

९१ वाँ सर्ग।

उस स्वर्गीय पुरुष की कथा।

हे रघुपते! मेरे सुन्दर वचन सुनकर वह स्वर्गीय पुरुष हाथ जोड़ कर बोला–ब्रह्मन्! मेरे सुख-दुःख के पुराने वृत्तान्त को आप जानना चाहते हैं, अच्छा, सुनिए। मेरे लिए यह बन्धन अनिवार्य हो रहा है।

पहले समय में सुदेव नामक एक राजा था। वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध वीर्यवान् था। बिदर्भ देश का वही नरपति मेरा पिता था। उसकी दो स्त्रियों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक मैं ही 'श्वेत' हूँ दूसरा मेरा छोटा भाई था; उसका नाम सुरथ था। जब मेरे पिता स्वर्गवासी हो गये तब पुरवासियों ने मुझे राजा बना दिया। मैं बड़ी सावधानी से धर्म-पूर्वक राज्य करने लगा। राज्य करते हुए और धर्मानुसार प्रजा का पालन करते हुए हज़ार वर्ष बीत गये। किसी कारण मैं अपनी आयु का समय जान कर वन में चला आया। इसी पशु-पक्षी-रहित वन में, इसी तालाब के किनारे, तपस्या करने के लिए मैंने प्रवेश किया। सुरथ को मैं राज्य पर बैठा आया था। इस सरोवर के किनारे मैंने तीन हज़ार वर्ष तक तपस्या की। उस तपस्या से मैंने ब्रह्मलोक पाया। ब्रह्मलोक तो मिल गया परन्तु मुझे भूख और प्यास उस लोक में भी सताने लगी। इससे मेरी इन्द्रियाँ बहुत पीड़ित होने लगीं। तब मैंने ब्रह्मदेव के पास जाकर कहा—'हे भगवन्! इस लोक में तो भूख और प्यास नहीं लगनी चाहिए। यह मेरे किस कर्म का फल हुआ जो मैं भूख और प्यास के मारे मर रहा हूँ।' मुझे बतला दीजिए, मेरे लिए आहार क्या है? यह सुन कर पितामह ने कहा—"हे सुदेव के पुत्र! तुम्हारे लिए सुन्दर स्वादु मांस आहार है, उसीको भक्षण करो। हे श्वेत! तुमने तपस्या करते समय अपने शरीर को ही पुष्ट किया है इससे तुम निश्चय समझो कि बिना बोया कभी उत्पन्न नहीं होता। तुमने थोड़ा सा भी दान नहीं किया। तुम केवल तपस्या ही करते रहे हो। इसी से स्वर्ग में आने पर भी तुम भूख प्यास से दुखी हो रहे हो। अपने जिस शरीर को तुमने आहारों से तृप्त और पुष्ट किया था, अब उसी को अमृत रस के तुल्य भक्षण करो। तुम्हारी जीविका यही होगी। हे श्वेत! जब उस वन में अगस्त्य मुनि आवेंगे तब तुम इस कष्ट से मुक्त हो जाओगे। क्योंकि वे देवों के भी तारने में समर्थ हैं। तुम्हारी तो कोई बात ही नहीं।" इस तरह ब्रह्मा की आज्ञा पाकर मैं अपने इस मृत शरीर को रोज़ भक्षण करता हूँ। बहुत वर्ष बीत गये; पर यह मेरा मृत शरीर आज तक नष्ट नहीं हुआ। इसी से मेरी तृप्ति भी अच्छी तरह हो जाती है। हे द्विजोत्तम! अब इस कष्ट से मेरा उद्धार कीजिए। क्योंकि कुम्भयोनि महर्षि के बिना इस वन में दूसरे की गति नहीं है। मैं समझ गया कि आप अगस्त्य ही हैं। हे सौम्य! धारण करने के लिए मुझसे यह भूषण लीजिए और मेरे ऊपर कृपा

कीजिए। मैं यह सोने का हस्ताभरण, और अच्छे अच्छे कपड़े, भक्ष्य, भोज्य, आभरण, समस्त काम्य और उपभोग्य वस्तुएँ दान करता हूँ; इन्हें कृपा कर ग्रहण कीजिए। हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मुझे तारने की दया दिखलाइए।"

हे राघव ! इस तरह उस स्वर्गीय मनुष्य की दुःखभरी बातें सुन कर, उसके तारने के लिए, मैंने उसके दिये हुए कपड़े और आभूषण ले लिये। उन चीज़ों को लेते ही वह उसका पहले का मृत शरीर नष्ट हो गया। उसके नष्ट होते ही उस महर्षि को तृप्ति हो गई। हर्षित होकर वह स्वर्ग को चला गया। हे रघुनन्दन ! यह उसी का दिया हुआ भूषण है।

दोहा।

तेहि कारण अद्भुत परम, यह आभरण अनूप।
राजराज तुम्हरे उचित, धारहु यहि रघु भूप ॥

---

९२ वाँ सर्ग।

उस वन की निर्जनता का वृत्तान्त।

ऐसी अद्भुत कथा सुन कर रामचन्द्र बोले—"भगवन् ! वह वन ऐसा निर्जन क्यों हुआ जहाँ वह राजा वैदर्भश्वेत तप करने गया था ?" मुनि ने कहा—"हे रामचन्द्र ! पहले सत्ययुग में राजा मनु इस पृथ्वी का शासन करते थे। उनके पुत्र इक्ष्वाकु भी बड़े प्रसिद्ध हुए। मनु ने उनसे कहा कि 'तुम राजा होकर इस पृथ्वी पर राजवंशों की प्रतिष्ठा करो।' इक्ष्वाकु ने अपने पिता की बात मान ली। मनु बहुत सन्तुष्ट होकर पुत्र से बोले—"हे परमोदार ! इस राज्य के तुम कर्त्ता हो, इसमें सन्देह नहीं। मैं यह भी समझता हूँ कि तुम दण्ड के द्वारा प्रजा की रक्षा करोगे। परन्तु अकारण किसी को दण्ड न देना। सुनो, अपराध करने वालों को जो ठीक ठीक दण्ड दिया जाता है तो वह राजा को स्वर्ग पहुँचाता है। इसलिए हे महाबाहो ! दण्ड देने में बहुत सावधान रहना। ठीक ठीक शासन करने से तुमको धर्म की प्राप्ति होगी। इस तरह पुत्र को अच्छी तरह समझा बुझा कर मनु ब्रह्मलोक को चले गये।

पिता के चले जाने पर इक्ष्वाकु को यह चिन्ता हुई कि मैं पुत्र किस तरह उत्पन्न करूँगा। फिर अनेक तरह के यज्ञ, दान और तप के द्वारा राजा के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। वे पुत्र देवों के पुत्रों के समान थे। उनमें जो सबसे छोटा था वह बड़ा मूर्ख और विद्या-रहित हुआ। वह अपने बड़े भाइयों की सेवा-शुश्रूषा कभी न करता था। उस की ऐसी दशा देखकर पिता ने उसका नाम 'दण्ड' रक्खा। यह नाम उसने यह समझ कर रक्खा कि इस मूर्ख के ऊपर दण्डपात अवश्य होगा। राजा उसके राज्य करने के लिए कोई भयानक प्रदेश ढूँढ़ता रहा, पर न मिला। तब उसने विन्ध्य और शैवल के मध्य देश का राजा उसे बना दिया। वह दण्ड उस रमणीय पर्वतस्थली का राजा हो गया। वहाँ उसने बहुत बढ़िया शहर बसाया। उसका नाम उसने मधुमन्त रक्खा। उसने भार्गव मुनि को अपने लिए पुरोहित बनाया। इन्द्र जिस तरह स्वर्ग का राज्य करते हैं उसी तरह वह राजा दण्ड वहाँ राज्य करने लगा।

दोहा।

सहित पुरोहित दण्ड सो, राजा भयो सचेत।
पालन शासन शास्त्रविध, करत सुबन्धु समेत ॥

---

९३ वाँ सर्ग ।

दण्ड राजा की कथा ।

फिर अगस्त्य मुनि उसी राजा की कथा कहने लगे—"हे राघव ! इस तरह बहुत वर्षों तक वह राजा दण्ड जितेन्द्रियता-पूर्वक राज्य करता रहा। चैत के महीने में एक दिन राजा अपने पुरोहित के रमणीय आसन में गया। वहाँ राजा दण्ड ने भार्गव की लड़की को देखा। इस भूतल पर वह कन्या अपने रूप में अनुपम थी। वह उसी वन-भूमि में घूम रही थी। मूर्ख राजा दण्ड उसे देखते ही काम पीड़ित हो गया। वह घबड़ाकर उस कन्या के पास गया और कहने लगा कि 'हे सुश्रोणि ! तू यहाँ कहाँ से आई ? तू किस की बेटी है ? हे सुमुखि ! मैं काम से पीड़ित हो रहा हूँ। इसी लिए मैं तुझसे पूछ रहा हूँ। इस तरह अज्ञानोन्मत्त कामी राजा की बातें सुनकर वह कन्या नम्रता से कहने लगी कि हे राजन् ! मैं भार्गव मुनि की बड़ी लड़की हूँ। नाम मेरा अरजा है। मैं इसी आश्रम में रहती हूँ। हे राजन् ! बलात्कार से मुझे तू छू न लेना, क्योंकि मैं क्वारी हूँ और पिता के अधीन हूँ। वे चाहे जिससे मेरा विवाह कर दें। मेरा किसी बात में अधिकार नहीं है। तुम भी उनके शिष्य ही हो। तुम यदि कोई बात अन्यथा करोगे तो वे बहुत क्रुद्ध होंगे और शाप दे देंगे। मेरे पिता क्रोध से तीनों लोकों को भस्म कर सकते हैं। इसलिए जो करना हो वह धर्म-मार्ग से करना चाहिए। तुम मेरे पिता से मुझे माँग सकते हो। यदि तुम मुझे उनसे माँगोगे तो मेरे पिता मुझे अवश्य दे देंगे।" इस तरह कुमारी अरजा की बातें सुनकर वह कामी मदोन्मत्त राजा हाथ जोड़ कर उससे कहने लगा कि 'हे सुश्रोणि ! मेरे ऊपर कृपा कर। समय न बिता। तेरे लिए मेरे प्राण निकले जाते हैं। तुझे पाकर चाहे मेरा वध हो, चाहे मुझे घोर पाप हो, पर तू तो मुझे स्वीकार कर ले। मैं बहुत विह्वल हो रहा हूँ।' यह कह कर उसने बलात्कार से उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और यथेष्ट विहार किया। इस तरह वह राजा दण्ड बुरा भयानक अनर्थ करके बहुत जल्दी अपने मधुमन्त नगर को चला गया।

दोहा।

अरजा आश्रम के निकट, रोवत अतिशय दीन।
त्रस्तहृदय निज पिता को, बाट जोहती छीन॥

---

९४ वाँ सर्ग।

राजा दण्ड को भार्गव का शाप।

उस समय देवर्षि भार्गव अपने शिष्यों के साथ कहीं बाहर गये हुए थे। उन्होंने थोड़ी ही देर बाद वह हाल सुना। वे अपने शिष्यों को साथ लिये अपने आश्रम में लौट आये। उस समय वे क्षुधा से पीड़ित थे। आश्रम में आकर देखा कि अरजा बेटी दीन और धूल से भरी हुई प्रातःकालीन फीकी चन्द्रिका की नाईं देख पड़ती है। उसमें पहले की सी कान्ति नहीं दिखाई देती। उसे देखते ही ऋषि को क्रोध उत्पन्न हुआ। उसका एक कारण यह भी था कि वे भूखे थे। वे ऐसे क्रुद्ध हुए मानों अभी तीनों लोकों को भस्म कर देंगे। वे अपने शिष्यों से बोले—"देखो, अनात्मज्ञ और विपरीत काम करने वाले दण्ड पर आज, अग्नि की लौ की नाईं, हमारे क्रोध से उपजी हुई कैसी घोर विपत्ति

आ पड़ी। देखो, इस दुरात्मा ने जलती हुई आग की लौ को हाथ से स्पर्श किया है। इसलिए परिवार सहित इस दुर्बुद्धि दुरात्मा का नाश आ पहुँचा। इसने ऐसा दुराचार किया है इसलिए यह मूर्ख इस पाप कर्म का फल पावेगा। देखो, सात रात में यह पापी राजा पुत्र, सेना और वाहनों-सहित नष्ट हो जायगा। इन्द्र इसके राज्य के सौ योजन तक चारों ओर से धूलि की वर्षा कर इसके राज्य को ध्वस्त कर देंगे। इसके राज्य में जितने स्थावर और जंगम जीव हैं सब उस धूलि की वर्षा से मर जायँगे। 'दण्ड' का जितना देश है वह सब सात दिन में चौपट हो जायगा।" क्रोध के मारे लाल लाल आँखें करके ऋषि ने शाप देकर आश्रम-वासी मनुष्यों से कहा—"तुम सब दण्ड की अधिकृत भूमि छोड़ कर और कहीं जाकर रहो।" मुनि की आज्ञा पाकर सब आश्रम-वासी उस देश से बाहर जा बसे। इस तरह आश्रम में रहने वाले मुनियों से कह कर फिर वे अपनी पुत्री अरजा से बोले—"हे मूर्खा! तू इसी आश्रम में रह। यह जो योजन भर का मनोहर सरोवर है इसका तू निश्चिन्त हो कर भोग कर। यहीं अपने उद्धार होने के समय की प्रतीक्षा करती रह। तेरे पास जो जीव रहेंगे वे उस धूलि की वर्षा से नष्ट न होंगे।" ब्रह्मर्षि की इस आज्ञा को अरजा ने, बहुत दुखी होकर, मान लिया। फिर भार्गव मुनि भी दूसरी जगह जा बसे। इस के बाद मुनि के शाप के अनुसार दण्ड का सब राज्य धूलि से नष्ट हो गया। उसी समय से विन्ध्य और शैवल के बीच की पृथ्वी 'दण्डकारण्य' नाम से प्रसिद्ध हुई। वहाँ तपस्वी लोग रहते हैं। इसलिए वह जनस्थान भी कहलाता है।

हे रामचन्द्र! जो तुमने मुझसे पूछा था वह सब हाल मैंने कह सुनाया। अब सन्ध्योपासन करने का समय बीता जाता है। देखो, ये महर्षि लोग चारों ओर अपने अपने घड़े भर कर और स्नान आदि करके सूर्य का उपस्थान कर रहे हैं। जो वेदपाठी ब्राह्मण हैं उन्होंने वेद के ब्राह्मण-भाग का पाठ कर लिया, वे सूर्य की स्तुति कर चुके। सूर्य ने अपनी पूजा पाकर अस्ताचल का मार्ग लिया इसलिए अब तुम भी जाकर नित्यकर्म करो।

दोहा।

कहत सुनत इतिहास के, रविहिं अस्तमय जान।
सायं सन्ध्या करन हित, दोऊ उठे सुजान॥

---

९५ वाँ सर्ग।

ऋषि से बिदा हो राघव का अयोध्या को जाना।

ऋषि की आज्ञा से रामचन्द्रजी अप्सराओं से सेवित सरोवर पर गये। वहाँ सन्ध्योपासन कर वे फिर ऋषि के आश्रम में आगये। ऋषि ने महाराजा को बहुत से कन्द, मूल, ओषधियाँ और शाली आदि पवित्र अन्न भोजन के लिए दिये। रघुनन्दन अमृत के तुल्य पदार्थों का भोजन कर तृप्त हो उस रात को वहीं ठहर गये। फिर प्रातः काल उठ कर सबेरे के जरूरी काम करके, वे ऋषि के पास गये। ऋषि को प्रणाम करके उन्होंने कहा—"महाराज! अपने स्थान पर जाने के लिए मुझे आज्ञा दीजिए। मैं धन्य हूँ जो ऐसे महात्मा के दर्शन हुए। अपने को पवित्र करने के लिए मैं फिर कभी आपके दर्शन करने आऊँगा।" यह सुनकर ऋषि प्रसन्न हो कर के

बोले—"हे रामचन्द्र! यह तुम्हारा कहना बड़ा अद्भुत और तुम्हारे ही योग्य है। सुन्दर अक्षरों से युक्त तुम्हारी बातें बड़ी अद्भुत हैं। तुम्हीं सब प्राणियों को पवित्र करते हो। हे राम! जो तुमको थोड़ी भी देर देखते हैं वे पवित्र, स्वर्ग-तुल्य और देवों के भी पूजनीय हो जाते हैं। जो तुम को क्रूर दृष्टि से देखते हैं वे यम के दण्ड से ताड़ित हो नरक-गामी होते हैं। हे रघुश्रेष्ठ! प्राणियों के पावन तुम्हारा जो गुणानुवाद करेंगे वे सिद्धि पावेंगे। बहुत अच्छा, यदि आप जाना चाहते हैं तो निर्भय हो कर सुखकारक मार्ग से प्रस्थान कीजिए और धर्म-पूर्वक राज्य का शासन कीजिए। आपही जगत् के लिए गतिरूप हैं।"

मुनि के ये वचन सुन कर ऋषि को और वहाँ के सब तपस्वियों को प्रणाम कर महाराज विमान पर सवार हुए। उस समय चारों ओर से ऋषि लोग आशीर्वाद देने और स्तुति करने लगे मानों देवता इन्द्र की स्तुति करते हों। जब विमान आकाश में उड़ने लगा तब रामचन्द्र की ऐसी शोभा हुई जैसे वर्षा के समय मेघमण्डल के पास चन्द्रमा की शोभा होती है। दोपहर के समय महाराज अयोध्या में पहुँच गये और बीच की ड्योढ़ी पर उतर पड़े। उन्होंने विमान को आज्ञा दी कि अब तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो। उसे बिदा कर वे वहाँ के द्वारपाल से बोले—"तुम शीघ्र जाकर लक्ष्मण और भरत से मेरे आने का संदेशा कहो और उनको यहाँ बुला लाओ।"

---

६६ वाँ सर्ग।

प्रभु रामचन्द्र का राजसूय यज्ञ करने का विचार करना।

प्रभु की आज्ञा पा कर द्वारपाल ने दोनों भाइयों को बुलाकर महाराज के पास उपस्थित कर दिया। तब महाराज ने दोनों भाइयों को गले से लगा कर कहा—"मैंने ब्राह्मण का काम तो ठीक ठीक कर दिया। अब मैं चाहता हूँ कि फिर कुछ धर्म-सेतु का निर्माण करूँ। वह धर्म-सेतु ऐसा होना चाहिए जो अक्षय और अव्यय हो, वह सदा स्थिर बना रहे। क्योंकि ऐसे धर्म का कीर्त्तन भी सब पापों का नाश करता है। मैं तुम दोनों के साथ राजसूय-यज्ञ करना चाहता हूँ। उसी में सनातन स्थायी धर्म है। देखो, मित्र देवता ने राजसूय-यज्ञ कर के वरुणत्व को पा लिया। इसी यज्ञ के द्वारा सोम ने लोकों में अखण्ड कीर्ति पाई है। इसलिए आज हम लोग इस विषय में जो कुछ कल्याण की बात हो उसका चिन्तन करें। इस के विषय में जो कुछ हित और आगे फलदायक बात हो उसे तुम दोनों भी बतलाओ।" इस तरह ज्येष्ठ भाई के कहने पर भरत ने हाथ जोड़ कर कहा—"हे साधो! आपमें उत्कृष्ट धर्म, पृथ्वी, और यश प्रतिष्ठित है। जितने राजा हैं वे सब आपको ऐसा मानते हैं जैसा ब्रह्मा को देवता लोग मानते हैं। वे आप को महात्मा और लोकनाथ समझते हैं। जैसा हम सब आपको मानते हैं और जैसे पुत्र पिता को मानता है उसी तरह वे आप को मानते हैं। आप पृथ्वी के गतिरूप और सब प्राणियों के आधारभूत हैं। आप जो इस तरह का यज्ञ करना चाहते हैं सो

किस लिए? ऐसा करने से पृथ्वी के राज-वंशों का विनाश देख पड़ता है। हे राजन्! इस यज्ञ में पौरुष-सम्पन्न पुरुषों का नाश हो जायगा। क्योंकि इसमें परस्पर क्रोध उत्पन्न होगा। इसलिए हे पुरुष-शार्दूल! सम्पूर्ण पृथ्वी का घात करना आपको उचित नहीं है, क्योंकि वह तो आपके वंश में है ही।"

भरत के ये अमृत के तुल्य वचन सुन कर महा-राज बड़े प्रसन्न हुए। वे बोले—"हे भरत! तुम्हारे कथन से मैं प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। यह तुम्हारा कथन पौरुषयुक्त और धर्मयुक्त है। राजसूय-यज्ञ करने से पृथ्वी के पालन करने में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अब मैं उस ओर से अपना मन हटाये लेता हूँ। क्योंकि जिसमें लोगों को पीड़ा पहुँचे वह काम न करना चाहिए। बालकों का भी अच्छा वचन ग्रहण करना उचित है।

---

९७ वाँ सर्ग।

अश्वमेध यज्ञ के लिए लक्ष्मण का विचार।

दोनों भाइयों की बातें सुनकर लक्ष्मण ने कहा—"हे रघुनन्दन! अश्वमेध नामक यज्ञ सब पापों का नाशक है। यदि आप उसे करना चाहें तो कीजिए। प्राचीन वृत्तान्त ऐसा सुना जाता है कि जब इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी तब उन्होंने यह यज्ञ किया था और इससे वे पवित्र हुए थे। हे महाबाहो! देवासुर-संग्राम में वृत्रासुर नामक एक बड़ा नामी दैत्य था। वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन ऊँचा था। तीनों लोकों को वह स्नेहपूर्वक देखता था। वह बड़ा धर्मज्ञ, कृतज्ञ और बुद्धिमान् था। वह संपूर्ण पृथ्वी का धर्म से शासन करता था। उसके राज्य में यह पृथ्वी सम्पूर्ण पदार्थों को यथोचित, कामधेनु की नाईं, उत्पन्न करती थी। रसीले फल, फूल और मूल होते थे। उसके राज्य में बिना जोते हुए खेतों में भी अन्न की उत्पत्ति होती थी। इस प्रकार से वह बहुत समय तक राज्य करता रहा। एक बार उसके मन में यह बात आई कि तप करना चाहिए। क्योंकि तप के समान कल्याण दूसरी बात में नहीं है। संसार के जो सुख हैं वे तो अज्ञान के तुल्य हैं। इस तरह विचार कर उसने अपने बड़े लड़के मधुरेश्वर को राज्य-भार सौंप दिया और वह सब देवताओं को ताप देनेवाला बड़ा उग्र तप करने लगा। उसे ऐसा तप करते देख कर इंद्र बड़े दीन हो करके विष्णु के पास गये और कहने लगे कि हे महाबाहो! वृत्र ने अपने तपोबल से सब लोकों को जीत लिया। वह बलवान् और धर्मात्मा भी है। मैं उसका शासन नहीं कर सकता। हे सुरेश्वर! यदि वह फिर तप करना आरम्भ कर देगा तो जब तक ये सब लोक विद्यमान रहेंगे तब तक उसी के वश में रहेंगे। इससे हे महाबल! आप उस परमोदार की उपेक्षा न करें। यदि आप क्रुद्ध हों तो वह क्षण भर भी न ठहर सके। हे विष्णो! जब से वह आपका प्रीतिपात्र हुआ है तभी से वह लोकों का नाथ होगया। इसलिए आप लोकों पर कृपा कीजिए। आपही के करने से यह जगत् शान्त और पीड़ा-रहित होगा। हे विष्णो! ये देवता लोग आपही की ओर दीनमुख हो देख रहे हैं। इसलिए उस दैत्य का वध कर इनकी सहायता कीजिए।"

दोहा।

तुमहिं सहायक देव के, सब दिन ते सुरनाथ।
अगतिन के गति तुमहिं, प्रभु वेद विदित गुणगाथ॥

९८ वाँ सर्ग।

वृत्रासुर का वध और इन्द्र को ब्रह्महत्या का घेरना।

ऐसी अपूर्व कथा सुनकर महाराज लक्ष्मण से बोले—"हे सुव्रत! यह वृत्र के मारने की बात विस्तार-पूर्वक कहो।" लक्ष्मण ने कहा—"हे राघव! उस समय इन्द्र आदि देवताओं का गिड़गिड़ाना सुनकर विष्णु ने कहा कि हे देवताओ! मैं वृत्रासुर की मित्रता रूप बन्धन से बँध रहा हूँ। इसलिए मैं आप लोगों की प्रीति के लिए उसे मार तो नहीं सकता, परन्तु आप लोगों के सुख का उपाय मुझे अवश्य ही करना है। अतएव मैं उसका उपाय कर दूँगा। उपाय हो जाने से इन्द्र ही उसको मारेंगे। हे सुरश्रेष्ठ! देखो, मैं अपने तीन भाग करूँगा। उनमें से मेरा एक रूप तो इन्द्र में व्याप्त रहेगा; दूसरा वज्र में रहेगा और तीसरा भूतल में, तब वह दैत्य मारा जायगा।" विष्णु का यह कथन सुन कर देवता लोग बोले—बहुत अच्छा; भगवन्! आप ऐसा ही कीजिए। आपका मंगल हो। अब हम लोग जाते हैं। आप अपने तेज से इन्द्र में व्याप्त हूजिए। इसके बाद इन्द्र आदि सब देवता उस वन में गये जहाँ पर वृत्रासुर था। इन्होंने वहाँ जाकर तपस्या करते हुए उस दैत्य को देखा। वह अपनी तपस्या के तेज से तीनों लोकों को पीता हुआ आकाश को भस्म सा कर रहा था। वृत्रासुर का वह रूप ही देख कर सब देवता डर गये और कहने लगे—"भाई! हम इसको कैसे मारेंगे और क्या करने से हमारा पराजय न होगा।" इस तरह देवता लोग सोच ही रहे थे कि इन्द्र ने बज्र लेकर वृत्रासुर के सिर पर प्रहार कर दिया। कालाग्नि के सदृश भीषण, प्रदीप्त और महाशिखा से युक्त उस वज्र के प्रहार से वृत्रासुर का मस्तक गिर पड़ा। इससे त्रैलोक्य डर गया। इन्द्र उसके असंभाव्य (एक तो निरपराधी, दूसरे तपश्चर्या में तत्पर मौन का) वध देखकर ऐसे घबरा कर भागे कि लोका-लोकाचल पर्वत के उस पार घोर अन्धकार में चले गये। परन्तु ब्रह्म-हत्या उनके पीछे पीछे दौड़ी गई और उनके शरीर पर जा गिरी। इससे इन्द्र को बड़ा ही दुख हुआ। अब बेचारे देवता लोग इन्द्र के न रहने से, अग्निदेव को आगे कर, त्रिभुवनेश्वर श्रीविष्णु की शरण में गये। वे उनकी बार बार स्तुति कर कहने लगे कि 'हे प्रभो! आप इस जगत् के गति, पिता और आदि हैं। सब प्राणियों की रक्षा के लिए आपने विष्णु रूप धारण किया है। हे देवों में श्रेष्ठ! वृत्रासुर तो मारा गया परन्तु इन्द्र को ब्रह्महत्या बहुत सता रही है। अब उसके छूटने का उपाय बताइए।' यह सुन कर विष्णु बोले—अच्छा, इन्द्र से कहो कि अश्वमेध यज्ञ से मेरी आराधना करे तो मैं उसको पवित्र कर दूँगा। इस आराधना से पवित्र होकर इन्द्र फिर इन्द्रासन पर बैठ तुम्हारे देवलोक का राज्य करेंगे।

सोरठा।

एहि विधि करि उपदेश, विष्णु गये निज धाम कहँ।
भे पवित्र त्रिदशेश, अश्वमेध शुचि याग ते॥

—

९९ वाँ सर्ग।

इन्द्र के यज्ञ की कथा।

ब्रह्महत्या लगने से इन्द्र अचेत हो, लोकों के अन्त में जाकर, गेडुरी मारे साँप की नाईं चुपचाप बैठ रहे। उनके लापता हो जाने से, अपने सब काम छोड़ देने से, संपूर्ण जगत् व्याकुल हो गया। पृथ्वी ध्वस्त सी होकर स्नेहहीन होगई। जंगल सूख गये। बड़े बड़े जलाशय और नदियाँ निर्जल होगईं। बिना वर्षा के प्राणियों को क्षोभ उत्पन्न हुआ। संसार की यह दशा देख कर, लोकों का क्षय देखकर, देवता लोग घबरा उठे। फिर विष्णु के उपदेश का स्मरण कर सब देवता, उपाध्याय और महर्षियों के साथ, वहाँ गये जहाँ भयभीत और अचेत होकर इन्द्र बैठे थे। उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि इन्द्र ब्रह्महत्या से लिप्त होकर पीड़ा पा रहे हैं। तब देवताओं ने बड़ी सामग्री और यज्ञ का सब समान इकट्ठा कर इन्द्र के लिए वह अश्वमेध प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में इन्द्र ही यजमान हुए। यज्ञ समाप्त होते ही ब्रह्महत्या इन्द्र के शरीर से निकल कर बोली कि मेरे रहने के लिए आप लोग कौनसा स्थान देंगे? तब देवता लोग सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर बोले—हे दुरासदे! तुम अपने चार टुकड़े कर डालो। देवताओं की बात सुनकर ब्रह्महत्या ने अपने चार टुकड़े करके दूसरी जगह रहने के लिए यों कहा—"हे देवताओ! मैं एक अंश से बरसात में, चार महीने तक, पूर्ण जलवाली नदियों में अहंकार का नाश करती हुई यथेष्ट संचार करूँगी। दूसरे अंश से भूतल पर ऊसर रूप से और तीसरे से युवती स्त्रियों में तीन रात तक, तथा चौथे अंश से मैं उन हत्यारों में रहूँगी जो निरपराध ब्राह्मणों को मारेंगे।

यह सुनकर देवता बोले—"हे दुष्टनिवासिनि! तू जैसा कहती है वैसाही कर।" इसके बाद देवताओं ने प्रीतिपूर्वक इन्द्र को प्रणाम किया। अब इन्द्र पीड़ारहित और पवित्र हो गये। इन्द्र के फिर प्रतिष्ठित हो जाने से जगत् शान्त हो गया और इन्द्र ने उस अद्भुत यज्ञ की बड़ी प्रतिष्ठा की। हे रघुनन्दन! इसी लिए अश्वमेध यज्ञ का ऐसा प्रभाव है। आप उसे ही कीजिए।

दोहा।

लछिमन के शुभ वचन सुन, ज्ञानिशिरोमणि राम।
मन महँ अति हर्षित भये, श्रीपति शोभाधाम॥

---

१०० वाँ सर्ग।

पुरूरवा के जन्म की कथा।

इस तरह लक्ष्मण की कही हुई कथा सुनकर महाराज हँस कर बोले—"हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! यह जो तुमने कथा कही वह ऐसी ही है। मैंने सुना है कि पहले कर्दम प्रजापति के पुत्र, इल, वाह्लीक देश के राजा हुए। उन्होंने सब पृथ्वी अपने वश में कर पुत्र की नाईं उसका पालन किया। बड़े उदार देवता, महाधनी दैत्य, नाग, राक्षस, गन्धर्व और यक्ष, ये सब उनसे डरते और उनको पूजते थे। जब वह राजा क्रुद्ध होता था तब उससे तीनों लोक डर जाते थे। वह राजा बड़ा धर्मात्मा और वीर्यवान् था। एक बार चैत के महीने में अपनी सेना के साथ वह शिकार के लिए निकला। उस समय उसने सैकड़ों हज़ारों जंगली जीवों को मारा। परन्तु इतने पर भी

उसकी तृप्ति न हुई। तरह तरह के दश हजार मृग उसके हाथ से मारे गये। इसी तरह शिकार खेलता खेलता वह राजा उस वन में पहुँचा जहाँ स्कन्द का जन्म हुआ था। उस देश में भगवान् शिव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। उनके अनुचर भी उन्हीं के पास थे। उस समय पार्वती को प्रसन्न करने के लिए शिव ने स्त्री का रूप बना लिया। उस समय एक और भी आश्चर्यकारक बात हुई। वह यह कि उस पर्वत के झरने के पास जो जंगल था उसमें जितने पशु, पक्षी, मृग और वृक्ष भी पुरुषवाची थे वे सब स्त्री हो गये। कहाँ तक कहें जितनी चीजें पुरुषवाचक थीं वे सब शिव के प्रभाव से स्त्री बन गईं। इसी बीच में कर्दम का पुत्र इल नामक राजा भी हजारों जीवों को मारता हुआ उसी जगह जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि मृग, पक्षी और साँप आदि सभी स्त्री स्वरूप हैं। वहाँ पुरुष जाति का कोई पशु-पक्षी तक नहीं है। इसके बाद उसने अपनी और अपनी सेना की ओर नजर डाली तो क्या देखा कि वे सभी स्त्री हो गये। यह चमत्कार देखतेही राजा बड़ा दुखी हुआ। जब उसे मालूम हुआ कि यह सब शिव के प्रभाव से हुआ है, तब वह बहुत डर करके महेश्वर की शरण में जाकर बहुत गिड़गिड़ाने लगा। तब वरदाता शिव हँसकर प्रजापति के उस पुत्र से बोले—"हे कर्दम के पुत्र राजर्षे! उठो उठो, वर माँगो। पर मैं तुम्हारा स्त्रीत्व नहीं बदल सकता। इसलिए केवल इस बात को छोड़ कर और जो कहो सो करूँ।" यह सुन कर राजा बहुत शोकार्त्त हुआ। उसने पुरुषत्व के सिवा दूसरा वर उमापति से नहीं चाहा। फिर वह बड़ी भक्ति और नम्रता से प्रणाम कर उमा देवी से बोला—"हे भवानी. हे वरदायिनि! तुम सब लोकों को वरदान देती हो। तुम्हारा दर्शन अमोघ है। अब मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि करो।" राजा की प्रार्थना सुन और उसके मन का अभिप्राय जानकर भगवती शिव की सम्मति से बोलीं—"हे राजन्! तुझे आधा वरदान महादेवजी दें और आधा मैं दूँगी। इसलिए मैं स्त्रीत्व और पुरुषत्व के विषय में तुझे आधा वर दे सकती हूँ। जैसा तुम चाहो वैसा वर माँगो।" यह अद्भुत बात सुन कर राजा प्रसन्न हो बोला—"हे त्रैलोक्यसुन्दरि! यदि तू प्रसन्न है तो मैं चाहता हूँ कि एक महीने तक मैं पुरुष और एक महीने तक स्त्री बना रहूँ।" पार्वती ने कहा—"अच्छा, ऐसा ही होगा। जब तू स्त्री रहेगा तब अपने पुरुष-धर्म को याद न कर सकेगा। और जब पुरुष होगा तब स्त्रीभाव का तुझे स्मरण न होगा।"

दोहा।

एक मास भूपति पुरुष, एक मास महँ नारि।
नारी नाम इला भयो, हर प्रभाव निरधारि॥

---

१०१ ला सर्ग।

किंपुरुषों की उत्पत्ति।

यह विचित्र कथा सुनकर लक्ष्मण और भरत बड़े चकित हुए। वे हाथ जोड़ कर महाराज से बोले—"प्रभो! जब वह राजा स्त्री होता तब क्या क्या दुर्गति भोगता और पुरुष होने की दशा में क्या किया करता था।" दोनों भाइयों का कौतूहल देख कर महाराज बोले, सुनो—"पहले महीने में जब वह सुन्दरी स्त्री हुआ तब स्त्री बने हुए अपने नौकरों के साथ उसी जंगल में घुस कर पैदल ही

विचरने लगा। उस जंगल में अनेक वृक्ष, लता, और गुच्छे आदि की मनोहर छटा थी। वहाँ वह इला नामक सुन्दरी स्त्री अपने सब वाहन छोड़ कर पर्वत की कन्दरा में घूमने लगी। उसी वन के पास एक बड़ा सुन्दर तालाब था जहाँ तरह तरह के पक्षी रहते थे। वहाँ पर उस इला ने चन्द्रमा के पुत्र बुध को देखा, जो अपने शरीर ही से प्रज्वलित साक्षात् पूर्ण चन्द्रमा की सी शोभा दे रहा था। वह उसी तालाब के जल के भीतर बड़ी उग्र तपस्या कर रहा था। वह बड़ा यशस्वी, परोपकारी और दयालु देख पड़ता था। कुछ देर बाद इला स्त्री ने स्त्रीत्वप्राप्त पुरुषों के साथ सरोवर का जल खलबला डाला। उस समय उसकी ओर देख कर बुध कामबाणों के वश में हो अचेत सा हो गया। त्रैलोक्य-सुन्दरी इला की ओर देखता हुआ वह यही सोच रहा था कि यह तो देवाङ्गना से भी अधिक सुन्दरी देख पड़ती है। मैंने तो आज तक ऐसी सुन्दरी कोई देवकन्या, नागकन्या, असुर-तनया और अप्सरा भी नहीं देखी। यदि इसका विवाह दूसरे पुरुष के साथ न हुआ हो तब तो यह मेरे ही योग्य है। इस तरह मन में विचार कर बुध जल से बाहर निकला और आश्रम में आकर वह उन स्त्रियों को बुलाने लगा। उन सबने आकर उसको प्रणाम किया। बुध ने कहा—"यह लोकसुन्दरी किसकी स्त्री है? यहाँ यह किस लिए आई है?" यह सुन कर वे स्त्रियाँ बोलीं—"हे भगवन्! यह स्त्री हम सब की स्वामिनी है। इसके पति नहीं है। यह हम लोगों के साथ इस जंगल के प्रान्तों में बिचरती रहती है।" बुध ने अपनी आवर्त्तनी नामक विद्या के जोर से उन स्त्रियों का सब हाल जान लिया। फिर बुध ने कहा—अच्छा, अब तुम सब किंपुरुषी होकर इस पर्वत के प्रान्त में रहा करो। लो अब देर न करो, अपने रहने के लिए स्थान तैयार करो। तुम्हारे भोजन के लिए मैं मूल, फल, पत्ते आदि का प्रबन्ध कर दिया करूँगा। तुम अपने लिए किंपुरुष नामक पतियों को भी पाओगी।

दोहा।

एहि बिधि बुध के वचन तें, भईं किंपुरुष नारि।
तेहि गिरि पर तिनको भयो, सुन्दर वास सुधारि॥

—

१०२ रा सर्ग।

इला की कथा।

यह कथा सुन कर उन दोनों भाइयों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर महाराज रामचन्द्र प्रजापति के पुत्र की कथा कहने लगे। उन्होंने कहा कि बुद्ध ने एकान्त पाकर इला नामक स्त्री से हँस कर कहा—"हे वरारोहे! मैं चन्द्र का प्रिय पुत्र हूँ। स्नेह की दृष्टि से तू मुझे भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट कर।" एकान्त स्थान में यह बात बुध के मुँह से सुनते ही इला ने कहा—"हे सौम्य! मैं तो कामचारिणी और तुम्हारे वश में हूँ। तुम जैसा चाहो करो।" यह सुनते ही वह कामी बुध उसके साथ विहार करने लगा। वह वैशाख का महीना उसे विहार करने ही में बीत गया। महीना समाप्त होने पर प्रजापति का पुत्र इल प्रातःकाल पुरुष बन गया। और बिछौने पर जाग कर क्या देखता है कि चन्द्र का पुत्र उस सरोवर में ऊपर को बाहें किये तप कर रहा है। उस समय राजा ने उससे कहा—"हे

भगवन्! मैं सेना सहित इस दुर्ग पर्वत पर आया था पर मालूम नहीं कि मेरी सेना कहाँ चली गई।" वह राजर्षि अपनी उस अवस्था की बात भूल गया था। उसकी बात सुन कर बुध ने समझाते हुए कहा—"पत्थरों की बड़ी भारी वर्षा हुई थी। उससे तुम्हारे सब नौकर मरे हुए पड़े हैं। वायु और वृष्टि के डर से पीड़ित हो कर तुम इस आश्रम में सो गये थे। अब तुम निर्भय रहो। किसी बात की चिन्ता मत करो। इस आश्रम में फलमूल खाकर निवास करो।" यह सुनकर वह अपने नौकरों के नष्ट हो जाने से दीन होकर बोला—'हे मुने! यद्यपि मेरे पास एक भी नौकर नहीं रहा, सभी मारे गये, तो भी मैं राज्य नहीं छोड़ सकता, क्योंकि बिना राज्य के मैं दूसरा व्यापार नहीं कर सकता। हे ब्रह्मन्! मेरा बड़ा लड़का शशबिन्दु धर्म में तत्पर और राज्यशासन के योग्य है। सो वही राजगद्दी पर बैठेगा। अब राज्य करने का मुझे उत्साह नहीं होता। क्योंकि अपने नौकरों के स्त्री पुत्र आदि परिवार को मैं किस तरह समझाऊँगा; उन लोगों से मैं यह किस तरह कहूँगा कि वे लोग मारे गये।" राजा के ये वचन सुन कर मुनि ने समझाते हुए कहा—"हे कर्दम के पुत्र! तुम सन्ताप न करो। एक वर्ष बीत जाने पर मैं तुम्हारे हित की एक बात करूँगा।" वह सुन कर वह राजा वहीं रहने लगा। एक महीने तक तो स्त्री होकर वह बुध के साथ रमण करता और महीने भर पुरुष होकर धर्माचरण करता था। अब नवें महीने उस स्त्रीरूप राजा के एक पुत्र हुआ। नाम उसका पुरूरवा रक्खा गया। पुत्र पैदा होते ही उसने उसको बुध के हाथ में दे दिया। जब वह राजा पुरुष बन जाता था तब बुध उसको अनेक तरह की कथाएँ सुना कर आनन्दित रखता था।

दोहा।

संवत्सर भर नृपति कहँ, सोमपुत्र तहँ राखि।
समाश्वासपूर्वक कथा, बहु विधि चित्र सुभाखि॥

---

१०३ रा सर्ग।

यज्ञ द्वारा राजा का स्त्रीभाव छूट जाना।

यह अद्भुत कथा सुन कर लक्ष्मण और भरत फिर पूछने लगे—"हे महाराज! एक वर्ष तक राजा ने वहाँ रह कर फिर क्या किया?" रामचन्द्र ने कहा—एक वर्ष बीत जाने पर जब फिर राजा पुरुष हुआ तब बुध ने संवर्त, भार्गव, च्यवन, अरिष्टनेमी, प्रमोदन, और मोदकर दुर्वासा आदि ऋषियों को बुलाकर विनयपूर्वक कहा कि हे भाइयो! यह कर्दम का पुत्र महाबाहु राजा इल है। इसकी जो दशा है वह तो आप लोगों को मालूम ही है। आप लोग ऐसा काम कीजिए जिससे इस की भलाई हो। इस तरह वे लोग परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में बहुत से ब्राह्मणों को साथ लिये कर्दम ऋषि भी वहीं आ पहुँचे। पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार, और ओंकार ये सभी वहाँ इकट्ठे हुए। वे सब लोग वाह्लीकपति राजा के विषय में प्रसन्नतापूर्वक विचार करने लगे। कर्दम मुनि ने अपने पुत्र के हित के विषय में कहा कि हे ब्राह्मण लोगो! इस राजा के कल्याण के विषय में जो मैं कहता हूँ वह सुनिए। "शिव के प्रसन्न हुए बिना इसका मङ्गल हो नहीं सकता और अश्वमेध के सिवा दूसरा यज्ञ शिव को प्यारा नहीं है। इसलिए

आओ, हम सब मिल कर राजा के लिए अश्वमेध करें।" इसे सब ने स्वीकार किया। संवर्त ऋषि के शिष्य राजर्षि मरुत्त नें यज्ञ का भार अपने जिम्मे लिया। बुध के आश्रम के पास ही वह यज्ञ किया गया। उससे भगवान् शिव बड़े सन्तुष्ट हुए। यज्ञ समाप्त होने पर 'इल के समक्ष' वे ब्राह्मणों से बोले—"हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस यज्ञ से और आप लोगों की भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। आप लोग बतलाइए कि मैं इस वाह्लीकपति के विषय में क्या करूँ।" शिव के मुँह से यह निकलते ही ब्राह्मण लोग कहने लगे—"हे प्रभो! इसको संपूर्ण रूप से आप पुरुष बना दीजिए।" ब्राह्मणों की यह प्रार्थना सुन कर 'तथास्तु'—ऐसा ही हो—कह करके शिव जी अन्तर्द्धान हो गये। यज्ञ तो समाप्त हो ही चुका था। ब्राह्मण लोग भी अपने अपने घर को रवाना हो गये। तब राजा ने अपनी पहली राजधानी 'वाल्ही' को छोड़ कर मध्य देश में एक बहुत उत्तम और यशस्कर नगर बसाया। उसने वाल्ही में अपने पुत्र शशबिन्दु को राजा बना दिया और स्वयं उस नये प्रतिष्ठान नामक नगर का राजा हुआ। राजा का अन्त होने पर, बुध के द्वारा उत्पन्न, पुरूरवा प्रतिष्ठानपुर का राजा हुआ।"

दोहा।

यह प्रभाव हयमेध को, एहि विध अति विख्यात।
जेहि ते स्त्री पुरुष भयो, इला नाम सो तात॥

---

१०४ था सर्ग।

महाराज रामचन्द्र का अश्वमेध यज्ञ।

इस प्रकार कथा सुनाकर महाराज बोले—"हे लक्ष्मण! वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि और कश्यप तथा अश्वमेध यज्ञ करने में चतुर ब्राह्मणों को बुलाओ। फिर मैं उनकी सलाह से अच्छे लक्षणों वाले घोड़े को, पूजा करके छोड़ूँगा।" लक्ष्मण ने आज्ञा पाकर सब ब्राह्मणों को बुलाया। तब रामचन्द्र ने सबको प्रणाम किया और वे सब आशीर्वाद देने लगे। ब्राह्मणों को हाथ जोड़ कर रामचन्द्र ने उनसे कहा कि महाराज! मैं अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ। यह सुनकर ब्राह्मणों ने शिव को प्रणाम कर रामचन्द्र के कथन को प्रशंसा-पूर्वक स्वीकार किया। तब रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हो लक्ष्मण से कहने लगे—"हे महाबाहो! सुग्रीव के पास दूत भेजो ताकि वे बानरों और भालुओं को साथ लेकर यज्ञ का महोत्सव देखने के लिए आवें। विभीषण के पास भी खबर भेजी जाय। और उन राजाओं के पास भी समाचार भेजो जो मेरे हितैषी हैं। देशान्तर में रहने वाले ब्राह्मणों को निमन्त्रण भेज दो। ऋषियों को भी पत्नियों-सहित बुलवाओ। गाने बजाने वाले नटों और नर्त्तकों को बुलवा लो। यह यज्ञ गोमती के किनारे नैमिष वन में होगा। वहाँ स्थान तैयार करने के लिए नौकरों से कह दो। तुम चारों ओर सावधानी करो जिससे कुछ विघ्न न होने पावे। वहाँ विविध शान्ति-कर्मों का आरम्भ करा दो। सबको निमन्त्रण दिया जाय जिससे सब लोग आकर यह यज्ञ देखें। और आदर पाकर सन्तुष्ट तथा पुष्ट होकर जायँ। वहाँ पर

बिना टूटे उम्दा चावलों के एक लाख, एवं मूँग और तिल के दस हज़ार बैल या गाड़ी लदवा कर पहले भेजो। इसी के अनुसार चना, कुरथी, उरद, लवण (नमक), घी, तेल और सुगन्धित चीज़ें भिजवाओ। सौ करोड़ सोने के मुद्रा और चाँदी के रुपये लेकर भरत खूब होशियारी से आगे जावें। उनके साथ मार्ग के लिए बाजार की चीजें लेकर बनिये और दूकानदार लोग भी जावें। नट, नर्त्तक, रसोइया और बहुत सी युवती स्त्रियाँ भी भरत के साथ जावें। उनके आगे आगे सेना जावे। महाजन, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, घर बनाने में चतुर राज, बढ़ई और कोशाध्यक्ष, इन सबको और मेरी माताओं तथा अपने और तुम्हारे अन्त:पुरों को लेकर भरत बड़ी होशियारी से रक्षा करते हुए जावें। वे दीक्षा के लिए सोने की सीता बनवा कर भी लेते जावें।" इस तरह आज्ञा देकर फिर कुटुम्बी मनुष्यों सहित निमन्त्रित बड़े बड़े पराक्रमी राजाओं के लिए महाराज ने बड़े बड़े तम्बुओं के लिए आज्ञा दी। उन लोगों के नौकरों और कुटुम्बी आदि के लिए अन्न, पान और कपड़ों के लिए भरत से कह दिया। इतने में शत्रुघ्न भी आगये। तब भरत और शत्रुघ्न दोनों ही रामचन्द्र की बतलाई हुई चीजों को साथ ले गये। अब सुग्रीव आदि बानर भी आ पहुँचे। बड़े बड़े ब्राह्मण भोजन परोसने के लिए नियत थे। विभीषण बहुत से राक्षसों और बहुत सी स्त्रियों को साथ लेकर बड़े बड़े तेजस्वी ऋषियों की पूजा करते थे।

१०५ वाँ सर्ग।

यज्ञक्रिया का वर्णन।

इस तरह सब चीजों को यज्ञ-स्थान में पहले ही से भिजवा कर रामचन्द्र ने अच्छे लक्षणों से युक्त काले घोड़े को छोड़ा और ऋत्विजों सहित लक्ष्मण को घोड़े की रखवाली करने के लिए कहा। वे स्वयं सेना लेकर नैमिष को चले। वहाँ पहुँच कर और अद्भुत यज्ञमण्डल देखकर वे प्रसन्न हो बोले कि यह बहुत ठीक बना है। वहाँ जो राजा आये थे वे सब महाराज के लिए भेंटें लाये। रामचन्द्रजी ने उन भेंटों को ग्रहण कर राजाओं का पूजन-सत्कार किया। अन्न, पान, वस्त्र आदि सब सामग्री उनके पास पहुँचवा दी। शत्रुघ्न और भरतजी राजाओं का सत्कार करने पर, और सुग्रीव सहित बड़े बड़े महात्मा बानर लोग बड़ी सावधानी से ब्राह्मणों को भोजन परोसने पर नियुक्त हुए। राक्षसों सहित विभीषण बड़े बड़े महर्षियों की सेवा करने लगे। वहाँ बड़े बड़े डेरे और तम्बू खड़े किये गये जिनमें अपने कुटुम्ब और परिवार के लोगों के साथ राजा लोग ठहरें। इस तरह बड़ी धूमधाम से रामचन्द्रजी का अश्वमेध यज्ञ होने लगा। लक्ष्मण उस घोड़े की रक्षा पर नियत थे। उस यज्ञ में यही शब्द सुनाई देता था कि माँगने वाले जो माँगें उनको वही दो जिससे वे सन्तुष्ट हो जायँ। उसी तरह उनको लोग देते भी थे। बानर और राक्षस माँगने वालों को चीज़ें देने में ऐसी जल्दी करते थे कि जब तक याचक के मुँह से शब्द निकले तब तक वे लोग झट दे ही देते थे। वहाँ गुड़ के और शक्कर के अनेक तरह के पदार्थ बनाये गये थे। जो जिसको भाता वह उसी

को माँग लेता था। उस यज्ञ में कोई मलिन, दीन और दुर्बल नहीं देख पड़ता था। जिसे देखो वही हृष्ट पुष्ट दिखाई पड़ता था। वहाँ बड़े बड़े महात्मा दीर्घजीवी मुनि आये थे। वे सब कहने लगे कि हम लोगों के सामने ऐसा दूसरा यज्ञ नहीं हुआ। क्योंकि इसके तुल्य दान दूसरे यज्ञ में नहीं देख पाया। जिसको सोने की ज़रूरत थी उसने सोना पाया, जिसको और तरह के धन से काम था उसने वही पाया। रत्न के चाहने वाले ने रत्न, वस्त्र के चाहने वाले ने वस्त्र, और अन्न चाहने वाले ने अन्न पाया। ये सब चीज़ें रात-दिन दी जाती थीं। इन सब चीज़ों के ढेर वहीं लगे हुए थे। वहाँ जो बड़े बड़े तपस्वी निमन्त्रण में आये थे वे कहने लगे कि ऐसा यज्ञ न तो इन्द्र का, न चन्द्र का, न यम का और न वरुण का देखा था। जहाँ देखो वहीं बानर, जहाँ देखो वहीं राक्षस हाथों में सब चीज़ें लिये माँगने वालों को देते चले जाते थे। किसी के हाथ में वस्त्र, किसी के हाथ में धन और किसी के हाथ में अन्न देख पड़ता था।

दोहा।

एहि विधि द्वादश मास लों, कछु दिन अधिक प्रमाण।
राजसिंह कर यज्ञ सो, नित नित बढ़त न हान॥

——

१०६ वाँ सर्ग।

महर्षि वाल्मीकि का यज्ञ में आना।

उस अद्भुत यज्ञ में शिष्यों के साथ महर्षि वाल्मीकि भी आये। उनका आगमन सुन कर ऋषियों ने एकान्त स्थान में बहुत सी पर्णशालायें (पत्तों की कुटियाँ) बनवा दीं और ऋषियों के भोजन के लिए, फलमूल आदि चीज़ें छकड़ों में लदवा कर कुटियों में भिजवा दीं। अब वाल्मीकि मुनि ने अपने दोनों शिष्यों, कुश और लव, से कहा कि तुम लोग यज्ञ में जाकर रामायण सुनाओ; ऋषियों के स्थानों में, ब्राह्मणों के पास, गलियों और राजमार्गों में, राजाओं के डेरों में और रामचन्द्र के भवन के द्वार पर जहाँ कि यज्ञ हो रहा है तथा विशेष कर ऋत्विजों के पास जाकर तुम रामायण गाओ। यदि तुम पर्वतों के आगे के भाग में पैदा हुए इन फलों को खाओगे तो गाने में तुमको मेहनत न पड़ेगी और तुम्हारी आवाज़ भी न बिगड़ेगी। यदि तुमको रामचन्द्र बुलावें और तुम्हारा गाना सुनना चाहें तो तुम उनके पास चले जाना। वहाँ ऋषियों के साथ यथोचित व्यवहार करना। एक दिन में मधुर वाणी से बीस सर्गों का गान करना। तुमको जैसा मैंने पहले उपदेश दिया है उन्हीं प्रमाणों सहित तुम सुनाना। तुम धन का लोभ मत करना क्योंकि आश्रमों में रहने वालों को धन की क्या ज़रूरत? हमारे लिए फल मूल ही बस हैं। यदि रामचन्द्र पूछें कि तुम किस के पुत्र हो तो यही कहना कि हम दोनों वाल्मीकि के शिष्य हैं। यह वीणा लेते जाओ। इसके स्थान तुम जानते ही हो। उनको अच्छी तरह मिला कर, मधुर मधुर बजाकर, पहली कथा से गान आरम्भ करना। तुम ऐसी नम्रता से बर्त्ताव करना जिससे किसी तरह राजा का अनादर न हो। क्योंकि धर्म से राजा सब प्राणियों का पिता है। हे वत्स! कल सबेरे सावधानी से वीणा लेकर तुम दोनों गान आरम्भ कर देना। यह उपदेश देकर महर्षि चुप हो गये। उनकी यह आज्ञा पाकर वे दोनों कुश और लव 'बहुत अच्छा,

हम आप के आज्ञानुसार गावेंगे' कह कर वहाँ से चले गये ।

दोहा ।

शुक्रनीति संहितहि जिमि, धारयो अश्विकुमार ।
तिमि मुनि कर उपदेश लहि, सोये राजकुमार ॥

—

१०७ वाँ सर्ग

लव-कुश का रामचरित्र गाना ।

अब सवेरा हुआ । मैथिली के वे दोनों पुत्र स्नान और अग्निहोत्र आदि कर्म कर, ऋषि के कथनानुसार गान करने लगे । यह बात महाराज ने भी सुनी कि भरताचार्य की रीति से, अच्छे ढंग पर और बहुत से प्रमाणों के साथ वीणा के स्वर से दो लड़के काव्य गाते फिरते हैं । उनकी आवाज बड़ी सुरीली है और काव्य भी बढ़िया है । यह सुन कर रामचन्द्र को बड़ा कौतूहल हुआ । उन्होंने यज्ञ के काम से अवकाश पाकर, वशिष्ठ मुनि को बुलवाया । बहुत से राजा, पण्डित, महाजन, पौराणिक और शब्दों के जानने वाले, वृद्ध ब्राह्मण, सभा में बुलाये गये । स्वरों के लक्षण पहचानने वाले गुणी उत्कण्ठित ब्राह्मण, अच्छी तरह लक्षण जाननेवाले गवैये उस्ताद और वैदिक लोग बुलाये गये । पादाक्षर की सम को जानने वाले छन्द विद्या में चतुर कला तथा मात्राओं के विशेष जानकार, ज्योतिषी लोग, क्रियाविधि में चतुर पुरुष, कार्यों में चतुर, तथा हेतु के भेदों के जानने वाल, लोग वहाँ बुलाये गये । तार्किक, बहुश्रुत, शास्त्र के छन्द के जानकार, वेदों में चतुर, वृत्तों के पहचानने वाले और कल्पसूत्र में चतुर तथा नाचने गाने में दक्ष पुरुष बुलवा कर इकट्ठे किये गये । इन सब के बीच में उन दोनों लड़कों को बैठाया । वे दोनों गाने लगे । वह गान इतना अच्छा था कि जिसको सुनकर सुनने वालों को तृप्ति ही नहीं होती थी । वहाँ जितने मुनि और राजा लोग बैठे थे वे सब बार बार उन लड़कों की ओर देखते और आश्चर्य करते थे । वे सब यही कह रहे थे कि देखो, महाराज रामचन्द्र का और इन दोनों का एकही सा रूप देख पड़ता है । मालूम होता है मानो महाराज ही की मूर्त्ति का प्रतिबिम्ब हो । यदि ये दोनों जटा और वल्कल न धारण किये होते तो महाराज में और इनमें कुछ भी अन्तर न रह जाता । इस तरह पुरवासी और देशवासी कह रहे थे । इधर नारद के उपदेश के अनुसार वे दोनों लड़के आदि काण्ड के पहले सर्ग से रामायण गा रहे थे । दोपहर तक बीस सर्ग गा कर उन्होंने समाप्त कर दिये । रामचन्द्र जब पूरे बीसों सर्ग सुन चुके तब उन्होंने अपने भाई से कहा कि इनको अठारह हजार सोने की अशर्फियाँ लाकर दो । इसके सिवा और भी जो कुछ ये चाहते हैं सो सब इनको जल्दी लाकर दो । आज्ञा पाते ही भरतजी झटपट धन ले आये और अलग अलग दोनों भाइयों को देने लगे । परन्तु उन्होंने वह धन नहीं लिया; वे कहने लगे—"हम को धन से क्या काम ? हम तो वनबासी हैं । केवल वन के फल-मूल से हमारा निर्वाह होता है । जंगल में धन का क्या होगा ?" उन दोनों का यह कथन सुनकर सब बिस्मित हो गये । रामचन्द्रजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ । अब रामचन्द्र उस काव्य को सुनने के लिए उन दोनों से पूछने लगे कि, "यह काव्य कितना बड़ा है । इसको बनानेवाले कौन मुनि हैं ? वे कहाँ रहते हैं ?"
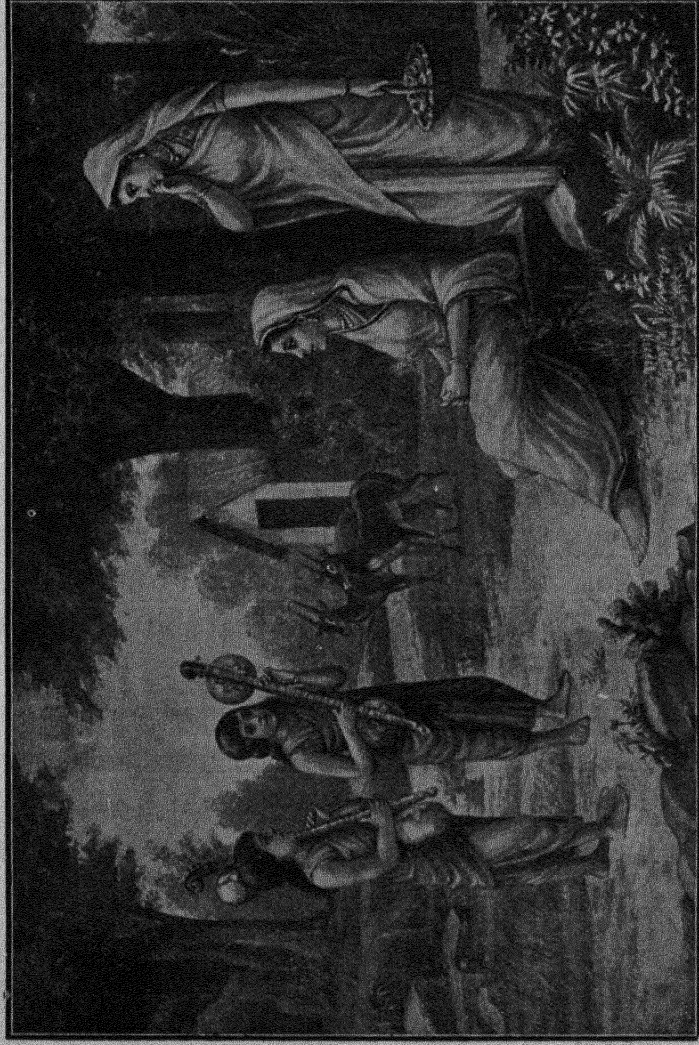
वाल्मीकि के आश्रम में ।

रामचन्द्र के पूछने पर बालकों ने कहा—"महाराज! इस काव्य को भगवान् वाल्मीकि मुनि ने बनाया है। वे आप के यज्ञ के पास ही ठहरे हुए हैं। इस ग्रन्थ में चौबीस हज़ार श्लोक हैं। इसमें इलोपाख्यान तक सौ कथायें, पाँच सौ सर्ग और छः काण्ड तथा सातवाँ उत्तरकाण्ड है। यह ग्रन्थ हमारे गुरु ऋषि वाल्मीकि ने बनाया है। इसमें सब चरित आपही का है। यदि आप सब सुनना चाहें तो यज्ञ के कामों से जब जब आप को अवकाश मिले तब तब सुना कीजिए।" रामचन्द्र ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

दोहा।

एहि विधि प्रभु बंधुन सहित, अरु सब भूप समेत।
प्रति दिन रामायण सुनत, सावधान करि चेत॥

---

१०८ वाँ सर्ग।

रामचन्द्र का अपने पुत्र को पहचानना और मुनि के पास दूत भेजना।

अब संगीत सुनते सुनते रामचन्द्र ने जाना कि ये दोनों सीता ही के पुत्र हैं। उन्होंने दूतों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम महामुनि वाल्मीकि के पास जाकर कहो कि यदि सीता शुद्धचरित्रा और पापरहित हो तो मुनि की आज्ञा लेकर और मुनि के मन के अनुसार अपनी शुद्धि का विश्वास करावे। देखो, इसपर मुनि क्या कहते हैं और सीता के मन में क्या है। वह सब हाल आकर मुझे सुनाओ। कल सबेरे सभा के बीच सीता अपनी शुद्धि के सम्बन्ध में शपथ करे। महाराज की यह आज्ञा पाकर दूत लोग महर्षि के पास गये। उन्होंने मुनि को प्रणाम कर बड़ी नम्रता से रामचन्द्र की कही हुई सब बातें कह सुनाईं। दूतों की बातें सुन कर मुनि ने कहा—"बहुत अच्छा, सीता वैसा ही करेगी; क्योंकि स्त्रियों का देवता तो पति ही है।" यह सुनकर दूत लोगों ने आकर रामचन्द्र से कह दिया। अब वे प्रसन्न हो कर वहाँ के ऋषियों और राजाओं से बोले—"हे मुनि लोगो! आप लोग अपने शिष्यों सहित और राजा लोग अपने सब साथियों के साथ सीता की शपथ सुनें। और भी जो लोग सुनना चाहते हैं वे सब यहाँ इकट्ठे हो जायँ।" यह सुनकर सब राजा 'वाह वाह' कह कर महाराज की प्रशंसा करने और कहने लगे—हे नरों में श्रेष्ठ! इस पृथ्वी पर ये सब बातें आपही में पाई जाती हैं। इस तरह की बातें दूसरे में नहीं हैं। इस प्रकार सब बातों का निश्चय कर रामचन्द्र ने सबको बिदा किया।

---

१०९ वाँ सर्ग।

वाल्मीकि के साथ सीता का आगमन।

अब रात बीत गई। सबेरा होते ही रामचन्द्र ने सब ऋषियों को बुलाया। वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, महातपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घायु मार्कण्डेय, मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानन्द, भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, और गौतम आदि तथा अन्यान्य महाव्रती ऋषि लोग वह अद्भुत चरित देखने की इच्छा से वहाँ आये। महापराक्रमी राक्षस और बड़े बली वानरगण भी कौतूहलपूर्वक वहाँ आकर इकट्ठे हुए। इनके सिवा क्षत्रिय, वैश्य,

शूद्र, और अनेक देशों के रहने वाले हज़ारों ब्राह्मण भी, सीता की शपथ देखने की इच्छा से, उस सभा में भर गये। ये दर्शक लोग वहाँ आकर ऐसे चुपचाप बैठ गये मानों पत्थर की बनी हुई मूर्त्तियाँ हों। अब सीता को साथ लिये महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ पहुँचे। सीता देवी मुनि के पीछे पीछे नीचे को मुँह किये, हाथ जोड़े, आँखों में आँसू भरे और मन में रामचन्द्र का ध्यान करती हुई वहाँ चली आती थीं। उस समय मुनि के पीछे जाती हुई सीता ऐसी देख पड़ती थीं मानों ब्रह्मा के पीछे श्रुति आती हो। उस समय लोगों के मुँह से 'वाह वाह' शब्द सुनने में आता था। इसके बाद लोगों का बड़ा हलहला शब्द हुआ क्योंकि सीता देवी की दीनता देखकर उन लोगों को बड़ा ही दुःख और शोक हुआ; इस कारण वे चुप न रह सके। उनमें से कोई तो राम की, कोई सीता की और कोई दोनों की प्रशंसा कर रहे थे। अब महर्षि वाल्मीकि सीता को साथ लिये उस भीड़ में प्रवेश कर श्रीरघुनन्दन से बोले—"हे दाशरथे! जिस सीता को आपने अपवाद के भय से मेरे आश्रम के पास छोड़ दिया था वह सुव्रता और धर्म-चारिणी है। हे रामचन्द्र! आप लोक-निन्दा से डरते हैं इसलिए सीता अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाना चाहती है। आप आज्ञा दीजिए। ये दोनों बालक सीता ही के हैं। एक ही साथ दोनों की उत्पत्ति हुई है। हे रघुनन्दन! मैं वरुण का दशवाँ पुत्र हूँ, मैं झूठ न कहूँगा। ये दोनों लड़के तुम्हारे ही हैं। मैं भी शपथपूर्वक कहता हूँ कि जो यह मैथिली दुष्टचरित्रा हो तो मैं, हज़ारों वर्ष तक किये हुए, अपने तप का फल न पाऊँ। मन से, कर्म से और वाणी से भी कोई पापाचरण मुझ से नहीं हुआ है। यदि यह मैथिली पापरहित हो तो मैं उसका फलभागी होऊँ। हे राघव! पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन इन सब में जब सीता को शुद्ध जाना तब उस वन में मैंने इसे ग्रहण किया था। इसलिए हे रामचन्द्र! सीता का चरित्र शुद्ध है, यह पापरहित और पतिव्रता है। परन्तु आप लोकापवाद से डर रहे हैं इसलिए यह आप को विश्वास दिलावेगी।

दोहा।

दिव्य दृष्टि ते कहहुँ मैं, यह शुद्धा सब भाँति।
जानि बूझि अपवाद भय, तजेहु रावणाराति॥

---

११० वाँ सर्ग।

सीता का पृथ्वी में समा जाना।

इस तरह वाल्मीकि मुनि के कहने पर रामचन्द्र हाथ जोड़ कर बोले—"हे भगवन्! आप जैसा कहते हैं वह सब ठीक है। आप के दोषरहित वचनों ही से मुझे विश्वास हो गया। देवताओं के सामने भी इसने मुझे विश्वास दिलाया और शपथ खाई थी। इसी कारण मैं इसे घर ले भी आया था परन्तु भगवन्! लोकापवाद बड़ा बलवान् है। इसी से मैंने फिर इसका त्याग किया। केवल अपवाद ही के डर से जान-बूझ कर मैंने इसको छोड़ा था इसलिए आप क्षमा कीजिये। मैं जानता हूँ कि ये दोनों लड़के मेरे ही हैं। ये एक ही साथ उत्पन्न हुए हैं। परन्तु अब इस जनसमूह में यदि यह सीता शुद्ध ठहर जाय तो मुझे बड़ा आनन्द हो।" रामचन्द्रजी का अभिप्राय समझकर ब्रह्मा आदि देवता लोग भी उस जनसमूह में आये। आदित्य, वसु,

रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्य, बड़े बड़े महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध आदि सभी हर्षित मन से वहाँ इकट्ठे हुए। इन सब को देख कर महर्षि वाल्मीकि से रामचन्द्र बोले—हे मुनियों में श्रेष्ठ! मुझे तो आपही के वचनों से सीता के शुद्ध होने का विश्वास हो गया था परन्तु अब इन सब लोगों के सामने सीता अपनी शुद्धि दिखलावे तो इस विषय में मुझे बड़ी प्रसन्नता हो। देखिये, ये सब भी सीता की शपथ ही देखने के लिए आये हैं।

अब मंगलकारी पवित्र और अच्छी गन्ध लिये मनोहर हवा चलने लगी। उस मण्डली में चारों ओर से बड़ा ही आनन्द होने लगा। उस हवा का चलना देखकर लोग बड़ा ही आश्चर्य करने लगे। वे कहने लगे कि हमने तो सुना था कि ऐसी हवा केवल सतयुग में ही चलती थी।

अब काषाय वस्त्र पहने सीता देवी उस मण्डली के बीच में, हाथ जोड़े और नीचे को मुँह किये ही, बोलीं—"यदि मैंने राघव के सिवा दूसरे मनुष्य का मन से भी कभी चिन्तन न किया हो तो पृथ्वी, अपने भीतर जाने के लिए, मुझे जगह देवे। मन, कर्म, वाणी से यदि मैं रामचन्द्र ही को अपना पति समझती होऊँ तो पृथ्वी देवी मुझे समा जाने के लिए स्थान देवे। यदि मेरा यह कहना सत्य हो कि मैं राम के सिवा और किसी को नहीं जानती तो पृथ्वी देवी मुझे अपने में समा जाने के लिए जगह दे।" इस तरह सीता देवी शपथ कर ही रही थीं कि इतने में पृथ्वी फट गई और उसमें एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ। उसको बड़े पराक्रमी और अच्छे अच्छे रत्नों से भूषित अनेक नाग अपने सिर पर धारण किये थे। पृथ्वी देवी ने दोनों भुजाओं से सीता को थाम कर और 'तुम्हारा स्वागत हो' कह कर उस सिंहासन पर बैठा लिया। फिर वह सिंहासन रसातल में जाने लगा। उसी समय आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और देवता लोग 'साधु साधु' कह कर सीता देवी की प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि हे देवी सीते! तुम धन्य हो जो ऐसा तुम्हारा शील है। इस तरह आकाश में ठहरे हुए देवता लोग बड़े हर्ष से सीता के विषय में अनेक तरह की बातें कर रहे थे। यज्ञ-भूमि में जितने ऋषि और राजा लोग बैठे थे वे सभी आश्चर्य में डूब गये। आकाश के और पृथ्वी के स्थावर-जंगम, बड़े रूप वाले बड़े बड़े दानव और पाताल के बड़े बड़े नाग बिस्मित होते थे और बहुत से हर्षनाद कर रहे थे। बहुतेरे कुछ सोच रहे थे और बहुत से राम की ओर और बहुत से सीता की ओर देख रहे थे।

दोहा।

तेहि छन सीताकर निरखि, अद्भुत भूमि-प्रवेश।
चित्र-लिखित से लोग तहँ, मोहित भये अशेष॥

---

१११ वाँ सर्ग।

सीता के विरह से व्याकुल रामचन्द्र को ब्रह्मा का समझाना।

सीता देवी के रसातल में चले जाने पर बानर और मुनिगण साधु साधु कहने लगे। उस समय रामचन्द्रजी उस दीक्षा की लकड़ी को हाथ में लिये और आँखों में आँसू भरे, तथा नीचे की ओर मुँह किये, बड़े दीन और दुःखित हो गये। वे बहुत देर तक रोते और आँसू बहाते रहे। फिर वे क्रोध

और शोक से भरे हुए ये वचन बोले—देखो, ऐसा शोक मुझे कभी नहीं हुआ। यह मेरे मन को पीड़ा दे रहा है। क्योंकि मेरे देखते ही देखते, लक्ष्मी की भाँति, सीता नष्ट हो गई। मैं तो इसे समुद्र के भी पार से ले आया था, अब पाताल मे ले आना मेरे लिए क्या कठिन है? हे पृथ्वी देवि! तू मेरी सीता दे दे अन्यथा मैं तेरे ऊपर अपना क्रोध दिखाऊँगा। तू मेरे बल को जानती ही है। तू मेरी सास भी है। क्योंकि राजर्षि जनक ने जीतते समय तेरे ही भीतर (गर्भ) से सीता को पाया था, इसलिए हे पृथ्वी! या तो तू सीता को मुझे दे दे अथवा मुझे भी अपने भीतर ले ले। क्योंकि वह पाताल में रहे या स्वर्ग में, मैं उसी के साथ रहूँगा। उसके लिए मैं पागल सा हो रहा हूँ। यदि तू उसे न देगी तो मैं पर्वतों और वनों सहित तुझको ध्वस्त और नष्ट कर डालूँगा। सारा संसार जलमय हो जायगा।

इस तरह क्रोध और शोक से पूर्ण, और पृथ्वी को धमकाते हुए, रामचन्द्र को देख कर देवताओं सहित ब्रह्मा उनके पास आये और कहने लगे—"हे राम! आप सन्ताप करने के योग्य नहीं हैं। आप अपने पहले भाव का स्मरण कीजिए। हे महाबाहो! मैं आपको स्मरण कराने के लिए नहीं आया हूँ। मैं केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने वैष्णव भाव का ध्यान कीजिए। यह समय बड़ा दुर्धर्ष है। सीता तो स्वभाव से ही शुद्ध और पति-व्रता है, वह तुम में सदा से परायण है। तुम्हारे आश्रय रूप तपोबल से वह नाग-लोक में पहुँची है फिर उससे आपकी भेंट स्वर्ग में होगी। मैं अब जो इस सभा के सामने कहता हूँ उसे सुनिए। यह काव्यों में उत्तम काव्य भगवान् वाल्मीकि का बनाया हुआ है। यह आपके जन्म भर की बातों का वर्णन करेगा। आपको आज तक जो सुख-दुख हुआ है इसमें उस सब का वर्णन रहेगा। भविष्यत् का जो कुछ बाक़ी है उसका भी इसमें वर्णन है। हे रामचन्द्र! यह आदि-काव्य है। सबसे पहले यही बना है। सम्पूर्ण रूप से इसमें तुम्हारा ही वर्णन है। तुम्हारे सिवा दूसरा मनुष्य काव्य के यश को नहीं पा सकता। आपने और देवताओं के साथ मैंने भी इस काव्य को सुना है। अब जो भविष्य है वह भी सुनिए। यह काव्य का उत्तर भाग है इसलिए इसका नाम उत्तर होगा। अब आप ऋषियों के साथ बैठ कर इसे सुनिए। हे काकुत्स्थ! इस काव्य के सुनने की योग्यता आपही में है। आप राजर्षि हैं। इसे एकाग्र चित्त से सुनिए।" इतना कहकर देवों को साथ ले ब्रह्मा अपने लोक को चले गये। बाक़ी ब्रह्मर्षि और तापस ब्रह्मा की अनुमति से भविष्य काव्य सुनने के लिए वहीं ठहरे रहे। ब्रह्मा के कथनानुसार रामचन्द्र ने वाल्मीकि मुनि से कहा—भगवन्! ये सब महर्षि मेरा भविष्य काव्य सुनना चाहते हैं इसलिए जो कुछ मेरी भविष्य कथा हो वह कल से प्रारम्भ की जाय।

दोहा।

अस कहि रघुपति सबनि कहँ, बिदा देइ निसि जान।
शाला महँ प्रविसे सुतन्हि, संग लिये बहु मान॥

—

११२ वाँ सर्ग।

रामचन्द्र की भविष्य कथा।

अब सबेरा हुआ। महाराज ने मुनियों को इकट्ठा कर अपने पुत्रों से कहा—"भविष्य कथा का गान करो।" पिता की आज्ञा पाकर वे दोनों उत्तरकाण्ड की कथा गाने लगे। सीता देवी के पृथ्वी में समा जाने पर यज्ञ की समाप्ति हुई। सीता के वियोग से महाराज अत्यन्त उदास हो गये। सीता को न देखने से यह जगत् उनको शून्य सा जान पड़ा। वे शोक से ऐसे पीड़ित हुए कि उनके मन में ज़रा भी शान्ति न थी। महाराज सब राजाओं, भालुओं, राक्षसों, और बानरों को—तथा कुछ धन देकर ब्राह्मणों के समूहों को—वहाँ से बिदा करके सीता का ध्यान करते हुए अयोध्या को गये। परन्तु उन्होंने दूसरी स्त्री नहीं की। उन्होंने जितने यज्ञ किये उनमें स्त्री की जगह सोने की सीता बनवाकर रक्खी। दस हज़ार वर्ष तक तो वाजिमेध होते रहे। फिर उससे दसगुने वाजपेय यज्ञ हुए। उनमें बहुत सोना ख़र्च हुआ। तदनन्तर अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव, ये यज्ञ तथा इनके सिवा और भी बहुत से यज्ञ रामचन्द्रजी ने किये। सभी यज्ञों में उन्होंने पूर्ण दक्षिणायें दीं। ये कर्म और राज्य-शासन करते हुए महाराज को बहुत समय बीत गया। ऋक्ष, बानर और राक्षस लोग रामचन्द्रजी की आज्ञा का पालन कर रहे थे। सब राजा लोग उनपर अनुराग बढ़ाते जाते थे। रामचन्द्रजी के राज्य में ठीक समय पर वर्षा होती थी। सदा सुभिक्ष रहता था, अकाल न पड़ता था। सब दिशाओं में निर्मलता और प्रजा हृष्ट पुष्ट रहती थी। अकाल में किसी की मृत्यु न होती और प्राणियों को व्याधि न सताती थी। अर्थात् किसी तरह का अनर्थ न होता था। बहुत समय के बाद रामचन्द्रजी की माता पुत्र-पौत्रों का आनन्द देखती हुई कालधर्म को प्राप्त हुईं। उनके बाद सुमित्रा और कैकेयी भी अनेक तरह के धर्माचरण करती करती स्वर्ग-वासिनी हुईं। वे सब हर्ष-पूर्वक स्वर्ग में महाराज दशरथ से जा मिलीं और धर्म-फल को प्राप्त हुईं। उनके नाम से रामचन्द्रजी समय समय पर ब्राह्मणों और तपस्वियों को दान देते रहते थे। पितरों के लिए वे श्राद्धों में अनेक रत्नों का दान और अनेक तरह के दुस्तर यज्ञ करते जाते थे और देवताओं तथा पितरों का मान करते थे।

दोहा।

वर्ष अनेक सहस्र प्रभु, सुख ते दियो बिताय।
यज्ञ धर्म कीन्हें बहुत, केहि विधि बरन्यो जाय॥

---

११३ वाँ सर्ग।

रामचन्द्र के पास युधाजित् के गुरु का आना।

कुछ समय के बाद युधाजित् ने अपने गुरु को रामचन्द्र के पास भेजा। वे गर्गकुल में उत्पन्न महर्षि अङ्गिरा पुत्र महातेजस्वी ऋषि थे। युधाजित् ने रामचन्द्र के लिए प्रीतिदान में दस हज़ार घोड़े, अच्छे अच्छे दुशाले, रत्न, चित्र विचित्र कपड़े और अच्छे अच्छे भूषण भेजे थे। जब रामचन्द्र ने सुना कि गार्ग्य महर्षि बहुत सी चीज़ें लेकर मामा अश्वपति के घर से आये हैं तब कोस भर आगे से स्वयं उन्होंने जाकर विधि-पूर्वक उनका पूजन इस तरह किया मानों इन्द्र ने बृहस्पति का सत्कार किया हो। वह धन लेकर कुशल प्रश्न के बाद

उन्होंने मुनि के आने का कारण पूछा कि—"मेरे मामा ने क्या संदेशा भेजा है ? किस कारण आप जैसे महर्षि को इतना क्लेश उठाना पड़ा ?" यह सुनकर महर्षि बोले—"हे महाबाहो ! तुम्हारे मामा ने कहा है कि सिन्धु नदी के किनारों पर गन्धर्व लोगों का देश है। उसमें अच्छे अच्छे फल मूल भरे पुरे रहते हैं, अतएव बहुत अच्छा है। वे लोग बड़े युद्ध-विशारद हैं। वे हाथों में आयुध लेकर उस देश की रक्षा किया करते हैं। वे सब शैलूष गन्धर्व के पुत्र हैं। संख्या में वे तीन करोड़ हैं और अच्छे महाबली हैं। हे काकुत्स्थ ! मैं चाहता हूँ कि आप उनको जीत कर वह देश अपने अधिकार में लाइये क्योंकि वह देश मेरे देश से लगा ही हुआ है। वह बड़ा ही सुन्दर है। तुम्हारे सिवा दूसरे की गति उसको जीतने की नहीं। इसलिए यह बात आप स्वीकार करें। किसी प्रकार के अहित की बात मैं आप से न कहूँगा।" यह सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर बोले—"बहुत अच्छा।" फिर वे भरत की ओर देखने लगे। वे हाथ जोड़कर मुनि से बोले—"भरत के ये दोनों कुमार, तक्ष और पुष्कल, उस देश में विचरेंगे और मामा इनकी रक्षा करेंगे। ये दोनों लड़के भरत को साथ लेकर सेना-सहित जावेंगे और गन्धर्वों को मार कर वहाँ दो नगर बसावेंगे। इन दोनों को वहाँ अच्छी तरह नियत कर भरत फिर मेरे पास चले आवेंगे।" ब्रह्मर्षि से यह कह कर रामचन्द्र ने भरत को सेना लेकर जाने की आज्ञा दी और वहाँ के लिए दोनों कुमारों का राज्याभिषेक कर दिया। इसके बाद शुभ मुहूर्त्त में भरत ने ब्रह्मर्षि को आगे कर वहाँ के लिए यात्रा कर दी। उनकी सेना, इन्द्र की सेना के समान, उनके साथ गई। मांसाहारी प्राणी और राक्षस-गण रुधिर पीने की इच्छा से भरत के साथ हो लिये। बड़े भयानक और मांस-भक्षी बहुत से भूत भरत के पीछे पीछे चले। गन्धर्वों के लड़कों का मांस-भक्षण करने की इच्छा से हज़ारों पिशाच दौड़े हुए गये। सिंह, व्याघ्र, वराह और हज़ारों आकाशचारी पक्षी भरत की सेना के आगे आगे चले जाते थे।

दोहा।

दिवस पञ्चदश मार्ग महँ, सेना कियो टिकान।
भरत सहित पुनि केकयहिं, पहुँची सब गुणखानि॥

———

११४ वाँ सर्ग।

गन्धर्वों का मारा जाना।

अब सेना सहित सेनापति भरत को आया हुआ देख कर गर्ग और युधाजित् बड़े प्रसन्न हुए। केकयनरेश ने भी अपनी सेना लेकर गन्धर्वों पर चढ़ाई कर दी। ये दोनों ही गन्धर्वों के नगर में पहुँच गये। गन्धर्व लोग भी वीरनाद करते हुए युद्ध करने के लिए मैदान में बाहर निकल आये। उन सब का महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ। सात रात-दिन तक लगातार युद्ध होता रहा परन्तु किसी ने जय न पाया। रुधिर की नदियाँ बहने लगीं। उनमें खड्ग, शक्ति और धनुष ग्राह से जान पड़ते थे। मनुष्यों के शरीर ऐसी नदियों में बह रहे थे और वे चारों ओर फैल रही थीं। इतने में भरत ने बड़ा भयंकर काला, संवर्त्त अस्त्र, गन्धर्वों पर चला दिया। उससे वे कालपाश में बँध गये। संवर्त्त अस्त्र से विदीर्ण होकर क्षण मात्र में तीन करोड़ गन्धर्व मर कर गिर पड़े। वह युद्ध ऐसा भयङ्कर हुआ कि देवता

भी आश्चर्य करते रह गये। वे कहने लगे कि ऐसा युद्ध हमने कभी नहीं देखा। इस तरह उन सब को मार कर भरत ने वहाँ दो नगर बसाये। एक का नाम तक्षशिला रक्खा और दूसरे का पुष्कलावत। पहले में तक्ष को और दूसरे में पुष्कल को नियत किया। उस गान्धार-देश में ये दोनों नगर बड़े मनोहर थे। एक दूसरे से चढ़ कर थे। दोनों ही धन और रत्नों से पूर्ण एवं उपवनों से सुशोभित थे। दोनों ऐसे मनोरम थे मानों अपने गुण-समूहों से एक दूसरे को दबा लेना चाहते हों। उन दोनों में सत्य व्यवहार, बग़ीचे, सवारियाँ और अनेक तरह के पदार्थ भरे रहते थे। रोज़ रोज़ उनके बाज़ारों और राजमार्गों पर जल छिड़का जाता था। उनमें तीन खन, चार खन और सात खन तक के अच्छे अच्छे घर बने हुए थे। उनमें अच्छे अच्छे देव-मन्दिर शोभा पा रहे थे। वहाँ ताल, तमाल, तिलक और मौलसिरी के वृक्ष बड़ी मनोहर छवि पाते थे। इस तरह दोनों नगरों को बसा कर और पाँच वर्ष तक वहाँ रह कर भरतजी फिर अयोध्या में भाई रामचन्द्र के पास लौट आये। वहाँ आकर धर्मरूप रामचन्द्र को इस प्रकार प्रणाम किया जैसे इन्द्र ब्रह्मा को प्रणाम करते हैं।

दोहा

भरत आइ गन्धर्व के, सकल कहे वृत्तान्त।
देश निवेशन सुनि नृपति, हर्षित भये नितान्त॥

---

११५ वाँ सर्ग।

लक्ष्मण के दोनों पुत्रों के लिए प्रबन्ध करना।

भरत की बातें सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने कहा—"हे लक्ष्मण! तुम्हारे अंगद और चन्द्रकेतु, दो कुमार हैं। कोई देश इनके लिए भी ठीक करना चाहिए जहाँ के राज्य पर इन दोनों का अभिषेक किया जाय। वह देश रमणीय और उपद्रव रहित हो ताकि ये धनुर्द्धर वहाँ सुखपूर्वक रह सकें। वह ऐसा हो जहाँ न तो और राजाओं को पीड़ा हो और न आश्रमों का ही विनाश हो। तुम ऐसे देश का विचार करो; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि ऐसा करने में किसी प्रकार से हम लोग अपराधी ठहरें।" यह सुनकर भरतजी बोले—"महाराज! कारुपथ नामक देश रमणीय और दोषरहित है। वहाँ तो अङ्गद रक्खा जाय और चन्द्रकेतु के लिए चन्द्रकान्त नियत किया जाय।" भरत की सम्मति को स्वीकार कर रामचन्द्रजी ने कारुपथ के लिए अङ्गद का अभिषेक कर दिया और पुरी बसा कर उसका नाम अङ्गद की पुरी रक्खा। बड़े बलवान् चन्द्रकेतु मल्ल के लिए मल्लभूमि में चन्द्रकान्ता नामक पुरी बसाई गई। यह पुरी स्वर्गपुरी की भाँति बड़ी रमणीय थी। यह सब प्रबन्ध करके तीनों भाई बड़े प्रसन्न हुए। लक्ष्मण के दोनों पुत्रों का अभिषेक कर अङ्गद को पश्चिम भूमि के लिए और चन्द्रकेतु को उत्तर भूमि के लिए रवाना करा दिया। अङ्गद के साथ लक्ष्मण और चन्द्रकेतु के साथ भरत गये। अङ्गद की पुरी में उसे नियत करके लक्ष्मण एक वर्ष तक वहाँ रहे फिर

अयोध्या को लौट आये। इसी तरह भरतजी भी एक वर्ष से कुछ अधिक चन्द्रकेतु के साथ रह कर अयोध्या को लौट आये। दोनों जगह से लौट कर दोनों भाई रामचन्द्र की सेवा करने लगे। वे दोनों सदा रामचन्द्र की सेवा में तत्पर रहते और धर्म-पूर्वक सब व्यवहार करते थे। स्नेहपूर्वक रहने से बहुत समय का बीत जाना उनको कुछ भी मालूम न हुआ। इस तरह राज्यशासन करते हुए रामचन्द्र को दस हज़ार वर्ष बीत गये।

दोहा।

प्रज्वलिताग्नि सु तेजमय, तीनिहु भाइन केर।
समय बहुत आनन्दमय, बीतत लागु न देर॥

---

११६ वाँ सर्ग।

मुनि के वेष में काल का आना।

इस तरह कुछ समय बीत जाने पर तपस्वी का रूप धारण करके काल राजद्वार पर आया। वहाँ लक्ष्मण खड़े हुए थे। वह उनसे बोला—"महाराज को मेरे आने का सँदेशा दो और कहो कि महर्षि अतिबल का दूत किसी कार्य-वश आपको देखने की इच्छा से आया है। आपकी क्या आज्ञा है?" यह सुनकर लक्ष्मण गये और उसके आने का हाल इस प्रकार कह कर बोले—"हे महाद्युते! राजधर्म से आप दोनों लोकों का जय कीजिए। सूर्य-समान तेजस्वी एक तापसरूप दूत आपके दर्शन करने के लिए आया है।" महाराज ने कहा—"उसे यहाँ जल्दी ले आओ।" लक्ष्मण ने आज्ञा पाकर दूत से कहा—"जाइए, महाराज बुलाते हैं।" यह आज्ञा पाकर महर्षि भीतर गये और मधुर वाणी से बोले कि 'आप की वृद्धि हो' फिर महाराज ने अर्घ्य और पाद्यार्घ्य आदि से मुनि की पूजा कर कुशल-प्रश्न पूछना आरम्भ किया। सोने के दिव्य आसन पर मुनि बैठ गये। अब रामचन्द्र ने कहा—"महर्षे! आपका स्वागत हो, कहिए क्या सँदेशा है।" मुनि बोले—"हे राजन्! मैं अपना सँदेश बिलकुल एकान्त स्थान में कहना चाहता हूँ, जहाँ हम और आप दो ही रहें। हम दोनों के बातचीत करते समय यदि तीसरा मनुष्य सुने या देखे तो वह आपके हाथ से मारा जाय। यही मेरा कहना है।" यह सुन कर रामचन्द्र ने स्वीकार किया और लक्ष्मण से कहा—"हे सौमित्रे! जाओ, तुम द्वार पर खड़े रहो। द्वारपाल को वहाँ से बिदा कर दो। हम दोनों को बातचीत करते हुए कोई देखने या सुनने न आवे। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मेरे हाथ से मारा जायगा।" आज्ञा पाकर लक्ष्मण द्वार पर जा खड़े हुए। तब रामचन्द्र ने मुनि से कहा कि अब आप कहिए।

दोहा।

तुम कहँ जो वक्तव्य मुनि, सो सब कहहु बुझाय।
इमि पूछत सर्वज्ञ प्रभु, जानि बूझि सुरराय।

---

११७ वाँ सर्ग।

मुनि की बातचीत।

मुनि बोले—हे महापराक्रमी! मेरे आने का कारण सुनिये। मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। आप की पूर्व अवस्था के समय, अर्थात् हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के समय, मैं माया-संकल्प से पैदा किया गया था। मैं आपका पुत्र हूँ। सब जगत् का संहार करने

वाला काल मेरा नाम है। महाराज! ब्रह्मा ने कहा है कि "इन लोकों की रक्षा के लिए आपही ने समय की स्थापना की है। आपही पूर्वकाल में माया के द्वारा लोकों का संहार कर महासागर में सोये थे। उसी समय मैं उत्पन्न किया गया था। फिर उसी समय आपने एक जलचर, बड़े शरीर वाले, अनन्त नाग को उत्पन्न किया। इसके सिवा और भी दो जीवों को उत्पन्न किया था जिनका नाम मधु और कैटभ है। इनकी हड्डियों से पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई और मेदिनी कहलाई। आपही ने अपनी नाभि से दिव्य कमल द्वारा मुझे उत्पन्न कर प्राजापत्य कर्म का भार सौंपा। जब मेरे ऊपर आपने भार रक्खा तब मैंने आप जगत्पति से प्रार्थना की कि हे प्रभो! सृष्टि का भार तो मेरे ऊपर आपने रख दिया परन्तु अब इसकी रक्षा का भार आप अपने ऊपर लीजिए क्योंकि मेरे तेज के दाता तो आपही हैं। उस समय आपने उस सनातन और दुर्द्धर्ष भाव को छोड़ कर, जगत् की रक्षा के लिए, विष्णुरूप धारण किया। अदिति के गर्भ में वीर्यवान पुत्र के रूप से उत्पन्न हो आप अपने भाइयों का आनन्द बढ़ाते हुए उनकी सहायता करते हैं। जब रावण प्रजा को बहुत दुःख देने लगा तब आपने मनुष्य का शरीर धारण किया। इसके पहले आपही ने यह नियम किया था कि मैं ग्यारह हजार वर्ष तक पृथ्वी पर रहूँगा। सो आप तो केवल अपने मन के संकल्परूप किसी के पुत्र हुए। आपकी आयु का संकल्प भी पूरा हो चुका। इसी बात की सूचना देने के लिए मैं यह दूत भेजता हूँ। अब यदि आप और भी कुछ समय तक प्रजापालन करना चाहते हो तो बहुत अच्छी बात है। यहीं रहिए। यदि देवलोक के शासन करने की इच्छा हो तो वह भी ठीक है। विष्णुरूपधारी आप के शासन से देवलोक कृतार्थ और तापरहित हो जायँगे।" ब्रह्मा ने यही कहा है। इस विषय में आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा कीजिये।

इस तरह काल के मुँह से पितामह की बातें सुनकर महाराज हँसकर बोले—देवों के देव की बातें सुन कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। तीनों लोकों के काम के लिए मेरा अवतार है, सो मैं जहाँ से आया हूँ वहीं जाऊँगा। तुम मेरे हृदय ही में थे। मैं तुम्हारी बाट ही देख रहा था। इसलिए इस विषय में मुझे कुछ सोचना विचारना नहीं है।

दोहा।

देवकाज कर्त्तव्य मोहि, या महँ कछु न विचार।
जेहि प्रकार ते विधि वचन, कह्यो सर्व संहार॥

११८ वाँ सर्ग।

दुर्वासा का आना और लक्ष्मण का आज्ञा भंग करके भीतर जाना।

इधर तपस्वी और रामचन्द्र की बातचीत हो ही रही थी कि इतने में, रामचन्द्र के दर्शन की इच्छा से, दुर्वासा मुनि द्वार पर आ गये। वे लक्ष्मण से बोले—"मुझे रामचन्द्र से जल्दी मिलाओ, नहीं तो मेरा मतलब नष्ट होता है।" यह सुन कर लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर कहा—"भगवन्! आप का क्या काम है? आप किस प्रयोजन से उनसे मिलना चाहते हैं, मुझे बतलाइए। मैं उसे जल्दी कर दूँगा। रामचन्द्रजी इस समय किसी कार्य में व्यग्र हैं। थोड़ी देर ठहर जइए।" यह सुनते ही ऋषि मारे क्रोध के

अधीर होगये। वे लक्ष्मण की ओर ऐसी दृष्टि से देखने लगे मानों अभी भस्म कर देंगे। वे क्रोध में भरकर लक्ष्मण से कहने लगे—"हे सौमित्रे! तुम इसी समय रामचन्द्र को मेरे आगमन की सूचना दे दो, नहीं तो मैं तुम्हें, तुम्हारे देश को, नगर और राम को भी शाप दे दूँगा। इतना ही नहीं किन्तु भरत को, तुमको तथा तुम्हारी सन्तति को भी शाप दे दूँगा। मैं अब अपना क्रोध हृदय में नहीं रख सकता।" ये उग्र वचन सुन कर लक्ष्मण ने अपने मन में सोचा कि एक मेरा ही मरना ठीक है; ऐसा न हो कि कहीं सर्वनाश हो जाय। इस तरह मन में सोच कर वे झट रामचन्द्र के पास चले गये और उनसे मुनि के आने का हाल कह दिया। लक्ष्मण का निवेदन सुनते ही महाराज ने काल को बिदा कर दिया और शीघ्र बाहर आकर अत्रि के पुत्र दुर्वासा ऋषि को देखा। उनको प्रणाम कर पूछा—"कहिए, भगवन् क्या काम है?" मुनि बोले—"हे राघव! आज मेरी निराहार तपस्या के हजार वर्ष समाप्त हुए हैं। मैं इस समय भोजन चाहता हूँ। यदि आपके यहाँ तैयार हो तो दीजिए।" रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय भोजन मँगवाया और उनको दिया। अमृत के तुल्य वह भोजन कर और—"साधु रामचन्द्र! साधु।" कह कर मुनि अपने आश्रम को चले गये। पर रामचन्द्रजी काल की बातों का स्मरण कर हृदय में बड़े दुखी हुए और नीचे की ओर मुँह करके चुपचाप सोचने लगे। सोच विचार कर उन्होंने निश्चय किया कि बस, हो चुका। अब मेरे नौकर चाकरों और कुटुम्बी लोगों की समाप्ति का समय आ गया।

---

११६ वाँ सर्ग।

लक्ष्मण का त्याग।

रामचन्द्र को नीचे मुँह किये और दीन देख कर ख़ुश होते हुए लक्ष्मण बोले—"हे महाबाहो! मेरे लिए आप सन्ताप न कीजिए। क्योंकि काल की गति ऐसी ही है। इसकी रचना पहले ही से हो चुकती है। अब आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर मेरा घात कीजिए। क्योंकि प्रतिज्ञा-रहित मनुष्य नरक में जाते हैं। जो आप मेरे ऊपर प्रीति रखते हों और अनुग्रह-दृष्टि करें तो आप प्रतिज्ञानुसार मुझे मारिए। शङ्का छोड़ दीजिए।" यह सुन कर रामचन्द्र घबरा गये। उन्होंने मन्त्री और पुरोहितों को इकट्ठा कर उन्हें लक्ष्मण के विषय की बात सुनाई। तब वे मन्त्री और उपाध्याय उन बातों को सुन कर चुप हो गये। परन्तु वशिष्ठ मुनि बोले—"हे महाबाहो! तुम्हारा यह बड़ा क्षय देख पड़ा। इसके सुनने से रोयें खड़े हो जाते हैं। लक्ष्मण से आपका वियोग होगा। आप इनका त्याग कर दीजिए। काल बलवान् है। आप अपनी प्रतिज्ञा को वृथा न कीजिए। प्रतिज्ञा का नाश करने से धर्म का लोप हो जाता है। जब धर्म नष्ट हुआ तो चर अचर, और देवर्षिगण-सहित यह त्रैलोक्य, नष्ट हो जायगा। इसलिए हे पुरुषशार्दूल! त्रैलोक्य का पालन करने के लिए लक्ष्मण को त्यागिये—इस जगत् को स्वच्छ कीजिए।" इस तरह धर्म-अर्थ-युक्त उन लोगों की बातें सुन कर रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—"हे सौमित्रे! मैं तुम्हें बिदा करता हूँ जिससे धर्म में बाधा न हो। साधु लोगों ने त्याग और वध दोनों को बराबर ही बतलाया है।" यह सुनकर लक्ष्मण

व्याकुल हो गये। आँखों में आँसू भरे हुए वे रामचन्द्र की सभा से झट बाहर निकल गये। वे अपने घर भी नहीं गये। उसी समय वे सरयू नदी के किनारे चले गये। वहाँ उन्होंने आचमन किया, फिर हाथ जोड़ कर और सब इन्द्रियों को रोककर श्वास रोक ली। वे योगाभ्यास करने लगे। इस तरह उनको योगाभ्यास करते देख कर इन्द्र आदि देवता, अप्सराएँ और महर्षिगण उन पर फूलों की वर्षा करने लगे। इन्द्र वहाँ आये और मनुष्य शरीर सहित लक्ष्मण को उठा कर अपनी अमरावती में चले गये। यह बात किसी मनुष्य ने नहीं देख पाई। इस तरह विष्णु के चतुर्थांश रूप लक्ष्मण के स्वर्ग में आ जाने से देवता बड़े प्रसन्न हुए और राघव की सराहना करने लगे।

---

१२० वाँ सर्ग।

महाप्रस्थान के लिए रामचन्द्र का तैयार होना।

लक्ष्मण को बिदा कर रामचन्द्र दुःख और शोक से पीड़ित होकर पुरोहितों, मन्त्रियों और बड़े बड़े लोगों से बोले—"देखो, अब मैं अयोध्या का राज्य भरत को देकर स्वयं वन को जाऊँगा। इसलिए अभिषेक की चीजें जल्दी इकट्ठी की जायँ जिससे देर न हो। मैं आजही लक्ष्मण के पीछे जाना चाहता हूँ।" रामचन्द्र के मुँह से यह निकलते ही मन्त्री, दीवान, अमात्य, महाजन, मित्रगण, ब्राह्मण, मुनि आदि जितने उस सभा में थे वे सब नीचे को मुँह कर एक साथ गिर पड़े। वे सब प्राणरहित से होगये। रामचन्द्रजी की सम्मति सुनकर भरत भी मूर्छित हो गये। थोड़ी देर में सचेत होकर वे राज्य की बुराई करते हुए बोले—"हे राजन् रघुनन्दन! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके बिना मैं यह राज्य तो क्या स्वर्ग-भोग भी नहीं चाहता। आप अपने दोनों पुत्रों का अभिषेक कीजिए। कोशल देशों का राजा कुश को और उत्तर कोशल भाग के देशों का लव को राजा बनाइए। शत्रुघ्न के पास तुरन्त ही दूत भेजे जायँ जो उनको हमारे महाप्रस्थान का संदेशा सुनावें।" इस तरह भरत का कथन सुन और पुरवासियों को बहुत दुःखित तथा नीचे को मुँह किये देखकर वशिष्ठ मुनि बोले—"हे वत्स राम! अपनी इस प्रजा की ओर देखो। यह जमीन पर लोट रही है। यह जो चाहे आपको वही करना उचित है। आप इसके मन के विरुद्ध कोई बात न करें।" यह सुनकर रामचन्द्र ने उन सब लोगों को उठाया और पूछा—"मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?" यह सुनतेही सब एक साथ बोल उठे—"हे राम! जहाँ आप जायँगे वहीं आपके पीछे पीछे हम लोग भी चलेंगे। यदि पुरवासियों पर आपकी प्रीति और उत्तम स्नेह हो तो हम सबको पुत्र-कलत्र-सहित अपने साथ चलने की अनुमति दीजिए। हे प्रभो! यदि आप हमको छोड़ना न चाहते हों तो—चाहे आप तपोवन में, दुर्ग में, नदी में, या समुद्र में जायँ—जहाँ जायँ वहीं हमको भी लिये चलें। इसी से हम लोगों को परम प्रसन्नता होगी। हमारे लिए यही परम वर है। हे राजन् आपके अनुचर होने में हमको सदा प्रीति बनी रहती है।" इस तरह पुरवासियों की दृढ़ भक्ति देखकर और अपना कर्तव्य-सिद्धान्त सोच कर महाराज ने उनको चलने की अनुमति दे

दी। उन्होंने, पहले बतलाये हुए, दोनों स्थानों के लिए अपने दोनों पुत्रों का अभिषेक कर दिया। उनका अभिषेक कर दोनों को अपनी गोदी में बैठा कर उनका सिर सूँघा। इसके बाद दोनों को अपने अपने नगरों के लिए बिदा कर दिया। एक एक हज़ार रथ, दस दस हज़ार हाथी और एक एक लाख घोड़े उनके साथ रवाना कर दिये। तरह तरह के रत्न और बहुत सी धन की ढेरियों सहित हृष्टपुष्ट मनुष्यों को उनके साथ कर सावधानी कर दी। इधर शत्रुघ्न के पास दूत भेजे गये।

——

१२१ वाँ सर्ग।

साथ चलनेवालों का इकट्ठा होना।

अब रामचन्द्र के भेजे हुए दूत मथुरा नगरी को चल दिये। वे मार्ग में कहीं भी न ठहर कर तीन रात दिन में वहाँ जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शत्रुघ्न को अयोध्या का सब हाल सुना दिया। लक्ष्मण का त्याग, रामचन्द्र की प्रतिज्ञा, पुत्रों का अभिषेक, पुरवासियों का महाराज के साथ जाने का विचार, कुश के लिए विन्ध्य पर्वत के किनारे की कुशावती और लव के लिए श्रावस्ती, इन दोनों नगरियों का बसाना तथा रामचन्द्र और भरत का अयोध्या नगरी को निर्जन कर स्वर्ग जाने के लिए उद्योग करना—यह सब अयोध्या का हाल उन्होंने सुना कर कहा—"राजन्! अब जल्दी कीजिए।" इस तरह का घोर कुल-क्षय का हाल सुनकर शत्रुघ्न ने अपनी प्रजा को और काञ्चन नामक पुरोहित को बुलवा कर उनको यह सब हाल सुनाया। उन्होंने भाइयों के साथ अपना भी भविष्य-विपर्य कह दिया। फिर अपने दोनों पुत्रों का—अर्थात् मथुरानगरी का सुबाहु को और शत्रघाती को वैदिश नगर का—राज्य-तिलक कर दिया। सेना और धन के दो विभाग करके दोनों को बाँट दिये। इस प्रकार प्रबन्ध करके एक रथ पर बैठ कर वे अयोध्या को चले। अयोध्या में पहुँचकर उन्होंने रामचन्द्र के दर्शन किये। रामचन्द्रजी उस समय बारीक रेशमी कपड़े पहने मुनियों के साथ विराजमान थे। शत्रुघ्न उनसे हाथ जोड़ कर बोले—"हे राजन्! मैं अपने दोनों पुत्रों को राज्य देकर आपके साथ चलने के लिए तैयार हो आया हूँ। इसके विषय में आप कोई दूसरी बात न कहिएगा। मैं नहीं चाहता कि आप की आज्ञा का उल्लङ्घन करूँ।" शत्रुघ्न का यह निश्चय जान कर महाराज ने उन्हें स्वीकृति दे दी।

इस तरह की वहाँ बातचीत हो ही रही थी कि इतने में सुग्रीव, बानर, भालु और राक्षसों के झुंड के झुंड वहाँ आ पहुँचे। देवताओं, ऋषियों और गन्धर्वों से उत्पन्न बानर लोग रामचन्द्र के परमपद जाने का हाल सुनकर वहाँ आगये। उन्होंने कहा—"हे रामचन्द्र! यदि आप हमको छोड़ कर चले जावेंगे तो मानो यमदण्ड से हमारा घात करेंगे।" इसके बाद सुग्रीव भी बड़ी नम्रता से प्रणाम करके बोले—हे वीर! मैं अङ्गद को राज्य देकर आपका अनुगामी होने के लिए आया हूँ।" यह सुनकर प्रभु ने उनकी बात मान ली। फिर रामचन्द्रजी विभीषण से बोले—"हे राक्षसेन्द्र! जब तक प्रजा रहे तब तक आप लङ्का में स्थिर रहिए। जब तक चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी स्थिर हैं और जब तक मेरी कथा लोक में रहेगी तब तक आपका राज्य स्थिर हो। मैं आपको मित्रभाव से यह आज्ञा देता हूँ।

आप धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करें। आप मुझे कुछ भी उत्तर न दीजिए। हे राक्षसेन्द्र! मैं और भी कुछ कहना चाहता हूँ, वह सुनिए। इस इक्ष्वाकुवंश के इष्टदेव श्रीजगन्नाथ हैं। वे इन्द्रादि देवताओं के भी पूज्य और सदा आराधनीय हैं। आप उनकी आराधना करते रहिए।" रामचन्द्रजी की आज्ञा को विभीषण ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद, रामचन्द्रजी हनुमान् से बोले—"हे हनुमन्! तुमने अपने जीवन के लिए पहले ही निश्चय कर रक्खा है। देखो अपनी उस प्रतिज्ञा को असत्य न करना।" यह सुन कर वायुपुत्र बोले—"हाँ महाराज! पृथ्वी पर जब तक पवित्र करनेवाली आपकी कथा रहेगी तब तक मैं जीता रहूँगा।" तदनन्तर ब्रह्मा के पुत्र वृद्ध जाम्बवान् से तथा मैंद और द्विविद से भी रामचन्द्रजी बोले कि तुम कलियुग तक जीते रहो।

दोहा।

एहि विधि शासन पाँच कहँ, देइ कह्यो रघुनाथ।
जो जो चाहत सँग चलन, वेगि चलहि मम साथ॥

—

१२२ वाँ सर्ग।

रामचन्द्र का प्रस्थान।

अब प्रातःकाल होते ही महाराज ने पुरोहित से कहा—"ब्राह्मणों के साथ मेरा प्रज्वलित अग्निहोत्र आगे आगे चले। वाजपेय का अतिशोभित छत्र भी मेरे साथ जावे।" फिर वशिष्ठ मुनि ने महाप्रस्थान के लिए सब धर्म-विधि यथावत् की। इसके बाद रामचन्द्रजी वेद और उपनिषदों के मन्त्रों को पढ़ते हुए तथा हाथों में कुश लिये हुए सरयू नदी की ओर चले। राह में वे न कुछ बोलते और न किसी तरह की चेष्टा करते थे। वे उदासीनता धारण किये, प्रकाशमान् सूर्य की नाईं, चले जाते थे। उस समय महाराज के दक्षिण भाग में साक्षात् लक्ष्मी और बायें भाग में मही देवी तथा उनके आगे आगे व्यवसाय अर्थात् संहार-शक्ति चली जाती थी। तरह तरह के बाण, उत्तम धनुष और रामचन्द्र के सब आयुध पुरुष का रूप धारण करके उनके साथ जा रहे थे। ब्राह्मण का रूप धारण किये सब वेद, तथा सब की रक्षा करनेवाली गायत्री, ओंकार, वषट्कार, तथा और बड़े बड़े ऋषि और सब ब्राह्मणों की मण्डली—ये सब महाराज का अनुसरण करते हुए चले जाते थे। रामचन्द्रजी के पीछे पीछे रनिवास की सब स्त्रियाँ, वृद्ध, बालक, हिजड़े और दासियाँ, नौकरों के साथ चली जाती थीं। उस समय स्वर्ग में ब्रह्मलोक का फाटक खुल गया था। अपने अपने रनिवास के साथ भरत और शत्रुघ्न भी अग्निहोत्र सहित, रामचन्द्रजी के साथ जा रहे थे। महामतिमान् ब्राह्मण लोग, अपने अग्निहोत्रों सहित, स्त्रियों और पुत्रों को साथ लिये रामचन्द्र के पीछे पीछे जा रहे थे। सब मंत्री और नौकर चाकर, पशु, बालक और बान्धवों को साथ लिये बड़े हर्ष से चले। सब प्रजा के लोग अपने हृष्टपुष्ट मनुष्यों के साथ और अपने स्त्री, कुटुम्ब तथा पशुपक्षियों सहित निष्पाप हो, हर्ष में भरे हुए, रामचन्द्र के गुणों में अनुरक्त हो कर पीछे पीछे चले जाते थे। सब वानर स्नान करके प्रसन्न और हृष्टपुष्ट हो किलकिला शब्द करते हुए रघुनन्दन के पीछे दौड़े जाते थे। उस समय एक बात बड़े

आश्चर्य की यह थी कि उन लोगों में से कोई भी दीन, लज्जित, और दुःखित वहाँ न देख पड़ता था। जिसे देखो वही हृष्टपुष्ट और प्रसन्न देख पड़ता था। यहाँ तक तो अयोध्या में रहने वाले लोगों की बात थी। अब मार्ग में और दूसरे स्थानों के रहने वाले जो लोग, उस प्रस्थान के समय, प्रभु को देखने के लिए आते थे वे भी उनके पीछे पीछे चल देते थे। जो कोई उस समय उनको सिर्फ़ देखने के लिए आता था वह भी उनका अनुगामी हो जाता था। जितने ऋक्ष, बानर, राक्षस और पुरवासी मनुष्य थे वे सब बड़ी भक्ति से, सावधान हो कर, पीछे पीछे चले जाते थे। कहाँ तक कहा जाय, अदृश्य रहने वाले भूतगण भी, स्वर्ग के लिए, रामचन्द्र के पीछे गुप्त रूप से गये। जो जो स्थावर और जंगम राघव को जाते हुए देखते थे वे भी सब उनके अनुगामी हो जाते थे।

दोहा।

कृमि कीटहु नहिं देखियत, पुरी अयोध्या माँह।
तिर्यग्योनिहुँ कह लियो, साथ जानकी नाहँ॥

——

१२३ वाँ सर्ग।

महाराज के साथ सब लोगों का स्वर्ग-निवास।

इस तरह चलते चलते कोई दो कोस के बाद रामचन्द्र ने पश्चिम ओर को पवित्र प्रवाह से बहनेवाली सरयू नदी को देखा। सब लोगों के साथ वे उसी के तट पर गये। उस समय देव-मण्डली को साथ लिये ब्रह्मा वहाँ आ गये। उनके साथ सौ करोड़ दिव्य विमान थे। उस समय आकाश दिव्य तेज से पूर्ण हो ज्योतिर्मय हो गया। अपने ही तेज से प्रकाशमान् और पवित्र कीर्तियों से विभूषित स्वर्गवासी लोग भी पितामह के साथ वहाँ आये। उस समय सुगन्धित सुखद वायु चलने लगी। देवता लोग फूलों की भरपूर वर्षा करने लगे। गन्धर्वों और अप्सराओं से वह स्थान भर गया। सैकड़ों दुन्दुभियाँ बजने लगीं। तब सरयू के जल में रामचन्द्र पैदल ही घुस गये। उस समय पितामह आकाश से बोले—"हे विष्णो राघव! आइए। आपका आगमन बड़ा आनन्दकारी हो। आप देवतुल्य अपने भाइयों के साथ पधारिए। आप अपने शरीर में प्रवेश कीजिए। जिस शरीर में आप प्रवेश करना चाहते हों उसी में प्रवेश कीजिए। आप चाहे विष्णु के शरीर में अथवा इस सनातन आकाशरूप निज देह में प्रवेश कीजिए। हे देव! आप लोक के गति-रूप हैं। आपको कोई नहीं जानता। केवल एक विशालनयनी यह माया देवी आपको जानती है जो आपकी पहली पत्नी आदिशक्ति है। आप अचिन्त्य, महाभूत, अक्षय और जरारहित हैं।" इस तरह पितामह की स्तुति सुन कर महाराज ने सशरीर अपने दोनों भाइयों सहित वैष्णव तेज में प्रवेश किया। उस समय विष्णुरूप देव को साध्य, मरुद्गण, तथा इन्द्र और अग्नि सहित सब देवता पूजने लगे। वहाँ महाराज के पहुँचने से दिव्य ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सरा, सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस आदि सभी के मनोरथ पूर्ण हुए। वे 'साधु साधु' कह कर स्तुति करने लगे। सम्पूर्ण स्वर्ग पवित्र हो गया। इसके बाद भगवान् विष्णु पितामह से बोले—"हे ब्रह्मन्! इस जनसमूह के लिए स्वर्ग में स्थान बतलाओ जहाँ ये सब आनन्द-

पूर्वक रहें । ये सब स्नेहपूर्वक मेरे पीछे पीछे आये हैं। ये सब भक्त हैं इसलिए प्रीति के योग्य हैं । क्योंकि मेरे लिए इन्होंने अपने शरीर तक की परवा नहीं की।" ब्रह्मा ने कहा—"भगवन्! ये सब लोग संतानक नामक लोकों में जाकर सुख से रहें। हे प्रभो! तिर्यग्योनिवाले प्राणी, जो आपका ध्यान करते हुए प्राण त्याग करेंगे वे, भी इन्हीं सन्तान लोकों में स्थान पावेंगे। ये सन्तानलोक ब्रह्मलोक के पार हैं। उसी लोक के समान इन लोकों में भी सब सुख हैं। वहाँ के रहनेवाले सब प्राणी ब्रह्मा के ही साथ मुक्त हो जाते हैं। इसके बाद वानर और भालू जिन जिन देवताओं से उत्पन्न हुए थे, उन्हीं में लीन हो गये। सुग्रीव सूर्यमण्डल में प्रवेश कर गये। उस समय देवता लोग भी यह चमत्कार देख रहे थे। ब्रह्मा इस तरह बातें कर ही रहे थे कि इतने में महाराज के अनुगामी लोग गोप्रतार तीर्थ में पहुँच, हर्ष से आँखों में आँसू भरे, सरयू नदी में घुस गये। उसी क्षण मनुष्य-देह त्याग कर वे दिव्य शरीर को पाकर विमानों पर चढ़ गये। कहाँ तक कहें, सैकड़ों तिर्यग्योनिवाले जीवधारी (पशु) भी बड़े प्रकाशमान् शरीर पाकर देवताओं की नाईं प्रकाशित होगये। स्थावर जंगम जितने जीव थे वे सब सरयू के जल के स्पर्श से स्वर्गगामी हुए। ऋक्ष, वानर और राक्षस भी स्वर्ग में चले गये। इन लोगों के शरीर सरयू में ही रह गये।

दोहा।

ब्रह्मा सब कहँ देइ करि, स्वर्ग-स्थान अनूप।
हृष्ट मुदित देवन सहित, गवने सह सुरभूप ॥

---

१२४ वाँ सर्ग।

उपसंहार।

उत्तरकाण्ड सहित यह इतनी कथा 'रामायण' नाम से प्रसिद्ध है। इस कथा की ब्रह्मदेव ने भी प्रशंसा की है। वाल्मीकि मुनि के मुँह से यह सम्पूर्ण आख्यान प्रकट हुआ है। जिन विष्णु ने सब चराचर त्रैलोक्य को व्याप्त कर रक्खा है वे, पूर्व की नाईं, स्वर्गलोक में विराजमान हुए। तब से स्वर्ग में देवता, गन्धर्व, सिद्ध, और महर्षि, ये सब रामायण काव्य को नित्य सुनने लगे। यह आख्यान आयुष्य और सौभाग्य का देने वाला तथा पापों का नाशक है। यह काव्य वेद के तुल्य है। श्राद्धसमय में इसे ब्राह्मणों को सुनाना चाहिए। अपुत्र मनुष्य इसके सुनने से पुत्र पाते हैं और निर्धनों को धन मिलता है। जो मनुष्य श्लोक का एक चरण भी पढ़ता है वह सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य नित्य पाप करता है वह भी यदि एक ही श्लोक पढ़ ले तो सब पापों से छूट जाय। बाँचने वाले (पौराणिक) को कपड़े, गाय, और सोना देना चाहिए। क्योंकि उसके सन्तुष्ट होने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं। यह आख्यान आयुष्य का देनेवाला है। इसका पढ़नेवाला इस लोक तथा परलोक में भी प्रतिष्ठा पाता है। इस रामायण को जो प्रातःकाल, या दोपहर को, या तीसरे पहर या शाम को पढ़ते हैं वे दुःख नहीं पाते।

अयोध्या नगरी बहुत वर्षों तक ख़ाली पड़ी रहेगी। फिर ऋषभ नामक राजा उसे दुबारा बसावेंगे।

यह आख्यान भविष्य और उत्तर सहित प्रचेता के पुत्र श्रीवाल्मीकि ने बनाया और ब्रह्माजी ने इसे अङ्गीकार किया।

छप्पय।

अद्भुत चरित ललाम सतत भक्तन हितकारी।
धेनु विप्र सुर हेतु मनुज भे देव खरारी॥
अप्रतर्क्य ऐश्वर्य वेदहू भेद न पावहिं।
निज निज शक्त्यनुसार भक्त जन प्रभुयश गावहिं॥
गुणरहित गुणाश्रय देह धरि अद्भुत बहु लीला करहिं।
तेहि नम्र नमत गोपाल द्विज जो भक्त मनोरथ अनुसरहिं

श्लोक।

श्रीमर्यादापुरुषो रघुकुलजन्मा रमापतिर्देवः।
समुदे समुदेतुतरां पावनकीर्त्तिः सनातनः सततम्॥
श्रीमानुत्तरकाण्डो रघुपुङ्गवसद्गुणैः सुखोपहितः।
भक्तजनानन्दकरो गोपालानूदितो जीयात्॥

—

इति श्रीमद्वाल्मीकीयोत्तरकाण्डानुवाद उपासन्युप-
नामक गोपालशर्मविरचितोऽयं सम्पूर्णः।
ग्रन्थश्चायं समाप्तः।

॥ श्रीरामार्पणमस्तु ॥

लीला-संवरण